श्रीमद् कुलभद्राचार्य विरचित सार समुच्चय

सद् देशना

भाग -6



देशनाकार
श्रमणाचार्य विशुद्धसागर

श्रीमद् कुलभद्राचार्य विरचित ''सारसमुच्चय''

पर

सद्-देशना

(भाग-6)

[टीकात्मक प्रवचन, श्लोक 260 से 328 तक]

देशनाकार

आचार्य विशुद्धसागर मुनि

प्रकाशक

श्रमणसंस्कृति सेवासमिति

पूज्यश्री के प्रवचन प्रकाशन प्रसारण हेतु कटिबद्ध

संपर्क : 9245321151, 9826210189, 8959990000

❖ मूलकृति – श्रीमद् कुलभद्राचार्य विरचित 'सार-समुच्चय'

❖ प्रस्तुत कृति – **''सद्-देशना'' (भाग-6)**
(वर्ष 2013 में विदिशा, सागर, बड़ामलैहरा, द्रौणागिरि, छतरपुर, झाँसी, चिरगाँव, रानीपुर, पन्ना में किये गये टीकात्मक प्रवचन)

❖ **देशनाकार** – **आचार्य विशुद्धसागर मुनि**

❖ **संकलन** – **श्रमण सुव्रतसागर मुनि**

❖ संपादन – पंडित शिवचरन लाल जैन, मैनपुरी

❖ प्रस्तुति – इंजी. जिनेन्द्र जैन, पद्मनाभ नगर, भोपाल
ब्र. दीदी डॉ. शशिकिरण जैन, पन्ना

❖ आवृत्ति – प्रथम, वर्ष 2017, 2200 प्रतियाँ

❖ न्यौछावर – रु. 200/- (पुनर्प्रकाशनार्थ)

❖ प्रकाशक – श्रमणसंस्कृति सेवासमिति

❖ पुण्यार्जक – सोनु राजमल जैन (मल्ले), सोनल सोनु जैन,
सौरया सोनु जैन, अरहम सोनु जैन
श्री जैनको सेल्स, मुम्बई
मो. : 9322931411, 9322931412

❖ प्राप्ति स्थान –
- श्री आजादकुमार जैन, इंदौर, मो. 09425321151
- श्री मनीष जैन मोना, इंदौर, मो. 09826210189
- श्री महावीर पाटनी, भिलाई, मो. 08959990000
- श्री नंदीश्वर जिनालय, लालघाटी, भोपाल, मो. 09425374897
- मनोज झांझरी, जयपुर, मो. 09829063426
- नमोस्तु शासन संघ, मुंबई, मो. 09892297204

❖ मुद्रक – विकास ऑफसेट प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स
45, सेक्टर-एफ, औद्योगिक क्षेत्र, गोविन्दपुरा, भोपाल
फोन : 0755-2601952, 9425005624

अनुक्रमणिका

श्लोक क्र.	विषय	पृष्ठांक
	सम्पादकीय	VI-X
	प्रारम्भिक मंगलाचरण	XI
	ग्रंथ का मुख्य मंगलाचरण	XI
	णमोकार महामंत्र	XII
260	मैत्री की भावना	1
261	परमप्रिय दया-मैत्री	11
262	धर्मोपदेश से कर्म-निर्जरा	22
263,264	शांतभाव, समताभाव	28
265,266	क्षमा और क्षमा का फल	33
267	सेवन करने योग्य	68
268	जिनशासन से करो प्रीति	79
269	कुसंगति/सत्संगति	100
270	सत्संग से गुण-वृद्धि	133
271	कुसंगति से हानि	142
272	राग-द्वेषादि ही दुष्ट हैं	150
273, 274	गुण पूज्य होते हैं	159
275	चारित्र की महिमा	168
276	चारित्रच्युत भ्रत्यवत	176
277	चारित्रवान त्रैलोक्यपूज्य	186
278	चारित्र से भवपार	195

279	शील के साथ मरण श्रेष्ठ	206
280	चारित्र पूज्य है	206
281,282	चारित्र की चमक	217
283	चारित्र का फल	229
284	सुख-दुःख	239
285	कामाग्नि	250
286, 287	क्रोध का फल	262
288	युद्ध कर्मों से करो	272
289	कृतघ्न कौन?	284
290	शूरवीर और पण्डित कौन?	295
291	कलह और विवाद नहीं करना	314
292	धन्य है क्षमावान्	324
293	दुष्टों के साथ विवाद नहीं करना	340
294	अहंकार से हानि	353
295	मत करो गोत्र का अभिमान	364
296	मोक्षमार्ग के लुटेरे	375
297	जिनधर्म की दुर्लभता	375
298	मत करो प्रमाद	388
299	चारित्र हीन का संसार भ्रमण	399
300	स्वाधीन-सुख ही सच्चा सुख	405
301	आत्मसुख ही सुख	418
302, 303	स्वाधीन सुख ही सुख है	430
304	परिग्रह सुख का बाधक है	442
305, 306	दुःख में शोच वृथा है	453
307, 308	ज्ञान प्राप्ति का फल	469

309, 310	भोगों में लिप्त धनीभी निर्धन	482
311	आत्मा ही तीर्थ है	492
312, 313	शील से शुचिता	502
314	करो ज्ञान-स्नान	510
315, 316	अशुचिमय शरीर	518
317	सम्यक्-शुद्धि	529
318	पुरुषार्थ का फल	551
319	उद्यम करने की प्रेरणा	560
320	सुवचन-सु-भावना	570
321	मधुर वचन की महिमा	585
322	सुखी होने का उपाय	593
323	परमपद प्राप्ति का उपाय	599
324, 325	ग्रंथकार की भावना	611
326, 327	ग्रंथ पारायण का फल	623
328	अन्त्य मंगल-भावना	631
	संदर्भ ग्रंथ सूची	639

सम्पादकीय

वन्दे वागीश्वरीं नित्यं जिनवक्त्राम्बुजनिर्गतां।
वाक्शुद्धयै नयसिद्ध्यै च जिनस्याद्वादामृतगर्भिणीं ॥

विश्ववन्द्य तीर्थंकरों की दिव्यध्वनि के अर्थ व्याख्यान की साकार शब्दरूपता रूप गणधरों के ग्रन्थ कर्तृव्य-जैन वाङ्मय में परम्पराचार्यों का महत्वपूर्ण स्थान है। निर्ग्रन्थ श्रमणों ने प्रथम-करण-चरण-द्रव्यानुयोग के विषयों को अपनी लेखनी द्वारा वर्तमान शासननायक भगवान् श्री महति महावीर वर्द्धमान के सर्वलोकहित उपदेश को जन-जन तक पहुँचाने का महत्कार्य संपादित किया है। आचार्य श्री कुन्दकुन्द स्वामी से लेकर वर्तमान तक श्रमणों द्वारा अहिंसा, अनेकान्त, अपरिग्रह की त्रिवेणी में प्रवहमाण जैन अध्यात्म-दर्शन, आचार और विचार के ढाँचे में ढलकर विश्वमैत्री और सह-अस्तित्व का प्रभावक संवाहक बना हुआ है।

आचार्य कुलभद्र—ये निर्ग्रन्थ श्रमणाचार्य दशवीं शताब्दी (937 ई.) में इस पावन भारत भूमि को अपने विशिष्ट ज्ञान-ध्यान-तप द्वारा संस्कृत कर रहे थे। जैनेन्द्र सिद्धान्तकोश के अनुसार यह कालावधि प्रकट है। श्रद्धेय ब्र. शीतलप्रसादजी ने हजार वर्ष पूर्व का मानकर अपनी टीका में उल्लेख किया है।

यह ज्ञातव्य है कि लगभग इसी समयान्तराल में आचार्य गुणभद्र, आचार्य अमितगति आदि प्रतापी आचार्यों ने जिनवाणी की महती शोभा की है। कुलभद्राचार्य की संभवत: एक ही कृति 'सार-समुच्चय' उनको उसी समकक्षता में लाने में समर्थ है। उन्हें इस महनीय उपकार के कारण समादृत स्थान प्राप्त है। उनका जीवनपरिचय, संघ-परम्परा, ग्रंथरचना आदि गवेषणा का विषय है।

सारसमुच्चय—328 अनुष्टप छन्दों में,

संस्कृत भाषा में रचित कुलभद्राचार्य की यह रचना 'आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं' के मूलविषय द्रव्यानुयोग के सारभूत अध्यात्म के केन्द्र पर शोभायमान है। सुख के शाश्वत रूप मोक्षप्राप्ति हेतु रत्नत्रयरूप मोक्षमार्ग का भी साधनरूप तप है, वह सार है तथा उसका भी सार ध्यान है जो मोक्षोपयोगी निर्जरा का कारण है। यह वर्णित है।

वर्तमान में मनीषियों के प्रयास से इसकी टीकाओं सहित छह-सात प्रकाशन होचुके हैं। इसमें पं. दौलतराम कासलीवाल कृत भाषावचनिका तथा 104 हिन्दी पद्यों में संक्षिप्त रचना (वि. सं. 1805), ब्रह्मचारी शीतलप्रसाद कृत हिन्दी अनुवाद व टीका (सन् 1935) सूरत व नरियाँ वाराणसी से, इससे पूर्व 1922 में माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला बम्बई से "सिद्धान्तसारादिसंग्रह

(संभवतः मूल) के नाम से तथा पूज्य गणिनी आर्यिका सुपार्श्वमती जी का भाषाटीकानुवाद (प्रकाशित सन् 2007) भी सम्मिलित हैं। इससे प्रकट होता है कि यह ग्रन्थ अध्यात्म-रसिकों के लिए कण्ठहार बना हुआ है।

सारसमुच्चय की विशेषतायें—निम्न बिन्दुओं से संक्षिप्त अवगम्य है -

(1) यह रचना संसार, शरीर और भोगों के प्रति संवेग और निर्वेद-वैराग्य हेतु परम औषधि है। प्रशम, आस्तिक्य और ध्यान की प्रेरणा देने वाले इस ग्रंथ में झलकता है कि—अध्यात्म ही सार-समुच्चय है।

(2) इसकी रचना संसार-भ्रमण, जन्म-मरण का नाश करने हेतु की गई है, स्वयं ही मार्दव के अंगभूत लाघव-भाव के धारण करने वाले आचार्य ने यह व्यक्त किया है, दृष्टव्य है -

अयं तु कुलभद्रेण भवविच्छित्तिकारणम्।
दृब्धो बालस्वभावेन ग्रन्थः सारसमुच्चयः ॥325॥
ये भक्त्या भावयिष्यन्ति भवकारणनाशनम्।
तेऽचिरेणैव कालेन सुखं प्रात्स्यन्ति शाश्वत्॥ 326/सा.स.॥

बालस्वभाव वाले कुलभद्र ने इस सारसमुच्चय ग्रंथ को संसार की स्थिति छेदने के लिए लिखा है। जो भक्ति के साथ इसकी भावना करेंगे, जो कि संसार कारणों का नाशक है, वे शीघ्र ही शाश्वत सुख प्राप्त करेंगे।

(3) रस की एकरूप निष्पत्ति के लिए मात्र अनुष्टप छन्द में लिखा है।

(4) भाषा सरल है, सामान्य संस्कृत-ज्ञानी भी भाव हृदयंगम कर सकता है।

(5) शैली सरस आध्यात्मिक रूप से प्रवाहपूर्ण है, उपदेशात्मक है, मधुर-प्रिय है।

(6) यह श्रावक और श्रमण दोनों के लिए समान रूप से पथ्य रूप में है।

(7) इसकी भाषा-शैली की तुलना गीता, आत्मानुशासन, सुभाषित रत्नसंदोह, क्षत्रचूड़ामणि से की जा सकती है, इसमें जटिल, क्लिष्ट व अति समस्तपद नहीं है।

(8) नीतियों, उदाहरणों, सिद्धान्त प्रस्तुति आदि से भावों में वैराग्योत्पादक है।

वस्तुतः यह जिनवाणी प्रसून पाठकों में भाव-विशुद्धि का मुख्य कारण है।

आचार्य श्री विशुद्धसागर महाराज—

वर्तमान श्रमण जगत् में परमपूज्य आचार्य श्री निर्दोष साधु-चर्या के धनी एवं ज्ञान-ध्यान-तपोलीन श्रमण के रूप में संघनायक का कुशल निर्वहण कर रहे हैं। आध्यात्मिकता को लिए आपकी वाणी सर्वोदय हेतु अर्थात् जैन परम्परा के साधु व

श्रावक सभी के लिए परम रसायन का कार्य कर रही है। वे सतत स्वाध्यायी, कुशाग्र चिन्तक, न्याय विद्याविशारद, सिद्धान्त शिरोमणि, समयसारादि शुद्ध-अध्यात्म के रसिक तथा लोकनीति व समाजनीति के दृष्टा हैं। प्रवचन कला की निपुणतामय उनकी लगभग पचासों कृतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं, जिन्हें समाज चाव से पढ़ता है। ये सभी 'देशना' की संज्ञा से विभूषित हैं। समयसार पर समयदेशना के सोलह खण्ड प्रकाश्य हैं। ये प्रवचन समाज पर गहरा प्रभाव छोड़ते हैं।''

रूर (भिण्ड) ग्राम में जन्मे राजेन्द्र ने अन्त:करण से विरक्त होकर मात्र बीस वर्ष की आयु में श्रमणाचार्य श्री विरागसागर जी से बालब्रह्मव्रत सहित मुनिदीक्षा ग्रहण की एवं 31.03.2007 महावीर जयंती के पावन दिवस पर औरंगाबाद में आचार्यपद ग्रहण किया। अद्यावधि अपने रत्नत्रय के तेज से आत्मा को तथा ज्ञानदान, तप और जिनेन्द्र भक्ति से वीतराग जैनशासनरूप धर्म को, जिसे वे 'नमोऽस्तुशासन' (मूलाचार टीका के आधार पर) कहते हैं, प्रकाशित, प्रभावनायुक्त कर रहे हैं।

सद्-देशना—आचार्य श्री विशुद्धसागर जी ने ऊपर वर्णित ग्रन्थ 'सार-समुच्चय' पर विस्तृत देशना प्रदान की है। सत् शब्द का अर्थ समीचीन, प्रशंसनीय, कल्याणकारी एवं श्रेष्ठ होता है। यह 'सद्-देशना' 'संज्ञा सार्थक' है। इसमें सुष्ठु व्याख्यान है। इसमें विभिन्न विषयों पर बहुआयामी उपदेश दिया है। साथ ही ब्र.शीतल प्रसाद जी के कतिपय शीर्षकों से समन्वित, गणिनी आर्यिका सुपार्श्वमती माता जी द्वारा प्रयुक्त शीर्षकों को भी लिया गया है, यह आचार्य श्री की गुणग्राहकता तथा प्रवचन-वात्सल्य का द्योतक है। इससे ज्ञानावरण कर्म का विशेष क्षयोपशम होता है।

यह ज्ञातव्य है कि यदि शीर्षक द्वारा संकेत प्राप्त होता है, तो पाठक को विषय को समझने में सुविधा होती है। मूल ग्रन्थ के आशय के अनुरूप कतिपय शीर्षक ही देशना के महत्व को प्रस्थापित करते दृष्टिगत होते हैं, यथा आत्म-भावना ही विधेय है, ज्ञानभावनापूर्वक तप करणीय है, आत्मचिकित्सा की प्रेरणा, संसारदु:खनाशक सम्यग्दर्शन आदि।

सद्-देशना की भाषाशैली—

प्रस्तुत देशना देश-देश व घाट-घाट का पानी पीने वाले, पदयात्री-करपात्री, पहुँचे हुए आत्मनिष्ठ यायावर श्रमण के मुख-कमल से नि:सृत सर्वहारा सूत्ररूपी सुरभित पुष्पों का हार है। आचार्यश्री की उभय लोकहित करुणा के दर्शन हम यहाँ आचार्य गुणभद्रस्वामी के निम्न श्लोक द्वारा करना चाहेंगे,

जना: धनाश्च वाचाला सुलभा स्युर्वृथोत्थिता:।
दुर्लभा: हयान्तरार्द्रास्ते जगदभ्युज्जिहीर्षव: ॥

वृथाही अहंकार से भरे वाचाल वक्ता अधिक संख्या में सुलभ हैं, किन्तु करुणारस पूरित

हृदय वाले जगत् के हिताकांक्षी उपदेशक दुर्लभ हैं। आचार्यश्री परोपकार की मूर्ति हैं। जिनमें स्वात्मकल्याण प्रमुखता से लक्ष्यभूत है।

उक्त गुणों से युक्त देशनाकार की सद्देशना की भाषा लोकभाषा है जिसमें अपेक्षित रूप में आचार्यों के उद्धरण मणिकाञ्चन योग को सार्थक बनाते हैं।

भाषा सरल, सुगम, अवगम्य है। आवश्यकतानुसार तत्त्वज्ञान के निरूपण में आगमिक शब्दावली के भी दर्शन होते हैं। श्रोताओं को आचार्य विशुद्धसागर जी प्रायः ज्ञानी, मुमुक्षु आदि सम्बोधनों से प्रतिबोधित के शब्दों की बहुलता है। देशना की शैली ओज, प्रसाद, माधुर्य गुण से युक्त है। श्रोता ऊबता नहीं, भले ही अध्यात्म, वैराग्य-प्रधान देशना है।

यह कहा जा सकता है कि—देशना अमृतधारा से लबालब भरी हुई एक प्रवहमाण शीतल वृक्षावली के मध्य से गुजरने वाली नय-प्रमाण रूपी तटों से संयत पावन सरिता के समान प्रतीत होती है। शैली प्रभावकारक एक आगमोक्त व प्रामाणिक रूप में प्रकट है। यहाँ कतिपय पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं।

- जब तक चित्त अस्थिर है, तब तक जगत् के चित्र दिखते हैं। जिसका चित्त स्थिर है, उसे जगत् के चित्र दिखना बंद हो जाते हैं। (पृ.क्र.7)
- जैसे-जैसे शांत परिणाम होंगे, वैसे-वैसे पुण्य भी बढ़ेगा। जैसे-जैसे पुण्य बढ़ेगा, तब 'श्री' भी टपकेगी। (पृ.क्र.42)
- ज्ञानी! संयम से शरीर में ताकत रहती है, असंयम से ताकत का नाश होता है। (पृ.क्र.94)
- जैसे शीघ्र ही कालिया नाग से दूर होते हो, अग्नि से दूर होते हो, ऐसे-ही कुसंसर्ग से दूर रहना। (पृ.क्र.111)
- व्यवहार संयम शुभास्रव और अशुभ के संवर का कारण है और निश्चय संयम यानि रत्नत्रय मोक्ष का कारण है। (पृ.क्र.120)
- जो मानसिक रोग से ग्रसित प्राणी हैं, वे यदि अपना रोग ठीक करना चाहते हों, तो क्षमा माँगना सीख लें। (पृ.क्र.211)
- इंद्रिय सुख की आकांक्षा जहाँ से प्रारम्भ होती है, वहाँ से शान्ति पलायन कर जाती है। (पृ.क्र.240)
- जो अपने आपसे हार चुके होते हैं, वे ही आत्म हत्या करते हैं। (पृ.क्र.537)
- जिस जीव को भावों की विशुद्धि का आनन्द आता है, वह परमात्मा के चरणों में जाने के परिणाम करता है। (पृ.क्र.632)

कुल मिलाकर "सद्-देशना" पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि—आचार्य कुलभद्र

के श्लोकों पर यह बहुत विस्तार को लिए हुए एवं लोकहित तथा श्रोताओं के समूह के लिए विषयान्तरता को समाहित किए हुए भी यह अमृत-रसायन है। इससे जन्म-जरा-मरण के कष्टकारक रोगों से मुक्ति का मार्ग प्राप्त हो सकता है।

पूर्व में प्रकाशित 'सार-समुच्चय' में भाषानुवाद एवं भावानुवाद प्रस्तुत किया गया है, पर इस देशना में तो आर्षमार्ग व चतुरनुयोग के तथा लोकस्थिति के परिप्रेक्ष्य में विस्तृत व्याख्या या व्याख्यान समीचीन रूप से प्रकट है। यह भी ज्ञातव्य है कि भाषण या प्रवचन में विरोधाभास भी संभव है, पर 'देशना' शब्द स्वयं ही सत्यार्थ का ही बोधक है।

"सद्-देशना" प्रकाशित हो रही है। अपने श्रेष्ठ रूप और गेटअप, मुद्रण आदि दृष्टियों एवं भाषा-शब्दों की प्रूफरीडिंग सावधानी से की गई है, फिर भी अशुद्धि संभव होती हैं इस हेतु क्षमाप्रार्थी हूँ। पाठक व प्रबुद्ध मनीषियों से प्रार्थना है कि—भूल सुधारकर लेवें।

पुनश्च, परमपूज्य श्रमणाचार्य श्री विशुद्धसागर जी महाराज को शतशः नमन। **प्रस्तुत कृति के संकलन का कार्य पूज्य मुनि श्री सुव्रतसागर जी महाराज ने बड़े परिश्रम से श्रेष्ठ रूप में किया है। उनके मार्ग प्रभावना एवं प्रवचन वात्सल्य से ही यह कार्य जिनवाणी के भण्डार में वृद्धि करेगा।** समाज पर भी उनका उपकार अमिट छाप छोड़ने वाला है। इस हेतु उनका भूरि-भूरि आभार। **श्री वाय. के. जैन आगरा, श्री मनीष मोनाजी इंदौर एवं अन्य भी जो सहयोगकर्त्ता, प्रकाशक तथा मुद्रक आदि सभी साधुवाद के पात्र हैं।**

आशा और विश्वास है कि—सुधी पाठकगण इस देशना का मनोयोगपूर्वक स्वाध्याय करके पारमार्थिक आनन्द का अनुभव करेंगे। मंगल कामना है कि—यह "सद्देशना" यावच्चन्द्र दिवाकरौ चिरंजीवी होकर, जनताजनार्दन को सुख-शान्ति का सन्देश देकर, जाज्वल्यमान रहे।

समयसारस्य सारोऽयं, सर्वसारस्य चाप्ययं।
सद्देशनेति व्याख्यानं, विशुद्धकीर्तिं प्रकाशते ॥ (स्वोपज्ञ)

(इत्यलं)

श्यामभवन, बजाजा
मैनपुरी-205001 (उ. प्र.)
मो. 09219160350

पं.शिवचरनलाल जैन
संरक्षक एवं पूर्व अध्यक्ष-तीर्थंकर
ऋषभदेव जैन विद्वत् महासंघ
संरक्षक
अ. भा. दि. जैन शास्त्रिपरिषद्

मंगलाचरण

ॐकारं बिन्दु संयुक्तं, नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव, ॐकाराय नमोनमः॥

अविरल शब्दघनौघ, प्रक्षालितसकलभूतल कलङ्का।
मुनिभिरुपासिततीर्था, सरस्वती हरतु नो दुरितम्॥

अज्ञान तिमिरान्धानां, ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन, तस्मै श्री गुरवे नमः॥

श्री परमगुरवे नमः, परम्पराचार्यगुरवे नमः।

सकलकलुषविध्वंसकं, श्रेयसां परिवर्धकं, धर्मसंबंधकं, भव्यजीवमनः प्रतिबोधकारकं, पुण्यप्रकाशकं, पापप्रणाशकमिदं शास्त्रं श्री **"सारसमुच्चय नामधेयं"** अस्य मूलग्रन्थकर्त्तारः श्री सर्वज्ञदेवास्तदुत्तरग्रन्थकर्तारः श्रीगणधरदेवाः प्रतिगणधरदेवास्तेषां वचनानुसारमासाद्य आचार्य श्री कुलभद्राचार्यदेव विरचितम्, तस्य भाषा टीका आचार्य श्री विशुद्धसागरेण विरचिता, एषः **'सद्देशना'** नाम ग्रन्थः।

श्रोतारः सावधानतया शृण्वन्तु।

मङ्गलं भगवान् वीरो, मङ्गलं गौतमोगणी।
मङ्गलं कुन्दकुन्दार्यो, जैनधर्मोस्तु मङ्गलं॥
सर्वमङ्गल माङ्गल्यं, सर्वकल्याणकारकं।
प्रधानं सर्वधर्माणां, जैनं जयतु शासनम्॥

ग्रन्थ का मुख्य मंगलाचरण

देवदेवं जिनं नत्वा, भावोद्भव विनाशनम्।
वक्ष्येऽहं देशनां कांचिन्मतिहीनोऽपि भक्तितः॥ (1/सा.स.)

महामंत्र णमोकार

णमो अरिहंताणं,

णमो सिद्धाणं,

णमो आइरियाणं।

णमो उवज्झायाणं,

णमो लोए सव्वसाहूणं॥

मैत्री की भावना

मैत्र्यंगना सदोपास्या हृदयानन्दकारिणी।
या विधत्ते कृतोपास्तिश्चित्त विद्वेष-वर्जितं॥ 260॥

अन्वयार्थ—(हृदयानन्दकारिणी) मन को आनंद देने वाली **(मैत्र्यङ्गना)** मैत्रीरूपी स्त्री की **(सदा उपास्या)** सदा सेवा करनी चाहिए **(या)** जो **(कृतोपास्तिः)** उपासना किए जाने पर **(विद्वेष-वर्जितं चित्तं विधत्ते)** द्वेष रहित चित्त बना देती है।

भावार्थ—ध्यानी की तीसरी स्त्री मैत्री है। सर्व जीवों पर मैत्रीभाव रखने से द्वेषभाव मिट जाता है, मन में आनन्द रहता है, कोमल भाव हो जाता है, महान् पुण्यमयी बंध होता है।

॥ सद्-देशना ॥

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रंथराज सारसमुच्चय जी में वस्तुस्वभाव की व्याख्या करते हुए कह रहे हैं कि—सिद्धिदायिनी और प्रसिद्धिदायिनी कोई बुद्धि है उसका नाम है 'मैत्रीभाव'।

ज्ञानियो! जिस जीव के अंतस् में मैत्रीभाव नहीं है, उसके न व्यवहार धर्म है और न निश्चय धर्म है। व्यवहार और निश्चय धर्म का प्रारंभ कहीं से होता है, तो उसका नाम 'मैत्रीभाव' है।

महान् सिद्धांतज्ञ श्री कुंदकुंद स्वामी को अपना गुरु स्वीकारने वाले आचार्य उमास्वामी महाराज ने 'तत्त्वार्थ सूत्र' जी में '**मैत्री-प्रमोद-कारुण्य-माध्यस्थ्यानि च सत्त्वगुणाधिक-क्लिश्यमानाऽविनयेषु**' सूत्र का प्रादुर्भाव किया। आचार्य अमितगति स्वामी ने इसी बात को दोहराया और अपने ग्रंथ द्वात्रिंशतिका (सामायिक पाठ) में लिखा है कि—

सत्त्वेषु मैत्रीं गुणिषु प्रमोदं, क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम्।
माध्यस्थभावं विपरीत वृत्तौ, सदाममात्मा विदधातु देव॥

शिवकोटि स्वामी ने ग्रंथराज 'भगवती आराधना' में अनेक प्रकार से मैत्रीभाव का उल्लेख किया है। परम्परा से भगवान् तीर्थंकर वर्द्धमान स्वामी की देशना में यह सूत्र

खिरा है। "सत्त्वेषु मैत्रीं" यह ऐसा प्रधान सूत्र है, जिसे जैन परम्परा के सभी श्रावक और साधु मानते हैं, स्वीकार करते हैं।

खम्मामि सव्व जीवाणं, सव्वे जीवा खमंतु मे।
मित्ती मे सव्व-भूदेसु, वैरं मज्झं ण केणवि॥

ज्ञानियो! कोई पूछे कि-मैत्री शब्द का प्रयोग कहाँ से प्रारंभ हुआ है? तो तीर्थंकरों ने इसको कहा है। दिगम्बर, श्वेताम्बर सम्पूर्ण सम्प्रदाओं में यह गाथा ज्यों-की-त्यों बोली जाती है। सम्पूर्ण प्राणियों में मैत्रीभाव की भूमिका को समझना। जब पातंजलि ने योग विषय पर लिखा, उस समय धारणा-ध्यानादि की व्याख्या में ध्याता के लिए उन्होंने आठ तत्त्व की प्ररूपणा की। आठ भूमिकाओं से गुजरने वालों को उन्होंने ध्याता कहा। तब उनको सोचना पड़ गया कि इस विद्या को कहाँ से प्रारंभ करूँ? जब ध्यान की भूमिका में प्रवेश होगा। अमितगति स्वामी का वह पद्य और उमास्वामी महाराज का सूत्र ज्यों-का-त्यों भावार्थ लिए हुए है।

उनका पहला जो सूत्र है, वह मैत्री है। जब तक मैत्री सूत्र अंतस् में प्रारंभ नहीं होगा, तब-तक धर्म का प्रादुर्भाव होता ही नहीं है।

लोगों ने मैत्री शब्द को इतना छोटा ले लिया है। यहाँ तक कि उपहास के रूप में प्रारंभ हो गया। कोई कहता है कि पिता जी मेरा मित्र है। पिता सोचता है कि इसकी मित्रता हो गयी है, अब तो बिगड़ा। बालक! मैत्री शब्द का दुरुपयोग मत करना।

किसी के हाथ को मिलाना मैत्री नहीं है। किसी के गले लग जाना मैत्री नहीं है। यह सब मैत्री हो गये तो राग कहाँ जायेगा? मैत्री भिन्न विषय है। आचार्य शुभचंद्र स्वामी ने 'ज्ञानार्णव' जी में जब ध्यान की व्याख्या की है, तब उन्होंने भी सबसे पहले मैत्री शब्द का प्रयोग किया है। लोग सोच रहे हैं कि मैं बैठ जाऊँगा तो ध्यान लग जायेगा। कभी नहीं लगने वाला। आँखें बंद करना, आँखें खोलना, श्वास को खींचना, श्वास को छोड़ना, ज्ञानियो! यह ध्याता की पहचान नहीं है। यह शरीर को स्वस्थ रखने की कला तो हो सकती है, लेकिन मैत्रीभाव के अभाव में ध्यान तो होता ही नहीं है। जब-तक मैत्रीभाव नहीं है, तब-तक न तो श्रावकधर्म है, न ही साधुधर्म है।

प्रमोद के लिए सीमा है, माध्यस्थता की सीमा है, दया की सीमा है, पर मैत्री असीम है। दु:खी प्राणियों पर करुणा उत्पन्न होती है। जिनको मोक्षमार्ग से कोई प्रयोजन

नहीं है, जो वस्तुस्वरूप को समझना ही नहीं चाहते हैं, उन्हें क्या समझाना? भैया! उसे ही समझाना, जो जिज्ञासु हो। जो समझने की भावना ही नहीं रखता हो, उसे समझाने में अपनी समझ को व्यर्थ में नष्ट मत करना। यदि आप समझाने बैठ गये, समझने वाला समझना नहीं चाहता, तो आपके परिणाम खराब होंगे। इसलिए जो समझना नहीं चाहता, यदि उसका साथ दोगे, तो उसकी पुष्टि होगी। उससे अशुभ भाव रखोगे तो संक्लेशता बढ़ेगी। इसलिए ना आपके प्रति मेरा द्वेष भाव है, ना आपके प्रति मेरा राग भाग है, इसका नाम मध्यस्थ भाव है।

विनयशून्य जो हैं, ऐसे लोगों के साथ मध्यस्थ भाव करना ही पड़ेगा। यदि ध्यानस्थ होना चाहते हो, मोक्षमार्ग में लीन होना चाहते हो, तो अविनयी लोगों से मध्यस्थ होना ही पड़ेगा। जो नहीं स्वीकारना चाहता है, आप उसके लिए क्यों परेशान हो रहे हो? ठीक है। वहाँ क्या कहना है, क्या विचार करना है? **"नाना जीवा नाना कम्मा"** नाना जीव हैं, नाना कर्म हैं। सभी के अपने-अपने क्षयोपशम हैं। यदि मेरे क्षयोपशम से सारे लोग चल सकते होते तो सब एकभूत न हो जाते?

धर्म में शक्ति है, जो एक आँगन में बिठाने की शक्ति रखता है। बाकी कोई शक्ति नहीं है जो सबको एकसाथ बिठाल सके। नाना भेद जीव के, नाना परिणाम जीव के, नाना भाव जीव के, ऐसे जीव कहाँ साथ बैठ पायेंगे? एकमात्र धर्म ऐसा स्थान है, जहाँ एकसाथ बैठने का भाव सभी कर लेते हैं। इसलिए मित्रो! आज आपको समझ में आयेगा मैत्री क्या होती है। मित्रो! सारे जगत् में नाना स्थान हो जायें, पर धर्म का एक ही स्थान है। इसका प्रारंभ होता है श्रावक का पानी छानने से। तुम्हारा कल्याण तुम्हारे हाथ में है। पानी छानने का उद्देश्य यह है कि जीवों की विराधना न हो, जीवों का घात न हो। मन छानने का उद्देश्य यह है कि आत्म-परिणामों का घात न हो।

मैत्री असीम है। अविनयी के प्रति मध्यस्थ हो गए। आपके साथ मेरी शत्रुता नहीं है। सम्बंध भी नहीं है। जगत् के नाना जीवों से सम्बंध बनाकर रखोगे तो धर्ममार्ग को कभी प्राप्त नहीं कर सकोगे। इसलिए मध्यस्थ। इन सब की सीमा है। और **"गुणिषु प्रमोदं"** जो अपने से गुणों में अधिक हैं, उनको देख सूर्यमुखी पुष्प हो जाना। गुणियों को देखकर प्रमुदित हो जाना। कुमुदिनी मत हो जाना। वह सूर्य को देखकर कुम्हला जाती है। लेकिन सूर्यमुखी फूल, जैसे-जैसे सूर्य खिलता है, वह भी खिलता चला जाता

है। जिस ओर सूर्य जाता है, उस ओर ढलता जाता है। सच्चा धर्मात्मा वही होता है, जो धर्मात्मा को देखकर धर्मात्मा के साथ चल देता है। वह नहीं देखता है कि कितना कद है, कौन-से स्थान का है, कौन-से प्रदेश का है? धर्म का कोई कद नहीं, प्रदेश नहीं।

मुमुक्षु! धर्म तो धर्म है। सारे लोगों के परिचय तो नानत्वभूत होंगे, लेकिन धर्म का परिचय एकत्वभूत होगा। चार भाई हैं। उनके नाम एक नहीं हैं। जब-जब तुम पर्याय की पहचान बनाओगे, अलग-अलग नाम आयेंगे, लेकिन जब धर्म की पहचान बनाओगे तो तुम चारों एक कहलाओगे।

ज्ञानी! अपनी पहचान बनायेगा तो प्रदेश लिखेगा, नाम लिखेगा और यूँ कहे कि आपका देव कौन-सा है? आपका गुरु कौन-सा है? आपका शास्त्र कौन-सा है? तो हर श्रावक एकसाथ बोलेगा—महाराज! 18 दोषों से रहित देवाधिदेव हैं, वह मेरा देव है। विषयकषाय से रहित मेरा गुरु है। अरहंत द्वारा भाषित भूतार्थ तत्त्व से प्ररूपित जो वाणी है, वही हमारी जिनवाणी/शास्त्र है। अन्य मेरा कोई परिचय नहीं है। यही जैनी का परिचय है, अन्य सभी पर्याय के परिचय हैं। धर्म का परिचय क्या होगा? किसी भी प्रदेश में, भू-खण्ड पर यदि एक पाषाण उत्कीर्ण प्रतिमा के रूप में विखण्डित भी पड़ा दिख जाये, तो देश का ऐसा कौन-सा श्रावक होगा जो देखने नहीं जायेगा, कि अरे! इसमें तो तीर्थंकर की प्रतिमा है। भाषा का अपरिचयपना हो सकता है, आपकी देह का अपरिचयपना हो सकता है, लेकिन जिनमुद्रा से जगत् में कोई भी अपरिचित नहीं है।

कर्नाटक के विहार में बहुत से श्रावक मिलते थे। देखकर, प्रसन्न होकर, 'भो स्वामी! नमोस्तु' कौन-से भव का परिचय था? नाथ! आपका मेरा कोई परिचय नहीं है, पर जिनमुद्रा से मेरा भवों-भवों से परिचय है। उसको देखकरके गद्गद् भाव आता है। आप यथार्थ मानना, सवस्त्रधारी धर्मात्मा दिखें और एक निर्वस्त्रधारी धर्मात्मा दिखे, दोनों के दर्शन में आपको बहुत अंतर नजर आता है। माता जी हों, ऐलक जी हों, क्षुल्लक जी हों, उनके प्रति विनय भाव रखना। उनके ही सामने कहीं दिगंबर मुनिराज दिख जायें तो एक अलग भाव उत्पन्न होता है, कि **"यथाजात स्वरूपोऽहं"।** धर्म और धर्म के फल को देखकर चित्त हर्षित होता है। इसका नाम है संवेग। धर्मात्मा दिखना

चाहिए मुझे और-कुछ नहीं दिख रहा है। यह सूर्यमुखी फूल की भांति, सूर्य के साथ ही ढलते-ढलते हैं, धर्म का जो रूप है, वह धर्मात्मा का रूप है।

समंतभद्र स्वामी ने स्पष्ट कर दिया। **"न धर्मो धार्मिकैर्विना"**। ज्ञानियो! **एक-एक धर्मात्मा हमसे दूर होता जायेगा, हम धर्मात्माओं से दूर होते जायेंगे, तो बताओ धर्म होगा कहाँ? कहीं पर्वतों पर धर्म नहीं उगता, नदियों में धर्म नहीं पलता, वृक्षों से भी फलित नहीं होता। धर्म तो धर्मात्माओं के हृदय में ही होता है। जो जीव धर्मात्मा को हीन दृष्टि से देखता है, वह अपने धर्म को हीन दृष्टि से देखता है।** कोई णमोकार पढ़ते दिखाई दे जाए तो कम-से-कम प्रसन्नता होना चाहिए पीठ ठोक देना चाहिए कि ऐसे खोटे कलिकाल में भी, जहाँ अज्ञानी लोग फिल्मों में लगे हैं, संगीतों को गुनगुना रहे हैं, वहाँ तू तीर्थंकर की दिव्यध्वनि में खिरा णमोकार बोल रहा है।

ज्ञानी! किसी जीव ने एक बार णमोकार पढ़ दिया तो उस जीव ने उस भूमि पर णमोकार को प्रवाहित कर दिया। विश्वास मानना, एक छोटी-सी प्रतिमा जिस जीव ने कहीं पर स्थापित कर दी, यह ध्यान रखना, उसने उस भूमि पर जिनशासन स्थापित कर दिया। जीवन में, अंतिम श्वास निकलने के पहले, कुछ ज्यादा नहीं कर पाओ तो अपने जीवन में एक बार जिनवाणी और जिनप्रतिमा की स्थापना कराकर जरूर जाना। यह मत सोचना कि इतने ग्रंथ, इतनी मूर्तियाँ हो जायेंगी तो इनकी पूजा कौन करेगा। यथार्थ मानिये, पूज्य की पूजा की चिंता करने की आवश्यकता नहीं है। पूज्य की पूजा करने वाले भी नियम से होते हैं। पूज्य तुम्हारी पूजा से नहीं होते हैं। पूज्य की पूजा होती है । पूज्य पूजा से नहीं होते हैं, पूज्य गुणों से होते हैं। **"गुणहीनो न वन्दनीयो"** गुण हीन की वन्दना नहीं होती है। यदि आपको अपनी भी पूजा चाहिए, विश्वास रखो, आपकी भी पूजा होगी, लेकिन पूज्य बनाना पड़ेगा। **गुणों की वंदना है, गुणों की पूजा है। पर्याय की पूजा नहीं है। पर्यायी में पर्याय के साथ जो गुण हैं, उनकी पूजा है।** वही मनुष्यपर्याय है, उसके भीतर बैठा जीवद्रव्य पर्यायी है, फिर भी उसकी पूजा नहीं हो रही है। एक पिता सामने बैठा है, फिर भी आपकी पूजा नहीं हो रही है, पुत्र की पूजा हो रही है। यह कैसे हो गया? गुणों ने पूज्य बना दिया। इसलिए वंदना हर समय गुणों की ही हुयी है। गुणों की ही होगी।

आज विदिशा के संग्रहालय में जाओ तो लोग प्रमुदित होकर कहेंगे कि गुप्तकालीन प्रतिमायें हैं। राजा गुप्त के काल में स्थापित प्रतिमा विदिशा के संग्रहालय में है। इससे तुम्हारा इतिहास सुरक्षित है। दो दृष्टि हैं। एक तुम्हारे धर्म की स्थापना हुयी और उनमें जो लिखी प्रशस्ति है, उसने अपने इतिहास को बनाकर रखा है। **जहाँ-जहाँ जिनभवन होगा, वहाँ जिननाथ की जय होगी। जहाँ जिननाथ की जय होगी, वहाँ जिनशासन की जय होगी।** इसलिए कभी मन में, स्वप्न में भी, ग्लानि भाव आ गया हो कि अब तो बहुत भगवान् बन रहे हैं, तुझे भगवान् पर तो चिंता हो रही है, जिस पर चिंता होना चाहिए उस पर चिंता नहीं है। बहुत मिथ्यात्व फैल रहा है। बहुत अज्ञानता फैल रही है। बहुत असंयम फैल रहा है। यह चिंता करने का विषय है, इस पर तो चिंता नहीं कर रहे हैं।

ज्ञानियो! बेटे जिनालयों की जगह अन्य आलयों में जा रहे हैं। जिसकी चिंता होनी चाहिए, उसकी चिंता नहीं हो रही है। जिसमें निमग्न होना चाहिए, उसमें निमग्न नहीं हो रहा। यह जीव की अज्ञानधारा है। इस भवन में जिनराज की प्रतिमा स्थापित की तो शांतिनाथ जिनालय कहलाने लग गया आप बैठकर जिनवाणी सुन रहे हो। जैसे अपने बुजुर्गों के आयतनों पर तुम मुस्कुराते हो, ऐसे-ही आनेवाली पीढ़ी को मुस्कुराहट देकर जाना, नहीं-तो वह सोचेंगे कि खाकर-पीकर ही चले गए, कुछ भी छोड़ कर नहीं गये।

चामुण्डराय के काल में क्या कोई दूसरा सेठ नहीं हुआ होगा? क्या उनके रिश्तेदार अरबपति खरबपति नहीं थे? लेकिन उन्होंने कुछ भी नहीं किया और चामुण्डराय ने अपनी सम्पत्ति का उपयोग गोम्मटेश भगवान् बनाने में किया। आज चामुण्डराय तो नहीं हैं, पर जब तक धरातल पर बाहुबली स्वामी की प्रतिमा विराजित रहेगी, तब तक सारा विश्व दिगम्बर नमोस्तु शासन को जयवंत करेगा, क्योंकि सारे विश्व में दिगम्बरत्व का अन्तर्राष्ट्रीय कोई कार्य होता है उसका नाम गोम्मटेश का महामस्तकाभिषेक है। जहाँ भारत के राष्ट्रपति को भी नमस्कार करना अनिवार्य होता है। कहीं चामुण्डराय सोचता कि इतनी सम्पत्ति का दुरुपयोग क्यों करूँ? जितना पाषाण निकलता था, उतना सोना देता था। शिल्पकार को ऐसा मेहनताना मिलता था। उसका मन एक दिन मचलने लगा और माँ से बोला कि माँ! अब पत्थर कम निकलता है। माँ अभिप्राय समझ गयी और कहने लगी कि एक वह सपूत है जो अपनी माँ की खुशी के लिए इतना महान् कार्य

कर रहा है और एक तू है। जा बेटा! यदि तू सपूत है तो जितना सोना मिला है सब गोम्मटेश की प्रतिष्ठा में लगा देना। ऐसे-ऐसे लोग इस भारत की भूमि पर हुए हैं। यह है संवेग भाव।

कुछ दिन बाद शिल्पकार अपनी माँ से कहता है कि माँ! आज आपने नमक नहीं दिया? अहो आश्चर्य! माँ समझ गयी, बोली, प्रतिमा बन गयी है क्या? 'क्यों माँ।' मेरे लाल! 6 माह से मैंने तुझे नमक नहीं दिया है। तब तक तूने एक दिन भी नहीं कहा और आज तू कह रहा है कि नमक नहीं मिला है। इसका मतलब है कि प्रतिमा बन चुकी है। तब उपयोग तेरा जिनबिम्ब की आकृति के निकालने में लगा था, तब नमक पर दृष्टि नहीं थी। जब नमक पर दृष्टि गयी, जब जिनबिम्ब पर दृष्टि नहीं थी।

अहो! धन्य हो उस शिल्पकार को जो छैनी-हथौड़ियों से अरहंत के जिनबिम्ब को निकाल रहा हो पाषाण से, उसे नमक का भान ना रहा हो। तो जो भेदविज्ञान की छैनी से निज के भगवान् को निकाल रहा हो, ऐसे योगी को नमक खाने का विकल्प कहाँ? उपयोग की धारा निज में होती है तब संसार के सारे विकल्प समाप्त हो जाते हैं। जब उपयोग ही तुम्हारा स्थिर नहीं होगा, तब नाना विकल्प आते हैं। नहीं मानो तो विद्यार्थियों से पूछो, परीक्षाहाल में लघुशंका किसे लगती है? जिससे पेपर नहीं बनता उसे सारी परेशानियाँ होती हैं। यथार्थ मानिये, **जब तक चित्त अस्थिर है, तब तक जगत् के चित्र दिखते हैं। जिसका चित्त स्थिर है, उसे जगत् के चित्र दिखना बंद हो जाते हैं।**

ज्ञानियो! यदि आपको लग रहा है कि बेटे आपका नाम चला रहे हैं, यथार्थ मानिये, कितने दिन वो आपका नाम चला पायेंगे? यदि तुम्हें नाम ही जीवित रखना है, तो चामुण्डराय जैसी विशाल प्रतिमा स्थापित करके जाओ, सदियाँ तुम्हारा नाम याद रखेगी।

अपना जीवन जीने के लिए जगत् का नाम लेने के लिए कोटिकोटि जीव मिल जायेंगे, पर जन्म-मरण से रहित होने के लिए जिनदेव का नाम लेने वाले अंगुलियों पर गिनने लायक जीव मिलेंगे। जो-जो पर का स्वार्थपूर्ण नाम ले रहे हैं, वे सब जन्म-मरण की पूर्ति के लिए ले रहे हैं। जो जन्म-मरण से रहित होना चाहते हैं, वो जिनदेव का नाम ले रहे हैं। इसलिए जो संवेग भाव है, बहुत विराट् है। जिस दिन संवेग भाव आ जायेगा, उस दिन आपकी परिणति महावीराष्टक लिखने वाले भागचंद जैसी हो जायेगी।

जब दिन बदलते हैं, तब देहरी भी छोड़ना पड़ जाती है। इतना बड़ा विद्वान् दर-दर भटक रहा है और ईशागढ़ से जाकर जयपुर पहुँचे। जयपुर में बेचारे मजदूरों वाली जगह पर खड़े हो गए। अशुभ कर्म की विडंबना तो देखो, कोई उनको मजदूरी को भी नहीं ले जा रहा है, क्योंकि चेहरा मजदूरों जैसा तो था नहीं। बेचारे खड़े-खड़े सोचते हैं कि अब समय तो हो ही गया है। बेटा और पत्नि को तो एक जगह ठहरा ही दिया है। रास्ते में जाते समय जिनालय की घण्टी की आवाज सुनाई पड़ी। क्या करें?

रँभाती गाय को देखकर बछड़ा उछलकर ना जाये, ऐसा होता ही नहीं है। **सच्चा श्रावक, सच्चा योगी वह है जो चार अनुयोगों वाली भगवती जिनवाणी का पान करना चाहता है।** वह विद्वान् जा रहा था, घण्टी की आवाज सुनकर देखता है कि सामने विशाल जिनबिम्ब है। भागचंद जी साहब, जब अंदर जिनवाणी हो रही थी, भगवान् के दर्शन करके जिनवाणी सुनने बैठ गये। अब कल्पना करो, परिवार एक जगह कहीं बैठा हो और हाथ में कौड़ी नहीं है। पूरा परिवार भूखा बैठा है।

अहो! श्री तो रूठी ही है, श्री जी से क्यों दूर होऊँ? ऐसा विचार करते हैं। अब जब आना होगा तो आ जायेगा, मैं तो जिनवाणी सुन रहा हूँ। धन्य हो उस संताषी प्राणी को। मालूम क्या हुआ वहाँ पर? वहाँ पर बड़े-बड़े सेठिया बैठे थे, गद्दी पर। एक ऐसा प्रश्न आ गया कि सभा में उसका वहाँ हल नहीं निकल रहा था और यह चुपचाप बैठे थे। फिर बोलते हैं, भैया! यदि आप सब की इच्छा हो तो इसका उत्तर मैं दे रहा हूँ? अब सबने बोला, हाँ, आप उत्तर दे सकते हो। जैसे-ही पंडित जी ने उत्तर दिया, सारे-के-सारे लोग गद्गद् हो गये। थोड़ी देर बाद भजन हुआ, पुरानी परम्परा थी कि स्वाध्याय के बाद भजन होना बहुत जरूरी होता है। भजन वे जिनमें आत्मरस टपकता हो!

सभी ने कहा कि आज आपने समाधान दिया है, आज हमारी सभा के सदस्य चाहते हैं कि जिनवाणी आप ही पढ़ें। अब **'साँची तो गंगा यह वीतरागी वाणी'** जैसे ही यह जिनवाणी लोगों ने सुनी, सब के मन मचल गये, नयनों में नीर भर आया। अंतिम छंद में लिखा था भागचंद। जैसे ही भागचंद शब्द निकला, जयपुर के सेठ लोग कहने लगे कि ये तो बताओ कि ये भागचंद कौन है? पंडित जी साहब रोक नहीं पाये अपने को। क्या कहूँ कर्मों की विचित्रता को, वो अभागा में ही हूँ। बोले, आप भागचंद जी

हो, ऐसा कैसे? बोले, भैया! सबके दिन एक-से नहीं होते। किसी पर श्री प्रसन्न होती है, किसी पर धी प्रसन्न होती है। बनारसी दास जैसे विद्वान् को भी दर-दर की ठोकरें खाना पड़ी। भैया! वो अपने जीवन में कभी भी सफल नहीं हुए। धन से हीन जीवन जिये हैं। उन्होंने अपनी आत्मकथा में लिखा है। पर यह मानना पड़ेगा कि विद्वान् सर्वत्र पूज्य हो जाता है। एक पंक्ति ने क्या किया? जो मजदूरी के लिए जा रहे थे, सेठों ने कोठी खोल दी और कपड़ों की दुकान खुलवा दी, जाओ, जहाँ आपका परिवार हो, लेकर आओ। आज से आप इस जिनालय में वाचना करेंगे और इस दुकान पर बैठेंगे। पर धन्य हो उस विद्वान् को, स्वाभिमान अंदर का। कमाते रहे, कमाते रहे और जिस दिन देख लिया कि अब तो घर चल जायेगा, तो कहते हैं सेठों से कि अब मुझे गृह गाँव की याद आ रही है। मैं तो अपनी जन्मभूमि जाऊँगा। यह है आपकी दुकान और चाबी। मैं तो जाता हूँ।

कितने निर्मल परिणाम जीवों के हुआ करते थे। सत्यता है, कथायें उनकी ही गायी जाती हैं, जो गाने योग्य हों। हर मुनि को हर आचार्य को कुंदकुंद स्वामी अच्छे लगते हैं। आ० विद्यासागर जी अच्छे लगते हैं। मेरा मुनिराजों से स्पष्ट कहना है कि जब कुंदकुंद स्वामी और आ० विद्यासागर जी अच्छे लगते ही हैं, तो वो भी तो पंचमकाल के जीव ही हैं। जैसी प्रवृत्ति वो कर रहे हैं, क्या तुम कर नहीं सकते हो? वो यदि एक हजार गुनी साधना कर रहे हैं, तुम दस गुनी ही करना प्रारंभ कर दो, तब भी तुम्हारा काम चलेगा; क्योंकि प्रशंसा मात्र से कल्याण नहीं होगा, गुरु के तद्रूप आचरण भी करना पड़ेगा। गुरुओं के प्रशंसक हजार हो सकते हैं, लेकिन गुरु-जैसा आचरण करने वाले विरले ही जीव होंगे। धन्य हो वे आचार्य ज्ञानसागर जी, जो एक विद्यासागर देकर चले गये। कितना पुरुषार्थ किया होगा। सत्य यह है कि बाहर का रूप न देखकर भीतर का रूप देखो आप आ० महाराज का, उन्होंने अपने गुरु से कैसे अध्ययन किया है। वे गाड़ियों में घूमने वाले ब्रह्मचारी नहीं बने थे। जिस दिन वह संघ में पहुँचे थे, ज्ञान सागर जी ने कह दिया था कि तेरा नाम विद्याधर है, तू पता नहीं कब उड़ जायेगा। बोले, महाराज! आज से वाहन का त्याग। धन्य हो। कहाँ तुम? जिसने ब्रह्मचारी अवस्था में वाहन में पैर न रखा हो, तुम कहाँ उस जीव से अपने आप में स्पर्द्धा कर पाओगे। तुमको जब तक गाड़ी न आये तब तक तुम आगे नहीं बढ़ोगे। मैं तो गुणग्राही हूँ। ब्र०

जी की चोटी इतनी लम्बी थी और कण्ठ में यज्ञोपवीत। नींद न आ जाये, सो चोटी में गांठ बांधकर रस्सी से खूंटे से बाँध दी। आ० ज्ञानसागर जी ने एक आदमी लगा दिया था कि भैया देखना यह ब्रह्मचारी करता क्या है। वे देखते रहते थे। वे लालटेन के उजेले में, बैठे-बैठे, पढ़ रहे हैं।

अष्टसहस्त्री ग्रंथ को पढ़ा है उन्होंने और दीक्षा देते ही आचार्य ज्ञानसागर महाराज ने उनको समयसार पढ़ाया। 'विद्याधर से विद्यासागर' पढ़ लेना, तब मालूम चलेगा कि महान् बनने के लिए कितनी महानताएँ चाहिए पड़ती हैं। **महान् बनना है तो महापुरुषों के गुणगान करते-करते महापुरुषों के अनुसार ही आचरण और अनुसरण भी करना पड़ेगा, तब महान् बन पाओगे, अन्यथा माला फेरते रहना।**

हे श्रावको! आप ऐसा कोई व्यापार मत करना कि जैन कहने में भी लज्जा आये। ऐसा व्यापार करो जिससे कम-से-कम यह तो कह पायें कि जैन हैं।

मैत्री असीम है। "सत्त्वेषु मैत्रीं" मैत्री प्राणिमात्र के प्रति होती है। मैत्री का तात्पर्य 'आप मुझे और मैं आपको भोजन करा दूँ' यह नहीं है। मैत्री का अर्थ है कि सज्जन और सम्पूर्ण प्राणियों का उपकार हो, यह प्रयास होता है।

"परेषां दुःखानुत्पत्त्यभिलाषो मैत्री" पर प्राणियों को दुःख की उत्पत्ति न हो ऐसा भाव तुम्हारे मन में रहना, इसका नाम है मैत्री।

यहाँ आचार्यभगवन् कह रहे हैं कि अपने चित्त को आनंद देने वाली मैत्री रूपी वनिता की सदा उपासना करो। जिसके ऊपर मैत्री-अंगना की कृपा वरस रही है, उसका सारे संसार में कोई विद्वेषी होता नहीं।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।



परमप्रिय दया-मैत्री

सर्वसत्त्वे दयां मैत्रीं यः करोति सुमानसः।
जयत्यसावरीन् सर्वान् बाह्याभ्यन्तर-संस्थितान्॥ 261॥

अन्वयार्थ—(यः सुमानसः) जो सुन्दर मन का धारक **(सर्वसत्त्वे)** सब प्राणियों में **(दयां मैत्रीं करोति)** दया व मैत्रीभाव करता है **(असौ)** वह **(बाह्याभ्यन्तर संस्थितान्)** बाहरी और भीतरी रहने वाले **(सर्वान् अरीन्)** सर्व शत्रुओं को **(जयति)** जीत लेता है।

भावार्थ—इस जीव के बाह्य शत्रु अन्य मानव हो सकते हैं, परन्तु अन्तरङ्ग शत्रु क्रोध, मान, माया, लोभादि विभाव भाव हैं। इन दोनों के जीतने का उपाय दया और मैत्रीभाव है। जो दयाभाव और मैत्रीभाव के धारी होते हैं, वे शत्रुओं को भी वश में कर लेते हैं तथा उनकी कषाय मन्द रहती है, वे धर्म-साधन कर कषायों को उत्पन्न करने वाले कर्मों को जला सकते हैं।

॥ सद्-देशना ॥

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रंथराज सारसमुच्चय जी में महान् सूत्र की व्याख्या कर रहे हैं। परमात्मा बनने के पूर्व परादृष्टि का होना अनिवार्य है। **जब तक परादृष्टि नहीं है, तब तक परमात्मपद की उपलब्धि असंभव है। दृष्टि का उच्च कर पाना परिणामों का पुरुषार्थ है। देह के पुरुषार्थ से अनेक भवनों को बना सकते हैं। देह के पुरुषार्थ से पर्वतों को उखाड़ सकते हो, लेकिन देह के पुरुषार्थ करने मात्र से कर्मों को उखाड़ने की क्षमता नहीं है। कर्मों को उखाड़ने के लिए देह का पुरुषार्थ मात्र नहीं, भावों का पुरुषार्थ चाहिए।** शरीर को संकुचित करके बैठ जाना, यह तो बगुले के भी हाथ में है। बगुला भी तालाब में एक टाँग से खड़ा हो लेता है। तन को सँभालना तो मायावी लोग जानते हैं। इन्द्रजालिया जादूगर भी अपने शरीर को ऐसे सँभाल लेता है कि जो नाटक दिखा रहा है उसकी स्थिरता देखने वाले दंग रह जायें। लोक में भ्रमित करने के लिए देह को सँभाल पाना बहुत सरल है; पर ज्ञानियो! आत्मा को आत्मा में आनंदित करने के लिए परिणामों को सँभाल पाना पुरुषार्थ-साध्य है।

ज्ञानियो! सम्पूर्ण जिनागम में जितनी व्याख्या है, उस व्याख्या का जो सार है, वह निज की भवावली को समाप्त करना है, तो निज के भावों को स्थिर करना है। निज

को स्थिर करने के लिए कठिन साधना करना पड़ेगी। जिसको आप साधना नहीं मानते हो, आज से तुमको महसूस होगा कि यह बहुत बड़ी साधना है। नीरस करना भी साधना है, उपवास करना भी साधना है, एकासना करना भी साधना है। लेकिन उन सब साधनाओं को तुम मुनिराजों से ग्रहण कर लेते हो। आचार्यभगवन् के पादमूल में श्रीफल चढ़ाकर व्रत ले लेते हो—महाराज! आज से नियम लेता हूँ, कि पर्युषण के दस दिन उपवास करूँगा। रोहणी व्रत का पालन करूँगा। रत्नत्रय धर्म का पालन करूँगा। लेकिन ज्ञानियो! आज से तुम एक श्रीफल और लेकर आना और कहना कि मैं आज से नियम लेता हूँ कि सत्त्वेषु मैत्रीं व्रत का पालन करूँगा। भैया! सबसे कठिन कोई व्रत है तो 'सत्त्वेषु मैत्रीं' व्रत का पालन करना है। प्राणिमात्र के प्रति मैत्रीभाव रखूँगा। मैं नहीं करूँगा भेद कि यह एकेन्द्रिय है। जाति की अपेक्षा भेद नहीं करूँगा। यह एक इन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय, पाँच इन्द्रिय, यह पाँच जातियाँ सिद्धांत में हैं, लेकिन जीवत्व की दृष्टि से आप कौन-से जीव की दृष्टि से करुणा नहीं करना चाहते हैं? कौन-से जीव के प्रति आप अशुभ भाव रखना चाहते हो?

अहो मुमुक्षुओ! **जगत् के लोग तो अपने आम्नाय/पंथ को चलाने के लिए अस्त्र का भी प्रयोग करना जानते हैं, लेकिन जैनदर्शन कहता है कि अस्त्र को नाश करके, शस्त्र को समाप्त करके, प्राणिमात्र को करुणा की दृष्टि से देखने लग जाना, यही जैन- दर्शन का धर्म है।** भेद दृष्टि तो यहाँ है ही नहीं। सामायिक के पहले सत्त्वेषु मैत्रीं। शायद अपने जीवन में कभी सामायिक विधि पढ़ी हो। भैया! जब-जब सामायिक में बैठा जाता है, तब-तब कहा जाता है कि-

समता सर्वभूतेषु संयमः शुभभावना।
आर्त्त-रौद्र परित्यागस्तद्धि सामायिकं मतं॥

संसार के प्राणिमात्र के प्रति मेरा समता साम्यभाव है, आर्त्त-रौद्र ध्यान का त्याग करता हूँ। ऐसी प्रतिज्ञा करके जो लीन हो रहा है, उसका नाम सामायिक है। हाथ में माला होने पर भी, मुख में मंत्र चलने पर भी, भावों में यह चल रहा है कि क्या करूँ? मेरे सामने मेरा नौकर सेठ बन गया और मैं वहीं-का-वहीं हूँ। मेरे घर में काम करने वाला आज मालिक बन चुका है। मेरा शिष्य मेरे सामने घूमता था, आज उसका लोक में नाम हो रहा है। मैं क्या करूँ? मेरे सामने एक क्षुल्लक ब्रह्मचारी के रूप में रहता

था, आज इतना ऊँचा स्पर्श कर रहा है। हाय! मैं क्या करूँ? मेरे मित्र तुमने धर्म को नहीं देखा, आपने बाह्य कर्म को ही देखा है।

अवगाहना में अवगाहित है। अवगाहित अवगाहना नहीं है। देह का स्थूलपना देह का वृद्धिमानपना देह का लघुपना, यह आत्मा की अनुभूति में अंतर डालने वाला नहीं है। देह की अवगाहना से आप आत्मा की अनुभूति को मानोगे तो 7 हाथ के वर्द्धमान और 500 धनुष के ऋषभदेव। यदि आप धर्म को अवगाहनाओं/कदों में देखोगे तो हे मित्र! आप तीर्थंकरों में भेद कर लोगे। अवगाहनाओं में धर्म नहीं है। वाणी में भी धर्म नहीं है।

दो गोरे दो साँवले, दो हरियल दो लाल।
सोलह कंचन वर्ण हैं, दीनानाथ कृपाल॥

यह वर्ण की व्याख्या है, यह गुणों की व्याख्या नहीं है। रंगों को देखकर भगवानों में भेद मत कर लेना। बहुत अच्छा हुआ भगवान् मुनिसुव्रत और नेमिनाथ स्वामी साँवले थे। नहीं तो बेचारे साँवले जीवों को तो कोई यहाँ बैठने ही न देता। कम-से-कम यह लोग ऐसा कह तो पायेंगे कि देह को मत देखो। **देह का गोरापन देह का कालापन बंध या मोक्ष में कारण नहीं है। भावों का गोरापन और भावों का कालापन यह बंध/मोक्ष में कारण है। ममत्व बंध का कारण है। निर्ममत्व निर्बंध का कारण है।** संक्षेप में यही बंध-मोक्ष की परिभाषा है। **"बध्यते मुच्यते जीवः सममो निर्ममः क्रमात्"** क्रम से बंधता है, मुक्त होता है। बंध से बंधता है, ममत्व से बंध को प्राप्त होता है और निर्ममत्व से छूटता है। यही संक्षेप में बंध मोक्ष की व्याख्या है।

"सत्त्वेषु मैत्रीं" समझ में आ रहा है? क्या पंचपरमेष्ठी के पादमूल में श्रीफल भेंट करके व्रत ले सकते हो? हेतु की खोज करो कि धर्म की व्याख्या प्रारंभ करते ही सत्त्वेषु मैत्रीं सूत्र को सबसे पहले क्यों रखा। जो मैत्रीभाव है, वह आपके हार्मोन्स को बदल देता है। विश्वास मानिये। यह जो **जैनदर्शन है, वह विश्व का सबसे बड़ा वैज्ञानिक दर्शन है।** वैद्य, डाक्टर, रसायनशास्त्री, प्रोफेसर जितने भी बैठे हों, ध्यान दो मैं क्या कह रहा हूँ। **मैत्रीभाव हार्मोन्स बदल देता है। संक्लेशता से रोग बढ़ता है। विशुद्धि से रोगों का शमन होता है। जितने रोगी हैं, सब संक्लेशी हैं।** वह संक्लेशता व्यक्त हो, या अव्यक्त हो। कुछ मानी जीव होते हैं तो अपनी संक्लेशता व्यक्त नहीं कर पाते

हैं। कुछ अज्ञानी जीव होते हैं, वे जल्दी ही अपनी संक्लेशता व्यक्त कर देते हैं। अहंकार में व्यक्ति बहुत सारे दु:खों को भी पी लेता है और विवेकहीनता में अपने दु:ख-सुख दोनों को व्यक्त कर देता है। जो अपने दु:ख-सुख को शीघ्र व्यक्त कर देता है, वह लोक में हीनता को प्राप्त होता है, लोक की दृष्टि में अच्छा नहीं गिना जाता है। सुख आ जायेगा तो तेरी कोई हँसी करने वाला नहीं मिलेगा और तुमने यदि दु:ख नहीं पिया, चिल्ला भी दिया है, तो दु:ख तो चला भी जायेगा, लेकिन तुम्हारा इतिहास बचा रह जायेगा कि मालूम है तुम धैर्य को कैसे छोड़ देते हो?

मित्रो! पूछना सीता से, पूछना राम से। बड़े भाई को राज्य न दिया जाय और छोटे भइया को राज्य दिया जाय तब भी बिना विकल्प के ही नगर छोड़कर अन्यत्र चले जाना, यह बहुत बड़ी समता है। मैं जो आपसे कहना चाह रहा हूँ, उस पर ध्यान दो। जैसे उपवास, व्रत आदि साधना को साध लेते हैं। प्यास तो लगती है, भूख तो लगती है। झूठ नहीं बोलना। यदि तुम कहो कि उपवास के दिन भूख-प्यास नहीं लगती है, तो तुम्हारा उपवास नहीं है। आप तीर्थंकर नहीं हो, सामान्य जीव हो। उपवास के दिन समय पर भूख-प्यास तो लगती है, लेकिन आप अपने पुरुषार्थ से पानी नहीं पीते हो, भोजन नहीं करते हो और चित्त को बड़ा प्रसन्न रखते हो। अपने आप को हल्का महसूस करते हो कि आज मेरा उपवास है। जैसे उपवास को आपने साधा, भूख-प्यास को झेला, कि नहीं झेला? बड़े प्रीतिपूर्वक, आनंद के साथ। संक्लेशता नहीं बरती। जैसे हम उपवास के दिन भूख-प्यास की पीड़ा की वेदना को वेदक भाव से देखते हैं, क्लेश भाव से नहीं देखते हैं, ऐसे-ही सच्चा धर्मात्मा जो होता है, वह सामने वाले की उन्नति को देखकर वेदक भाव से देखता है, ईर्ष्याभाव से नहीं देखता है। यह साधना प्रारंभ करना पड़ेगी। देह को तो साध लिया आपने, भावों को और-साधो। **दूसरे के पेट भरने की सामग्री को तो आप छोड़ देते हो, पर दूसरे की पेटी देखकर बिलखते हो।** यह साधना और प्रारंभ करो, बिलखना बंद करो। मेरे ईर्ष्या करने से सामनेवाले का अहित होता है क्या? नहीं होता है। ईर्ष्या करते ही स्वयं में दु:ख होता है कि नहीं होता है? जीव अपने दु:ख को दु:ख महसूस नहीं कर पा रहा है। अब जो मैं कहने जा रहा हूँ उसे कहने की ताकत शब्दों में नहीं है। ध्यान दो, अब मैं जिस बात को बता रहा हूँ, शब्द बहुत छोटे हो रहे हैं। यानि **आपके पास अनंतसुख है, अनंत आनंद है। उस अनंत**

आनंद को अनंतसुख को हम पर के इन्द्रियसुख को देखकर दुःख में बदल रहे हैं। पर के कर्म की प्रकृतियों के यश-अपयश को निहार कर, पर के कर्म- नोकर्म को निहार कर हम अपने आप को संक्लेशित करके दुःखमय जीवन पूर्ण कर रहे हैं।

पहले आप अपने अंदर द्वैत की खोज करो। द्वैत में फिर अद्वैत को निहारिये! भावों को साध्य कीजिए। भावों को साध्य बनाकर फिर परमसाध्य निज के भगवान् को कीजिए। निज भाव और निज भगवान्, इन दोनों में द्वैत्य भाव है। स्यात् अद्वैत भाव है। भाव भगवान् नहीं है, भावी भगवान् में भाव है। जो भगवत् पर्याय को प्राप्त हो रहा है, हो चुका है, वह भवातीत है। भावातीत है। **जो भावातीत होता है, वही भवातीत हो पाता है। पहले भवातीत नहीं होता है, पहले भावातीत होता है। मैं भवातीत होने के लिए भावातीत होने की साधना कर रहा हूँ।** अज्ञानी लोगों ने भावातीत होने की साधना पर दृष्टि नहीं डाली, पर द्वैत के सामने नाच-गाकर चले गये। कोई द्रव्य चढ़ा कर चला गया तो कोई द्रव्य उठाकर चला गया। जिसको हम द्रव्य चढ़ा रहे थे, उस भवातीत को द्रव्य चढ़ा रहा हूँ। भाव का अभाव करने वाले साधक के लिये द्रव्य चढ़ाते हैं। जो भव और भाव दोनों से ग्रसित हैं, उनको द्रव्य नहीं चढ़ती। देखो भाषा में और विषय में कठिनता है।

मित्रो! भवातीत की साधना नहीं होती है। भवातीत तो साधना का फल है। भावातीत होने की साधना होती है। आत्मा और भाव इन दोनों में अंतर है। जो भाव आ रहे हैं, जा रहे हैं, वह आत्मा में हैं। परिणाम आत्मा में हैं, आत्मा के हैं, आत्मा से हैं। आत्मा के लिए हैं। आत्मा में ही हैं। अभेद वृत्ति, संसार दशा में जब तक जीव है। तब तक आत्मा ने भाव किए, आत्मा को भावित किया है। आत्मा के द्वारा भावित किया है। आत्मा के लिये भावित किया है। आत्मा से भावित किया है। आत्मा में भावित किया है। अभेद कारक। मेरा सभी वक्ताओं, श्रोताओं से स्पष्ट कहना है कि जैनदर्शन की गूढ़ता को समझना है तो आपको व्याकरणशास्त्र, न्यायशास्त्र समझना ही पड़ेगा। आप चाहो कि मैं हिन्दी पढ़कर काम चला लूँगा, लेकिन आप गूढ़ता तक नहीं पहुँच पाओगे। यहाँ भाव और आत्मा में एकत्व दिखाया, लेकिन भाव आत्मा में स्यात् भिन्नत्व है। यदि आत्मा में भाव एकत्व ही हो गया, तो सिद्धों को भी भाव स्वीकारना पड़ेगा। आत्मा में भाव त्रैकालिक हो गया, स्वभावभूत हो गया, तो आत्मा का भाव

सिद्धों में भी होगा। इसलिए परमात्मा जो है, भावातीत का फल है। औपशमिक, क्षायोपशमिक, क्षायिक, औदयिक, पारिणामिक यह पाँच भाव हैं। यह पाँच भाव जो हैं, वह संसारदशा है। पारिणामिक भाव भी संसारदशा है। आपकी चिंतन दशा में यह चलता है कि पारिणामिक भाव में कोई भी बदलाव नहीं होता है। इसको थोड़ा सुधारिये। पारिणामिक भाव के दो भेद हैं। एक शुद्ध पारिणामिक भाव एक अशुद्ध पारिणामिक भाव। जो शुद्ध पारिणामिक भाव है, उसका नाम है परम पारिणामिक भाव।

संसार दशा में जो जीव का परिणमन चल रहा है, यह अशुद्ध पारिणामिक की सत्ता में चल रहा है। परिणाम को यदि अशुद्ध नहीं मानोगे और यदि परिणाम को परिणमनशील नहीं मानोगे, तो भव्यत्व भाव व अभव्यत्व भाव का अभाव हो जायेगा। अब ध्यान देना, एक भव्यत्व भाव वह है जो सिद्ध बनाने की सामर्थ्य रखता है। जो नहीं रखता है, वह अभव्यत्व है। मैं इसकी व्याख्या नहीं कर रहा हूँ। मैं 21 भावों की व्याख्या कर रहा हूँ। इस गूढ़ विद्या को समझना है।

मित्रो! ऐसे गूढ़-गूढ़ रहस्य भरे हुए हैं, यदि उन रहस्यों को हम नहीं समझ पायेंगे तो मात्र देव, शास्त्र, गुरु की पूजा करते रहोगे और पहले गुणस्थान में बैठे रह जाओगे। हाँ, ऐसा ही है। जिस भव्यत्व, अभव्यत्व की व्याख्या मैं कर रहा हूँ, भव्यत्व का अर्थ है परिणमनशीलता, अभव्यत्व का अर्थ है अपरिणमनशीलता। तो द्रव्य जो है, वह परिणमनशील है कि अपरिणमनशील है? अब उस द्रव्य में आपका चैतन्य द्रव्य भी है। मैं तो चैतन्य धातु स्वरूप हूँ। मेरा द्रव्य तो चैतन्य धातु है। तो जो चैतन्य धातु है, वह परिणमनशील है कि अपरिणमनशील है? ज्ञानियो! परिणमनशील भी है, अपरिणमनशील भी है। यदि आप अपरिणमनशील ही मानते हो, तो तुम कूटस्थ हो जाओगे। फिर जो जीव नारकी होगा, वह नारकी ही रहेगा। देव होगा, देव ही रहेगा। मनुष्य होगा, मनुष्य ही रहेगा। तिर्यंच होगा, तिर्यंच ही रहेगा। फिर पाप-पुण्य रूप क्रिया न स्यात्। क्यों पुण्य करना, क्यों पाप को छोड़ना? कुछ नहीं होगा। जो जिसमें है, वह वही होगा। आपको मालूम है, एक नया पंथ अपने देश में चल रहा है। उसका सिद्धांत है कि नरक से नरक ही जाता है, स्वर्ग से स्वर्ग ही जाता है, देव से देव ही बनता है, पशु से पशु ही बनता है। जब ऐसा नियत हो ही चुका है, तो धर्म करने की क्या जरूरत है? तुम तो मनमानी करो, तुम्हारा तो नियत है। **"पुण्य पाप क्रिया न स्यात्"**

उनके यहाँ पुण्य-पाप क्रिया घटित नहीं होती है। इसलिए गूढ़ रहस्य है। कभी मधुर भाषा में आकर सिद्धांत के विपरीत कुज्ञान मत कर बैठना। जहाँ लोक के दर्शनों की इति हो जाती है, वहाँ वीतराग जिनशासन का प्रारंभ होता है। महान् आचार्यभगवंतों की नैयायिक दृष्टि को झेलने के लिए बहुत ताकत चाहिए। साथ-ही उसका नियंत्रण भी करना, नहीं-तो अकंलक स्वामी वह तो मटका फोड़ने वाले आचार्य हैं।

ज्ञानियो! जो अभव्यत्व ही मानते हैं, अपरिणमनशील ही मानते हैं, तो नित्य-एकांत हो जायेगा और यदि आप भव्यत्व ही मानते हो, तो अनित्य-एकांत ही हो जायेगा। वहाँ भी पुण्य-पाप तुम्हारा घटित नहीं होगा। क्षणिक-क्षणिक में चला जाएगा। इसलिए द्रव्य, स्वपरिणाम की अपेक्षा से परिणमनशील है। द्रव्य परपरिणामभूत कभी परिणत नहीं होगा, इसलिए परिणमनशील है। द्रव्य स्व-स्वभाव में परिणमशील है। द्रव्य परभाव से कभी परिणत नहीं होगा, इसलिए अपरिणमनशील है। चेतन चैतन्यभूत ही परिणमन करता है। अचेतन अचेतनभूत ही परिणमन करता है। अचेतन कभी चेतनभूत परिणमन नहीं करता। चेतन अचेतनभूत परिणमन नहीं करता, इसलिए अपरिणामी है।

आप लोगों के मन में एक प्रश्न आना चाहिए कि महाराज श्री! आत्मा की साधना रत्नत्रय की आराधना में लीन हो जाना चाहिए। आप जो व्याख्या कर रहे हो, वह दुरूह व्याख्या समझ में आ रही है। इसका मोक्षमार्ग में क्या प्रयोजन? ऐसा प्रश्न करना चाहिए।

यदि यह दुरूह व्याख्या नहीं समझोगे, तो ज्ञानियो! शुक्लध्यान के लिए और तत्त्व-निर्णय के लिए, अन्तरंग के मिथ्यात्व का शमन करने के लिए आपको गहरा निर्णय करना ही पड़ेगा और आत्मसाधना के पीछे जो बाहर के छिलके पड़े हुए हैं, उनको भिन्न करना ही पड़ेगा। मैं मोक्ष की साधना में लीन हो गया और एक जीव आया कहता है कि महाराज श्री! आशीर्वाद दे दो, मेरी दुकान चलने लग जाय। मैंने शुभाशीष दे दिया, उसका पुण्य था, उसकी दुकान चलने लग गयी। अब वो पुनः अगले दिन श्रीफल लेकर आ गया महाराज! आपके प्रसाद से मेरी दुकान खूब चल रही है। अब महाराज के भीतर हल्की मुस्कराहट आ गयी। आहा! मेरा आशीर्वाद फलित हो गया। स्वामी! भवातीत साधना में तुम उतर रहे थे, कहाँ तुम इसमें डूब गये? उस जीव का लाभान्तराय कर्म के क्षयोपशम से काम बन गया है। वह तो आपके चरणों में श्रीफल चढ़ाकर मांगलीक आशीष लेने आया था, आपको तो बस धर्मवृद्धि कहना था और उसको भूल

जाना चाहिए था। यदि तुम्हारे मन में ऐसा भाव आ गया कि मेरे आशीर्वाद से इसका काम हो रहा है, तो तुम्हारे अंदर साँख्य का ईश्वर कर्तृत्ववाद अभी तक बैठा हुआ है, तुम जैनत्व से शून्य हो गये हो। कदाचित कुछ कहना भी पड़े तो तुरंत भूल जाना चाहिये। आगम में आचार्यों ने मुनियों के लिये यह आदेश दिया है। निर्ग्रंथों को सामान्य मुनियों के साथ परस्पर में भी बात करने का निषेध किया है। आचार्यों से कहा है कि संघ संचालक के रूप में यदि आपको किसी श्रावक से किंचित् चर्चा करना भी हो तो उसको करके तुरंत भूल जाना।

श्रावकों से कहा कि कोई अत्यंत तत्त्व का निर्णय आपके समझ के बाहर जा रहा है, ऐसे ही प्रश्न योगियों के चरणों में करना, अपने गृहस्थीक विकल्प मत करना, क्योंकि ये भावातीत साधना में उतर रहे हैं, उन्हें तुम संसार में मत डुबो देना। जिस व्याख्या को इस समय आप सुन रहे हो, जो भावातीत दशा है, वह बहुत गहरी है। विभिन्न दर्शनों ने इसकी साधना प्रारंभ की, लेकिन भावातीत दशा की प्राप्ति करेंगे कैसे? जब तक भावना तुम्हारी पवित्र नहीं होगी, तब तक भावातीत दशा में पहुँचोगे कैसे? साधना-पद्धति को कोई भूल गया, कोई आराधना-पद्धति को; जबकि आराधना-पद्धति पर भी ध्यान देना होगा। जैनदर्शन में एक विशेषता यह है कि साधना-पद्धति पर इनकी भोजन की पद्धति प्रबलता रखती है, इसलिये लोग इसको स्वीकार नहीं कर पा रहे हैं। ध्यान दो, अंदर की बात मैं बता रहा हूँ। जैनदर्शन में सबसे कठिन साधना कोई है तो भोजन की है। भोजन की साधना को लोग सहन नहीं कर पाते हैं। कुछ ऐसे भी अज्ञानी जैनदर्शन में हुये हैं जो भोजन की साधना को ढोंग कहके (सोला) शुद्ध भोजन का तो त्याग ही कर दिया। बोले, इतना तुम कुये के पानी में बिलछानी में समय लगाओगे, इतना समय घर की चक्की में आटा पीसने में लगाओगे, उतना तुम स्वाध्याय कर लोगे।

ओहो! आप समझो जो मैं कह रहा हूँ। यथार्थ बात। यानि यह क्या किया प्रमाद से युक्त होकर? आ० अमृतचंद्र स्वामी ने 'समयसार' जी की टीका में इतना सुंदर कलश लिखा है, जिसमें कहा है कि हे प्रमादी! तू शुद्धोपयोग में प्रवेश कर नहीं पा रहा है और शुभ-उपयोग की साधना को छोड़कर, तू प्रमाद में डूबकर, निज की हिंसा कर रहा है। सोला जो है, वह परिणामों की विशुद्धि के लिये है। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव का प्रभाव पड़ता है। इसलिये आपको शुद्ध भोजन करना चाहिये था और करना ही चाहिये। लेकिन कदाचित् असोला हो जाय, तो भावों के सोला का ध्यान रखते हुये

पुनः सोला का कर लेना, परन्तु दूसरे के पीछे निज के परिणामों को असोला करने मत चले जाना।

माँ! विश्वास मानो, मैं आज का ही हूँ। हम सब साधु आपके घरों से आये हैं। माँ! आज के बालकों में कूट-कूट कर धर्म भरा हुआ है। लेकिन आप विश्वास मानिये, ढोंग में सोला होता है तो वह चिढ़चिढ़ा देता है। पर मैं इस भावना वाला हूँ कि सोले का भी होना चाहिये, कुये का ही पानी होना चाहिये; लेकिन कषाय करके नहीं, साम्यभाव से। जितना कुये का पानी शीतल होता है, उतनी शीतलता परिणामों में भी होनी चाहिये।

मयूरपंख लेकर चलने वालों से मेरा स्पष्ट कहना है कि **जितने कोमल यह मयूरपंख हैं, उतने कोमल तुम्हारे परिणाम भी होना चाहिये। यह आँख में चला जाय तो कुछ नहीं होता, इतना ऋजु है। यदि वक्र परिणाम रहे, तो मयूरपंख से कल्याण होने वाला नहीं है।** वक्र परिणाम रहे, तो सोले की रोटी खाने से भी कल्याण होने वाला नहीं है। पर ध्यान रखना, जब भी कल्याण होगा, तो सोले की रोटी से ही होगा। मयूरपंख लेने से ही होगा।

बड़ा पुण्य का नियोग रहा है कि जब से मैंने 'अ' लिखना सीखा, तबसे अनेकांत सीखा है। 'अ' यानि आदिनाथ, अ=अनादि सिद्ध, अ अर्थात् अनेकांत। 'अ' में विश्व विराजता है। जिनवाणी की व्याख्या में चले जाओ तो दूसरा विषय निकलता है। अभी तो भावातीत पर आओ। "भावातीत" होने की साधना करो। धीरे-धीरे साधक अपने भावों को अशुभ से रोकते हैं। भावों की साधना चल रही है। अशुभ से रोककर अपने भावों को बुद्धिपूर्वक शुभ में स्थापित करते हैं। फिर संतुष्ट नहीं होंगे, अभी भगवान् दिखेंगे, गुरु दिखेंगे, पर यह भी परगत तत्त्व हैं। ऐसा स्वीकारते हुये इनका अनादर नहीं करेंगे, अश्रद्धा नहीं लायेंगे। इनके प्रति प्रमाद भाव भी नहीं लायेंगे। एक विशिष्ट बात को समझना। अध्यात्म की बात को लोग क्या समझ लेते हैं कि इनको छोड़ रहे हैं। इस भ्रम को आज निकाल देना।

भैया! कभी जीवन में सम्मेद शिखर गये? मेरे मित्र! विदिशा छोड़ कर गये थे? कि सम्मेद शिखर गये थे? द्वेष-राग दोनों हो सकते हैं। आपके तो सिद्धभूमि की वंदना के परिणाम थे। आप विदिशा न भी छोड़ते तो काम चलता। आप तो सम्मेद शिखर चले जाते। विदिशा छूटा कि नहीं? विदिशा आपने छोड़ा क्या? नहीं छोड़ा? बस, ठहर

जाओ। ऐसे-ही जो उपरिम साधना है, उस उपरिम साधना में नीचे की साधना को छोड़ा नहीं जाता है। ऊपर की साधना में बढ़ा जाता है, नीचे की साधना पीछे रह जाती है। साधना छोड़ी नहीं है, साधना को बढ़ाया है। ऐसे-ही जो निश्चय स्वरूप में जाता है, वह व्यवहार को छोड़ता नहीं है, वे अज्ञानी लोग हैं जो व्यवहार को छोड़कर निश्चय में जायेंगे। फिर तो ऐसा होगा कि पहले मुनि बनाना, फिर कपड़े पहनना, फिर निश्चय में जाना, क्योंकि व्यवहार छोड़ना पड़ेगा।

ज्ञानी! निर्ग्रंथ बनकर जब निश्चय में लीन हो जायेगा, तब पिच्छी-कमण्डल व दिगम्बर भेष का भी भान नहीं रहेगा, स्वरूपलीनता होगी। वह परम साधना है। इसमें कभी शंका तो करना ही नहीं है कि भवातीत होने के लिये भावातीत तो होना ही पड़ेगा। यदि वीतरागी दिगम्बर दीक्षा लेने के बाद भी भावातीत पर लक्ष्य नहीं जाता है तो अभी तुम्हारी भवावलियाँ बहुत हैं। बहुत लंबी हैं। नहीं जा पा रहा है। चाक्षुष साधना अनंत बार कर चुका है, अचाक्षुष साधना भी करना होगी।

ओहो! काम कम हो जाता है, वेतन बढ़ जाता है। क्या गजब है। क्यों भाई वकील साहब! बड़े वकील से छोटे वकील को ज्यादा काम करना पड़ता है और फिर जज को और-कम काम करना पड़ता है, लेकिन वेतन बढ़ जाता है। एकांत में जज से मिलना कि जज साहब को टेंशन ज्यादा है कि वकील को ज्यादा है? मानसिक कार्य की कीमत अधिक है। ज्ञानियो! उसका विपरीत अर्थ मत लगाना। प्रायश्चित्त ग्रंथों में आचार्यों का प्रायश्चित्त कम होता है। मुनियों का अधिक होता है। अब माना कि कोई व्यक्ति ऐसा सोच बैठे कि आचार्य प्रायश्चित्त नहीं लेते होंगे, भाई! ऐसा मत मानना। बोले कि उनका काम हो गया, वह तो आसन पर बैठ गये। यह भूल मत कर बैठना। यह मुनिराज तो मात्र स्वयं के पंचाचार का पालन करते हैं, जबकि उन आचार्य को स्व-पर का पंचाचार पालन करना और करवाना है। स्व-पर के व्यवहार पंचाचार का पालन तो कोई भी करके बैठ जायेगा, पर निश्चय के पंचाचार का पालन की साधना में लीन हो रहे हैं। यह आचार्य का परमधर्म है। यदि आसन और सिंहासन मात्र के लिये आचार्यत्व स्वीकारा है, तब तो लौकिकता में नेता आदि के जो पद होते हैं उनमें और आप में कोई अंतर नहीं है। आप निज को सँभालते हैं तो तुम्हारे नियोग से अनेक भव्य कल्याणमार्ग पर लग रहे हैं। आचार्य पद कोई पाप नहीं है। बहुत बड़ा पुण्य कार्य हो

गया कि तुम्हारे नियोग से इतने और-जीव कल्याण पर लग रहे हैं।

ज्ञानी! गृहीलिंग व पाखण्डी लिंग, यह देहाश्रित हैं। आत्मतत्त्व की लीनता ही मुनिधर्म है। उसी में समाधि होगी। इसलिए सिंहासन को छोड़ना ही पड़ेगा, संघ का त्याग करना ही पड़ेगा। राजमार्ग यह है कि अपना पद छोड़कर, योग्य शिष्य को पद देकर, अन्य गण में जाकर, समाधि लेना। यह आगम की व्यवस्था है। (भगवती आराधना) यानि कितनी निस्पृहता होती है निर्ग्रंथों में। जिसको शुरू से ही पढ़ाया, लिखाया, इतना बड़ा किया और आचार्य पद दे दिया, तब भी कह रहे हैं कि मैं संघ में से जा रहा हूँ। पर गण में जायेंगे क्यों? आपके यहाँ रहूँगा तो आपका मेरे पर अनुराग रहेगा। मेरी गलती को तुम बता नहीं पाओगे, क्यों? गुरु को कैसे डाँट सकता हूँ? इसलिए परगण में चले जाते हैं। तब इस शरीर के रोंगटे खड़े हो जाते हैं। जब कह रहे हैं बेटे! जैसे धर्ममार्ग को मैंने चलाया है, वैसे ही तुम चलाना। संघ को, शिष्यों को वात्सल्य के साथ रखना, खींचना मात्र मत। इसलिए ज्ञानी! ध्रुव सत्य है, आगम आपसे भी कहेगा कि घर नहीं छोड़ पाये तो कोई बात नहीं है। वृद्ध-अवस्था को आते देख आपको अपनी सम्पत्ति को चार भागों में विभाजित कर देना चाहिए। चार भाग करके चतुर्विध आराधना में लीन हो जाना चाहिए, क्योंकि आयु संकेत कर रही है। चार भाग कैसे करें? एक भाग अपने परिवार को दे दें जिनके बीच में रह रहे हो। एक भाग तीर्थ और दान में लगा दें। एक भाग दया दत्ति में लगा दें। जो दीन-हीन हैं, उनको दे दिया। जो एक भाग है, वह समदत्ति में देना चाहिए। **कोई जैन परिवार है और धर्मात्मा है, धन के अभाव में तड़प रहा है, उसको अपने समान कर लेना, इसका नाम समदत्ति है।** आज जैनी इसको भूल चुके हैं। जैसे कि एक गरीब रिक्सा ढो रहा है अथवा दूसरी जगह काम कर रहा है और हम देखते रहें। इन बातों पर भी चिंतन कर लिया करो।

जो सुन्दर मन के धारक मानव सर्व प्राणियों में दया और मैत्री भाव रखता है, वह बाह्य और अभ्यन्तर में स्थित सर्व शत्रुओं को जीत लेता है।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।



धर्मोपदेश से कर्मनिर्जरा

शमं नयन्ति भूतानि ये शक्ता देशनाविधौ।
कालादिलब्धि-युक्तस्य प्रत्यहं तस्य निर्जरा॥ 262॥

अन्वयार्थ—(ये देशनाविधौ शक्ताः) जो धर्मोपदेश देने में लीन हैं **(भूतानि शमं नयन्ति)** वे प्राणियों को शांतभाव में ले आते हैं **(कालादिलब्धि युक्तस्य तस्य)** उस महात्मा के काललब्धिके होने पर जब स्वात्मानुभव की अधिक जागृति होती है तब उसके **(प्रत्यहं निर्जरा)** सदा ही कर्मों की निर्जरा होती है।

भावार्थ—जो स्वयं शान्तपरिणामी हैं और दूसरों को धर्मोपदेश देकर शांत भाव में लाने का उपदेश देते हैं, वे मैत्री, दया और प्रज्ञा को रखते हुए जब-जब आत्मध्यान में मग्न होते हैं तब-तब उनके कर्मों की विशेष निर्जरा होती है। कषायों का शमन ही ध्यान की सिद्धि का कारण है, ध्यान से ही कर्म झड़ते हैं।

॥ सद्-देशना ॥

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रंथराज सारसमुच्चय जी में वस्तुतत्त्व की व्याख्या करते हुए समझा रहे हैं कि—जीवद्रव्य का लक्षण ज्ञान है। ऐसा कोई समय नहीं है जिस काल में आत्मा ज्ञानत्व से शून्य हो। जो त्रैकालिक सहभावी है, वह आत्मा का ज्ञानगुण है। पर्याय बदलती रहेंगी, अवस्थायें बदलती रहेंगी, यहाँ तक कि ज्ञान का परिणमन होता रहेगा। ज्ञान गुण है और गुण की पर्याय परिणमनशील है। परिणमन होना वस्तु का धर्म है। परिणमन के काल में परिणामी को समझना ज्ञानी का कार्य है। जैसे-एक चक्र चल रहा है। चक्र के चलते-चलते प्रतिक्षण परिणमन चल रहा है, लेकिन ज्ञाता जहाँ खड़ा है, वहीं है और जिस धुरी पर चक्र चल रहा है, वह धुरी वहीं है। इसी प्रकार से पर्याय प्रतिक्षण बदल रही है, पर्याय में प्रतिक्षण परिणमन हो रहा है, लेकिन पर्यायी वही है। कैवल्य को प्राप्त करने वाला जीव द्रव्य-गुण-पर्याय को जानता है और द्रव्य-गुण-पर्याय को जानते-जानते एक ऐसी अवस्था में पहुँच जाता है कि मात्र द्रव्य के द्रव्यत्व पर उसकी दृष्टि टिक जाती है। बदल सकते हो, पर बदल नहीं सकते। स्थिर होकर सुनना। कितने ही बदल गये, फिर भी नहीं बदले। **पर्याय बदल सकती है, परिणाम बदल सकते हैं, परन्तु जिस द्रव्य में पर्याय व परिणाम बदल रहे हैं, वह द्रव्य नहीं बदलता**

है। शिशु से आप युवा हुए, युवा से प्रौढ़ हुए हो, लेकिन आप वही हो। बदले तो हो, परन्तु बदले नहीं हो। यह द्रव्य का ध्रुव स्वभाव है। द्रव्य बदलता तो है, परन्तु निज परिणाम में ही परिणमन करता है। द्रव्य कभी परभूत होकर नहीं बदलता है। तटस्थ होकर मध्यस्थ होकर ज्ञाता सद्ध्यान में लीन होता है और सद्ध्यान में लीन होकरके विचारता है कि कभी दूसरे का ध्यान किया, कभी परमेष्ठी का ध्यान किया, परमात्मा का ध्यान किया, ये सम्पूर्ण ध्यान परभूत थे। जितना समय आपने भगवान् के ध्यान में लगाया है और धर्मात्मा को लगाना ही चाहिए, परन्तु ज्ञानियो! भगवान् का ध्यान करते-करते तुम अनन्त भव निकाल चुके हो, एक बार तुम उसका ध्यान करलो जिसने अरहन्तों का ध्यान किया है, जिसने निर्ग्रन्थों का ध्यान किया था।

वे मुनीश्वर जो दीक्षा को प्राप्त हुए हैं, दीक्षा के बाद काम क्या है? क्षीण कर रहे हैं कर्मों को और अन्तस् के परमपारिणामिक भाव को भी खीर बना रहे हैं। ये योगी की अन्तरङ्ग पुरुषार्थ धारा है। बहिरङ्ग-मुनि। शरीर का मुनि चाक्षुष होता है, अन्तरङ्ग का मुनि अचाक्षुष होता है। जिस योगी को आप देख रहे हैं, वे शरीर के मुनि विराजे हैं। जो मुनि हैं, वे भावों के मुनि हैं। **केवलज्ञान शरीरमात्र के मुनि को नहीं होता है, वह शरीर सहित भाव-मुनि को होता है। अद्भुत धारा है योगी की और अद्भुत धारा है योगी के योग की।** युवा भी बूढ़ा हो चुका हो और युवावस्था में वृद्धों-जैसा जीवन प्रारम्भ हो जाये, उसका नाम जैन-श्रमण है। शरीर युवा रहे, कषायें वृद्ध हो जायें। शरीर युवा रहे, साधना वृद्ध हो जाये। जिनके मन न मचलें, जिनकी भावनायें भव की ओर न जायें, जिनकी भावनायें भवातीत की ओर जायें। श्रावको! बहुत सारे ऐसे विषय हैं जो आप मूक होकर जानते हो। जाना तो मूक होकर ही जाता है, बोलकर सुनाया जाता है। अभी आप जान ही तो रहे हो। जो आप जान रहे हो, वही भविष्य में दिव्य-ध्वनि का कारण बनेगा। जिस ध्वनि को अभी आप सुन रहे हो, मात्र कानों से सुन रहे हो। यही ध्वनि आपके अन्तस् में प्रवेश कर जायेगी और चारित्र गुण से मण्डित कर देगी, तो वही ध्वनि तुम्हारे सर्वाङ्ग से केवलध्वनि केवली की वाणी के रूप में खिरेगी। इसलिए प्रवचन के काल में कोटि-कोटि काम लगे हों, सब छोड़कर बैठ जाओ। धर्म श्रुत है। श्रुत नहीं है, तो कोई धर्म नहीं। "केवली-पण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि" धर्म श्रुत है। श्रुतज्ञान से कैवल्य को कैसे उद्घाटित करते हैं वे योगी? तरल पानी को कठोर होते देखा क्या?

तरल पानी भी कठोर हो जाता है और बहता दूध भी कठोर हो जाता है, सघन अवस्था को प्राप्त हो जाता है। पानी जब शीतलता की चरम सीमा में पहुँचता है, तो पानी बर्फ के रूप में हो जाता है। इस पौद्गलिक विषय को समझ करके आत्मिक विषय पर चलो। बहता पानी जिसे लोटे में भर दिया, उसे हाथ में लेकर चला जाता है। बहता पानी कठोर हो गया, बहता दूध दही के रूप में थक्का बन गया। जामन लगते ही दूध थक्के के रूप में आ गया। शीतलता मिलते ही पानी बर्फ के रूप में कठोर हो गया।

पानी जब संगठित हो सकता है, कठोर हो सकता है, ऐसे ही वास्तव में मुनि बनना कोई बलाय नहीं है, मुनि बनना एक साधना है। एक फैक्टरी है जैसे बर्फ की। बर्फ फैक्टरी से निकलती है क्या? **मशीनों से बर्फ नहीं निकलती, मशीनों के नियोग से बर्फ बनती है। बर्फ तो पानी है। ऐसे ही भगवान् किसी फैक्टरी से निकलते नहीं हैं। जैसे बर्फ को बनाने की प्रक्रिया मशीन में है, ऐसे-ही भगवान् बनाने की प्रक्रिया दिगम्बर मुद्रा में है, ये मशीन है।** आपको इस रहस्य का ज्ञान होना चाहिए-गाय का पेट मशीन है क्या? आपका पेट मशीन नहीं है क्या? है। दूबा-घास में दूध होता है, भूसा में दूध होता है, यह परम सत्य है, लेकिन यदि बैल को खिलाओगे तो नहीं निकलेगा, तुम खा लो तो नहीं निकलेगा, गाय खायेगी तभी निकलेगा। दूध रूप परिणमित कराने की सामर्थ्य गाय के अन्दर ही है। ऐसे-ही मोक्षमार्ग में साधना के द्वारा परमात्मा बनने की ताकत निर्ग्रन्थ मुद्रा में ही है, अन्य किसी मुद्रा में नहीं है। 'मैं भी तो आत्मा हूँ।' हाँ, हो आत्मा। बैल भी तो आत्मा है। सिमइयों की मशीन अगल होती है और फैनी की मशीन अगल होती है, परन्तु दोनों आटे के बनते हैं, फिर भी दोनों के स्वाद अलग होते हैं। खाने की शैली भी अलग-अलग होती है।

ऐसे-ही कोई कहता है कि हम भी धर्म कर रहे हैं, आप भी धर्म कर रहे हैं, हम दोनों का एक ही परिणमन होगा? ज्ञानी! नहीं होगा।

तू कीमत चाहता है? सरसों के दाने जब बिकने आते हैं तो ऐसे फैला-फैला कर देखते हैं मण्डी में। मण्डी में दाने को खोल-खोल कर दिखाया जाता है। ये दाने चमकते दमकते दिखते हैं, वे दाने मुस्कराते हैं अहो! मेरी क्या कीमत है। लोग हाथों में उठा-उठा कर देख रहे हैं। जब तेरा तेल लिकाला जायेगा तब क्या होगा?

जैसे सरसों से स्नेह निकाल लिया जाता है, ऐसे-ही जब तेरे भीतर का स्नेह निकल जायेगा, तब यह जीव भगवान् बन पायेगा। सरसों के दानों को क्यों पिलना पड़ता है? सरसों के दाने कह रहे हैं भैया! सँभलकर रहना, कहीं मेरी-जैसी दशा तेरी न हो जाये। मेरे में स्निग्धता न होती, तो मेरी ये हालत न होती। **जिन-जिन में स्नेह होता है,जिन-जिन में राग होता है, वे सरसों की तरह ही पिलते हैं। रागी पिरता ही है। सत्य यही है कि जहाँ-जहाँ स्नेह होता है, पिलना ही पड़ेगा। जिन-जिन को नहीं पिलना हो, वे भावों को विशुद्ध करें।**

ज्ञानियो! चारों अनुयोगों में वस्तुस्वभाव की प्ररूपणा है। एक-एक अनुयोग जानने मात्र से समग्र ज्ञाता नहीं हो सकता, जब तक चारों अनुयोग का सम्यक् बोध नहीं हो जाता है। तीर्थंकर भगवान् ने श्रावक के बारह व्रतों की प्ररूपणा की है, लेकिन सर्व-प्रथम व्याख्यान का विषय श्रावकाचार नहीं है, श्रमणाचार है। जो उपदेष्टा, **जो उपदेशक मुनिधर्म की व्याख्या करने के पूर्व श्रावक धर्म की व्याख्या करता है, वह दण्ड का अधिकारी है। क्योंकि बिना जैनेश्वरी दीक्षा के आत्मा का कल्याण संभव नहीं है। आत्मकल्याण आत्मा के परिणामों पर आधारित है।** संसार में ऐसा कोई द्रव्य नहीं है जो पापभूत हो। हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह ये पाँच पाप हैं। कोई वस्तु हिंसाभूत नहीं है, असत्य-चौर्य-अब्रह्म-परिग्रहभूत नहीं है। फिर पाँच पाप किस बात के? यही जिनेन्द्र-देशना की महिमा है, कोई वस्तु पाप नहीं है। ये लेखनी पुण्य है कि पाप? पाँच पाप में से कौन-सा पाप है? ये कोई पाप नहीं है। फिर देहाश्रित दिगम्बरत्व को यहाँ मोक्ष का कारण क्यों कहा जा रहा है? जब भी आगम-ग्रन्थों का आलोढन करते हैं तब यही कहा जाता है कि बिना निर्वस्त्र हुए मोक्ष नहीं मिल सकता है। जब संसार में वस्त्र भी पाप नहीं है, जब कोई वस्तु पाप नहीं है, तो दिगम्बरत्व की आवश्यकता क्या है? वस्तु पाप नहीं है, पाप वस्तु में नहीं है। **ज्ञानियो! वस्तुओं को बदलने की चेष्टा मत करो। यदि बदलने की आवश्यकता है तो अपनी दृष्टि को बदलने की चेष्टा करो।** यदि दृष्टि बदल जाती है, तो संसार में कोई वस्तु पापभूत नहीं होती है। तो फिर छोड़ने की आवश्यकता क्या है? **किसी के घात करने के परिणाम हिंसा है। जैसा का वैसा नहीं बोलना असत्य है। बिना आज्ञा के किसी की वस्तु को ग्रहण करना चोरी है। रागभूत परिणामों से देखना अब्रह्म है। परवस्तु के**

प्रति मूर्छा परिग्रह है। पर वस्तु पाप नहीं है, परन्तु पाप के कारण होने के कारण, पाप का निमित्त होने से पाप ही है, नहीं-तो आप मस्त हो जाओगे कि जब परिग्रह पाप ही नहीं होता, तो हम कपड़े-पहने मुनि हो सकते हैं। विश्वास रखना, सूर्य पूर्व का पश्चिम से उग जाये, लेकिन कपड़ेवाला कभी मुनि नहीं हो सकता। वस्त्र के त्याग की आवश्यकता नहीं है, राग के त्याग की आवश्यकता है। **जहाँ-जहाँ वस्तु होगी, वहाँ राग न हो, ऐसा होता नहीं है; परन्तु जहाँ वस्तु नहीं होगी, वहाँ राग हो भी सकता है, नहीं भी हो सकता।** इसलिए राग का हेतु होने से वस्त्र का त्याग करना अनिवार्य है। जहाँ-जहाँ ममत्व है, जहाँ-जहाँ परिग्रह है, जहाँ-जहाँ मूर्छा है, वहाँ-वहाँ विशुद्धि का अभाव है। जहाँ-जहाँ विशुद्धि का अभाव है, वहाँ संक्लेशता का सद्भाव है। **संक्लेश-परिणामी जीव के ध्यान नहीं हो सकता, चित्त की स्थिरता नहीं हो सकती है और ध्यान के अभाव में निर्वाण नहीं हो सकता है।** इसलिए निर्वाण की सिद्धि के लिए चारित्र आवश्यक है और ध्यान की सिद्धि के लिए चारित्र आवश्यक है और चारित्र की सिद्धि के लिए निष्परिग्रह भाव आवश्यक है। परिग्रह के त्याग किए बिना मुक्ति नहीं हो सकती है।

ण वि सिज्झइ वत्थधरो, जिणसासणे जइ वि होइ तित्थयरो।
णग्गो विमोक्खमग्गो, सेसा उम्मग्गया सव्वे॥ अ.पा.॥

भगवान् जिनेन्द्र के शासन में तीर्थंकर भगवंत भी क्यों न हों, वस्त्रधारी की सिद्धि संभव नहीं है। नग्नता ही मोक्षमार्ग है, शेष सभी उन्मार्ग हैं। उन्मार्ग संसार के हेतु हैं। इसलिए अपने जीवन में जब भी निर्वाण प्राप्ति का लक्ष्य बनाओगे तो आपको जैनेश्वरी दीक्षा लेनी ही पड़ेगी। वस्त्र उतारने मात्र से, पिच्छि-कमण्डलु धारण करने मात्र से मोक्ष मत मान बैठना। पिच्छि-कमण्डलु के ढेर-के-ढेर, पर्वत/पहाड़ जैसे लग गये, तब भी निर्वाण नहीं हुआ। पिच्छि-कमण्डलु लेते रहोगे, तब तक मोक्ष नहीं मिल सकता, लेकिन फिर भी जब तक पिच्छि-कमण्डलु नहीं लोगे, तब भी मोक्ष नहीं मिलता। यही निश्चय-व्यवहार दृष्टि है। भेददृष्टि से आपको पिच्छि-कमण्डलु स्वीकार करना ही पड़ेगा लेकिन अभेद दृष्टि से, हे ज्ञानी! पिच्छि-कमण्डलु का राग भी छोड़ना ही पड़ेगा। इसलिए अपने जीवन में जिनको मोक्षमार्ग पर चलने की भावना चल रही है, उनसे भगवान् सर्वज्ञदेव ने कहा है कि **मोक्षमार्गी वही हो सकता है, जो घर की विषमता**

में समता सीख लेगा, वही समाज की विषमता में समता से रह सकता है। जिसको घर की विषमता में समता नहीं है, वह मुनि बनकर भी समता का पालन नहीं कर सकता है। इसलिए सबसे पहले आवश्यकता है कि बेटों-बहुओं की डाँट खाने में समता सीख लो, तो मुनि-आर्यिका बन कर समता से रह सकते हो। घर में ही समता नहीं है वह समाज के बीच क्या कर सकता है? इसलिये आज से तुमको कोई अशुभ भी कहे तो उसके पैर पड़ लेना। हे भावी भगवन्त! ये अशुभ तू नहीं बोल रहा है, तेरा विभाव परिणाम बोल रहा है जीव कभी अशुभ बोल भी नहीं सकता।

दृष्टि में अनेकान्त, चर्या में अहिंसा, वाणी में स्याद्वाद—ये सर्वज्ञदेव की देशना का मूल सूत्र है। स्याद् अस्ति, स्याद् नास्ति, स्याद् अस्ति-नास्ति, स्याद् अवक्तव्य, स्याद् अस्ति अवक्तव्य, स्याद् नास्ति अवक्तव्य, स्याद् अस्ति-नास्ति अवक्तव्य। इसको सप्त भंगी स्याद्वाद कहा है। 'स्याद्वाद' वचन बोलने की प्रणाली है, 'नय' शैली है, 'अनेकान्त' दृष्टि है। दृष्टि में अनेकान्त रहेगा और वाणी में स्याद्वाद रहेगा तो सारे विश्व में सुख शान्ति की प्राप्ति होगी। यही सर्वज्ञदेशना का मूलसूत्र है। मनुष्यपर्याय का उत्तम-कार्य जिनदीक्षा ही है।

ज्ञानियो! श्रुत के पारायण से, श्रुत के श्रवण से, धर्मोपदेश से कर्मों की निर्जरा होती है। जहाँ धर्म का ध्वंस हो रहा हो, वहाँ भव्यों के कल्याण का उपदेश देना ही चाहिए।

जो दिगम्बर मुनि कल्याण का उपदेश देते हैं, वे पाप कार्यों से अशांत जीवों को शांत करते हैं। आचार्यभगवन्त समन्तभद्र स्वामी ने 'स्यम्भू स्तोत्र' में कहा है कि—

येन प्रणीतं पृथु-धर्म-तीर्थं, ज्येष्ठं जनाः प्राप्य जयन्ति दुःखम्।
गाङ्गं ह्रदं चन्दन-पङ्क-शीतं, गजप्रवेका इव धर्म-तप्ताः॥ स्व. स्तो.॥

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

शांत भाव, समता भाव

शमो हि न भवेद्येषां ते नराः पशुसन्निभाः।
समृद्धा अपि तच्छास्त्रे कामार्थरतिसङ्गिनः॥ 263॥
चित्रं नरक-तिर्यक्षु भ्रमतोऽपि निरंतरम्।
जन्तोः सुविद्यते नैव समो दुरितबंधिनः॥ 264॥

अन्वयार्थ—(येषां न हि शमः भवेत्) जिन मानवों के भीतर शांतभाव नहीं होता है **(ते नराः पशुसन्निभाः)** वे मानव पशुओं के समान हैं **(तच्छास्त्रे समृद्धाः अपि)** यद्यपि वे शास्त्रों के ज्ञाता हैं **(कामार्थरति-सङ्गिनः)** तथापि वे कामभाव और द्रव्य की आसक्ति में लगे रहते हैं। **(निरंतरं नरक तिर्यक्षु भ्रमतः अपि)** निरन्तर नरकगति में और पशुगति में भ्रमण करते हुए भी **(दुरित बंधिनः)** पापों को बाँधने वाले **(जन्तोः)** जीव के **(सु समः नैव विद्यते चित्रं)** समताभाव नहीं आता है, यही आश्चर्य है।

भावार्थ—जिन मनुष्यों में शांतभाव नहीं है, वे पशुओं के समान हैं, वह कितने ही शास्त्रों के ज्ञाता होकर भी, कामवासना के वशीभूत होकर नरक-पशु गति में भ्रमण करते हैं, उनके समता भाव का अभाव होता है।

॥ सद्-देशना ॥

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रंथराज सारसमुच्चय जी में योगियों के प्रधान गुण समता स्वभाव, शांत भाव का व्याख्यान करते हुए समझा रहे हैं। मेरा आत्मद्रव्य ही परम कारण तत्त्व है। निज भगवान्-आत्मा को छोड़कर जगत् में कोई भी तत्त्व है, वे सब परगत तत्त्व हैं। एकमात्र चैतन्य द्रव्य आत्मद्रव्य है। इसके अलावा सम्पूर्ण द्रव्य मेरे लिए परगत तत्त्व हैं चाहे वह स्त्री हो, पुत्र हो, मित्र हो, शिष्य हो, शिष्या हो। जितने सम्बन्ध हैं, उनमें एक भी सम्बन्ध स्वगतभूत नहीं है। जितनी गहरी दृष्टि परगत तत्त्व में जाती है, उतनी स्वगत तत्त्व में नहीं। जो मेरा है, उसे नहीं समझ रहा है और जो नहीं है मेरा, उसे 'मैं' समझ रहा है। जो न मेरा होगा, न था, न है, जिसमें मेरे से त्रैकालिक भिन्नत्व है, उस भिन्नत्व के पीछे तूने जितना कलुषित भाव किया है, उतना अभिन्नत्व पर कोई लक्ष्य नहीं ले गया। स्व को देखने-जानने पर कभी अशान्ति नहीं

होती, स्व को जानने पर कभी हलचल नहीं होती। स्व में तो प्रीति होती है, स्वयं में प्रतीति होती है। जिसमें प्रीति नहीं होती है, उसमें प्रतीति भी नहीं होती है। प्रतीति के लिए प्रीति अनिवार्य है। हे पुरुष! तुझे अपने बेटे की माँ के प्रति कितनी प्रीति है? जैसे तू बेटे की माँ में प्रीति कर रहा है, ऐसे ही यदि आत्मा में प्रीति होने लग जाये, तो तुझे भगवान्-आत्मा की अनुभूति अभी होने लग जाये।

संक्लेशता में शान्ति खोजने वाले कोटि-कोटि जीव हैं, असंक्लेश भाव में रमण करने वाले जीव अल्प हैं। इसीलिए दिगम्बर जैन परम्परा में यतीश्वरों से कहा है कि हे यतीश्वरो! उन निमित्तों से संक्लेशता का जन्म होता है। कर्तृत्व दृष्टि किंचित् भी किसी भी द्रव्य में स्थापित होगी तो वहाँ नियम से संक्लेशता होगी। स्व में आनन्द आता है, पर-आलम्वन में संक्लेशता ही होती है। जो स्व-आलम्बन की अनुभूति का वेदन नहीं करेगा, उसे जगत् के प्रत्येक पुद्गल द्रव्य का परिणमन संक्लेशता का साधन बनेगा।

'नेत्र पलक वत्।' जैसे नेत्रों में पत्थर तो छोड़िए, दूसरे के मुख की भाप ही आने लग जाये तो कष्ट होता है। कंकड़ तो चुभता ही है, वायु के झोंके भी आँखों को कष्ट देते हैं, फिर पत्थर के टुकड़े कैसे शान्ति देंगे? ऐसे-ही तत्त्वज्ञानी जीव जब स्वरूप में रमण करता है, तो पंचपरमेष्ठी की भक्ति के भाव भी उसके अन्दर चुभन पैदा करते हैं। जब पंचपरमेष्ठी परगत तत्त्व हैं, तब पाँच पाप स्वगत तत्त्व कैसे हो जायेंगे? ये तो कंकड़-पत्थर है। पापों में शान्ति कहाँ? पापों में विश्राम कहाँ? शान्ति में पाप कहाँ? संक्लेशता में शान्ति कहाँ?

संक्लेशता में शान्ति का वेदन जो कर रहा है, यही संसारभाव है। यही संसार-वास की सुन्दर प्रक्रिया है। संक्लेशता में शान्ति का वेदन कर रहे हो, यही संसार है।

ज्ञानी! आप अपने लिए मकान बनवा रहे हो, उस मकान के बनवाने में आपको आनन्द आ रहा है। पर सत्य बताना, रहने का राग है कि नहीं? पड़ोसी से ऊँचा बनायेंगे आप, तो पड़ोसी से द्वेष है कि नहीं? मेहमान आयेंगे, तुझे अच्छा कहेंगे, ये अभिमान है कि नहीं? मजदूर कार्य अच्छे से नहीं कर रहे थे, तो उन पर गुस्सा आयेगा, क्रोध है कि नहीं?

काम, क्रोध, मान, माया, लोभ सारी कषायें स्पष्ट दिख रही हैं। हे जीव! कषाय परिणाम संक्लेशता है कि विशुद्धि है? निर्णय कीजिए।

जिनको घर से प्रयोजन नहीं है, घट से प्रयोजन नहीं है, वे आत्म-घट में लीन हैं, समरसी भाव में लीन हैं। **असंक्लेशता का होना ही मोक्षमार्ग है। असंक्लेशता तभी बनेगी, जब निर्ग्रन्थ धारा होगी और निर्ग्रन्थ धारा तभी होगी, जब अन्तर में कषायों की शून्यता होगी। जहाँ-जहाँ करने का भाव होगा, वहाँ-वहाँ क्लेश होगा।**

भोजन करते समय तो बार-बार मना करेगा कि अब नहीं चाहिए। पेट की भूख में तो फिर भी सन्तुष्ट हो जायेगा, परन्तु कर्णों की भूख (प्रशंसा) के लिए कभी नहीं कहता कि अब बस, बन्द करो। पेट की भूख से कानों की भूख बड़ी है। रात्रि में खाना तो छोड़ सकता है, लेकिन रात्रि में बारह बजे किसी का फोन आ जाये और वह प्रशंसा करने लगे तो उसे सुनना नहीं छोड़ सकता है। **बड़े-बड़े तपस्वी भी प्रशंसा के बहाव में बह जाते हैं और प्रशंसा के बहाव में बहा हुआ जीव आत्म-तत्त्व को खो देता है।** हे श्रावको! हे साधको! स्वयं की रक्षा, योगियों की रक्षा इस प्रशंसा के बहाव से रखना।

ज्ञानी! एक बार विशुद्धि का मिलना ऐसा दुर्लभ मानना जैसे किसी दरिद्री को हीरे-मोती-रत्न मिल जाएँ। एक लाख शिखरबन्द मंदिर तू बनवा सकता है, ध्वजाए चढ़वा सकता है, स्वर्णकलश चढ़वा सकता है, यह सब सरल है, परन्तु एक घण्टे परिणामों की विशुद्धि के परिणाम जीवित रख लेना बहुत कठिन है।

एक लाख जिनमंदिर बनबाओगे तब भी मात्र स्वर्ग ही पा पाओगे। एक मुहूर्त काल तक आप ध्यान की विशुद्धि में लवलीन हो गए तो आपको नियम से मोक्ष मिलेगा। इसलिए मेरा सभी से कहना है कि जिनमंदिरों की भी स्थापना करो, परन्तु साथ में अपने परिणामों की भी विशुद्धि की रक्षा करो।

सिद्ध परमेश्वर सिद्धालय में विराजमान हैं, जिनको प्रत्यक्ष रूप से न देव नमस्कार कर पाते हैं, न गणधर नमस्कार कर पाते हैं, न विद्याधर नमस्कार कर पाते हैं। अब परोक्ष ही नमस्कार कर पायेंगे। सिद्धालय में विराजमान सिद्धों को तुम प्रत्यक्ष नमस्कार नहीं कर सकते हो, तो ये वीतरागी निर्ग्रन्थ तपोधन जो तुम्हारे सामने दिखते हैं। उन सिद्धों को तो परोक्ष ही नमस्कार कर पायेंगे। हे भावी सिद्ध परमेश्वर! आपको मैं साक्षात्

प्रत्यक्ष नमस्कार करता हूँ। कैसा है भावी परमात्मा? 'बीजांकुर न्यायवत्।' एक को बीज दिख रहा है, दूसरे को फसल दिख रही है। जो बेच रहा है, उसे तो बीज मात्र दिख रहा है; लेकिन जो किसान लेकर जा रहा है उसे बीज नहीं दिख रहा है, उसे फसल दिख रही है। हे श्रावको! ये मुनिराज भले ही आपको मुनिराज दिखें, परन्तु आप उनमें जिनराज देखो।

ज्ञानियो! अश्रद्धा को जन्म दिला करके सम्यक्त्व का नाश करवाना अच्छी बात नहीं है। जब हम निगोदिया में भगवान् को देख सकते हैं, तो इन निर्ग्रन्थों में अरहन्तों को देखो, सिद्धों को देखो, तो श्रद्धा का जन्म हो जायेगा। आपके यहाँ जब भी निर्ग्रन्थ मुनि पधारें, मंगल कलश लेकर खड़े हो जाना। हे स्वामी! भूमि मेरी पवित्र है, मेरा भाव पवित्र है।

माँ! आपको लोई में क्या-क्या दिखता है? रोटी दिखती है, पराँठा, पूड़ी, पपड़िया क्या-क्या दिखता है? जब-तक अप्रकट पर्याय है, तब-तक अनन्तभूत है। जिस अभागे को सूखा आटा फाँकना है, उसमें उसे कोई आकार दिखाई नहीं देता। जिसको आटे में बनाने का भाव है, पहले बाटी बनेगी कि बाटी दिखेगी? पहले दिखेगी, लेकिन दिखने वाली से पेट भरेगा क्या? नहीं। पहले दिखेगी, फिर बनेगी, फिर दिखेगी, फिर उससे पेट भरेगा।

अपने मस्तिष्क में तीन धारायें उत्पन्न कीजिए। पहले स्वरूप देखो अर्थात् इंजीनियर-दृष्टि, भेदविज्ञान। फिर बनाना प्रारम्भ करो, चरणानुयोग में प्रवेश करो अर्थात् कारीगर दृष्टि। जब चैतन्य भवन बन गया, सिद्धशिला में पहुँच गए, अब अनुभूति दृष्टि। अब इंजीनियर न कारीगर, अब जो है सो है। यदि अभी भी समझ में नहीं आ रहा हो तो अब इस युग में भगवान् महावीर स्वामी समझाने नहीं आ रहे।

जिनमें शांतभाव का अभाव है, वे मनुष्य तिर्यन्चों के समान जानना चाहिए। शास्त्राध्ययन का फल संयम धारण करना है और संयमी समतावान् शांतिप्रिय होता है। जिस साधु के पास समताभाव नहीं है, शांतभाव नहीं है, वह शब्दज्ञानी होने पर भी आत्मकल्याण से दूर है। समताहीन का शब्दज्ञान व्यर्थ है, क्योंकि समता के अभाव में जगत् के कार्यों में उलझकर अपनी आत्मा की विडम्बना करता है और

फिर नरकादि दुर्गतियों में जाकर कष्ट प्राप्त करता है।

ज्ञानियो! अपने जीवन में शब्दज्ञान के साथ आत्मज्ञान का भी पुरुषार्थ करना, क्योंकि आत्मज्ञान ही निर्वाण को प्राप्त करायेगा। मात्र सूखा ज्ञान प्राप्त कर भी लिया, तो उससे कुछ होनेवाला नहीं है। वही ज्ञान सच्चा और हितकारी है जो पाप से छुड़ाकर कल्याणमार्ग की ओर प्रेरित करे।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।



क्षमा और क्षमा का फल

मनस्याह्लादिनी सेव्या सर्वकाल सुखप्रदा।
उपसेव्या त्वया भद्र! क्षमा नाम कुलाङ्गना॥ 265॥
क्षमया क्षीयते कर्म दुःखदं पूर्व-सञ्चितम्।
चित्तं च जायते शुद्धं विद्वेषभयवर्जितम्॥ 266॥

अन्वयार्थ—(भद्र) हे भव्य जीव! **(मनस्य आह्लादिनी)** मन को प्रसन्न रखने वाली **(सर्वकालसुखप्रदा)** और सर्वकाल में सुख देने वाली **(सेव्या)** सेवने योग्य **(क्षमा नाम कुलाङ्गना)** क्षमा नाम की कुलवान स्त्री का **(त्वया उपसेव्या)** तुझे बार-बार सेवन करना चाहिए। **(क्षमया)** उत्तम क्षमा के प्रताप से **(पूर्व सञ्चितं)** पूर्वकाल में बाँधा हुआ **(दुःखदं कर्म)** दुःखदायी कर्म **(क्षीयते)** क्षय हो जाता है **(चित्तं विद्वेषभयवर्जितम् शुद्धं च जायते)** तथा चित्त में से द्वेष या भय निकल जाता है और चित्त शुद्ध हो जाता है।

भावार्थ—हे भव्यात्मा! मन को प्रसन्न करनेवाली और सर्व काल में सुख देने वाली, सेवनयोग्य क्षमा नाम की कुलस्त्री का तुझे बार-बार सेवन करना चाहिए। क्षमा के प्रभाव से पूर्वसंचित दुःखद कर्म नष्ट हो जाते हैं तथा चित्त से द्वेष एवं भय निकल जाता है, चित्त निर्मल बन जाता है।

॥ सद्-देशना ॥

अंतिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी जैनदर्शन में एक महान् आचार्य हुए, जिन्होंने भगवान् वर्द्धमान की देशना को अपने अंतस् में अनुभव करके वस्तुस्वरूप की व्याख्या की। व्याख्येय, व्याख्यान, व्याख्याता। जो व्याख्यान का विषय है, वह व्याख्येय है। जो कहा जा रहा है, वह व्याख्यान है। जो कह रहा है, वह व्याख्याता है। इन तीनों के अंतस् में पहुँचकर वस्तुस्वरूप की गवेषणा हमारे वीतरागी आचार्यों ने की है। वाणी का व्याख्यान इतना प्रभावी नहीं होता है जितना चेहरे का व्याख्यान प्रभावी होता है। चेहरे के व्याख्यान को तुम तभी देख पाओगे जब तुम्हारे जीवन में सूत्र गूँजे "जो है, सो है"।

जीव तो धर्म की व्याख्या द्रव्य में कर रहे हैं। द्रव्य में नहीं कर रहे हैं। द्रव्यदृष्टि है, द्रव्यदृष्टि नहीं है। द्रव्यदृष्टि हो जाये, तो द्रव्य पर दृष्टि जाये ही क्यों? जब तक द्रव्य पर दृष्टि जायेगी, तब-तक द्रव्य पर दृष्टि हो नहीं सकती है। द्रव्य पर दृष्टि है, तब-तक द्रव्य पर दृष्टि नहीं है। द्रव्य यानि आत्मद्रव्य, द्रव्य यानि धन।

भगवान् चंदाप्रभु स्वामी की पूजन के लिये आप आये थे। आपने दर्शन किये और दर्शन करके थाली में द्रव्य को देखकरके तुम्हारे परिणाम पुजारी के ऊपर कलुषित हो गये। पूज्य होने के लिये आये थे, कि पूजा करने के लिये आये थे? ध्यान से समझना। यदि पूज्य होने के लिये आये थे, तो थाली कैसी भी होती, तू साम्य भाव से बैठ जाता, तो तू पूज्य हो जाता और पूजा करने के लिये मात्र आया था, तो थाली दिखेगी, भगवान् नहीं दिखेंगे।

धर्म को हमने द्रव्य में देखा, जबकि द्रव्यों के लिये धर्म करने नहीं आये थे, धर्म के लिये द्रव्य चढ़ाने आये थे। आपने दान दिया है, तो आपने लोभकषाय का त्याग किया है। जो परिग्रह तेरे सिर पर रखा हुआ था, उस परिग्रह से तू हल्का हुआ है। विश्वास रखना, एक कंधे पर वजन था तो आपने चलते-चलते उसको बदलकर दूसरे कंधे पर रख लिया और कहता है कि थोड़ा आराम मिला। भो ज्ञानी! आराम तो तुझे इस ओर मिला है, पर वजन तेरा कम हुआ है क्या? वजन का भार तो तुम्हारे शरीर पर ही है। ऐसे-ही जो व्यक्ति दान देने के बाद सम्मान का भाव रखता है, उसने वजन को एक कंधे से उतारकर दूसरे कंधे पर रखा है। दान देकर जो भूल जाता है, उसने वजन को उतारकर बाहर फेंक दिया है। मैंने त्याग किया है। कंधे का परिवर्तन नहीं करना, वस्तु को छोड़ना, जो धर्म है। यदि कंधे का परिवर्तन करोगे तो कषाय आयेगी और वस्तु का त्याग कर दोगे तो मुस्कुराहट आयेगी। वही वजन के लिये यदि कोई कहे कि भैया! आप थक गये होंगे, लाओ मैं लिये लेता हूँ, तो जैसे ही कोई ले लेता है, तू मुस्कुराने लगता है कि चलो कोई तो मिला मेरा वजन हल्का करने के लिये। ऐसे ही जब कोई दान माँगने आये तो तुम मुस्कुराना भैया कि कोई तो मिला मेरा वजन हल्का करने के लिए, परन्तु उसी समय कोई कहे कि तुमने दान दिया, आओ तुम्हें तिलक लगा दें, तो उससे कह देना कि ज्ञानी! मैं कंधे का परिवर्तन नहीं करा रहा हूँ, मैं वजन उतार रहा हूँ।

धर्म परिवर्तन नहीं है। परिवर्तन आसान है। धर्म त्याग है, वह कठिन है। परिवर्तन तो आप मुस्कुरा कर प्रतिदिन करते हो। क्या सब्जीमण्डी में साग खरीदने नहीं जाते हो? हरे-हरे नोट सब्जी वालों को देकर आते हो। यह परिवर्तन करके आये हो। देने नहीं गये थे, लेने गये थे। यदि बदले में कुछ नहीं मिलता, तो तुम देने गये थे क्या? परिवर्तन सरल है, छोड़ना कठिन है। मोक्षमार्ग परिवर्तन का मार्ग नहीं है कि इस हाथ से दे दो और उस हाथ से ले लो। मोक्षमार्ग त्याग का मार्ग है, परिवर्तन का मार्ग नहीं है। स्थानांतरण अर्थात् कषाय का परिवर्तन। कषाय को बदलना कठिन नहीं है, कषाय को छोड़ना कठिन है। कषाय को बदलना मोक्षमार्ग नहीं है। कषाय को छोड़ना मोक्षमार्ग है। ओहो! कितनी बार कषाय बदलता है जीव।

व्यापारियों से पूछना, ग्राहक कितना परेशान करता है, तब भी आपको गुस्सा नहीं आता है। कारण क्या है? महाराज! इसमें कषाय परिवर्तित हो रही है। लोभकषाय खड़ी हुयी है तो क्रोधकषाय शांत हो रही है। क्रोधकषाय यदि खड़ी हो जायेगी तो लोभ की पूर्ति नहीं होगी, इसलिए क्रोध को शांत करना पड़ता है।

भैया! तुम कैसे कषाय को पीते हो, ग्राहक के आने पर तुम कैसे शांत हो जाते हो और दूध पिलाते हो। इतने भोले आप कब से हो गये हो कि ग्राहक को दूध पिला रहे हो? हे जीव! सँभलकर जीना। विश्व में सर्वाधिक संख्या जो है, वह तिर्यंचों की है। एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक तिर्यंचों-ही-तिर्यंचों की संख्या है। मनुष्य, देव और नारकी इन तीन गतियों के जीवों को छोड़ दो, शेष जितने भी जीव हैं, सब तिर्यंच हैं। सोचो तिर्यंचों की संख्या सर्वाधिक क्यों है? क्योंकि यदि जीव के अंदर सर्वाधिक कोई कषाय होती है तो माया कषाय होती है। क्षण-क्षण में जीव चेहरा बदल देता है। सँभलकर जीना, सँभलकर खाना, सँभलकर बैठना। जिनके बाल सफेद हो चुके हैं, वे काले कराकर आये हैं। सत्य बताना, यह तुम क्या करके आये हो? किसको दिखाना चाहते हो? जिसको दिखाना चाहते हो, वह भी जानता है। जब तुम्हारी उम्र 50-60 वर्ष की हो चुकी है, फिर भी काले दिख रहे हैं, इसका मतलब क्या कोई जानता नहीं है कि तुम क्या करके आये हो? वह तो बिल्कुल प्रदर्शित करके, बैनर लगाकर बता रहा है कि तुम मेरे बारे में ऐसा बिल्कुल मत सोचना कि मैं मायाचारी से रहित हूँ। ये काले बाल देख लो। वह प्रमाणपत्र दे रहा है कि मैं माया का पिण्ड हूँ। ऐसा क्यों होता है?

भीतर से पूछना। मान जब सामने खड़ा हो जाता है, तो मायाचारी करना प्रारंभ कर देता है। जब मान प्रचुर होता है और मान की पुष्टि नहीं होती है, तो फिर वह माया को लेकर आता है। माया जब सामने खड़ी हो जाती है, तो वह कुछ भी नहीं देखने देती है।

माया यानि स्निग्धता। जैसे दर्पण के ऊपर तेल चुपड़ दो, फिर चेहरे को देखो तो दर्पण के ऊपर लगा हुआ तेल चेहरे को नहीं देखने देता है। ऐसे-ही ज्ञानियो! आत्मा के अंदर माया धर्म आच्छादित हो जाता है तो-फिर विश्व की सत्यता को दिखने ही नहीं देता है। चारों ओर देख लो। जैसे-जैसे चिकनाई हटने लग जाये, तब फिर चेहरा दिखना प्रारंभ होता है। माया कषाय जब क्षीण होने लग जाये, तब व्यक्ति को समझ में आता है कि हाय मैंने क्या किया? किसी से मत पूछना, किसी को मत निहारना; जो माया क्रोध आदि कषाय कर रहा है, मात्र उसी से पूछ लेना कि भैया! तुम क्या कर रहे हो? इस विद्या में सम्पूर्ण जीव पारंगत हैं, किसी को अलग से समझाने की आवश्यकता नहीं है। **जब-जब जीव को क्रोध आयेगा, तब-तब या तो माया या मान रखा होगा या लोभ धक्का मारता है। जब इनकी पूर्ति नहीं होती है, तब क्रोध सामने होता है। क्रोध एक अस्त्र है। जब व्यक्ति की इच्छा की पूर्ति नहीं होती है, तो अस्त्र उठाता है।** पहले अग्निवाण चलते थे। पुराणों में अपन पढ़ते हैं, अग्निवाण, वायुवाण यह सब वाणों के नाम थे।

समरभूमि में योद्धा जब वाण उठाते थे, वह कब उठाते थे? ज्ञानियो! आप विश्वास मानना, जिस समय तुम्हारे अंतस् में क्रोध उठना प्रारंभ हो, समझ लेना कि मेरे भीतर का आत्मदेव अपने आप को सँभाल नहीं पा रहा है, तब दूसरे को भष्म करने की दृष्टि से वह अग्निवाण प्रकट कर रहा है कि मैं इसको भष्म कर दूँ। लेकिन विश्वास रखना, जिसके पास वरुण वाण होता है, उसका अग्निवाण कार्यकारी नहीं होता है। जिसके सामने क्षमा धर्म होता है, उसके सामने क्रोध कार्यकारी नहीं होता है। अग्नि क्या करेगी?

हे अंगारा! तू सूखी लकड़ी पर ही अपना प्रभाव दिखा पायेगा। बेटा! घर जाना, यदि माँ डाँटे तो कहना हे माँ! तुझे मालूम होना चाहिए कि अग्नि सूखी लकड़ी को ही जला पायेगी। पानी के वर्तन में जब गिरेगी तो बुझ ही जायेगी। मैं तो तत्त्व-उपदेश

का पानी भरकर लाया हूँ। तू कितना ही चिल्लाले, पर मेरे ऊपर कोई असर पड़ने वाला नहीं।

जीवन में तत्त्वज्ञान का शीतल नीर और शीतल समीर इन दो का होना बहुत आवश्यक है। क्या हो गया आप लोगों को? यह ध्रुव सत्य है; हृदय को टटोल कर देख लो, कि कितनी बार अग्निवाण मेरे भीतर से निकले हैं, नेत्र गरम हो गये। जब जीव को कषाय आती है, तो जो श्वासें चल रही हैं, वह गरम हो जाती हैं।

मित्रो! जिनागम में यह विद्या कूट-कूट कर भरी हुयी है। यह जो विषय है, वह सारे विश्व के पास पहुँचाने की आवश्यकता है। जैन तत्त्व विद्या, जिनागम के गूढ़ रहस्य, आज लोग आश्चर्य करते हैं कि यह है क्या? श्वास गरम हो गयी, आँखों का रंग बदल गया, चेहरे के भाव बदल गये, जिनको तू भगवान् के रूप में देखता था उनको तू अब दूसरे रूप में देख रहा है। यह तेरा दोष नहीं है।

कोई गुस्सा कर रहा हो, तुझे गाली भी दे रहा हो, तो उसके बारे में तू अशुभ नहीं सोचना। यदि जिनवाणी सुन रहे हो तो, कभी भी अशुभ मत सोचना। यह मत सोचना कि उसका अहित हो जाये। भैया! उसका अहित तो उसके पाप-पुण्य पर है, पर तुम अशुभ सोचकर अपना अहित अवश्य कर लोगे, उसका कुछ भी बिगड़ता नहीं है। 'महाराज! गाली दे रहा है।' विश्वास रखना, वो तुमको गाली नहीं दे रहा है। इतना ही धर्म समझ में आ जाये कि वो तुमको गाली नहीं दे रहा है। कोई भी मनुष्य किसी के बारे में अशुभ नहीं सोच सकता है, गाली नहीं दे सकता है। माँ! आप विश्वास मानो, जिसे तुम बहू बोल रही हो, वह भी किसी की माँ है, किसी की बेटी है। वह अपनी माँ को गाली क्यों नहीं दे रही है? तुझे गाली क्यों दे रही है? इसका कारण समझना कि तेरे पूर्व भव का कोई कर्म उदय में आ गया है। वह आपको गाली नहीं दे रही है। भैया भी गुस्सा करे, विश्वास रखना, भैया कभी भी गुस्सा कर ही नहीं सकता है। आप सब कहो कि महाराज! आप प्रत्यक्ष को झूठा कैसे कह सकते हो? सामने तो आग उगल रहा है। ज्ञानी! वह गाली दे ही नहीं रहा है, बिल्कुल सत्य कह रहा हूँ मैं। वह गाली आपको दे नहीं रहा है। मनुष्य किसी को गाली दे नहीं सकता है। क्यों?

माँ! दूध में अंगुली जलती है क्या? दूध से अँगुली जलती है क्या? बस इतना समझ में आ जाये तो फिर तुम्हारे घर में कभी झगड़ा नहीं हो सकता। दूध से अँगुली जलती है क्या? दूध में अँगुली जलती है क्या? दूध से अँगुली नहीं जलती क्या?

अग्नि ने अँगुली को जलाया है, कि दूध ने अँगुली को जलाया है? ऐसे-ही भैया! आप समझो। आप प्रयास मत करो उसे ठण्डा करने का, आप तो हण्डी को चूल्हे से उतार कर जमीन पर रख दो। समय दे दो, समय दे दो। सबका समाधान समय है। समय दे दो, अपने आप समाधान हो जायेगा। फिर कभी अँगुली नहीं जलेगी। समय दे दो। न हवा करना पड़ेगी, न मुख से फूकना पड़ेगा। जैसे दूध या घी से अँगुली नहीं जली है, अग्नि की सोपाधिक दशा है, ऐसे-ही भैया! कोई किसी को अशुभ नहीं बोलता, गाली नहीं देता, अशुभ कर नहीं सकता। जो कषाय आ रही है, वह कर्म की सोपाधिक दशा है। जीव की विभाव दशा है। थोड़े दिन बाद ठण्डा हो जायेगा तो अपने आप कहेगा भैया! क्षमा कर देना, गलती हो गयी थी। फिर कहना भैया! न तूने तब कुछ दिया था, न अब कुछ दे रहा है। "जो है, सो है"।

भैया! अगर कोई घर में गुस्सा भी कर रहा हो, तो कह देना भैया! तेरा कोई दोष नहीं है। कोई बाहर की उपाधि लग गयी है। कोई क्षेत्र का प्रभाव होगा, कोई द्रव्य का प्रभाव होगा, कोई काल का प्रभाव होगा, कोई कुभाव का प्रभाव होगा; लेकिन मुझे मालूम है मैं तुझे तब भी नहीं छोड़ूँगा। सुनो ध्यान से, लोई फेंकी नहीं जाती है। बिगड़ भी जाये, तब भी माँ गोल रोटी बना लेती है। तिरछी लोई को भी ठीक करके रोटी बनाते हैं। जैसे लोई को नहीं फेंका जाता, ऐसे-ही सम्बंधियों को फेंक मत देना।

ज्ञानी! लोई ही रोटी बनती है। यह क्रोधी लोग ही भगवान् बनते हैं। यदि क्रोधी नहीं होंगे, तो भगवान् कौन बनेगा? जो-जो असिद्ध थे, वे ही सिद्ध बने हैं। आप ज्ञानियों को पढ़ाते हो कि अज्ञानियों को पढ़ाते हो? अचैतन्य अज्ञानियों को पढ़ाते हो। आपके पढ़ाने से पढ़ गये, कि उनमें ज्ञान था इसलिये पढ़ गये? ग्रंथों में ज्ञान नहीं है। वह जीव ज्ञान से ग्रंथों को समझता है। ऐसे ही यह आगम कह रहा है कि जीव वस्तुस्वरूप को नहीं जानता है। प्रथम दिन छात्र आया, उसको नहीं मालूम कि 'अ' क्या होता है। भैया! जितने भी मंदिरों के पुजारी बैठे हों, आप बच्चों को चेहरे बिगाड़कर उनको भगाना मत। आप समझो। प्रथम दिन जब आप पढ़ने गये थे, आप कुछ भी नहीं जानते थे, पर

तुम्हारे शिक्षक ने तुम्हें भगाया था क्या? तुझे यदि भगा देता कि तू कुछ नहीं जानता है तो आज तू इतना ज्ञानी कैसे बन पाता? उसने कहा था कि बेटा चूल्हा बनाओ।

श्रद्धा हो तो ऐसी हो, पाटी (स्लेट) के ऊपर, अध्यापक कहता है, बेटा! चूल्हा बनाओ। बेटा! बगल में एक चूल्हा और बना लो। उसने दूसरा चूल्हा बना दिया। अब लकड़ी लगाओ। उसने लकड़ी लगा दी। बेटा! एक लकड़ी आड़ी और लगा दो। अब बेटा! कौन-सा आकार तुम्हें दिख रहा है? बेटा! दो चूल्हों के बनाने पर उसमें लकड़ी डालने पर जो आकार बने, उसका नाम है अ 'आदिनाथ।' इतनी गहरी श्रद्धा उस बच्चे में आ गई अपने अध्यापक के प्रति, क्योंकि माता-पिता ने भेजा है कि यह मुझे कुछ अच्छा बतायेंगे। यदि यह आस्था न होती, तो तुम आज 'अ' नहीं सीख पाते। इसलिए पहले ज्ञानी नहीं, श्रद्धानी बनाना है। श्रद्धान जब होगा, तो ज्ञान तो अपने आप छमाछम बरसेगा। पहले ज्ञान की श्रद्धान, आस्था, विश्वास। तो जब इतना विश्वास था बच्चे के प्रति, आपने उसे ज्ञानी बना दिया।

ओ हो! बेटा नहीं जानता था। उसे ही तो पढ़ाया। यदि पहले ही दिन भगा देते तो....? वहाँ आप को बताया तो आप विद्वान् बन गये। यानि आपको कोई गाली भी दे और आप जिनवाणी सुनने बैठे हो, तो गाली देने वाले के ऊपर तुम आँख उठाकर मत देखना। विश्वास रखना, जो आदिनाथ को गाली देकर भाग गया था, वही महावीर बना। जो आदिनाथ को यूँ कहकर भाग गया था कि मैं तुम्हें नमस्कार क्यों करूँ? मैं भी भगवान् हूँ। जो ऋषभदेव के समवसरण से चला गया था, वही महावीर बना था। इसलिए मरीचि को भी तुम गाली मत देना, क्योंकि वो महावीर बन गए। ऐसे ही तुम्हारे घर में कोई तुम्हें अशुभ भी बोल दे, तब भी तुम अशुभ मत बोलना, क्योंकि कब परिणाम सुधर जाय, परिणाम सुधरने के साथ कब पर्याय सुधर जाय कि जिसे तुम अशुभ कह रहे थे उसके सामने तुम सिर टेकोगे।

भैया! सर पर कठोर-से-कठोर-उपसर्ग सहन कर लेना, शब्दों के वाण सह लेना, गाली भी झेल लेना, पर किसी जीव के प्रति अशुभ मत सोचना। विचार भी मत करना।

'सबके दिन एक-से नहीं होते।'

पुण्य की सत्ता में बैठकर पाप को निमंत्रण कोई मत दे देना। जितने जीव नरक गये हैं, वे पुण्य की सत्ता में बैठ कर गये हैं। लंकेश के पास पुण्य प्रबल था, पुण्य के सिंहासन पर बैठकर उसने पाप को निमंत्रण कार्ड दिया था, परस्त्री का हरण किया।

जिनके शरीर रोग से ग्रसित हैं, मानसिक विकलांग हैं, वे क्या पाप कर पायेंगे, क्या भोग भोग पायेंगे? **जिनके शरीर बलिष्ठ हैं, घर में श्री है, घर में सबकुछ है, वे ही तो खूब भोगों का सेवन करते हैं। ये जो भोग भोग रहे हैं, यही पाप का निमंत्रण कार्ड है कि मेरे मित्र! तुम आकर हमें नरक ले चलो। पुण्य की सत्ता में जीव पाप करता है। जो जीव पुण्य की सत्ता में पाप कर लेता है, वह नरक की ओर चला जाता है। जो पुण्य की सत्ता में पुण्य कर लेता है, वह स्वर्ग चला जाता है। जो पुण्य की सत्ता में पुण्य-पाप दोनों का नाश कर लेता है, वह भगवान् बन जाता है।** जितना समय मिला है, उतना स्वयं का सोचने में बिता दो, अब समय ज्यादा नहीं है। आप विश्वास मानो, एक-एक श्वास में हमारी आयु नष्ट हो रही है। आप को विश्वास हो या न हो, मैं तो पूरी तैयारी के साथ जी रहा हूँ।

यथार्थ मानिये, मैं किसी के बारे में व्यर्थ चिंतन करके अपनी आत्मा की वंचना करना पसंद नहीं करता हूँ। चतुर्थ काल नहीं है, पंचमकाल है। इसके बाद छठवाँ काल आ रहा है जब एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को कच्चा खायेगा। ऐसे काल में नहीं जाना चाहते हो तो भैया! अपना समय दूसरे को नहीं, खुद को ही दो। तुम किसी की भी चर्चा में अपनी आयु नष्ट कर रहे हो, धन्य हो तुम्हें। ज्ञानियो! समय कम है, हमें तो निकल चलना है। पंचमकाल की इति होने के पहले अपन को तो स्वर्ग में जाकर बैठ जाना है। मित्र! पंचमकाल में स्वर्ग तक ही तो जा पाना है, मोक्ष तो जा नहीं पायेंगे। स्वर्ग से देखो कि अब भरतक्षेत्र में क्या हो रहा है। फिर वहाँ नंदीश्वर, विदेहक्षेत्र, इन पुण्यभूमियों की वंदना करके ऐसा पुण्य कमाकर रखना है कि अगली पर्याय में पुनः मनुष्यपर्याय प्राप्त करके दिगंबर मुनि बनकर सिद्धालय में पहुँचना है।

ज्ञानियो! जितने धार्मिक अनुष्ठान हैं, मात्र उसी संस्कार के लिये हैं ; बाकी कुछ नहीं है। भगवान् के पंचकल्याणक तो हो चुके हैं। यह तो जितने अधिक होंगे, उतने अधिक हमारे शुभ भाव बने रहेंगे। यह संस्कार पड़ जायेंगे। बच्चे देखते-देखते क्या-क्या करना सीख लेते हैं। पापियों से बीड़ी सिगरेट पीना सीख जाते हैं। पुण्यात्माओं के अभिषेक देखकर-देखकर करना सीख जाते हैं। यही संस्कार हैं।

आचार्य महाराज विद्यासागर जी की सबसे पहले मोरा जी में वाचना प्रारंभ हुयी थी, जहाँ बड़े-बड़े विद्वान् बैठते थे। षट्खण्डागम जी की वाचना हुयी थी। भारत की भूमि पर दो तीन ही गाँव हैं जहाँ मूलप्रति विराजमान हैं। एक सागर के वर्णी भवन में, अमरावती में, एक सोलापुर में। यहाँ हस्तलिखित ग्रंथ हैं षट्खण्डागम जी के। उसमें

एक सागर का भी नाम आता है। यह वाचना जब सागर में हुयी, उस समय के संस्कार वाचना के देखो कितनी बिटियाँ आर्यिका बनीं, कितने बेटे मुनिराज बन गये। हर संघ में देखना, सागर संभाग के त्यागी-व्रती आपको मिल जायेंगे।

ज्ञानी! **"क्षमया क्षीयते कर्म"** क्षमा करने से कर्म नष्ट हो जाता है। अब सुनिये बहुत अच्छी बात। कभी-कभी दार्शनिक दृष्टि से देखा करो। लोग समझते नहीं, यह रासायनिक तत्त्व है। दूध कच्चा पिया कभी? पीना नहीं, अभक्ष्य होता है। कच्चे दूध का स्वाद पके दूध में नहीं होता है, यह विश्वास रखना।

धार निकल रही है, गरम धार ही निकलती है, उसका नाम है धारोष्ण। माँ के आँचल से और गाय भैंस के थनों से भी दूध निकलता है। जो धारोष्ण होता है, उसका पान करनेवाला ज्यादा स्वस्थ रहता है, क्योंकि उसमें मिलावट नहीं है। पर तुम्हारे घर में जो दूध तपता है, उसमें दो बार का पानी होता है। दूध जो अपने सहज धर्म में होता है, उसका स्वाद भिन्न होता है। अग्नि पर रखने से उसका स्वाद बदल जाता है।

ज्ञानियो! उसी तरह क्षमा है। जैसे ही क्रोध की अग्नि का संयोग मिला, तो उसका स्वाद बदल जाता है। अब लोग समझते नहीं हैं। अपनी समाज में देश में बहुत से गरीब लोग हैं, वह बेचारे अपनी गरीबी किसी को सुना भी नहीं सकते हैं। उनके घर में खूब क्लेश होता है। अब उनको पता नहीं है कि यह दरिद्रता आ कहाँ से रही है।

तुलसीदास जी ने रामचरित मानस में लिखा है कि सम्पत्ति कहाँ होती है। 'जहाँ सुमति तहाँ सम्पत्ति नाना' जहाँ सुमति है, वहाँ सम्पत्ति है। **सबसे बड़ी सम्पत्ति है शांति। जहाँ शांति नहीं वहाँ कोई सम्पत्ति नहीं है।** दासी का दास होकर जी लेना, लेकिन हाय- हाय करके लड्डू-पेड़ा मत खाना। जैन परिवारों में गरीबी क्यों बढ़ रही है? यह हो ही नहीं सकता। भारतभूमि पर गरीबी हो ही नहीं सकती। गरीबी जब बढ़ी क्यों, सुनिये? माना कि इनके दो बेटे हैं और माना कि यह अरबपति हैं। और पिता अपने दोनों बेटों के साथ रहते हैं तो तीनों अरबपति हैं। यदि तुम तीनों के मन मचल गये कि पिता जी से अलग होना है, तो फिर क्या बचा? अलग होते ही करोड़पति हो जाता है जो अरबपति था। सुनो ध्यान से, जिनवाणी क्या कह रही है। जैसे ही तुम्हारे बीच झगड़ा हुआ, तो प्रत्यक्ष में विभाजन दिख रहा है। **हे मित्र! कर्म कहता है कि तुमने कषाय की, तो पुण्य क्षीण होना प्रारंभ हुआ और सम्पत्ति विलीन होना प्रारंभ**

हो गयी। जैसे ही सुमति आती है तो वह चिपकाती है। विश्वास रखना रावण के सामने तीन सुमति को लेकर गये थे तो लाखों-करोड़ों के साथ होकर आये। रावण के पास कुमति आ गयी तो सब विलीन हो गया। भैया! सबको लेकर चलो, इसी में सार है।

ज्ञानी! सच्चा वक्ता और सच्चा मुखिया, चारों ओर लेकर चलता है, तभी समाज, देश और संघ, परिवार सब चलता है। तभी आत्मा का कल्याण होता है। जिन-जिन को घर में सम्पत्ति से भरपूर होना है तो सबको साथ लेकर चलो। दयालु हो कि नहीं? करुणा है आपके अंदर तो एक बात मेरी मान लो, गरीब को तुम दान तो दे देते हो कि भैया लो ये ले जाओ। यह अधूरा काम है। उसको पैसे बाद में देना, उससे कहना कि मेरे दिए हुए पैसे तू कितने दिन तक रख पायेगा? भैया! तुम्हें अगर करुणा है तो उन्हें इतना ही बताना कि तुम यदि मिलकर साथ रहोगे तो सम्पत्ति बरसेगी। चारों अलग-अलग रहोगे तो सम्पत्ति भाग जायेगी। मैं प्रेक्टीकल आपको बताये देता हूँ। जब आप ससुराल अपनी सासु के जीवित रहते और ससुर के दोनों के साथ रहते जाते थे, तब आनंद आता था। उनकी मृत्यु के बाद पूरा परिवार अलग हो गया है, इसलिए अब वो आनंद आता ही नहीं है।

जैसे-जैसे शांत परिणाम होंगे, वैसे-वैसे पुण्य भी बढ़ेगा। जैसे-जैसे पुण्य बढ़ेगा, तब 'श्री' भी टपकेगी। गृहस्थ के लिए सम्पत्ति और यश बढ़ेगा।

'क्षमया क्षीयते कर्मं' साधु शांतचित्त रहेगा तो उसका यश बढ़ेगा। उसकी कीर्ति व शिष्यमण्डली बढ़ेगी। साधु शांत रहेगा तो उसका ज्ञान बढ़ेगा, कर्म का क्षय होगा, भगवान् बनेगा। "दुःखदं पूर्वसंचितं" जो पूर्व में दुःखभूत कर्म का संचय किया था, मुमुक्षुओ! वह क्षमा से शांत हो जाता है।

"क्षमया क्षीयते कर्मं"। आज आपका नियम है कि भोजन बाद में करना, पहले अपने रिश्तेदारों को फोन लगाकर बता देना **"क्षमया क्षीयते कर्मं"**। जो पूर्व में संचित कर्म होते हैं, वह सब क्षमा से नष्ट हो जाते हैं। और विश्वास रखना, वैभव विभूतियाँ क्षमाशील के चरणों में होती हैं। मुक्ति का वैभव बैठा हो, तो फिर संसार का वैभव क्या बड़ी बात है? इसलिए, जाओ अपने घर, कोई कुछ भी बोले तो कह देना—

"क्षमया क्षीयते कर्मं" हमें छटवें काल में प्रवेश नहीं करना है। कोई कुछ भी बोले, "क्षमया क्षीयते कर्मं"। बस, कलिकाल से ही हमें ऊपर चले जाना है।

तीर्थंकर-परम्परा में भगवान् आदिनाथ से लेकर वर्द्धमान तक जो कैवल्य का सूर्य था, वह जाज्वल्यमान रहा। अद्भुत पुण्यात्मा जीव होंगे, अद्भुत भाग्यवान जीव होंगे जो साक्षात् तीर्थंकर के समवसरण में बैठकर दिव्यध्वनि को सुन रहे होंगे। वे सिंह भी महान् होंगे, वो गाय भी महान् होगी जो समवसरण सभा में बैठकर साक्षात् भगवान् की आराधना कर रहे होंगे। नरक का नारकी जीव आने की सामर्थ्य नहीं रखता है, नहीं-तो वह भी तीर्थंकर की समवसरण सभा में पहुँच जाये। ब्रह्माण्ड में एकमात्र इकलौती सभा है जिसमें तीन गतियों के जीव एकसाथ देशना सुनते हैं। उसका नाम है **समवसरण सभा।** प्राणिमात्र को जहाँ शरण की प्राप्ति होती है। जब निर्ग्रंथों के श्रीमुख से हम अर्हंत की देशना को सुनते हैं तो लगता है कि जब वर्तमान में मोक्षमार्ग में इतना अमृत है, तो प्रत्यक्ष वाणी में कितना अमृत होगा। यह आपका सौभाग्य है कि वर्तमान में नगर-नगर में निर्ग्रंथों के दर्शन हो रहे हैं।

भैया! यह पंचमकाल का बहुत बड़ा पुण्य मानकर चलना कि नगर -नगर में धर्म के महोत्सव हो रहे हैं। नगर-नगर में निर्ग्रंथों के दर्शन हो रहे हैं। वे क्षेत्र कैसे होंगे जहाँ एक भी मुनि के चरण नहीं पड़े। ऐसे भी क्षेत्र हैं जहाँ साधु के दर्शन असंभव हो रहे हैं। तीर्थंकर की परम्परा को जीवंत रखा है हमारे आचार्यभगवंतों ने। यह उनका परम पुरुषार्थ है। जिनवाणी का लेखन किया, लेखन करके विभिन्न भाषाओं में जो जिस प्रांत में थे उसी प्रांत की भाषाओं में उन्होंने ग्रंथ लिखे। समयसार फारसी में लिखा हुआ है। पं० बनारसी दास जी की लिखी गयी, आगरा में विराजमान है। वहाँ के श्रावक कह रहे थे कि औरंगजेब के मन में भाव आया कि तत्त्वविद्या क्या है? आत्मविद्या क्या है? औरंगजेब के लिए पं० बनारसी दास जी ने फारसी भाषा में 'समयसार नाटक' ग्रन्थ लिखा। वह ग्रंथ आज भी पारसनाथ जिनालय में विराजमान है।

ज्ञानियो! सारे जगत् की विद्याओं पर जहाँ विराम हो जाता है, वहाँ से आत्म-विद्या का प्रारंभ होता है। आचार्य कुंदकुंद स्वामी के समयसार की प्रसिद्धि विश्व में है। न तंत्र है न मंत्र है। बिना रस्सी के, बिना खूटे के प्राणिमात्र को शांत करने की सामर्थ्य उसमें है। कुंदकुंद स्वामी जो 'समयसार' में लिख गये हैं, अपरवर्ती जितने भी आचार्य हुये हैं, उन सभी ने उस ग्रंथ को निहार करके और ग्रंथों का विस्तार किया। वर्तमान में जो ग्रंथ विराजमान है, 'सारसमुच्चय', इस ग्रंथ में कुलभद्र स्वामी महान् सूत्र प्रदान कर रहे हैं।

पर्याय कब विलीन हो जायेगी, नियत नहीं है। अंतिम श्वास निकलते देर नहीं लगती, कब किसकी श्वास निकल जाए। भैया! श्वास निकले, इसके पहले कषाय की आँच निकाल देना। न मैं ही बचूँगा, न आप बचोगे। जिनसे मेरा राग है, वो भी नहीं बचेगा। जिनसे मेरा द्वेष है, वे भी नहीं बचेंगे और यहाँ तक कि आज का राग-द्वेष भी नहीं बचेगा। आज के राग-द्वेष के उदय में जो कर्म का बंध किया है, वह तुम्हारे साथ अवश्य जायेगा। जब द्रव्य ही नहीं बचेगा, तो राग क्या बचेगा? जब वह द्रव्य नहीं बचेंगे, तो द्वेष कहाँ से बचेगा?

जहाँ खेती होती थी, वहाँ भवन बन चुके हैं। जहाँ भवन बने थे, वहाँ घूरे बने होते हैं। **सबके दिन एक-से नहीं होते**। भूमि बदल गयी, भूपति बदल गये, फिर भी भूमि कहती है कि मैं जहाँ थी, वहीं हूँ। हे भूपतियो! तुम मन में व्यभिचार कर लो कि मेरी भूमि, मैं पति; पर वह कहती है कि मैं तो क्वाँरी कन्या हूँ, मैंने तो किसी को स्वीकारा ही नहीं। हर व्यक्ति के मन में भाव आता है कि इस भूखण्ड का मैं स्वामी हूँ। विश्वास रखना, ऋषभदेव से लेकर महावीर तक, महामुनि आदिनाथ से लेकर वर्तमान मुनि तक, इस भूमि पर अँजुली लगाकर निकल रहे हैं। ऋषभदेव सम्राट् से लेकर वर्तमान के नेताओं तक, सब भूमि के स्वामी बनकर घूम रहे हैं; लेकिन भूमि कह रही है कि यह आपका पागलपन है, मेरा पागलपन नहीं है। मैं तो जो हूँ, सो हूँ।

ज्ञानियो! जिनमें राग था, उनकी राख के अलावा कुछ नहीं बचा। क्रोध का काम ही इतना है। आग का काम कितना है? **भवन, वस्त्र, आभूषण इन सब को राख करवाना हो तो आग को बुला लेना और प्रीति, वात्सल्य, प्रेम, धर्मानुराग इन सब का नाश कराना हो तो क्रोध को बुला लेना। जिनके साथ दुलार से रहते थे, घर के आँगन में दीवार खड़ी हो गयी। यह दीवार बोल रही है कि यह आँगन की दीवार नहीं है, तुम्हारे हृदय में वात्सल्य का अभाव हो गया है। कषाय का प्रतीक है आँगन की दीवाल।** आँगन में दीवाल नहीं है, वह तो खाली दिख रही है। पर विश्वास रखना, भैया! जिनको तू हिस्सा देगा, उनके कंधों पर तू नहीं जा सकेगा। वे तो आग ही दे पाते हैं। पर जिनको कुछ नहीं दिया जाता है, उनके कंधों पर ये जाते हैं। जितने वृद्ध यहाँ विराजते हैं, उनसे मेरा कहना है कि बेटों को तो हिस्सा दिया है, पर पड़ोसियों से प्रेम की भाषा में बोलना प्रारंभ कर दो। धिक्कार हो ऐसे राग को कि जिनको सबकुछ

दिया, वे आग लगाने पहुँच गये और जिनको कुछ नहीं दिया, वे काँधे लगाने पहुँच गये। तो कौन किसका होता है? पड़ोसी को भी पराया मत मानो, उन्हें आज से अपना मानना प्रारंभ कर दो। काश ऐसा होता कि मरने के बाद हंस देखने आ जाता होता, तब पता चलता कि कौन आग दे रहा है। जिसके राग में जीवन बिता दिया और जाने के बाद मेरी नहीं, हिस्से की चर्चायें प्रारंभ हो गयी हैं।

विश्वास मानना। करके ही जाओगे, देकर ही जाओगे, लेकिन लेकर कुछ भी नहीं जा पाओगे। क्या हो गया आप लोगों को.....?जब कुछ नहीं ले जा पाओगे, तो क्यों कुछ करना, क्यों कुछ देना? **कण कण स्वतंत्र है, अणु-अणु स्वतंत्र है।** इसलिए ज्ञानियो! मेरा-जैसा जीवन जिओ।

असाधु का मन भी साधुभूत हो जाये, वही साधु का संयोग है। जब सेंट की खुशबू कपड़ों को सुगंधित कर देती है, तो कपड़ों में सुगंध है कि सेंट में सुगंध है? सुगंध तो सेंट में है। जब जड़ सेंट दूसरे को सुगंधित कर सकता है, तो साधु तो चैतन्य भगवान् है। इनके नियोग से समाज में वात्सल्य की सुगंध न फैले, तो साधुस्वभाव कैसा?

मित्र! यदि मोक्ष जाने की भावना है। तो मुनि तो बनना ही पड़ेगा। जिनेन्द्र के शासन में तीर्थंकर ही क्यों न हों वस्त्रधारी की सिद्धि नहीं होती है। नग्नता ही मोक्षमार्ग है, शेष सभी उन्मार्ग हैं। **जहाँ बाहर निर्वस्त्र है, अंदर नग्नत्व है, यही दिगम्बरत्व का स्वरूप है।** बाहर वस्त्रों से नग्न हैं, अंदर वासनाओं से नग्न हैं, यही धरती के देवता अर्हत्व को, सिद्धत्व को प्राप्त होनेवाले हैं। वस्त्र उतारते-उतारते तो कोटि-कोटि भव निकल गये हैं। यथार्थ समझना, जीवन में एक बार वस्त्र उतारने के साथ वासनायें उतार देते तो पंचमकाल में नहीं आना होता। विश्वास रखो, न किसी घर में अँजुली लगाकर जाना पड़ती, न ही किसी के हाथ जोड़ना पड़ते, पैर पड़ना पड़ते। फिर वहीं होते जहाँ अनंत सिद्ध विराजते हैं। कुछ नहीं है। पर मेरा विश्वास है कि जैसे हम आज शांत बैठे हैं, ऐसे ही बैठे रहे, तो नियम से एक दिन ऐसा आयेगा कि अपन सभी वहीं बैठेंगे जहाँ महावीर बैठे हैं। अकाट्य श्रद्धान है। जिनवाणी झूठी हो नहीं सकती। बस, कषाय का अंगारा यदि सामने रखा हो तो अपने हाथ में पानी लेकर जीना, क्योंकि पर्याय का नियत नहीं है। क्या भाग्य लेकर आप आये हो जो इतनी दीपावलियाँ आपने मना लीं, इतने बसंत देख लिये, कब-कब का पुण्य का द्रव्य रखा है। अब पानी लेकर चलने

का समय आ चुका है। आप सबमें मेरा भी नाम है। क्योंकि आपको मालूम है कि अब गर्मी बढ़ चुकी है, पानी का स्तर गिरता चला जा रहा है। रहस्य समझो।

ज्ञानियो! प्रकृति का जो रहस्य है, वह अध्यात्म से स्पर्शित है। आदमी की समतायें घट रही हैं और कषायें बढ़ रही हैं। पानी घट रहा है और तापमान बढ़ रहा है। एक समय था जब स्कूल में कालेज में टीचर डंडा मार देते थे तो कोई पिता शिकायत लेकर स्कूल नहीं जाता था; लेकिन आज के शिक्षकों को तो घबराकर रहना पड़ता है। वर्तमान के जो अपना सम्मान चाहने वाले पिता हैं, वे घर में बिल्ली हो कर रहने लगे हैं। पहले खाँसने मात्र से घर की बहुओं के घूंघट गिर जाते थे। आँख उठा दी कि वे एकदम डर जाते थे। आज पिताओं को अपना सम्मान जीवित रखना हो तो यदि बेटे विपरीत चल रहे हों तो तुम अपना मुख मोड़ लेना; क्योंकि पानी कम हो गया है, ऊष्मा बढ़ गयी है। समझा सकते हो तो पुत्र को भी साधु बनकर समझाना, पिता बनकर मत समझाना।

यह ध्रुव सत्य है कि तापमान बढ़ गया है और पानी कम हो गया है। इसलिए मैं कह रहा हूँ कि पानी लेकर चलने का समय आ गया है। णमोकार सुनाने वाला कोई अंतिम समय में न मिले, पर अगर समता साथ में रही, तो आप अपनी समाधि स्वयं कर लोगे। समता मेरे साथ न रही और किसी ज्ञानी ने कहा कि णमोकार सुनाऊँ? तुरंत कहेगा कि क्या मैं मर रहा हूँ जो णमोकार सुना रहा है?

भैया! अभी से णमोकार सुनने का अभ्यास शुरू कर दो, नहीं तो अंतिम समय में ऐसे भी परिणाम हो जाते हैं। रोटी तो माँगेगा, पर जिनवाणी नहीं सुनेगा। ये तो नियोग है कि यह पुण्य आपका है कि ऐसे खोटे काल में भी जिनवाणी सुनने को तुम दौड़े-दौड़े चले आते हो। जीवन का सबसे बड़ा यही पुण्य है।

आगम में जितनी विद्यायें हैं, इन सबको आप प्रकट कीजिये। नहीं-तो कल किसी श्रावक ने 'मंत्र' शब्द बोल दिया तो उसे श्रावक मिथ्यादृष्टि कहने लग जायेंगे और ऐसा कोई जैनी नहीं होता है जो मंत्रवादी न होता हो। आयुर्वेद शास्त्रों में भी लिखा है कि औषधि भी बनाओ तो मंत्र पढ़कर बनाओ।

ज्ञानियो! जन्म लेते समय मंत्र सुनने को मिले, मरते समय मंत्र सुनने को मिले, उससे बड़ा पुण्यात्मा कौन होगा? बस इतना ध्यान रखना जीवन में। अगली पर्याय भी

मिले तो जीवन में इतना सोचकर जाना कि हे भगवान्! मेरा उस घर में जन्म हो जहाँ जन्मते ही णमोकार सुनाया जाए और मरते समय णमोकार सुनाया जाए जिससे कि मेरा कल्याण हो जायेगा।

माताओ! तुम माँ बनी हो तो बेटों पर इतनी करुणा करना कि जन्मते ही उन्हें णमोकार सुना देना। आपने उसे णमोकार सुना दिया तो विश्वास रखना, वह भी तुम्हारा उपकार मानेगा। आपने जन्म के समय सुनाया है, वह आपको मरण के समय सुनायेगा। स्वार्थी बनकर ही काम कर लो, अपनी ही व्यवस्था कर लो। सुन तभी पाओगे, जब हृदय में समता का नीर होगा। पानी ही मंत्र है, पानी ही जादू है। **एक वचन वह है जो टूटी-फूटी श्रद्धाओं को जोड़ दे। एक वचन वह है जो जुड़ी श्रद्धाओं को तोड़ दे। वचन ही तो बोलना है। घर में आग लगाने तो आपको जाना पड़ेगा, पर हृदयों में आग लगाने के लिये एक शब्द ही पर्याप्त है।** कोटि-कोटि जीवों के हृदयों की श्रद्धा झुलस जायेगी; पर योगी जो होते हैं, वह तत्त्व की पिचकारी छोड़ते हैं ताकि जिनके हृदयों में आग लग रही हो, वह शीतल हो जाए।

क्षमया क्षीयते कर्म, दुःखदं पूर्व-सञ्चितम्।
चित्तं च जायते शुद्धं, विद्वेषभयवर्जितम्॥ 266॥

भैया! घर-घर जाकर यह सूत्र सुनाना **"क्षमया क्षीयते कर्म"**। कर्म का क्षय करना चाहते हो तो सुनना सीखो और बोलना कम करो। बोलना ही पड़ जाय तो ऐसा बोलो कि दुनियाँ कहे कि और-बोलो।

"चित्तं च जायते शुद्धं"। कितने कपड़ों में दाग लगे, सब जल से धोकर शुद्ध कर लिये। भैया! **कपड़ों के दाग तो जल से धोये जा सकते हैं, पर चित्त की शुद्धि के लिये नदी का जल काम में नहीं आयेगा। उसको धोने के लिये तो जिनवाणी का पानी चाहिये, तंत्र-मंत्र नहीं।** अर्हंत की देशना जैसे ही प्रारंभ होती है, हर व्यक्ति को लगता है कि और मिल जाए। दूसरे की बात को सुनना कोई भी पसंद नहीं करता है। विश्वास रखना, जहाँ अपनी बात होती है, हर व्यक्ति का मन कहता है कि और कहो। तो यहाँ क्या कह रहे हैं आ० कुलभद्र स्वामी? कि वस्त्र को तो हम कहीं भी धोकर आ जायेंगे, पर चित्त को शुद्ध करने को क्या करें? **चित्त की अशुद्धि ही**

अनेकानेक रोगों का हेतु है। चित्त की पवित्रता के बिना तन-मन दोनों ही स्वस्थ नहीं हैं। जिनके मन, वचन, काय तीनों ही अशुद्ध हो गये हैं, उनका मोक्षमार्ग तो नष्ट हो ही चुका है। चित्त की जो शुद्धि है, वह कषायों का अभाव किये बिना हो ही नहीं सकती है; क्योंकि मन को उद्वेलित करने वाली यही कषायें हैं जो चित्त को शांत नहीं होने देती हैं।

भैया! तू विश्वास रखना, घर पहुँचकर तू भोजन की थाली को भले ही खाली कर देगा, पर चित्त शांत नहीं रहेगा। दुकान पर व्यापार भी कर रहा होगा, तब भी चित्त प्रसन्न नहीं रहेगा। मंदिर के समय मंदिर भी पहुँच जायेगा, तब भी मन शांत नहीं होगा कि आज मैंने यह कर क्या लिया? प्रतिक्षण उद्वेग। विद्वेग, भय दोनों ही सतायेंगे। भय इस बात का रहेगा कि ये लड़ कर आ गया तो सामने वाला मेरा कुछ कर न दे, इसलिये डर लग रहा है। दूसरा यह लग रहा है कि मेरे में कम ताकत नहीं है, मैं इसको देखूँगा। फिर ऐसे लोग और साथ में मिल जायें कि तुम चिंता मत करो, हम तुम्हारे साथ हैं। वह ज्ञानी तुम्हारा कब शत्रु था जिससे तुम लड़कर आये हो? यह उससे भी अधिक शत्रु है जो तुम्हें उकसा रहा है। बहुत बड़ा शत्रु है। यदि ऐसा मित्र मिल जाता जो कहता कि सत्य बताना, तुम तीन दिन से लड़ कर आये हो, तीन दिन में तुमने कितनी मालायें फेरी हैं? कितना मन लगा है? कितनी पूजायें की हैं? कितनी विशुद्धि बनी है? जो आपने भोजन भी किया है, तो सच्चा डॉक्टर तो यही कहेगा कि तुमने जितना भोजन किया है उन सब का जहर बन चुका है।

मैंने जैन आयुर्वेद शास्त्र में पढ़ा है। जब व्यक्ति भोजन करता है, तब सबसे पहले रस बनता है। **भोजन के काल में जैसे भाव होंगे, वैसा रस बनेगा। तुम्हारे क्रोध रूप परिणाम हैं तो रस तुम्हारा विकृत हो जायेगा और विकृत रस जब शरीर में प्रवेश करेगा तो धातु भी विकृत होगी, आदमी कभी भी स्वस्थ नहीं हो सकता है।** क्या लिख रहे हैं हमारे आचार्य? यदि इन जैनाचार्यों की दृष्टि से तुम्हारी जीवनशैली बन जाये, तो न मानसिक रोग होगा न शारीरिक रोग होगा।

'चित्तं च जायते शुद्धं।' जो लड़कर आया था, यदि एक ऐसा व्यक्ति मिल जाता जो कहता कि भैया! स्वयं का चेहरा दर्पण में देखो। कहाँ गयी तुम्हारी चमक? उमंगें तुम्हारी कहाँ चली गयीं? क्योंकि भीतर अशुद्धि छा चुकी है कि मेरा कुछ कर न दे।

ज्ञानियो! जो दिन में तीन बार भगवान् का नाम लेता था, अब बस, यही सोच रहा है कि अब मेरा कुछ न हो जाए। अथवा मैं उसको देख लूँ। दो पाप कर रहा है। एक तो मेरा कुछ न हो जाय, सो भय सता रहा है। मैं उसका ऐसा कर दूँ, सो विद्वेष सता रहा है। पर सामनेवाले का पुण्य प्रवल है तो कुछ कर तो नहीं पायेगा। नारायण कृष्ण को मारने के लिए कंस ने पूतना नाम की देवी भेजी। पूतना ने सब कर्म कर लिये, लेकिन कृष्ण का कुछ नहीं कर पायी। रावण ने राम को मारने के लिए भ्रामरी नाम की विद्या भेजी, विद्या राम का कुछ नहीं कर पायी। पुण्यात्मा का तुम बाल तो बाँका नहीं कर पाओगे, पर पुण्यात्मा से द्वेष करके पाप का बंध तुम अवश्य कर लोगे।

विश्वास मानो, भैया! यही काम में आना है। अरे! हम तो जैन श्रावक हैं। श्रमण का काम है कि तत्त्व का उपदेश दो और आगे बढ़ो। अब हमें थोड़े ही यहाँ मठ बनाकर बैठना है। पर यह मुझे मालूम है कि पिता जी जो सबकुछ दे गये, उनका नाम तू दिन में कितनी बार लेता है और यह जीव अपने बेटे का नाम कितनी बार लेता है? इतना धर्मात्मा जीव जब अपने पिता जी का नाम नहीं ले पा रहा है, तो फिर तेरे बेटे तेरा क्या नाम लेंगे? यदि नाम ही बचा कर रखना है, तो मंदिर बनाकर जाना।

यह इतिहास साक्षी है कि कितने सारे मंदिर हमारे श्रावकों ने नगरों में, गृहों में, पर्वतों में, गुफाओं में, कन्दराओं में, नदी के तटों पर बनवाये, पर आज उनके नाम धूमिल हो गये हैं। जिन श्रावकों ने बनाये, वे भी चले गये, आज अपन आनंद लूट रहे हैं।

जयवंत हों गोम्मटेश बाहुबली स्वामी। चामुण्डराय तो चला गया, लेकिन सारे विश्व को दिगम्बरत्व देकर गया है। जब भी दिगम्बरों का मस्तक शान से उठता है तो वह हैं हमारे गोम्मटेश बाहुवली स्वामी।

"चित्तं च जायते शुद्धं" चित्त की शुद्धि होती है। देखो भइया! तीन दिन से चेहरा उदास था, एक मध्यस्थ पुरुष मिला, कहता है कि भैया क्यों तुम तीन दिन से उदास दिख रहे हो? कुछ नहीं था। मेरा बेटा खेल रहा था, सो पड़ोसी के बेटे से उसका झगड़ा हो गया, तो मैंने बीच में जाकर पड़ोसी के बेटे को थप्पड़ मार दिया, यह हमसे बहुत बड़ी भूल हो गयी, क्योंकि बच्चे-बच्चे वो तो फिर वहीं खेलेंगे। यहाँ जो बैठे

हैं; ध्यान से सुनो। देवरानी-जिठानी के, पति-पत्नी के, बच्चों के झगड़े के बीच में कभी मत आना। ये तो एक हो जायेंगे, तुम यूँ ही कषाय करोगे। यह सब अज्ञान दशा है। अब पिता-पिता में झगड़ा प्रारंभ हो गया। मध्यस्थ पुरुष जाता है, कहता है कि आपको शांति है क्या? बोले, नहीं। मेरा तो ब्लडप्रेशर बढ़ गया है। बोले, अभी ठीक करता हूँ। धीरे-से फोन कर दिया कि देखो भाई! बच्चों का काम था, अब हम विकल्प न करें और बोले कि हम मंदिर में लेकर आये हैं, अब आप दोनों वहाँ मिल लें। जैसे ही दोनों को गले मिलाया, दोनों से क्षमा मँगवा दी, रक्तचाप नियंत्रित हो गया, चित्त की अशुद्धि भी शांत हो गयी, भय भी समाप्त हो गया, द्वेष भी समाप्त हो गया।

ज्ञानी! कर सको तो इतना काम कर लेना, टूटे हृदयों को मिला देना। लेकिन आग में घी मत मिलाना। '**विद्वेष भय वर्जितम्।**' जैसे-ही जीव क्षमा धारण कर लेता है, उसका विद्वेष नष्ट हो जाता है, भय नष्ट हो जाता है, चित्त में विशुद्धि आ जाती है। यहाँ कोई पैसा भी नहीं लगा, पर ध्रुव सत्य है कि अंत में निर्णय शांति से ही लेना पड़ता है। दो देशों में विवाद हो जाय तो बाद में मध्यस्थता वरतना ही पड़ती है।

भैया! यह तो पर की बातें हो गयीं। निज के भीतर जो द्वंद्व चल रहा है, मानकषाय और माया कषाय, उनसे धीरे-से कहना कि न मान न माया। मार्दव-आर्जव धर्म को हृदय में विराजमान कर लो तो सारी कषाय ठण्डी हो जायेगी।

यहाँ आचार्यमहाराज एक बहुत अच्छी बात कह रहे हैं। जितनी मातायें हैं, अच्छे से सुनो। पहले राजा-महाराजाओं की कन्याओं के साथ उनकी सखियाँ भेजी जाती थीं। बोले कि यहाँ रही है, वहाँ कैसे रहेगी? जब बेटी की विदा होती थी, तब साथ में सखियाँ भेजी जाती थीं। 'महाराज! कौन-सी सखियाँ।' प्रज्ञा, प्रथम सखी। मैत्री, दूसरी सखी। समता, तीसरी सखी। करुणा, चौथी सखी। क्षमा, पाँचवीं सखी। यह पाँच सखियाँ जिसके साथ में चल रही हों, वह जीव वनखण्ड में भी दुःखी नहीं हो सकता। इसलिए जाओ अपने घर, पाँच सखियों को लेकर जाना।

जो चर्चायें व्यक्ति किसी से कह नहीं पाता है, वह अपनी सखी से कहेगा। मित्र की मित्र के प्रति जो सहृदयता है, वह लोकप्रसिद्ध है। जिसका मित्र, जिसकी सखियाँ प्रज्ञा-जैसी हों; समता व करुणा व क्षमा जैसी हों, उस जीव का कर्मों से पृथक् होना निश्चित है। **जो जीव समय पर मंत्रणा करना नहीं जानता है, वह निश्चित ही असफल होता है।**

प्रज्ञा को देखना, ज्ञान को देखना, पुण्य को देखना, फिर व्यक्ति से चर्चा करना। जो प्रज्ञा व पुण्य को नहीं देख पाता है, किसी से भी उलझने का प्रयास कर लेता है, वह मात्र अपना उपहास कराके ही वापस लौटता है। जिसे विद्या का बोध न हो, वहाँ न-जाना ही श्रेयस्कर है। आपको विद्या का ज्ञान नहीं है और बीच-बीच में आप बोलते हो, तो विद्वानों की सभा में उपहास को प्राप्त होते हो।

ज्ञानी पुरुष इस बात को प्रतिक्षण प्रतिपल ध्यान में रखता है। विद्या अनंत प्रकार की है। किसी भी जीव को अज्ञानी नहीं कहना। विद्या की पहचान आना चाहिए। आप चाहो तो विश्व का, देश का और निज के परिवार का विराट् विकाश कर सकते हो। जिसका क्षयोपशम जहाँ प्रवेश नहीं कर रहा है, बेटे का दुकान चलाने का मन कर रहा है और तुम उसे इंजीनियर बनाना चाहते हो, तो उसके दिमाग को खराब करोगे, पैसा बर्वाद करोगे, ज्यादा टेंशन में डालोगे, तो फाँसी लगा लेगा। पालकों के अंदर विवेक होना चाहिए। उसका क्षयोपशम किस ओर जा रहा है, उसकी बुद्धि किस ओर जा रही है, उस ओर उत्साहित करो।

तीर्थंकर के समवसरण में भी एक प्रकार के मुनि नहीं होते। करणानुयोग के ज्ञाता, चरणानुयोग के ज्ञाता, द्रव्यानुयोग के ज्ञाता त्रिवेदाचार्य। जिनको शब्दागम, तर्कागम, परमागम का ज्ञान है, वे योगी त्रिवेदाचार्य हैं। शब्दागम अर्थात् व्याकरण, तर्कशास्त्र अर्थात् तर्कागम न्यायशास्त्र और परमागम अर्थात् सिद्धांत, अध्यात्म शास्त्र। ऐसे तीनों आगमों का ज्ञाता मुनि है, वही त्रिवेदी है, त्रिवेदाचार्य है। जो आगमों का ज्ञाता है, जिससे कवीत्व बनता है, उनको आचार्य प्रोत्साहित कर रहे हैं कि आप कविता करो। कविता से तात्पर्य **जिनमें आगम के गूढ़ रहस्य, श्लोक, गाथा निबंधित हैं; वे सब कवितायें हैं। खोटे शृंगार रसों की व्याख्या का नाम कविता नहीं है। जिसमें वीतरागता घुली हुयी हो और जिसको सुनकर अंदर का वैराग्य प्रस्फुटित होने लग जाए, उसका नाम कविता है।** जिस कविता को सुनने से भ्रूणहत्या जैसी हो जाये, वह कविता 'कविता' नहीं, कवि 'कवि' नहीं है। जैसे किसी माँ ने बच्चे को मारने के लिए गर्भपात की गोली खा ली हो, उस अभागिन माँ को क्या 'माँ' कहना? ऐसे-ही जिस कवि के शब्दों को सुनकर व्यक्ति के भ्रूण की हत्या के भाव हो जाएँ, वह कवि 'कवि' नहीं, कुकवि है। वह कविता 'कविता' नहीं, कुकविता है।

ज्ञानियो! जिनेन्द्र की वाणी न खिरती तो आज आप यहाँ होते नहीं। भगवान् अर्हंत जब तक समवसरण में नहीं विराजते हैं, दिव्य देशना नहीं खिरती है, तब तक तीर्थ प्रारम्भ नहीं होता है, शासन प्रारम्भ नहीं होता। कोटि-कोटि जीव भगवान् की देशना को सुनकर सम्यक्त्व को प्राप्त होते हैं, चारित्र को प्राप्त होते हैं। इसलिये प्रज्ञा बोल रही है कि जिस क्षेत्र में तुम्हारा प्रवेश हो, उस क्षेत्र में पुरुषार्थ करोगे तो आप उसके विशेषज्ञ हो जाओगे। इसलिये जिस विषय का जो ज्ञाता है, उससे उस विषय पर संवाद करो। खोटी कविताओं का कोई संवाद नहीं जिसमें मिथ्यात्व की पुष्टि हो असंयम की पुष्टि हो। मैं तो यही कहूँगा भैया! जितने यहाँ सुधी श्रावक तत्त्व-उपदेश सुनने आये हैं, विश्वास रखना, कोई भी कर्मबंध के लिये नहीं आये। यहाँ जो भी श्रोता आये हैं, वह यही जानने के लिये आये हैं कि आत्मा का आनन्द क्या है? **कर्म बंध की धारा आत्मा का आनन्द नहीं है। जहाँ चंचलता है, वहाँ बंध है। जहाँ कषाय है, वहाँ बंध है।** बुद्धिपूर्वक विशुद्धसागर जी मन में सोचें कि ऐसा शब्द बोलूँ कि सब लोग हँसें। तो वे स्व-पर के बंधक हैं। क्यों?

ज्ञानियो! हास्य भी एक कषाय है। चारित्रमोहनीय बंध के आस्रव का कारण है। हँसने के लिये तो जगत् में अनेक साधन हैं; पर आनन्दित होने के लिये जिनवाणी मात्र है। हँसना कोई बहुत बड़ी बात नहीं है, प्रमुदित होना बहुत बड़ी बात है। हँसना तो कषाय है। प्रमुदित होना, संवेग भाव है।

एक मेढक प्रमुदित होकर पंखुड़ी लेकर जा रहा था समवसरण की ओर, लेकिन नहीं पहुँच सका। मध्य में ही पर्याय विलीन हो गयी, पर ज्ञानी समवसरण में जाकर देव बनकर बैठ गया। यह अर्हत् की भक्ति के भावों की महिमा है। अब आप कहो कि महाराज! मुख में दबाकर ले गया, जूठी हो गयी। ज्ञानी! जूठा-सकरा उनके लिये है जिनके झूठे सकरे भाव हैं। उसके नहीं थे हाथ, इसलिए मुख में दबाकर पुष्प चढ़ाने ले गया था। वह तो भक्ति के सुमन ले गया था। सु-मन है, तो सुमन है। नहीं तो काहे का सुमन...? ज्ञानियो! एक बार सु-मन कर लेता, तो सुमन (पुष्प) न चढ़ाना पड़ते। कितने सुमन चढ़ाये, पर सु-मन नहीं किया। सुमन चढ़ाते-चढ़ाते कुमन कर रहा था। कोई कहता है कि मैं चाँदी की द्रव्य चढ़ाता हूँ। कोई कहता है कि मैं चाँदी की लोंग चढ़ाता हूँ। इसी में अपने मन खराब कर रहे हैं।

हे प्रभो! हृदयकमल है मेरा और चरणकमल हैं आपके। आपके चरणकमलों में मेरा हृदयकमल चढ़ा है। दुनियाँ के फूलों से मुझे क्या प्रयोजन है? जिसका हृदय-कमल नहीं चढ़ा प्रभु के चरणकमलों में और चरण कमलों को न देखा, तो तूने प्रभु को क्या देखा? जड़ क्रियाओं में लवलीन होकर बेचारे बुद्धि को जड़ कर बैठे।

'यस्मात् क्रिया प्रतिफलन्ति न भावशून्याः।'

मुमुक्षुओ! जो क्रिया भावशून्य है, वह फल को देनेवाली नहीं है। भावशून्य क्रिया फलवती नहीं होती है। प्रमुदित होना सीखो। प्रमुदित हुआ नहीं जाता, प्रमुदित होता ही है। आम्रमंजरी खिल जाए, आमों में वौर आ जाएँ, और कोयल न कूके (वसंत की सुगन्धित वायु बहे और कोयल ना कूके) कोयल मान नहीं सकती। इसी तरह धर्म-धर्मात्मा दिख जाए और धर्मात्मा का चेहरा न खिले, तो धर्मात्मा ही नहीं है।

मेघ गरजें, मयूर न नाचे, ऐसा नहीं होता है। पंचकल्याणक चले, महोत्सव हो, निर्ग्रंथ योगी दिखें, धर्मात्मा आ जाए और तुम्हारा चित्त प्रशन्न न हो, ऐसा हो ही नहीं सकता। जिनका चित्त प्रसन्न नहीं होता है, वे संवेग-भाव-शून्य हैं। मेघों की गर्जना पर मयूर ही नाचता है, काक नहीं नाचता है। आम्रमंजरी के आने पर उल्लू नहीं कूकता है, कोयल ही कूकती है। ऐसे ही तीर्थंकर का समवसरण लगे तो भव्य का ही प्रवेश होता है, अभव्य का प्रवेश नहीं होता है। वस्तुव्यवस्था को कौन भंग कर सकता है? जो है, सो है। तीर्थंकर के भी समवसरण में जाने की आवश्यकता नहीं है कि भगवन्! में भव्य हूँ या अभव्य हूँ? आप तो ये बताओ कि पंचपरमेष्ठी, धर्म, धर्म का फल, धर्मात्माओं को देखकर तुम्हारे मन में गद्गद् भाव आ रहा है कि नहीं? बस, इतनी-सी बात बता दो। यदि आता है, तो निश्चित ही भव्य है। जिनवाणी सुनकर जिसका चित्त प्रसन्न हो, वो भव्य भावी-भगवान् है। जो भक्तिपूर्वक श्रुत का पान करता है, उसको आगम भावी भगवान् कहता है। जिनवाणी सुनकर जिसका मन मलिन हो जाए, उसका नाम दिवान्ध है। सूर्यमुखी फूल सूर्य को देखकर खिल जाता है।

आचार्यभगवन् यहाँ समता सखी की व्याख्या कर रहे हैं। ज्ञानी! मेरी बात मान लेना, समता सखी को कभी छोड़ना नहीं। यह सभी जगह आपका सम्मान करायेगी। जब राम रावण युद्ध हो गया, लंका में श्रीराम ने प्रवेश किया, विभीषण आदि सम्राटों

ने श्रीराम का बहुत सम्मान किया। ज्ञानीपुरुष मर्यादापुरुषोत्तम क्या करते हैं? जो लंका है, उसमें कई भवन स्फटिक मणियों के थे। जब अंगद ने प्रथम दिन प्रवेश किया, तो कई जगह दीवारों से टकराये; क्योंकि प्रथम बार जब प्रवेश किया वह समझते थे कि आकाश है। जैसे ही आगे चले, सिर फिर टकरा जाए। इतनी स्वच्छ स्फटिक मणि की दीवारें थीं कि वे आकाश के जैसी लगती थीं। वैसे भवन में जब श्रीराम का सम्मान हो रहा था, तब राम नेत्रों को खोलकर देख रहे थे और विचार कर रहे थे।

हे पुण्य! तू भला नहीं है। हे पाप! तू भी भला नहीं है। राम कह रहे हैं। बलभद्र के पुण्य ने, नारायण के पुण्य ने प्रतिनारायण का घर सूना कर दिया। श्रीराम कह रहे हैं कि हे पुण्य! तेरी प्रबलता तो देखो कि स्फटिक और स्वर्ण भवनों की रचना लंकेश ने की, लेकिन आज अभिषेक बलभद्र और नारायण का हो रहा है। हे पुण्य! किसी ने बनाया और किसी का सम्मान चल रहा है। ये तेरी महिमा तो देखो कि सामने वाले का भवन और उसमें उसी की लाश पड़ी हुई है। नष्ट हो गया।

हे पाप! तू भला नहीं है। रावण! तू यदि पाप न करता, तो तेरी यह दशा न होती। समता के साथ जो जीता है, उसका विश्व में कहीं अपमान नहीं होता है। समता जो है, चारित्र है। समकित की बात अर्थात् समता। जब तक समकित नहीं है, तब तक समता आ नहीं सकती। समकित का तात्पर्य सम्यक्त्व, श्रद्धान, प्रीति, रुचि।

हे श्रमण। वन में रहने से श्रमणत्व नहीं आता है। इसलिए वे अज्ञानी हैं जो जंगल के निवासी होने से मुनिपना मानते हैं। **जंगल का निवास मुनिपना नहीं है। समता का निवास मुनिपना है। समता चाहे जंगल में हो, चाहे वन में हो, भवन में हो, समता है तो साधुता है। समता नहीं तो कोई साधुता नहीं है।** 'जमीन में मिट्टी खोदकर तलघर में बैठने से साधु बन जाऊँगा', मेरे मित्र! जमीन में बैठने से, तलघर में घुसने से यदि साधुता आती हो, तो कालिया नाग तो हमेशा वामी में बैठता है, तो फिर तो वह साधु बन जायेगा? वो विषधर बचता नहीं। आज व्याख्या समता सखी की है। साधना सखी को सुखाना नहीं है। साधना में भोजन नहीं करूँगा। यह किसने कहा कि आप भोजन नहीं करोगे तो आप साधु हो? जितने बीमार हैं, वे जी रहे हैं बेचारे, मूँग की दाल का पानी पी रहे हैं, तो वे सब साधु हो जायेंगे। शरीर साथ नहीं दे रहा है, तब छोड़ा तो क्या छोड़ा? शरीर के साथ देने पर भी त्याग किया, उसी का नाम त्याग करना है।

"युवा-अवस्था का तूफान हो, इन्द्रियों की प्रबलता हो, ऐसे समय में जो विषय-कषाय से शून्य होकर, कषायों के निमित्त मिलने पर भी, समता के साथ, जो मौन होकर बैठता है उसका नाम साधु है।"

माताओ! बहुत सोला करती हो, करना ही चाहिए। पर वस्त्रों के सोले के साथ मन का सोला भी कर लिया करो। यदि किसी छोटे-से बालक ने अज्ञानता में आपकी साड़ी छू ली, तो क्या करोगे? मेरा कहना है कि थोड़ी समझ और लाओ। इतनी छू-छू मत करो कि हृदय की पवित्रता ही नष्ट हो जाये। धर्म के मर्म पर तो जाओ। आप सोले के हो तो आप बचो। क्यों भीड़ में घुस रहे हो? आप विश्वास मानिये, यह छू-छू वाला मार्ग नहीं है। आपने समन्तभद्र स्वामी को नहीं जाना, उनको नहीं समझा। जैनदर्शन में ऐसा तार्किक आचार्य, जिसने अखण्डता और एकता के बिना कोई भी व्याख्यान नहीं किया। जिन्होंने लिख दिया कि श्वान भी देव हो जाता है, देव भी श्वान हो जाता है। किससे? धर्म के प्रभाव से श्वान भी देव हो जाता है और पाप के प्रभाव से देव भी श्वान हो जाता है। ब्रह्माण्ड में इस युग में अहिंसा की श्रेष्ठ व्याख्या करनेवाले आचार्य हुए हैं, वो हैं आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी और सम्यक् की व्याख्या करनेवाले कोई आचार्य हैं तो वह हैं समन्तभद्र स्वामी। हे मुमुक्षु! सम्यक् की व्याख्या की है, किसी के हृदयों को तोड़ने की व्याख्या बिल्कुल नहीं की है।

'रत्नकरण्ड श्रावकाचार' जी में क्या लिख दिया? **न धर्मोधार्मिकैर्विना।** धर्मात्मा को देखिये, धर्म की रक्षा कीजिये, समाज की रक्षा कीजिये। छोटी-मोटी बातों में समाज के टुकड़े मत कर दीजिये। गहरी बातों में जाइये।

मन में अशुभ भाव हों तो साधु की वैयावृत्ति मत करना। जब आहार देने आप जाते हो तो मनशुद्धि, वचनशुद्धि, कायशुद्धि, आहार-जल शुद्ध है। तुम्हारे परिणाम किंचित् भी अशुद्ध हो गये, तो ग्रास रखकर बाहर खड़े हो जाना, क्योंकि यह अशुभ वर्गणायें यदि भोजन में चली गयीं तो साधु के भाव 24 घण्टे खराब रहेंगे। दान देना सीखो। मन में अभिमान मत लाओ। मुनिराज की चर्या जहाँ हो, वहाँ अच्छे से हो जाए। यह भाव मत लाना कि मेरे घर में हो। ऐसे-ही यदि अतिशयकारी प्रतिमा बनाने जा रहे हो, किंचित् भी हीनाधिक परिणाम हो गये, तो प्रतिमा में अतिशय नहीं होगा। घड़ी को सुधरवाने ले जाओगे तो लुहार के घर ले जाओगे क्या? हथोड़े से सुधरेगी कि

सुधारने के लिये छोटे-छोटे औजार, हल्के हाथों से सुधारने वाले चाहिये? ऐसे ही जितना गहरा सूक्ष्म ध्यान में योगी जाता है, सूक्ष्मत्व के लिये आराधना करता है, वैसे-ही परिणामों का हल्कापन चाहिये। समाधि के काल में वैयावृत्ति सबसे नहीं कराई जाती है। पहलवान ने दबा दिया तो क्या होगा? दबाने की शैली चाहिये। अब आप लोग पकड़ नहीं पाते हो, मैं क्या करूँ? यह बात तो भैंस भी जानती है। गर्भाधान के पूर्व की आवाज को सुनना और जब उसका बच्चा हो जाता है तब उसकी आवाज को सुनना। बहुत हल्की हो जाती है।

ज्ञानियो! कुछ मंत्र श्रुत होते हैं, कुछ मंत्र प्लुत होते हैं। कुछ दीर्घ होते हैं, कुछ ह्रस्व होते हैं।

"स्वयंभुवे नमस्तुभ्यं, स्वयंभुवे नमस्तुभ्यं"

प्रतिष्ठा को इतनी विशुद्धि से करो कि पत्थर की प्रतिमा में जान आ जाये। परमात्मा की प्रतिष्ठा बाद में होती है, पहले प्रतिष्ठाचार्य स्वयं की प्रतिष्ठा करता है। भगवान् की प्रतिमा में आचार्य सूरिमंत्र बाद में देता है, पहले अपने आप को देता है। अंकन्यास प्रतिष्ठाचार्य को पहले निज के शरीर में करना चाहिये, फिर प्रतिमा के ऊपर करना चाहिये।

विद्या का सीखना पाप नहीं है, विद्या को सीखना दोष नहीं है। सीखने को तो विद्या विश्व की सीख लेना चाहिये, पर उपयोग उसी का करना चाहिये जिससे आत्मा का हित होता हो।

ज्ञानियो! जो एकांत से द्वैत्व मानता हो, वह भी मिथ्यादृष्टि और जो एकांत से अद्वैत्व मानता हो, वह भी मिथ्यादृष्टि है। हम स्यात् द्वैत्व स्यात् अद्वैत्व वादी हैं। मैं द्वैत्वाद्वैत्ववादी हूँ, जब मैं महावीर की जय बोलता हूँ, तो द्वैत्व में होता हूँ, जब मैं निज आत्मा में लीन होता हूँ, तब अद्वैत्व में होता हूँ। इसलिये द्वैत्वाद्वैत्ववादी हूँ। भक्त और भगवान्, जहाँ दो का सम्बंध होता है, वह द्वैत्व होता है। जहाँ एकत्व-विभक्त आत्मा की अखण्डता की लीनता होती है, वह अद्वैत्ववादी है

"स्वयंभुवे नमस्तुभ्यं"

ॐ भूर्भुवः अर्हं नमः।

ॐ भूर्भुवः अर्हं सर्व शांतिः।

आप सोच रहे होंगे कि महाराज कौन-सा मंत्र बोल रहे हैं। आ. अमृतचंद्र स्वामी 'लघुतत्त्वस्फोट' ग्रंथ में लिखते हैं, तो मंगलाचरण ही 'भूर्भुवः' से प्रारम्भ होता है। तीनलोक के मंत्र इस में विराजते हैं। यही महामंत्र है। यही सूरिमंत्र है।

आत्मकल्याण का इच्छुक श्रावक है तो उसे सफेद पगड़ी बांधना चाहिये और जिसे प्रतिष्ठा में विशिष्टता लाना है, उसे लाल पगड़ी बाँधकर रहना चाहिये। रहस्य की बात बता रहा हूँ।

ज्ञानियो! समझो-समझो, समता सखी की ओर जाओ। कुछ मंत्र होते हैं कि यदि समता से कहोगे तो सामनेवाला समता से सुन लेगा।

समता सखी कह रही है, 'हे जीव! काय-क्लेशो, विचित्र उपवासो।' कितने ही उपवास कर लो, कितने ही कायक्लेश/तप कर लो और अनेक ग्रंथ कण्ठस्थ कर लो, लेकिन हे श्रमण! **"अज्जण मोण पहुदी"** जीवनपर्यंत का अखण्ड मौन ले लो, परन्तु भीतर की आग नहीं बुझी तो फिर श्रमणत्व आनेवाला नहीं है। समता है तो श्रमणत्व है, समता है तो श्रावकत्व है। इसलिये समता सखी को कभी छोड़ मत देना।

जिणगुण सम्पत्ति होउ मज्झं। समता रखो तो जिनगुणों की सम्पत्ति मिलती है। इसलिये सर्वत्र जहाँ भी प्रवेश करो, समता को मत छोड़ना। समता और क्षमा दो सखियाँ हैं।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी प्रिय सखियों की व्याख्या कर रहे हैं। प्रज्ञा, मैत्री, समता, करुणा, क्षमा यह पाँच सखियाँ जिसके पास हैं, वही पंचपरमेष्ठी पद को प्राप्त करने की सामर्थ्य रखता है। समत्व दृष्टि ही भगवत्ता को प्रदान करेगी। जहाँ समत्व है, वहाँ श्रमणत्व की उपलब्धि है। जहाँ समत्व नहीं है, वहाँ श्रमणत्व भी नहीं है। दो हेतु जिनागम में स्वीकार किये हैं। तथोपपत्ति, यह न्याय का महासूत्र है। अविनाभाव सम्बन्ध है। द्रव्य भेष मात्र हो सकता है, लेकिन श्रमणत्व जो है, वह समत्व के साथ है। समत्व की अनुभूति ही श्रमणत्व की अनुभूति है। भेदवृत्ति में अभेदवृत्ति में जहाँ समता है, वहाँ आनन्द है। काषायिक भाव जो है, वह स्वसापेक्ष नहीं है। काषायिक भाव परसापेक्ष है। अन्तरंग परसापेक्ष कर्मोदय, बहिरंग परसापेक्षता धन-धान्य, पुत्र-मित्र इत्यादिक। ये तेरी कषाय उत्पत्ति के हेतु हैं। जितना अपने लिये आपने काषायिक भाव

नहीं किया, उतना पर के निमित्त से किया है। मैं और मेरे के राग में आपने समता को खो दिया। परिस्थिति को देखकर मनस्थिति को विकृत कर दिया।

मुमुक्षुओ! परिस्थितियाँ बंधक नहीं हैं। परिस्थितियाँ मोक्षमार्ग को रोकनेवाली नहीं हैं। परिस्थितियाँ संसार में रुलानेवाली नहीं हैं। परिस्थितियाँ कुछ भी हों, कितनी ही विपरीत खड़ी हो जायें, पर मनःस्थिति विपरीत नहीं होनी चाहिये। सम्यदृष्टि जीव परिस्थितियों पर निर्भर नहीं करता है। सम्यग्दृष्टि मनःस्थिति को सँभालता है। यह चुनौती है, संसार में तुम परिस्थितियाँ सुधार कर देखो। विपत्तियाँ और परिस्थितियाँ तो रहट की घटिया हैं। एक खाली होगी, दूसरी तुरन्त भरकर आ जायेगी। आप चाहो कि मैं परिवार को सुख में देखूँ, ज्ञानी! तेरे चाहने से परिवार सुख में हो जायेगा, इस अज्ञानता को भूल जाना, नहीं तो जीव का कर्मोदय कहाँ चला जाएगा?

आप चाहो कि अपने पूरे वंश को धन-धान्य से सम्पन्न कर दूँ, ज्ञानियो! भाव ही कर पाओगे, पर यदि लाभान्तराय कर्म का क्षयोपशम नहीं होगा, तो क्या दे पाओगे? सम्पूर्ण विश्व को तुम निरोगी देखना चाहते हो, यह भावना ही भा सकते हो, लेकिन मुमुक्षु! किसी जीव के बंधे कर्मोदय को टालने में तुम समर्थ नहीं हो सकते हो। समता की रक्षा करना चाहते हो तो कर्म-उदय पर नहीं जीना। **समता की रक्षा करना चाहते हो तो जिन भावों से बंध होता है, उन भावों को बंद करना होगा। जीव चाहता है कि सबको सुख में देखूँ, वे भी दुःखिया हैं। जो स्वयं को सुखी देखना चाहते हैं वे भी दुःखिया हैं। जो सबको सुखी देखना चाहते हैं, वे भी दुखिया हैं। जो संसार को दुःखी देखना चाहते हैं, वे भी दुःखी हैं।**

मित्रो! संसार में दो प्रकार के जीव हैं। कुछ रागी हैं जो सबको सुखी देखना चाहते हैं और जो द्वेषी हैं, वे सबको दुःखी देखना चाहते हैं। वो बेचारे इस बात को भूल जाते हैं कि मैं किसी के दुःख और सुख का भी कर्त्ता नहीं हूँ। मैं निज के ही सुख-दुःख के भावों का कर्त्ता हूँ। अब समयसार के परम सत्य को सुनिये।

मैं चाहता हूँ कि उस विषय को जाना जाए जिसे जीव नहीं जान पा रहा है। जगत् के चुटकुले तो अनंत वार सुने हैं। **'सत्ता सव्व पयत्था'** सम्पूर्ण पदार्थों की सत्ता त्रैकालिक है।

"त्रैकाल्यं द्रव्य षट्कं"। छः द्रव्य त्रैकालिक हैं। फिर हे जीव! अजन्मा का जन्म कैसे? अनुत्पन्न की उत्पत्ति कैसी? हे ज्ञानी! तू जन्मा है, कि तेरी उत्पत्ति हुई है? उत्पन्न यदि जगत् में कोई भी द्रव्य हो जायेगा, तो फिर त्रैकालिक शब्द समाप्त हो जायेगा। ब्रह्माण्ड में कोई वस्तु उत्पन्न नहीं होती। जन्म नहीं लेती है। परिणमन करती है। जो परिणमन हो रहा है, उसका नाम जन्म है, वस्तु की उत्पत्ति का नाम जन्म नहीं है; क्योंकि वस्तु उत्पन्न होती ही नहीं है।

युवाओ! वस्तु उत्पन्न नहीं होती है। आप लोगों की बुद्धि का अपहरण किया गया कि वह अमुक वैज्ञानिक का सिद्धान्त है। यह विषय मैं जानकर छेड़ता हूँ ताकि इन युवाओं को समझ में आ जाय कि यह जैनदर्शन रूढ़ि का दर्शन नहीं है, इसके भीतर सारे विश्व का सिद्धान्त भरा हुआ है; परन्तु वक्ता इसकी व्याख्या नहीं कर पा रहे हैं, इसलिये बच्चे धर्म से दूर हो रहे हैं। आइन्सटीन! यदि आप कहते हो कि इस सिद्धान्त का मैं कर्त्ता हूँ, तो ध्यान दीजिये, आप बोलते हो कि महाराजश्री! मेरे पिता बालब्रह्मचारी हैं, मैं उनका बेटा हूँ, मेरी माँ वन्ध्या है, उसका मैं बेटा हूँ। ज्ञानी! जैसे ये स्ववचन-बाधित है कि पिता बालब्रह्मचारी, तो बेटा कैसा और माँ बाँझ, तो बेटा कैसा? मित्र! सिद्धान्त तो त्रैकालिक होता है। सिद्धान्त का तू कर्त्ता कैसा?

जिसने अन्वेषण कर लिया, जिसने देख लिया, इसी वस्तु को वह कहने लग जाय कि मैं इसका कर्त्ता हूँ, ज्ञानी! यह व्यभिचार है, क्योंकि आप कर्त्ता नहीं हो, आप तो अन्वेषक हो। देखनेवाले हो।

"सत्ता सव्व पयत्था"

मुमुक्षुओ! सम्पूर्ण द्रव्यों की सत्ता त्रैकालिक है। पर्याय दृष्टि से तुम जिसे नाश कहते हो, वह व्यय है, परिणमन है। किसी द्रव्य में यदि आपने अग्नि लगा दी, तो उसका रूप राख बन गया, पर वह नष्ट कहाँ हुआ है? नाश नहीं होता है, व्यय होता है। व्यय को ही व्यवहार से नाश शब्द से सम्बोधित किया जाता है।

पुनः प्रश्न है। ज्ञानी! तेरा कर्त्ता कौन है? आप बदलना जानते हो, धिक्कार हो तेरे परिणामों को। नाम के आगे सागर लग गया, सो भैया सागर बन गये और उनसे प्रश्न किया, 'मेरे मित्र! घर छोड़कर, कपड़े उतारकर, क्यों घूमने लग गये आप? आपको मालूम नहीं है कि जन्म, जरा, मृत्यु के क्षय के लिये मैं मुनि बना हूँ।

आज क्या है? आज मेरी जन्मजयन्ती है। हे अज्ञानी-ज्ञानी! जिसके नाश के लिये तू दिगम्बरत्व को प्राप्त हुआ है, उसी के लिये उत्साह बढ़ा रहा है। तो ये नाश होगा जन्म का, कि जन्म की वृद्धि होगी? जिसे तू जन्म कह रहा है, वह पर्याय का परिणमन है। कुंदकुंद देव कह रहे हैं—हे ज्ञानी! मेरा मरण ही नहीं है, तो मेरा जन्म कैसा? मेरा जन्म ही नहीं है, तो मेरा मरण कहाँ से होगा?

मैं तो अहेतुक हूँ। मैं मेरा ही कर्त्ता नहीं हूँ। विश्वास रखना, भैया! जब तू तेरा ही कर्त्ता नहीं है, क्या पारिणामिक भाव का कोई कर्त्ता होता है? वस्तु का कोई कर्त्ता होता है क्या? वस्तु त्रैकालिक होती है। मुमुक्षुओ! मैं अहेतुक हूँ। मेरी पर्याय हेतुक हो सकती है।

बह्वारम्भ परिग्रहत्वं नारकस्यायुषः ॥त.सू.॥

अल्पारम्भ परिग्रहत्वं मानुषस्य ॥त.सू.॥

स्वभाव-मार्दवं च। माया तैर्यग्योनस्य ॥त.सू.॥

सरागसंयम-संयमासंयमाकामनिर्जरा-बालतपांसि दैवस्य ॥

यह जो सूत्र हैं, यह पर्याय के परिणमन के लिये हैं। द्रव्य की द्रव्यत्वता के लिये कोई सूत्र नहीं है। मैं सदा स्वभाव का कर्त्ता हूँ, मैं सदा स्व बंध का कर्त्ता हूँ। पर मैं 'मैं' का कर्त्ता नहीं हूँ। इसलिये लक्ष्य जो होना चाहिये, भवों पर नहीं होना चाहिये, द्रव्य पर होना चाहिये। जब तक भगवान् को देखता रहेगा, स्वर्ग जाता रहेगा और यदि परिवार को देखता रहेगा तो नरक जाता रहेगा। उनके राग में मायाचारी करेगा तो पशु बनता रहेगा और धर्म के मार्ग में आकर भी धर्मात्मा बनकर नहीं रह पायेगा, तो निगोद चला जायेगा। परन्तु भगवान् बनना है तो न भाव देखना है, न भगवान् देखना है। भवातीत निज शुद्धात्मा को देखना है।

बालको! ध्यान रखना, सत्य को समझने के लिये असत्यवादी कहने लगते हैं कि व्यवहार का लोप हो जायेगा। पर यह बहुत बड़ी विडम्बना है, सत्य को जाने बिना असत्य को सत्य स्वीकार रहे हैं। विद्वानो! यह तुम्हारे जीवन की बहुत बड़ी भूल है। आपने सम्बन्धों को देखना शुरू कर दिया, बन्धुओं को देखना शुरू कर दिया, पर जिसके सम्बन्ध हैं, जिसमें बंध है, वह वस्तु क्या है? उसे क्यों नहीं देखते? सम्बन्धों को देखने में निज पर ध्यान नहीं है।

ज्ञानी! तूने उसकी तेरे प्रति राग पर्याय को देखकर अपना मान लिया और दूसरे को अपना नहीं मान रहा है। इन दोनों के जीवत्व भाव को देखता तो दोनों में क्या अन्तर था? कोई अन्तर नहीं था। जब जीव ऊपर जाने लगेगा, उस समय न शत्रु तेरा हाथ पकड़ पायेगा, न मित्र तेरा हाथ पकड़ पायेगा। मेरे मित्र! हंस को अकेला ही जाना पड़ेगा। जो अकेला जानेवाला है, उसे जानने की चेष्टा क्यों नहीं करता? सारे जगत् को जानने के लिये तो तुमने सबकुछ किया। मुनिमुद्रा मालूम है क्यों धारण करना पड़ती है? जिससे सारे जगत् को जाना जाता है, उस जाननहार को जानने के लिये मुनिमहाराज बनना पड़ता है।

यथार्थ मानिये, जैनदर्शन अलौकिक है अद्‌भुत है। किसी की कथा, निंदा, आलोचना किये बिना वस्तुस्वभाव की व्याख्या करता है।

ज्ञानी! अग्नि दाहक है, अग्नि पाचक है, अग्नि प्रकाशक है। अग्नि एक है। अग्नि दाहक है रोटी के लिये पका दिया और तुझे अध्ययन करना था तो प्रकाश कर दिया। अग्नि ने क्या किया? वैसे ही मुमुक्षुओ! हमारा जो ज्ञान है, ज्योति कहलाता है। प्रकाश और ज्योति कहलाता है ज्ञान।

"तज्जयति परम ज्योतिः"

"नमः श्री समयसाराय स्वानुभूत्या चकासते" ये जो प्रकाशमान है ज्ञानज्योति, कुछ अज्ञानियों ने क्या किया कि समयसार को पढ़ा और उसमें जो 'ज्योति' शब्द है, सो वल्व लगाकर बैठ गये। पूछा 'क्या कर रहे हो?' बोले, 'ज्योति का ध्यान कर रहा हूँ।' अरे अज्ञानी! इस पुद्‌गल की पर्याय की ज्योति का ध्यान नहीं है। समयसार में चिद्-ज्योति ज्ञानस्वरूप भगवानात्मा का ध्यान है।

युवाओ! देखो ध्यान से, ये तेरी आँखें हैं। मुझे बताने की आवश्यकता नहीं है। इन्हीं नेत्रों से नृत्य देख रहा था, इन्हीं आँखों से जिनालय की ओर निहार रहा है, इन्हीं नेत्रों से वेश्यालय की ओर गया। दाहक, पाचक, प्रकाशक। इन्हीं आँखों से स्वयं को देख सकता है। किसी पर स्त्री को पुरुष निहार रहा है तो तेरी आँखें तुझे जला रही हैं। करुणा तेरी विलीन हो गयी है निज के प्रति! ये ही आँखें प्रभु को देखने लग जाएँ तो आँखें तेरी पाचक हो गयी। कर्म को पका रही हैं। वे ही आँखें निहारें निज की ओर, तो तेरी आँखें प्रकाशक हो गयीं। तेरे स्व का प्रकाश करा दिया।

ज्ञानी! मेरा ज्ञान प्रकाशक है। मेरा ज्ञान दाहक है। मेरा ज्ञान पाचक है। जब तपस्या में लगायेंगे, तो पाचक होगा। विषयों में लगाओगे तो दाहक होगा और निज में लगाओगे तो केवलज्ञान का प्रकाश आयेगा।

भैया! आपके यहाँ इतना गहरा आगम है कि वर्षों-वर्षों व्यतीत हो जाएँ, फिर भी किसी व्यक्ति का नाम लेने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। इतना गहरा तत्त्व भरा हुआ है।

जो चौथी सखी है, उसका नाम करुणा है। जिसके भीतर करुणा नहीं, वो पुरुष कैसा? जिसके भीतर करुणा नहीं, वो जीव कैसा? जिसके अन्दर करुणा नहीं, वह मानवता से युक्त कैसा? जिस दिन निज पर करुणा आ जायेगी, उस दिन सारे जगत् में तेरी करुणा छा जायेगी! अभी तक लोगों ने दया को दया नहीं जाना। यह प्रश्न है मेरा, कि बेटा! तेरे दादा का सिरदर्द होने लगे तो रोओगे कि दबाई दोगे? सामने बेचारा सिर पटक-पटकके रो रहा है, तुम्हें इतनी करुणा नहीं कि तुम्हारी आँख में आँसू आ जाए?

वे जीव अज्ञानी हैं जो दु:खी प्राणी को देखकर रोते हैं। अरे ज्ञानी! सुन, जिसके सिर में दर्द था, उसके असाता का उदय था। आपके अन्दर करुणा थी तो कहते कि णमोकार का पाठ करो आप, और दवाई मैं लगाता हूँ। औषधि लगा देते और णमोकार का पाठ उनसे करवाते, तो असाता को साता में संक्रमित करते। यदि बेटा तू जाकर रोने लगता, दु:खिया के सामने दु:ख दिखाता, तो वो और-रोयेगा और तुम असाता का आस्रव करोगे।

हे अज्ञानी! रोने का नाम करुणा नहीं है। उस दु:ख को दूर करने का नाम करुणा है। महाराज को अन्तराय आ गया, अब फूट-फूटकर रोने लग गये कि आज हमारा उपवास। अरे अज्ञानी! एक तो तूने असावधानी वरती, सो अन्तराय हो गया। अब स्वयं भूखा बैठा रहेगा, सो उनकी सेवा कौन करेगा? अरे! और-अच्छे से भोजन करके आओ और उनकी सेवा करो। अन्तराय आ गया, दानान्तराय कर्म का उदय था, सो अन्तराय आ गया। उनका लाभान्तराय कर्म का उदय था। दोनों के टल गये, एक अन्तराय निकल गया। तू दूसरे के कर्म को टालने का कर्त्ता नहीं है। आदिनाथ स्वामी से पूछ लेना। यदि करुणा है, तो **ऐसी करुणा मत करना कि कोई व्यक्ति विलख रहा है, रोग से**

पीड़ित है, बोले कि जहर का इंजेक्सन लगा दो, बेचारा जल्दी चला जाए। यह करुणा नहीं है। यह तो हत्या है। और यह भी करुणा नहीं है कि एक बालक ने दूसरे बालक से कहा कि देखकर चलना, चीटियाँ हैं, पर फिर भी उसका पैर पड़ गया, तो उसने एक दिया थप्पड़। यह भी करुणा नहीं है। यह तेरी अज्ञानता है। तीन इन्द्रिय पर करुणा दिखा रहा था और पंचेन्द्रिय को मार रहा था। यह करुणा थी, कि करुणा का राग था? यदि करुणा आप में थी, तो तीन-इन्द्रिय की रक्षा के भाव हों और पंचेन्द्रिय की भी रक्षा के भाव हों। धर्म अज्ञानमयी नहीं है, धर्म तो ज्ञानमयी है। आपने किसी पर करुणा की, किसी को धक्का मार दिया, यह करुणा नहीं है। यदि करुणा होती, तो उसको भी धक्का नहीं मारते और उसकी भी रक्षा करते।

हे ज्ञानी! जो निज पर कर्मबंध से करुणा करेगा, वह जगत् पर करुणा कर सकेगा। जिसको निज पर करुणा नहीं है, उसको आदिनाथ-जैसे घूमना पड़ेगा। हाँ, जो है सो है। न्याय की गद्दी पर बैठकर रिश्ते नहीं चलते। न्याय की गद्दी पर बैठकर यदि रिश्ते चला रहा है, तो उसे किस अज्ञानी ने न्यायाधीश बना दिया?

ज्ञानियो! आदिनाथ स्वामी से पूछना, तुमने करुणा खोकर करुणा की तो छः महिने घूमना पड़ा। संसार में वे ही करुणाशील होते हैं, जो करुणा खोकर करुणा करते हैं। जब कृषि की शिक्षा दे रहे थे आदिनाथ स्वामी, उस समय किसानों को समझा दिया। किसानों ने कहा कि हे स्वामी! कृषि में जब दाय करता हूँ, तो बैल सब खा जाते हैं। मेरे लिये तो कुछ बचता ही नहीं है। बोले, तुम चिन्ता मत करो। प्रजा पर ऐसी करुणा दिखाई कि तिर्यंचों पर करुणा भूल गये। नेता बन जाओगे तो तुम्हें जनता दिखेगी, पशु नहीं दिखेंगे।

ज्ञानी! भले ही पिता जी बेटे को डाँट रहे हैं, पर कर्मसिद्धान्त कहेगा कि ये तेरा राग ही डँटवा रहा है। पड़ोसी के बेटे को क्यों नहीं डाँटते हो? कर्त्ताबुद्धि है, इसलिये वहाँ बंध होगा। मनीषियो! आदिनाथ स्वामी ने क्या किया? करुणा की, पर करुणा छोड़कर करुणा की, उसका परिणाम क्या हुआ? बोले, ऐसा करो कि मुसीका लगा दो। जैसे-ही मुसीका लगाया, कर्म कह रहे थे, 'सुनो महाराज! तुम तीर्थंकर रहो, परन्तु नीति न्याय और सिद्धान्त कहेगा कि जगत् की आँखों पर पट्टी हो सकती है, पर कर्मसिद्धान्त पर कोई काली पट्टी नहीं होती है।

मुसीका लगवाया आपने। पूर्व में आपके चरणों में सोधर्म इन्द्र हाथ जोड़े खड़ा रहता था नौकर की भाँति। वह सौधर्म इन्द्र का अवधिज्ञान कहाँ विलीन हो गया जब 6 महिने घूम रहे थे? कोई कहता कि कन्या ले लो, कोई कह रहा कि हार ले लो, मुकुट ले लो, परन्तु वे तो चले आ रहे हैं। क्यों? जब तक नवधा भक्ति नहीं होगी, तब तक दिगम्बर मुनि किसी के द्वार पर खड़ा नहीं होता। यह मोक्षमार्ग है। यह निर्ग्रंथों की चन्द्र चर्या है। जैसे चन्द्रमा बिना भेदभाव के प्रकाश करता है। वायु और सूर्य के प्रकाश पर किसी व्यक्ति विशेष का अधिकार नहीं है। उसी तरह दिगम्बर मुनि पर भी किसी का अधिकार नहीं है। यह मत कहना कि महाराज! मेरे घर आना, उनके घर मत जाना। नहीं। चन्द्र चर्या। जैसे चन्द्रमा का प्रकाश सार्वजनिक है, वैसे ही दिगम्बर साधु भी किसी के बंधे हुये नहीं हैं। सभी घरों में जा रहे हैं। निर्ग्रंथ मुनि निकलते सभी जगह से हैं; परन्तु ठहरते वहीं हैं, जहाँ नवधा भक्ति होती है।

जब आदिनाथ स्वामी आहार को घूम रहे थे, तब सौधर्म इन्द्र का अवधिज्ञान काम में नहीं आया। चक्रवर्ती भरतेश भी काम में नहीं आया। कामदेव बाहुबली भी काम में नहीं आये। क्यों? जो कर्म का बंध आपने किया था, वह कर्म का विपाक आपको ही तो भोगना पड़ेगा। मुसीका लगवाया था, करुणा की थी आपने करुणा छोड़कर। सो कर्म ने ऐसी करुणा की कि स्वामी! तुम भले ही तीर्थंकर हो, लेकिन फिर भी 6 महिने तक विधि नहीं मिली। 6 महिने तक ध्यान किया। 13 माह हो गये, भगवान् की चर्या नहीं हुयी। क्यों? क्योंकि भोगभूमि का समय था, किसी को मालूम ही नहीं था कि भगवान् के आहार होते कैसे हैं। तीर्थंकर ऋषभदेव नगर-नगर में विहार करते रहे और जब कर्मोदय मंद हुआ, तो वही महाराज सोम और श्रेयांस के घर महाराज की विधि मिल गयी। वही चक्रवर्ती भरत, वही सौधर्म इन्द्र भगवान् की भक्ति की अनुमोदना करने आ गये। सौधर्मेन्द्र कहता है कि अहो सोम! अहो श्रेयांस! आप धन्य हो कि आपने दानतीर्थ की प्रवृत्ति की है।

जीवन में ध्यान रखना, **करुणा तो करना, पर जीवन में करुणा छोड़कर करुणा मत करना। दया तो करना, पर दया छोड़कर दया मत करना।** यह सखी तुम्हारी चौथी है। कभी-कभी जीव विवेकहीनता कर बैठता है। कैसे? आपके मित्र के राग में आप दूसरे को डाँट रहे थे। पर इतना और विवेक रखते कि भाई! सबके दिन एक-से

नहीं होते। भाई! ये भी कभी काम में आयेगा। यह ध्यान रखना। **किसी को सुधारने का भी लक्ष्य हो तो इतना उसे मत सुधारने लग जाना कि भव-भव तुम्हारा बिगड़ जाये।** जीवन में किसी को अपना शत्रु मत मानना। जिसके राग में लड़ाई हुई अनेक भव तक, रावण सीता को देखो और भविष्य में? वही रावण तीर्थंकर बनेगा और वही सीता का जीव गणधर बनेगा। इसलिये मुस्कुरा कर जीवन जीना। हे ज्ञानी! कौन शत्रु है, कौन मित्र है? हो सकता है कि जो आज तुमको सता रहा है, वही तुम्हारा गणधर बनके बैठ जाए। इसलिए कभी मत सोचना कि कौन मेरा शत्रु है, कौन मेरा मित्र है?

"न मे शत्रुः न च मे प्रियाः"

पाचवीं सखी जो है, वह क्षमा है। वह कह रही है कि मेरे साथ रहो, सबको क्षमा कर दो, तो सब तेरे चरणों में होंगे। जगत् में क्षमा से बड़ी कोई वस्तु नहीं है। कितने ही आकाश में विमानों में उड़कर आ जाना, लेकिन आखिर उतरना तो पृथ्वी पर ही पड़ेगा। पृथ्वी का नाम क्षमा है। तुम कितने ही ऊपर चले जाओ, पर उतरना तो धरती पर ही पड़ेगा। वैसे-ही मुमुक्षुओ! कितने ही कषाय के विमानों में उड़ लेना, अन्त में तो क्षमा की पृथ्वी पर उतर कर आना ही पड़ेगा। क्यों भैया! उबलते पानी में चेहरा देखा है कभी? वही पानी ठण्डा हो जाए तो चेहरा दिखेगा कि नहीं? इसलिए चिन्ता मत करो। कोई गुस्सा भी करे तो शान्ति से मौन लेकर किनारे बैठ जाओ। आपको मालूम है कि समय दे दो तो उसी में चेहरा दिखने लग जायेगा।

दिगम्बर मुनि की चर्या 'चन्द्र चर्या' होती है। जैसे चन्द्रमा का प्रकाश सर्वत्र होता है, इसी तरह मुनि की चर्या है। अक्ष-मृक्ष। जैसे गाड़ी में ओंगन डाल देते हैं जिससे कि धुरी न टूट जाए, ध्वनि न करे। ऐसे-ही दिगम्बर मुनि भी इस उदर रूपी गाड़ी में ओंगन डालने को जाते हैं। जैसे घर के सामने गड्ढा होने पर आप उसको बिना विचार किये भर देते हैं। ऐसे-ही दिगम्बर मुनि भी उदर रूपी गड्ढे को प्रासुक भोजन से भर देते हैं। अगली है मधुकरवृत्ति। जैसे भँवरा पुष्प में छेद किये बिना अपना भोजन ग्रहण कर लेता है, ऐसे ही दिगम्बर मुनि श्रावक के घर में जाकर, श्रावक को सताये बिना, आहार लेकर आ जाए। शान्ति से, अंजुली को निहारते हुये, आहार लेकर आ जाते हैं। यह है मुनियों की मधुकर वृत्ति। अगली वृत्ति का नाम है गोचरी वृत्ति! एक होता है ईंटें ढोने वाला खर। जब वह चरने जाता है तो घास को जड़-मूल से उखाड़

देता है। पर गाय जो होती है, वह जड़ से नहीं, ऊपर-ऊपर से घास निकालती है, जड़ को छोड़ देती है। ऐसे-ही दिगम्बर मुनि हैं। ऐसा नहीं होता कि पूरी थाली साफ करके आ जाएँ। यदि एक गिलास कोई सामग्री है तो पूरी नहीं लेंगे, कुछ छोड़ देंगे। गोचरी वृत्ति है। जैसे गाय छोड़कर लेती है, ऐसे-ही दिगम्बर मुनि कभी किसी के चौके में खाली करके नहीं आते हैं। गोचरी वृत्ति। परन्तु जब तक नवधा भक्ति पूरी नहीं हो जाती है तब-तक आहार ग्रहण नहीं करेंगे।

पड़गाहन पहली भक्ति है। दूसरी भक्ति उच्च-स्थान, पादोदक, गंधोदक लगाना, फिर उनकी पूजा करना, अर्चना करके नमस्कार करना। 'प्रणाम' नमन करना और मन शुद्धि, वचन शुद्धि, काय शुद्धि, आहार-जल शुद्ध है बोलना।

ईमानदारी से आहार देना, वास्तव में शुद्धि पूर्वक। अगर कोई अशुद्धि में आहार देता है, तो वह कुभोगभूमि जायेगा। यदि देवआयु का बंध हो गया है, तो भवनत्रिक में जायेगा। जिसका कुल, शरीर, वस्त्र शुद्ध न हो, ऐसा जीव यदि घुसकर दान देता है, तो पुण्य तो लगेगा, पर वह पुण्य ले जायेगा भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी में। जिस जीव के सम्मेद शिखर जाने के भाव न हुये हों और जिसने कभी दिगम्बर मुनि के हाथ पर ग्रास न रखा हो, निश्चित मानना कि वह नरक-आयु का बंधक जीव है। जिस जीव ने तीर्थंकर और दिगम्बर मुनि के हाथ पर ग्रास रखा हो, निश्चित समझना कि ये भावी भगवान् है। भव्य जीव ही भगवान् की भक्ति करता है कर्मनिर्जरा के लिये। जिसने निर्ग्रंथों की आराधना की है, उसने अर्हंतों, सिद्धों की ही आराधना की है, पर निर्ग्रंथ दशा तुम्हारे समत्व, करुणा और क्षमा भाव से ही होगी।

हे मुमुक्षु! जो जीव अर्हंत की आराधना नहीं करता, निर्ग्रंथ को दान नहीं देता, वह जीव हिंसक है। अरे! आपको मालूम होना चाहिये क्यों हिंसक है। लोभकषाय है। तुम दान क्यों नहीं दे पा रहे हो, क्योंकि द्रव्य चला जायेगा। लोभकषाय है। पूजा क्यों नहीं कर रहे हो? समय नहीं है। लोभकषाय है। जो आत्मा को हने, आत्मा को कसे, उसका नाम कषाय है। **"अप्पाणं हणदि अप्पेण"**। आत्मा का घात तो आत्मा से होता है। बिना लोभ के व्यक्ति दान देने को मना कर नहीं सकता है। जहाँ लोभकषाय सता रही है, अन्दर कितने ही बहाने बना लो, मोह राग अथवा प्रमाद सता रहा है, यह सब हिंसा है। कौन सोला पहने, कौन द्रव्य धोये? यह प्रमाद तुम्हारा है। प्रमाद ही हिंसा है।

भैया! अनुमोदना वे करें जो लंगड़े, लूले, बहरे हों। जिनके कुल शुद्ध न हों, वे अनुमोदना करें। पर जिनके कुल शुद्ध हैं, शरीर सर्वांग हैं, वे अनुमोदना न करें, वे ज्ञानी हाथ से दान दें। अनुमोदना उनके लिये है जो देने में असमर्थ हैं। जो कर नहीं सकते हो, उसकी अनुमोदना करो; पर जो कर सकते हो, उसकी अनुमोदना की क्या अवश्यकता है? स्वयं ही करना।

'कार्तिकेयानुप्रेक्षा' में लिखा है कि निर्ग्रंथ को दान, अर्हंत की पूजा, संतान को जन्म—ये नौकरों से नहीं कराना पड़ते हैं। यदि तुम संतान भी नौकर से पैदा कराओगे तो बेटा किसका कहलायेगा? तुम्हारा, कि नौकर का?

ऐसे-ही पूजा के लिये पुजारी और महाराज के आहार के लिये नौकर, वह पुण्य किसके पलड़े में जायेगा? तेरे, कि नौकर के? इसलिये आज से ध्यान रखना, जब भी नगर में योगिराज पधारें, कपड़े बदलकर दोनों हाथों से दान देना। भगवान् के अभिषेक-पूजन का समय हो तो गद्गद् भाव से अभिषेक-पूजन करना। इस पर्याय का तो नाश हो ही जाना है। जितना बने सो कर लो, कर लो।

ज्ञानियो! आज से जीवन में बस इतना ध्यान रखना जैसे राजा सोम-श्रेयांस ने भगवान् को आहार देकर इतने विराट् पुण्य का संचय किया। जो तीर्थंकर को दान देता है, वह जीव नियम से मोक्ष जाता है। भगवान् को आहार देता है, योगियों को दान देता है, उसका नियम से मोक्ष होता है।

ज्ञानी! आज से स्वतन्त्र कर्त्ता होकर जीना और इन पाँच सखियों को हमेशा साथ लेकर चलना।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।



सेवन करने योग्य

प्रज्ञा तथा च मैत्री च समता करुणा क्षमा।
सम्यक्त्वसहिता सेव्या सिद्धि-सौख्य-सुखप्रदा॥267॥

अन्वयार्थ—ज्ञानी को उचित है कि **(सिद्धि-सौख्य-सुखप्रदा)** सिद्धि के अनुपम सुख को देने वाली इन **(प्रज्ञा तथा च मैत्री च समता करुणा क्षमा)** प्रज्ञा, मैत्री, समता, दया और क्षमा इन पाँचों को **(सम्यक्त्व सहिता सेव्या)** सम्यग्दर्शन सहित सेवन करें।

भावार्थ—भव्यात्माओं को सम्यक्त्व सहित सिद्धि के अनुपम सुख को देने वाली प्रज्ञा, मैत्री, समता, दया और क्षमा इन पाँचों स्त्रियों को स्वीकार करना चाहिए।

॥ सद्-देशना ॥

अन्तिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सब विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी पाँच सखियों की चर्चा कर रहे हैं। सिद्धत्व की सिद्धि चाहिये तो मुमुक्षुओ! पाँच सखियों को लेकर चलना। अब्याबाधत्व की अनुभूति चाहिये तो पाँच सखियों को लेकर चलना। सुखी जीवन जीना है तो प्रज्ञा, मैत्री, समता, करुणा, क्षमा यह पाँच सखियाँ हैं। धन्य है उस जीव को जो निज पर करुणा किये है, अदयाभाव को छोड़कर करुणा भाव को प्राप्त किये है। मोक्षमार्ग कोई शब्द मात्र नहीं है। पाँच सखियाँ कह रही हैं कि मैं जहाँ हूँ, वहाँ मार्ग है और जहाँ मैं आपको लेकर चलूँगी, फल है। पाँचों सखियाँ कह रही हैं कि जहाँ मैं हूँ, वहीं मार्ग है। जहाँ मैं ले-जाकर स्थिर कर दूँगी, वहीं फल है। मार्ग और मार्ग का फल।

मुमुक्षुओ! रत्नत्रय मार्ग है, 'मोक्ष' मार्ग का फल है। जिसने पानी छानकर पीना प्रारम्भ कर दिया है, करुणा सखी है उसके साथ। आपको मालूम होना चाहिये कि एक-एक समय की धारा आपके मोक्षमार्ग में निवेशित है। जिस व्यक्ति को पानी छानने का ही विवेक नहीं है, उसके पास करुणा नाम की सखी नहीं है। जिसके पास करुणा नाम की सखी नहीं, वह क्या मोक्ष को प्राप्त कर सकता है? छन्ना लगा है, थैली टाँग दी, विलछानी कब होगी? जब थैली सड़कर टपक जायेगी। ओहो! यह तुमने क्या

किया? ज्यादा हुआ तो उठाकर निचोड़ दिया। हे अभागे! तेरी करुणा-बुद्धि कहाँ चली गयी? जिनका निर्वाण महोत्सव हम मनाने बैठे हुये हैं, वे परमात्मा से परमात्मा नहीं बने। ज्ञानियो! बहिरात्मा से अन्तरात्मा बने हैं और अन्तरात्मा से परमात्मा बने हैं। एक इन्द्रिय, दो इन्द्रिय, आदि जो जीव हैं। आपको मालूम होना चाहिये। दाना है, बीज है, वृक्ष है, पुनः फल है। मिट्टी के कणों के संघात से घट निर्मित हुआ है। जो परमाणु था, वही संघटित हुआ तो महास्कंध हो गया। महास्कंध जो है, वह विघटित होते-होते उस अवस्था तक पहुँचता है जिसका पुनः विभाग नहीं होता है। उसका नाम परमाणु है।

इलेक्ट्रॉन, प्रोटान, न्यूट्रॉन। जब तक तुम खण्ड कर रहे हो, तब तक यह परमाणु नहीं है, यह स्कंध है। जब तक विभाग है, तब तक स्कंध है। जब अविभाज्यपना प्रारम्भ हो गया है, वह परमाणु है। **"भेद-संघाताभ्यां चाक्षुषः"** भेद से और संघात से चाक्षुष स्कंध उत्पन्न होता है। **"भेदादणुः"** अणु जो होता है, वह भेद से होता है। विषय को समझना। परमाणु जो है, इसका दार्शनिक पक्ष में व्याख्यान नहीं है। जैनदर्शन में अणु-परमाणु की व्याख्या है या फिर अल्प भाग में वैशेषिक दर्शन में है। इसके अलावा किसी भी दर्शन में अणु और परमाणु की व्याख्या नहीं है।

कुंदकुंद स्वामी ने जो व्याख्या की है, वही व्याख्या आज के वैज्ञानिक कर रहे हैं। जैनदर्शन की पूरी व्याख्या को उठाकरके लोगों ने व्याख्या कर दी है।

विशाल जो है, वह 'स्कन्ध' है। उसका आधा 'प्रदेश' है। उसका विभाग होना जब बन्द हो जाये, वह 'परमाणु' है। द्रव्य परमाणु, भाव परमाणु। द्रव्य परमाणु की व्याख्या वैज्ञानिक कर लेते हैं, परन्तु वह संज्ञा का परमाणु उनका है, स्वभाव का परमाणु उनका नहीं है; क्योंकि उनके परमाणुओं के भेद चल रहे हैं, पर जैनदर्शन से परमाणु शून्य है। पर भावपरमाणु जो है, वह आत्मा के परिणामों की दशा है।

करुणा सखी को लेकर आज आपको सिद्धशिला तक की व्याख्या करना है।

युवाओ! ध्यान से सुनना। बर्तन 'बर्तन' है, बर्तन वस्तु नहीं है। बर्तन में वस्तु निर्मित हो रही है, फिर भी वस्तु भिन्न है, बर्तन भिन्न है। वैद्य एक पाक तैयार कर रहा है, लेकिन वैद्य को बोध होना चाहिये कि हर बर्तन का पाक एक-सा नहीं होता है।

हे माँ! दुग्ध का माधुर्य यदि आपको चखना हो तो आपको मिट्टी के मटके में दूध तपाना चाहिये और यदि उसकी मलाई देखना हो तो हीटर या गैसचूल्हे पर नहीं, सिगड़ी

पर होना चाहिये। रहस्य समझिये। वही दुग्ध है, लेकिन फिर भी कहीं चूल्हे पर तपता है। घास की अग्नि पर तपाओगे तब दूध का स्वाद कैसा होगा? स्टोव पर मिट्टी के तेल की महक आयेगी। दुग्ध है, यदि आपने उसे स्टील के बर्तन में तपाया है तो न मलाई आयेगी, न स्वाद आयेगा। कहीं सिल्वर के बर्तन में तपा दिया तो फिर तो बर्बाद कर दिया। ताम्र पात्र में तपाने पर औषधि गुण बनता है। बर्तन की बात कर रहा हूँ। वस्तु एक है। वही दुग्ध मिट्टी की मटकी में तपता है तो मलाई बहुत होती है और उस दुग्ध का जो स्वाद होता है, तुम भाग्यहीनों ने तो उसे जाना ही नहीं होगा। पर ध्यान रखना, मिट्टी का पात्र एक बार ही प्रयोग होता है। काँच का तो प्रयोग करना ही नहीं चाहिये। उत्तम पात्र को उत्तम पात्र से दान दिया जाता है। स्टील शुद्ध लोहा। जो शूद्र क्षुल्लक दीक्षा लेता है, उसे लोह पात्र में भोजन परोसा जाता है। आज तुम तीनलोक के नाथ को भी स्टील के सिंहासन पर विराजमान कर देते हो। धिक्कार हो। तुम्हारे घर में इतनी गरीबी कब से आ गयी कि तुमने तीनलोक के नाथ को शूद्र बना दिया? मन्दिरों में स्टील के एक भी बर्तन का प्रयोग नहीं होना चाहिये। स्वर्ण या रजत के बर्तन रख लो, नहीं है तुम्हारे घर में तो ताम्र पात्र रख लो। **स्टील के पात्रों में, टूटे चावल व फटे वस्त्रों से जो पूजा करे, वह भविष्य का दरिद्री बने। यह आगम का वचन है।**

पात्र के परिणमन से, पात्र के निमित्त से वस्तु में परिणमन होता है। लेकिन वस्तु तो वस्तु है, पात्र तो पात्र है। आधार-आधेय का संबंध देखो। जो किसान गाँव में रह रहे हैं, उनसे प्रश्न करना। उनको यदि घी बनाना है तो मिट्टी के बर्तन में ही जमाते हैं और उसी में बनाते हैं। ज्ञानियो! सोने के कलश से मेहमान की आवभगत तो हो सकती है, पर सोने के कलश में पानी को ठण्डा नहीं रखा जा सकता है। देव पर्याय जो है, यह सोने का कलश है। नरक पर्याय जो है, वह प्लास्टिक पात्र है। तिर्यंच पर्याय पीतल का पात्र है। मनुष्य पर्याय मिट्टी का पात्र है। सोने के पात्र में पानी को रखा तो जा सकता है, चमकता दिखेगा, परन्तु स्वर्ण पात्र में पानी ठण्डा नहीं होता है। गर्मी में पानी को ठण्डा करने के लिये मिट्टी का पात्र ही चाहिये। देव पर्याय में सोने-जैसे चमककर योगों की अनुभूति तो ले सकते हो। तिर्यंच पर्याय में पीतल-जैसी चमक तुमको दिखती रहेगी। प्लास्टिक-जैसी परिणति चल रही है, उसमें जो भी सामग्री रख

दो, दुर्गंध आने लग जायेगी। गर्मी में घी रखकर देख लो। मनुष्यपर्याय मिट्टी का पात्र है। स्वानुभूति की शीतलता कहीं आयेगी तो मिट्टी के पात्र में आयेगी। वैसे इसका और-कोई प्रयोग नहीं है। पर पानी को ठण्डा रखना चाहते हो तो मिट्टी का पात्र चाहिये और आत्मा को भगवान् बनाना चाहते हो तो मनुष्य की नरदेह चाहिये।

नरदेह मिले बिना नरोत्तम नहीं होता और नरोत्तम हुये बिना अशरीरी परमात्मा नहीं होता। नरोत्तम कोई है तो उसका नाम अरिहंत है। जो कह रहा है कि पात्र क्या करेगा? परिणमन वस्तु का वस्तु में होगा, पर पात्र की महिमा तो देखो। अब ऐसे ही पुनः आइये मनुष्य देह में, फिर पात्र में पात्रता।

ज्ञानी! कुल्हड़ में रखा दूध पीया कभी? पात्र की पात्रता। मनुष्य देह में भी उत्तम संहनन, उत्तम कुल। इस बात को भूल जाना कि कोई भी मनुष्य मोक्ष चला जायेगा। **जिसके रक्त में अशुद्धि है, उसके भावों में अशुद्धि होगी। वीतरागता की प्राप्ति के लिये वीरता चाहिये और वीरता के लिये सुकुल चाहिये। हेय कुल में उत्पन्न हुआ पुरुष उत्तम भाव नहीं बना सकता।** प्रेक्टीकल दिखा दूँ क्या? बेटे! तूने जीवन में कोई दोष न किया हो और उस समय कोई संयम की बात चले, तो तेरा चित्त दमकेगा। जिस व्यक्ति ने अपने जीवन में संयम में दोष लगा लिया हो, जब भी संयम की बात चलेगी, उसका चेहरा मुरझा जायेगा। विषय को समझो।

पात्र के नियोग से परिणामों में निर्मलता आती है। किसी सेठ के यहाँ आपको सोने के पात्र में भोजन परोसा जाता है तो अलग से तेरे अन्दर उमंग आना प्रारम्भ हो जाती है। बहिरंग द्रव्य के निमित्त से अंतरंग प्रभावित होता है। सिद्ध बनने की योग्यता तो निगोदिया में भी होती है। भव्य है तो। लेकिन निगोद पर्याय में अभिव्यक्तिरूप योग्यता नहीं है, शक्तिरूप योग्यता है। यदि जीवत्व मात्र से सिद्धि होती है, तो निगोदिया को भी मोक्ष होना चाहिये? नहीं होगा, क्योंकि उत्तम संहनन चाहिये। निगोदिया में उत्तम संहनन नहीं होता है, वह तो मनुष्यपर्याय में ही होता है। बहिरंग निमित्त, उत्तम ध्यान के लिये उत्तम संहनन चाहिये। उत्तम ज्ञान के लिये उत्तम संहनन चाहिये। संहनन अर्थात् शक्ति। उत्तम चारित्र के लिये उत्तम संहनन चाहिए। हीन शक्ति वाला, जिसको धूप लगने से जुकाम होगा, वह क्या ध्यान करेगा? जिसके शरीर में सामर्थ्य नहीं, वह ध्यान नहीं कर सकता। पर्वत पर आरोहित होने के लिए जितनी शक्ति नहीं चाहिए, उतनी निज

के परिणामों को आरोहित करने के लिए शक्ति चाहिए। पर्वत पर तो दौड़ सकते हो, पर परिणामों को दौड़ानेवाला परमात्मा बनता है।

ज्ञानियो! भक्तिमार्ग जो है, वह उत्कृष्ट मार्ग नहीं है। ध्यान मार्ग जो है, वह उत्कृष्ट मार्ग है। पर हे श्रावको! तुम ध्यानमार्ग में पहुँच नहीं पाओगे, इसलिए भक्तिमार्ग को छोड़ मत देना। आपकी जो भक्ति है, वह द्वैत्वभूत है। निर्ग्रंथ योगियों की जो भक्ति है, वह अद्वैतभूत है। अद्वैत भक्ति जो है, वह साक्षात मोक्ष (अद्वैत) का कारण है। अद्वैत का तात्पर्य? आपके लिए भगवान् चाहिए। यदि आप भोजन करना चाहोगे तो मैं आपसे कहूँगा कि भगवान् के दर्शन करके आओ और मुनिराज कहें कि भगवान् साथ लेकर चलूँगा, नहीं-तो दर्शन कैसे करूँगा?

भो ज्ञानी! तेरे महाव्रतों की आराधना से तो भगवान् बनते हैं। तुझे जिन देव को सिर पर लेकर चलने की आवश्यकता नहीं है। **''रयणत्तय तित्थं''** रत्नत्रय तीर्थ है। उस तीर्थ में परमात्मा कौन है? निज आत्मा ही देव है। देह देवालय है। यह योगियों के लिए है। हे श्रावको! आप भगवान् की भक्ति करो। जो योगी का विषय है, वह रहस्यमयी है। **योगीगम्यं रहस्य परमात्मानम्?**

गन्ना के रस की कोई विशुद्ध पर्याय है तो उसका नाम है मिश्री और गौरस की शुद्ध पर्याय का नाम है घृत। वस्तु एक है वही गन्ना का रस। भीतर को जानना है तो बाहर को जानो और बाहर को जानना है तो भीतर को जानो। गन्ने का रस निकलता है तो हरा, लम्बे समय तक रखा रहा तो काला। सत्य बताना, गन्ने के रस से शक्कर बनती है कि नहीं, मिश्री बनती है कि नहीं? यह सफेदी कहाँ से आ गयी? हरे का सफेद कैसे हो गया? गुड़ बनायेगा तो पीला, खांड बनायेगा तो हल्का पीला, शक्कर तो सफेद, मिश्री बनायेगा तो और-सफेद। यह रंग किसने डाले? अभी तक जो आपने क्रियायें पंचकल्याणक में देखीं, वह सभी बहिरंग रूप थे, वस्तुव्यवस्था नहीं थी। वस्तुव्यवस्था मोक्ष की जो है वह यह चल रही है और बिना रसायन के द्रव्य का परिणमन कैसा? द्रव्य का परिणमन जो है, वही तो विषय है। जो रंग बदला हुआ है, वह गन्ने में ही बदला है। जब बहने वाला दाँत तोड़ सकता है, यह कठोरता कहाँ से आ गयी? जो गिलास में पिया जाता था गन्ने का रस, जबकि मिश्री दाँत से तोड़ी जा रही है। जब पुद्गल का परिणमन काले से सफेद होने की सामर्थ्य रखता है, तरल

से कठोर होने की सामर्थ्य रखता है, तो निगोदिया जीव भी परमात्मा बनने की सामर्थ्य रखता है। प्रक्रिया चाहिए, विधि चाहिए। लगता है कि आपने मात्र धर्म को धर्म कहकर समझा हुआ है। धर्म के धर्म को कहाँ जाना। यदि तुम्हें लप्सी बनाना है, तो आग वैसी रखना पड़ती है और यदि हलुवा बनाना है, तो आग वैसी रखना पड़ती है। कहीं चासनी बनाना है तो आग और-तेज करना पड़ेगी। जलेबी, गुलाबजामुन, बालूशाही जैसे मिठाई हो, तो फिर शुद्ध बूरा बनाने के लिए और-ज्यादा तपाना पड़ेगी।

आचार्यभगवन् पाँच सखियों की व्याख्या करते हुए समझा रहे हैं कि **प्रज्ञा, मैत्री, समता, करुणा, क्षमा जिसके पास ये पाँच सखियाँ हैं, उसका भव का विनाश निश्चित है, सिद्ध पद की प्राप्ति निश्चित है।** आचार्य कुलभद्र स्वामी कह रहे हैं कि जिसके अंतस् में परम द्रव्य की प्राप्ति का लक्ष्य है, वह जीव अपने अंतस् में निहारता है। परम पद में स्थित होने के लिए इतना पुरुषार्थ करना पड़ता है। शुभ परिणामों की प्राप्ति के लिए अनंत पलों का विसर्जन करना पड़ता है। जितने काषायिक भाव हैं, जितने काषायिक परिणाम हैं, वह सारे-के-सारे परिणाम 'पर' हैं। उन सबका विसर्जन जब जीव करेगा, तभी आत्म स्वपद को प्राप्त कर सकेगा। अंतस् में वैराग्य की आवश्यकता है। जब-जब मन में कुछ सोचा है कि मैं भी गुरु बन जाऊँ, तभी तुम अपने स्वपद से दूर हो गये। **अशान्ति का प्रारम्भ परवस्तुओं में नहीं है, आप में ही है। अशांति का हेतु पर में नहीं है, अशांति का हेतु परद्रव्य में आत्मानुभूति है। जो पत्थर पड़े हुये थे, जो भूमि थी, जो भवन था, वो था; लेकिन जैसे-ही आपके मन में भाव आया कि उस भूखण्ड को मैं खरीद लूँ, बस, संकल्प-विकल्प प्रारम्भ हो गया।** एक मार्ग पर पत्थर पड़ा था। रोज देखते थे, कोई विकल्प नहीं था। आपके मन में आ गया कि इस पत्थर को अपने घर बनाने के लिए उपयोग में लाऊँगा। बस, पर में आत्मबुद्धि है कष्टबुद्धि। पर से आत्मबुद्धि हटा देना, आनन्द की अनुभूति प्रारम्भ हो जायेगी। कहीं पीड़ा नहीं है, कहीं दु:ख नहीं है। मात्र मेरे संकल्प में है कि परद्रव्य मेरे हैं। जिस कन्या के साथ तेरा पाणिग्रहण हुआ था, उस कन्या को तू पत्नी का संकल्प करके नहीं लाता तो हे रागी! पर के सिरदर्द में तेरा सिरदर्द न होता। जैसे-ही संकल्प प्रारम्भ होता है, वहाँ संकट प्रारम्भ होता है। इस संकट से मुक्त होना चाहते हो तो संसार के संकल्पों से मुक्त होना सीखो। मुक्त हो जाओ तो आज ही तुम्हारे जीवन में सुख-ही-सुख है। जिन-जिन ने संकल्प लिये, वे-वे संकट में पड़े। पर में संकल्पबुद्धि

ही तो संकटबुद्धि है। इसलिए मोक्ष की नहीं, मोक्षमार्ग की बात कर रहा हूँ। संकल्प-विकल्प परिणाम है। जहाँ पर संकल्प-विकल्प का अभाव जीव कर लेता है, वहीं से मोक्षमार्ग प्रारम्भ होता है और जहाँ मोक्षमार्ग से भी परे हो जाता है, वहाँ मोक्ष प्रारम्भ हो जाता है।

प्रभु! आपके बिम्ब स्थापित कैसे हो गये? क्योंकि उन्होंने परबिम्बों को निहारना बंद कर दिया था, तब उनके प्रतिबिम्ब स्थापित हुये हैं। ज्ञानियो! जब-तक संकल्प-विकल्पों के बिम्बों को निहारोगे, तब-तक बिम्ब स्थापित नहीं कर पाओगे।

अर्हंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु यह पंचपरमेष्ठी हैं। प्रतिष्ठा ग्रंथ में पंचपरमेष्ठी की आराधना का उल्लेख है। व्यक्तिगत किसी मुनि या आचार्य का आकार न बनाकरके, श्रमण का आकार बनाकरके पंचपरमेष्ठी की प्रतिमा की स्थापना कीजिए। क्यों करना? कि प्रभो! आप एक देव हैं। पंचपरमेष्ठी भगवंत हो। पंच महापुरुष हो। यदि साक्षात् अर्हंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु के दर्शन न हों तो कम-से-कम उनके चरणों में खड़े रहकर इतना विचार तो करना कि सप्तभंगी तरंगों से युक्त जैसे स्याद्वाद के प्रणेता उपाध्यायपरमेष्ठी हैं, तो पंचाचार-प्रणेता आचार्यपरमेष्ठी हैं और हृदय को निर्मल करने के लिए साधुपरमेष्ठी हैं और उत्तम पद को प्राप्त जिन्होंने किया है, वे अर्हंतपरमेष्ठी हैं और उनसे भी महान्पद को प्राप्त किया है, उनका नाम सिद्धपरमेष्ठी है। यह है कारण-कार्य समयसार।

हे नाथ! आपको देख रहा हूँ। आपका बोलना मेरे लिये कारण-कार्य समयसार उपचार है जो वस्तु है। यही है, उसका उपचार है। जो वस्तु है, उसका उपचार नहीं है। वर्द्धमान तीर्थंकर महावीर हुये थे, इसलिए प्रतिमा महावीर की है। यदि महावीर न होते, तो प्रतिमा महावीर की भी न होती। अवस्तु में उपचार नहीं होता और अवस्तु का उपचार नहीं होता। आकाश के फूलों का उपचार किसमें करोगे आप? गधे के सींगों का उपचार किसमें करोगे? बाँझ के बेटे की उपमा किसके बेटों को देंगे आप? जो होता है, उसी का उपचार होता है। जो होता नहीं है, उसका उपचार भी नहीं होता। जिसकी तस्वीर है, वह वास्तविक होता है। जो वास्तविक नहीं है, उसकी तस्वीर कैसी? जिनशासन में पंचपरमेष्ठी मात्र ही पूज्यनीय हैं जो वीतरागी हो चुके हैं या वीतरागी होने का पुरुषार्थ कर रहे हैं। दो परमेष्ठी वीतरागी हो चुके हैं, तीन परमेष्ठी पूर्ण वीतरागी होने का पुरुषार्थ

कर रहे हैं। यदि एकसाथ पाँचों परमेष्ठियों की वंदना करना हो तो वह तीर्थ है देवगढ़। जहाँ पर अर्हंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु पाँचों परमेष्ठी एकसाथ विराजमान हैं। **जिनशासन में श्रुत के देवता कोई हैं, तो उपाध्याय परमेष्ठी हैं।** आपके पादमूल में बैठकर मैं कारण-कार्य समयसार को समझना चाहता हूँ। उपाध्याय, अर्हंत, सिद्ध, आचार्य यह हमारे कारण-कार्य समयसार हैं स्यात्। 'वह तो परवस्तु हैं' वह कारण-कार्य समयसार होते कैसे?' भावों की विशुद्धि के लिए बहिरंग साधन हैं, इसलिए कारण हैं और निज के परिणामों की जो विशुद्धि है, वह मेरा वास्तविक कारण है। जब परमार्थ दृष्टि से देखोगे, तब जो रत्नत्रय पालन के परिणाम हैं, वह रत्नत्रय धर्म तुम्हारा है, वह कारण समयसार है और जो मोक्ष है, वह कार्य समयसार है। बिना कारण के कार्य नहीं होता। कभी कार्य की पहचान कारण से होती है, तो कभी कारण की पहचान कार्य से होती है।

ज्ञानी! बेटा सामने बैठा हुआ है। वह कार्य है कि कारण है? जो पिताजी आपके हैं? उनका कारण हो आप, कि कार्य हो? पिता के सामने बेटा बैठा हुआ है। यदि पिता न होता, तो बेटा कार्य कैसे हुआ? पिता कारण बना, बेटा कार्य है। जब देखेंगे कि पिता बेटे की पहचान करा रहे हैं, तब पिताजी कारण हैं, बेटा कार्य है। बेटा कार्य है, तो पिता अवश्य कारण होगा। यदि मोक्षमार्ग है, कार्य है, तो मोक्ष अवश्य है। मित्र! मोक्ष मानते हो, तो नियम से आपको मोक्ष का कारण भी मानना पड़ेगा। ऐसा नहीं होता कि सिद्धों को तो पूजें, पर अर्हंतों को मानें ही नहीं। हे मुमुक्षुओ! अर्हंत हुये बिना सिद्ध होते नहीं और कोई कहे कि मैं तो अर्हंतों को मानता हूँ, सिद्धों को मानता हूँ, आचार्य व उपाध्याय को न माने, साधु को न माने, तो बिना साधु बने अर्हंत होते नहीं। यह है कारण-कार्य व्यवस्था। आचार्य या उपाध्याय बने बिना अर्हंत तो हो सकते हैं, परन्तु साधु बने बिना कोई अर्हंत नहीं हो सकता। आचार्य, उपाध्याय तो पद है, व्यवस्था है। एक पंचाचार में लगाए हैं, एक ज्ञान दे रहे हैं। वह पद है, यतियों में श्रेष्ठ है।

उपाध्याय परमेष्ठी का काम है नित्य ही धर्म का उपदेश देना। ऐसी जो आत्मा है, उसका नाम उपाध्याय है। जो मुनियों में श्रेष्ठ है, वैसा मुनि उपाध्याय है। यानि सभी आत्मा उपाध्याय नहीं हैं। यतिसंघ में ध्यान रखना, उपाध्याय कभी एकलविहार नहीं कर सकता। आपको आचार्य के पादमूल में रहना पड़ेगा। वे शिक्षा-दीक्षा दें, आप

उनका अध्यापन, पठन-पाठन कराओ। जब शिष्य ही नहीं हैं, तो उपाध्याय किसका? शिष्य ही नहीं है, तो आचार्य किसके ?

जितने छात्र और शिष्य यहाँ बैठे हों, ध्यान से सुनना। **बीज जितना अंदर जायेगा, उतना ही सुंदर अंकुरित होगा। जो बीज शीघ्र ही दर्शन दिखाना चाहता है, उसका अंकुरण सुरक्षित और सुन्दर नहीं है, कभी भी चिड़िया चुग जायेगी। जमीन में मिट्टी में छिपा रहेगा, तो अंकुरण होकर निकलेगा। वह अकेला नहीं होगा, वह अनेक के साथ बाहर बाल बनकर आयेगा। वैसे-ही जो शिष्य गुरु की जमीन में छिपा रहता है, वह बाल बनकर आता है।** जो शीघ्र ही उगना चाहता है, उसे चिड़िया चुगकर खा जाती है। इसलिए शीघ्र प्रकट मत होओ। आपको प्रकट होने की आवश्यकता भी नहीं है। समय आता है तो शिशु भी पिता बन जाता है। समय आता है तो बीज भी पूरी बगिया को महका देता है। समय आता है तो शिष्य ही भगवान् बन जाता है। पर समय दे दो। जगत् में समस्त समस्याओं का समाधान है तो समय। जहाँ कोई कान में कहे, जब कोई आँखों से बात कहे, तब कहना 'भइया! हमें शब्द स्वीकार है। पर यदि शंका का समाधान न हो तो समय दे दो। समय एक ऐसी वस्तु है जहाँ पूर्ण शंकाओं का समाधान होता है। किसी अज्ञानी पुरुष ने तुझे गाली दे दी। वह अशुभ गाली थी, उसको नहीं देना चाहिए थी। किसी ने पूछा कि कौन-सी गाली दी, तेरा नियम था अशुभ नहीं बोलने का, पर तूने जैसे-ही बताया, तेरा नियम भंग हो गया। तेरा तो नियम यह था कि मैं अपने मुख से अशुभ शब्द नहीं बोलूँगा। इसलिए गाली का नियम लेते समय ध्यान रखना पड़ेगा। किसी ने अशुभ बोला है तो मैं उस अशुभ को नहीं दोहराऊँगा।

कभी-कभी क्या होता है कि चार मुनिराज एकसाथ बैठ गये। उनमें से एक को अंतराय आ गया। उनको शंका हो गयी थी। तुमने सोचा कि दूसरे महाराज को बता दें कि देखो महाराज! यह तो जीरा है, सो जिनके अच्छे आहार चल रहे थे, उनको भी अंतराय आ गया और जिनको शंका थी उनका भी अंतराय हो गया। ऐसे तुमने दो महाराजों को अंतराय करवा दिया। यदि आपके मन में कोई अशुभ भाव चल रहे हैं तो, भैया! तुम स्वयं को ही अंतराय डालो। हे जीव! यदि तेरे अशुभ परिणाम हो ही रहे हों, यह तो पक्का है कि तेरे शुभ-उपयोग में अंतराय आ गया, तो अब दूसरे को बताकर क्यों उसके परिणाम खराब कर रहे हो? यदि आहार में अंतराय आ गया, तो

मात्र भूखा ही रहना पड़ेगा; लेकिन यदि तेरी विशुद्धि में अंतराय पढ़ गया, तो उसी बीच यदि उसका आयुकर्म नष्ट हो गया, तो उसकी तो समाधि नष्ट हो गयी।

जैसे निर्ग्रंथों के आहार विधिपूर्वक करवाते हो, ऐसे-ही ज्ञानियो! घर-घर में ऐसे भाव रखो कि यदि आपके परिणाम किसी निमित्त से खराब हों, तो पत्नी को मत सुनाना। यदि पत्नियों के परिणाम खराब हों, तो देवियो! इन बेचारों को मत सुनाना। सहनशक्ति तो जितनी स्त्री में है, उतनी ही पुरुष में भी होती है। हे ज्ञानी! यदि तुमने किसी के सुख में दुःख के हेतु उपस्थित किये थे, तो कर्म कहता है कि अब तुम स्त्री बनकर भोगो। सहनशक्ति नारी के अंदर है।

ज्ञानियो! विश्वास रखना, धर्मात्मा होना बहुत कठिन है। क्यों कठिन है? युद्ध में द्रौपदी से सैनिकों ने कहा कि हे माँ! आदेश करो, मैं उनके एक-एक बेटे का अभी नाश करके आता हूँ। अपने बेटे के वियोग में तड़पती द्रौपदी खड़ी होकर हाथ जोड़कर कहती है, 'हे योद्धाओ! ध्यान दो, ध्यान दो। आपको पता होना चाहिए कि बेटे के वियोग की पीड़ा कैसी होती है। मैं उनकी माँओं को बेटे के वियोग की पीड़ा नहीं देना चाहती हूँ।' ऐसे-ही जो धर्मात्मा होता है, उसके हृदय में किंचित् भी अशुभ भाव आ गया, तो अपना भाव दूसरे को देने नहीं जायेगा। मुझे मालूम है कि भावों की अशुद्धि का परिणाम क्या होता है। ये आपसे इसलिए कह रहा हूँ कि यह जो पुरुष है, इसका उद्वेग घास के तिनके के समान है जो शीघ्र ही उत्तेजित हो जाता है। यदि कदाचित् अड़ोस में, पड़ोस में कहीं कोई विसंवाद हो भी जाए, माँ! इतना ध्यान रखना कि पति भूखा होने पर जब घर में आए, उनको पहले भोजन कराना, वह बातें मत बताना। पहले के लोग भूमिका बनाकर बातों को बताया करते थे। पहले भोजन कराया, फिर धीरे-से संदेश सुनाया। वाणी को संयमित रखो। आचार्य भगवंत कह रहे हैं कि मुमुक्षुओ! पाँच सखियों में अंतिम सखी तुम्हारी क्षमा है। जैसे हम दूसरे को अंतराय कराना नहीं चाहते हैं, वैसे ही यदि धर्मात्मा हो या धर्ममय हो, ज्ञानी! इतना सोचना कि क्या मेरी पर्याय शाश्वत है या अन्य किसी की भी पर्याय शाश्वत है? परिणामों के जितने सत्यांश हैं, वह कैसे हैं?

द्रौपदी का हृदय लेकर चलना है। श्रेष्ठ है कि एक निर्ग्रंथ योगी का हृदय लेकर चलना, क्योंकि ज्ञानी किसी भी जीव को त्रास देने को हिंसा कहते हैं। पिच्छी को घुमाते

रहते हैं। धूप से छाया में जाते हैं तो जीवों की हिंसा न हो जाए। वैसे परिणाम जिसके हैं, बस इतना ही ध्यान रखना।

भैया! घर में जब भी कोई विषमता आये तो इतना ध्यान रखना, क्षणमात्र में शान्ति मिलती है। बहुत बड़ा मंत्र है- 'जो है सो है, क्या कर सकते हैं?' भैया! अंत में तो यही बोलना पड़ता है, तो ज्ञानी! पहले से ही बोलना शुरू कर दो। ''जो है, सो है।''

मिलके रहो, पर कैसे? वात्सल्य से। ज्यादा मिले तो ठीक नहीं है। कैसे मिलके रहना? जैसे मखमल की डिब्बी में सोने की अँगूठी। ऐसे तो मिलकर रहना, पर ऐसे मिलके नहीं रहना जैसे लोह में अग्नि मिल जाती है तो साथ में पिटती है। समझ गये? जिसे देवता कहते हैं लोग, अग्नि को, वह लोहार के घर, अग्नि से लोहे के संयोग के कारण, पिटती है। यदि ऐसे रहोगे, तो पिटोगे। पर सोने की अँगूठी जैसे रहोगे, तो जैसे तिलक सोने का मस्तिष्क पर लगता है, ऐसे ही तुम सिद्धालय के शीर्ष तक जाओगे।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।



जिनशासन से करो प्रीति

भयं याहि भवाद् भीमात् प्रीतिं च जिनशासने।

शोकं पूर्वकृतात्पापाद्यदीच्छेद्धितमात्मनः ॥268॥

अन्वयार्थ : (यदि आत्मनः हितं इच्छेत्) हे भव्य जीव ! यदि तू आत्मा का हित चाहता है तो निम्न काम कर, **(भीमात् भवात् भयं याहि)** इस भयानक संसार के दु:खों से भय कर **(जिन-शासने च प्रीतिं)** जिनशासन में प्रेम कर **(पूर्व कृतात् पापात् शोकं)** और पूर्व किये हुए पाप का शोक कर।

भावार्थ : हे भव्यात्मन् ! यदि तू अपना हित करना चाहता है तो इस भयंकर संसार से भय कर और जिनशासन में प्रीति कर तथा पूर्वकृत पापों के लिए शोक कर।

॥ सद्-देशना ॥

भव्य बन्धुओ ! अन्तिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेश की पीयूष देशना जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवन्त हो, जयवन्त हो वीतराग श्रमणसंस्कृति।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी दिगम्बर जैन परम्परा में एक अलौकिक आचार्य हुये, जिन्होंने कुन्दकुन्द स्वामी के समयसार को और आचार्यभगवन्त जिनसेनस्वामी के महापुराण की विधाओं को अपने ग्रन्थ में समाविष्ट किया है। वह कभी समन्तभद्र स्वामी के रूप में अपनी लेखनी चलाते हैं, तो कभी अकलंक स्वामी की दृष्टि से अपनी लेखनी चलाते हैं। श्रमण परम्परा में ऐसे अनेक आचार्य हुये हैं, जिन्होंने अन्तस् में बैठकर परमात्मा की वाणी का निबन्धन किया है। वे आचार्य कुलभद्र स्वामी सारसमुच्चय ग्रंथ में कह रहे हैं कि हे मुमुक्षु ! यदि मोक्ष चाहिये, कल्याण चाहिये, तो भय को प्राप्त हो। आज के जीव को डर नहीं लगता, भय नहीं लगता। जिस स्थान से भय होता है, उस स्थान से जीव भागता है। जिस स्थान पर डर लगता है उस स्थान पर ठहरता नहीं है, वहाँ से निकल जाता है। इसका तात्पर्य है कि पापों से आपको डर नहीं लग रहा है। यदि डर लग गया होता, तो आज तुम घर से निकल कर मुनि होते। पापों से डर नहीं, दुर्गति से डर नहीं। क्या रोड़ों पर बाजारों में उल्टे मुँह लटके जीव तुम्हें दिखाई नहीं देते हैं? क्या बाजारों में छुरी चलते प्राणी दिखाई नहीं देते? जिनकी गर्दन पर छुरी

चल रही हो, जिनको खण्ड-खण्ड करके उल्टा लटका करके साग-भाजी जैसा निकाला जा रहा हो, उन जीवों को नहीं निहारते क्या ? क्या उनकी पर्याय नियत है कि वे ही वे जीव हैं, वे ही होंगे? ऐसा जैनदर्शन नहीं मानता। जो माया धर्म से युक्त हुये हैं, वे तिर्यञ्च हुये हैं। आपको नरक दिखाई नहीं दे रहा क्या ? गतियाँ तो आप आँखों से देख ही रहे हो। स्वर्ग नहीं दिख रहा है, परन्तु तिर्यञ्च दिखाई दे रहे हैं, मनुष्य दिखाई दे रहे हैं। सभी मनुष्यों का अनुभव एक-सा नहीं है। सभी तिर्यञ्चों का सुख-दुःख एक-सा नहीं है। नरदेह को प्राप्त करके भी नर-जैसे नहीं रह पा रहे। घर-घर के क्लेशों को जाकर देख लो। मुमुक्षु! जितनी शारीरिक वेदना नहीं है, उतनी मानसिक वेदना है। अन्दर की व्यथा को कौन बतायेगा? मुस्कराते चेहरे को देखकरके आप किसी को सुखी मत मान लेना। हास्य भी कषाय है। कषाय के उद्वेग में व्यक्ति हँस तो सकता है, पर कषाय के उद्रेक में आनन्दित नहीं हो सकता। आनन्दित होना अन्दर का विषय है, मुस्कराहट तो काषायिक भाव है। **खिलखिलाना कोई सुख नहीं है। अट्टहास कोई सुख नहीं है। जिसके बाद थकान आये, वो सुख कैसा ? चाहे इन्द्रिय भोग हो चाहे हास्य कषाय हो, इन सबके बाद थकान आती है। जगत् की थकान जिससे मिटती हो,** वह आत्मा का ध्यान है। आज तक आपको भय नहीं हुआ, डर नहीं लगा कि उस पर्याय में आपको जाना पड़ा तो क्या होगा ? ये भी विश्वास नहीं है। चारों गतियों पर विश्वास नहीं है, 34 लाख योनियों पर विश्वास नहीं है। इन पर विश्वास है कि ये होते हैं, पर इनमें भ्रमण कौन करता है? मायाचारी करेगा तो तू ही जायेगा। बहुत आरम्भ-परिग्रह करेगा तो नरक ही जायेगा। अल्प आरम्भ परिग्रह करेगा, मार्दव भाव रहेगा, तो मनुष्य बन सकता है। ऋजुभाव रहेंगे, सराग-संयमादि का पालन किया है, तो दैवत्व की प्राप्ति कर सकता है। ज्ञानी ! मोक्ष जाने के लिये इन सबका त्याग करना पड़ता है। इन सब से भिन्न रहना पड़ेगा। कोई कह दे कि यहाँ अजगर है तो तू थर-थर काँपेगा। कालिया नाग है तो जाने का मन नहीं करेगा। ओ हो ! उन स्थानों पर नहीं जायेगा। कालिया नाग तो मात्र पिटारे में कुण्डी लगाकर बैठता है, उसकी अकड़ उसका उथलापन, उसकी वक्रता कम है, परन्तु जीव के परिणामों की वक्रता बहुत ज्यादा है। मन में भाव कुछ-और हैं, शरीर के हाव-भाव कुछ-और प्रकट कर रहा है, वचन से कुछ-और बोल रहा है। क्या आपको मालूम नहीं है कि वर्तमान में वक्र परिणाम जितने करोगे उतनी ही वक्रगति को प्राप्त करोगे? और उल्टे मुँह वे ही लटके हैं, जिनने इस

(उलटे) मुँख से जिनवाणी का व्याख्यान किया था। उन बेचारों को उल्टे मुँह लटकना पड़ रहा है। ज्ञानियो! पुद्गल के टुकड़ों के पीछे, रोटी के टुकड़ों के पीछे, भवन के पीछे, मान-सम्मान के पीछे जिनवाणी को मत बेचना। भैया! जितनी गोल माला होती है, गले में पड़ जाती है, जीव प्रसन्न हो जाता है। चलो, मुझे तो जहाँ सम्मान मिलेगा, वहीं बैठूँगा। मेरे मित्र! तुझे सम्मान इतना ही प्रिय था, तो ऐसे स्थान पर क्यों नहीं बैठा जिसको नमन अर्हन्त बनने वाला जीव करता हो? तीर्थंकर-जैसा जीव 'नमः सिद्धेभ्यः' कहता हो, उन सिद्धों के सम्मान को क्यों नहीं प्राप्त करते हो? तीर्थंकर स्वयंभू होते हैं वो किसी को नमस्कार नहीं करते, पर दीक्षा लेते समय वो भी 'नमः सिद्धेभ्यः' बोलकर जाते हैं और जब केशलोंच करते हैं तो भी सिद्धों की साक्षी में करते हैं। यदि आपको सम्मान ही चाहिये, किसी के मुख से प्रशंसा ही चाहिये, तो ज्ञानी! इतने महान् बन जाओ कि तीर्थंकर-जैसी आत्मा भी तुझे 'नमः सिद्धेभ्यः' कहके नमस्कार करे

विश्वास मानिये, जितने भी जीव उल्टे मुँह लटक रहे हैं, चाहे जीवित लटक रहे हों तो चमगादड़ जैसे लटक रहे हैं और मृतक लटक रहे हैं कषाइयों के यहाँ बकरी आदि प्राणी उलटे लटका दिये हैं छील-छाल करके। ये कौन हैं? भैया! समझ लो। इस युग में भगवान् महावीर तो तुमको समझाने नहीं आयेंगे। अपने स्वार्थों के पीछे देव शास्त्र गुरु की श्रद्धा को तुड़वा दिया, अपने स्वार्थों के पीछे 'मैं ही सबकुछ हूँ, जगत् में कोई दूसरा है ही नहीं' ऐसे संकेत करके ज्ञानी योगियों तक को अन्तराय डालवा दिये। उसका परिणाम है कि वे जीव उल्टे-मुँख लटक रहे हैं। भैया! सुनना सबकी, पर विवेक और आगम से सहित होकर निर्णय लेना। ज्ञानियो! समय आ चुका है कि हर व्यक्ति अपने आप को धनवान् रूप में दिखाना चाहता है। परन्तु ज्ञानियो! जो भगवान् होता है, वह अपने आपको भगवान् रूप में नहीं दिखाता है। जब भगवत्ता प्रकट हो जाती है, तो सारे जीवों की आँखों के सामने दिखाई देता है।

क्या कह रहे हैं आचार्यभगवन्? हे जीव! संसार से तो डर जाओ। और प्रीति कहीं करना है तो **"प्रीतिं च जिनशासने"** जिनशासन में करो। अन्य कहीं तुझे जगत् में प्रीति नहीं है, भगवान् जिनेन्द्र के शासन में है। जगत् के जिन-जिन के शासनों में तुमने प्रवेश किया, वे सारे-के-सारे छीननेवाले निकले। इस मस्तक को झुकाने के पहले ज्ञानी निर्णय कर लेना कि वंदनीय है कि बंधक है। जो बन्धक है, वह वंदनीय होता नहीं। ज्ञानियो!

किसी की पर्याय का नाश करने वाले को आपने कसाई कह दिया, पर किसी के परिणामों की विशुद्धि का घात करनेवाला, वह भी बंधक ही है। किसी की श्रद्धा को तुड़वानेवाला बंधक ही है, वो वंदनीय नहीं है। वंदनीय वही है, जो बंधक न हो। कितना सहज धर्म है। सरलता में जीना सीखो। ज्ञानियो! उपवास, व्रत करने के साथ-साथ सत्यता को क्यों नहीं समझते हो? उपवास का अर्थ भोजन छोड़कर बैठना मात्र नहीं है। धन्य हो उस योगी को, धन्य हो उस श्रावक को। उसको जिनशासन में कितनी प्रीति है। मैं भोजन में समय को बरबाद नहीं करूँगा, अपितु उस समय को निकाल करके मैं परमात्मा का नाम रटूँगा, जिनवाणी का वाचन करूँगा, निर्ग्रन्थों के चरणों का स्पर्श करूँगा। यानि जो भोजन का समय था, अष्टमी चतुर्दशी को उपवास या एकाशन कर लेता था यह जीव, मालूम उसका उद्देश्य क्या था? कम-से-कम आठ दिन में पर्व के दिन में जो इतना समय भोजन में लगता था वो समय मैं परमात्मा की आराधना में लगाऊँगा। लेकिन आपने क्या किया? भोजन के समय उपवास तो किया था, पर उस समय को तूने दूसरे काम में लगा दिया है, तो आपने मात्र लंघन किया है, उपवास नहीं किया। जितनी परमात्मा के पादमूल में दृढ़ आस्था है कि मैं भोजन छोड़ सकता हूँ, हे प्रभू! आपके चरणों को नहीं छोड़ सकता हूँ। उपवास करने का उद्देश्य क्या है? मात्र सारे जगत् में इसी की शिक्षा ले रहे हो कि पेट भरके जाना पड़ता है, पर जिनशासन में समता की शिक्षा लेना है तो पेट खाली होकर बैठना पड़ता है। समता के अभाव में सम्पूर्ण तपस्या का फल निष्फल। समता के साथ की गई तपस्या ही विपुल निर्जरा का कारण है। समता के अभाव में की गई साधना मात्र पुण्य बन्ध का कारण है। वो भी सामान्य।

आप कह सकते हो कि महाराज! सम्यग्दृष्टि सप्तभयों से रहित होता है और आज आप भयभीत होने की शिक्षा क्यों दे रहे हो? ज्ञानियो! सप्तभयों से तो निर्भय रहेगा, लेकिन पापों से डरोगे नहीं, तब तक मोक्ष मार्ग में लगोगे कैसे? यथार्थ मानिये, जीव के डर नहीं है। और डर क्यों नहीं है? विश्वास की कमी है। भैया! जितनी श्रद्धा तुझे रोटी पर है, क्या उतनी श्रद्धा जिनवाणी पर नहीं है। बच्चे से बच्चा भी रोटी को देखकर उसको मुख की ओर ले जाता है, क्योंकि उसको विश्वास है कि इसको मुख में रखूँगा तो पेट भरेगा। जब रोटी को खाने से पेट भरेगा, ऐसा विश्वास है, तब ये

विश्वास क्यों नहीं हो रहा है कि परमात्मा की भक्ति करूँगा, परम पद को प्राप्त करूँगा। पाप करोगे तो दुर्गति होगी। विश्वास की कमी है, इसलिए डर नहीं लगता। बहुत सारे धार्मिक अनुष्ठान कभी-कभी विनोद में हो जाते हैं, कभी-कभी विनोद के लिये हो जाते हैं, कभी कषाय में हो जाते हैं, कभी कषाय के लिये हो जाते हैं। सम्प्रदान शक्ति से पूछना, तूने किसके लिये किया? जो कर रहा था, उसके लिये तूने क्या किया? जो करा रहा था, उसके लिये तूने क्या किया? भगवान् की भक्ति कर रहा है जीव, भैया! जितने बड़े-बड़े पात्र बने हैं, ये उनका अहोभाग्य है, पुण्य का नियोग है, कि तुम्हें अर्हन्त की आराधना करने का मौका मिला। लेकिन छोटा इन्द्र भी कोई बना हो, अगर वो आगे आ जाये, उसको हटाना मत। आप की जगह अगर कोई भी वहाँ पहुँच जाये, तब भी नहीं हटाना। आप तो आप ही हो, वो वही है, परन्तु भैया! आप उसे और-आगे कर देना। क्यों? क्योंकि आपका तो पुण्य का नियोग था सो सौधर्म इन्द्र बने। सौधर्म संज्ञा को प्राप्त हो चुका हूँ, लेकिन आप भी मेरी अनुमोदना करो, भविष्य में तुम भी सौधर्म बनो। तू यहाँ वर्तमान के सौधर्म बनके ऐसे पवित्र परिणाम करेगा तो साक्षात् स्वर्ग का सौधर्म बनकर 170 तीर्थंकरों का पंचकल्याणक एकसाथ करेगा। भैया! बिल्कुल सहज हो जाना, पानी वत्। सौधर्म इन्द्र ही नहीं, जितने भी इन्द्र बने हैं, सब पानीवत् जीवन जीना, पृथ्वीवत् जीवन जीना। जैसे पानी होता है, कहीं से भी बहे, बीच में गड्ढे भी मिल जायेंगे, पर अपना समतल नहीं छोड़ता। उनको भरेगा, फिर आगे बढ़ेगा समतल पर कहीं देखा पानी को बहते? **पानी जब बहता है तो चाहे गड्ढे हों, चाहे ऊँचाइयाँ हों, वह अपने समतल को नहीं छोड़ता। ऐसे-ही सच्चा योगी, सच्चा ज्ञानीजीव, चाहे उपसर्गों के गड्ढे हों, चाहे उपसर्गों के पत्थर पटके जा रहे हों, चाहे पहाड़ियाँ, चाहे घाटियाँ हों, अपने परिणामों को समतल करके चलता है।** उसी का नाम योगी है। इसलिए ज्ञानी! पात्र बदल सकते हैं, पर पानी नहीं बदलता। बर्तन बदल सकते हैं, कोई विद्वान् मिट्टी का घट रख रहा है, कोई ताम्र घट रख रहा है, कोई स्वर्णकलश रख रहा है, कोई रजतकलश रख रहा है, पर मुमुक्षु! सभी घटों में पानी तो शीतल ही है। ऐसे-ही तुम चाहे गोरे हो, चाहे साँवले हो, चाहे तुम लँगड़े-लूले-कुबड़े हो, अंधे-बहरे हो, इन्द्र बनो या सौधर्म इन्द्र या सामान्य हो, लेकिन समता का पानी सबके भीतर एक-सा हो। यही पानी के समान परिणाम हैं। यदि जिनवाणी सुनते-सुनते समता नहीं आयी, तो जिनवाणी ही नहीं सुनी। पण्डित जी! जब

आप गद्दी पर बैठो, उपदेश करो, प्रतिष्ठा कार्य करो, तभी अपने आप को विद्वान् मानना। दूसरे के सामने विद्वत्ता भी दिखायेंगे तो अपन को हिंसा का दोष लगेगा। ज्ञानी जब पैसे गिन रहा हो, तभी पैसेवान बनकर बैठना, पर किसी के सामने मत कहना कि मैं पैसे वाला आदमी हूँ। अगर तू एक क्षण के लिये भी ऐसे भाव मन में लाया और दूसरे के मन में भाव आ गया कि ये तो बहुत बड़ा सेठ है, मैं तो गरीब आदमी हूँ, तो ज्ञानी! तुझे हिंसा का दोष लग जायेगा। सभी लोग सँभल कर सुनना इस विषय को। भैया! एक सज्जन मेरे पास आये और कहने लगे कि महाराज! इतने सीधे भी आचार्य होते हैं क्या? अब तो आप आचार्य हो, थोड़े अच्छे से ठाठ-वाट से रहो।

ज्ञानियो! जीवन में ध्यान रखना, भूमि भूधर को भी धरती है। भूमि यानि पृथ्वी, भूधर यानि पर्वत। भूमि यानि पृथ्वी, भूधर यानि सम्राट्। भूमि भूपति को भी अपनी कोख में रखे है और भूमि गरीब को भी रखे हुये है। भूमि पुष्प भी अपने ऊपर बिखरवाती है और मल भी पड़ा हुआ है। जो धैर्य को धरे, उसका नाम धरती है और जो सबसे ऊपर धर दे, उसका नाम धर्म है। जैसे धरती धैर्य को धर लेती है तो उसका नाम क्षमा हो जाता है। पृथ्वी का एक नाम क्षमा भी है। मित्र! जैसे धरती धैर्य को धरती है, ऐसे-ही धर्मात्मा का जो हृदय होता है, वह सब को धर लेता है, फिर भी सबका नहीं होता है, वही धर्मात्मा होता है और वही धर्मात्मा का हृदय है।

भैया! हर जगह ज्ञान नहीं दिखाना। आप रहस्य पकड़ो, मैं क्या कह रहा हूँ, मैंने कहा, भाई! मैं अहिंसा महाव्रती हूँ। हमारा अणुव्रती श्रावक, एक विद्वान् सरलता में जीता है। यदि कोई विद्वान् है, उसने किसी बालक से बोल दिया कि बेटा! तू पढ़ा-लिखा है कि नहीं? वह बालक बोला, नहीं। अरे! तू कुछ भी तो नहीं जानता है, देखो मैं कितने शास्त्र पढ़ा हूँ। पर कहीं उसके हीन भावना आ गई और हीन भावना में डूबकर कहीं उसने आत्महत्या कर ली, तो पंचेन्द्रिय घात का दोष तुझे लगेगा कि नहीं? नियम से लगेगा। मित्र! उसने आत्महत्या न भी की हो, पर हीन भावना आते ही उसका हृदय दुःखी होगा, जबकि तूने हँसी ही की है। उस जीव से मैंने कहा, भाई! मैं अहिंसा महाव्रती हूँ, अहिंसा परम ब्रह्म है। इसलिए भैया! कोई कुर्सी पर बैठा दे तो मना नहीं करना और कोई कुर्सी पर न बिठाये तो कुर्सी मँगाना मत। जमीन पर बिठाल दे तो वहीं बैठ जाना। अरे भाई! मैं आचार्य हूँ। सिंहासन नहीं लगा है, मैं कैसे बैठूँगा? अरे

महाराज! तुम समझो पहले। पन्ना का हीरा चाहे कंकड़ों में पड़ा हो, तब भी हीरा ही है और मखमलों की डिब्बी में रखा हो, तब भी हीरा ही है। ज्ञानी जो उसकी परख जानता है, उसे तो मालूम है कि हीरा तो हीरा ही है। ऐसे-ही हे मुमुक्षु! तू चाहे गड्ढे में पड़ा हो, चाहे पलंग पर बैठा हो, चाहे कुर्सी पर, लेकिन तू तो 'जो है, सो है।' मानाकि पण्डित जी! यहाँ के लोग आपको पहचानते नहीं थे, तो क्या आपकी कीमत में कमी आ गई? भैया! इसी का नाम तो साधु है। हीरा तो हीरा ही रहता है, हीरा कभी काँच का टुकड़ा नहीं हो जाता। ऐसे-ही चाहे आसन लगे या न लगे, पर हे योगी! तेरी समता है तो तू साधु ही है और समता नहीं है तो कुर्सी पर अंगारा भी रखा जा सकता है और ज्ञानी! अंगारा तो अंगारा ही रहेगा, वह अंगारा कोई सुगंधित चन्दन नहीं बन जायेगा और न ही शीतल पानी बन पायेगा। इसलिए कभी अपनी कीमत कराने के भाव लाना ही नहीं। कीमत कोई ठुकराता ही नहीं है, कीमत होती है।

यदि समयसार में लीन होना है तो, इसे समझना पड़ेगा। इस भ्रम को निकाल दो कि समयसार जी ग्रन्थ का वाचन समयसार है। मुमुक्षु! समयसार जी का वाचन समयसार नहीं है, समता परिणति का नाम समयसार है। चाहे ज्ञान से बड़े लोग हों, चाहे चारित्र से बड़े लोग हों, चाहे धन से बड़े लोग हों, इन तीनों लोगों से मिलना चाहिए तुझे। अभी तेरे मिलने की उम्र चल रही है। पर इन तीनों का बड़प्पन दृश्यमान है। जो दृश्यमान है, वह बड़प्पन नहीं दे रहा। दृश्यमान को देखने वाले कोटि-कोटि ज्ञानी हैं, पर इन तीनों को बड़प्पन जो दे रहा है, वह दृश्यमान नहीं है। इनके अलावा कुछ और है, वह अदृश्यमान है। ज्ञानी! इस मंच पर इस मुद्रा में पहुँच पाना, तू कहे कि मैंने कुछ करके दिखाया है, ये व्यर्थ का भाषण है। ये दृश्यमान है।

अदृश्यमान कुछ-और है। मैं 'लघीयस्त्रयी' ग्रन्थ से बोल रहा हूँ। ये न्याय का महान् ग्रन्थ है। अदृश्यमान कुछ है, वह तेरा पुण्य है, जो दिखाई नहीं देता है, पर उसके उदय में सबकुछ दिखाई देता है। जो ज्ञानवान है, धनवान है, चारित्रवान है, इन सबको बांध बनाने वाला कोई है तो पुण्यवान है। भैया! आप सोचो कि मैं तो पैसे वाले घर में जन्मा हूँ, मैं तो बहुत सम्मान वाला आदमी हूँ, तो नहीं भैया! ये तुम्हारा सोच मात्र है। वर्तमान के सोच ने तुम्हारा सम्मान नहीं बनाया है, पर भूत की पवित्र सोच ने तुम्हारा सम्मान बढ़ाया है। जितना पुण्यात्मा जीव होगा, उसके परिणाम उतने ही विशुद्ध होंगे, कषाय

मंद होगी। वो भोगभूमिया जीव अद्भुत पुण्यशाली जीव होता है। आपको तो करना पड़ता है, तब खा पाते हो; लेकिन उसे तो कुछ भी नहीं करना पड़ता है, तब भी सबकुछ मिलता है, पर कषाय कितनी मंद है। छोटे-मोटे देव भूत-व्यन्तर ही उपद्रव करते हैं, पर वैमानिक देव कभी किसी को लगने नहीं जाते, ध्यान रखना।

कोई उचकने लग जाये मंदिरों में, क्षेत्रों में वह कहने लग जाये कि मैं सौधर्म इन्द्र हूँ, तो ज्ञानी! कह देना कि न तू सौधर्म इन्द्र है, न तू भूत है। तू जिन्दा भूत बना मायाचारी कर रहा है। पण्डित जी! सब बातें लोगों की उचकने वालों की मान मत लिया करो। न उसको श्रीफल देना, न उसको अर्घ्य देना। उचकने वाले से कहना कि पहले मेरे प्रश्नों का जबाब दो, फिर तेरे से बात करूँगा। नहीं पूछना कि मेरे यहाँ क्या होगा। फालतू बातें मत पूछना। वो तो अनुमान से चेहरा बता देगा। मैं ही बता दूँगा कि तेरा क्या होनेवाला है। बुरा होगा कुछ दिन बाद, और-क्या होगा? उससे ये पूछना कि मैंने कल खाया क्या था और आज मैं क्या खाऊँगा? बिल्कुल ठीक सामने होकरके प्रश्न करो। मित्र! मुझे मालूम है कि मायाचारी का भूत होगा तो एक भी उत्तर नहीं दे पायेगा और तुम भविष्य पूछोगे तो भविष्य के लिये तो हर व्यक्ति को जिज्ञासा रहती है और आदमी समझता है कि भविष्य के बारे में ऐसी-ऐसी बातें बता दो, सो अपने आप ही ठण्डा हो जाता है आदमी। भविष्य नहीं पूछना, भूत से भूत पूछना। जितने भविष्यवक्ता हैं, वे अनुमान लगाते हैं। अरे! वैद्य आधा रोग आप से ही पूछ लेता है और दवाई भी तुम्हारे घर की ही देता है। मात्र तुम्हारे घर के पैसे ले जाता है।

जिन के पास बैठना वहाँ देखना कि इनके भाव निर्मल हैं, परिणाम भद्र हैं और जैसे-जैसे धनवान भी बना है, तो भद्र परिणाम से बना है। ज्ञानवान्, चारित्रवान् भी बना है तो भद्र परिणामों से ही बना है। भेष बनाकर जीना बहुत सरल है, मुमुक्षु! भाव बनाकर जीना बहुत कठिन है। भेष बनाकर जीने के लिये तो हर जगह आज-कल सफेद धोती-दुपट्टा वाले मिल जायेंगे, हर जगह पिच्छी-कमण्डल वाले मिल जायेंगे और हर जगह टोपी लगाने वाले मिल जायेंगे। अपन तो तीनों की बात कर रहे हैं। भेष बनाना सरल है। भेष बनाने के लिये बनना पड़ता है और भाव बनाने के लिये मिटना पड़ता है। ज्ञानी! कषाय मिटाये बिना पवित्र भाव बन नहीं सकते हैं। मायाचारी किये बिना भेष बना नहीं सकते हैं। ये मोक्षमार्ग भेष मात्र का नहीं है, भाव सहित भेष का है। भेष सहित भाव का है। अब दोनों बातें कर लेना, नहीं तो ये लोग महा-मायाचारी बैठे

हुए हैं। ठीक है, महाराज! आप तो भावों के नहीं हो, माया के हो। हाँ, भावों के नहीं हो। बिना द्रव्य के भाव होते नहीं हैं और द्रव्य मात्र भाव होता नहीं। इसलिए आचार्यभगवन् यहाँ पर कह रहे हैं कि हे जीव! **'प्रीतिं च जिनशासने'** यदि तुम्हें प्रीति ही करना है, राग ही करना है, राग को छोड़ नहीं पा रहा है, तो जिनशासन में राग करो, कुशासनों में राग मत करो।

एक-एक सूत्र में, एक-एक श्लोक में कितनी गहरी बातें कही गयी हैं। **भयं याहि भवाद् भीमात्।** हे भव्य! तू अपना हित चाहता है, कल्याण चाहता है, तो इस भयंकर संसार से भय कर। इस भयंकर संसार से डरने लग जाओ। भैया! अभी डर नहीं लगा आपको, आप विश्वास मानो। यदि डर लगता होता, तो पाँचों अंगुलियों में अँगूठी पहने न मिलते आप। बताये देता हूँ आपको मैं। आप रास्ते में जा रहे हो और कोई कह दे कि भैया! जिस रास्ते से आप जा रहे हो, वहाँ चारों ओर डाकू खड़े हुए हैं, तो भैया! जल्दी से तू अपनी अँगुलियों से अँगूठी निकालेगा और अन्दर रख लेगा छिपा कर। ऐसा नहीं है क्या? भैया! डाकूओं के डर से अंगुलियों में जो परिग्रह था, उनको दिगम्बर कर दिया। कितने सारे लोग गाँव छोड़कर भाग आये। मुमुक्षु जिस जीव को संसार का भय हो जायेगा, वो भेष बनाकर बैठ जायेगा और रत्नत्रय का हीरा उसके घर में होगा। अहो! सम्पत्ति की सुरक्षा के लिये तुम भेष बनाते हो, अब बात समझ में आ गई कि नंगे क्यों रहना पड़ता है। जब सामान्य-सा धन होता है तो लोग गरीब की भांति घूमने लगते हैं कि कोई पकड़ न ले जाये, तो ऐसे-ही ज्ञानियो! जिसके पास रत्नत्रय का धन होता है, वो ज्ञानी दिगम्बर होकर घूमता है। अमीर आदमी क्या कपड़े उतार कर स्नान नहीं करता? अधोवस्त्र पहने, ऊपर के वस्त्र उतार दिये तुमने। और जब कोई कपड़ा नहीं पहने और सामने आदमी देख रहे हैं कि स्नान कर रहा है, तो किसको मालूम क्या है। लेकिन तब भी तुमको अमीरी दिखाई दे रही थी, गरीबी दिखाई दे रही थी। ऐसे-ही जिसका चारित्र पवित्र है, जिसका ज्ञान पवित्र है, श्रद्धा पवित्र है और कर्म-डाकूओं से डरता है, परन्तु अपने आप को हीन नहीं मानता है, गरीब नहीं मानता है, उसके पास रत्नत्रय की सम्पत्ति है।

यहाँ क्या कह रहे हैं? जिनशासन से प्रीति करो, पापों से भयभीत रहो, संसार से डरो, लेकिन मोक्षमार्ग से किंचित् भी मत डरो।

हे जीव! पूर्वकृत पापों का शोक कर। आचार्यभगवन्त कह रहे हैं? कि वर्तमान के पापों से डरो और जो तुमने पूर्व में पाप किये हैं, उनका शोक करो यानि कि पश्चात्ताप करो कि हाय! मैंने क्या-क्या कर डाला? एक जीव मंदिर की वन्दना कर रहा है वह पन्द्रह सौ, दो हजार के जूते पहन कर आया है और मंदिर के द्वार पर उतार कर आया। सुन भाई! होते कहीं हो, सिर टेक रहा है भगवान् को और दृष्टि तेरी जूतों पर है, कि कहीं कोई उठा न ले जाये। मित्र! ऐसे-ही सामायिक कर रहे हो और बगल में कहीं टी.वी. की आवाज आ रही है, तो तुम आँखें बन्द किये हुये होते कहीं-और हो। दुनियाँ सोच रही है कि वह तो सामायिक कर रहा है और तू तो टी.वी. की आवाजें सुनकरके आनन्द लूट रहा था। जिनालय में पहुँचे, जिनदेव को देखना चाहिये था, लेकिन तुम किसी के चेहरों को निहार रहे हो। होते कहीं हो, होते कहीं हो। भैया! जो घर में बैठकरके सम्मेद शिखर को देख रहे हैं वे धन्य हैं और धिक्कार वे जीव जो सम्मेद शिखर में बैठकरके घर की नाली को देख रहे हैं। अब कैसे कह दें भैया इन विद्वानों ने सबकुछ बिगाड़के रख दिया है। क्या करें, महाराज! जमाने के साथ तो प्रवचन करना पड़ते हैं। भैया! जमाना कोई भी आ जाये, दूध जब भी जमेगा, जामन से ही जमेगा, चाहे ठण्डी का मौसम हो, चाहे गर्मी का मौसम हो, चाहे वारिश का मौसम हो। ऐसे-ही भैया! कोई भी जमाना आ जाये, लेकिन स्वात्मानुभूति की अनुभूति लेना है तो उपदेश तत्त्व का ही होगा। चकोर जमीन पर होता है, लेकिन चन्द्रमा को देखता है और एक चील होता आकाश में है, लेकिन जमीन पर देखता है। बस, अनुलोम-विलोम, अस्ति-नास्ति। एक रागी घर में रहकरके योगी को निहार रहा है और एक योगी राग को निहार रहा है। नीचे बैठकर ऊँचे को देखे, वो ही महान् है और ऊँचे बैठकर नीचे देखे, वो निकृष्ट है। वर्धमान बनो, वर्धमान के शासन में होकर भावों को वर्धमान करो, तुम्हारा निर्वाण हो जायेगा। हे मुमुक्षुओ! पूर्वकृत पापों का पश्चात्ताप करो। क्या-क्या नहीं किया है आपने?

हे जीव ! तुम भयभीत हो जाओ। जब तक तुम्हें डर नहीं है, तब तक अकषाय भाव को प्राप्त नहीं हो सकता है। जब तक डर नहीं है, तब तक उपशमभाव को प्राप्त नहीं हो सकता है। जितने कषायी हुये हैं, वे सब निडर हो गये हैं। जो-जो कषाय करे वे सब कषायी हैं। ज्ञानी! पर का घात करनेवाले तो लोकप्रसिद्ध हुये हैं, उनको तो सारे

लोग कषायी कहते हैं, परन्तु निज के परिणामों को कलुषित कर रहे हैं किसी भी निमित्त से, वे सब भी कषायी हैं। जितना विकल्प इस जीव को स्वयं के कल्याण के लिये नहीं आता है, उतना विकल्प जीव को जगत् को सुधारने के लिये आता है। जबकि जगत् की व्यवस्थायें व्यवस्थित हैं, कोई व्यवस्था अव्यवस्थित नहीं है।

चार गतियाँ हैं और चार गतियों की पूर्ति होने के लिये व्यवस्था व्यवस्थित है। मायाचारी नहीं करेगा तो तिर्यञ्च गति कैसे पूरी होगी? बहुत आरम्भ-परिग्रह नहीं रखेगा तो नारकियों की संख्या कैसे बढ़ेगी? मृदुभाव रखेगा, अल्प आरम्भ-परिग्रह करेगा, तभी तो मनुष्यों की संख्या पूरी होगी। पर ज्ञानियो! सराग संयम, संयमासंयम, बालतप इत्यादि की साधना करेगा तो जीव देवगति की पूर्ति करेगा और इन सबसे रहित होकर शुद्धात्मा में लीन होगा, वह सिद्ध पर्याय को प्राप्त करेगा। ये सारी व्यवस्थायें व्यवस्थित हैं। कोई भी अव्यवस्थिति की दशा है ही नहीं। फिर भी बेचारा पेरशान है। संज्ञाओं के बीच में संज्ञायें लूट रहा है। संज्ञाओं के पीछे संज्ञान खो रहा है। अहा! महाराज मुझे कितने अच्छे से जानते हैं, बार-बार मेरा नाम ले रहे हैं। ये क्या हो गया? फूल कर कुप्पा हो गया यह जीव।

हे ज्ञानी! ये संज्ञायें शाश्वत नहीं हैं, ज्ञान शाश्वत है। अधर्म में धर्म की खोज मत करो। जितने जगत् में विवेक से शून्य हुये हैं, वे सब संज्ञाओं के पीछे हुये हैं, जबकि आपको मालूम है कि भारत की भूमि में कितनी चौबीसियाँ हो चुकी हैं। उन चौबीसियों में से भैया आपको कितनी चौबीसियों के नाम मालूम हैं? वर्तमान की चौबीसी के नाम अच्छे से याद हों, यह कोई नियत नहीं है। ज्ञानियो! अनन्तानन्त चौबीसियाँ हो चुकी हैं और विश्व में, ब्रह्माण्ड में तीनलोक में तीर्थंकर के सिवाय पुण्यात्मा जीव कोई होता नहीं, लेकिन उस तीर्थंकर परमात्मा का नाम लेने वाले भी कोई नहीं मिलते हैं। जिस चौबीसी की सत्ता होती है, उसी का नाम लिया जाता है। भूत की चौबीसी का कोई नाम नहीं लेता। जब तीर्थंकर-जैसे जीव विलुप्त हो सकते हैं, तो मित्रो! आप कौन-से खेत की मूली हो जो संज्ञा के पीछे तुम सम्यग्ज्ञान खो रहे हो? शाश्वत कोई ध्रुवधाम है, तो मेरी भगवान्-आत्मा है। उसी को पहचानो, उसी को देखो, उसी की बात करो, उसी को समझो। इस बात पर ध्यान देना जो शुभ धाम में धरनेवाला है, वह धर्म है। वह किसने कहा है? वह जिनेन्द्रदेव ने कहा है। धामन यानि पृथ्वी। शुभ धरती पर

धरने वाला कोई है, तो जिनेन्द्र धर्म है। वह धरती कौन है? शुभ धामन धातारं और ईषत् प्राग्भार धरती है, सिद्धशिला है। उस धरती पर जाना है तो मुमुक्षुओ! इस धरती का भी राग छोड़ना पड़ेगा। धरती यहीं रह जायेगी, धरती कहीं जायेगी नहीं, पर धरती के तीर्थो! धरती पर कीड़े बनकर घूमते रहोगे यदि धरती का राग किया तो और यदि धरती से विरक्त हो जाओगे तो '**शुभ धाम धातारं**' अष्टम वसुधा पर विराजोगे।

निडर हो गया जीव, विश्वास मानिये। इतना निडर हो गया कि सामाजिक व धार्मिक बन्धन नष्ट हो गये। जब तक पुण्य-पाप के बन्धन को नहीं जानोगे और पाप से भयभीत नहीं होओगे, तब तक आपकी सारी व्यवस्थायें भंग ही होती रहेंगी। एक समय था जब किसी का बेटा होटल में भोजन करके आ जाये तो पिता कहता था कि बेटा तूने समाज में हमारी नाक कटा दी। मैं नगर का सेठ, उच्चकुलीन और कहाँ जगत् की जूठी प्लेटों में भोजन करके आ गया। आजकल तो किसी का निमंत्रण भी करते हो तो होटल करके आ जाते हो और बोल देते हो कि अमुक होटल में पार्टी है, वहाँ आ जाना। और ऐसा जीव ही, कोई मांगलिक कार्य हो तो, सबसे पहले उसका ध्वजारोहण वही करेगा। बात समझना, कितनी निडरता छा गई है इस जीव के अन्दर में। पिता की आँख ही बेटे को पानी-पानी कर देती थी, अब तो बेटा हाथ भी पटक दे पिता पर, यदि शांति से जीवन जीना है तो बेटे को जवाब नहीं देना, समय देखो। जिससे डरना चाहिये है, उससे नहीं डर रहा है और जिससे नहीं डरना चाहिये, उससे भयभीत होकर दौड़ रहा है। हाँ, भैया! ऐसा ही हो रहा है पञ्चम काल में।

भैया! अपनी युवावस्था की याद करो। एक पेंसिल भी तुझे चाहिये होती थी तो तू अपने पिता से बोलता था कि हे तात्! मुझे पेन्सिल चाहिये। और कैसे लेकर आये, आप ही बताओ। यहाँ तक कि कागज, पेन्सिल भी बेटा बगैर पूछे नहीं ला सकता था। लेकिन आज तो ज्ञानी शादी रचाकर आ जाता है और पिताजी तो घर के बाहर हो गये। पता नहीं किसको लेकर आ जाता है। क्या करता? वृद्ध हो चुका है। जिस कुल में जन्म लेकर जिनेन्द्र का अभिषेक किया जाता है, जिस कुल में जिनवाणी सुनी जाती है, निर्ग्रन्थ गुरुओं को दान दिया जाता है, उस कुल में तुमने किस को बिठाल दिया? **ज्ञानी! यदि मर्यादा में रखना चाहते हो तो मर्यादा में रहना सीखो। यदि तुम मर्यादा में नहीं रह पाओगे, तो तुम किसी को मर्यादा में नहीं रख पाओगे।** एक समय था

बेटे पिता की आँखों से डरते थे, क्योंकि वे पिता अपने बेटों को गालों पर नहीं रखते थे और आज तुम अपने ही पिता के सामने अपने ही बेटे को गालों पर रखे होते हो। मर्यादा तभी है, जब तुम मर्यादा में रहोगे। समझ में आ रहा है क्या?

हमारे आचार्यों को कितना ज्ञान था कि जो भविष्य में होने वाला हो सकता था वो सब इसमें निबन्धन कर दिया। भैया! भयभीत हो जाओ। जीव कष्टमय साक्षात् दिखते हैं, पीड़ित दिखते हैं, उनको देखते हुये भी जीव डरता नहीं है। जिसको एक बार माँगने की आदत पड़ जाय, वो कहीं भी हाथ फैला सकता है। 'मूलाचार' जी ग्रन्थ में निर्ग्रन्थ मुनियों के लिये लिखा है कि **हे श्रमण! नई बहू और साधु एक-सा होता है। यदि बहू के अन्दर लज्जा है और जब तक बहू देहरी के बाहर नहीं निकली, तब तक शोभा है। जिस दिन बहू तुम्हारी बाजार में घूमने लग गयी, समझ लेना कि तुम्हारा परिवार उजड़ने वाला है। ऐसे-ही श्रमण जब तक मर्यादा के घूँघट में है, तब तक साधु की सुरक्षा है। यदि मर्यादा का घूँघट उसका उठ गया, तो निर्ग्रन्थ मुद्रा में भी भिखारी बनकर घूमने लगेगा।**

हे श्रावको! ये मुनि हैं, उनके हाथ पर ग्रास तो रखना, जब मुद्रा लगाके आयें तब उनकी चर्या तो कराना, संघ मत देखना, साधु देखना। लेकिन उनके हाथ पर आहार, जिनवाणी, पिच्छी-कमण्डल के अलावा यदि दूसरी सामग्री तुमने दी, तो तुम्हें यति-हत्या का दोष लगेगा। सारी व्यवस्थायें व्यवस्थित हैं। यदि आपने निस्पृह योगी के हाथ में कोई चीज रख दी है, तो विश्वास रखना, आपने बहुत बड़ा अपराध किया है। जब कभी आप मुनिराज बनो तो, मेरे मित्र! जिन-जिन तीर्थों की तुझे वन्दना करना हो, पहले वन्दना कर लें। मुनि बनने के बाद तुम स्वयं वन्दनीय हो जाओगे, वन्दना के विकल्प को छोड़ देना। हाँ, कोई ऐसा श्रावक आये, कहे कि महाराज! मैं तीर्थवन्दना करना चाहता हूँ चतुर्विध संघ सहित, तो आप तीर्थवन्दना को चले जाना, लेकिन हे ज्ञानी! एक-एक रुपया बटोर-बटोर करके सम्मेदशिखर की वन्दना भी करने तुम जाओगे तो वह भी तुम्हारी मुनिचर्या में दोष ही होगा। यदि तुम्हारे मुनि बनने के परिणाम हो रहे हों तो, भैया! पहले वन्दना कर लो। भैया! अरिहंत की इस मुद्रा को तुम भिखारी बनकर मत ले जाना। ब्रह्मांड में, विश्व में मात्र एक ही मुद्रा ऐसी है जिसमें बर्तन, झोली नहीं फैलायी जाती। इसमें वीरचर्या होती है। जैसे आकाश में बिजली तड़कती

है, ऐसे-ही चमकते हुये निकल जाते हैं। ये वीतरागी मुनि होते हैं, ये रोटियों के टुकड़ों के पीछे किसी के सामने हाथ नहीं फैलायेंगे कि रास्ते के चौके का क्या होगा ? समाधि होगी, और-कुछ नहीं होगा। इतना निर्णय हो, तो मुनि बनना और इतना निर्णय नहीं हो, तो मुनियों के भक्त बनकर रह लेना।

"रयणत्तयं तित्थं" रत्नत्रय ही तीर्थ है, जिनमुद्रा ही तीर्थ है। **'जे गुरु चरण जहाँ धरैं, जग में तीरथ होय।'** ये द्रौणगिरि पर्वत 'तीर्थ' कैसे बन गया? तीर्थ था क्या ? यहाँ से कितने कोटि मुनि मोक्ष गये? गुरुदत्तादि मुनिराज इस पर्वत की चोटी पर से निर्वाण को प्राप्त हुये। उन निर्ग्रन्थ योगी के चरण पड़ गये तो यह पर्वत तीर्थ हो गया। निर्ग्रन्थ योगी तीर्थ नहीं बनाते, उनके चरण पड़ते ही तीर्थ बन जाते हैं। इसलिये मैं तो उन योगियों से बोलता हूँ जिनके समाधि के दिन चल रहे हैं कि भाई! इस विकल्प में मत आना कि मेरी सम्मेदशिखर में समाधि हो, कि गिरनार में हो कि नैनागिरि में या फिर द्रौणगिरि में हो। इन सब विकल्पों को समाप्त करके ही समाधि हो सकती है। जहाँ होगी, वही तुम्हारे लिये सम्मेदशिखर होगा, क्योंकि रत्नत्रय धर्म ही तीर्थ है। और यदि ये विकल्प आ गया कि मैं तो सम्मेदशिखर में ही समाधि करूँगा और अन्तिम समय चल रहा हो और पूर्ति नहीं हो पायी, तो परिणाम कलुषित हो जायेंगे, कषाय में चला जायेगा जीव।

आपको हमारी व्याख्या उल्टी लग रही है। ये उल्टे लोगों को उल्टी लगेगी, पर ये ही सीधी है। **साम्यभाव साधना है। यदि साधना में ही साम्यभाव बन्द हो गया, तो साधना जिसके लिये?** ज्ञानियो! भयभीत होओ, भयभीत। जो पूर्व में किये हैं पाप, उनका शोक करो, पश्चात्ताप करो कि अरे! ये मैंने क्या कर दिया? जो नहीं करना चाहिये था, वह भी कर बैठे। जो नहीं कहना चाहिये था, वो भी कह बैठे। जो नहीं सोचना चाहिये था, वो भी सोच बैठे। भैया! व्यक्ति जब शंका में होता है और लघुशंका लगी हो, दीर्घशंका लगी हो, फिर देखो, व्यक्ति को चैन पड़ता है क्या? मुमुक्षु यदि मंदिर में भी होगा और लघुशंका लग आये, तो उठकर ही भागता है। शंका मंदिर से बाहर करा देती है, शंका सम्यक् से बाहर करा देती है। इसलिये निशंकित अंग है, शंकित अंग नहीं है। लघुशंका किसी व्यक्ति को लगी हो तो बेचारा तुरंत भागता है। **शंका में शान्ति कहाँ, शंका में आनन्द कहाँ?** दो मित्रों के बीच में शंका खड़ी हो

जाये तो विश्वास रखना, आनन्द भंग। आप जो जीवन जी रहे हो, निशंकित होकर जी रहे हो, शंकित होकर नहीं जी रहे हो। यदि तुझे शंका हो जाये कि मेरी घरवाली मुझे जहर न दे दे आज, तो आज से ही तेरा घर बिगड़ जायेगा। जैसे निशंक होकर घर में आप रोटी खा लेते हो, ऐसे ही निशंक होकर परमेष्ठी के चरणों में वन्दना करो। आपको शंका हो जाये कि पाण्डाल गिरने वाला है, तो आप भग जाओगे यहाँ से। कितना विश्वास किया उस पर जिसने पाण्डाल बनाया। ज्ञानी! विश्वास पर तो संसार का व्यापार ही चलता है तो निशंकित होकर चलता है। कितनी सारी पैकिट की सामग्री तुम मुख में रख लेते हो, क्योंकि निशंक आहार है। शीलबन्द है तो वस्तु सही होना चाहिये। बिल्कुल सही है, शील बन्द है (सप्तशील) तो वस्तु सही होना चाहिये। कोई व्यक्ति तेरा पत्र भी लेकर आया और खोल दे, तो उसका चेहरा बिगड़ जाता है। मुमुक्षुओ! जीवन की शील बन्द है, तो विश्वास है। जिसका शील खुल गया। उसका विश्वास गया शील पर विश्वास होता है, कुशील पर कोई विश्वास नहीं रखता।

युवाओ! जब तक तुम्हारे भीतर की बातें किसी को पता नहीं हैं, तब तक माँ भी बेटा कहती रहेगी और जिस दिन तेरी करतूतें माँ को पता चल जायें, उस दिन से माँ भी तुझे बेटा कहना पसन्द नहीं करेगी। और यदि माँ है, तो उस माँ को माँ कहना बेटा तभी पसन्द करता है जब तक माँ सुशील है। यहाँ तक कि पिता से पिता तभी तक बेटा अच्छे से कहता है जब तक पिता के शील का बेटे को बोध है। यदि पिता की खोटी आदतें बेटे को मालूम चल जाएँ, तो वह मेरे संबंध का पिता तो है, लेकिन श्रद्धा का पिता नहीं। संबंध का पिता बन लेना, संबंध का पुत्र बन लेना, संबंध की माँ बन लेना, यह बहुत बड़ी बात नहीं है, यह तो कामपुरुषार्थ का फल है; लेकिन श्रद्धा का माता, पिता, पुत्र बन पाना, यह आस्था का पिता है, आस्था का पुत्र है, आस्था की माँ है। कामपुरुषार्थ की माँ नहीं है, यह श्रद्धा की माँ है। वह मेरी भगवती जिनवाणी है। जगत् की मतारी तो सुलाना जानती है, और-क्या जानती है ? जगत् की माँ कहेगी कि बेटा! सो जा। जबकि यह भगवती जिनवाणी माँ है जो कहती है कि बेटा जाग जाओ, जाग जाओ। भैया! आज आप कौन-सी माँ की गोद में सो रहे हो? **मेरे मित्र! ममता की माँ सुलाना ही जानती है और समता की माँ जगाना जानती है। निर्ग्रन्थ योगी ममता की माँ की गोद में नहीं, बल्कि समता की माँ की गोद में होते हैं।** ममता

की माँ व समता की माँ, भैया! कौन-सी माँ चाहिए? यदि ममता की माँ चाहिए तो पचता रहेगा।

ममता में रहेगा तो '**बध्यते**', समता में रहेगा तो '**मुच्यते**'। इसलिए संपूर्ण रूप से प्रयत्न करना चाहिए। इसलिए भयभीत रहो और बंध से डरो, पाप से डरो, अपनी लाज की लाज रखो। बेटा! इतना ध्यान रखना, इतनी-सी बात मेरी मान लेना। इतनी योग्यता को नष्ट मत कर लेना कि हम तुम्हारे हाथ से आहार भी न ले पाएँ। कम-से-कम इतना ख्याल रखना कि निर्ग्रन्थ योगी तुम्हारे हाथ से आहार लेते रहें। यह तभी संभव है जब तुम अपने कुल के अनुसार चलोगे। यदि तुम अपने कुल के अनुसार नहीं चले, तो मैं तुमसे आहार नहीं लूँगा। कर लो कायोत्सर्ग कि मैं ऐसा कार्य नहीं करूँगा। ये बेटे सुरक्षित रहेंगे तो जिनशासन सुरक्षित रहेगा। एक बहुत बड़ी समाज सुरक्षित हो गई। बेटियो! ऐसा काम मत करना कि पिता को सिर पर हाथ रखके रोना पड़े। सुबह से जागकर जिनेन्द्र का अभिषेक देखते हों जिस कुल में, वहाँ तुम छुरी जाकर देखो सुबह से, ऐसे काम मत करना। जो बात विद्वानों को कहना चाहिए थी, वह मुझे कहनी पड़ रही है। बेचारे कहने का साहस नहीं कर पाते। क्या कहें, महाराज! अपने ही भावों का भरोसा नहीं है तो दुनियाँ को क्या सिखाऊँ। भैया! मैं आपसे पूछ सकता हूँ, तू मुनिराज क्यों नहीं बना? तू इतना सरल भद्र परिणामी। 'महाराज! क्या करूँ? शरीर में ताकत नहीं।' **ज्ञानी! संयम से शरीर में ताकत रहती है, असंयम से ताकत का नाश होता है।** पंचमकाल मोक्ष के लिए नहीं है, पर मोक्षमार्ग के लिए पंचमकाल को दोष मत दो। पंचमकाल दोष का नहीं तो किस बात का दोष है? 'महाराज! माता-पिता ने रोक कर रखा।' माता-पिता की तुम मानते होते तो बहुत सारी बातें माता-पिता की तुम लोगों ने कहाँ मानी? परिवार का राग नहीं है। कई बार तू घर छोड़कर बाहर चला जाता है, परिवार के लोग भी कह देते हैं। जब पैसा कमाने विदेश जाता है तो उस समय माँ को यह पता नहीं रहता कि बेटा लौट कर आएगा या नहीं। क्यों मुनिराज नहीं बन सका ये जीव? क्योंकि निज का निज पर विश्वास नहीं। मैं नहीं बन सकता। और चारित्रमोहनीय कर्म को दोष देकर कर्माधीन हो गया मिथ्यादृष्टि।

भैया! क्या कभी जीवन में समयसार सुना है? यदि समयसार सुना है, तो जो यूँ कहता है कि जो कुछ होना है वो परमात्मा के हाथ में है और एक ज्ञानी मुमुक्षु जैन

विद्वान् कहता है कि ये कर्म के हाथ में होगा। एक परमात्माधीन हो गया, एक कर्माधीन हो गया और एक अज्ञानी कहता है कि निमित्त होगा तो हो जायेगा, वह निमित्ताधीन हो गया। अरे मुमुक्षु! इन कर्मों से ही सबकुछ होगा, तो कर्म कब पिण्ड छोड़ेगा? पुरुषार्थ से कर्म छूटेगा, कि कर्म से कर्म छूटेगा? कर्माधीन हो गया, फिर तो कभी कोई मुनि बन ही नहीं सकता है। मुनि नहीं बन सकता, तो भगवान् भी नहीं बन सकता। कर्माधीन हो गया कि मैं क्या करूँ महाराज! कर्म का ऐसा उदय है। ज्ञानियो! कर्म का उदय आना कर्म का उदय है, पर कर्म के उदय में लीन होना, ये कर्म का उदय नहीं, तेरी करतूती का उदय है। फिर इन युवाओं को क्यों दोष देते हो? फिर वो भी कहेंगे कि मेरी युवावस्था आ गई और वेद कर्म का उदय आ गया, सो मैंने ऐसा कर लिया। भैया! तू तो महाज्ञानी पण्डित है। वो कहता है 'महाराज! ठीक है, स्त्रीवेद ने पुरुष को भोगा, पुरुषवेद ने स्त्री को भोगा, मैंने क्या किया? मैं तो त्रैकालिक शुद्ध हूँ।' भैया! आप तो ये मान कर चलो कि इस सभा में जितने वृद्ध हैं उतने ही युवा हैं और जिनवाणी खुलकर कही जाती है, छिप-छिप कर नहीं कही जाती है। भैया! सुनो। ऐसे पाखण्डी लोग हुये हैं इस भारत की धरती पर जिन्होंने कहा पुरुषवेद ने स्त्री को भोगा, स्त्री वेद ने पुरुष को भोगा, मेरे चिद्रूप ने क्या किया? वह तो त्रैकालिक शुद्ध भगवान्-आत्मा है, वह तो कुछ करता ही नहीं है। भाई! सुन ध्यान से। मैं जो बोल रहा हूँ, समयसार से बोल रहा हूँ। समयसार ग्रन्थ एकान्तवाद, नित्यवाद का खण्डन करनेवाला ग्रन्थ है। समयसार ग्रन्थ ईश्वराधीन, कर्माधीन का खण्डन करने वाला ग्रन्थ है। आप भाषा की माधुर्यता में चले गये

सामने एक कन्या थी, उसे देखकर तेरे परिणाम खराब हो गये। किसी दूसरे को मालूम चल गया। वह कहता है, 'भाई! तूने ऐसा क्यों किया ?' तू धीरे-से बोलता है, भाई! मैं क्या कर सकता हूँ? ये वेदकर्म का उदय आया है, जिससे ऐसा हो गया है, इसमें मेरा क्या दोष ? दूसरा भी कहता है कि हाँ भैया! इसमें इसका क्या दोष है? वो सामने कन्या आ गई, इससे इसके भाव बिगड़ गये। यदि ये सामने न होती, तो इसके भाव क्यों बिगड़ते? भैया! क्या ये सही कह रहा है? आपका समयसार तो मिथ्यात्व अनाचार फैला देगा। ज्ञानी! सुनो। समयसार क्या कहेगा? भाई! एक कन्या मंदिर में पूजा कर रही थी। उसे मालूम ही नहीं था कि मुझे कौन अभागा देख रहा

है। वहीं पर परमात्मा की प्रतिमा भी विराजमान है। कन्या का दोष है, कि तेरी दृष्टि का दोष है? कन्या के निमित्त को दोष देकरके और खोटे परिणाम करके, कर्म का बंध क्यों कर रहा है? तू यह क्यों नहीं बोलता कि मेरी खोटी दृष्टि का दोष है। इस जिनालय में वह तो भगवान् की पूजा कर रही है, वह तो पुण्य कमा रही है, और मैं अभागा आँखों से कर्म करके पाप कमा रहा हूँ। 1400 पिच्छीधारी (जितने मुनि, आचार्य, आर्यिका, ऐलक, क्षुल्लक,क्षुल्लिका आदि हैं) ये सब तत्त्वोपदेश मात्र करने की प्रतिज्ञा कर लें, एक दूसरे के बारे में कुछ न कहकर तत्त्व मात्र की व्याख्या करें, तो मिथ्यात्त्व तो बचेगा ही नहीं, दिखेगा भी नहीं, क्योंकि एक साधु की इतनी महिमा होती है।

ज्ञानी! क्रिया का मिथ्यात्त्व छुड़ा लेना सरल है, पर ज्ञान का मिथ्यात्त्व छुड़ा पाना बहुत कठिन है। कुपन्थों का जन्म दिशाओं से नहीं होता है, खोटे ज्ञान से होता है। ध्यान रखना, हर व्यक्ति के द्वारा खोटी क्रिया नहीं चलायी जा सकती है। जिसकी बुद्धि तेज होगी और जिसका ज्ञान विपरीत होगा, वही चला सकता है; क्योंकि विपरीत चारित्र तो सबको दिखता है। कोई उसके पास ही नहीं जायेगा। चारित्र सम्यक् पाले और ज्ञान विपरीत चले, ऐसे व्यक्ति से खोटा मार्ग बहुत जल्दी चलता है; क्योंकि श्रद्धा ज्ञान से नहीं बढ़ती, श्रद्धा चारित्र से बढ़ती है। पूजा चारित्र की होती है। चारित्र से यदि कोई मिथ्यादृष्टि है, वह अशुद्ध भोजनादि न करता हो, तो आप तुरन्त प्रभावित हो जाते हो और वो पानी छान कर पीता है, रात्री में भोजन नहीं करता, आलू-प्याज नहीं खाता है,यहाँ तक तो ठीक है। और क्या करता है? उपदेश क्या करता है? ये कहता है कि स्त्रीवेद से पुरुष को वेदा और पुरुषवेद से मैंने स्त्री को भोगा, मैंने क्या किया? अरे! आप उसकी ऊपरी चमक को देखकर उसकी विपरीत बात को मान कर मिथ्यात्त्व में डूब गये।

जो वेदकर्म है, उसका उदय किससे हुआ है? जीव में हुआ, कि जड़ में? उस वेदकर्म का भोक्ता कौन है ? अनुभूति कौन ले रहा है? स्पर्श कौन कर रहा है? वेदन कौन कर रहा है? कह दो शरीर। भो ज्ञानी! शरीर माध्यम है, शरीर भोक्ता नहीं है। भैया! तू चश्मे से देखता है, कि चश्मा देखता है? चश्मे से देखते हो, कि आँखों से देखते हो? देखते आँखों से हो। अच्छा, आँखों से देखते हो, कि आँखें देखती हैं?

बोलो, देखता कौन है? इसका मतलब क्या हुआ? देखनेवाला कोई-और है और देख किसी और से रहा है तू। ज्ञानी! नेत्र कर्ता नहीं है, नेत्र करण है। नेत्र से देखा जाता है। व्यक्ति अज्ञानी भी होगा, वो भी कहेगा कि मैंने अपनी आँखों से देखा। 'से' लग गया न? कर्ता ने कर्म को करण से द्वारा। अब प्रवचन करने बैठ गये गद्दी पर, लेकिन आपको व्याकरण का बोध नहीं है, तो तुम क्या प्रवचन करोगे? करण है कि कर्त्ता? यः क्रियां करोति, सः कर्ता। यद् क्रियतं तद् कर्मा। येन क्रियते तद् करणम्।

जो करता वह कर्ता, जिसको करता वह कर्म और जिससे करता वह करण। तो आँखें आपकी कर्ता हैं कि करण हैं? करण हैं, बहुत अच्छा। जो कह रहा है कि मेरा कोई दोष नहीं है, आँखें चली गईं। इन्द्रियाँ चली गईं। इन इन्द्रियों को दोषी ठहराकर तुम पापों में मस्त मत हो जाना। ये इन्द्रियों का दोष नहीं है। मैं तो आँखों से ईर्यापथ का शोधन करता हूँ, मैं तो आँखों से ग्रन्थ पढ़ता हूँ, मैं आँखों से जिनवाणी पढ़ता हूँ और जिनेन्द्रदेव को देखता हूँ। यदि आँखों में पाप होता, तो तीर्थवन्दना के लिये तुम कैसे चल कर आ गये? इसलिये वे पागल लोग हैं, अज्ञानी, जो आँखें फोड़कर तपस्वी बनते हैं। भैया! ये आँखें फोड़ने का मार्ग नहीं है। **इच्छाओं का निरोध, इसका नाम तपस्या है।** भैया! सुन ऐसा सूक्ष्म विषय है कि वक्ता ने जैसा घूमाया, वैसा जीव घूम जायेगा। लेकिन शास्त्र-प्रवक्ता वही है, जो सम्यक् उपदेश देता हो।

ज्ञानी! शस्त्र का घात तो पर्याय मात्र का नाश करेगा। और कहीं विपरीत शास्त्र में घात कर दिया, तो श्रद्धा का घात करेगा। कुछ भी कहो, ये कठिन शब्द समाप्त कर दो। अब तुम अध्ययन करो, स्वाध्याय करो। आज सम्यक् विद्वानों की कमी है। स्वाध्याय करके प्रवचन करने जाया करो। ठीक है? क्रम से पढ़ना। ऐसा नहीं कि **कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा, भानुमती ने कुनबा जोड़ा।** ऐसी पढ़ाई नहीं करना। उससे तो अज्ञानी श्रेष्ठ है। कम-से-कम श्रद्धा तो रहती है अज्ञानी में। मित्र! विपरीत ज्ञान की अपेक्षा से अज्ञानी श्रेष्ठ है। बताओ भैया! आप कैसे कहते हो कि महाराज श्री! कठिन विषय समझ में नहीं आता? अब देखो ये छोटे-छोटे बच्चे कैसे शांत बैठे हैं।

ज्ञानियो! भयभीत होना, पर कर्माधीन नहीं होना। नहीं-तो कहो कि हमारा चारित्रमोहनीय कर्म का उदय है। भो ज्ञानी! पुरुषार्थ करने पर भी परिणाम न हो, तब कहना कि चारित्रमोहनीय कर्म का उदय है। जहाँ तुमने पुरुषार्थ आज तक किया ही

नहीं है, सोचा ही नहीं है जीवन में कि मैं भी मुनि बनूँ। तुमने तो ये सोचा है कि मैं पण्डित ही बनूँ और कह रहे हो कि मेरा चारित्रमोहनीय कर्म का उदय है। यदि चारित्रमोहनीय का उदय है, तो ज्ञानियो! उसको भी समाप्त करने का उपाय है। जिन-जिन जीवों को अपनी निर्दोष चर्या पालना हो, और जिन-जिन जीवों को पिच्छी-कमण्डल धारण करना हो और जिन-जिन जीवों को पिच्छी-कमण्डल धारण करके उनको सुरक्षित रखना हो, वो मेरी एक छोटी-सी/तनिक-सी बात मान लेना।

जिनको अपना संयम सुरक्षित रखना हो जीवनपर्यन्त, मेरी छोटी-सी बात सुन लेना। ये बात मेरी नहीं है, तीर्थंकर भगवन्तों ने कही है। साधना के मार्ग में कभी दो बातें मत सीखना। पता नहीं भविष्य में सभा में कितने मुनि आर्यिका बनने वाले बैठे हों। मैं नहीं भी रहूँगा, तब भी आपको याद तो रहेगा कि महाराज ने कुछ तो कहा था। **साधना के मार्ग में कभी हठग्राही मत बनना और शीघ्र कोपी मत होना। शीघ्र कोपी और हठधर्मी न घर के होते हैं, न घाट के होते हैं।** 'मेरे मन का नहीं होगा, मैं आज आहार नहीं करूँगा।' ये स्त्री-स्वभावी है। स्त्री-स्वभावी, ये पुरुषधर्म नहीं है। माताओ! आप लोग बुरा नहीं मानना। जो है, सो है। कुछ भी जरा हुआ तो आज मैं भोजन नहीं करूँगा। शीघ्र कोपी नियम से चारित्र से च्युत होता है। पिच्छी-कमण्डल न भी छूटे। भैया! आप संयम किसे मानते हो? नग्न भेष को, पिच्छी-कमण्डल को? यदि इसे संयम मानते हो, तो मैं किसी भी बच्चे को खड़ा कर सकता हूँ और धोती-दुपट्टा पहना दिया आप जैसा। भैया! आप मंच तक तो बुला लेंगे, पण्डित जी बना लेंगे, पर जब माईक सामने रखवायेंगे और कहेंगे कि बोल मंत्र, फिर पण्डिताई कहाँ रहेगी? ज्ञानी! जिनवाणी में संयम की जो परिभाषा है, **'कषाय वसंगदो असंजदो होदि'** जब तक कषाय नहीं है, तब तक ही संयम है। **जैसे-ही कषाय उत्पन्न हुई, वहीं असंयम प्रारम्भ हो गया। चारित्रमोहनीय कर्म के आस्रव का कोई कारण है तो वह काषायिक भाव है और जिसका काषायिक भाव है, वही कषायी है और कषायी कभी मोक्षमार्गी होता नहीं।**

भैया! कभी मुनिराज बनो तो प्रसन्नचित्त रहना, गद्गद् भाव रखना और वस्तुस्वतंत्रता पर ध्यान रखना और सामाजिक, राजनैतिक इन सब प्रपंचों से अपनी रक्षा करना। विश्वास रखना, समाज तो बच्चों का एक तमाशा है। जैसे बच्चे आपस में लड़ लेते हैं और फिर उसी गली में खेलते हैं और कोई वृद्ध पहुँचे, झगड़ा देखकर वृद्ध उन्मत हो जायेगा और झगड़ने लगेगा। व्यर्थ में झगड़ रहे हो। बच्चे तो वहीं खेलेंगे।

ऐसी-ही समाज है। ये परस्पर में उसी गली में रहेंगे, वहीं खेलेंगे वहीं खायेंगे। रिश्तेदारी के लिये एक हो जायेंगे, बेटा-बेटी की शादी में एक हो जायेंगे, पर धर्म का नाम होगा तो अलग-अलग रहेंगे, अलग दिखेंगे। नहीं, भाई! ऐसा मत करो। ऐसे-ही जो दिगम्बर मुनि समाज के काम में अन्दर चला जाये तो विश्वास रखना, वह मात्र बदनाम होकर ही निकलेगा और समाज फिर एक हो जायेगा। भैया! जो दो के झगड़े हो रहे हैं समाज में, एका करने कभी मत जाना। जीवन में स्वप्न में भी एका करने मत जाना। जितना तुम एका करोगे, उतने ही टुकड़े हो जायेंगे। बस एक दूसरे के दोष दिखेंगे तो एक-दूसरे ठीक रहेंगे, भैया! समझ रहे मैं क्या बोल रहा हूँ? घर में मेरे मित्र! तू पत्नी को शत्रु बना कर रखेगा तो तेरा चारित्र पवित्र रहेगा और मित्र बना कर रहेगा, तो तेरा चारित्र बिगड़ जायेगा। भैया! पूरी बात सुनना, मतलब मेरा समझना। कहीं आपने अपनी पत्नी को इतना अधिक समझा कर रखा और वह तुम्हारी इतनी बात मानती है और तेरी दृष्टि कहीं किसी दूसरी स्त्री पर जाती है तब भी वह इतना तेरा सहयोग कर रही है, ज्ञानी! वह तुझे व्यभिचार में ढकेल देगी। यदि पत्नी का तुझे डर लगता रहेगा, तो कभी तू दूसरी स्त्री को नहीं देखेगा। प्रतिकूल मित्र है। डर भंग नहीं होना चाहिये और डरना चाहिये। कभी-कभी लगता है कि आप लोग गृहस्थ अवश्य हो, लेकिन बहुत सारी बातें आपको गृहस्थी की पता ही नहीं हैं।

पापों से डरना, कर्माधीन मत हो जाना। कर्माधीन हो जाओगे तो पुरुषार्थ तुम्हारा नष्ट हो जायेगा, फिर कभी मोक्ष नहीं जा पाओगे।

ज्ञानियो ! भूख लगने पर भी भोजन नहीं करना है, वह उपवास कहलाता है। यदि भूख ही न लगे और भोजन न करे, वो कब्जियत कहलाती है। वह रोग है। भूख लगने पर भी भोजन न करे, बुद्धिपूर्वक त्याग करे, उसका नाम उपवास है। वासनाओं के सताने पर भी, इन्द्रियों के प्रबल होने पर भी जो पापों में न जाये, उसका नाम ब्रह्मचारी है।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।



कुसंगति/सत्संगति

कुसंसर्गः सदा त्याज्यो दोषाणां प्रविधायकः।
सगुणोऽपि जनस्तेन लघुतां याति तत्क्षणात् ॥(269/सा.स.)

अन्वयार्थ - **(दोषाणां प्रविधायकः)** दोषों को उत्पन्न करने वाली **(कुसंसर्गः)** कुसंगति को **(सदा त्याज्याः)** सदा छोड़ना योग्य है **(तेन)** उस कुसंगति से **(सगुणः अपि जनः)** गुणी मानव भी **(तत्क्षणात् लघुतां याति)** क्षणभर में हलका हो जाता है।

भावार्थ — हे भव्यात्मन् ! परिणामों की उच्चता रखने के लिए धर्मात्मा और ज्ञानी पुरुषों की संगति करनी योग्य है। दुराचारी, मिथ्यादृष्टि, व्यसनी, रागी पुरुषों की संगति से महान् सदाचारी एवं गुणवान् पुरुष भी कलंकित हो जाता है। संगति में दोषों की छाप पड़ जाती है। अतएव सदा ही श्रमणों की संगति करना चाहिए।

॥ सद्-देशना ॥

बन्धुओ! अंतिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेश की पीयूष देशना, जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवन्त हो। जयवन्त हो वीतराग श्रमणसंस्कृति।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज सारसमुच्चय जी में संस्कारों और संगति इन दो की व्याख्या करते हुये समझा रहे हैं। निमित्त जो है, एकत्वभूत नहीं है, अनेकत्वभूत है। एक ही कार्य के लिये अनेक कारण चाहिये। निमित्त उपादान की व्यवस्थित व्याख्या को न समझने के कारण जीव यह कह बैठता है कि निमित्त तो कुछ भी नहीं होता। ज्ञानी! यह विषय की अल्पज्ञता का ही प्रतीक है। शीत लग ही रही है, वस्त्र पहने ही हो। उष्णता लगने लगती है मौसम की तो वस्त्र खुल जाते हैं। ये सब उपादान कर रहा है, पर हेतु कौन है? पुद्गल की दशा पर्याय। मात्र मोक्ष के लिये निमित्त को उपस्थित करते हो, जबकि संसार की प्रत्येक विधा के लिये सिद्धांत और सूत्र एक होते हैं। सिद्धांतों में परिवर्तन नहीं होता है, सूत्रों में परिवर्तन नहीं होता है, विषय में परिवर्तन होता है। जिस विद्युत से माईक चल रहा है, उसी विद्युत से हीटर चल रहा है, उसी विद्युत से कूलर, पंखे चल रहे हैं, उसी विद्युत से आप फ्रिज में बर्फ भी जमा लेते

हो। विद्युत तो एक है, विषय भिन्न-भिन्न होने से आपको भिन्नत्व दिख रहा है। ऐसे-ही सिद्धांत एकत्वभूत होता है, विषय की भिन्नता से विषयी में भिन्नत्व दिखता है। ज्ञान तो ज्ञान है। विषय के भेद से कोई गणिताचार्य है, तो कोई ज्योतिषाचार्य है, तो कोई प्रतिष्ठाचार्य है। कोई अध्यात्म-तत्त्ववेत्ता है, तो कोई सिद्धांत-तत्त्व-वेत्ता है। ये सारी-की-सारी विद्याओं से ज्ञान का विषय बदलता है। ज्ञान तो ज्ञान है। जैसे-ही मैंने आपका नाम लिया, आपने हाथ जोड़ लिये। पहले आप कैसे बैठे थे? मैं तो इतने दूर हूँ, इस जीव ने हाथ क्यों जोड़ लिये? हाथ हिलाने की योग्यता तो इसके उपादान में ही थी, पर शब्द प्रभावी हुआ। यदि मैं उसके हाथ को उठाने जाता, तो मुझे चलकर जाना पड़ता। यंत्र-मंत्र और तंत्र, इनमें यही विशेषता है कि यंत्र को लगाना पड़ता है, तंत्र को करना पड़ता है और मंत्र वेग मात्र सुनाना पड़ता है, स्मरण करना पड़ता है। काम हो गया, भैया! बराबर? मंत्र के स्मरण करने मात्र से काम होता है। तंत्र बहुत सारे होते हैं, यंत्र आप देख ही रहे हो। हमारे सामने एक यंत्र रखा हुआ है। ऐसा कोई विषय नहीं है जिसकी प्ररूपणा जिनागम में न हो। गरुण की मूर्ति बनाकर रख दो तो कालिया नाग का जहर अपने आप उतर जायेगा। ये तंत्र है। अभी इस सभा को वश करना हो तो पण्डित जी को खड़ा कर दो और हाथ में पीली सरसों दे दो और उनसे कहना कि पण्डित जी! आप कुछ भी नहीं करना, आप तो मुष्ठि घुमाकर सरसों फेंक देना। सबके हृदय धक-धक होने लगेंगे कि पता नहीं पण्डित जी क्या करने वाले हैं। पर जो तत्त्व पर निडर है, उसके लिये कोई कुछ नहीं कर सकता। जो है, सो है। **जिसका उपादान अत्यन्त प्रभावी है, उसको बाहर के निमित्त कोई कुछ नहीं कर सकते हैं, पर जिनके उपादान ढीले हैं, उनको केला देखकर जुकाम हो जाता है।**

वस्तु की जो भी व्याख्या है, वह नय-योग से है, सर्वथा नहीं है। निमित्त कुछ नहीं करता, ये परम सत्य है और निमित्त के बिना कुछ नहीं होता, ये भी परम सत्य है। आप लोग चुप क्यों हो? बोलो। ये आप दो बातें क्यों करते हो? जो दो बातें करते हैं, वे घोर मिथ्यादृष्टि हैं। जो निश्चय से कहेगा, अभेद बात होगी। जो व्यवहार से कहेगा, वह अभेद बात होगी। ये दो नय आपके दो नयन हैं। यदि एक भी नयन आपका फूट गया, तो ज्ञानी कनवाँ कहलाएगा।

भैया ! समन्तभद्र स्वामी को अपने मस्तिष्क में विराजमान करो, फिर कुन्दकुन्द

स्वामी की बात करो। जब तक समन्तभद्र स्वामी का वक्तृत्व वक्ता के कण्ठ में नहीं आयेगा, तब तक जिनवाणी की गवेषणा अच्छे से कर नहीं सकेगा और जिनवाणी की प्ररूपणा भी नहीं कर सकेगा। मेरे मित्र! निमित्त कुछ भी नहीं करता, ये ध्रुव सत्य है; लेकिन इस सत्य को समझने के लिये कुछ अज्ञानियों ने क्या किया कि विषय को समझा नहीं और 'निमित्त कुछ नहीं करेगा' ऐसा कहना प्रारम्भ कर दिया। अरे भाई! निमित्त जो है, वह उपादानभूत कर्त्ता नहीं है, कुछ भी नहीं करता है। कुम्भकार कभी कुम्भरूप परिणत नहीं होता। यदि कुम्भकार कुम्भरूप परिणत हो जायेगा, तो-फिर एक ही घट बनेगा, दूसरा घट नहीं बन पायेगा। कुम्भकार कुम्भरूप परिणत हो गया तो जड़ 'चेतन' हो जायेगा और चेतन 'जड़' हो जायेगा। ये संकर दोष हो जायेगा। लेकिन बिना कुम्भकार के मिट्टी कुम्भरूप परिणत नहीं होती। पर कुम्भकार कुम्भरूप परिणत नहीं होता। कुम्भ का उपादानकर्ता मिट्टी है और कुम्भ का निमित्त-कर्ता कुम्भकार है। निमित्त कुछ नहीं करता, पर निमित्त सबकुछ करता है। कुछ निमित्त उपस्थित हो जाते हैं और कुछ निमित्तों को उपस्थित कराया भी जाता है।

भैया! यहाँ आने की क्या आवश्कता आ पड़ी आपको? आज ही यहाँ क्यों आये आप ? (महाराज श्री? मैं आचार्यश्री के दर्शन करने आया हूँ, प्रवचन सुनने भी आया हूँ। क्यों आये हो? कहीं भी सुन सकते थे।) हे जीव ! निमित्त के बिना सम्यक्-दर्शन भी नहीं होता। क्षायिक सम्यक्त्व तभी होगा, जब केवली या श्रुतकेवली का पादमूल होगा और जो जीव संयम से दूर हैं, जिनेन्द्र की देशना सुनते ही वे अणुव्रत या महाव्रतों को स्वीकार कर लेते हैं अपनी क्षमता होने पर। क्षमता उनका उपादान है। तीर्थंकर के पादमूल में उनकी पुण्य प्रशस्त वाणी को सुनते ही परिणामों की ऐसी विशुद्धि बनती है जीव की। **जैसे दूध में जामन डालते ही दूध दही बन जाता है, ऐसे-ही जिनेन्द्र की वाणी कानों में पड़ते ही बिगड़े परिणाम शक्कर बन जाते हैं और वही परिणाम बिलो करके मक्खन बन जाते हैं और तपा करके घृत बन जाते हैं। यही चैतन्य दशा है। यही निमित्त-नैमित्तक प्रभाव है।** एक द्रव्य दूसरे द्रव्यरूप नहीं होता, एक गुण दूसरे गुणरूप नहीं होता। एक ही पर्याय दूसरे की पर्यायरूप नहीं होती, इस दृष्टि से पर-निमित्त कुछ भी नहीं करता; परन्तु पर के परिणमन में परिणाम ही निमित्त होता है।

'तत्त्वार्थसूत्र' में जो पाँचवाँ अध्याय है, वह सब निमित्त-प्रधान है। यदि निमित्त की प्रधानता उसमें नहीं दोगे, तो सारे विश्व का जो रसायनशास्त्र है, उसका लोप हो जायेगा, जितनी आयुर्वेदशालायें हैं, जितनी प्रयोगशालायें हैं, भोजनशालायें हैं, वे सब बन्द हो जायेंगी। भैया! इन युवाओं को समझाओ और हमारे इन विद्वानों को भी समझाओ। संघात में बल होता है। विघटन में ताकत नहीं होती। समाज को सीखना चाहिये ये सूत्र। जिनवाणी के सूत्रों में न्यायशास्त्र, दर्शनशास्त्र, नागरिक शास्त्र, रसायन शास्त्र, सब भरे होते हैं। बस, आपको पकड़ने की आवश्यकता है। संघात में बल होता है। सामाजिक दृष्टि से देखो। एक-एक लकड़ी टूट जायेगी और गट्ठा बांध दो फिर तोड़कर दिखाओ? एक-एक होकर टूट जायेगा। उसी का संघात करके रस्सा बना दिया तो हाथी बांध दिया जाता है। एक-एक घर को विखेर दोगे, समाज के एक-एक व्यक्ति को तोड़ दोगे, तो समाज का विघटन हो जायेगा और कोई भी तुम्हारे ऊपर हावी हो सकता है। और यदि संगठन है, तो जैसे हाथी को तृण बांध लेता है, ऐसे-ही विश्व को एक करने की ताकत जैनसमाज में होती है।

युवाओ! एक पुरुष ने इतना संघात दिया कि तीनलोक को जीवित कर दिया। यशः-कीर्ति प्रकृति भी संघात है। इन आचार्यों को, मुनिराजों को, विद्वानों को वस्तुस्वरूप समझाना चाहिये। भैया! कार्य से कारण को जाना जाता है, कि कारण से कार्य को किया जाता है? कार्य से कारण की सिद्धि होती है, कार्य से कारण का बोध होता है। आवश्यक नहीं है कि हर विषय को मुख से बोला जाय। जो हर विषय को मुख से बुलवाता है, वह अपना काम बिगाड़ लेता है। जब पोता सामने खड़ा है, तब आप क्या कहते हैं? न इसका पिता बालब्रह्मचारी, न इसका दादा बालब्रह्मचारी। ये कारण दिख रहा है। बिना अब्रह्म के पोता बनकर आ कहाँ से गया? पोता कार्य था, तो कारण दिखाई दे गया। कार्य से कारण को देखा जाता है और कार्य से कारण को किया जाता है। जब आपको रोटी खाने को मिल रही है, तो आपको अग्नि का भी ज्ञान हो जाना चाहिये, चौकी का भी ज्ञान हो जाना चाहिये, बेलन का भी ज्ञान हो जाना चाहिये। उपादान से गेहूँ रोटी का कर्ता है, पर उसके साथ-साथ तुम इन निमित्तों को समाप्त कर नहीं सकते। एक द्रव्य का परिणमन परद्रव्यभूत नहीं होता, इस दृष्टि से कोई किसी का कर्ता नहीं होता। इसलिये भैया! निमित्त उपादान की दृष्टि पर विवेक

नहीं जगा तो इन युवाओं को तुम सुधार नहीं पाओगे। जब आपके अन्दर युवाओं को सुधारने का अहंकार सताने लग जाये, तब मैं आपसे कहूँगा ज्ञानी! इस मद को आज छोड़ दो। तू इनको सुधारने का कर्ता कब से हो गया? उन जीवों को सुधरने के भाव न होते, तो तुम कुछ भी नहीं कर सकते थे। ज्ञानी! अंधे को चश्मा नहीं लगता। जिसकी ज्योति होती है, उसी को चश्मा लगता है।

भैया! विषय के अन्दर प्रवेश करो। जितने रसायनशास्त्र को पढ़नेवाले होंगे, उन्हें पता होगा कि संघात में बल होता है। जब पुष्प की बोंड़ी खुली नहीं होती है, तब तक गंध/सुगंध नहीं आती है। परभूत जो गंध है, वह गर्भ है। जितने लंबे समय तक बालक गर्भ में रहता है, उतना ही स्वस्थ लम्बे समय तक रहता है। पुष्प का जो सुगन्धित द्रव्य है, वह गर्भ में है। किसी को पता ही नहीं कि यहाँ पर कितनी सुगन्ध है। संघात में बल होता है। ये विशुद्धसागर नहीं बोल रहे हैं। 'तत्त्वार्थ राजवार्तिक' ग्रंथ में आचार्य अकलंक स्वामी ने एक सूत्र दिया है, सिद्धांत दिया है, कि पुष्प की बोंड़ी में संघात है तो सारी सुगंध भरी हुई है। जैसे-ही पुष्प खिलता है, तो घर तो घर, सारी गली महकना प्रारम्भ हो जाती है। संघात में संचय होता है। जिस जीव ने तीर्थंकरप्रकृति का बंध किया है, उसने कितना संघात किया कि नरक के नारकियों को आनन्द आ गया कि आज तीर्थंकर आदिनाथ का जन्म हुआ है। यदि निमित्त कुछ नहीं करता होता, तो हे मुमुक्षु! तीर्थंकर के जन्मकल्याणक के समय भवनवासियों के भवनों में, व्यन्तरों के स्थानों पर, वैमानिक देवों के यहाँ ये सब अपने आप क्यों होने लग गया? कहीं सिंहनाद हो रहा है तो कहीं शंखनाद हो रहा है तो कहीं बाजे बज रहे हैं। घर में कहीं यदि शत्रु का जन्म हो जाये, तो शत्रु के घर में भी उपद्रव होना प्रारम्भ हो जाता है। साक्षात् तो यहाँ दिख रहा है कि अनुकूलताओं में यहाँ हजारों तालियाँ बज रही हैं। **'प्रत्यक्षं किं प्रमाणं।'** जिनागम स्मृति, ज्ञान, तर्क, अनुमान, आगम ये परोक्ष प्रमाण भी मानता है। ये पाँच प्रमाण हैं, परोक्ष प्रमाण।

भैया! बनिया का लड़का क्यों नहीं पढ़ पाता? तकरिया पकड़ा देते हैं। किसान का लड़का क्यों नहीं पढ़ पाता? हल पकड़ा देते हैं। यदि पढ़ना है, तो गृहत्यागी होना पड़ता है। एक रहस्य की बात सुनो। **यश, शक्ति इन दोनों की प्राप्ति विदेश में होती है।** विदेश से मतलब आप भारत से बाहर नहीं समझना। देशान्तर। संक्रमण जो है,

वह वृद्धिमान होता है। यदि बलिष्ठ सन्तान को जन्म देना हो आपको, तो यहाँ से जाकर पंजाब में रहना चाहिये। भले ही बुन्देलखण्ड का श्रावक हो। वहाँ जाकर वहाँ का दूध पीयेगा, वहाँ का गेहूँ खायेगा, वातावरण बदला होगा। यहाँ का राजस्थान में चला गया सो भाषा बदल गई उसकी और यहाँ जब आता है तो सम्मान बढ़ गया। जो संकर बीज वनस्पति में चल रहे हैं, इनका रहस्य ये ही है कि दो को जोड़ दो तो शक्ति बढ़ जाती है। ऋण और धन बिजली में भी होता है। होता है न? जब किसान के खेत में दीर्घ समय हो जाता है खेती करते-करते, वह खेतों की मिट्टी को बदलता है। तालाब की मिट्टी खेत में फेंकता है और खेत की उर्वरा शक्ति को बढ़ाता है। ऐसे-ही विद्वानों को, पण्डितों को, मुनियों को अपने चारित्र की ज्ञान की ऊर्जा शक्ति बढ़ाना है तो गाँव के बाहर क्षेत्रान्तरित होना पड़ेगा, घूमना पड़ेगा, निकलना पड़ेगा। यदि तुम उसी गाँव में रह गये, तो चमक चली जायेगी। और छिपा रहेगा तो बालें बनकर तू सारे जग को लुभायेगा। ऐसे-ही शिष्य गुरु की मिट्टी में छिपा रहेगा तो महान्-महान् बनके उभर कर आयेगा।

बस, उर्वरा शक्ति चहिये। जैसे उसी मिट्टी में बोते रहे तो उसका चारित्र छोटा हो जायेगा। एक स्थान पर मुनि ठहर गया तो उसका चारित्र छोटा हो जायेगा और एक स्थान पर विद्वान् ठहर गया तो उसका ज्ञान छोटा हो जायेगा। बाहर कब भेजना चाहिये? भेजने योग्य हो जाये जब। हे बीज! तू तनिक धैर्य रख, मिट्टी में छिपा रह। अगर तू यह दिखाना चाहता है कि कोई मुझे देखता ही नहीं कि मैं कितना सुन्दर हूँ, तो चिड़ियाँ चुग जायेंगी। बेटा पिता के हस्त के नीचे जितना रहेगा, उतना ही ऊँचा चला जायेगा और पिता के सामने उभर कर आता है तो बेटा! समझ लो तुम्हारी कितनी कीमत है। **गुरु डाँटे, तब शिष्य की दृष्टि नीची हो। आँख उठाकर न देखे तो समझ लो कि उन्नति है और जिस दिन आँख उनकी देख लो, तो समझ लो उस दिन ही तुम्हारी अवनति है।**

बेटे ने चित्र बनाया। पिता महान् चित्रकार था। पिता को दिखाया, पिता ने नाक सिकोड़ ली और कहा कि बेटा! अभी अच्छा नहीं है, और-अच्छा बनाओ। उसने और-अच्छा बनाया और पुनः दिखाया। पिता ने कहा कि कुछ कमी-और है। उसका चित्र जब बाहर गया, तो पुरस्कृत होने लगा। इसके बाद भी बेटे ने पुनः चित्र बनाया,

पिता को दिखाया, पिता ने बोल दिया 'बेटा! कुछ कमी और है।' बेटे को गुस्सा आ गई, तब उसने क्या किया? अपने हाथ का बनाया चित्र मित्र को देकर बाहर भेज दिया और जब मित्र ने आकरके पिता जी को दिखाया, जब पिताजी ने उसके ही सामने उस चित्र को देखकर मित्र की पीठ ठोक दी कि बेटा! तुमने बहुत बढ़िया चित्र बनाया। तब बेटा मुस्कराकर सामने खड़ा हो गया, बोला, 'पिताजी! मेरा ही तो चित्र है।' तुरन्त पिता का चेहरा उतर गया और बोला, 'बेटा! अब तेरी उन्नति की सीमा समाप्त हो गयी। तेरे मन में एक भाव था कि मेरी प्रशंसा हो जाये और जहाँ प्रशंसा प्रारम्भ हुई, वहाँ संतुष्टि हो गयी। अब तू आगे नहीं बढ़ पायेगा। जब तक तेरे अन्दर प्रशंसा का भाव नहीं था और मेरे को तू दिखाता था और पूछता था तो मैं कहता था कि अभी कमी है, तो तू और-अच्छा बनाता था; परन्तु आज के बाद तू इससे अच्छा बना नहीं पायेगा।

ऐसे-ही पिता के सामने पुत्र को और गुरु के सामने शिष्य को कभी प्रशंसा के भूखे नहीं होना चाहिये। जब तक गुरु कहता रहे कि बेटा! अभी कमी है, तब तक ऊँचे उठते जाओगे और जिस दिन तुमने गुरु के मुख से प्रशंसा सुनने की भावना रखी, उसी दिन से तुम नीचे गिरना शुरू हो जाओगे। भैया! हर व्यक्ति न समझ पाता है न पचा पाता है। भैया! ये जिनवाणी का प्रचार अल्प क्यों हो रहा है? ये शीघ्र बीज बनकर दिखना चाहते हैं। आगम कहता है कि कम-से-कम बारह वर्ष तक गुरु के पादमूल में रहकर विद्याध्ययन करो, फिर मुखशुद्धि होती है, फिर तुम प्रवचन करो। आज ही तुमने दीक्षा ली और भग गये संघ से। तुमने गुरु के संस्कार ही नहीं पाये, तुम करोगे क्या ? अण्डे के अंदर भी पक्षी विद्यमान होता है तो मादा पक्षी उस अण्डे पर बैठकर उसे सेहती है। ज्ञानी! बाहर माँ नहीं बैठेगी तो रक्त सड़ जायेगा अन्दर, क्योंकि ओज जब तक नहीं मिलता, तब तक अण्डे का जीव वृद्धिमान नहीं होता। ऐसे-ही जब तक गुरु की डाँट का ओज नहीं मिलता, तब तक शिष्य का ज्ञान वृद्धिमान नहीं होता। जिसके मन में भाव आये 'मेरी प्रशंसा ही नहीं करते, दूसरे की कर देते हैं।' ऐसा भाव मन में कभी नहीं लाना। प्रतिष्ठा-विधि का वास्तविक प्रतिष्ठाचार्य बनना है तो जितने ज्योतिष शास्त्र हैं, उन संबंधी ज्ञान होना चाहिये। जैनागम पहले, फिर इसके बाद अन्य भी पढ़ना चाहिये और प्रतिष्ठाचार्य के लिये करणानुयोग, द्रव्यानुयोग, प्रथमानुयोग का

गहनतम अध्ययन होना चाहिये। वक्ता बनना है तो बिना प्रथमानुयोग के वक्ता नहीं बन सकते। शेष अनुयोगों में सिद्धांत की प्ररूपणा है, पर वो वाणी बोली कैसे जानी चाहिये, वो प्रथमानुयोग से मिलेगी। जैनागम में साहित्य का उच्चकोटि का कोई महान् ग्रन्थ है वह 'यशस्तिलक चम्पू महाकाव्य' है। आज के युवा पढ़ेंगे नहीं। इनको लगता है कि आज के विद्वानों को अलंकार भरा है। सारी बातें हो जायें और पता न चल पाये। शब्द सौष्ठव। 'भैया! तेरी पत्नी कैसी है?' अच्छा नहीं लगता। फिर 'भैया! आपके बेटे की माँ तो ठीक है?' आगम की विद्या को तो समझो। जिनसेन स्वामी ने महापुराण में अद्भुत विद्या भर दी है? 'पार्श्व अभ्युदय' ग्रन्थ सात दिन में लिखा है जयसेन स्वामी ने। तीन चरण जिनसेन स्वामी के हैं तो एक चरण कालीदास के 'मेघदूत' का है। साहित्य में जैनियों का महाकाव्य देखना है तो चन्द्रप्रभू चरित्र। जितने युवावर्ग बैठे हैं, जीवन में तीन ग्रन्थों को एक बार पढ़ लेना। नीतिवाक्यामृत, कुरलकाव्य और क्षत्रचूडामणि। अगर बुद्धि अच्छी चल जाये तो चन्द्रप्रभु चरित्र। ये चार ग्रन्थ पढ़ लो जीवन में। जितने त्यागी-व्रती हैं, इन सबको 'मदन पराजय' पढ़ना चाहिये। और मधुरता देखना है तो 'धर्म परीक्षा'।

भैया! तुम बोली लगाना बन्द कर देना और इन 'धर्म परीक्षा' ग्रन्थ खरीद करके युवाओं को दे देना। ये बहुत बड़ा दान है। और कहना कि बेटा! एक बार पढ़ लो इनको। जितने इधर-उधर भाग रहे हैं, सिर पटक रहे हैं दुनियाँ में, उन सबको समझाने की जरूरत नहीं पड़ेगी। बस, 'धर्म परीक्षा' पढ़ लो। धन्य हो जिनशासन को जो धर्म को भी परीक्षा करके मानता है। परमात्मा को भी सिर टेकता है तो परीक्षा करके टेकता है। भैया! तुम्हारे घर में कोई पानी पीने आ जाये और गन्दे हाथ हों, तो पहले कहता है कि हाथ धो ले। जब तू गन्दे हाथों में पानी नहीं दे सकता है, तो गन्दे स्थानों में श्रद्धा का सिर कैसे टेक सकता है? जैनागम, निर्ग्रन्थ वाणी, इसके अलावा कुछ नहीं है। क्षीरसागर का पानी तीर्थंकर के सिर पर ही ढरता है, कोई अभागे पर नहीं ढरता।

साहित्य की बात कर रहा हूँ। जो पुराना है, वह सत्य हो, यह नियम नहीं है और जो सत्य है, उसमें नया या पुराना नहीं होता, वह तो 'जो है, सो है।' इस भ्रम को निकाल दो कि वृद्ध जो कहेंगे सो सत्य है और यह छोटा बच्चा है वह कुछ भी कहेगा सो झूठ है। भैया! उम्र मत देखो, प्रज्ञा को देखो, विवेक को देखो। हो सकता है कि मिथ्यात्व

की पुष्टि जीव करता रहा हो और वह वृद्ध हो चुका है, क्या वृद्ध होने से उसका मिथ्यात्व सत्य हो जायेगा? और जिस बालक ने जिनागम के रहस्यों को समझ लिया है, भले ही उसकी उम्र छोटी हो, लेकिन जिनवाणी छोटी नहीं होती है। वह सत्य है, बूढ़ापन सत्य नहीं है। किसी को समझाना हो तो अच्छे से समझाना। जो शीघ्र ही पटपट बोल देते हैं, वे हिंसक लोग हैं। अच्छे से बोलो। ऐसा नहीं कि किसी को बाण चुभा दो। भैया! बटलोई में भोजन पकाते समय ढक्कन फिक गया। वाष्पित होते ही ढक्कन फिक गया और जेम्सवाट ने उसे उपयोग कर लिया। जीव के प्रयोग की धारा देखो, भैया! उसने इंजन बना लिया। हे जीव! जेम्सवाट ने क्या किया? उसको भौतिक में बुद्धि ले गया। जब पानी एवं अग्नि की सहायता से वाष्प तैयार करके ढक्कन फिक सकता है, तो मैं भी अपनी पुण्य की शक्ति को, वीर्य को वाष्पित करूँ, तब मेरी आत्मा भी सात राजू ऊपर जा सकती है। ये वाष्पीकरण है। और वाष्पीकरण कैसे होगा? वह साधना से होगा, आराधना से होगा। जब देवों को हिलाया जा सकता है मंत्रों के माध्यम से, तो ज्ञानी! अपने भीतर के भगवान् को भी निकाला जा सकता है अपने तप के माध्यम से। पत्थर की प्रतिमा को भी भगवान् बना सकते हैं पाँच दिन के अन्दर, तब निज के भगवान् को प्रकट नहीं कर पाओगे क्या ? विद्वान् लोग भी काम वही करते हैं, जो दुनियाँ करती है।

भैया! यदि प्रभु-द्वार पर आनन्द है, तो दुनियाँ में भटकने की जरूरत क्या है ? जो सहकारी कारण है, वही निमित्त है। जो साध्यभूत है, वह उपादान है और जो साधन है, वह निमित्त है। कुलभद्र स्वामी कह रहे हैं कि

कुसंसर्गः सदा त्याज्यो दोषाणां प्रविधायकः।

सगुणोऽपि जनस्तेन लघुतां याति तत्क्षणात्॥सा.स.॥

खोटी संगति को हमेशा के लिए छोड़ दीजिए। दुग्ध के सेवन से शरीर व चेहरे पर चमक, वीर्य वृद्धि, बुद्धि की वृद्धि, ये सबकुछ प्राप्त होता है। सम्पूर्ण आहार यदि कोई है, तो दुग्धाहार। जन्मते ही रोटी नहीं खाई थी, दूध पिया था माँ का। भैया! उनका पुण्य क्षीण है जिन्होंने माँ के आँचल का दूध ही नहीं पिया हो। वे मातायें तो कभी अपने आप में सेवा की कामना ही न करें जिन्होंने अपने बेटों को बाटल पकड़ा दी हो। जब कठोर वाटल आपने जन्म से पकड़ा दी, अब उनके अन्दर नरमी आये कहाँ

से? आँचल का पान ही नहीं कराया। वे धन्य हैं जिन्होंने वर्षों तक माँ के दुग्ध का पान किया है। कैसे अभागे लोग हैं बेचारे जिन्होंने माँ के ही दूध का पान नहीं किया। दुग्ध शक्तिमान होता है, परन्तु कढ़ाही में दूध तपा रहा था ढके बिना और वहाँ से चील निकल गया मुख में साँप को दबाये और एक बूँद जहर की गिर गई उस दूध में। उस दूध से बुद्धि बढ़ेगी, आयु बढ़ेगी, क्या होगा? एक बूँद के निमित्त मिलने से दूध जहर हो गया। ऐसे-ही जिनवाणी का अमृत है, इस अमृत में कहीं एकांत का जहर मिला दिया, तो कुमरण का कारण बन जायेगा और जिसने अमृत को अमृत रहने दिया, तो समाधिमरण का कारण बनेगा। ये जिनवचन है। इसलिए भैया! मिलावट मत करना। कह देना विद्वानों से कि मुनियों से, आचार्यों से पूछ कर बताऊँगा। लेकिन मन की बात को जिनवाणी कहना प्रारम्भ मत कर देना। कुसंसर्ग को हमेशा के लिए छोड़ दो। ये दोषों का जनक है। कौन? खोटी संगति। बेटे! भूखे सो जाना, भोजन न मिले तो णमोकार पढ़कर समाधि कर लेना, लेकिन खोटी संगति के दुग्ध का पान मत करना क्योंकि मुमुक्षु प्राणी कितना ही भूखा होगा, लेकिन कालकूट जहर नहीं खायेगा। तुम अकेले रह लेना।

अमित्रों का मित्र कोई है तो जिनवाणी/शास्त्र है। जब तुम्हारे साथ कोई नहीं होता, तो शास्त्र आपका मित्र है। लेकिन मेरे साथ कोई नहीं है। भीड़ को लेने के चक्कर में खोटे लोगों के साथ मत हो जाना। साँप को कितना ही साथ में रखना, पर वो मौका देखकर डस ही लेगा। दुर्जन को तुम कितना ही साथ में रखना, प्यार से रखना, लेकिन वो मौका पाकर डस ही लेगा। खोटी संगति विनाश का कारण है। कुसंगति में मत जाना यदि अपना कल्याण चाहते हो तो। पाषाण की प्रतिमा में संस्कार डाल दो तो भगवान् कहलाने लग जाये और इन प्रतिमाओं में संस्कार डाल दिए तो भैया! ये चैतन्य भगवान् बन गये। धन्य हो उन आचार्य विरागसागर जी महाराज को। एक सामान्य व्यक्ति को संस्कार डाले तो मुनि बन गया। आज तो भगवान् का जन्म हुआ है। भूख-प्यास तो लगती नहीं है।

ज्ञानी! आस्था भीतर है, तो रास्ते-ही-रास्ते हैं और जिसकी आस्था भंग हुई, उसका रास्ता बन्द हो गया। मोक्ष का रास्ता मात्र उनके लिये है वर्द्धमान के प्रति जिनके भीतर आस्था है, श्रद्धा है। यदि श्रद्धा नहीं है, तो उनका मोक्ष का रास्ता बन्द। ज्ञानी! आनन्द

है, आनन्द आपको मेरे प्रवचन में तब आ रहा है जब आपको मेरे प्रति आस्था है और आस्था नहीं है यदि वक्ता के प्रति, तो वह कहेंगे कि क्या बोलता रहता है। बन्द कर। अपन तो चलते हैं। जगत् में न पेड़े में आनन्द है न लड्डू में आनंद है। आनन्द कहीं है तो आस्था में है। आस्था है तो माँ के हाथ की सूखी रोटी भी अच्छी लगती है और कहीं यदि सौतेली माँ ने लड्डू भी खिलाया हो तो लड्डू में लगता है कि कहीं जहर न दे दे। बेचारा भगा-भगा फिर रहा है। हम कह रहे हैं कि निकल चलो, कोई सार नहीं। इधर न छोटे काम में आयेंगे न बड़े काम में आयेंगे।

आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी ने 'प्रवचनसार' जी में लिखा, बट्टकेर स्वामी ने लिखा, कितनी जगह संगति की व्याख्या की है। लोक में अग्नि को देवता कहा जाता है। कितने सारे दर्शन ऐसे हैं जो अग्नि मात्र को पूजते हैं। परन्तु वो ही अग्नि लोहे की संगति में आ जाय तो लुहार के घन खाये। ज्ञानियो! खोटे लोगों की संगति में आ जाओगे तो तुम भी ऐसे ही कर्मों के घन खाओगे। इसलिए खोटी संगति से दूर रहना। साँप डस दे तो अँगुली काट कर फेंक दो। यदि अँगुली का लोभ रहा, तो प्राण ही चले जायेंगे। ऐसे-ही दुर्जन व्यक्ति दिख जाये तो उसे दूर से ही निकाल दो, इस राग में मत रहो कि एक कम हो जायेगा। एक पान सड़े, तो उसको हटा दो। नहीं-तो पूरे ही सड़ जायेंगे। आलू खाना कोई धर्म है क्या ? इधर कह रहे हैं कि एक निगोदिया में अनेक निगोदिया होते हैं और वो सब सिद्धत्व गुण से सम्पन्न हैं, वो भावी भगवान्-आत्मा हैं और तुम छौंक/बघार लगा कर खा जाते हो। यदि सच्चे जैनी हो तो, आज से नियम ले लो भगवान् के जन्मकल्याणक के दिन कि आज से नहीं खायेंगे सड़ी-सड़ाई सामग्री। धनियापत्ती छूटती नहीं, भैया! जिसे चींटी भी नहीं लगती। ऐसे अभागे हैं बेचारे कि नमक की डली तो छोड़ नहीं सकते और कहते हैं कि भगवान्-आत्मा हूँ। जो बाजार का नमक खा रहा है, वो तो पूरा मांस खा रहा, क्यों? पानी छनकर बनता है क्या?

समुद्र में जितनी मछली मगरमच्छ मरे, सबकी हड्डी-पसली उसमें घुल-मिल गयी। आज खाना और देखना कि नमक कैसा लगता है? नमक की जो सफेदी है, वह हड्डियों की सफेदी है। तनिक भी तुम्हारे अन्दर वैराग्य हो, जैनत्व हो, तो कम-से-कम आज ही नमक को छोड़ दो। देखो बेचारे कमेटी वाले कैसे परेशान हो रहे हैं कि हमारे

भोजन का क्या होगा? मैं तो जान कर कह रहा हूँ। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ नहीं करता। भैया! अभक्ष्य क्यों बनाया? घर में कोई अच्छा काम हो तो रौना खिलाया जाता है।

भैया! जब तेरी शादी होने गई थी, तो तुझे भी नमक नहीं दिया गया था। जो है, सो है। पर इतना ध्यान रखना, बेटा! खोटी संगति से दूर रहना यदि अग्नि-जैसे लुहार के घन नहीं खाना हो तो। कितने ही गुण हों, वे क्षणमात्र में ही लघु हो जाते हैं। **जैसे शीघ्र ही कालिया नाग से दूर होते हो, अग्नि से दूर होते हो, ऐसे-ही कुसंसर्ग से दूर रहना।** यदि तीर्थंकरत्व को प्राप्त करना चाहते हो, भगवत्ता को प्राप्त करना चाहते हो, अरिहन्त दशा को, सिद्ध दशा को प्राप्त करना चाहते हो, तो मुनियों से कहा जा रहा है, हे मुनि! श्रेष्ठ मुनियों के साथ रहना, एकल-विहार करना नहीं और खोटे साधुओं के साथ रहना नहीं। स्पष्ट कथन है आगम में। यदि साधु भी लौकिक है, तो उस साधु से भी दूर रहना। नेता, अभिनेता के चक्कर में पड़ा हो जो, उस साधु से भी अपनी रक्षा करना। जो दुनियाँ के योग, कालसर्पयोग, पिण्ड योग में लग जाये, भैया! उससे अपनी आत्मा की रक्षा करो! भैया! ज्योतिष में कोई कालसर्पयोग लिखा नहीं। आगम में कालसर्पयोग होता है क्या? नहीं होता है। मित्र! जब नहीं होता है, तो होता क्यों है ये सब ? भैया! जो होता है, सो होता नहीं है और जैसा होता है, वैसा होता नहीं है। यदि संसार में कोई योग है, तो 148 कर्म हैं। उन 148 कर्मों को नष्ट करना चाहते हो तो पञ्चपरमेष्ठी की भक्ति करो व्यवहार से और निश्चय से आत्मा में रमण करो, तभी कर्म हटेंगे, नहीं-तो कोई योग हटने वाले नहीं हैं।

आचार्यभगवन्, श्रमणत्व की रक्षा के लिए, संगति की व्याख्या कर रहे हैं। निमित्त के माध्यम से उपादान भी बदलता है। जो निमित्तक को प्रभावित कर दे, वो ही निमित्त है और जो नैमित्तिक को प्रभावित न कर सके, वह निमित्ताभास है। मिथ्यादृष्टि जीव भी जिनेन्द्र के बिम्ब को देखकर सम्यक् को प्राप्त कर लेता है। निमित्त सर्वथा अकिंचित्कर ही होता तो जिनबिम्ब स्थापना की कोई आवश्यकता ही नहीं थी। निमित्त सर्वथा अकिंचित्कर होता, तो पंचपरमेष्ठी की आराधना की आवश्यकता ही नहीं थी। सिद्ध भगवान् भी मुझे मोक्ष देते हैं। महाराज! अर्हन्त परमात्मा उपदेश देते तो समझ में आता है, लेकिन सिद्ध परमात्मा को आप मोक्ष का कर्त्ता बना रहे हो और कल कह रहे थे कि उपादान को सँभालें। हाँ, 'नययोगान्न

सर्वथा'। व्याख्यान एक काल में एक होगा। व्याख्यान नय से होता है। वस्तु प्रमाणभूत है। ज्ञान ज्ञानप्रमाण से हो रहा है, इसलिए '**सम्यग्ज्ञानं प्रमाणं।**' परन्तु व्याख्यान नय से ही होगा और व्याख्यान एकांत से ही होता है। एक समय में व्याख्यान के काल में अनेकांत नहीं होता है। जब कहता है, तब एक नय का ही आलम्बन लेता है, परन्तु व्याख्याता की दृष्टि में अनेकांत ही होता है। व्याख्याता की दृष्टि में तो अनेकांत ही होगा, लेकिन जब भी उपदेश एक समय में करेगा, एक नय का ही होगा।

ज्ञानी! सिद्ध परमात्मा हमें मोक्ष देते हैं स्यात्। जो सिद्धालय में विराजते हैं, जो दृष्टिगोचर नहीं होते हैं, वे मेरे मोक्ष के साधन कैसे हो सकते हैं? चाक्षुष नहीं, वो तो अचाक्षुष हैं और अचाक्षुष मोक्ष के कारण कैसे? आवश्यक नहीं है कि जो चाक्षुष हो वही कारण हो। अचाक्षुष भी कारण है। 'परमात्मप्रकाश' ग्रन्थ में आचार्य ब्रह्मदेव सूरि ने इस विषय का स्पष्टीकरण किया कि अहो! सिद्ध परमात्मा मेरे मोक्ष के कारण कैसे हैं? सिद्धों के सत्ता है कि नहीं? सिद्धों की सत्ता है। यदि सत्ता है, तो हे जीव! तूने अर्हन्तों के माध्यम से सिद्धों का बोध किया है, लेकिन जब पंचपरमेष्ठी का नाम लेगा, वहाँ सिद्धों का भी नाम आयेगा। जब तू सिद्धों का स्मरण करता है, तो सिद्धों की वन्दना करने से तेरे परिणामों की विशुद्धि होगी कि नहीं होगी? और जो विशुद्धि होगी, वह मोक्ष का कारण बनेगी कि नहीं बनेगी? इसलिए भावों से भगवान् की आराधना, ये कारण का कारण है। "**ॐ नमः सिद्धेभ्यः**" बोलते कि नहीं बोलते? तो "ॐ नमः सिद्धेभ्यः" वर्णों की वन्दना है, कि वाक्य की वन्दना है, कि वाच्य की वन्दना है, कि वाचक की वन्दना है? वाचक तो तू स्वयं है। वाच्य की वन्दना है तो वाच्य कौन है ? जो सिद्धशिला पर विराजा हुआ है। जब हम सिद्धों की वन्दना करते हैं, तब हमारे भावों की विशुद्धि बढ़ती है और भावों की विशुद्धि ही मेरे मोक्ष का कारण बनती है। तो मेरे कारण का कारण सिद्ध भगवान् हैं, इसलिए सिद्ध भगवान् मेरे मोक्ष का निमित्त हैं। उपादान-दृष्टि से कहोगे तो मेरे परिणामों में ही विशुद्धि उत्पन्न हुई है और परिणामों से ही हुई है, परिणामों ने ही की है, परिणामों के लिए ही की है। उस समय मैं ही अपने मोक्ष का कारण हूँ। शुभोपयोग भी मेरा मेरे में ही होता है, अशुभोपयोग भी मेरा मेरे में ही होता है और शुद्धोपयोग भी मेरा मेरे में ही होता है। यह है अभेद दृष्टि। मित्र! भेद दृष्टि से पंचपरमेष्ठी मेरे शुभोपयोग के निमित्त हैं, बहिरंग निमित्त और अन्तरंग निमित्त तो मेरी परिणति ही है। बहिरंग हेतु भी हेतु है, बहिरंग कारण भी कारण है, अन्तरंग कारण के लिए।

ये ही कारण है। अन्तरंग कारण से कार्य होता है, कि बहिरंग कारण से कार्य होता है? भो ज्ञानी ! अन्तरंग कारण से कार्य हुआ है। आपको बोध होना चाहिए साधकतम करण और साधनभूत करण। अन्तरंग हेतु से मोक्ष मानने वाला मस्ती में दिन-रात चरता है। अन्तरंग हेतु से मोक्ष मानने वाला निशाचर बनके जीता है। भैया! तू तो नहीं होगा निशाचर और होगा तो मुझे कोई विकल्प नहीं। जो रात्रि में चरें, वे सब निशाचर हैं। निशा यानि रात्रि और चर यानि चरण। धन्य है उन योगियों की दशा को, जो रात्रि में न चलते हैं और न ही चरते हैं। वे कभी निशाचर नहीं होते हैं। भैया! यदि आपको मनुष्य बनकर जीना हो, तो आज दीक्षाकल्याणक के दिन निशाचरी का त्याग कर दो। मुमुक्षु! जिनागम चलता है या नहीं चलता, जिनागम तो जो है सो है।

मार्कण्डेय पुराण में लिखा हुआ है 'दिन का नाथ **सूर्य के अस्त होते ही अन्न मांस के समान हो जाता है और पानी खून के समान हो जाता है। जो रात्रि में भोजन करते हैं और पानी पीते हैं, वे खून और मांस खा रहे हैं।** उसमें जीव हैं। द्रव्यदृष्टि को समयसार में ही क्यों लगाना चाहिए? ये पण्डित तो बेचारे प्रवचन के लिए बोलते हैं द्रव्य दृष्टि। ये द्रव्यदृष्टि को घर में लगाने लग जायें तो इन मुनियों की संख्या बढ़ जाये। भैया! तेरे बेटे की माँ में भगवत् शक्ति नहीं है क्या ? और तू भगवान्-आत्मा नहीं है क्या ? मेरे मित्र! भगवान् भगवान् का संयोग कैसे ? तू अपने भगवान् को निहार। और ज्ञानी! तू ऐसा व्यभिचार कर रहा है, जो सिद्धशिला पर बैठ गया जीव, वह देखेगा यहाँ पर, धिक्कार हो, मैंने इस भगवानात्मा के साथ पशुवत् व्यवहार किया है। अब लगाइये द्रव्यदृष्टि। जब तुम्हारे हाथ में रात्रि में भोजन का पिण्ड हो, रोटी का टुकड़ा हो, चाहे गिलास में पानी या दूध हो, चाहे केशर का दूध हो, वहाँ देखना, ओ हो! जब मार्कण्डेय पुराण में लिखा है, तो जैनागम क्या कह रहा है?

नैवं वासरभुक्तेर्भवति हि रागोऽधिको रजनिभुक्तौ।
अन्नकवलस्य भुक्तोः भुक्ताविव मांसकवलस्य ॥पु.सि. 132॥

जितना राग दिन के भोजन में नहीं होता, उतना राग रात्रि के भोजन करने में होता है। जो जीव रात्रि में अन्न का ग्रास (कवल) खाता है, वह मांस के ग्रास को खाता है। किञ्चित् भी तुम महावीर के भक्त हो, वर्द्धमान के अनुयायी हो और वस्तुस्वरूप को समझते हो, आप अगर सच्चे श्रावक हो, तो रात्रिभोजन का त्याग कर देना। यहाँ जितने भी लोग हैं, क्या वे

सब रात्रि में भोजन के टुकड़े चबायेंगे? कितने लोग हैं ऐसे जो रात्रि में भोजन नहीं करेंगे? कर लो कायोत्सर्ग। बहुत अच्छा मन गया दीक्षाकल्याणक। जितना-जितना इच्छाओं का निरोध हो, उतनी-उतनी दीक्षा है। ध्यान रखना, मायाचारी के साथ त्याग मत रखना, नहीं-तो 'महाराज! रोटी नहीं खाऊँगा, रबड़ी तो खा सकता हूँ, फलाहार तो चलेगा, खिचड़ी तो चलेगी? जो सड़ा-सड़ाकर कीड़ों को मारकरके साबूदाने बनाये जाते हैं, उनको तो खा सकता हूँ?' अरे ! धिक्कार हो। भैया ! तब मालूम चलता है कि बहिरंग कारण, अंतरंग कारण। वस्तुस्वभाव को समझिये। जो यूँ कह रहा है कि त्याग और तपस्या तो आस्रव तत्त्व है, ये शुद्ध अज्ञानी की भाषा है। यदि संयम आस्रव है, तो संवर क्या होगा ? भैया! लोगों को ऐसे भ्रमित कर दिया जाता है कि दीक्षा लेना तो शुभ क्रिया है। तो क्या घर में रहना शुद्ध क्रिया है? ज्ञानी! जिस मछली को स्थल ही मृत्यु का कारण हो रहा है, उस मछली को अग्नि का अंगारा क्या बचा सकेगा? जिस योगी को शुभोपयोग ही झुलसाता हो, उस योगी को अशुभोपयोग क्या बचा पायेगा? वस्तुस्वरूप समझिये। संयम को आस्रव तत्त्व में डाल देना, ये संवर तत्त्व की भूल है। मुमुक्षुओ! आगम में लिखा है कि जो जीव आचार्यत्व को प्राप्त होकर भी, पूर्व पुण्य के नियोग से अपना संघ भी बनाकर बैठ जाये, वह स्वेच्छा से मनमानी प्रवृत्ति करायेगा, उसकी दुर्गति नियत है। आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी ने 'रयणसार' जी में लिखा है। मति-श्रुतज्ञान के बल से जो जिनवाणी के साथ स्वच्छन्द होकरके बोलता है, वह जीव मिथ्यादृष्टि है। तन की पुष्टि के राग में चार्वाक की वृत्ति करना, ये चार्वाकी तो हो जायेगा, लेकिन मोक्षमार्गी नहीं हो पायेगा।

भैया! चाहे आप हो या अन्य कोई हो, मेरा सभी से कहना है कि असंयम में संतुष्ट हो जाना तेरी दुर्गति का कारण है। सम्यग्दृष्टि जीव जो होगा, वह संयम धारण कर सके या न कर सके, पर संयम और संयमी के प्रति तीव्र सम्मान/आदर का भाव रखेगा। वही सम्यक्त्व है। जो सम्यग्दर्शन की बात करे और संयम एवं संयमी के प्रति अनुराग/आदरभाव नहीं है, संयमी को देखकर मुँह मोड़ ले, पिच्छी-कमण्डल धारण करके संयम एवं संयमियों के प्रति आपके अनुराग भाव नहीं है, संवेग भाव नहीं है, तो भैया! विश्वास रखना, ये तो दिवांध वृत्ति है, जो संयमधारियों को देखकरके भी, पिच्छीधारियों को देखकरके भी, रत्नत्रय से युक्त जीवों को देखकरके कमरे में छिपकर बैठ जाये, तो दिवांध वृत्ति है।उलूख वृत्ति है। दिवांध का अर्थ होता है दिन में अंधा और दिन में अंधे एक या दो जीव होते हैं, आपको पता होना

चाहिए। या तो उल्लू या चमगादड़। जैसे-ही सूर्य का उदय होता है, वह तुरन्त ही अन्धेरे कमरे में जाकर छिप जाता है। वैसे-ही जहाँ मोक्षमार्गी जीव दिखे, संयममार्गी जीव दिखे, रत्नत्रयधारी दिखे, चाहे वह मुनिराज हों, आचार्यभगवन्त हों, ऐलक क्षुल्लक आर्यिका माता जी हों, कोई भी हो, इनको देखकर तुम्हारे एक दूसरे से मिलने के भाव ही नहीं बनते हैं। ये तुम्हारी संयमी दृष्टि नहीं है, सम्यक् दृष्टि नहीं है। ये तुम्हारी दिवांध दृष्टि है। सम्यक्-दृष्टि जीव दिवांध-दृष्टि में नहीं जीता। सम्यक्-दृष्टि सूर्यमुखी फूल की दृष्टि में जीता है। जैसे सूर्य खिलता है तो सूर्यमुखी खिल जाता है, जिधर सूर्य घूमता है उधर सूर्यमुखी घूम जाता है। सम्यक्-दृष्टि जीव धर्मात्मा के पीछे-पीछे चलता है। बराबर है? बराबर तो कहना ही पड़ेगा। जो है, सो है। आप कल्पना करो। माना कि ये माता जी हैं। बताओ, उस जीव ने कब से सोचा होगा कि महाराज जी के दर्शन कर लूँ? महाराज कोई मनुष्य के दर्शन करने नहीं आता। चमगादड़ों के दर्शन करने कोई नहीं आता। रत्नत्रयभूत भगवानात्मा के दर्शन के परिणाम जीव को होते हैं और ऐसे परिणामों से युक्त होकरके कोई जीव चलकर आयें और सोंचे कि अहो! मुझे तो वंदना करना है, और आपने मुख मोड़ लिया, तो उस जीव की श्रद्धा को टूक-टूक कर दिया, छार-छार कर दिया। दूध में जामन डालो तो दही बन जाये और गर्म दूध में नींबू निचोड़ दो तो एक अम्ल तत्त्व के मिलते ही रासायनिक क्रिया होगी तो दूध फट जायेगा, छैना या पनीर बन जायेगा। ऐसे-ही आपके प्रभाव कुरूप कुभेष को देख करके और दुष्परिणामों को देखकरके, जीव के भक्ति के दुग्धभूत जो परिणाम थे, वह छार-छार हो जाते हैं। किसको कितना मिलना, किसको कितने दिन रहना? भैया! एक ओर आप कहते हो कि अहो महाराज! मुझे निगोदिया में सिद्ध दिखते हैं, तो फिर इन त्यागियों रत्नत्रयधारियों में सिद्ध क्यों नहीं दिखाई देते हैं? जब निगोदिया में सिद्ध दिख सकते हैं, अकउआ में महावीर बैठे हो सकते हैं, तो इन श्रमण-श्रमणियों में भी भगवान् सिद्ध परमात्मा विराजते हैं। इसलिए जब-जब तुम्हारे नगर में कोई त्यागी-व्रती आयें, तो आँखों से उनके वर्तमान के भेष को देखना और भावों से उनके भावी सिद्धत्व को देखना।

मलरहिओ णाणमओ णिवसइ सिद्धीए जारिसो सिद्धो।
तारिसओ देहत्थो परमो बंभो मुणेयव्वो॥26/त.सा.॥

'तत्त्वसार' जी ग्रन्थ में देवसेन स्वामी ने एक गाथा लिखी है। मल से रहित, ज्ञानमयी परम ब्रह्म जैसा सिद्धालय में निवास कर रहा है, वैसा परमब्रह्म मेरे देह देवालय में विराजमान

है। आँख खुले तो जिनदेव को देखो, आँख बन्द हो तो निजदेव को देखो। निजदेव को देखो तो निजदेव को देखने के लिये ही देखो। जिननाथ को तो अनन्त बार देखा है, निजनाथ को एक बार देख लेता तो न जिननाथ को देखना पड़ता, न परमात्मा को देखना पड़ता। किसी ने कार्य को देख रखा है, किसी ने कारण को देख रखा है। जिनागम कार्य व कारण दोनों को एकसाथ देख सकता है। ज्ञानी! उपनिषदों में अध्यात्म का बहुत वर्णन है। कर्म-नोकर्म की जो व्याख्या है, कोई कर्म की व्याख्या करना जानता है, कोई आत्मा की व्याख्या करना जानता है, पर नो-कर्म को सब-कोई नहीं जानता है। भैया! विषय गम्भीर है। एक रहस्य की विद्या सीखें। इन बालकों से कल मैंने कहा था कि **जो जीव स्त्रियों-जैसी भाषा बोले, स्त्रियों-जैसा भोजन करे और स्त्रियों-जैसा भेष बनाये स्त्रियों-जैसे वस्त्र पहनोगे, स्त्रियों-जैसे आभूषण पहनोगे, स्त्रियों-जैसे बाल रखाओगे और स्त्रियों से झगड़ा करोगे तो भविष्य की स्त्री पर्याय निश्चित है।** जो स्त्रियों से लड़ता है, वह भविष्य की स्त्री है। इसका मतलब माताओ! तुम सिंह नहीं बन जाना। जो स्त्रियों से लड़ेगा तो स्त्री बनेगा, तो जो पुरुषों से लड़ेगी वो कहाँ जायेगी? फिर वह पुरुष नहीं बनने वाला। "गोम्मटसार कर्मकाण्ड" में कर्म के नो-कर्म का व्याख्यान है।

आप छोटे-छोटे बच्चों को स्कूल भेजते हो, आप कितने समझदार हैं? बोले, पढ़ना-लिखना बाद की बात है, बैठना तो सीखेगा। जब तुम अपने बच्चे को बैठना सिखाने की बात कर रहे हो, जब ये यहाँ बैठना सीख लेगा तभी तो पढ़ना सीखेगा, पर मुमुक्षु! ये भारत की वर्तमान की 1400 पिच्छियाँ हैं, इन सबसे कहना 'मुमुक्षुओ! यहाँ बैठना तो सीख लो। जब यहाँ एकसाथ बैठना सीख जाओगे, तब एक में अनन्त बनकर बैठ पाओगे। जब तुम यहाँ ही नहीं बैठ पाओगे, तो वहाँ क्या बैठ पाओगे? बहुत अच्छा हुआ कि पञ्चमकाल में मोक्ष नहीं होता। यदि पञ्चम काल में मोक्ष होता होता, तो पञ्चमकाल के सिद्ध बनकर कहीं पहुँच जाते, तो भूत के सिद्धों से कहते कि तुम खिसको इधर से, मुझे बैठना है। पर जो सिद्ध होते हैं, वे खिसकाते नहीं हैं और जो खिसकाते हैं, वे सिद्ध होते नहीं। इसलिये तो पञ्चमकाल में सिद्ध होते नहीं, क्योंकि यहाँ खिसकाने की परम्परा बहुत ज्यादा है।

ज्ञानी! तुम्हारी सामायिक क्या होगी? और जिसने जीवन में एक बार सामायिक कर ली, उसके अंदर कभी ईर्ष्या आ ही नहीं सकती है। चूँकि तुम्हारे जीवन में ईर्ष्या है, इसलिए तुम्हारे जीवन में आज तक सामायिक हुई ही नहीं है। सामायिक संयम है। इन विद्वानों को

चाहिए कि मात्र भेष को मत देखो, भावों को भी निहारो। **जिसके भीतर वास्तविक सम्यग्दर्शन हो, वास्तविक चारित्र हो और उसके अन्दर वात्सल्य न दिखाई दे, ये हो ही नहीं सकता है।** जैसे आप अपने बच्चे को 'के जी वन' में बिठाल देते हो कि बैठना तो सीखेगा, ऐसे-ही ज्ञानियो! आप बैठना सीख लो। जब एकसाथ बैठना सीख लोगे, तभी तो एकसाथ सिद्धशिला पर बैठ पाओगे। जब तुम यहाँ पर बैठना नहीं सीख पा रहे हो, तो तुम वहाँ नहीं बैठ पाओगे। हाँ, एकसाथ बैठ सकते हो, पर निगोदिया बनकर बैठ सकते हो। जो यहाँ शान्ति से नहीं बैठ पायेगा, वह निगोदिया बनकर एकसाथ बैठेगा और जो यहाँ एकसाथ वात्सल्य से बैठेगा, वह सिद्ध बन कर बैठेगा।

'जं रुच्चइ तं कुज्जा'। अब जैसा आपको रुचे, वैसा करो। अब श्रमण-श्रमणियों को साधकों को यथार्थ में इनकी लम्बी क्लासें लगने की आवश्यकता है नहीं। कोई भी सागर हो, उनसे प्रयोजन नहीं; लेकिन अध्ययन की जरूरत है, स्वाध्याय की जरूरत है। पढ़ने की जरूरत नहीं है। प्रवचन के लिये पढ़ लिये तो क्या पढ़ा? स्वाध्याय की आवश्यकता है। ये प्रवचन की ही तो महिमा है कि हमारे ये भैया दूर भागते हैं। स्वाध्याय किया होता तो ये लोग दूर न भागते। भैया! बुरा मत मानना। जो है, सो है। स्वाध्यायी जो है, वह आत्मस्थ होता है और जो भाषण होता है, वह परार्थभूत होता है। श्रुतज्ञान की बड़ी महिमा है। ये स्वार्थ-परार्थ होता है। शेष ज्ञान स्वार्थ-स्वार्थ होते हैं। तो जब स्त्रियों जैसे कपड़े पहने, स्त्रियों जैसे भाषण करे, उसको स्त्रीवेद कर्म का नो-कर्म है, तो कुछ लोगों ने कर्मों की तो व्याख्या की, द्रव्य की व्याख्या की, पर नो-कर्म को नहीं समझ पाये और नोकर्म की व्याख्या तो की पर नोकर्म शब्द नहीं बोल पाये। दूबा में दूध है, घास में दूध है, भैया! आज से घास ही खाना, दूध मत पीना। भैया! खली में दूध है, बाजरे की महेरी में दूध है और गेहूँ में खून है। भइया! पूरी बात सुनना, नहीं-तो अर्थ का अनर्थ हो जायेगा। फिर महाराज! रोटी कैसे खायें? भैया! गेहूँ खून नहीं है। रस, रक्त, अस्थि, मांस, मज्जा, शुक्र, सन्तान गेहूँ में है, तो ठीक है, बेटे निकाल लो?

'अन्नं हि प्राणं।' देखो, बात समझो। अनेक विधाओं का संग्रह करके ही सत्य पा पाओगे और भैया! श्रद्धा को तोड़े बिना सत्य समझ में नहीं आयेगा। भैया! आप विपरीत श्रद्धान कर बैठे हो। आप पहले उसे नहीं तोड़ोगे तब तक आपको मेरी बात समझ में नहीं आ सकती। सत्य समझना है तो श्रद्धा के खूँटे से दूर हटिये, फिर खोजिये सत्य क्या है ? नहीं-तो आप उस खूँटे को पकड़े रहोगे और सत्य से दूर रहोगे तो चिदानन्द स्वरूप को प्राप्त नहीं कर पाओगे।

भैया! वेदवेदान्त में जिनागम मिश्र है। जब अन्न ही प्राण है, अन्न में सन्तान है, दूब में दूध है, लेकिन वास्तव में आप उसको पीसो तो कहीं दूध निकलनेवाला नहीं है। गाय खायेगी तो दूब में दूध है, बैल खायेगा तो नहीं है। **साधन व कारण एक होने पर भी फलित भिन्न-भिन्न होंगे। भव्यजीव संयम धारण करता है तो संवर होता है, निर्वाण को प्राप्त होता है, अभव्य जीव संयम धारण करे तो संसार ही होता है। ग्रैवेयक तो चला जायेगा, लेकिन मोक्ष नहीं जा पायेगा।**

माँ! सत्य बताना, यदि बेलन से रोटी बनायेंगे तो क्या लगाना पड़ता है? पानी या परोथन? और हाथ से रोटी बनाते हो तो क्या लगाते हो? हाथ से बनाओगी तो पानी का प्रयोग करोगी और यदि बेलन से बनाओगी तो परोथन का प्रयोग करोगी। लेकिन एक ही आटे को गूँथा, एक माँ हाथ से बना रही है और दूसरी माँ बेलन से बना रही है। दोनों में कुछ नहीं मिलाना और एक ही चूल्हे पर सेकना। पर दोनों के स्वाद में अन्तर होगा कि नहीं होगा?

नेमिचन्द्र स्वामी 'षट्खण्डागम' ग्रन्थ पढ़ रहे थे। चामुण्डराय जैसे-ही पधारे, उनने ग्रंथ को बन्द कर दिया। उनको बहुत बुरा लगा, बोले, स्वामी! मेरे आते ही आपने ग्रन्थ बन्द कर दिया? बोले, भैया! बात ऐसी है कि श्रावक सुन नहीं सकता। तो चामुण्डराय बोले, 'मेरा कल्याण कैसे होगा?' तब गोम्मटसार जीवकाण्ड, कर्मकाण्ड लिख दिया आचार्यभगवन् नेमिचन्द्र स्वामी ने।

रोटी एक ही है, पर भैया! हाथ की ठुकी में ज्यादा स्वाद होता है बेलन की अपेक्षा से। आटा वो ही है। ऐसे-ही ज्ञानियो! असंयम करोगे तो वो ही ज्ञान है और संयम में जाओगे तो वो ही ज्ञान है। उपयोग-उपयोग की विधि भिन्न-भिन्न है। संयम में जायेगा तो स्वानुभूति का स्वाद आयेगा और असंयम में जायेगा तो विषयानुभूति का स्वाद आयेगा। भैया! डॉक्टरों से पूछना। रोग ठीक करना है तो हाथ की रोटी ज्यादा फायदा करेगी, पर सिकी अच्छी होना चाहिए। ज्ञानी! फायदा तो तपस्या ही करेगी, पर तपस्या सिकी अच्छी होना चाहिए। यदि हाथ की रोटी कच्ची रह गई, आपने खा ली तो वह मुसीबत खड़ी कर देगी। ऐसे-ही तपस्वी बन गये और साधना में (तपस्या में) कच्चापन रह गया, तो निगोद जाना पड़ेगा।

रहस्य पकड़िये, वेदान्त में अन्न को प्राण लिखा है, अन्न को सन्तान लिखा है। श्रोता जैन होगा, वह उसको असत्य बोल देगा, पर सम्यग्ज्ञानी जैन होगा, वह सोचेगा, ओ! इन्होंने अन्न को प्राण बोल दिया, अन्न को सन्तान बोल दिया, दूध को वीर्य बोल दिया, शुक्र बोल

दिया; लेकिन ये नोकर्म शब्द नहीं कह पाये, क्योंकि इनके शब्दकोष में नो-कर्म नहीं था। बात ऐसी है कि हाँ, अन्न सन्तान है। अरे भाई! जो अन्न तूने खाया है, उससे रस बना, रस से रक्त बना, रक्त से मांस बना, अस्थि बना, मज्जा बना, शुक्र बना, उससे सन्तान ने जन्म लिया है, इसलिए ये कर्म का नोकर्म बन गया। ऐसे-ही ज्ञानियो! जो जीव भैंस का दूध पीयेगा, चावल खायेगा, दही खायेगा, उसको नींद तो आयेगी-ही-आयेगी। ये नोकर्म है। ऐसे-ही युवाओ! यदि आपने अपने जीवन में स्त्रियों-जैसी वेश-भूषा धारण की, तो कर्म कह रहा है कि बिना नोकर्म के कर्म आता नहीं है। वेदकर्म का भी नोकर्म है। यदि आपने ऐसा किया, तो अगली पर्याय स्त्री बनने की आपकी नियत है और मायाचारी और-अच्छी कर लेना, फिर तो और-क्या कहना? इसलिए कर्म के साथ-साथ नोकर्म को समझना चाहिए। मुझे दीक्षा लेना-दीक्षा लेना और कषाय करना छोड़ नहीं रहा है, हे ज्ञानी! दीक्षा तो तू ले लेगा। स्वयं बैठेगा ऊँचे आसन पर और पिच्छी को रखेगा नीचे। संयम का उपकरण है। जिनवाणी को जंघा पर विराजमान करेगा तो तेरी दुर्गति होगी कि सुगति होगी? बन जाओ ज्ञानी। पूर्व के क्षयोपशम से आज बातें कर लो, लेकिन भविष्य आपका दुर्बुद्धि का है। धन्य हैं वे आचार्य महावीरकीर्ति जी महाराज, वे अपना हाथ नाभि से ऊपर रखते थे। नाभि के नीचे हाथ गया तो जिनवाणी को स्पर्श करने का अधिकार नहीं है आपको। इसलिए मुनिराज अपना कमण्डल रखते हैं। द्रव्य शुद्धि। पर अब हमारे विद्वान् लोग इतने महान् हो गये हैं कि वे जिनवाणी को जंघा पर भी रख लेते हैं। मांस का पिण्ड (बच्चा) होगा, उसको तो गोदी में पकड़े फिरते हैं और जिनवाणी को काँख में दबाते हो। जिनवाणी को काँख में दबाकर जो चले, उससे बड़ा पापी तो और-कोई नहीं होगा। शत्रु को काँख में दबाना पड़ता है। जहाँ पसीना झर रहा है, कोटि-कोटि जीव उत्पन्न हो रहे हैं, नष्ट हो रहे हैं, इस श्मसान में तुम जिनवाणी को लेकर चल रहे हो।

'वीर हिमाचल से निकसी, गुरु गौतम के मुख-कुण्ड झरी।' वीर हिमाचल से निकली है और गुरु गौतम के मुख से आयी है, ऐसी वाग्गंगा सरस्वती को तुम क्या कर रहे हो? ज्ञान का प्रकाश कैसे होगा? **'जयदु श्रुतदेवता।'** श्रुतदेवता जयवन्त कैसे होंगे? जब विनय का सूत्र तुम्हें याद होगा। विनय मोक्ष का द्वार है, परन्तु पंचपरमेष्ठी की विनय मोक्ष का द्वार है, नहीं तो सब जगह 'मातृदेवो भवः पितृ देवो भवः'। इसलिए जो चारित्र है, संयम है, वह सर्वथा आस्रव तत्त्व नहीं है। **व्यवहार संयम शुभास्रव और अशुभ के संवर का**

कारण है और निश्चय संयम यानि रत्नत्रय मोक्ष का कारण है। तो फिर संयमधारी को तो मोक्ष होना चाहिये ? स्वर्ग क्यों जाता है? फिर, संयमधारी को तो निर्वाण की प्राप्ति होनी चाहिये? चतुर्थ काल में भी तो स्वर्ग गये मुनिराज। रत्नत्रय तो निर्वाण का ही कारण है। **'अयमशुभोपयोगो अपराधः।'** समग्र रत्नत्रय से मोक्ष मिलता है। असमग्र रत्नत्रय के पालन में जो शुभास्रव होता है, उसका अपराध है कि स्वर्ग जाना पड़ता है, लेकिन रत्नत्रय तो मोक्ष का ही कारण है, वह संसार का कारण नहीं है। इसलिए जो कह रहा है कि ये तो आस्रव है, आस्रव शुभ है, शुभ क्रिया है। लगता है कि आपकी बुद्धि को कोई व्याघ्री चर गई है। जब तक साधन होगा, तब तक साधकतम नहीं होगा। दूध तपाने के लिए दूध तपाया जाता है। बटलोई को तपाने के लिये अग्नि नहीं लगाई जाती है, अग्नि तो दूध तपाने के लिए लगाई जाती है, लेकिन बटलोई के तपाये बिना दूध तपता नहीं है। भैया! ऐसा करना कि अग्नि व्यर्थ न जाये इसलिए बटलोई को तपाये बिना दूध तपा देना। अगर सीधे ही दूध तपाओगे, तो पता क्या होगा? दूध भी जायेगा और अग्नि भी बुझ जायेगी। साधकतम और साधन। साधन बटलोई है, साधकतम जो तुम्हारे लिए है वह है दूध तपाना, उद्देश्य तुम्हारा। ऐसे-ही समन्तभद्र स्वामी ने 'स्वयंभू स्तोत्र' में कहा है—

हे प्रभु! आत्म तप के लिए, अध्यात्म वृत्ति के लिए आपने बहिरंग तप किया है अंतरंग तप के लिये बहिरंग तप किए बिना अंतरंग तप होता नहीं। अन्तरंग तप के लिये बहिरंग तप करना पड़ता है। बहिरंग तप मात्र तो अन्तरंग तप होता नहीं। मूँगफली खा लेना, छिलका मत तोड़ना। खा लोगे न? ऐसे ही बहिरंग संयम धारण किए बिना अन्तरंग संयम होता नहीं। बात ऐसी है कि श्वेतपट्टाम्नाय के सिद्धांत तुम्हारे यहाँ प्रवेश कर गये और आप लोग समझ नहीं पाये। बुन्देलखण्ड के श्रावक कर्नाटक में, महाराष्ट्र में, राजस्थान में कई जगह रहते हैं, लेकिन भैया! जैसे-ही उनसे मिलो, वे हऊआ-हऊआ करने लगें, सो समझ लो कि बुन्देलखण्डी है। उनकी पीढ़ियाँ की पीढ़ियाँ निकल गईं, लेकिन घर की भाषा के ही बुन्देलखण्डी हैं। ऐसे ही ज्ञानी! जो जीव जिस परम्परा में पढ़ा बढ़ा है, उसके संस्कार नहीं जाते। वे कपड़े सहित मोक्ष जाते थे, सो कपड़े सहित शुद्धोपयोग में चले गये। भैया! विषय को समझो।

भैया! मैंने श्वेताम्बर साहित्य भी पढ़ा है। बताऊँ? "कल्पसूत्रब्रह्माण्ड।" ब्रह्माण्ड में जितनी कल्पनायें की जायें, वे सब उसके अन्दर हैं। भैया! माँ मरुदेवी अपने पोते भरतेश से कहती है कि बेटा! तू राज्यसुख भोग रहा है और मेरा बेटा ऋषभ जंगलों में भटक रहा होगा।

तू बिल्कुल भी नहीं विचार करता। भरतेश कहता है कि नहीं, दादी माँ! तीर्थंकर ऋषभदेव, मेरे पिता, वे तो कैलाश पर्वत पर समवसरण में विराजते हैं, वो जंगलों में नहीं हैं। तो क्या तू मुझे उनके पास नहीं ले जायेगा? हाँ, दादी माँ! अवश्य ले जाऊँगा। जैसे-ही प्रातः हुआ, हाथी पर सवार होकरके, अपने दलबल के साथ, माँ मरुदेवी को तीर्थंकर ऋषभदेव के पादमूल में कैलाश पर्वत पर ले जाता है। माँ मरुदेवी ने जैसे-ही तीर्थंकर ऋषभदेव को निहारा, माँ मरुदेवी को केवलज्ञान हो गया। सुनो, वक्ता कैसे घुमा सकता है। इसलिए सँभल कर रहना जीवन में। और सुनो। माँ मरुदेवी ने जैसे-ही देखा, हाथी से उतरी भी नहीं, उसको हाथी पर बैठे-बैठे केवलज्ञान हो गया। जब केवलज्ञान हो गया, तब माँ मरुदेवी विचार करती है (केवली होने के बाद विचार कर रही है) कि अब तो मुझे केवलज्ञान हो ही गया है, अब मुझे दीक्षा ले लेना चाहिए। क्यों भाई! पहले दीक्षाकल्याणक होता है कि केवलज्ञान कल्याणक होता है? जब कार्य हो ही गया, तब कारण की क्या आवश्यकता? मुमुक्षु! ये सिद्धांत तो वहाँ से आया है कि पहले निश्चय हो गया है, अब व्यवहार की क्या आवश्यकता? पहले निश्चय होता है, फिर व्यवहार होता है। कोई निश्चय व्यवहार नहीं होता। पहले निर्णय होता है, फिर व्यवहार होता है, इसके बाद निश्चय होता है। इसलिए भैया! मैं शीघ्र किसी की बात को नहीं मानता हूँ चाहे वह आचार्य हों, उपाध्याय हों, मुनि हों, चाहे कोई विद्वान् हो, मैं नहीं सुनता किसी की। न मैं सुनूँगा। मुझे तो आगम चाहिए, दुनियाँ क्या कहती है इससे मुझे कोई प्रयोजन नहीं। हड़िया पर पारो होत, लेकिन दुनियाँ के मुँह पर कोई पारो नहीं होत। मैंने कहा, 'क्या कह रहा है? इसको तुम देखोगे तो कल लोग कहने लगेंगे कि नंगा गया, नंगा गया, तो इसके कहने से मैं कपड़े पहन लूँ क्या? अरे! तुझे नंगा बुरा लगता है तो तू आँखों पर पट्टी बांध ले, पर मैं तो जो हूँ सो हूँ।

एक दिन ये ज्ञानी घोड़ा लिए था बढ़िया सुन्दर और बाप बेटे दोनों बैठे थे। जैसे-ही लोगों ने देखा, कहते हैं, 'कैसा अभागा जीव है? इसको दया नहीं आती, करुणा नहीं आती है। बाप बेटे दोनों बैठे हुये हैं। वह कहता है कि ठीक तो है। बेटा! एक काम कर लो। जानवर है, एक-एक बैठ जाओ। पहले स्वयं बैठ गया और जैसे-ही स्वयं बैठा तो दूसरा बोलता है कि इस बुड्ढे को शर्म नहीं आती, बच्चे को तो पैदल चला रहा है और स्वयं घोड़े पर बैठा हुआ है। वह घोड़े से उतर गया और बेटे से बोला, बेटा! तू बैठ जा। तो लोग कहते हैं कि इस युवा को शर्म नहीं आती? बेचारे बुड्ढे को पाय-पाय चला रहा है और स्वयं घोड़े पर बैठा है? अब वह बेटे से बोलता है, बेटा! अपन ने सब करके देख लिया। चलो, अब अपन दोनों ही

उतरे जा रहे हैं। सो जैसे-ही वह आगे चला कि लोग कहते हैं कि कैसे पगले हैं दोनों के दोनों, सवारी साथ में लिए हैं और पाय-पाय चल रहे हैं। फिर दोनों बाप-बेटे ने निर्णय किया कि भैया! सब करके देख लाया, लेकिन जी को जो कहने, सो ऊखो तो कहने ही है। भैया! आपको जो कहने सो कहत रहो। भगवान् ने जो कहा है, हम तो वही करेंगे। तुम्हारी कुछ नहीं सुनने।

पंचपरमेष्ठी भगवन्त जयवन्त हों। परमेष्ठी अरिहन्त भी होते हैं, सिद्ध भी होते हैं, आचार्य उपाध्याय और साधु भी होते हैं और पाँचों परमेष्ठी की प्रतिष्ठा का वर्णन प्रतिष्ठासार ग्रन्थ में है। ये हमने नहीं लिखा, आचार्यों ने लिखा है। '**आगम चक्खु साहू।**'

क्यों ज्ञानी! बाप बड़ा कि बेटा? भैया! इधर तुम्हारे पिताजी आ जायें तो उनके साथ तुम बैठोगे इस कुर्सी पर, तो तुम फिर बराबर कैसे हो गये? पिता जी बड़े हैं न? सँभल कर बोलना। पिताजी के ऊपर बैठ सकते हो क्या? नहीं बैठ सकते। तो फिर ये बताओ कि जब तू घोड़े पर बैठकर गया था ससुराल, तब तेरे पिताजी पाय-पाय चल रहे थे कि नहीं चल रहे थे? तब तुझे शर्म नहीं आयी थी कि पिता पैदल चल रहे थे और तू स्वयं घोड़े पर बैठा है। भैया! उस दिन बिठाल देता पिताजी को। इन बेचारों को इतना विवेक नहीं है, शर्म नहीं आती। अरे भैया! शादी पिताजी की नहीं होने जा रही है, शादी तो बेटे की हो रही है। उस समय तो बेटा ही घोड़े पर बैठेगा, पिताजी नहीं। भैया! इनसे पूछो कि जब आहार जी में शान्तिनाथ का अभिषेक हो, तो भगवान् के सिर के ऊपर चढ़के जाना पड़ता है क्योंकि इतने बड़े भगवान् हैं, हम कैसे ऊपर से कर लें? गोम्मटेश का, बाहुवली स्वामी का अभिषेक करने जाओगे तो सिर पर चढ़कर जाना पड़ता है, ये अविनय नहीं है, ज्ञानी! विनय ही है। अविनय तब कहलायेगी जब छोटी-सी प्रतिमा हो और आप उनके सिर पर चढ़ कर जाओ। इसलिए विवेक से करो। '**अर्पितानर्पित सिद्धेः।**' बेटे की शादी है तो बेटा ही घोड़े पर बैठेगा, पिताजी नहीं बैठेंगे। ऐसे-ही ज्ञानी! जिस समय जिसकी प्रधानता होगी, उसका नाम चलता है। जो जहाँ नहीं है, उसका नाम नहीं चलता। इसका मतलब ये नहीं कि उनकी अविनय कर रहे हैं। भैया! विषय को समझना। संयम जो है, राग के अभाव के लिए है और जब तक राग है, तब तक तुम संयम धारण कर नहीं सकते हो। इसलिए आस्रव तत्त्व कह कर मत टालो।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज सारसमुच्चय जी में कुसंगति से दूर होने की बात कर रहे हैं। '**कुसंसर्गः सदा त्याज्यो।**' अहो मुमुक्षु! कुसंगति का सर्वथा त्याग कर दो।

अज्ञानी की उपासना करोगे तो आज्ञान ही मिलेगा और ज्ञानी की उपासना करोगे तो ज्ञान ही मिलेगा। ज्ञानी के संसर्ग से अज्ञानी पूज्य हो जाता है, पर अज्ञानी की संगति से ज्ञानी भी अपूज्य हो जाता है। जब चैतन्य आत्मतत्त्व में लीन योगी अपने ज्ञानघन भगवान्-आत्मा के आश्रय को प्राप्त होता है, उस योगी के आश्रय से युक्त कर्म-नोकर्म का जो पिण्ड है, वही लोक में पूजा जाता है।

'स्वभावतोऽशुचौ काये, रत्नत्रय पवित्रिते।'

यह शरीर स्वभाव से अशुचिमय है, लेकिन तब भी पूज्य है। जो बाल किसी योगी के हस्त-कमल पर आ जाये, बाल का तनिक-सा कण भी विघ्न का कारण हो जाता है, अन्तराय हो जाता है। वही तीर्थंकर के मस्तिष्क पर विराजा हुआ बाल तीर्थंकर के संयोग से देवों के द्वारा रत्नपिटारे में रखकरके क्षीरसागर में समर्पित किया जाता है। ये है मात्र उसके संयोग संयम की महिमा। मल भी पूजा जाता है, कन्द भी पूजा जाता है। जिस प्रदेश में पंचपरमेष्ठी विराजमान हों, जिस प्रदेश में तीर्थंकर के कल्याणक हुये हैं, वह भूमि तीर्थभूमि हो जाती है तीर्थंकर के संयोग से और ज्ञानी! जिस प्रदेश में कोई क्रूर-परिणामी जीव बैठा हो, उस प्रदेश में जाने पर आपको भय लगता है। ये द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव का प्रभाव है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को प्रभावित कर रहा है, परन्तु एक द्रव्य दूसरे द्रव्यरूप परिणत नहीं करता।

'प्रवचनसार' जी में श्रमणों को समझा रहे हैं कुन्दकुन्द स्वामी— हे योगीश्वर ! यदि दुःखों से दूर होना चाहते हो तो समान गुण वालों के पास रहो। जो आपसे अधिक गुणी हैं, उनके साथ रहो, पर गुणहीनों के पास निवास नहीं करना। जहाँ गुणों का अभाव है, वहाँ निवास करने की आवश्यकता नहीं है। पर ध्यान रखना, जिसके शक्त्यांश अधिक होंगे, वह अपने रूप परिणत करा लेता है। यदि हीनाचरण वाले जीव हैं, उनके संसर्ग में आप रहोगे तो आप कितने ही महान् होंगे, तब भी अपवाद को प्राप्त हो जाओगे। जितना जीव ऊँचा उठता जाये, जब आम के वृक्ष में फल अधिक लग जाते हैं, तो किसान को नीचे बल्लियाँ लगानी पड़ती हैं, टेक लगाना पड़ती है। ऐसे-ही तुम्हारा उत्कर्ष अधिक होने लग जाये तो तुमको बहुत सँभलने की आवश्यकता है, प्रतिक्षण सावधानी की टेक लगाने की आवश्यकता है। ज्ञानी! आप धन में श्रीमान हो गये, तब भी टेक चाहिये। ज्ञान में बुद्धिमान हो गये, तब भी टेक चाहिये। चारित्र में महान् हो गये, तब भी टेक चाहिये और यश में महान् हो गये, तब भी टेक चाहिये है। इस नीति को समझना कि जब वस्तु विशिष्ट हो जाती है, तब उस पर लाखों की

आँखें टिक जाती हैं। वहाँ आपको टेक चाहिए, सावधानी चाहिए। पर्वत कितना ही विशाल हो, उसके मस्तिष्क पर कोई आग लगाके चला जाये, तब भी उसका कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता। पर रुई के ढेर को एक जरा-सी चिन्गारी खाक कर देगी। ऐसे-ही चारित्रहीन जीव है, उनके पास कुचारित्र जाकर क्या करेगा? चारित्रहीन जीव के लिये असंयमी क्या करेगा? पर संयमी के पास यदि असंयमी बैठ गया, तो कभी उसके रुई के ढेर का राख हो जायेगा। जिनको अभेद दृष्टि में प्रवेश करना है, तो जगत् से निज का भेद करके चलना पड़ेगा। शब्दों पर ध्यान दीजिये। यदि जगत् में अभेद करके चलेगा, तो निज के अभेद में प्रवेश कर नहीं सकेगा। धन्य हैं वे योगी, जो गिलास में पानी की तरह रहते है। गिलास पानी से भरा हो लेकिन तब भी गिलास पानी नहीं होता है और पानी गिलास नहीं होता है। गिलास में पानी ने कब प्रवेश किया? और गिलास ने पानी में कब प्रवेश किया? आँखों से देखकर नहीं, आत्मा से देखकर, सुनकर समझना। भैया! गिलास में पानी प्रवेश करता है क्या ? और पानी गिलास में प्रवेश करता है क्या ? जहाँ से गिलास प्रारम्भ हो जाता है, वहाँ पानी का प्रवेश ही नहीं है और जहाँ पानी का प्रवेश है, वह तो खुला आकाश है। जहाँ गिलास है, वहाँ पानी है क्या ? जहाँ पानी है, वहाँ गिलास है क्या ? और गिलास में पानी नहीं है क्या ? भैया! गिलास में पानी व्यवहार से है, पर वास्तव में पानी तो खुले आकाश में है और जहाँ गिलास की परत है, वहाँ कोई पानी नहीं है। ऐसे-ही धन्य हैं वे निर्ग्रन्थ श्रमण योगी, जहाँ जगत् के लोगों के निवास हैं, वहाँ योगी का वास ही नहीं है और जहाँ योगी के भावों का वास हो, वहाँ भोगियों का निवास है ही नहीं। यदि गिलास पानी हो गया, पानी गिलास हो गया, तो पानी को कठोर होना पड़ेगा या फिर गिलास को बहना पड़ेगा। जितना गिलास और पानी में भेद है, उतना ही निर्ग्रन्थ और सग्रन्थ में भेद है। निर्ग्रन्थ का सोच और सग्रन्थ का सोच कभी एक होता ही नहीं है सग्रन्थ का सोच निर्ग्रन्थभूत हो गया तो वह सग्रन्थ ही नहीं बचा और निर्ग्रन्थ का सोच सग्रन्थभूत हो गया तो वह निर्ग्रन्थ ही नहीं बचा। समझो, भैया! समझो। कुछ नहीं बदलना है, सोच को शौच करना है। भैया! सारा जगत् कुछ नहीं है, बदलने की तो आवश्यकता ही नहीं है। मात्र सोच को शौच (पवित्र) करना है।

छह महिने हो गये, किसी को भगवान् की विधि बनाते नहीं बनी, तीर्थंकर ऋषभदेव यूँ ही घूमते रहे और इसमें पर-कर्तृत्व भाव आया है, क्या कर सकते थे। जब विधि ही नहीं थी, तो विधि कहाँ से मिलती? और विधि आ गई, तो विधि आगे आकर खड़ी हो गई। विधि

यानि विधि और विधि यानि कर्म, भाग्य, दैव, कृतान्त, ईश्वर, भगवान्, ब्रह्मा। ये सब कर्म के पर्यायवाची नाम हैं। जो सौधर्म इन्द्र हाथ जोड़े किंकरभूत खड़ा हो, जिसके गर्भ में आने पर रत्नों की वर्षा हुई हो, जिसके जन्म होने पर रत्नों की वर्षा हुई हो, तीनलोक में आनन्द छाया हो, जिसकी दीक्षा के लिये लौकांतिक देव आये हों और सौधर्म आदि देवों ने दीक्षा कल्याणक महोत्सव मनाया हो, वे ही तीर्थंकर जब अंजुली लगाकर जा रहे थे, तो सौधर्म इन्द्र का अवधिज्ञान कहाँ पलायन कर गया?

ज्ञानियो! यदि आप किंचित् भी जिनवाणी सुनने बैठे हो, तो किसी दूसरे को दोष देने का आज प्रत्याख्यान कर देना। भैया! वस्त्र उतारके फेंक देना कठिन नहीं है। लेकिन कर्तृत्व भाव का प्रत्याख्यान कर पाना बहुत कठिन है। 'मैंने किया, मैंने किया, मैं नहीं होता तो ऐसा हो ही नहीं सकता था।' अरे! होना था, तो कैसे नहीं हो सकता था? ये कर्त्ता दृष्टि जब तक है, तब तक बन्ध बन्द होने वाला नहीं है। जब भी बन्ध बन्द होगा, कर्त्ता दृष्टि का अभाव पूर्व में होगा। कर्त्ता दृष्टि का अभाव तो बंध का अभाव है, तथोपपत्ति और कर्त्तादृष्टि का अभाव नहीं है, तो बंध का अभाव नहीं, अन्यथोपपत्ति।

वक्ता का धर्म होना चाहिये कि अपने वक्तव्य में पर की आलोचना न करें, पर की निन्दा न करें और बहुत जल्दी अपनी बात भी न रखें। ज्ञानी! पहले सब के साथ आपस में मिल लो, सुनाने-समझाने मत बैठो, समझने बैठ जाओ। भट्टाचार्य अकलंक स्वामी ने सिद्धि विनिश्चय, न्याय विनिश्चय, लघीयस्त्रयी तीन ग्रन्थों में जिनसूत्रों को लिखा है, प्रत्येक सूत्र पर अपनी टीका लिखी है। अपने ही ग्रन्थ पर टीका करना महान् कार्य है। एक ग्रन्थकार ही ग्रन्थ पर टीका लिख रहा। 'अकलंकत्रयी' में एक बहुत बड़ी दृष्टि दी। देहरूपता पर व्याख्या चल रही थी। अहिच्क्षेत्र में जो पद्मावती देवी है, उसकी फणावली पर एक श्लोक लिखा हुआ है। यहाँ अकलंक स्वामी का चिन्तवन चल रहा था। केश बांधने का चिंतन चल रहा था। मैं अपने मन का नहीं बोल रहा हूँ, ध्यान रखना। अकलंक स्वामी स्वयं टीका में लिख रहे हैं। विदेह में जाकरके पद्मावती देवी ने वहाँ भगवान् सीमन्धर स्वामी के समवसरण में जाकरके उस रहस्य को लाकरके फण पर अंकित कर दिया। तथोपपत्ति अन्यथोपपत्ति कोई जादू मंत्र की बात नहीं समझना। जहाँ तथोपपत्ति अन्यथोपपत्ति हेतु बन चुका है, वहाँ कोई तीसरे हेतु की आवश्यकता ही नहीं है। अन्यथोपपत्ति अन्तरेण किम् और तथोपपत्ति तत्रैण किम्। जहाँ अन्यथोपपत्ति है, वहाँ टेक की क्या आवश्यकता? भैया! जगत्

के हेतु की क्या आवश्यकता? जहाँ-जहाँ अग्नि होगी, वहाँ-वहाँ ऊष्णता होगी, तथोपपत्ति और जहाँ अग्नि नहीं होगी, वहाँ ऊष्णता नहीं होगी, अन्यथोपपत्ति। आप कितना ही कहते रहो कि महाराज! वामी में से भी तो धुआँ निकलता रहता है। परन्तु भैया! वामी में धुआँ अग्नि का नहीं, वाष्प है। नदी के किनारे भी तो धुआँ दिखाई देता है। वो नदी के किनारे का धुआँ नहीं है, नदी के किनारे की वाष्प है। रेलगाड़ी में भी धुआँ दिखाई देता है, वह धुआँ आकाश का नहीं है। जो रेलगाड़ी के इंजन में कोयला झुलस रहा था, वह धुआँ भी बिना अग्नि के नहीं हुआ है। ऐसे-ही भेद रत्नत्रय के अभाव में अभेद रत्नत्रय की अन्यथोपपत्ति और निज के पुण्य के अभाव में जगत् के देवी-देवताओं का सहयोग करना, अन्यथोपपत्ति। भैया! रहस्य पकड़ो। यदि शम्भू कुमार, प्रद्युम्न कुमार आदि जीवों को देखो, जहाँ हाथ लगाते थे वहाँ घड़ा निकालते थे और वहीं उनकी पूर्व पर्याय में देखो तो जहाँ हाथ लगाते थे कोयला हो जाता था। जब पुण्य होता है तो वैभव की तथोपपत्ति और पाप होता है तो वैभव की अन्यथोपपत्ति। तो समझ में आया? पुण्य-पाप को तुम न्याय से समझ रहे हो।

मुमुक्षु! श्रद्धा है, विश्वास है, तो पाषाण में परमात्मा की अनुभूति, तथोपपत्ति। विश्वास नहीं है, तो पाषाण पत्थर ही है, वीतरागता की अन्यथोपपत्ति। जिनकी आस्था भंग हो चुकी है, उनको साक्षात् में भगवान् भी दृष्टिगोचर नहीं होते और जिनकी आस्था पवित्र है, उनको पाषाण में भी परमात्मा दिखाई देते हैं, पंचपरमेष्ठी दिखाई देते हैं। भैया! यदि 'नियमसार' ग्रंथ का स्वाध्याय कर लिया, तो तुम्हारा एकांकी मिथ्यात्व नष्ट हो जायेगा। आप थोड़ा विचार तो करो कि क्या कारण है समयसार की जगह नियमसार पर जोर क्यों नहीं दिया जाता है, प्रवचन पर जोर क्यों नहीं दिया जाता है? रत्नत्रय 'नियम' है, निर्वाण 'सार' है। जब तक रत्नत्रय का नियम नहीं होगा, तो निर्वाण का सार कहाँ से होगा? मार्ग और मार्ग का फल, जिनेन्द्र के शासन में मात्र दो ही का वर्णन है। मार्ग जो है, वह रत्नत्रय है और निर्वाण उसका फल है।

मार्ग मोक्ष का उपाय है और उसका फल निर्वाण है। ज्ञानी! जब उपाय ही तुम्हारे पास नहीं है, तो उपेय कहाँ से मिलेगा?

जैसे मलेच्छ को मलेच्छ की भाषा में समझाना पड़ता है, ऐसे-ही व्यवहारियों को व्यवहार की भाषा में समझाना पड़ता है। विद्वानों को तो विद्वान् की भाषा में ही बोलना। शुद्धोपयोग के लोगों को शुद्धोपयोग की व्याख्या करो और शुभोपयोग के लोगों को शुभोपयोग की

व्याख्या करो। समयसार की 415 गाथायें कंठस्थ कर लेना पूरा समयसार नहीं है। वो तो पौद्गलिक है, जड़भूत है, वो आत्मा का धर्म नहीं है। जो दर्शन-ज्ञान-चारित्र में स्थिर होकर स्वात्मा की अनुभूति ले रहा है, वह स्वसमयी है, वही समयसार है। भाव समयसार।

भैया! जयवन्त हों आचार्यभगवन्त विरागसागर जी। उनने जितनी मेहनत हम लोगों के साथ की है, ये तो कभी भुलायी नहीं जा सकती है। प्रातः 3 बजे से उठा कर बिठाल देते थे कि बेटा! पढ़ो, स्वाध्याय करो। गुरु के उपकार को कभी नहीं भुलाया जा सकता है। पर ज्ञानी! उपादान में योग्यता नहीं हो तो निमित्त क्या कर सकता है? ज्ञानी! आँखें तो बढ़िया हैं, ग्रन्थ भी रखा है, पर प्रकाश न हो, तो आँखें और ग्रन्थ क्या करेगा? इसलिए योग्य उपादान और योग्य निमित्त, इन दोनों का समीकरण बनता है, तभी कार्य की सिद्धि होती है। एक बार मैं आचार्यश्री जी के पास गया और उनसे बोला, महाराज श्री! ये सब बहुत कठिन-कठिन ग्रन्थ हैं। आप बोलते हो कि गाथायें याद करो, श्लोक याद करो, लेकिन ये सब मेरे तो सिर पर नहीं चढ़ता। आचार्य जी बोले, सुनो ज्ञानी! अभी याद कर लो। ज्ञानी! पौधे को सुरक्षित नहीं करोगे, तो फल कहाँ से लाओगे? इसलिए यहाँ जितने भी बैठे हैं, अपन तो पानी डाल रहे हैं। पानी देख लेना। कभी इनमें से ही निकलेंगे फल।

आचार्य श्री कहते थे कि देखो भाई! याद कर लोगे तब विद्वानों जैसे उलटे सीधे लोग प्रश्न करेंगे, तुम हिन्दी में कितना ही सुनाइयो, लेकिन कोई भी विश्वास नहीं मानेगा और एक गाथा सुना दोगे तो सबकी मुण्डी नीचे हो जायेगी। अब क्या करें? जो है, सो है। आगम तो ये ही कह रहा है कि हमाई थोड़ी चले अब।

ये मेरा शब्द नहीं है, कुन्दकुन्द देव कह रहे हैं 'नियमसार' जी ग्रन्थ में, हे जीव! हे मुमुक्षु! यदि कोई जीव ईर्ष्या के वश होकरके भगवान् जिनेन्द्र के द्वारा कथित धर्म में दोष निकालने लग जाय, तो क्या तू धर्म को छोड़ देगा? ऐसे-ही ज्ञानियो! दोषियों के द्वारा कहे जाने पर वीतराग धर्म के प्रति अभक्ति भाव मत लाना, भक्ति मत छोड़ देना, क्योंकि वर्द्धमान महावीर स्वामी के काल में भी पाँच और मुमुक्षु तीर्थंकर बन गये थे, परन्तु एक तीर्थंकर के काल में दूसरा तीर्थंकर होता ही नहीं तो ये कहाँ से आ गये? अरे! तीर्थंकरप्रकृति का बंध करने के लिये एक ही चाहिये पड़ता है। उदय होगा तो एक ही का होगा। लेकिन तीर्थंकर मुख से कहलाने में क्या जाता है?

भैया! अपने यहाँ बुन्देलखण्ड में कहावत है, बूढ़े बुजुर्ग कहने लगते हैं, तुम्हारे दद्दा ने समझाया था कि '**कण्ठ की विद्या अंटी को दाम वक्त आवै जब खोले तब आवे काम।**' इसलिए विद्या तो रखो कण्ठ में और गृहस्थों को अण्टी में रखना चाहिए पैसा, नहीं-तो भैया! कोई को देवे या लेवे को काम पड़े तो कहाँ भटकते फिरोगे? इसलिए जितने ग्रन्थ हैं, सब कण्ठ में रख लो; लेकिन ध्यान रखना, ग्रन्थ को कण्ठ में रखने मात्र से कल्याण नहीं होगा जब तक निज की भीतर की गाँठ नहीं खुलेगी। लेकिन फिर भी ग्रन्थों का अध्ययन करोगे, श्रुत का अभ्यास करोगे, तो केवली भगवान् बनने के संस्कार बनेंगे। समन्तभद्र स्वामी ने 'आप्त मीमांसा' ग्रन्थ में लिखा है। समन्तभद्र स्वामी बोलते हैं तब लगता है कि हाँ क्षत्रिय बोल रहे हैं। हे प्रभु! मुक्ति और साध्य से वो निर्दोष परमात्मा आप ही हो, इसलिए आपको मेरा नमस्कार हो। सभी तीर्थंकर पूज्य नहीं हैं। जो अठारह दोषों से रहित हैं, ऐसा परमात्मा ही पूज्य है। ऐसे परम वीतरागी महाश्रमण तीर्थंकर जिनेन्द्रदेव और महा भट्टारक, लाल-पीले कपड़े वाले नहीं, जो कह चुके हैं, वही वीतराग वाणी ध्रुव सत्य है। यदि कोई जीव ईर्ष्या के वश होकरके आप्त को अपना बताने लग जाये और दोष दिखाने लग जाये और तुम दोष देखने लग गये, तो तुम्हारा सम्यग्दर्शन कहाँ जायेगा? ज्ञानी! श्रद्धा इतनी ढीली मत करना, विश्वास इतना ढीला मत कर बैठना, क्योंकि जगत् है जगत्, वह आपको जीने नहीं देगा। और जब आपका विश्वास दृढ़ होगा, तो जगत् आपके चरणों में झुक जायेगा।

तीर्थंकर भगवान् महावीर स्वामी के काल में कई स्वयंभू उत्पन्न हुये, वे कहते कि मैं तीर्थंकर हूँ, मैं तीर्थंकर हूँ, और जैसे-ही वर्द्धमान स्वामी को केवलज्ञान प्रकट हुआ, उन भू-तीर्थंकरों का पता ही नहीं चला कि कौन-से बिल में बिला गये। जैसे-ही परमात्मा का समवसरण लगा, बिला गये वे। भैया! भूत-प्रेत तभी उतरते हैं, जब कोई बड़ा मंत्रवादी वहाँ पहुँच जाये। और जैसे-ही मंत्रवादी वहाँ पहुँचा, भूत ही भग जाते हैं। आपने शाम को देखा कभी? शाम के समय चमगादड़ों की लाइन निकलती है और जैसे-ही सुबह होता है, एक चमगादड़ नहीं दिखता है। ऐसे-ही विश्वास रखना, तीर्थंकर भगवान् को जब तक केवलज्ञान प्रकट नहीं होता, तब तक सारे जगत् के मिथ्यात्व दिखाई देते हैं और जैसे-ही तीर्थंकर को केवलज्ञान प्रकट होता है, सारे मिथ्यादृष्टि अपने आप शान्त हो जाते हैं। इसलिए विकल्प की जरूरत बिल्कुल नहीं है। जब सूर्य का उदय हुआ तो लोग घबरा गये। अरे भाई! सूर्य का उदय पहले दिन नहीं हुआ था। सूर्य का उदय तो कभी बन्द हुआ ही नहीं है। अरे! तुमको मालूम

होना चाहिए कि भोगभूमि के काल में ज्योतिरांग, कल्पवृक्ष आदि थे। उत्तरांग नाम के कल्पवृक्ष का इतना विशाल प्रभाव प्रकाश था कि सूर्य चन्द्रमा का पता ही नहीं चलता था। हैलोजन लगा हो और एक दो जीरो पावर के बल्ब लगे हों, तो पता ही नहीं चलता कि कहाँ लगे हैं। जब कल्पवृक्षों का प्रकाश मंद हो गया, तो सूर्य-चन्द्रमा दिखना प्रारम्भ हो गये, तो लोग घबरा गये। कुलकर के पास पहुँचे, हे स्वामी! ये क्या है ? क्या है, ज्ञानी! ऐसी बहुत सारी बातें हैं जो होती तो हैं, पर तुम्हारी दृष्टि में नहीं होती हैं, तो लोग घबराने लगते हैं कि ये क्या हो गया? पर जब कोई समझदार प्राणी कहेगा, भाई! तुम घबराओ मत। अब ज्योतिरांग कल्पवृक्षों की ज्योति मंद पड़ गई है, अब इन सूर्य-चन्द्रमा से तुमको प्रकाश मिलेगा। ऐसे-ही जब केवलज्ञान सूर्य समाप्त हो गया, तो श्रुतज्ञान का ही प्रकाश मिलेगा। ज्ञानी! तीन परमेष्ठी तुमको पंचमकाल में ज्योति देंगे। वर्तमान में अरहन्त व सिद्ध का यहाँ प्रादुर्भाव नहीं है साक्षात्, लेकिन हम उनके बिम्ब बनाकर उनकी आराधना कर रहे हैं।

तीर्थंकर ऋषभदेव 6 महिने तक आहार के लिये घूमते रहे, परन्तु कहाँ चले गये सौधर्म इन्द्र? जब कर्म उदय में आया, तो कोई देव नहीं आये और जब कर्मों की सीमा पूरी हो गई, तो राजा श्रेयांश के यहाँ रत्न वरषाने पुनः आ गया। **'दैवस्य कुटिला गतिः।'** इतना सूत्र याद कर लो। जब तक कर्म उदय में आता रहा, तब तक भगवान् भी घूमते रहे। दैव की कुटिल गति होती है। जैसे-ही कर्म की सीमा समाप्त हुई, राजा सोम-श्रेयांश के यहाँ पड़गाहन हो गया और जब पड़गाहन हो गया, तो वे ही देव अहो उदार, अहो दाता, अहो पात्र, अहो पुष्पवृष्टि, गंधोदक वृष्टि ये पंचाश्चर्य होने लग गये। **ज्ञानियो! ध्यान रखना, तपस्या के काल में पंचाश्चर्य नहीं होते, कोई दूसरे कार्य में पंचाश्चर्य नहीं होते। जब दाता और पात्र की विशुद्धि में संयोग होता है तो पंचाश्चर्य प्रारम्भ हो जाते हैं।** इसलिए जीवन में जिनको अपनी दुर्गति की परीक्षा करना हो कि मेरी खोटी गति का बंध नहीं हुआ हो तो भावपूर्वक जिसको मुनि को दान देने के परिणाम होंगे, विश्वास मानो, उसको दुर्गति का बंध नहीं हुआ है और मुनि के हाथ पर ग्रास रखने के परिणाम नहीं हो रहे हैं, उसका नियम से खोटी गति का बंध हो चुका है। अब जो है ,सो है। अपने-अपने भीतर टटोल लो।

जब द्वार पर निर्ग्रन्थ तपोधन पधार जायें, उस समय के परिणामों की दशा जो होती है, ज्ञानी! भक्ति का आनन्द भक्त को ही मालूम चलता है, भगवान् को भी मालूम नहीं चलता। जो मेरी अनुभूति है, वह तो भगवान् को पता नहीं है। आप लोग आश्चर्य करोगे, बोले

'केवलज्ञानी को पता नहीं?' हाँ, बिल्कुल सत्य कह रहा हूँ, केवलज्ञानी को पता नहीं है। मैं फिर से कह रहा हूँ, मेरी भक्ति की अनुभूति भगवान् को किंचित् मात्र नहीं है। विद्वानो! अब बहुत गहरे रहस्य समझने पड़ेंगे। बोलो कैसे ? मैं भक्ति कर रहा हूँ, मैं प्रवचन कर रहा हूँ, इतने सारे श्रोता तन्मय होकर सुन रहे हैं, ये तीर्थंकर भगवान् सीमन्धर स्वामी के केवलज्ञान में झलक रहा है। पर वे उसकी अनुभूति किञ्चित् मात्र नहीं कर रहे हैं; क्योंकि ज्ञेय अतन्मयभूत होकर झलक रहा है और मेरा मेरे में परिणमन तन्मयभूत होकर हो रहा है। कुम्भकार घट बना रहा है, वह स्वयं घट बन नहीं रहा है। जैसे मिट्टी घट बन रही है, वैसे कुम्भकार घट नहीं बन रहा है। मिट्टी तन्मयभूत होकरके घट बन रही है और कुम्भकार अतन्मय होकर बना रहा है। क्या आप मेरी अनुभूति ले सकते हो? सर्वज्ञ ले सकता है क्या? अरहन्त ले सकते हैं क्या? सीमन्धर स्वामी ले सकते हैं क्या ? ज्ञानी! एक द्रव्य का वेदन दूसरा द्रव्य कर ही नहीं सकता है। कण-कण स्वतन्त्र है, अणु-अणु स्वतन्त्र है, ये जिनवाणी ही बोलती है, जगत् में कोई अन्य ऐसा बोलने की ताकत ही नहीं रखता है। धन्य है जिनशासन। जिनशासन में ही स्वतंत्रता की व्याख्या है। साधु भी बन गये तो कटोरा लेकर नहीं घूमे। दुनियाँ में कहीं अन्य साधु बनते तो कटोरा लेकरके घूमना पड़ता। यहाँ तो वीरचर्या है। अंजुली लेकर निकल पड़े। विधि होगी तो विधी होगी। दाता का पुण्य और पात्र का पुण्य, दोनों एकसाथ संगृहीत हो जाते हैं तो वहाँ पात्र का आहार होता है और रत्नों की वर्षा प्रारम्भ हो जाती है।

महाराजा श्रेयांश और सोम, इन लोगों ने अद्भुत पुण्य का संचय किया होगा। भाइया! कौन जीव कैसे पुण्य का संचय करता है, पता नहीं चलता। वही नकुल, सिंह, भैया! आप होते तो छड़ी मार कर भगा देते। ज्ञानी! मत भगाया करो। मेरे मित्र! सुअर जैसा जीव, बन्दर जैसा जीव, पर अपनी सीमा में निहार रहे थे। 'हे भगवन्! इन योगियों के निरन्तराय आहार हो जायें। यदि मैं भी श्रावक होता, तो मैं भी दान दे लेता।' कुछ लोग कहते हैं कि मैं अनुमोदना कर लूँगा। भाई! जो अंधे हों, लूले हों, लंगड़े हों, विजातीय विवाह करके आ गये हों, कुल कलंकित कर बैठे हों, वे अनुमोदना करें और जिनके सबकुछ अच्छा-ही-अच्छा है, वे अनुमोदना क्यों करें? वे तो आहार दें। कई लोग तो कहते हैं कि मैं तो अनुमोदना करता हूँ। भैया! सभी लोग यदि अनुमोदना करने लग जायें, तो चौका किसी के यहाँ लगेगा ही नहीं, तो अनुमोदना करेगा किसकी तू?

मेरे मित्र! तू दृष्टिविहीन है क्या? कुल-कलंकी है क्या ? लूला, लंगड़ा है क्या ? दरिद्री है क्या? अगर ये सबकुछ नहीं है, तो धन्य हैं वे जीव जो अरहन्त की पूजा, निर्ग्रन्थ को दान और संतान का जन्म अपने हाथ से करते हैं। किसी दूसरे ने नहीं कराते। बड़े-बड़े मंदिर बनवा दिये और नौकर रख दिये पूजा के लिये। मुनिसंघ को बुला लिया और नौकर लगा दिये आहार देने के लिये। क्या कोई ऐसा करेगा कि शादी कराकर आ गये और नौकर लगा दिया जन्म देने के लिये बच्चे को? ये मैं नहीं कह रहा हूँ, भैया! ऐसा शास्त्र में लिखा है, सो बता रहा हूँ। इसलिए ज्ञानियो! सन्तान का जन्म, पात्र को दान और अर्हन्त की पूजा अपने हाथ से करना पड़ती है, नौकरों से नहीं कराना पड़ती है। समझ में आ गया? तो आज से क्या करोगे? जिनकी योग्यता है, वे ज्ञानी चर्या करायें। **जिस घर में तीर्थंकर के आहार हों, विश्वास रखना, वह जीव नियम से मोक्ष जाने वाला होता है। धन्य हैं वे जीव जो निर्ग्रन्थों को आहार देते हैं।** ज्ञानी! उच्च कुल की परिभाषा आगमग्रन्थों में मालूम क्या लिखी है? **जिस कुल में निर्ग्रन्थ दीक्षा लेने की योग्यता हो और निर्ग्रन्थों को दान देने की योग्यता हो, वही कुल उच्च कुल है और जिसमें मुनि बनने की योग्यता नहीं है और मुनि को दान देने की योग्यता नहीं है, वही कुल नीचकुल है।** कुल में कोई एक मुनिराज बन जाये, देखो वह पूरा नगर महकता है। यदि आपके गाँव से महाराज बन जायें, तो कैसा गद्गद् भाव होता है और जिसका बेटा मुनि हो, जिसका पिता मुनि हो, जिसका भाई मुनि हो, उस कुल का क्या कहना।

धन्य हैं वे तीर्थंकर ऋषभदेव, जिनके बेटे मुनि। धन्य हैं वे ऋषभदेव के बेटे बाहुबली जिनका भाई मुनि चक्रवर्ती, स्वयं मुनि। भैया! विश्वास रखना, ये पूर्व तपस्या का प्रभाव है। तपस्या करने के लिये भी पूर्व की तपस्या चाहिये। आगम में स्पष्ट लिखा हुआ है कि **पुण्यहीन लोग संयम का निर्दोष पालन नहीं कर सकते हैं।** जैसे पुण्यहीन को तुम खीर भी दे दोगे तो भैया! कहीं से डण्डा पड़े और कटोरी फूट जाये। ऐसे-ही जिनका पुण्य क्षीण है, वो संयम के कटोरे को फोड़ देगा। पुण्यात्मा जीव ही निर्दोष संयम का पालन कर पायेगा।

क्या हो जाता है आप लोगों को? घर जाने का मन नहीं करता क्या ? भैया! न जाओ तो बहुत अच्छी बात है। चिन्ता मत करना इस बात की कि भोजन कहाँ मिलेगा? भोजन की चिन्ता वे करें जो थाली में बैठकर खायें। धन्य हैं वे जीव, जो एक हाथ से न कमायें और दोनों हाथों से मस्ती में खड़े होकर खायें। तुम चिन्ता मत करना। लेकिन खाने के लिये बन

मत जाना, ये भी ध्यान रखना, नहीं-तो तू सोचे कि चलो अब खिसक चलो, घर की व्यवस्था दूसरे बनायें। नहीं। वस्तुस्वभाव तो स्वतंत्रता का है। भैया! अपने जीवन में ऐसे भाव बनाओ कि हे भगवन्! वह दिन कब आये जिस दिन मैं मुनि बन वन-वन डोलूँ। धन्य हैं वे योगीश्वर, जिनके नन्हें हाथों में, करपात्रों में आहार रखा जाता हो। वे आठ वर्ष के नन्हें मुनिराज कैसे आहार लेते होंगे? धन्य हों वे योगीश्वर आठ वर्ष तीन अन्तर्मुहूर्त के केवली भगवान् समवसरण में दिव्यध्वनि खिरा रहे होंगे। जयवन्त हों वे केवली भगवन्त, जो इतने अल्प वय में और एक पूर्व कोटि वर्ष तक दिव्य देशना दें।

ज्ञानी! मुनि बनो, केवली बनो, तो मूक-केवली नहीं बनाना। जो भगवान् की जय नहीं बोलते, धर्म की अनुमोदना नहीं करते, वे कदाचित् केवली बन भी गये तो मूककेवली बनना पड़ेगा। इसलिए मुनिराजो! जब भी कोई आप से प्रवचन की कहे, एक श्रोता क्यों न हो, तब भी प्रवचन करने बैठ जाना। ऐसा नहीं सोचना कि अभी कोई आया नहीं, मैं किसको सुनाऊँ? अरे ज्ञानी! तू स्वयं है कि नहीं सुनने के लिये? एक श्रोता, दो वक्ता, उपदेश हुये कि नहीं? सिंह की पर्याय में एक श्रोता और दो वक्ता, प्रवचन हुये और ऐसे प्रवचन हुये कि सिंह श्रावक बना और श्रावक ही नहीं, तीर्थंकर महावीर स्वामी बना। ज्ञानी! अपने जीवन में ऐसे उद्देश्य को अपने अंतस् में रख लेना। विकल्प मत करो। जो है, सो है।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।



सत्संग से गुण-वृद्धि

सत्सङ्गो हि बुधैः कार्यः सर्वकाल सुखप्रदः।
तेनैव गुरुतां याति गुणहीनोऽपि मानवः॥ (270/सा.स.)

अन्वयार्थ—(बुधैः सर्वकाल सुखप्रदः सत्सङ्गः हि कार्यः) बुद्धिमानों को सदा सुखदायी सत्संगति ही करना योग्य है **(तेन एव)** उसी से ही **(गुणहीनः अपि मानवः गुरुतां याति)** गुणरहित पुरुष भी महानपने को प्राप्त हो जाता है।

भावार्थ—हे आत्मन् ! पूज्यपुरुषों की सत्संगति सदा सुखप्रदायनी है, सत्संगति से गुणों की वृद्धि होती है

॥ सद्-देशना ॥

तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवन्त हो। जयवन्त हो वीतराग श्रमणसंस्कृति।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज सारसमुच्चय जी में जीव के परिणामों की धारा, पुद्गल की वर्गणाओं की धारा, जीव-जीव की वर्गणाओं की धारा का व्याख्यान कर रहे हैं। विश्व में ऐसा कोई द्रव्य नहीं है जिससे किरणें न निकलती हों। प्रत्येक पदार्थ के अन्दर ऊर्जा है, प्रत्येक पदार्थ के अन्दर तरंगें हैं। प्रत्येक द्रव्य के अन्दर अपनी-अपनी शक्ति है, उस शक्ति का परिणमन पर को प्रभावित कर लेता है, फिर भी अपने-अपने धर्म में हैं।

अग्नि पर रखी बटलोई में रखा चावल भात में परिणत हो रहा है। जिसे आप संगति कह रहे हो, वह एक रासायनिक तत्त्व है, इसलिये कितने सँभल कर रहना चाहिये और कितने सँभल कर रखना चाहिये। कठोर चावल अग्नि और पानी के संसर्ग से 'भात' संज्ञा को प्राप्त होता है। परमात्मा की मूर्ति के संयोग/संसर्ग से एक सामान्य पुरुष 'भक्त' संज्ञा को प्राप्त हो जाता है। चावल का भात भक्त है और भगवान् की भक्ति करने वाले को भी भक्त कहते हैं।

जब भिन्न-भिन्न दो द्रव्य परस्पर नजदीक होते हैं तो एक दूसरे की वर्गणायें एक दूसरे को प्रभावित करती हैं। मृतक तिर्यञ्च में दुर्गंध आ रही थी, आप नाक-मुँह क्यों बन्द कर रहे हो? उस शरीर की सड़ांध से स्पर्शित वायु भी दुर्गन्धमयी हो गई। जब एकेन्द्रिय जीव को संगति प्रभावित कर रही है, सड़ांध वायु में नहीं थी, सड़ांध मृतक तिर्यञ्च में थी, लेकिन वायु स्पर्शित होकर निकल रही थी, इसलिये वायु में दुर्गन्ध है। ऐसे-ही जब तुम खोटे द्रव्यों के साथ बैठोगे, उनके शरीर के निकट से चलोगे, वे आपके परिणामों को प्रभावित करेंगे।

जैसे वायु दुर्गन्धित हो गई, वैसे-ही परिणति भी दुर्गन्धित हो जायेगी। तुम कितने ही श्रेष्ठ रहे आना, सहचर को ठीक कीजिये। मदिरालय से निकलोगे तो दुर्गन्ध आयेगी, जिनालय से निकलोगे तो जिस मंदिर में सुगन्धित द्रव्यों का क्षेपण हो रहा है, धूप की सुगन्ध फैल रही है, उस जिनालय से निकलते समय अपने आप समझ में आता है। क्यों? वायु में सुगन्ध थी? नहीं, सुगन्ध तो धूप में थी, परन्तु जो वायु धूप से स्पर्शित होकर बह रही थी, तो पूरा पर्यावरण शुद्ध हो रहा था, पवित्र हो रहा था, आपको पूरा माहौल सुगन्धमय दिख रहा था और सारे नगर में सुगन्ध फैल जाती है। यदि किसी के घर में शुद्ध घी की पूड़ियाँ बन रही हों, तो पूरे मोहल्ले में घी की सुगन्ध फैल जाती है। जब घृत की सुगन्ध, जड़ की सुगन्ध मोहल्ले में फैल सकती है, फिर तो चैतन्य साधु पधारें, त्यागी-व्रती पधारें, उनकी सुगन्ध पूरे नगर में न फैले, कोई तीर्थंकर विराजमान हो जायें, उस समय सुगन्ध न फैले, ऐसा हो ही नहीं सकता है।

कुसंगति सुसंगति में यही अन्तर है। जहाँ पशु सड़ रहा हो, वहाँ दुर्गन्ध आती है। पशु की सड़ांध दुर्गन्ध मात्र करेगी, परन्तु कुसंगति की सड़ांध तेरे पूरे परिणामों को दुर्गन्धमय कर देगी। कुसंगति की सड़ांध तेरे आचरण को धूमिल कर देगी। जहाँ आचरण को धूमिल करेगी, वहाँ परिणति धूमिल होगी। जब परिणति धूमिल होगी, तो उसकी गति नियम से दुर्गति होगी। इसलिए कुसंगति को हमेशा के लिये छोड़ दो। आचार्यभगवन् ने खोटी संगति को सर्वथा त्याज्य ही कह दिया है।

कुसंसर्ग को हमेशा छोड़ दो। **जो दोषों का खजाना है, ऐसी कुसंगति से आत्मा की रक्षा करना। जितने भ्रष्ट हुये हैं, जितने भ्रष्ट होंगे, जितने भ्रष्ट हो रहे हैं, सब कुसंगति का प्रभाव है।** जिस कुल में जिनेन्द्र का अभिषेक-पूजन होता है, जिस कुल में निर्ग्रंथों को दान दिया जाता है, जिस कुल में अरहन्त की वाणी सुनी जाती है, उस कुल का बालक कहीं जिनालय के स्थान पर मदिरालय में खड़ा मिले, विश्वास रखना, बालक का दोष नहीं है। बालक को दोष देकरके अपने वीर्य में दोष मत डालिये। बालक को दोष देकरके अपने रक्त को दूषित मत कह देना। सन्तान तुम्हारी है तो मदिरालय में खड़ी कैसे है? आप तो जिनालय में होते थे, आपका पुत्र मदिरालय में आ रहा है। बालक पर शीघ्र कुपित मत होना। वह मदिरालय में खड़ा हो, तब भी शीघ्र कुपित मत होना। सगा भाई गाली दे दे, उसको नमस्कार कर लेना, उसको गाली मत देना, थोड़ा धैर्य रखना। आप जिनवाणी सुनने बैठे हो। बेटा मदिरालय में खड़ा मिल जाय तो सिर नीचे कर लेना, उससे कुछ मत कहना। आपको यह तो मालूम है कि संतान मेरी है। इतना ज्ञान होना चाहिए, बस। आपको यह विश्वास होना

चाहिए कि सन्तान मेरी है, मेरे ही वीर्य से उत्पन्न हुआ पुत्र है, तो रुक जाना, उससे कुछ मत कहना। ज्ञानी ! घी ने किसी को जलाया क्या ? परन्तु घी से जलते लोग देखे नहीं गये क्या ? घृत का जला सफेद दाग बन जाता है। सत्य बताना, यदि घृत जलाता होता तो लोग घी को खाते क्यों ? घी नहीं जलाता, अग्नि के संयोग से घी ने जलाया। अग्नि का संयोग न होता तो जीव घी से नहीं जल सकता था। तेरी संतान मदिरालय नहीं जा सकती थी यदि कुसंगति का संयोग न होता। भाई कभी गाली नहीं दे सकता। यह सोच कि दी क्यों है? यदि भैया कुछ कह दे, तो तुम मौन ले लेना। यह कषाय की सोपाधिक दशा है। खौलते घी में कोई हाथ नहीं डालता। वही घी जब ठण्डा हो जाता है तो उसी घी को आप रोटी पर लगाते हो।

मेरे मित्र! जब भाई को कषाय आ रही हो, तो उस समय गले नहीं लगाते। अपने आप जब ठण्डा हो जायेगा। तब भरत का राम से मिलाप हुआ था। हे कैकई ! तेरा वह क्षण कहाँ पलायन कर गया जब तू दशरथ जी से बोल रही थी मेरे बेटे भरत को राज्य मिलना चाहिए? जब मंथरा की अग्नि-ज्वाला का संयोग कैकई को मिला, तो कैकई के भाव बदल गये। वही कैकई जब ठण्डी हो गई, तो बालक भरत को लेकरके जंगल में राम से मिलवाने चली गई, बेटा! घर चलो। इसलिए सौतेली माँ भी कभी अशुभ भाव करे, तब भी तुम शान्त हो जाना, क्योंकि पद कभी गलत काम नहीं कराता, विश्वास रखना, कषाय गलत काम कराती है। पिता से बेटा हिस्सा माँगे तो हे पिता! तुम हिस्सा दे देना, आगे बढ़कर पैर और पड़ लेना, कहना बेटा! तुमने बहुत अच्छा किया। मैं इस राग में था कि तू मेरे लिए वृद्धावस्था में काम आयेगा। यदि तू आज ऐसा नहीं करता, तो मैं राग में मर कर कुमरण कर लेता। तूने आज सत्य को दिखा दिया। अब मैं एकत्व में जाकर समाधिमरण करूँगा। परन्तु बेटे से ये मत कहना कि तुमने मेरे से ये सब क्यों छीन लिया ? विश्वास रखना, पिता से माँगने के बाद जब बेटा अपनी पत्नी द्वारा भरी गई गर्मी से ठण्डा हो जायेगा, तो वही बेटा फिर पिता के पैर छूने आयेगा कि पिता जी! क्षमा करना, मैंने ये अच्छा नहीं किया। भाई से भाई भी अलग होना चाहे तो प्रेम से अलग कर देना, विश्वास रखना, जब उनकी गर्मी ठण्डी हो जायेगी और अपने आप को अकेला महसूस करेंगे, तब तुम्हारे पास बैठने आयेंगे यदि गुस्सा में अलग किया है तो भाई तुम्हारा नाम नहीं लेंगे।

जिनागम के रहस्यों को समझो। **गुस्सा करने वाले पर भी गुस्सा नहीं करना।** भिन्न रस से भिन्न रस में परिणमन करा देना ही तो रसायनशास्त्र है। दुग्ध में नींबू निचोड़ दिया, मधुर तत्त्व में अम्ल तत्त्व का मिश्रण होने से दुग्ध की तीसरी पर्याय का उद्‌भव हो गया। हल्दी

में चूना मिला दिया। हल्दी पीली थी, चूना सफेद था। दोनों के मिश्रण से रक्त वर्ण खड़ा हो गया। ऐसे-ही यदि कोई युक्क युवती को देखकर अशुभ भाव को प्राप्त हुआ है, आपने पर के नो-कर्म को देखा, पर के चेहरे को देख करके तुम उस वर्गणाओं से इतने प्रभावित हो गये कि तुम्हारे भीतर जितने सफेद परिणाम थे वे राग के रक्त परिणाम हो गये। जहाँ भगवान् की भक्ति करने जा रहा था, लेकिन रास्ते में अशुभ वस्तु को देख लिया, राग के द्रव्य को देख लिया, तेरे भावों की सफेदी श्वेत रक्त कणिकायें जो चल रहीं थीं वे रक्त कणिकाओं में बदल गईं। **विश्व में जितने रोगी हैं, स्वयं के द्वारा ही रोगी हैं। कम खाने से रोगी नहीं हैं, ज्यादा खाने से हैं। भूख से अधिक खाओगे तो बीमार पड़ जाओगे और मस्तिष्क से ज्यादा सोचोगे तो पागल हो जाओगे।**

माँ! दूध को जल्दी पीना है। गर्म किसने किया था ? आपने किया। और जल्दी पीना है, तो क्या करोगे ? ठण्डा करेंगे। ऐसे अभागे लोग फँस जाते हैं चौके में कि गिलास लिया और थूक दिया, 'मन शुद्धि, वचन शुद्धि, काय शुद्धि।' अब काहे की शुद्धि जब सब थूक कर रख दिया है? विवेकी माँ क्या करती है? एक परात में प्रासुक ठण्डा पानी भरा था, उसमें दूध का बरतन रख दिया। जब अग्नि की संगति से दूध गर्म हो सकता है, तो पानी की संगति से ठण्डा भी तो हो सकता है। खोटे लोगों की संगति से मदिरालय जा सकता है, तो तेरे संगति में इतनी ताकत होना चाहिये कि मदिरालय जाने वाला बेटा जिनालय जाने लग जाये। धन्य हैं वे बालक जो रोज 10-12 बजे जगते हों, वे आजकल पाँच बजे जगने लगे कि चलो महाराज के पास। ये क्या हो रहा है ? समझा करो। आप लोगों ने कचरा भरकर रख लिया है। मैं यही सोच रहा था कि समाज में साधुओं को तो आते ही रहना चाहिये और समाज को साधुओं को बुलाते रहना चाहिये। जहाँ ये बालक अग्नि आदि के संयोग से गरम हो रहे हों, तो पानी के संयोग से ठण्डे हो जायें। कहना कुछ नहीं। आप कहने जाओगे तो काम और बिगड़ जायेगा। अब बराबर के हो गये हैं, डाँटने का समय समाप्त हो चुका है, अतः बुद्धि से काम करना सीखो। विशाल चट्टान है, उसे हाथों से उठाना चाहो तो पचास साल में भी नहीं उठेगी। वहीं सब्बल लेकर एक ही आदमी सरका देता है और क्रेन लगा दो तो एक आदमी भी नहीं चाहिये पड़ता, मशीन ही उठा देती है। ये विधायें ये मत समझना कि आज की हैं। जब खजुराहो के जिनालय बने होंगे, तब क्रेनें नहीं चलती थीं, फिर पत्थर इतने ऊपर कैसे पहुँच गये? ज्ञानियो! मात्र विज्ञान की प्रशंसा करके जीवन व्यतीत मत करो। हमारे पास जो इंजीनियरिंग मस्तिष्क है, वह आज का नहीं, त्रैकालिक है। आप किसकी प्रशंसा कर रहे हैं?

ये मानव मस्तिष्क है, ये ही श्रेष्ठ है। जगत् भगवान् से मिलता है। भगवान् अनन्त हैं। लोग भगवान् से मिलते हैं, भगवान् में मिल जाते हैं। परन्तु में भगवान् से मिलना एक सीमा तक तो पसन्द करता हूँ, लेकिन भगवान् में मिलना पसन्द नहीं करता हूँ। कोई व्यक्ति नेता बनना चाहता है तो नेताओं से मिलता है, लेकिन वह वही नेता नहीं बनता क्या ? उसकी सत्ता समाप्त हो गई। मैं भगवान् से मिलना तो पसन्द करता हूँ, एक सीमा तक, कि उनकी विद्या सीखकरके दूर हो जाना। परमात्मा में मिल गया तो मेरी सत्ता का क्या होगा ? गंगा यमुना सरस्वती ये लोक में पवित्र नदियाँ कहलाती हैं। ये नदियाँ तभी तक पवित्रता से युक्त हैं जब तक समुद्र में नहीं मिलती हैं। समुद्र में मिल जाने पर गंगा-जैसी पवित्र नदी की सत्ता भी समाप्त हो जाती है। अपनी स्वतन्त्रता का हनन करना, यह कहाँ का मार्ग है? मैं परमात्मा में मिलना पसन्द नहीं करता हूँ, मैं परमात्मा बनना पसन्द करता हूँ।

घन के सहयोग से अग्नि के ताप से सोना तिलक बन जाता है, फिर ललाट पर पहुँचता है। ऐसे-ही चारित्र के घन से और ध्यान की अग्नि से आत्मा परमात्मा बन जाती है तो लोक के अग्र भाग में तिलक बनकर बैठ जाती है। इसी का नाम सिद्धत्व है। मिलना चाहते हो, कि विलीन होना चाहते हो ? न मिलना है, न विलीन होना है। स्वयं की सत्ता में रहकर स्वयं परमात्मा बनना है। निश्चित समय तक मिलना, मिलने के बाद स्वयं की सत्ता को समझना। निज की सत्ता को समझ करके स्वयं की शक्ति को उद्घाटित कर लेना, यही परमात्म दशा है। इसलिए संगति को ठीक कीजिए। बड़े-बड़े रोग उपवनों में जाने मात्र से ठीक हो जाते हैं। पुष्पऔषधि सुगन्धित फूलों की सुगंध मात्र से रोग ठीक हो जाते हैं। जो जंगलों में रहते हैं, वे आप-जैसे रोगी क्यों नहीं होते ? बहुत सारी औषधि तो आप ग्रहण कर ही नहीं पाते। कपड़ों में लिपटे रहोगे तो क्या औषधि ले पाओगे? आप प्रकृति के साथ विकृति करके बैठे हो। यदि सुबह से घूमने भी जाओगे तो स्वच्छ वायु तो मिलेगी नहीं, जो तेरे सड़े-सड़ाये पसीने भरे कपड़े हैं उन्हीं की गन्ध आयेगी। जब तिर्यंच की सड़ांध से वायु दुर्गन्धित होकर आयी है तो तुम्हारे अन्दर वही पसीने की दुर्गन्ध जायेगी। धन्य हैं वे दिगम्बर तपोधन जो प्रकृति की प्रत्येक वस्तु के साथ प्रकृति में रहते हैं। आप जब जन्मे, तब कपड़े सहित थे क्या? आप जन्मे नग्न थे। पृथ्वी, आकाश, वनस्पति, सब प्रकृतिमयी है। जो प्रकृति के लिए प्रकृति से विकृति में चला जाता है, उसकी अवनति होती है। यदि आपको प्रगति करना हो तो इस प्रकृति के भेष में आना। ये सब उतार कर फेंको।

ज्ञानी! घर में रहता है तो हरे बल्ब जलाता है, कहता है कि आँखें ठीक रहती हैं। अरे! जंगलों में रहता, हरी वनस्पति देखता, तो अपने आप ठीक हो जाता। वैदिक दर्शन में क्या हुआ? संसार में सबसे ज्यादा शरीर के सुखिया हैं। अपने शरीर को कष्ट में देखना नहीं चाहता और कष्ट में डालना नहीं चाहता, तो वेद ऋषियों ने क्या किया? ये जनता ऐसे नहीं मानेगी, सारा विश्व धर्म से भयभीत है बहुत सारे कारणों से। कहा धर्म से रिश्ता जोड़ लो, हर घर में गमला ले आओ, उसमें तुलसी लगा दो, इसमें पानी दो। सबसे ज्यादा औषधि देने वाली वनस्पति कौन है ? तुलसी। अब तुम पानी डालो, भगवान् आयें या न आयें, तुम्हारे रोग ठीक हो जायेंगे। घर-घर में वनस्पतियों को देखोगे, कुंजों-निकुंजों को देखोगे, तो तुम्हारी आँखें ठीक रहेंगी। जैनदर्शन ने क्या कह दिया? प्रत्येक द्रव्य चैतन्यमयी है। पर्वत भी जीव है, पानी भी जीव है, वनस्पति भी जीव है। इनकी रक्षा के परिणाम रखो।

ज्ञानी! विश्वास रखना, क्षमा और करुणा के आते ही हमारे चित्त में एक लहर दौड़ती है। घर में विसंवाद हो जाये, कोई मध्यस्थ पुरुष समझौता कराये, न खाना गया न पानी गया, फिर भी एक क्षण में शान्ति की लहर दौड़ गई। भोजन-पानी देने वाले लोग सारे जगत् में मिल सकते हैं, परन्तु परस्पर के विद्रोह को शान्त कराने वाले लोग मिलना बहुत कठिन है। जो ये कह रहा है कि आप कमजोर नहीं हो, आपके साथ मैं हूँ, आप तो लड़ो, वह अनुकूल शत्रु है। जो दूसरे की लड़ाई में भी आपका सहयोग करने खड़ा हो जाय, वह अनुकूल शत्रु है। इसलिए किसी को सुधारने की बात कभी मत करना, बिगाड़ने के साधनों से दूर रखना। बोलने से काम नहीं बनते, बिगड़ते हैं। काम करने से कभी काम नहीं बिगड़ते । जितना भला करने लगो उतने काम बिगड़ते हैं। काम करो काम से। मंत्रणा क्या है? मंत्र और मंत्रणा एक ही है। मंत्रणा गुप्त होती है तो मंत्र भी गुप्त होते हैं। यदि ये दोनों प्रकट हो जायें तो दोनों असफल हैं। कुसंगति में जाते बेटों को दूर कर लेना, सुधारने की बात मत करना, सुसंगति में बैठाल लेना। कुसंगति तभी प्रभावी होती हैं जब खोटे पुरुष के भाषण शुरू होते हैं। बिना भाषा के कोई किसी को अपनी ओर आकर्षित नहीं कर सकता। आप सब कॉलेज में पढ़े हो। पहले व्यक्ति देखता है, फिर उपयोग जाता है। कोई व्यक्ति शीघ्र सहसा अशुभ कर नहीं सकता। ताकत ही नहीं है। पहले देखता है।

भारतीय संस्कृति में एक परम्परा थी। जैनसमाज में बहुत-कुछ जीवित है। निन्यानवे प्रतिशत जीवित है। माताओ! उसे तोड़ना मत। जब बच्चा पैंतालीस दिन का होता है, जाकर सबसे पहले मंदिर के दर्शन कराना। यही कारण है कि छोटे-छोटे बच्चे हाथ में डिब्बी लिए

मंदिर की ओर दौड़ते दिखते हैं। जीव जो भी शुभाशुभ करता है, सबसे पहले दर्शन। रात्रि के बारह बजे अश्लील चित्र देखता है, तभी तो चारित्र भ्रष्ट होता है। उत्तेजना के लिये अशुभ चित्र देखने बैठा। सिनेमा हाल में क्या करते हैं? **अशुभ चित्रों में चित्त गया, सो चित्त भ्रष्ट हुआ और जिसका चित्त भ्रष्ट हुआ, उसका चारित्र नियम से भ्रष्ट होगा। चारित्र सँभालना है तो चित्त सँभालना होगा। उन चित्रों को मत देखो जिन चित्रों से चित्त विक्षिप्त हो। उन चित्रों को देखो जिन चित्रों को देखने से चित्त पवित्र हो, चारित्र पवित्र हो।** आपने बच्चे बच्चियों को मोबाइल की डिबिया पकड़ा दी और छोड़ दिया कि जाओ बेटा! बाहर पढ़कर आना। मालूम चला कि अकेले गये थे, दो होकर आ गये, पता नहीं किस घर की लेकर आ गये और पता नहीं बिटिया किस घर में चली गई। दृष्टि रखो। सन्तान की दृष्टि कहाँ है? नवजात प्रसूता गाय का बछड़ा खड़ा हुआ है, उस गाय को रस्सी बाँधने की जरूरत नहीं है। गाय घास चर रही है, चारों ओर घूम रही है, परन्तु उसकी दृष्टि बछड़े पर है।

आचार्य मानतुङ्ग स्वामी ने 'भक्तामर' जी में क्या लिख दिया? एक मृगी/हिरणी अपने बच्चे के राग में सिंह तक से लड़ने को तैयार हो जाती है, जबकि उसे मालूम है मैं शेर से कैसे जीत सकती हूँ। जब हिरणी सिंह से युद्ध करने तैयार हो सकती है, तो आप इन बछड़ों के राग में कुसंगति से दूर होने के लिये क्यों नहीं तैयार होते हो? बेटे-बेटियाँ कहीं भी रहें, लेकिन दिन में एक बार तो समाचार ले लो, दृष्टि रखो कि बेटा! तुम कर क्या रहे हो ? अपने कुल की आन-बान-शान का ध्यान रखना। एक छोटी-सी बात समझो। चातकपुत्र चातकी से कहता है, माँ ! प्यास लगी है। चातकी कहती है, बेटा ! मेरे वंश में स्वाति नक्षत्र का पानी पिया जाता है। जब तक स्वाति की बूंद नहीं गिरेगी, तब तक तुम कैसे पानी पी सकते हो? नहीं, माँ! मेरा कण्ठ सूख रहा है, मैं तो पानी पीऊँगा। जा बेटा! कहाँ का पियेगा ? चम्बल का पियेगा कि नर्मदा का पियेगा कि गंगा का पियेगा ? गंगा में तो बहुत सारी लाशें छोड़ी जाती हैं, तू कैसे पियेगा ? बेटा कहता है, माँ ! मैं मानसरोवर का पानी पीऊँगा। चातकी बेटे के सिर पर अपना पंजा रखती है, बेटा! जाओ, तुम पानी पीकर आओ, लेकिन मेरा विश्वास है कि यदि तुम मेरी संतान हो तो पानी पीकर आ नहीं पाओगे। धन्य हो आपको, अपने बेटा-बेटी पर विश्वास है कि नहीं ? कि बेटा! तुम जाओ, कहीं भी जाओ, शुद्ध छना पानी पीने वाला बादलों का पानी पी नहीं सकता। जाओ, बेटा! तुम पानी पीकर नहीं आ पाओगे। चातकपुत्र पानी को दृष्टि में लेकर उड़ान भरता है। चलते-चलते संध्या हो जाती

है। एक विशाल वट वृक्ष पर विश्राम के लिये रुक गया। उस वट वृक्ष के नीचे अस्सी वर्ष का एक वृद्ध चारपाई डाले लेटा हुआ था। उसका बेटा कुछ कमाने की दृष्टि से पिता से अनुमति लेकर गया था। उसे रास्ते में हीरे-मोती से भरा हुआ एक थैला मिला। उसने उठा लिया और सोचता रहा कि मैं तो एक-एक पैसा जोड़ता था तो कितनी मेहनत लगती है। जिसका इतना धन होगा, उसके क्या परिणाम हो रहे होंगे? पर धन हरण करने वाला उसके प्राणों का हरण करनेवाला होता है। हर आदमी का ग्यारहवाँ प्राण उसका धन होता है। जो पर के द्रव्य का हरण करता है, वह उसके प्राणों का ही हरण करता है, वह हिंसक ही है। रिश्वत खाने वालों का कभी कल्याण होने वाला नहीं है, यह जीवन में विश्वास रखना। इन लोगों की वह दशा होगी जो भगवान् के ज्ञान में झलक रही होगी। पानी पीकर सो जाना, भीख माँग कर सो जाना, परन्तु मायाचारी के रसगुल्ले मत खाना। जैसे किसी के घर में मटका भरा रखा था और किसी अस्पर्श व्यक्ति ने उस मटके को छू लिया, तो कहते हैं, अरे ! वह पानी मत पीना क्योंकि छुआ-छुत्त हो गया। मंदिर की द्रव्य को खाने वाला और रिश्वत खाने वाले के हाथ का छुआ पानी नहीं पीना, क्योंकि वह तो अछूता हो गया।

वह चातकपुत्र-पक्षी ऊपर बैठा है, नीचे वृद्ध लेटा है। उसके बेटे के हाथ में थैला है, वह सोच रहा है कि जिसका थैला होगा, उसको देकर आऊँगा। खोजते-खोजते शाम होगई। एक घुड़सवार वहाँ से निकलता है। बेचारे के पसीना बह रहा था। उससे पूछा, क्या हो गया ? कुछ नहीं, भैया! मेरे जीवन की पूरी सम्पत्ति समाप्त हो चुकी है। अब कुछ नहीं रहा। जितना जो कुछ था, वह एक थैले के भीतर था। वह मेरा थैला गिर गया है। वह बोला, लो भाई! अपना थैला लो। उसने उस बालक को छाती से लगा लिया और थैले में हाथ डालकर मुट्ठी भर मोती देना चाहा, तो बालक कहता है कि मैं जिस कुल में जन्मा हूँ वहाँ दूध पिया जाता है, पानी छान कर पिया जाता है, जिनवाणी सुनी जाती है, निर्ग्रन्थ गुरु को दान दिया जाता है। मेरे कुल में बेईमानी का नहीं खाया जाता। यदि मुझे लेना ही होता, तो पूरा थैला मेरे पास ही था। एक मुट्ठी से क्या होता है? एक भी सिक्का नहीं लूँगा। ले जाओ। वह बेटा संध्या काल में पिता के पास पहुँचता है। पिता जी को दूर से प्रणाम करता है। पिता पूछता है, बेटा! कुछ कमा कर लाये कि नहीं? पिताश्री! क्षमा करना। आज मैंने कुछ भी नहीं कमाया। क्यों? वह रास्ते की पूरी कथा सुना देता है। जब उसने कहा कि उस घुड़सवार ने एक मुट्ठी मोती आदि देने को निकाले, तो पिता कहता है—क्या तूने ले लिये ? नहीं, पिता जी! मैं आपके रक्त का जन्मा हूँ, मैं किसी रक्त पीने वाले के घर में नहीं जन्मा हूँ, पानी छानकर पीने वाले

के घर में जन्मा हूँ। मैंने नहीं लिये। अस्सी साल का वृद्ध पिता उछलकर खड़ा हो गया और बेटे को छाती से लगा कर कहता है—बेटा ! तूने कुल की आन-बान-शान का ध्यान रखा, चातक के समान। वह स्वाति की बूंद का पानी पीता है, अन्यथा प्राण दे देता है। बेटा! कमा कर खाना, दूसरे का द्रव्य नहीं खाना। पक्षी सुन रहा था। ओ हो! मेरे कुल की प्रशंसा मनुष्य लोग कर रहे हैं। मैं पानी कैसे पी सकता हूँ? और वह चातकपुत्र वापस लौट आया। माँ पूछती है—बेटा! पानी पी आया ? नहीं, माँ! पानी नहीं पी सका। मेरे कुल की प्रशंसा तो मनुष्य करते हैं। जब मेरे कुल की आन-बान-शान इतनी महान् है, तो मैं एक दिन प्यासा रह सकता हूँ, लेकिन पानी पीकर अपने कुल की आन-बान-शान को नष्ट नहीं करना चाहता हूँ। इसलिए हे युवाओ ! तुम ध्यान रखना, तुम उस कुल के हो जिस कुल में तीर्थंकरों का जन्म हुआ है। निर्ग्रन्थों, अरहन्तों का जन्म हुआ है। उनकी आन-बान-शान का ध्यान रखना। घर का छना पानी पीना, बाटलों का पानी पीने मत चले जाना।

कुलभद्र स्वामी कह रहे हैं कि ज्ञानी पुरुषों को, **बुद्धिमान पुरुषों को सर्व सुख को देने वाली सत्संगति करना चाहिए। एक समय की सुसंगति जीवन को सुगन्धमय कर देती है। यदि गुणहीन मानव को सत्संगति मिल जाये, तो वह भी गुणवान बन जाता है।**

ज्ञानी ! दोना खरीदने जाते हो कि कलाकन्द ? पैसे कलाकन्द के देने पड़ते हैं कि दोने के भी देने पड़ते हैं ? जब तौलता है, तो दोने को भी साथ में तौलता है। कलाकन्द की संगति पा करके दोने की भी कीमत बढ़ जाती है, तो साधुओं की संगति पा करके श्रावकों की भी कीमत बढ़ जाती है। सुसंगति को पाकरके गुणहीन भी गुणवान बन जाता है। इसलिए संगति को सुरक्षित रखना। कुल की आन-बान-शान का ध्यान रखना। जिनके पुत्र-पुत्रियाँ बाहर पढ़ रहे हों, सर्विस कर रहे हों, आज उनसे इतना जरूर कह देना-बेटा! इतना ध्यान रखना कि मैं तुम्हारे हाथ से आहार लेता रहूँ, महाराजों का तुम्हारे घर में पडगाहन होता रहे। यदि तुमने गड़बड़ किया, तो मैं तुम्हारे हाथ से आहार नहीं लूँगा। साधु के आहार कब हो पायेंगे ? जब हमारा कुल पवित्र होगा।

''आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्''

आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।



कुसंगति से हानि

साधूनां खलसङ्गेन चेष्टितं मलिनं भवेत्।
सैंहिकेयसमासक्त्या छागानामपि तत् क्षयः॥ (271/सा.स.)

अन्वयार्थ — (साधूनां चेष्टितं खलसङ्गेन मलिनं भवेत्) साधुओं का चारित्र दुष्ट की संगति से मैला हो जाता है, जैसे **(सैंहिकेय समासक्त्या)** सिंह के बच्चे की निकटता से **(छागानां अपि तत् क्षयः)** बकरों का भी नाश हो जाता है।

भावार्थ—हे भव्य ! अपने चारित्र को दृढ़ रखना चाहते हो तो चारित्रवान् साधुओं की संगति करो। आत्मकल्याण चाहते हो तो अव्रतियों की संगति नहीं करना, क्योंकि सिंह की संगति से बकरों का बध हो ही जाता है।

॥ सद्-देशना ॥

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज सारसमुच्चय जी में भूतार्थ दृष्टि से युक्त परम सद्ज्ञान का तत्त्व-उपदेश करते हुये समझा रहे हैं।

सिंह के दाँतों के मध्य आया पुरुष शरीर मात्र को समाप्त कर सकता है, परन्तु कुसंगति के दाँतों में गया पुरुष अपने सुसंस्कारों का नाश कर देगा। रहस्य देखो, '**बन्धेऽधिकौ पारिणामिकौ च।**' जिसके शक्त्यांश अधिक होते हैं, वह अपने रूप परिणत करा लेता है। यह रासायनिक प्रक्रिया है। कभी गुड़ मिट्टी हो जाता है, कभी मिट्टी गुड़ हो जाती है। कितनी मिट्टी आप खा चुके हो। लेकिन मिट्टी के अंश अल्प होते हैं, गुड़ के अंश अधिक होते हैं, सो आप मिट्टी भी खा लेते हो। जब गुड़ के अंश कम होते हैं और मिट्टी के अंश अधिक होते हैं, तो गुड़ मिट्टी हो जाता है। ऐसे-ही जिस साधक के साधना के शक्त्यांश न्यून हैं, उपादान प्रबल नहीं है, आप साधुमार्ग पर चलने का प्रयास कर रहे हो। अग्नि बुझने वाली थी, आपने उसे कुरेद दिया तो राख झर गई, अंगारा पुनः प्रज्वलित हो गया। ऐसे-ही प्रथम अवस्था में साधक को अपने गुरु के पास निवास करना चाहिये। जो बीज जमीन में निहित रहेगा, वह अंकुरित हो करके, वृद्धिमान हो करके, पुष्पित होकरके, फलित हो जायेगा। जो बीज अपने आप को मिट्टी में नहीं छुपाना चाहेगा, उसे चिड़िया चुग जायेगी। ऐसे-ही जो शिष्य गुरु की छाया में लग कर पल्लवित होगा, वह पुष्पित होगा और फलित होगा। जो शीघ्र ही दिखना चाहता है, वह कुसंगति की चिड़ियों के द्वारा चुना जायेगा

तम्हा समं गुणादो समणो समणं गुणेहिं वा आहियं।
अधिवरुदु तम्हि णिच्चं इच्छदि जदि दुक्खपरिमोक्खं ॥270॥

प्रवचनसार जी ग्रन्थ में आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी कह रहे हैं, हे श्रमण ! समान गुण वाले मुनियों के बीच में निवास करो। वर्तमान युग में धर्म को समझना बड़ा सरल हो चुका है। जो वनस्पति एक खेत में है, अगल-बगल के खेतों में यदि वही वनस्पति उगी है तो प्रत्येक खेत की वनस्पति में वृद्धि होती है। बबूल की झाड़ी के नीचे गेहूँ की खेती नहीं होती है। जहाँ विशाल-विशाल वृक्ष होंगे, वहाँ गेहूँ के पौधे नष्ट हो जायेंगे। बड़े वृक्ष के नीचे छोटे वृक्ष पनपते नहीं हैं। बेरी के नीचे और उनके साथ में केले की फसल नहीं होती है। एक अपनी मस्ती में झूमेगा तो उसके वस्त्र फटेंगे, कैसे सम्भव है केल बेर का संग? केल यानि केला, बेर यानि बेर। **दुर्जनों की संगति से सज्जनों की पूजा हो जाय, संभव नहीं है। जहाँ सज्जनों का समूह है, वहाँ दुर्जनों की चल जाय, यह भी संभव नहीं है।** इसलिए समूह में रहना चाहिए। सराफे के बीच साग-भाजी की दुकान शोभा नहीं देती, ऐसे-ही श्रमणों के मध्य में रागियों का निवास और रागियों के बीच में श्रमणों का निवास और असाधुओं के बीच में साधुओं का निवास, साधुओं के बीच में असाधुओं का निवास शोभाविहीन है। इसलिए आपने कितनी दूरी बनाकर बिठाया है कि स्वामी! हम तो राग से पीड़ित हैं ही, हम द्वेष से पीड़ित हैं ही, लेकिन आप मेरी गंध से युक्त न हों। भले ही मट्ठा दूध से ही बनता है, फिर भी मट्ठे से दूध को दूर रखा जाता है। जिस पात्र में मट्ठा रखा था, उसमें दूध रख दोगे तो दूध भी विकृत हो जायेगा। ऐसे-ही साधुपुरुषों को, जो मन विकृति के स्थान हैं, उनसे दूर रखना चाहिये अन्यथा ये विकृत हो जायेंगे।

आगम में कहा है कि जहाँ स्त्रियों का वास न हो, जहाँ नपुंसकों का वास न हो, जहाँ बच्चे क्रीड़ा न करते हों, जहाँ व्यायामशालायें न हों, जहाँ नाट्यशालायें न हों, जहाँ मदिराशाला न हो, जहाँ वैश्यालय न हो, जहाँ जुआ का अड्डा न हो, जहाँ तमेरे या कसेरे का मकान न हो, जहाँ सुनार की दुकान न हो, ऐसे स्थान पर दिगम्बर मुनियों का निवास होना चाहिये। क्यों ? यदि आपने व्यायामशाला के पास साधु को रोक दिया, पहलवानों की कसरत की आवाजें आयीं तो साधु की सामायिक भङ्ग होगी। तमेरे-कसेरे के यहाँ बर्तन ठुकेंगे, घनों की आवाजें आयेंगी, तो उनकी साधना में विघ्न होगा। तिर्यञ्चों का वास न हो। **जिनकी सभी संज्ञायें प्रत्यक्ष दिखती हों, कोई मर्यादा नहीं है, उसका नाम तिर्यञ्च है।** ये बाहर की बातें नहीं हैं, जो जिनदेव ने कहा उसे आप सुन रहे हो। तिर्यञ्च पशु का अर्थ मात्र सींग-पूँछ मत समझ

लेना। तिर्यग कुटिल भाव। जिसके कुटिल भाव हैं, वही तिर्यञ्च है। जिसकी चारों संज्ञायें प्रत्यक्ष दिख रही हों, जिसको लोक की मर्यादा न हो। आप भोजन कितने विवेकपूर्वक करते हो, युवाओ! पूरे देश की समाज की दृष्टि आपके ऊपर होती है, क्योंकि भविष्य के कर्णधार आप हैं। ये पके फल झर जायेंगे तो कोंपल ही तो आगे बढ़ेगा, वृद्धिमान होगा। वृद्धों से मेरा कहना है, बड़े प्रेम से कह रहा हूँ, यदि खेत में पुष्प पुष्पित हो चुके हैं, आपने उन पुष्पों को कण्ठहार या सेहरा बनाने के लिये चुन लिया, जब तुमने पुष्प ही नष्ट कर दिये, अब फसल किसकी खाओगे?

मेरे मित्र! विषय-वासनाओं की पुष्टि के लिये गर्भ में भक्ति-पुष्प ही तुमने नष्ट कर दिये, तो भविष्य के फल कैसे प्राप्त करोगे? इसलिये पुष्पों की रक्षा करो। आम में मौर आ चुके हैं, किसानों से पूछो, जरा-सा बादल उमड़ता है, पानी ओले का मौसम दिख गया, तो उनसे पूछो कैसा लगता है? हाय-हाय! वर्षों-वर्षों तक इन वृक्षों की सेवा की है, कहीं तूफान आ गया, ओले गिर गये, तो मौर झड़ जायेंगे, तो हम आम कहाँ से खा पायेंगे? माताओ! इन बालों को ही तुम झड़ा दोगी, तो फिर धर्म का आमफल कहाँ से खाओगी? न मात्र पर्यूषण करने से कल्याण हो पायेगा, न रोहणी का उपवास करने से होगा जब तक गर्भ की रक्षा नहीं करोगे।

जैसे पाल के लगने पर, तुषार के आने पर किसान कॉपने लगते हैं, ऐसे-ही आपको अपनी संतान निहारना चाहिये कि कहीं इनको कुसंगति का तुषार तो नहीं लगने वाला है? पुष्प की रक्षा करो। ज्ञानी! शिक्षा ही शिक्षा नहीं है। सद्गुणों की शिक्षा है, तो शिक्षा है। विषय-कषाय की शिक्षा देने की क्या आवश्यकता ? आप सब समझ रहे हो मैं क्या कह रहा हूँ ? ये तो दुनियाँ सब समझती है, उसकी शिक्षा की कोई आवश्यकता नहीं है। आज स्कूलों में कालेजों में बच्चों को क्या सिखाया जा रहा है? ये गलत हो रहा है। ये शिक्षा देने की आवश्यकता नहीं है। इस पाल से (तुषार से) संस्कारों की रक्षा करो। इन पशुओं को सँभालो बड़े प्रेम के साथ, सँभालो वात्सल्य के साथ। पान की खेती के समान सुरक्षा तो किसी खेती में नहीं होती। छाया-ही-छाया में वनस्पति को उगाया जा रहा है, समय-समय पर पानी दिया जा रहा है ताकि पान का पत्ता सड़ न जाये, सूख न जाये। तभी तो तुम्हारे मुख में लाली आती है। चेहरे पर लाली लाने के लिये पान को कितना सुरक्षित रखना पड़ता है? तो वीतराग धर्म की लाली लाने के लिये आपको समाज को बच्चों को कितना सुरक्षित करने की आवश्यकता है? ये संस्कार हैं हमारे। आचार्यों ने किसी विद्या को

अछूता नहीं छोड़ा। जब अपनी संतान को इतना सुरक्षित होने की बात कर सकते हो। ज्ञानी! जब दूध के ग्लास को सँभाल कर चलते हो, तो घी की वरनी को कितना सँभाल कर लेकर चलना पड़ेगा ? ये तुम्हारे सपूत दूध के गिलास हैं, ये निर्ग्रन्थ योगी घी की वरनी हैं।

दिगम्बर परम्परा में अपभ्रंश का सबसे प्राचीन ग्रन्थ परमात्मप्रकाश है, योगसार है। ग्वालियर का गोपाचल पर्वत अपभ्रंश कवियों का मुख्य केन्द्र रहा है। योगेन्दु जैसे कवि हुये हैं जिन्होंने अपभ्रंश भाषा में पूजा लिखी है। विद्वानों ने, आचार्यों ने, भट्टारकों ने बहुत ग्रन्थ लिखे हैं। जिन्होंने काम किया, आपको उनकी सराहना तो करनी चाहिये। **सबसे बड़ा दरिद्री वह होता है जो श्रेष्ठ पुरुषों की कभी सराहना नहीं करता।** गुणवानों की प्रशंसा तो करनी ही चाहिये, तुम्हारा क्या जाता है ? वाक्यं किं दरिद्रता ? वाक्यों में क्या पैसा लगता है ?

मुमुक्षु ! कोटि-कोटि दान देना सरल है, पर अपने मुख से किसी की प्रशंसा करना बहुत कठिन है। दान में तो स्वयं की प्रशंसा छिपी हुई है, परन्तु पर की प्रशंसा करना बहुत कठिन है। कैसा समय चल रहा है ? बहुत बड़ी साधना है। हृदय से क्षमा, हृदय से प्रशंसा करना जो सीख लेगा, उसके भीतर कषाय रह नहीं सकती। इसलिए जैसे नवीन दुग्ध को मट्ठे से दूर रखते हो, ऐसे-ही साधुओं को भी विषयों से दूर रखना चाहिए। आपके नगर में कोई ज्ञानी व्यक्ति पधारे, त्यागी-व्रती पधारे, हमारा एक त्यागी श्रेष्ठ होता है तो पूरी समाज मुस्कराती है। समाज ही नहीं, पूरा देश मुस्कराता है। ये साहित्य कौन देकर गया है? आज भारत की भूमि से जैन पुरातत्व व जैन साहित्य को एक किनारे रख दो तो भारत खोखला हो जायेगा। जयवन्त हों भगवान् गोम्मटेश बाहुवली स्वामी, पूरा राष्ट्र मुस्कराता है। जब दिल्ली में परेड हुई थी तो गोम्मटेश बाहुबली स्वामी की प्रदर्शिनी को प्रथम पुरस्कार मिला था। जयवन्त हों खजुराहो के वे जिनालय। दिगम्बरो! तुम्हारे पास दो ऐसी वस्तुयें हैं जो यहाँ बैठे सारे विश्व में जैनत्व का नाम कर रही हैं। सेठ पाहिल और चामुण्डराय के परिणामों को करो प्रणाम। जब कोई कहता है कि कुन्दकुन्द स्वामी कितने महान् थे, तो उनकी महानता को नमस्कार करना। उनकी सजगता को नमस्कार करना। परन्तु जीवन में इतना विचार करना, 'मैं सोचता हूँ भगवन्! मैं आपकी प्रशंसा कब तक करता रहूँगा?' प्रशंसनीय बनने का प्रयास भी करो। उनकी तुम प्रशंसा करो, साथ में वैसा बनने का पुरुषार्थ करो।

मट्ठे से दूध की रक्षा करो। फटेगा तो क्या फटेगा ? दूध। मट्ठे का क्या फटेगा? वह तो क्षार है, तक्र। इसलिये इन श्रमणों से भी कहना, स्वामी ! हम तो रागी हैं ही, मेरा बिगड़ेगा

तो क्या बिगड़ेगा? आप बने-बनाये हो, आप हमसे दूर रहना, नहीं-तो बिगड़ जाओगे। जैसे पान की बेलों को सुरक्षित रखते हो, ऐसे-ही श्रमणों को सुरक्षित रखो। वस्तुस्वरूप समझो, यथार्थ समझो। जब-जब आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी के साहित्य की चर्चा होती है, दिल्ली व जयपुर में विदेशों की टोलियाँ आ रही हैं, उनकी व्यवस्था की गई है, महासभा ने की है, जयपुर व दिल्ली समाज ने की है। वे जैनदर्शन का अध्ययन करने आते हैं। फिर खजुराहो तो बिना बुलाये आने का स्थान है। आप चाहो तो वहाँ भी ऐसी व्यवस्था कर दो कि जिनको जैनदर्शन का अध्ययन करना हो, करो, आशीर्वाद है। बस, हमें नहीं फँसाना। अपन तो बतानेवाले हैं, उलझनेवाले नहीं हैं। मैं बताता रहूँगा तो बताने की सामर्थ्य रहेगी; लेकिन जिस दिन इनके साथ चलने लग जाऊँगा, उस दिन तुमको बतानेवाला नहीं मिलेगा। इसलिये मुझे सुरक्षित रहने देना। एक सज्जन मेरे पास आये, बोले, महाराज जी! आजकल मुझे आपका प्रभाव बढ़ते दिख रहा है। मैंने कहा, मैं तो जितना छोटा था उतना ही छोटा दिख रहा हूँ। सब छोटे महाराज कहते थे। वे सज्जन बोले, महाराज! मेरी इच्छा है कि बढ़ते प्रभाव को देखकरके आप एक तीर्थ गोद ले लो, उसका कल्याण हो जायेगा। मैंने कहा, मेरे मित्र ! तुम्हें पता नहीं है। मैं एक तीर्थ को ले चुका हूँ। एक को तो पाल सकता हूँ, दो को कैसे पाल सकता हूँ? वे सज्जन बोले, 'कौन-सा तीर्थ है?'

मैंने कहा-सुन !'रयणत्तय तित्थं' रत्नत्रय धर्म ही मेरा तीर्थ है। यदि मैं दूसरे तीर्थ को लूँगा, तो मेरा रत्नत्रय तीर्थ सूख जायेगा। अब मुझे कोई तीर्थ नहीं चाहिये।

जे गुरु चरण जहाँ धरें, जग में तीरथ होय। निर्ग्रन्थों के चरण जहाँ पड़ जायें, वही तीर्थभूमि हो जाती है। इसलिये श्रावक का धर्म है कि व्यवहारतीर्थ की रक्षा करे और श्रमण का धर्म है कि निश्चयतीर्थ की रक्षा करे। यदि व्यवहार की व्याख्या नहीं करोगे तो व्यवहारतीर्थ का लोप हो जायेगा और निश्चय की व्याख्या नहीं करोगे तो निश्चयतीर्थ का लोप हो जायेगा। एक के अभाव में तत्त्व का नाश होगा, एक के अभाव में व्यवहारतीर्थ का अभाव होगा। इसलिये दोनों नयों की व्याख्या की आवश्यकता है।

संसर्ग से दोष वृद्धिमान होते हैं, संसर्ग से गुण वृद्धिमान होते हैं। उसने एक साधु को कविता सुनाई, उसे बहुत बुरा लगा। बोला, ऐसा नहीं होता। मैं उत्तम हूँ, मैं श्रेष्ठ हूँ, मेरे अन्दर दुर्गुण कैसे आ सकते हैं? वह धीरे-से बोल देता है, स्वामी ! कितना ही घट्ट माघ-पूष की ठण्डी में रखा मक्खन हो, अग्नि के पास आयेगा तो पिघलेगा-ही-पिघलेगा। सो वे और-गरम

हो गये। ठीक है, अब मैं आपसे और-कोई बात करना ही नहीं चाहता, इसका उत्तर समय देगा। शीघ्र सब बातों का उत्तर जीवन में कभी मत देना। हर बात का समाधान मत करना। कोई आपका विरोध भी करे तो समाधान मत देना। तुम समाधान दोगे तो दूसरी पेशी लगेगी। मालूम चला कि पूरा द्रव्य जज के घर में पहुँच गया। वो तो मुस्करायेंगे कि मुझे तो दोनों तरफ से मिलेगा। इसलिये जो ज्ञानी होते हैं वे बहुत सारे समाधान समय पर छोड़ देते हैं। समय दे दो तो घर के द्वारे के गड्ढे भी भर जाते हैं। कुए किसी ने पूरे नहीं हैं, समय दे दिया। जो कोई बोल रहा, सो बोलने दो। जो है, सो है। उस कवि ने समय पर छोड़ दिया। उसका कण्ठ सुरीला था और नाटक करने में वह नम्बर एक का था। ये सब पूर्वपुण्य के नियोग रहते हैं। वाणी के प्रवचनकार होना, लेकिन चेहरे का प्रवचनकार होना बहुत आवश्यक है। आप लोग आश्चर्य मत करना। कुन्दकुन्द स्वामी ने यहाँ तक लिख दिया है। जब आप पत्थर की प्रतिमाओं को भगवान् का रूप देते हो, तो कितना सुन्दर बनाकर लाते हो कि वीतरागता झलके, लोगों का आकर्षण हो, तभी तो लोग पत्थर को सिर टेकेंगे। ऐसे-ही एक आचार्य जिसको दीक्षा दे, उसका चेहरा भी सुन्दर होना चाहिये, जिसके प्रति लोगों को आकर्षण बढ़े, जिससे लोग ये न समझें कि मुनि वे बनें जो गरीब हों, जिनके खाने-पीने को न हो। बहुत अच्छा हुआ कि शांतिनाथ, कुन्थुनाथ, अर्नाथ तीर्थंकर, चक्रवर्ती, कामदेव तीन-तीन पद के धारी थे। नहीं-तो ज्ञानी यही कहते कि खाने पीने का न हो तो महाराज बन जाओ। लेकिन भैया! सुनो, तुम्हारे यहाँ तो वो भी नहीं है जो ईंटें ढोता है। उन्होंने कोटि अट्ठारह घोड़े छोड़े चौरासी लाख हाथी। जब वैराग्य है, तो विभूति किस काम की? और वैराग्य नहीं है, तो भगवान् किस काम के ? क्या करोगे? सब छोड़कर चले गये।

उस कवि ने, जहाँ जंगल में महात्मा जी घास-फूस की टपरिया बनाकर रह रहे थे, अर्द्धरात्रि के समय उसने वीणा उठाई और अपने सुरीले कण्ठ से संगीत प्रारम्भ कर दिया और नारी का भेष बनाया। अब जो साधक था, जो कह रहा था कि मेरा क्या बिगड़ सकता है? वह बैचेन हो गया। अपने भवन की साँकल को खोलता है और चल देता है जिस ओर से आवाज आ रही थी। लेकिन जैसे-ही पास आता है, तो वह दूसरी ओर जाकर नारी की आवाज में रोना प्रारम्भ कर देता है। तो साधु फिर पिघल गया कि कोई अबला रो रही है, हो सकता है कि जंगल में कष्ट में हो। चलो, अपना कर्तव्य बनता है कि इसकी रक्षा करो। (एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को कैसे प्रभावित करता है, देखो।)

चलो, मेरा आश्रम पास में है, आप वहाँ रहना। वह कवि कन्या के भेष में था। साधु बोला-आप इस आश्रम में ठहर जाइये। वह बोला, मैं ठहर तो सकती हूँ, लेकिन आपको साथ में नहीं रखूँगी। वह साधु बोला, 'नहीं, बेटी! मैं तो साधु हूँ।' वह बोली, 'कुछ भी हो। नारी को देखकर तिर्यञ्च के भाव बिगड़ सकते हैं, आप तो मनुष्य हो।' साधु बोला, 'तो ठीक है। आप अन्दर रह जाओ, मैं बाहर सो जाता हूँ।' कन्या ने अन्दर प्रवेश करके साँकल बन्द कर ली, उस साधु को बाहर छोड़ दिया। जैसे ही उसने अन्दर प्रवेश किया, पुनः वही संगीत प्रारम्भ कर दिया सुरीले कण्ठ से। अब उससे रहा नहीं गया, बोला, 'बेटी। यहाँ डर है, जंगल है, शेर का भय है, तू खोल।' बोली, 'तुम-जैसे पागल सैकड़ों घूमते हैं।' उसने दरवाजा नहीं खोला। वह साधु टपरा पर चढ़ा, उसे तोड़कर नीचे कूद गया। उस कवि ने अपनी साड़ी फेंक दी और असली रूप में आकर कहा, 'देख भाई ! संसर्ग से वासनायें किसी को नहीं छोड़ती हैं।' साधु बोला, 'कौन हो आप ?' जिसने कविता लिखी थी, मैं वो कवि हूँ।

विषयाशसक्त चित्तानां गुणः को वा न नश्यति।
न वैदुष्यं न मानुष्यं नाभिजात्यं न सत्यवाक्॥

जिसका चित्त वासनाओं से आसक्त है, उसमें न देवत्व निवास करता है न मनुष्यत्व निवास करता है। वहाँ सत्य की तो गंध भी नहीं आती है। इसलिये आज से ध्यान रखना। बोलो, मेरी कविता सत्य है कि नहीं ? वह साधु कहता है —मैं भेष का साधु हूँ, तू भावों का साधु है। तू आज से मेरा गुरु है। वह पैर छू लेता है।

खलों की संगति से साधु मलिन हो जाता है। शेर के बच्चे के पास बकरे की रक्षा संभव नहीं है, ऐसे-ही कुसंगति के पास में साधुधर्म की रक्षा संभव नहीं है। ऐसे समूह में रहो जो समूह की रक्षा कर देता है। जंगल में रहनेवाले हिरण भी समूह में रहते हैं। जब हाथी भी झुण्ड में रहता है तो शेर भी भाग जाता है। जहाँ तुम एकल चले, सो गये काम से। इसलिये श्रमणों से कहा है, ज्ञानी ! झुण्ड में रहो, झुण्ड में रहो।

एक दूसरे के परिणामों का प्रभाव एक दूसरे पर पड़ता है। बिगड़ते भावों में तुम चार के बीच में बैठ जाओ तो अपने आप सुधर जाओगे और अकेले कमरे में बैठ जाओ तो कभी न बिगड़े होंगे ऐसे बिगड़ जाओगे।

निज की रक्षा करना है तो समान लोगों के साथ रहो। अधिक गुण वालों के साथ रहो हीन गुण वालों के साथ नहीं रहना। '**जदि दुःख परिमुक्तं**' यदि आपको दुःख से मुक्त होना

है तो हीन लोगों के साथ निवास नहीं करना। श्रेष्ठ कुलवंत का चेहरा कैसे चमकता दिखता है। हीन आचरण वालों के पास नहीं जाना। जिसके अधरों पर मदिरा की गंध न हो, जिसके अधरों पर महामंत्र की श्वास चलती हो, ऐसे लोगों के साथ रहना चाहिये। कोई का बेटा खुनखुना के लिये मचल रहा है, कोई का बच्चा कह रहा है कि मुझे सुबह जल्दी जगा देना क्योंकि मुझे डेरा पहाड़ी जाना है महाराज के साथ। तो माता-पिता भी मुस्कराते होंगे, 'ओ हो! मेरा बेटा जिनराज के लघुनन्दन के साथ चल रहा है। आज मुनिराज के साथ चलेगा, तो कभी जिनराज के साथ चलेगा, बाद में जिनराज भी बनेगा। ऐसी संतानें उनके घर में जन्म लेती हैं जो जीव कामपुरुषार्थ के काल में भी महामंत्र का जाप करता है। ये ध्यान रखना, भीतर की विद्या है, जो कामपुरुषार्थ के काल में भी मौन लेकर महामंत्र का जाप करता है कि मैं वासनाओं को वश नहीं कर पा रहा हूँ, अपनी पीड़ा को सहन नहीं कर पा रहा हूँ, परन्तु धर्म को नहीं छोड़ूँगा। उनके घर में राम या महावीर जैसी संतानें जन्म लेती हैं। जो पांच दिन की अशुद्धि में भी काम सेवन करते हैं तो उनके घर में रावण या कंस जैसे बेटे जन्म लेते हैं। सूर्पनखा या मंथरा जैसी मिलेगी। इन विद्वानों को बोलना चाहिये, लेकिन ये बोलते नहीं हैं; सो मुझे बोलना पड़ता है। अब जो है, सो है।

माताओ! सुनो बिटिया की विदा करो सो ये दुनियाँ के लाली लिपिस्टिक हत्या की सामग्री मत देना। उसको शृंगारदानी के स्थान पर जिनवाणी दे देना। आर्यिका ज्ञानमती माता जी की माँ ने अपनी बेटी को 'पद्मनन्दी पंचविंशतिका' ग्रन्थ दहेज में दिया था।

ज्ञानी ! अच्छा साहित्य पढ़ो, अच्छी संगति करो, तो निश्चित ही कल्याण होगा।

''आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्''

आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।



राग-द्वेषादि ही दुष्ट हैं

रागादयो महादोषाः खलास्ते गदिताः बुधैः।
तेषां समाश्रयस्त्याज्यस्तत्त्वविद्भिः सदा नरैः॥272/सा.स.॥

अन्वयार्थ—(रागादयो महादोषाः ते खलाः बुधैः गदिताः) राग-द्वेषादि महान् दोष हैं, ये ही दुष्ट हैं, ऐसा ज्ञानियों ने कहा है **(तत्त्वविद्भिः नरैः सदा तेषां समाश्रयः त्याज्यः)** तब तत्त्वज्ञानियों को उचित है कि वे उनका संग सदा के लिए छोड़ दें।

भावार्थ—हे भव्य ! राग-द्वेष ही संसार-संतति के कारण हैं, अतः इनको त्यागना ही श्रेष्ठ है।

॥ सद् देशना ॥

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रंथराज सारसमुच्चय जी में राग-द्वेष से बचने का व्याख्यान कर रहे हैं।

कण-कण स्वतंत्र है, अणु-अणु स्वतंत्र है। जगत् में कोई भी वस्तु पर को बलात प्रेरित नहीं करती। स्व का क्षयोपशम स्व में ही है, पर में किंचित् भी नहीं है।

प्रत्येक व्यक्ति स्वतन्त्र है, प्रत्येक वस्तु स्वतन्त्र है। मेरे प्रति आपको वात्सल्य उमड़ रहा है, इसमें आप स्वतन्त्र हो। मेरे प्रति आपको स्नेह/प्रेम उत्पन्न हो रहा है तो आप स्वतन्त्र हो और द्वेष उत्पन्न हो रहा है तो आप स्वतन्त्र हो। मैं आपके राग का जनक नहीं हूँ, मैं आपके स्नेह का जनक नहीं हूँ, मैं आपके द्वेष का जनक नहीं हूँ। मैं आपके प्रेम का भी जनक नहीं हूँ। स्नेह, राग, प्रेम, वात्सल्य पर्याय तेरे भीतर है। स्नेह करेगा तो अशुभ बन्ध, प्रेम करेगा तो अशुभ बन्ध, राग करेगा तो अशुभ बंध, वात्सल्य रखेगा तो शुभ आस्रव होगा। और सहज दृष्टि से देखेगा तो ये सभी राग की ही पर्यायें हैं। राग की पर्याय होने पर भी इनके भावों में अन्तर है। भावों में अन्तर है, इसलिये आस्रवों में अन्तर है। आस्रव में अन्तर है, इसलिये बंध में अन्तर है। घास की नोंक पर ओस की बूँद कितने समय तक स्थिर है ? मोती-सी चमक रही है, लेकिन विलीन होने वाली है। मोती-सी चमकती ओस की बूँद को आपने विलीन होते देखा है, उगते सूरज को अस्ताचल की ओर जाते देखा है, परन्तु उनके राग में बन्ध कितना चलेगा ? उदित सूर्य को अस्ताचल जाते भी आपने देखा है, तो मेरी पर्याय भी अस्त होते तुम देख लोगे। अपनी पर्याय को भी विलीन होते देख लोगे। जब जगत् की सम्पूर्ण पर्यायें विलीन हो रही होंगी, पर्यायों के बीच में जो पर्यायी था उसे देखने का प्रयास नहीं किया।

पर्याय के सुख के राग में भविष्य के कितने परमात्माओं से द्वेष कर चुके हो। वर्तमान की पर्याय को जो सुखभूत करता है, उसके प्रति राग उमड़ रहा है और जो तुम्हारे सुख में सहकारी नहीं बन पा रहा है, उस पर द्वेष उत्पन्न हो रहा है। जितना देह के सुख का राग जीव को नहीं सताता, उतना मानकषाय के आनन्द का राग जीव को सताता है। घर में कितने ही सुख हों, लेकिन यदि समाज में कोई सम्मान नहीं देता तो वह सुख 'सुख' दिखाई नहीं देता। मेरे मित्र! पत्नी छप्पन प्रकार के भोजन बनाकर रख रही हो, जब परोसने का समय आता है तो कहती है 'ले खा ले।' इतने शब्द सुनते ही छप्पन प्रकार के भोजनों का स्वाद विलीन हो जाता है। वही बेटे की माँ यूँ कहे, 'स्वामी ! अधिक कुछ नहीं बना सकी, बस नमक-रोटी ही है, आप स्वीकार करो।' तो वह शान्त हो करके उसे स्वीकार कर लेगा। इसमें उसने घी नहीं मिलाया, परन्तु मेरी मानकषाय की पुष्टि का घृत अवश्य मिलाया है। मानकषाय की पुष्टि का घृत मिल जाता है तो सूखी रोटी में दूध निकलता है और मानकषाय का घृत नहीं मिला होता है तो पूड़ी में भी खून टपकता दिखाई देता है। यह आनन्द किसका है? रोटी में आनन्द था, कि पूड़ी में आनन्द आया, कि मानकषाय की पुष्टि की शब्दावली में आनन्द था? जब-जब दृष्टि जाती है, वरिष्ठ लोग भी कनिष्ठ होते दिखाई देते हैं मान के पीछे। तुम्हारी श्रेष्ठता तभी तक है जब तक तुम्हें कषाय ने प्रेरित नहीं किया है।

मित्रो ! जगत् की पीड़ा तो सुनो। काँटा चुभेगा तो तन में चुभेगा, कषाय चुभती है तो मन में चुभती है कि सबके बीच में मैं था, मेरा नाम भी लिया जा सकता था। ज्ञानी! नियत नहीं कि तुम्हारा नाम लिया जा सकता हो। पर के मुख से नाम बुलवाने की आकांक्षा तुम्हारे मन में पहुँच सकती है, लेकिन यदि यशःकीर्ति नामकर्म का उदय न हुआ, तो दूसरे के मन में तुम्हारे नाम की गुदगुदी नहीं उठ सकती। यदि ब्रह्माण्ड में सारे योगी अथवा भोगी इस विषय को समझ लेते हैं, तो उनके चेहरे पर कभी मलिनता नहीं आ सकती।

महादोष को उत्पन्न करनेवाला राग है। युवाओ! निहारो। घृत में कितनी ही चिकनाई हो, गरम पानी के पड़ते ही घृत की चिकनाई में न्यूनता आ जाती है। ऐसे-ही परिणामों में कितनी ही विशुद्धि हो, राग उमड़ते ही परिणामों की विशुद्धि में न्यूनता आ जाती है। यह रासायनिक परिणति है। एक रसायन में दूसरे रसायन को क्षीण करने की शक्ति होती है, बदलने की सामर्थ्य होती है। मिर्च कितनी ही तीखी हो, घी में तलने से तीखापन न्यून हो जाता है। मिर्च जहर है, लेकिन घृत उसे क्षीण कर देता है। यह रासायनिक तत्त्व है। ऐसे-ही विशुद्धि का तत्त्व, परिणामों की निर्मलता का तत्त्व है।

भाई! जब बेटे की माँ घर नहीं आई थी, उस समय तेरे परिणामों में माँ के प्रति प्रीति अधिक थी। जैसे-ही बेटे की माँ घर में आयी, जिनके प्रति तेरे परिणाम जैसे चलते थे, जिस भाई से जिस भाषा में बात होती थी, उस भाषा में अन्तर आया है। कुछ लोग बनावटी भाषा में, मेरे घर की विडम्बना न हो जाये उस चक्कर में, सत्य की बिडम्बना जरूर कर देते हैं। ऊपर शब्दों में चलता है कि मेरे अन्दर कोई मान नहीं है कोई कषाय नहीं है जबकि यही तो कषाय है अन्यथा तू बोल क्यों रहा है, ये सफाई देने की आवश्यकता क्या पड़ गई? सफाई वहाँ की जाती है जहाँ कुछ गंदगी होती है। यदि कोई व्यक्ति अपनी सफाई प्रेषित कर रहा है कि मेरे भीतर कोई कषाय नहीं है, तो सफाई का उद्देश्य ही है कि तेरे भीतर कुछ है। जब कुछ नहीं है, तो कहने की आवश्यकता क्या है ? यानि कुछ है, तभी आप प्रेषित कर रहे हो कि मेरे अन्दर कुछ नहीं है। वीतरागी तो कभी कुछ नहीं कहता कि मेरे अन्दर कुछ नहीं है, वीतरागी कभी नहीं कहता कि मेरे अन्दर कुछ है। बोलो, जो है सो है। जब-जब कोई व्यक्ति ये कहे कि मेरे अन्दर कोई दोष तो नहीं है, आप विश्वास रखना, वह आपके मुख से अपनी प्रशंसा सुनने की आकांक्षा रखता है। यही महादोष है। बेटे की माँ के घर में आते ही माँ की प्रीति में कुछ अन्तर आया था कि नहीं ? ठीक, आप कहो कि नहीं आया था, पर इतना बताओ कि आपकी प्रीति का विस्तार वहाँ हुआ था कि नहीं ? हुआ था। प्रीति बढ़ गई थी। जैसा गाढ़ा पहले था, वैसा गाढ़ा नहीं बचा। माँ की प्रीति में गाढ़ेपन में न्यूनता आ गई। कैसे ? जब ज्ञानी के यहाँ चौका लगा था, उसने एक महाराज की व्यवस्था की थी। उसके भाग्य ने जोर मारा, उसके यहाँ दो महाराज पड़ग गये। ये मातायें बड़ी ज्ञानी होती हैं। अब क्या करें ? सिर्फ एक ग्लास दूध था, दोनों महाराजों को एक-एक ग्लास भर कर ही चलाना है, तो वह कहेगी—ठहरो भाई! दूध तो फेटने दो। भाषा बड़ी मधुर है, लेकिन वास्तविकता यह है कि पानी तो मिलाने दो। जैसे दो अतिथियों के पधारने पर गाढ़े दूध को पतला कर दिया जाता है, ऐसे-ही जब तुम्हारी प्रीति माँ के प्रति गाढ़ी थी, पत्नी आ गई, सो वह प्रीति पतली हो गई। ये है रासायनिक क्रिया। इसलिये जब आप जिनदेव की पूजा करने जाते हो, तो उस वेदी पर किसी की फोटो मत रखना, कोई चित्र मत रखना, मात्र प्रतिष्ठित प्रतिमायें ही रखना।

खजुराहो विश्व का सबसे सुन्दर दृष्टान्त है। श्री जिनालय के चारों ओर अनेक पुत्तलियाँ मिलेंगी, अनेक रूप दिखाई देंगे, लेकिन गर्भगृह में एकमात्र जिनबिम्ब दिखाई देगा। जिनके चित्त चंचल हों, वे बाहर घूम कर आओ और जब परिणामों में विशुद्धि हो जाये, तब गर्भगृह

में जिनदेव को देखने जाओ। ऐसे-ही मुमुक्षु! जितने सुन्दर तुम्हारे तन हैं, इनकी सुन्दरता को जब तक तुम देखते रहोगे, तब तक निजनाथ को नहीं निहार पाओगे। जब निजनाथ को देखने जाओगे, तो निज घट कहेगा कि तुम्हारा एकमात्र भगवान्-आत्मा है। भैया ! प्रीति बट जाती है। जब प्रीति बट जाती है, तो आनन्द भी बट जाता है। वस्तु में कुछ भी नहीं है, व्यक्ति में कुछ भी नहीं है। आनन्द है तो तेरे राग में है, क्लेश है तो तेरे द्वेष में है। परन्तु महादोषों का कर्ता राग ही है।

भगवान् की प्रतिमा की वेदी पर आज से कागजों की फोटो मत रखना। जो एकाग्रता वीतराग प्रतिष्ठित प्रतिमा में आने वाली थी, आप चित्रों में चले गये। जैनशासन में प्रतिष्ठित प्रतिमा की ही पूजा है, कागजी तस्वीरों की पूजा नहीं है। इस मिथ्यात्व को रोको। भगवान् की फोटो भी प्रतिष्ठित वेदी पर नहीं रखना, आचार्य या मुनि की तो छोड़ो। यदि फोटो पूज्य होती, तो हमें पंचकल्याणक की क्या आवश्यकता थी ? ये तस्वीरें तो मात्र प्रतीक हैं। सम्मान है, आदर है। अर्घ तो मात्र प्रतिष्ठित प्रतिमा को ही चढ़ता है या फिर अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु साक्षात् विराजमान हों तो उनकी पूजा करो। फोटो में सूरिमंत्र नहीं होता है, न प्राणप्रतिष्ठा होती है। कागजों की पूजा नहीं है, पूजा तो प्रतिष्ठित प्रतिमा की होती है। वह प्रतिमा भी स्वर्णमयी हो, रजतमयी हो, पाषाणमयी हो, धातुमयी हो। न कि प्लास्टिक और कागज की हो। न मिट्टी की, न काष्ठ की हो। ऐसा प्रतिष्ठा-ग्रन्थों में स्पष्ट लिखा हुआ है।

जो वस्तुस्वरूप है, उस पर लक्ष्य रखो। वस्तु ने तुमको कष्ट नहीं दिया, व्यक्ति ने तुमको कष्ट नहीं दिया। कष्ट तुम्हारी दृष्टि ने दिया है। एक व्यक्ति को नग्न व्यक्ति में गुरु दिखाई दे रहे हैं, दूसरे व्यक्ति को नग्न पुरुष नंगा दिखाई दे रहा है, जबकि उस पुरुष को पता ही नहीं है कि हमारे बारे में कौन क्या सोच रहा है। जिसको गुरु दिख रहा है, वह कर्मों की निर्जरा कर रहा है; लेकिन जिसको नंगा दिख रहा है, वह कर्मबन्ध को प्राप्त हो रहा है। आँख सुधारो, पीलिया रोग के रोगियो! तुम चूने से पुती दीवाल को पोतने मत जाओ, आँख के पीलिया रोग को ठीक करो। पीलिया रोगी जिसे देखता है वह पीला ही दिखता है। पीलिया रोगी को पीला दिख रहा है, उसका तात्पर्य दीवाल पीली नहीं है। ऐसे-ही जिस जीव को अपनी दृष्टि से वस्तु जैसी दिखती है, वस्तु वैसी नहीं है। वस्तु तो जैसी है, वैसी है। व्यक्ति दोष किसे देता है? दीवाल को दोष देता है। ज्ञानी दीवाल को दोष मत दो। एक समय में आकाश में एक ही चन्द्रमा उदित होता है, लेकिन जिसकी आँखों में रोग हो जाये, उसे एक चन्द्र के दो

चन्द्र दिखते हैं। अथवा जिसके जाने का समय आ जाये, उसे दो चन्द्र दिखते हैं। अब वह छः महीने में विदा होनेवाला है। एक पुरुष के दो पुरुष दिखने लग जायें, तो समझ लो कि यह जीव चंद दिन का मेहमान है। आकाश में चन्द्रमा देखते रहना। जब दो चन्द्रमा दिखने लग जायें, तो सबसे क्षमा माँगना प्रारम्भ कर देना। जब सूचना मिल चुकी है, चलती विरिया है, तो क्षमा माँग कर चले जाओ। आयुर्वेद में रिष्ट है। हमारे यहाँ रिष्ट का भी ग्रन्थ है। रोगी का उपचार रिष्ट देखकर करो। अब रोगी को दो चन्द्र दिखने लग गये, बस, अब घर की व्यवस्था को व्यवस्थित मत करो, अब निज-घर की व्यवस्था को व्यवस्थित करो। **जिनमें राग है, वे तुम्हें नहीं राख पायेंगे।** यदि तू कहता है कि मैंने सारे पाप छोड़ दिए, अपराध छोड़ दिए, बस थोड़ा छोटे भैया से राग है। **ज्ञानी! राग ही जीवन का सबसे बड़ा अपराध है। जितने अपराध होते हैं, सब राग में होते हैं।** कैसा अभागा बेटा होगा जो अपने बेटे की माँ के राग में अपनी माँ को लात मार रहा हो? उस पापी से पूछो, वह कैसा होगा ? ऐसी भूलें कर चुके हो तो आज प्रायश्चित्त ले लेना और बूढ़ी माँ के चरणों में जाकर क्षमा माँग लेना। चली गई, तो बेटा! तुम किससे क्षमा माँगने जाओगे? पैसे के राग में पिता को धक्का मार दिया।

इस वर्ष एक ऐसी घटना हुई। एक नगर में अरबपति खरबपति पिता मुझे रोज यमुना के तट पर मिलते थे। गाड़ी लिये बेचारे खड़े रहते थे कि अब महाराज जी आ रहे होंगे। एक दिन वे दादा नहीं आये। भाई! आज क्या बात हो गई? आँखों में आँसू टपकाते हुये, तो कुछ मुस्कराते हुये, बोले-महाराज! संसार की लीला कैसी है? मैंने कहा, 'क्या हो गया ?' भाई-भाई हिस्से के लिये लड़ पड़े। यद्यपि पिता ने बेटों की फेक्ट्रियाँ भी अलग-अलग कर दी थीं। जरा से मकान के एक कक्ष के प्रति विसंवाद हो गया, तो वृद्ध पिता कहने लगा-बेटा! इतना सबकुछ आपके लिये ही तो है। अब मैं कितने दिन का मेहमान हूँ? पिता इतनी-सी बात ही बोल रहा था, लेकिन भनभना कर ज्वालामुखी निकल पड़ी। उसको इतना विवेक नहीं रहा, उस वृद्ध ससुर को बहू ने धक्का मार दिया। बेचारा ऐसा गिरा, वहीं अरहन्त नाम सत्य हो गया। जो नियत था, सो हो ही गया। अब बताइये, वह बहू अपनी संतान को क्या उत्तर दे सकेगी? अपने पीहर जायेगी तो क्या उत्तर देगी ? बहू ने धक्का दे दिया। आप तो ऐसे ही बोलते रहते हो, इतनी-सी बात कही और बेचारे को हृदयघात हो गया। इसलिए बहुओ! ध्यान से सुनना-ये धन धरती का धरती पर रह जायेगा, परन्तु तू अपने सास-ससुर की हत्या के पाप को प्राप्त हो जायेगी। आज से नियम ले लो। करो कायोत्सर्ग। नहीं सताना किसी को।

दुनियाँ न दिखे, तो आप मुझे ही देख लो। इन साधुओं को देख लो। मैं आपके यहाँ एक दिन भी व्यवस्था बनाने नहीं आया हूँ, फिर भी व्यवस्था आगे-आगे दौड़ रही है कि नहीं ?

तुम्हारा भाग्य है तो छप्पर फाड़ कर गिरेगा और भाग्य नहीं है तो हाथ में आया हुआ भी नष्ट हो जायेगा। किलों महलों को देखो, सबके दिन एक-से नहीं होते। यहाँ एक महल था, आज दिखाई नहीं दे रहा है। बिक गया। वहीं किनारे में एक दुकान बनी हुई थी, वहाँ एक व्यक्ति हाथ में एक बन्दर लिए हुये था और कुछ माँग रहा था। ये युवा कह रहे थे-महाराज! देखो ये जो भीख माँग रहा है, वह भिखारी नहीं है, यह इस नगर का राजा है और आज अपने ही महल के नीचे भीख माँग रहा है। राजा भी रंक हो जाता है और रंक भी राजा हो जाता है। तुम कब रोडपति बन जाओ, कब करोड़पति बन जाओ, कोई नियत नहीं है। इसलिए जमीन पर चलना सीखो, आकाश में उड़ना मत सीखो। भवनों को देखकर कभी अहं मत करना। ये जीव वृद्धावस्था में ऐसा लग रहा है, युवावस्था में कितना सुन्दर होगा? वो सुन्दरता कहाँ चली गई ? जो पुद्गलमयी द्रव्य है, उसका धर्म पूरण-गलन है। उसका काम तो सड़ना-गलना है ही। इसलिए पुद्गल में पूर्ण मत हो जाओ। पुद्गल से भिन्न जो चैतन्य द्रव्य है, उस पर दृष्टि रखो। मेरा लक्ष्य इन भवनों/मकानों में क्यों नहीं जा रहा है? क्या कारण है? क्योंकि हजारों वर्ष पुराने भवन मुझे धराशायी होते दिख रहे हैं। जिन्होंने बनाये, मैंने देख लिए, राग का बन्ध करके चले गए; परन्तु जिनमें राग देकर गये थे, उनकी राख निश्चित है। इसलिए जितना जीवन जीना है, रहने को तुमको मिल जायेंगे और बनाकर भी जाओ तो मात्र यह सोच कर बनाना कि इसी पर्याय में पूरा रह पाओ, कोई नियत नहीं है। जन्मे झोपड़ियों में, मरने को महल बना रहे हैं। ऐसा काम करो जिससे न जन्म हो न मरण हो, एकमात्र सिद्धालय के लिए गमन हो। सन्तति से सन्तति नहीं चल रही, तेरे पापकर्मों से सन्तति चल रही है। मेरे कर्म झर जायें, मेरे कर्म सुधर जायें, ये दुनिया चिल्ला रही है। मेरी करतूती सुधर जाये ये क्यों नहीं बोलते हो ? कर्मों ने कर्म नहीं बाँधे, तेरी करतूती ने कर्म बाँधे हैं। ये जीव कर्मों को दोष देता है। अरे ! जड़ कर्मों को क्यों दोष देते हो? उन बेचारों ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है ? वे तो ईमानदार हैं। जैसे भावकर्म करोगे, वैसे द्रव्यकर्म बँधेंगे। अपने भावकर्म को बदल दो।

कीचड़ पानी से होता है और वह कीचड़ पानी से ही साफ भी होता है। जिस पानी से कीचड़ होता है, उसी पानी से कीचड़ धुल जाता है। वैसे-ही जिस चित्त ने पाप का

बन्ध किया है, उसी चित्त से पाप को ठीक किया जाता है। जिस प्रज्ञा से बँधा है उसी प्रज्ञा से मुक्ति मिलेगी।

पानी से कीचड़ धुलता है, पानी से पानी नहीं धुलता। अशुभ राग से अशुभ राग नहीं धुलता, यदि राग से राग ही तू धोना चाहता है, तो जो बेटा बहू का राग है, उसे निर्ग्रन्थों के चरणों में बदल दे, तेरा पाप धुल जायेगा।

समन्तभद्र स्वामी ने स्पष्ट लिख दिया है–

गृहकर्मणापि निचितं कर्मविमार्ष्टि खलु गृहविमुक्तानाम्।
अतिथीनां प्रतिपूजा रुधिरमलं धावते वारि॥114/र.श्रा.॥

गृहस्थी के पंक में जो पहले से अनेक प्रकार का पापबन्ध करके बैठा हुआ है, उस कीचड़ को कैसे धोयें ? **जैसे रुधिर से दूषित वस्त्र को पानी से साफ कर लेते हो, ऐसे ही गृहस्थी के संचित पाप को निर्ग्रन्थों की अतिथियों की सेवा करके दूर कर दो।** परन्तु पूर्ण शुद्ध होना चाहते हो तो परमेष्ठी का राग भी छोड़ना पड़ेगा। प्रभु का राग भी तुम्हें प्रभु नहीं बना सकता है, यह ध्रुवसत्य है। परम्परा से मोक्ष का साधन अवश्य हो सकता है, लेकिन साक्षात् तो राग का अभाव ही मोक्ष का कारण है।

ज्ञानी ! प्लेटें-थालियाँ, परिग्रह बढ़ाने को नहीं बाँटना। तुम तो बस छन्ना पकड़ा देना कि लो, पानी छानना सीखो। इस नगरी में है कोई राम जो पानी छानकर पियेगा जीवन भर? दशरथ जी ने स्वयंवर रचवा दिया। धनुष वाण तोड़ने के लिये जितने क्षत्रिय आये, वे सब तोड़ ही नहीं पाये, तो जनक की आँखों में आँसू आ गये। जनक बोले, 'मुझे नहीं था मालूम कि यह पृथ्वी क्षत्रिय विहीन हो गई है। यदि ऐसा मुझे मालूम होता, तो मैं स्वयंवर ही नहीं रचाता। जनक के आँसू कम-से-कम श्री राम ने खड़े होकर पोंछ दिए। अच्छा हुआ, यहाँ कई श्रीराम हो गये हैं। जब तत्त्वचर्चा में इतना आनन्द आता है, तो तत्त्व में जीने में कितना आनन्द आयेगा?

महादोष का कारण राग है, इतना तो समझ में आ गया। जहाँ परवस्तु को ग्रहण करने का भाव है, वहीं चिन्ता है। परवस्तु को छोड़ देता है, वहीं चिन्ता समाप्त हो जाती है। यदि शरीर की ज्यादा शक्ति नहीं है, तो जितनी शक्ति है उतना करो। लेकिन करो। वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम को देखकरके साधना करो और क्षयोपशम है तो उसकी चोरी मत करो। जितनी सामर्थ्य है, उतनी साधना करो। सामर्थ्य तेरी उपवास करने की है और दो समय

भोजन कर रहा है मस्त, तो एकासन ही कर ले भैया। कुछ लोग तो ऐसे हैं कि जो चार-पाँच दिन भी उपवास कर लें तो पता ही नहीं चले।

ज्ञानी! विश्वास रखना, अल्प खानेवाला जल्दी ऊपर नहीं जाता। जितने जल्दी ऊपर जाते हैं, वे पेट से अधिक खानेवाले जाते हैं। जिन्हें जीवन खाने मात्र को ही मिला है, वे सबसे ज्यादा बीमार होते हैं। जो जीवन जीने के लिये खा रहे हैं, वे लम्बे समय तक जीते हैं। इसलिये साधुपुरुषों को राग छोड़ देना चाहिये। अनर्थ हो रहे हैं, ये कौन करवा रहा है ? उज्जवल कुलों में कलंक कौन लगवा रहा है ? फिर बेचारा बैठा रहता है मंदिर के द्वार पर। क्यों ? पूजा ही नहीं कर सकते। क्या हो गया ? एक मुहूर्त के राग ने पूरा जीवन बर्बाद कर दिया। सर्वाङ्ग सुन्दर तो दिख रहा हूँ, फिर भी पूजा नहीं कर पा रहा हूँ, अभिषेक नहीं कर पा रहा हूँ, निर्ग्रन्थ योगी के हाथ पर ग्रास नहीं रख पा रहा हूँ। क्या मतलब ? जिसके हाथों में छुरी होती है, उसकी बेटी को घर लेकर आ गया हूँ भावुकता में। वहाँ अब क्या कर सकते हैं? पर के चेहरे के राग में उलझ करके उस घर को भी छोड़कर आ गई हूँ। जिस घर में श्रीजी का अभिषेक देखने को मिलता था, आज मांस के टुकड़े देखने को मिल रहे हैं।

हे माताओ! यदि धर्म की रक्षा करवाना है तो इन बेटे-बेटियों की रक्षा करो। इनके राग कहाँ जा रहे हैं, उस पर दृष्टिपात करो। कौन किसकी रक्षा करेगा? अपन लोग तो वीर हैं, अपनी स्वयं रक्षा करें।

युवाओं से कह रहा हूँ, क्योंकि ये ही तो धर्म को आगे ले जाने वाले हैं। वृद्ध दादा कहते हैं कि जैसे हम भरी सभा में मुस्कराते रहे हैं, तुम इतना ध्यान रखना कि हम सभा के बीच बैठने की ताकत रखते रहें। एक ऐसा दम्पत्ति हुआ, देखो काल का योग, वीतरागी मुनिराज के चरणों में युवा जाता है, कहता है, स्वामी ! मैं जीवनपर्यन्त शुक्लपक्ष का ब्रह्मचर्य का पालन करूँगा। महाराज ने उस भव्य को कहा—तथास्तु। एक कन्या आती है, नाथ ! इस जीवन को पवित्र करने के लिये मैं कृष्ण पक्ष का संयम धारण करती हूँ। तथास्तु। विधि को नहीं था पसन्द दोनों का सुख। ऐसा नियोग बना कि उन दोनों की शादी हो गई एकसाथ। जब एक दूसरे के साथ मिलन का समय आता है, कृष्ण पक्ष था, पत्नी हाथ जोड़कर कहती है—स्वामी! क्षमा करना। यह कृष्ण पक्ष चल रहा है। मैंने निर्ग्रन्थ वीतरागी योगी के चरणों में व्रत लिया है।

प्राणों का अन्त भी क्यों न हो जाय, लेकिन गुरु की साक्षी में जो व्रत लिया है, उसे भङ्ग मत कर लेना। **प्राण जाने पर तो तत्क्षण दुःख होगा, लेकिन जिसने व्रत भङ्ग कर दिया,**

उसको भव-भव में दुःख होगा।

धन्य हो उस युवा पति को। कहता है, देवी ! आप जाओ, मैं ऐसा पापीजीव नहीं हूँ कि व्रत को भङ्ग करूँ। आप जाओ। शुक्ल पक्ष आया, स्वामी मुस्करा रहा था। पत्नी आती है। हे देवी! तुझे मालूम होना चाहिए कि मैंने तेरे व्रत का पालन कराया था। मैंने वीतरागी दिगम्बर मुनि के श्रीपादमूल में शुक्ल पक्ष का नियम लिया है। मेरा अभी शुक्ल पक्ष का नियम चल रहा है। पत्नी मूर्छा खाकर गिर गई। ओह! यह क्या विधि का विधान है? मूर्छा भङ्ग होने पर कहती है—स्वामी ! मेरे कारण अपना सुख मत छोड़ो। भारतीय संस्कृति में एक पत्नी का एक ही पति होता है, लेकिन आप तो दूसरी शादी करवा सकते हो। पति कहता है, हे देवी ! तू नारी होकरके, अबला होकरके व्रत का पालन कर सकती है, तो मैं पुरुष हूँ, नपुंसक कायर नहीं हूँ, मैं अपने पुरुषत्व का परिचय दूँगा, मैं शादी नहीं करूँगा। वे थे सेठ विजय और सेठानी विजया। जिनने जीवनपर्यन्त भाई-बहिन-जैसा जीवन जिया और एक निर्णय कर लिया था कि यह रहस्य किसी को मालूम नहीं चलना चाहिए। जिस दिन यह रहस्य खुल जायेगा, उस दिन मैं दिगम्बरी दीक्षा ले लूँगा। एक श्रावक गया-मैं व्रतियों को आहार कराना चाहता हूँ। मुनिराज कहते हैं कि जिसने दाम्पत्य जीवन में अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन किया हो, ऐसे विजय-विजया को भोजन कराओगे तो सौ त्यागियों को आहार कराने का पुण्य मिलेगा। वो उनके घर पहुँचे। पिता जी के सामने रहस्य खुल गया। आज तक उन्हें पता ही नहीं था कि बेटे-बहू कैसे रह रहे हैं। उसी दिन वे मुनि-आर्यिका बन गये। ऐसे-ऐसे महान् जीव इस भारत की भूमि पर हुए हैं। सीमन्धर स्वामी के कैवल्य में झलक रहा होगा कि इतने जीव जिनवाणी सुन रहे हैं। अपन सब पहले मिल चुके हैं, इसलिए फिर से मिले हैं। अब आगे वहीं सिद्धालय में मिलना है। केवली भगवान् होते तो बता देते कि अपन कौन-कौन हैं। चिन्ता नहीं है, अपन स्वयं केवली बनेंगे।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।



गुण पूज्य होते हैं

गुणाः सुपूजिता लोके, गुणाः कल्याणकारकाः।
गुणहीना हि लोकेऽस्मिन्, महान्तोऽपि मलीमसाः॥ 273/सा.स.॥

अन्वयार्थ—**(गुणाः लोके सुपूजिताः)** गुण ही लोक में पूजे जाते हैं **(गुणाः कल्याण-कारकाः)** गुण ही कल्याणकारी होते हैं **(हि अस्मिन् लोके)** निश्चय से इस लोक में **(महान्तः अपि गुणहीनाः मलीमसाः)** महान् पुरुष भी यदि गुणहीन हो तो मलिन या नीच माने जाते हैं।

सद्गुणैः गुरुतां याति, कुलहीनोऽपि मानवः।
निर्गुणः सुकुलाढ्योऽपि, लघुतां याति तत्क्षणात्॥274॥

अन्वयार्थः (कुलहीनः अपि मानवः) कुलहीन मनुष्य भी क्यों न हो **(सद्गुणैः गुरुतां याति)** यदि उत्तम गुणों से विभूषित हो तो महानपने को प्राप्त हो जाता है **(सकुलाढयःअपि)** यदि कोई ऊँच कुल का धारी हो **(निर्गुणः)** परन्तु गुणरहित हो तो वह **(तत्क्षणात् लघुतां याति)** उसी समय हीन माना जाता है।

भावार्थ—हे भव्यात्मन् ! लोक में गुण ही पूज्य होते हैं, गुण ही कल्याणकारी हैं। गुणहीन कोई भी हो, वह मलिन ही है।

॥ सद्-देशना ॥

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज सारसमुच्चय जी में आत्मा के निज गुण की व्याख्या कर रहे हैं। मुमुक्षु होने के लिये पूजा की आवश्यकता नहीं है। **पूजा की आकांक्षा व्यक्ति को कभी पूज्य नहीं बना सकती। पर से अपमान प्राप्त करना हो तो निज के सम्मान की भावना प्रारम्भ कर दो। पर से अपमानित होने की इच्छा है तो अपने सम्मान को पाने की भाषा प्रयोग करो।**

ज्ञानी ! पर से सम्मान प्राप्त करना है तो पूज्यों का सम्मान करना प्रारम्भ कर दो। स्वयं को महान् बनाने की चेष्टा है, आकांक्षा है, महान् बनने की भावना यदि आपके अन्दर गूँज रही है, तो कभी महान् नहीं बन पाओगे। उच्च बनने के परिणाम ऊँचे नहीं बनाते हैं, उच्च परिणति ऊँचा बना देती है। पूजा की इच्छा पूज्य बनाती होती तो जगत् में सर्वत्र मंदिरों की आवश्यकता ही नहीं होती, क्योंकि घर-घर में मंदिर होते और घर-घर में भगवान् आप ही

लोग होते। पूजा पूज्य नहीं बनाती है, पूज्य तो गुण बनाता है। महान् गुण बनाते हैं। शिखर पर पहुँचने से पूज्य हुआ जाता, ऊँचे बैठने से पूज्य हुआ जाता, तो आपको मालूम होना चाहिए कि जिनालय में जिनदेव विराजमान हैं, उस जिनालय में शिखर है और शिखर के ऊपर कलश है, कितने उत्साह के साथ चढ़ाया, उस कलश पर भी कबूतर बैठा होता है। इस मानसिकता को निकाल देना कि ऊँचे सिंहासन पर बैठ जाने से पूज्य हो जाओगे। ऊँचे आसन से पूज्यता नहीं है। मंदिर के द्वार पर आपने देखा होगा, दो पुत्तलिकायें और होती हैं हर प्राचीन मंदिर पर और मंदिर के द्वार पर पहरेदार खड़े होते हैं। और राजाओं की सभा में राजाओं के आगे भी पहरेदार खड़े होते हैं, राजा पीछे होता है। आगे की पंक्ति की पूज्यता नहीं है, ऊँचे आसन की पूज्यता नहीं है। सारे लोक में कोई पूज्य है तो गुण है। कुछ वे लोग होते हैं, जो जीते हुये भी जगत् में नहीं जीते दिखते हैं।

यदि आस्था होती है, वे आस्था से किसी के पास जा ही नहीं पाते। आज से कभी मन में भाव आये कि मैं भी लोक में उच्च हूँ, ज्ञानी! नहीं, यह मोक्षमार्ग नहीं है। कागजों में छप भी गए, तस्वीरों में आ भी गए, ध्यान रखना, ये तस्वीरें तो उतर कर अलग हो जाती हैं। कागजों पर छपे चित्र मिट जायेंगे। छपने की आकांक्षा है तो तुम ऐसे महान् हो जाओ कि लोगों के हृदय में जाकर विराजमान हो जाओ। तस्वीरों में क्या है ? कलेण्डर तो दीपावली में उतर जाएँगे। एक युग है कि सर्वत्र तस्वीर और फोल्डर युग चल रहा है। चित्रों में धर्म नहीं है। अपने मुख से कहकर तुमने चित्र छपाये तो क्या छपाये? **जिनके चारित्र पवित्र होते हैं, उनके चित्र समाज स्वयमेव छापती है। जिनके चारित्र निर्मल हैं, उनके चित्र हृदयों में छपते हैं।** जिनके चारित्र पवित्र नहीं हैं, उनके तो टी.वी. पर भी बहुत सारे चित्र दिखाई देते हैं। नेता अभिनेता के चित्र।

पिच्छी-कमण्डल से युक्त ही चित्र होना चाहिये। अन्यथा क्या मालूम किसी परमेष्ठी का चित्र है या नेता अभिनेता का चित्र है? खण्डित प्रतिमा पूज्य नहीं होती, ऐसे-ही दिगम्बर मुनि का सर्वाङ्ग पूरा चित्र होना चाहिए। जैन मुनि की कभी भी आधी तस्वीर मत लगाना। पिच्छी-कमण्डल सहित पूरा चित्र होना चाहिए। लोकव्यवहार में मत जीना। स्वप्न में भी अर्द्ध रूप में जिनेन्द्र प्रतिमा दिख जाये, तो अपशकुन होता है, अशान्ति का कारण है, शान्ति करना पड़ेगी। परमेष्ठी खण्डित नहीं होते, अखण्ड होते हैं।

भारत की भूमि पर जो 1400 पिच्छियाँ विचरण कर रही हैं, यदि ये सब एक चातुर्मास में नियम कर लें कि कोई तस्वीरें नहीं छपेंगी, कोई पोस्टर नहीं छपेंगे, विश्वास रखना, इतना

द्रव्य बचेगा कि एक तीर्थ हर वर्ष खड़ा होगा। एक नवीन तीर्थ खड़ा हो सकता है इतना द्रव्य पोस्टरों में नष्ट होता है। कुछ दिन के बाद उतर करके जमीन पर आ जाते हैं। फिर लगता है कि इसका क्या करूँ? यदि ऐसे ही जिनवाणी प्रकाशित कर ली तो एक ग्रन्थ हजारों लोगों के हाथ में जाता है। जैसे एक अरहन्त की प्रतिमा किसी श्रावक ने स्थापित की, उस प्रतिमा की वन्दना करके कोटि-कोटि जीवों ने बन्ध का अभाव किया है। इस जिनालय से कितने श्रावक दर्शन करके चले गए होंगे। एक जीव का भी मिथ्यात्व विगलित हो गया, धन्य हो उस श्रावक के लिए जिसने पारसनाथ स्वामी विराजमान किए होंगे। ऐसे ही जिसने एक ग्रन्थ को प्रकाशित किया, उस ग्रन्थ का अध्ययन करके किसी एक जीव को भी वैराग्य हो गया, तो उसका कल्याण हो गया। तुम्हारी मुद्रा सफल हो गई।

एक बालिका ने 'पंचशील सिद्धान्त' पुस्तक अपने घर में पढ़ ली थी। वहाँ न कोई मुनिराज थे, न आचार्य थे, न कोई त्यागी-व्रती थे। उस बिटिया ने ग्रंथ को पढ़करके अखण्ड ब्रह्मचर्य ले लिया। उसके माता-पिता मेरे पास लेकरके आये, महाराज ! आपने उस ग्रंथ में ऐसा क्या लिखा ? मेरी बेटी शादी नहीं करवा रही है, आप उसे समझा दो। मैंने कहा, 'ज्ञानी ! जिसने पुस्तक पढ़कर ही समझ लिया हो, अब उल्टा समझाने के लिए मेरे पास लाये हो' तो क्या करें महाराज ? 'ज्ञानी ! तुम अपना अहोभाग्य मानो, कि जगत् की बेटियाँ कहाँ भाग रही हैं और तुम्हारी बिटिया ग्रंथ पढ़कर ब्रह्मचर्य धारण कर रही है।' एक परिवार में, एक कुल में , एक समाज में एक त्यागी निकल जाय तो पूरा नगर मुस्कराता है कि मेरे घर में, मेरे नगर में, मेरे वंश में मुनिराज हुए हैं। वे जीव कितने महान् होंगे जिनका बेटा मुनि हो, जिसका भैया मुनि हो। जिसके एक-दो नहीं, निन्यानवें भैया मुनि हो जायें, जिसका भैया चक्रवर्ती हो, कामदेव हो और मुनिराज हो जायें, लगता है कि जितने पुण्यात्मा जीव होते हैं, वे पुण्यात्मा के ही साथ हो जाते हैं। ऋषभदेव से पूछो, स्वयं तीर्थेश। अब आप कहो कि घर-ही-घर में सब हो गया। भूल जाओ इस विषय को। ये तुम्हारी हीनभावना व्यर्थ है। कभी-कभी क्या होता है, मान लो यहाँ कोई कार्यक्रम चल रहा था। एक ने अलग बोली लगा दी, दूसरे भाई ने अलग बोली लेली, पिता जी ने अलग ले ली। किसी को पता नहीं चल पाया। खड़े हुए तो सब घर-घर के चेहरे दिखने लग गए। अब कोई कहता है कि ये तो घर ही घर के हो गए। मेरे मित्र ! तुम बिल्कुल ठीक कह रहे हो। आँखों से देखोगे तो घर ही घर के दिखेंगे, भावों से देखोगे तो जिनके भाग्य प्रबल थे वे घर में एकसाथ इकट्ठे हो गए।

अब कर क्या सकते हो? जो है, सो है। वह तो अच्छा हुआ कि आदिनाथ व नेमिनाथ चतुर्थ काल में मोक्ष चले गये, नहीं-तो लोग कहते कि परिवारवाद चल रहा है। एक भैया तीर्थंकर, एक भैया नारायण, एक भैया बलभद्र और स्वयं का बेटा कामदेव। ये क्या लीला है, सब घर में ही आ गये? ऐसा क्यों नहीं कह रहे हो कि जब ये जीव पूर्व पर्याय में एकसाथ बैठ करके निर्ग्रन्थों अरहन्तों की भक्ति कर रहे थे, उस एकसाथ की गई अनुमोदना का प्रभाव देखो, आराधना का फल कि आज वे इकट्ठे होकर बैठे हैं। ध्यान रखना, जो परिवार धर्ममय जीवन जी रहा है, ये सब पूर्वभव के सम्बंधी हैं। आपके घर भी मुनिराज के आहार हो रहे हों तो किसी को भगाना नहीं, मर्यादा में रखना। आप मुनियों को आहार दे रहे हो, दर्शन कर रहे हो, मैं तो एक-एक मुनि को तरसता था कि कब महाराज मिल जायें, मैं इनको आहार दे लूँ। धन्य है ये छोटे-छोटे बच्चे, जो आज मुनिराजों के कमण्डल पकड़के चल रहे हैं। पण्डित बनारसीदास जी कमरे में कपड़े उतार कर सोचते थे कि ऐसे मुनिराज होते थे।

उन विद्वानों की अपेक्षा आज के बच्चे ज्यादा पुण्यात्मा हैं। ये बातें नहीं करते, हाथ पर ग्रास रखते हैं। पिता कहते हैं, 'बेटा! स्कूल जाओ,' बेटा कहता है, 'मैं महाराज के पास जा रहा हूँ।' भले ही पिता ऊपर से डाँट रहा हो, लेकिन भीतर से बेटे के परिणामों की प्रशंसा कर रहा है 'धन्य हो बेटे ! मैं गिल्ली-डण्डा खेलने को दौड़ता था, तू महाराज का कमण्डल पकड़ने को दौड़ रहा है।

ज्ञानी ! गुण सर्वत्र पूज्य हैं। यहाँ बड़ा नहीं देखा जाता, यहाँ बूढ़ा नहीं देखा जाता, यहाँ बारा नहीं देखा जाता; यहाँ गुण देखे जाते हैं। गुणवान् सर्वत्र पूज्य है। इसलिए बढ़ा सको तो गुण बढ़ाओ। जब पाषाण की प्रतिमा में गुणों का आरोपण कर दिया जाता है, तो वह पूज्य हो जाती है, तो इन चैतन्य प्रतिमाओं में गुणों का आरोपण हो जाये तो ये परमपूज्य क्यों नहीं हो पायेंगे?

जयवन्त हों कुन्दकुन्द, अकलंक, समन्तभद्र, पूज्यपाद स्वामी, जिन योगियों ने जिनवाणी प्रदान की है। कभी भी मूल को मत भूल जाना। वे आदिसागर, शान्तिसागर, महावीरकीर्ति, विमलसागर, देशभूषण। कितने महान्-महान् योगी इस युग में भी हुए हैं। कभी-कभी इनके नाम ले लिया करो। **पूज्य पुरुषों के, गुणी पुरुषों के गुणस्मरण करने से असंख्यात गुणश्रेणी कर्मनिर्जरा होती है।** वर्तमान में विद्यासागर, विरागसागर, विद्यानन्द जितने श्रेष्ठ आचार्य मुनि हैं, श्रद्धापूर्वक इनके नाम भी ले लिया करो।

कोई गाली दे रहा हो तो बुरा लगता है कि नहीं ? लगता है। कोई बड़े अच्छे से कहता है कि 'बैठ जाओ' तो अच्छा लगता है। कोई कहे 'जा, भाग जा' और आँखें दिखाये तो ? बुरा लगेगा। इस बच्चे को भी पता है। अच्छी भाषा बोलो तो कानों में अच्छा लगता है, बुरी भाषा बोलो तो बुरा लगता है। अच्छा लगना कानों से अनुभव किया जा रहा है, अच्छा लगता है परिणामों को।

पर के द्वारा अशुभ शब्द बोले जाने पर परिणाम कलुषित हो जाते हैं और कलुषित परिणाम से अशुभ कर्म का बंध होगा और अच्छे शब्द का प्रयोग होने पर परिणाम निर्मल होते हैं, विशुद्ध होते हैं, उससे कर्मों की निर्जरा होगी, इसलिए पूज्यपुरुषों का नाम मात्र लेने से कर्म की निर्जरा होती है।

स्तुति करने से क्षणमात्र में कर्म छूट कर भाग जाते हैं, जैसे-कि सूर्य को देखते ही उल्लू भाग जाते हैं और मयूर की आवाज को सुन करके कालिया नाग भाग जाते हैं। ऐसे-ही परमेष्ठी, मुनियों के नाम मात्र उच्चारण से कर्मरूपी साँप भाग जाते हैं। इसलिए नाम ही लेना हो तो पूज्यों का लो। अपनी संतान का भी नाम ऐसा रखो जो पूज्यपुरुषों के नाम थे। कम-से-कम अशुभ करने का मन भी करे तो धीरे-से कह देना, ज्ञानी! सुन, तेरा नाम क्या है ? अक्षत! कभी तू टूटे चावल लेकर मंदिर गया तो अपने नाम का स्मरण करना कि मेरा नाम अक्षत है। धन्य है वह पिता, जिसने तेरा नाम अक्षत रखा है। मैं ऐसा काम करूँगा कि कभी खण्डित न हो पाऊँ। अब भगवान् के चरणों में तन्दुल ही चढ़ाऊँगा, टूटे चावल नहीं चढ़ाऊँगा। टूटे चावल वे चढ़ायें जो दरिद्री हों। किसी ने रख दिया चीकू, पिंकी, टिंकू। क्या पागल लोग हैं। किसी के दादा की अंतिम श्वास निकल रही हो, उसको पोते की याद आ जाये, अब वह चिल्लाये चीकू-चीकू-चीकू, तो खोटा ही बंध होगा और अक्षत् नाम लेगा तो कम-से-कम उसे पूजा की तो याद आ जायेगी। जिसके बेटे का नाम वर्द्धमान हो, ऋषभ हो, कहीं धोके से रागवश भी नाम निकल गया, तो भगवान् का ही तो नाम लेगा। संतान का नाम अच्छा हो, जिसमें भगवान् का नाम आये। जीवन में ध्यान रखना, कभी-न-कभी तुम्हें नाम भी प्रभावित करेगा। क्षीण पुण्यात्मा लोगों को श्रेष्ठ नाम भी नहीं मिलते। शुभ संज्ञायें भी, प्रशस्त संज्ञायें भी प्रशस्त पुण्य की सत्ता में ही प्राप्त होती हैं। मानतुङ्ग स्वामी कह रहे हैं 'जितने प्रशस्त परमाणु थे, उन सम्पूर्ण परमाणु से आपकी देह निर्मित हो गई। आपकी देह के सभी परमाणु श्रेष्ठ ही हैं। कर्म नोकर्म प्रतिक्षण आ रहे हैं। इस परिसर में कितने चैनल

की तरंगें हैं ? सभी की। दिख रही हैं क्या? नहीं। लेकिन हैं। बस यही तो भूल चल रही है। लोग यही समझते हैं कि जो दिखता है, वह होता है। अरे! दिखता तो बहुत कम है, होता अनन्त है। **लोक में जितने जेल में भेजे जा रहे हैं, एक भी पापी नहीं जा रहा, अपराधी पहुँच रहे हैं। यदि पापी भेजे जाने लगते, तो जेलों में स्थान न मिले। विश्व में जितने शासक हैं, वे अपराधियों को ही पकड़ पाते हैं, पापियों को तो पकड़ ही नहीं पाते। मात्र एक शासन है जो अपराधी व पापी दोनों को पकड़ता है, उसका नाम जिनशासन है।** जिसके पाप दिख गये, सो हथकड़ियाँ बेडियाँ पड़ गईं। कर्मसिद्धान्त कह रहा है कि जो तुम तन से कर पा रहे हो, वे अपराध तो दिख रहे हैं; परन्तु जो मन में चल रहे हैं, वे पाप तुम्हारे कौन देख रहा है? पंचपरमेष्ठी की आराधना से हट करके किञ्चित् भी तुम्हारे परिणाम अन्यत्र जा रहे हैं, वे सब पाप-परिणाम हैं।

इस कलयुग में तत्त्व को समझाना बहुत सरल है, जिनवाणी को समझाना बहुत सरल हो गया है। इसलिए सरल हो गया है कि आज वैज्ञानिकों ने बहुत सारा विषय जो जिनवाणी में किया हुआ रखा था, वह प्रेक्टीकल में लाकर रख दिया है। इस समय आँख खोलकर देखें तो कोई चित्र दिखाई नहीं दे रहा है, लेकिन यहाँ पर टीवी रख दी जाये तो चैनल खोलेंगे तब वही चित्र दिखने लगेंगे। अब बच्चे को तो निमित्त मात्र सिखा दिया गया है। इस स्थान पर पुण्य वर्गणायें भी हैं, पाप वर्गणायें भी हैं। जिनालय में क्या पाप का बंध हो सकता है? घर में क्या पुण्यबंध नहीं हो सकता? हो सकता है। अनेक चैनलों की तरंगें छोड़ी गई हैं। जो जीव जिस चैनल को देखना चाहता है, उसी को खोलेगा, उसी के चित्र आयेंगे। जो जीव इस जिनमंदिर में आकरके अशुभ भाव करेगा, उसको पापवर्गणायें चिपकेंगी। तरंगें सब विद्यमान हैं। ऐसे-ही जो जीव पुण्यभाव बनाकर आया है, वह पुण्य वर्गणायें ही संगृहीत करेगा। जिसके अशुभ भाव हैं, वह अशुभ वर्गणायें संगृहीत करेगा, उनको अशुभ नामकर्म का ही बन्ध होगा, अशुभ कुल ही मिलेगा; क्योंकि उन्होंने अशुभ ही चैनल खोला है। यहाँ ईश्वर या परमात्मा को खड़ा मत करना। सारी व्यवस्था व्यवस्थित है।

जिनवाणी में क्या-क्या रहस्य हैं और उन्हें आप कैसे बतायेंगे? विज्ञान आज जो अन्वेषण कर सका है, किसी ने कुछ निर्मित नहीं किया, मात्र अन्वेषण है, वस्तुस्वभाव तो त्रैकालिक है। एक छोटे-से मैमोरी कार्ड में 2000 भजन संगृहीत करने की सामर्थ्य है। आँखों से दिख कुछ भी नहीं रहा है। मैं जो बोल रहा हूँ, वह भी आपको दिखाई नहीं दे रहा है, लेकिन कैमरे

के अन्दर सब पहुँच रहा है। पुद्गल में इतनी सामर्थ्य है कि एक पुद्गल अनन्त पौद्गलिक तरंगों को अपने में संगृहीत करने की सामर्थ्य रखता है, पर दिखाई नहीं दे रहा है। ऐसे-ही आत्मा है। इसको पता नहीं चलता है। एक समय में इस कार्ड में तो मात्र दो हजार, लेकिन इस आत्मा में इतनी मैमोरी है कि एक समय में सिद्धों के अनन्तगुणे, अभव्य सिद्धों के अनन्तवें भाग कर्म का बंध इस आत्मा में हो रहा है। समझो या मत समझो, यह तुम्हारी प्रज्ञा की न्यूनता है, लेकिन जब इस कार्ड को कम्प्यूटर आदि में लगायेगा तो सारे-के-सारे आयेंगे। मेरे मित्र ! वर्तमान की पर्याय वीडियो कैमरा है, सीडी बन रही है, पता नहीं चल रहा है कि क्या हो रहा है। जब भविष्य की पर्याय की टीवी खुलेगी, तब सब पता चल जायेगा मैंने क्या किया है?

इस पंचमकाल में जिनवाणी को समझाना बहुत सरल हो चुका है। जरा-से मैमोरी कार्ड में इतने सारे शब्द, इतनी तरंगें संगृहीत हो रही हैं, इसी प्रकार से प्रतिक्षण कर्म-नोकर्म संगृहीत हो रहे हैं। नयनों में आकर्षण भी है, उत्सर्जन भी है। जब वात्सल्य की दृष्टि से निहारते हो तो लोग तुम्हारे पास खिंचे चले आते हैं। जब आँखों से अंगारे निकालते हो तो बेचारे अपने आप भाग जाते हैं। जो वाचना आज जिनालय में चल रही है, यह तो किसी विशिष्ट विश्वविद्यालय की व्याख्या है, आज नहीं तो भविष्य इस पर सोचेगा। जैनियों के पास एक ऐसा अलौकिक ग्रन्थ है जिसका नाम है 'पञ्चास्तिकाय' कुन्दकुन्द स्वामी का। यदि युवा, जो कालेजों में पढ़ाई कर रहे हैं, इस ग्रन्थ को यहाँ बैठकर समझ लें तो विश्व के सारे प्रोफेसर उसके चरणों में यहाँ सीखने आयेंगे। ज्ञानी! तू कहाँ भटक रहा है? एक 'पद्मपुराण' का स्वाध्याय कर लेता। बहुत बड़ी डॉक्टर या प्रोफेसर की उपाधि तेरे पास है। कागजों में लिखी नहीं मिलेगी, लेकिन भीतर पता रहेगा कि मैं कितना समझ चुका हूँ। कभी-कभी पढ़े-लिखे लोगों को देखकर लगता है कि ये पढ़े-लिखे अज्ञानी कहाँ से आ गए। बहुत सारे विषयों का इनको यथार्थ निर्णय नहीं है। लोगों ने अपमान किया, हास्य किया कि ये वस्त्ररहित (नंगे रहनेवाले) लोग इतना सबकुछ कैसे कर गए? ज्ञानी ! ये देह से नग्न थे, लेकिन गुणों से नग्न नहीं थे।

जो गुणों से आवृत हों और देह से नग्न हों, उनको मेरा मस्तक झुकता है। जो देह में पर द्रव्यों से आवृत हों, गुणों से नंगे हों, उनको मैं नमस्कार नहीं करता। किसकी वन्दना ? **'गुणहीनो न वन्दनीयो।'** जो गुणहीन है, उसकी वन्दना नहीं है। चाहे वह श्रमण हो चाहे वह

श्रावक हो, गुणहीन है तो वन्दनीय नहीं है। जो गुणों से भरा है, वह पूज्य है। यदि आठ वर्ष का बालक भी जिनदीक्षा ले लेता है तो साठ वर्ष का श्रावक भी उसको नमोऽस्तु करता है। धन्य हो। कभी-कभी जब बुजुर्ग लोग पैर पड़ने आते हैं तो मुझे शर्म लगने लगती है। सोचता हूँ कि इस युवा के सेवा के दिन चल रहे हैं, जबकि सेवा तो वृद्ध की होनी चाहिये। जितनी बड़ी मेरी उम्र है, उतने इन लोगों के नाती-पोते घूम रहे हैं। जब वे आकर नमोऽस्तु करते हैं, तब लगता है कि विशुद्धसागर! ये तुम्हारी नमोऽस्तु नहीं है, यह रत्नत्रय धर्म की नमोऽस्तु है।

बीना में देश के मूर्धन्य विद्वान् दरबारी लाल कोठिया जी थे। उनसे कहा कि आप तो ऐसे ही हाथ जोड़ लो। बोले—'नहीं, महाराज! एकेन्द्रिय वृक्ष बनूँगा तो जीवन भर खड़ा रह जाऊँगा। आज निर्ग्रन्थ के चरणों में झुक लूँगा तो चारित्र गुण से भर जाऊँगा, तो ऐसे सूखा वृक्ष बनकर नहीं खड़ा रह जाऊँगा। आज निर्ग्रन्थ के चरणों में झुक लूँगा तो चारित्र गुण से भर जाऊँगा। वह विद्वान् हाथ टेक कर कहने लगे भैया! महाराज के पाँव पड़ लेने दो। तब लगा ओ हो! यह विश्व का न्यायशास्त्र का पारंगत विद्वान्। उस समय तो मेरी उम्र बीस साल की ही थी। इस बीस साल के युवा को नमस्कार कर रहा है, किसकी पूजा हो रही है ? लोक में पूज्य गुण है।

जिस जीव को पञ्चपरमेष्ठी में तीव्र आस्था है, घर छोड़कर यहाँ बैठे हो, विश्वास रखना, दुर्गति तो हो ही नहीं सकती। जिस जीव ने स्वप्न में भी अविनय की है, वे तिरने वाले नहीं हैं। जाग्रत में तो छोड़िये, स्वप्न में भी तुम्हारे मन में अविनय भाव जाग्रत हो गया तो अनन्त भव धारण करने की तैयारी हो चुकी है। इसलिए भैया! जहाँ गुण नजर आये, तो सिर टेक लेना और यदि गुण न दिखे, तो मध्यस्थ हो जाना। न तुम्हारी निन्दा न स्तुति, क्योंकि हमें कर्म का बन्ध नहीं करना। अवहेलना किसी की नहीं करना। ज्ञानी ! तुम्हारा बेटा रोज मंदिर जाता हो, तुम कहो बेटा चाय पी लो। वह कहे मैं यह अभक्ष्य द्रव्य नहीं पीता, तो उसके सामने आप चाय पिओगे तो आपको ग्लानि आयेगी और मन करेगा 'बेटा ! मैं व्यवहार से तुम्हें बेटा कह रहा हूँ, परन्तु एक बार तेरे चरणों में बैठकर रो लूँ कि मेरी यह खोटी आदत क्यों नहीं छूट रही है?'

कुछ भी कहो, कोई किसी को झुकता नहीं है, अवगुण झुका देते हैं गुणों के नीचे। मनुष्य-जैसा अहंकारी जीव तो जगत् में नहीं मिलेगा। देवों के जन्म से लोभकषाय होती है, नारकियों के जन्म से क्रोधकषाय होती है, तिर्यञ्चों के जन्म से मायाकषाय होती है और

मनुष्य के जन्म से मान कषाय होती है। जो जीव जिस गति में होता है, जहाँ जैसा क्षयोपशम होता है, वह आत्मा का नहीं है स्यात्। इसलिए उस बल को कैसे बढ़ाया जाय ? पद्धति तो ये है कि या तो टेक लगाई जाती है या खाद डाली जाती है। फल से जब वृक्ष लद जाते हैं, तो किसान टेक लगा देते हैं, यानि उसको बल दे दिया। गुण बढ़े हुये हैं, तन कमजोर है और मानसिक विकल्प बढ़ रहे हैं, तो गुरुचरणों की टेक लगा देना। **जो गुरुचरणों में रहेगा, वह निर्मल साधक अपनी साधना बढ़ा लेगा।** गुरु को तुमने छोड़ा, एक तूफान आया, टेक हटी, वृक्ष नीचे गया।

जो ज्यादा कमजोर वृक्ष होते हैं, उनके नीचे खाद रख देते हैं ताकि वृद्धिमान हो जाये। ऐसे-ही जब गुण कमजोर होने लग जायें, तो आपको जिनालयों व जिनवाणी की आराधना का खाद लगा देना चाहिए। गुणियों के पास बैठोगे तो गुण अपने आप बढ़ेंगे। इन्वर्टर का प्लग बोर्ड में लगा दो तो वह भी बिजली खींच लेगा। बिजली का बोर्ड, पूरे बल्व उसमें लगे हैं, लेकिन बेचारा तनक-सी भी बिजली नहीं खींच पाता है, जबकि इंवर्टर बिजली खींच लेता है। ऐसे-ही जो गुरुचरणों में लकड़ी का बोर्ड बनकर बैठेगा, वह बोर्ड ही बना रहेगा और इंवर्टर बनकर जायेगा तो भर लेगा, बिजली चली गई तो फिर प्रकाश देगा।

ज्ञानी ! गुण-ग्राही दृष्टि होना चाहिए, तो अपने-आप उन्नति होती है।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।



चारित्र की महिमा

सद्वृत्तः पूज्यते देवैराखण्डलपुरः सरैः।
असद् वृत्तस्तु लोकेस्मिन्निन्द्यतेऽसौ सुतैरपि॥275/सा.स.॥

अन्वयार्थ—(सद्वृत्तः) उत्तम प्रशंसनीय चारित्र का धारी मानव **(आखण्डलपुरः सरैः देवैः)** इन्द्रादि देवों के द्वारा **(पूज्यते)** मान-सम्मान को पाता है **(अस्मिन् लोके)** इस लोक में **(असौ असद्वृत्तः)** जो कोई असदाचारी है, निन्द्य आचार का पालने वाला है वह **(सुतैः अपि निंद्यते)** पुत्र के द्वारा भी निन्दित होता है।

भावार्थ—हे भव्य ! देवता भी चारित्रवान् की वंदना-अर्चना करते हैं और जो चारित्र-शून्य है, उसका पुत्र भी सम्मान नहीं करता है।

॥सद्-देशना॥

आचार्यप्रवर कुन्दकुन्द स्वामी ने जिस तत्त्व की प्ररूपणा चौरासी पाहुड ग्रन्थों में की है, उसी तत्त्व को आचार्य कुलभद्र स्वामी ने सारसमुच्चय जी ग्रन्थ में कहा है। वे कभी कुन्दकुन्द स्वामी की दृष्टि लिये दिखाई देते हैं तो कभी अकलंक स्वामी की। भगवत् अकलंक स्वामी भारत की भूमि पर एक ऐसे योगी हुये हैं जिनने शून्यवादियों को भारत से शून्य कर दिया। जगत्-कर्तृत्व की दृष्टि को जिन्होंने अन्तस् से निकाल कर पृथक् कर दिया हो। मेरा कर्ता मैं हूँ, यह दृष्टि परम सत्य है। निगोद भेजनेवाला हूँ तो मैं हूँ, स्वर्ग भेजने वाला हूँ तो मैं हूँ और सिद्धत्व की सिद्धि होगी तो मेरे द्वारा स्वयं ही होगी। यह दोष-दृष्टि (पर-कर्तृत्व दृष्टि) जब तक है, तब तक अज्ञानधारा से आवृत्त चित्त है। **जैसे-जैसे अज्ञान दूर होता है, कषाय मन्द होती है, सत्य दृष्टिगोचर होना प्रारम्भ हो जाता है। पक्ष को लेकर जीनेवाला सत्य में प्रवेश नहीं कर सकता और सत्य का कोई पक्ष नहीं होता और पक्ष में चलनेवाला सत्य को पा नहीं सकता। सत्य तो सत्य है, यह सारे पक्षों से शून्य है।** जो पक्षों से शून्य है, वही सत्य है। जो सत्य है, वही समयसार है, पक्ष से शून्य है।

आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी स्वयं कहते हैं—जो पक्षों से अतिक्रान्त है, वही समयसार है। पक्षों में राग है द्वेष है, सत्य में न राग है न द्वेष है। कोई साधना मत करो, मात्र सत्य को स्वीकार लो, यही साधना है। सत्य इतना विशाल है। जो-जो तुम कर रहे हो, वह सब असत्य है। हिंसा असत्य है। असत्य असत्य ही है। चोरी भी सत्य धर्म नहीं है, असत्य धर्म है। अब्रह्म असत्य धर्म है। परिग्रह असत्य धर्म है। सत्य का जीवन जीना सीख लो, बाकी कुछ करने की

आवश्यकता नहीं है। सत्य का जीवन कठिन है। जीव कितना असत्य जीता है। गिरगिट रूप बदलता है। मेरे मित्र! गिरगिट के रूप बदलने की फिर भी सीमा है, तेरे भावों के कितने रूप बदलते हैं ? बेटे के सामने होता है तो तुरन्त चेहरा बदल लेता है और बेटे की माँ के सामने होता है तो चेहरा कैसा होता है ? और स्वयं की माँ की पास होता है तो कैसा चेहरा होता है? ससुराल जाता है तो कैसा चेहरा बना कर जाता है और मेरे पास आता है तो कितना भोला चेहरा बना कर आता है। जीव कितने रूप रखता है? भेष बदलने को दुनियाँ देख लेती है, भाव को कोई देख नहीं पाता। भेष को बदलने से मोक्ष नहीं मिलेगा, भावों को बदल दो तो मोक्ष मिल जायेगा। आज से गिरगिट को दोष मत देना। उसके तो मात्र प्राकृतिक रूप बदल रहे हैं, परन्तु तुम तो विकृति-पूर्वक रूप बदलते हो। कितने भाव बदल लिए, भाव-संसार पर दृष्टिपात करो। प्रकृति बंध, स्थिति बन्ध, अनुभाग बंध और प्रदेश बंध—इन बंधस्थानों को जीव ने प्राप्त किया है। असंख्यात-लोकप्रमाण जीव के परिणाम हैं। योग से प्रकृति व प्रदेश बंध किया है, कषाय से स्थिति व अनुभाग बंध किया है। **जिनके बारे में मैं अशुभ सोच रहा हूँ, उनका अशुभ मेरे सोच के आधीन नहीं है। आप मेरे बारे में अशुभ सोचने के कर्ता तो हो सकते हो, लेकिन आप मेरा अशुभ करने के कर्ता नहीं हो सकते हो। आप मेरे शुभ सोचने के कर्ता तो हो सकते हो, लेकिन मेरा शुभ करने के कर्ता नहीं हो सकते हो।**

गीत-संगीत-धारायें जगत् के तीर्थों में गूँजती हैं, लेकिन वास्तव में जैन तीर्थों में ऐसा कोई दिन न जाये कि दिन में दो समय स्वाध्याय न हो। यहाँ तत्त्व की ही गवेषणा चलना चाहिए। करने-करने की बातें सारा जगत् कह रहा है, 'कण-कण स्वतन्त्र है' इस बात को कहनेवाला एकमात्र जैनदर्शन है। आप पर के बारे में शुभाशुभ सोच सकते हो, लेकिन पर के शुभाशुभ के कर्ता हो नहीं सकते हो। पर का कर्तृत्व मेरे में निहित हो गया तो मेरा किया कर्म व्यर्थ हो जायेगा। **पुण्यात्मा को कौन गिरा सकता है, पापात्मा को कौन उठा सकता है?** स्व योग्यता ही मेरा कर्ता है, परकर्ता 'कर्ता' नहीं है। भक्ति के आवेश में भक्ति के भाव में आप ऐसा कहने लगते हो महाराज ! अपना ही बेटा है, अपना ही घर है। ये मात्र महाराज से ही बोलते हो, अपने भैया से नहीं बोलते हो कि भैया! अपना ही घर है। क्योंकि वह कहेगा कि लाओ, पहले चाबी दो, अपना ही तो घर है। ये तो व्यवहार की भाषा है कि अपना ही मकान है। महाराज से इसलिए कह रहा है कि वह तो माँगेंगे नहीं। जैसे आप भक्ति में कह देते हो कि- 'महाराज! अपना ही मकान है।' मकान महाराज का नहीं हो जाता है, ऐसे ही

भक्ति की भाषा में बोल देते हो कि- प्रभु! आपसे ही मेरे सब काम बन रहे हैं।' मेरे मित्र! कोई किसी के काम बनाने आता नहीं, स्वयं का भाग्य ही तेरा काम बनायेगा। **स्व पुरुषार्थ शुभ है तो ऊर्ध्वगमन तुम्हारा है। स्व पुरुषार्थ अशुभ है तो अधोगमन तुम्हारा है। स्व पुरुषार्थ मध्यम है तो मध्य स्थान तुम्हारा है।** इसलिये पर-कर्तृत्व को किञ्चित् भी स्थान मत दे देना। आप निमित्तभूत ही कर्ता हो सकते हो। किसी भी द्रव्य का उपादान-कर्ता परद्रव्य होता ही नहीं है। परिणति तो प्रत्येक द्रव्य की स्वयं है। परिणमनशीलता स्व का धर्म है, अपरिणमनशीलता भी स्व का गुण है। यह पेन्सिल पौद्गलिक द्रव्य है, इसमें स्व का परिणमन प्रतिक्षण चल रहा है। इस परिणमन को रोकने में आप समर्थ हैं क्या ? नहीं। यह लेखनी नवीन थी, धीरे-धीरे जीर्णता की ओर जा रही है, इसमें परिणमन चल रहा है। यह परकृत स्व द्रव्य है। आप कह रहे थे कि समय ने बदल दिया। यह रासायनिक दार्शनिक विषय है। समय ने बदल दिया, समय सबको बदल देगा। मेरे मित्र! ये समय पर भी आरोप मत कीजिये। कालद्रव्य पर आरोपण करके आप स्वच्छन्द होने की चेष्टा मत करो। दादा जी! आपके शरीर में जो वृद्धत्व आया है, वह काल ने आपको दिया है, कि आपके शरीर का परिणमन चल रहा था उसे आपने काल से जाना है?

'वर्तना-परिणाम-क्रियाः परत्वापरत्वे च कालस्य।' वर्तना, परिणाम, क्रिया, परत्व, अपरत्व ये कालद्रव्य का कार्य है, कालद्रव्य का उपकार है; लेकिन ध्यान दो, यह भी सौपाधिक निमित्त है। कालद्रव्य ने किसी वस्तु को बदला नहीं है। जो वस्तु बदल रही थी, उसे हमने काल द्रव्य से जाना है। आपके शरीर का परिणमन तो स्वतन्त्र था, वह तो मैं जानना चाहता हूँ। मैं कैसे जान सकूँ कि यह वस्तु कितनी पुरानी हो गई है? काल तो मात्र मापदण्ड है। काल किसी का परिणमन कराता नहीं, काल किसी से परिणत होता नहीं। परिणत हुये को बताने के लिए काल है। इस पेन्सिल में परिणमन चल रहा है, ये सुन्दर दिख रही है, ऐसा मैं सोच रहा हूँ। तो मेरे सोचने से पेन्सिल सुन्दर दिख रही है, कि वह सुन्दर है इसलिए सुन्दर है? ये सुन्दर आपको लग रही है, परन्तु जो व्यक्ति मेरे से चिढ़ता है, उससे पूछना कि पेन्सिल कैसी है? आश्चर्य देखिये। इस पेंसिल का मेरे से कोई सम्बन्ध नहीं है। इस पैंसिल का मेरे में अत्यन्ताभाव है। तब भी यदि किसी को मालूम चल जाये कि ये पेंसिल मेरे शिशु की है, तो इस पैंसिल को देखकर उसके परिणाम देखो कैसे हो रहे हैं। ओ हो! जड़ को देख करके तेरी बुद्धि जड़ हो रही है, तेरा विवेक कहाँ चला गया? शत्रु की पेंसिल तूने तोड़ दी, क्यों ? ये मेरे शत्रु की पैंसिल है। पूरा जीवन इस पागलपन में बरबाद हो रहा है। ये पेंसिल मेरी

शत्रु नहीं है, वह तो स्वतन्त्र द्रव्य है। तूने जीवद्रव्य के द्वेष में, अजीव द्रव्य में द्वेष करके कर्म का तीव्र बंध किया है। ऐसा बंध, ऐसा भाव कितने द्रव्यों को लेकर किया है, उसी से तूने भाव परिवर्तन किया है। 'क्या सुन्दर वस्तु है।' हे अभागे ! वस्तु के रंग को देखकर तू राग के रंग में क्यों रंग रहा है ? तेरा ऐसा उन्मत्त भाव जीवन में अनेक बार देखा। क्या ऐसा उन्मत भाव जीवन में अनेक बार नहीं किया ? किया। ये पेंसिल कभी किसी से नहीं कह रही है कि आप मुझे अच्छा कहो या बुरा कहो। ये न अच्छी है न बुरी है।

किं सुन्दरं किं असुन्दरम्?

विश्व के सम्पूर्ण प्रश्नों का समाधान एक है 'जो है, सो है।' ये अंतिम समाधान है। जिसकी है उसके लिए सुन्दर है। जिसे नहीं मिल रही है, उसके लिए क्या? अपने चित्त को सन्तुष्ट करने के लिए कह रहा है कि दो पैसे की तो है नहीं। अपनी कषाय को सन्तुष्ट करने के लिए पर में भी दोष निकाल रहा है।

सारे विश्व को इस बात को स्वीकार करना ही पड़ेगा कि जब तक सापेक्षता का सिद्धान्त नहीं स्वीकारोगे तब तक तुम जीवन में जी नहीं सकते हो। ये सापेक्षता का सिद्धान्त किसी वैज्ञानिक का नहीं है, ये वीतरागविज्ञान है, तीर्थंकरों की वाणी है। हे ज्ञानी ! तू स्याद्वाद-अनेकान्त के बिना जी भी कहाँ पा रहा है ? क्या सुन्दर है, क्या असुन्दर है? जिसका जिसमें राग है, वह उसके लिए सुन्दर है और जिसका जिसमें द्वेष है, उसके लिए असुन्दर है। वस्तु न सुन्दर है, न असुन्दर है। वह तो जो है, सो है।

ज्ञानी ! देखो पण्डित जी की टोपी कितनी अच्छी लग रही है। इससे उनकी पहचान है। कहीं साधु के ऊपर टोपी आ गई, तो उनकी पहचान चली जायेगी। समझें वस्तुव्यवस्था को। उपादानदृष्टि से कोई द्रव्य किसी का कर्ता नहीं है। आप सुन्दर या असुन्दर कहने के निमित्त-कर्ता हो सकते हो, लेकिन उसका परिणमन तो अपने स्व द्रव्य स्वभाव में चल रहा है, इसका उत्पाद-व्यय स्वतन्त्र है।

इस गाथासूत्र में विश्व के सम्पूर्ण चराचर पदार्थों की व्याख्या हो चुकी है। सम्पूर्ण द्रव्यों की सत्ता शाश्वत है, वह विश्वरूप है। इसका उत्पाद-व्यय स्वतंत्र है। स्वतन्त्र रूप से परिणमन हो रहा है। इसके परिणमन के तुम कर्ता नहीं हो। अपने स्व द्रव्य में, स्वगुण में, स्व पर्याय में प्रत्येक द्रव्य का परिणमन होता है। जो रखा है, विघटित हो जायेगा। जो विघटित हो जायेगा, फिर भी नाश को प्राप्त नहीं होगा। एक रस्सी थी, उसमें आग लग गई, वह नष्ट हो गई या कुछ बचा? राख बची।

इन युवाओं को पता चलना चाहिए कि कालेज में तुम जो पढ़कर आये हो और किसी वैज्ञानिक का नाम लेना शुरू कर दिया है, वह सिद्धान्त उसका है या त्रैकालिक है? रस्सी नष्ट हो गई या राख में बदल गई ? बदल गई। ध्यान रखना - तेरे दादा-दादी, जितने जड़ के सम्बन्ध हों, उनकी मृत्यु में आज से रोना नहीं। कोई रोने लगे कि मैं जा रही हूँ, तो कहना कि रोओ मत, कोई वस्तु नष्ट होती नहीं है, बदलती है। तुम यहाँ अभी सड़े-गले शरीर में हो, अब अच्छे शरीर में पहुँच जाओगे, चिन्ता मत करो। यदि वस्तु बदलेगी नहीं, तो वस्तु 'वस्तु' नहीं बचेगी। परिणमनशीलता। अब वैज्ञानिक भाषा में कहूँ तो ऊर्जा का नाश नहीं होता। आइन्सटीन का ऊर्जा अविनाशिता का नियम। अब मेरा प्रश्न है, जब आइन्सटीन ने जन्म नहीं लिया था, तब कोई वस्तु मरती थी कि नहीं ? बेटा! यह न महावीर का सिद्धान्त है, न आइन्सटीन का सिद्धान्त है। यह त्रैकालिक सिद्धान्त है। उन्होंने तो बताया है। महावीर ने भी बनाया नहीं, बताया है। ऐसे-ही कर्म कोई तीर्थंकर ने बनाया नहीं, बताया है। जैनदर्शन त्रैकालिक (सनातन) है। वस्तुस्वभाव त्रैकालिक है। जिसको आप बदलना कहते हो, उसको मैं दार्शनिक भाषा में कहता हूँ कि परिणमन हुआ है।

पदार्थ नष्ट नहीं होता है, पदार्थ परिवर्तित होता है। ऊर्जा का विनाश नहीं होता है, ऊर्जा परिणमनशील है। इसलिये कहता हूँ कि पढ़ो जैनदर्शन का 'पञ्चास्तिकाय'। आज बच्चों को दृष्टि देने की जरूरत है। वस्तु का विनाश नहीं होता, यह सिद्धान्त त्रैकालिक है। आइन्सटीन ने तो जान लिया है, सो आपको बता दिया है। **वैज्ञानिक कर्ता नहीं होता है, प्रयोक्ता होता है।** इसलिये जगत् में कर्ताशालायें नहीं होती, प्रयोगशालायें होती हैं। ये कितना सत्य बोल रही है? इस स्थान का नाम प्रयोगशाला है। मैं प्रयोग का कर्ता तो हो सकता हूँ, लेकिन पदार्थ का कर्ता नहीं हो सकता। इसलिये लगता है कि आज के वैज्ञानिक जितना सोच नहीं पाये उतना वीतराग वैज्ञानिकों ने बोलकर रख दिया है। चाहे कोई आये, चाहे कोई जाये, न रोना न हँसना। किसी का जन्म हो रहा है तो हँसने की क्या जरूरत है? ठीक है, उसको तो आना ही था। कोई जा रहा है, तो रोने की क्या आवश्यकता? वह तो नियत है, उसको तो जाना ही है। एक भैया सम्मेद शिखर जा रहा था तो उसके परिवारवालों ने उसे मंगल तिलक लगाया कि जाओ, आपकी मात्रा मंगलमय हो। ऐसे-ही ये दादा जी जाने लग जायें तो कहना हे तात्! जब सम्मेद शिखर को जाते हैं तो हल्दी का तिलक लगाया जाता है, अब आप अंतिम यात्रा को जा रहे हो तो रत्नत्रय का टीका लगा देना, तुम्हारी यात्रा मंगलमय हो। कैसे अभागे लोग हैं जो जाती-बिरिया आँखों में आँसू टपका कर अपशगुन करते हैं। डॉक्टर बोल दे कि अब

जानेवाला है तो तुम वहीं रोने लगते हो, जबकि वहाँ तो आपको मंगलकलश दिखाना चाहिये कि अब तुम्हारे जाने का समय है, अब हम लोगों के बीच से आप जाओगे और किसी दूसरे के घर को शोभायमान करोगे। चले जाओ, अच्छे से जाना। क्या ऐसा बोल सकते हो? यदि नहीं बोल सकते हो, तो तुम उसके शत्रु हो, उस बेचारे को अपशगुन करा रहे हो।

'मोहेन-संवृतं ज्ञानं स्वभावं लभते न हि।' मोह से ढका हुआ ज्ञान स्वभाव को प्रकट होने नहीं देता। ओहो! मोह की महिमा तो देखो सम्मेद-शिखर हो आया, गिरनार चम्पापुर, पावापुर सारे तीर्थ की वन्दना कर आया, चारों धाम घूमकर आ गया, फिर वहीं अपने नगर की गलियों में आ गया। क्या करें? यहीं अच्छा लगता है। हे राग! धिक्कार हो तुझे। समयसार की शुद्ध रासायनिक तत्त्व की व्याख्या में कहा है। वैज्ञानिक लोग अधिक हर्ष-विषाद को प्राप्त नहीं होते, क्यों? उन्हें भूत व भावी पर्याय झलक रही है कि इस द्रव्य में ऐसा द्रव्य मिला लेंगे तो ऐसा हो जायेगा। समझ रहा है। ऐसे-ही वास्तविकता समझिये। साधुदशा शुद्ध वैज्ञानिक की दशा है। कोई विकल्प नहीं, अन्वेषण करो। वैज्ञानिक जड़द्रव्य का अन्वेषण कर रहा है, ये साधु चेतन का अन्वेषण कर रहे हैं। असमान जाति पर्याय को पृथक् करो, मात्र स्वरूपदृष्टि पर लक्ष्यपात करो। जो व्यक्ति शक्कर का कारखाना लगाये हुए है, वह हर समय मुस्कराता है। यहाँ की कोई वस्तु व्यर्थ नहीं जाती। रस निकाल लिया सो उसकी शक्कर बन गई, छिलके से कागज बना रहा है, उसका कचड़ा मिट्टी में जाकर खाद बन रहा है। कुछ नहीं, प्रत्येक द्रव्य का परिणमन चल रहा है। कोई वस्तु व्यर्थ जाने वाली नहीं है। ऐसे-ही तत्त्वज्ञानी योगी देखता है कि युवावस्था भी जा रही है, वृद्धावस्था आ रही है। उसे मालूम है कि जो-जो आ रहा है, वह जाने के लिये आ रहा है, फिर भी जायेगा नहीं, त्रैकालिक है। मिट्टी को मिटते नहीं देखा क्या ? **लोंदे के रूप में चाक पर पहुँची तो लोंदा मिटा, घट बना। मिट्टी लोंदे के पर्याय से न मिटती तो घट कैसे बनता ? मिट्टी मिट ही गई होती तो घट बनता किससे ? जो मिटते-मिटते भी नहीं मिट रही है, उसी का नाम तो मिट्टी है।** वस्तु का नाश नहीं होता है, वस्तु का परिणमन होता है। इसलिये जैन तत्त्व के अनेक पक्ष हैं—एक क्रिया पक्ष, एक आचरण पक्ष, एक सैद्धान्तिक पक्ष, एक दार्शनिक पक्ष। आप मात्र एक पक्ष को समझ लेते हो, उसे जैनदर्शन मान लेते हो, जबकि यह जैनदर्शन की नीति नहीं है। क्रिया पक्ष में आप तत्त्व पक्ष को क्यों नहीं देखते हो? सोले के वस्त्रों से भोजन करना, वहाँ परिणामों को देखना। छुलने के बाद भोजन करना, फिर परिणामों को देखना। शुद्ध सामग्री लेकर और शुद्ध वस्त्रों से आप मुनिराज को आहार देने गये। उस समय

अपने परिणाम देखना। कहीं रास्ते में छू जाये तो फिर 'दें कि नहीं? अब जो होगा देखा जायेगा।' ऐसा करके आप देने पहुँच भी गये, विश्वास रखना, साधु के हाथ में ग्रास रखकर आ भी जाओगे, लेकिन निज के परिणामों की पवित्रता तुम नहीं बना पाओगे। मन तो कहेगा कि पुण्य तो किया, लेकिन अपुण्य के साथ। मायाचारी के साथ मैं दान देकर आया हूँ। यदि असोला में दे भी आया हूँ तो उसका फल कुभोग भूमि में जाना पड़ेगा। परिणामी है, अपरिणामी है। शब्द पर ध्यान दो। प्रत्येक द्रव्य परिणमन-स्वभावी है, प्रत्येक द्रव्य अपरिणमन-स्वभावी है। परिणमनस्वभावी नहीं होगा तो कूटस्थ हो जायेगा, सान्त हो जायेगा। अपरिणमनस्वभावी होगा तो नष्ट हो जायेगा। बौद्ध हो जायेगा, क्षणिक हो जायेगा। सांख्य दर्शन द्रव्य को कूटस्थ मानता है। बौद्ध दर्शन द्रव्य को क्षणिक मानता है। **जैनदर्शन स्याद् नित्य, स्याद् अनित्य। पर्यायदृष्टि से अनित्य है, द्रव्यदृष्टि से नित्य है। रस्सी जल गई, अनित्य है। अनित्य न होती तो जलती कैसे? अनित्य है। परिणमन हो गया, नित्य है। नष्ट हो गई होती तो राख किसकी बनती? वस्तुत्व दृष्टि से अपरिणमनशील है, पर्यायदृष्टि से परिणमनशील है। इसलिये न हर्ष न विषाद।** रोना किसलिये जब मुझे ही मरना है? अपने मरने पर तो रोने नहीं आऊँगा, तो दूसरे के मरने पर क्यों रोऊँ ? जो चला जाता है, उसकी तो व्यवस्था बन चुकी होती है। वह तो स्वर्ग में मुस्करा रहा होगा, तुम यहाँ लाश देखकर रो रहे हो। इसलिए बिल्कुल नहीं रोना। बस, जो है सो है।

यदि वास्तव में उस जीव के प्रति प्रीति है, तो मरने पर रोकर मत दिखाओ, जब तक जी रहा है तब उसकी सेवा करके दिखाओ, तो समझ में आये, वह जाने कि मेरे बेटा ने मेरी सेवा की है। वृद्ध माता को तुम भूल गये, वह तुमको हर अवस्था में गोदी लेकर मंदिर जाया करती थी, आज तुम उसको मंदिर नहीं ले जा सकते हो। उधर ज्ञानी कहता है मैं तो चींटी की भी रक्षा करता हूँ और बूढ़ी माँ को पानी का ग्लास भी नहीं देता हूँ। लेकिन भैया! तेरे चींटी की रक्षा तभी समझ में आयेगी जब इतनी बड़ी माँ का भी ध्यान रखेगा, पिता का भी ध्यान रखेगा, व्यवहार दृष्टि से। और निश्चय से तो कौन किसका है? जो है, सो है। देखो भैया! वस्तु तो निश्चय ही है, परन्तु जो कुछ तुम कर रहे हो और जो कह रहे हो कि घी का घड़ा, पानी की बाल्टी, तो बाल्टी पानी की है या प्लास्टिक की ? प्लास्टिक की। तो तेरा ज्ञान झूठा है कि नहीं ? है। तो व्यवहार तो झूठा ही होता है, निश्चय तो निश्चय है। जो है, सो है। लेकिन बिना व्यवहार के तुम जी नहीं सकते हो, इसलिये पानी की बाल्टी भी सत्य है और प्लास्टिक की बाल्टी भी सत्य है। समयसार गाथा संख्या 11 जिस दिन समझ में आ जायेगी,

उस दिन ज्ञानी अच्छे से मुस्करायेगा। व्यवहार और निश्चय ये तो वस्तु को कहने की शैली हैं। तुम्हारा पड़ौसी व्यवहार से मनुष्य है और निश्चय से जीवद्रव्य है। जीवद्रव्य कैसा है ? जो है, सो है। कुन्दकुन्द स्वामी ने बहुत सोच कर लिखा है, अन्त में कुछ नहीं, अवाच्य है। द्रव्य में द्रव्यत्वता है।

यदि लोभ देकर धर्म कराया, तो पाप कराया। लोभ तो कषाय है, कषाय पाप होता है। बिना गोलियाँ बाँटे जिनवाणी के मधुर रस को बाँटो, यही धर्म है। कुछ समझ में नहीं आ रहा, फिर भी खुश हैं, वही सत्य है। आचार्यभगवन् कुलभद्र स्वामी कह रहे हैं–

हे जीव ! विश्व में पूज्य होना चाहता है तो सत् को देख और सद्व्रत को देख। **जिसकी चर्या पवित्र है, जिसका आचरण पवित्र है, जिसके परिणाम पवित्र हैं, वे सारे लोक में अपने आप पूज्य हैं।**

श्वापि देवोऽपि देवः श्वा जायते धर्मकिल्विषात्।
काऽपि नाम भवेदन्या सम्पद्धर्माच्छरीरिणाम्॥29/र.श्रा.॥

धर्म के प्रभाव से श्वान भी देव होते देखा जाता है और अधर्म के प्रभाव से देव भी श्वान होते देखा जाता है। कौन किसको कहाँ ले जाता है, अब निर्णय आपको करना है कि कहाँ जाना है ?

स्वयं का कर्ता स्वयं है, कोई किसी को कहीं नहीं भेजेगा। **जिन-जिन को दुर्गति से बचना हो, सो संयम धारण कर लो। जिनको दुर्गति में जाना हो, सो असंयम में रहो।** खुली छूट है, पाप करो। बिना गति-अवरोधक के तुम्हारा विमान प्रवेश कर जायेगा नरक में। खूब गुटका खाओ, अभक्ष्य खाओ, बड़े आराम से चले जाओगे। जिन-जिन को नहीं जाना है, वे आज से ही देव-शास्त्र-गुरु के चरणों में छोड़कर चले जाना। हमें नहीं जाना नरक में।गुड़ का त्याग और गुलगुला खाते हैं। एक ज्ञानी आया, कहता है मैं आज से चाय पीने का त्याग करता हूँ, कॉफी पीऊँगा।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।



चारित्रच्युत भ्रत्यवत

चारित्रं तु समादाय ये पुनर्भोगमागताः।
ते साम्राज्यं परित्यज्य दास्यभावं प्रपेदिरे॥ (276/सा. स.)

अन्वयार्थ—(ये तु चारित्रं समादाय) जो कोई चारित्र को पाकरके **(पुनः भोगम् आगताः)** फिर लौटकर भोगों में फँस जाते हैं **(ते साम्राज्यं परित्यज्य दास्यभावं प्रपेदिरे)** वे चक्रवर्ती के राज्य को छोड़कर मानो दासपने को प्राप्त करते हैं।

भावार्थ—हे भव्यात्मन्! जो चारित्र से च्युत होकर पुनः भोगों को चाहता है, तो वह चक्रवर्ती-पद छोड़कर दासपने को प्राप्त करना चाहता है।

॥सद्-देशना॥

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज सारसमुच्चय जी में चारित्र की महिमा का व्याख्यान करते हुये समझा रहे हैं। हे ज्ञानी! विश्व में सुर-असुरों से वन्दनीय संयम है। देव भी तरसते हैं, सौधर्म इन्द्र भी जहाँ सिर टेकता हो, ऐसे चारित्र की महिमा अलौकिक है। धन्य है उन श्रमणों की चर्या, जिसको देखकरके काम भी त्रास खाता हो। जिसने मोहराज को नष्ट कर दिया है, उसका कामसेना भी क्या कर सकती है? सारे जगत् से सिर को टिकवा लेना महान् नहीं है। जहाँ काम का मर्दन कर दिया गया हो, मदन का मरण जहाँ हो जाये, ब्रह्माण्ड में उससे बड़ा कोई पूज्यपुरुष नहीं है। गुप्तियों में मनोगुप्ति, इन्द्रियों में रसना इन्द्रिय, व्रतों में ब्रह्मचर्य व्रत। इसको जिसने साध लिया है, वह विश्व का देवता, शान है। जीव क्षण-क्षण में दौड़ता है खाने के लिए। दो इन्द्रिय से पञ्चेन्द्रिय तक के जीव खाने मात्र के लिये भ्रमण कर रहे हैं। रसना के पीछे सम्मान का घात कितना होता है? कितना ही महान् मनुष्य होगा, जिसकी रसना लोलुपता वृद्धिमान है, वह गलियों में भी पशुओं-जैसा खड़ा चाटता दिखाई देगा। अन्तर कहाँ है? तिर्यञ्च जमीन पर पड़ा भी मुख में उठा लेते हैं, आप ढावों में या चाट के ठेलों में खड़े होकर उठा लेते हो। परन्तु प्रवृत्ति वही है। उन जीवों से कहना कि जब संध्या की बेला हो और प्रातः के पाँच बजे हों, रात्रि के बारह बज रहे हों, उस समय में आप उन स्थानों से गुजरना जहाँ हलवाई की दुकानें हों, जहाँ होटल हों, जहाँ बाहर कढ़ाही रखी हो, आपको बहुत सुन्दर दृश्य दिखाई देगा। उन स्थानों पर उन कड़ाहों को चाटते हुये श्वान मिलेंगे। उस कढ़ाही की सामग्री

में फिर दिन में इन्सान खाते मिलते हैं। रसना की लोलुपता तो देखो, जीव नहीं सोचता कि इसमें भक्ष्य क्या है अभक्ष्य क्या है? सारे गुणधर्मों को भूल जाता है। स्पर्शन इन्द्रिय कुल को कलंकित कर रही है तो रसना इन्द्रिय तेरे चारित्र को परिपूर्ण कलंकित कर रही है। हाथ से उठा कर खाने का तुमने पैसा दिया है, परन्तु जब-जब तुम बाजार से निकल रहे थे, भोग कर तो बहुत कम भोगा है, आँखों ने बहुत दीर्घ भोगा है। ज्ञानी आम लेने बाजार गया था। उससे पूछना, खरीदे कितने थे और देखे कितने थे? जितनों को देख रहे थे, उनको आँखों से भोग रहे थे कि नहीं? उठा-उठाकर सूँघा भी था जो, घ्राण-इन्द्रिय का भोग भी तूने भोगा था। जिनालय में पूजनसामग्री जिनेन्द्र के चरणों में समर्पित की है मात्र निर्लोभता के लिये। आपने स्वयं अगरबत्ती लगाई, स्वयं धूप खेई और स्वयं उसकी सुगन्ध लेने खड़े हो गये। तीनलोक के नाथ के चरणों में तू घ्राण-इन्द्रिय का भोग भोग रहा था। लोग कह रहे थे कि ज्ञानी पूजा कर रहा है, लेकिन वीतरागी जिनदेव के कैवल्य में झलक रहा है कि ज्ञानी घ्राण इन्द्रिय का भोग भोग रहा है। मन्दिरों में कूलर-पंखे लगे हुये थे, दुनियाँ की नजरों में ये माला फेर रहा था, सामायिक कर रहा था, सर्वज्ञ के ज्ञान में झलक रहा है कि हे रागी! तू तीनलोक के नाथ के चरणों में स्पर्श-इन्द्रिय का भोग भोग रहा है।

अन्य क्षेत्रों में भोग भोगता तो जिनालय में पाप का प्रायश्चित्त करके चला जाता। तू तो यही चिंतन कर रहा है, आनन्द आया था कि नहीं? अनुभूति आयी कि नहीं? घर के पंखे में, जिनालय के पंखे में कोई भिन्नत्व है क्या? अनुभूति में भिनत्व है क्या? तो पर में भिन्नत्व कैसा? किसी के कहने से अथवा किसी के नहीं स्वीकार करने से श्रद्धायें बदलनेवाली नहीं हैं। हाथी तो हाथी रहेगा। आप पचास लोगों को खड़ा करके हाथी को खरगोश कहलवा सकते हो। युग चल रहा है, प्रजातन्त्र चल रहा है, हाथी को आप खरगोश कहलवा सकते हो, बहुत सारे गवाह बना सकते हो। हाथी, मुख से, खरगोश तो बन सकता है, लेकिन हाथी रूप से, स्वरूप से खरगोश नहीं बन सकता है। हाथी तो हाथी ही रहेगा। ऐसे-ही तुम अनेक पुरुषों को संगृहीत करके एक मिथ्यात्व की पुष्टि करा सकते हो, लेकिन मिथ्यात्व को सम्यक् नहीं बना सकते हो। कितने ही बहाने बना लेना, 'महाराज! वह समय नहीं है। अब वर्तमान के युवाओं को धर्म में लगाना है तो मन्दिरों में तो सुविधायें देना पड़ेंगी।' हाँ, कितना ही तुम लोगों से कहलवा लो कि पंखे लगें, कूलर लगें, ए.सी. लगें, तो शान्ति से

पूजा तो कर सकेंगे; लेकिन कर्म कहेंगे कि तुम शान्ति से पूजा कर सकोगे, तो मैं भी शान्ति से बंध सकूँगा। तुम करो, अच्छी बात है। जब ग्रीष्मकाल में दुकान में पसीना बहता है और व्यापार अच्छा चलता है तो आपको भोजन की भी याद नहीं आती है, तब तुम्हारा सुख कहाँ पलायन कर जाता है?

जहाँ उपयोग स्थिर होता है, वहाँ पर की इच्छायें नहीं होती हैं। जब तुम्हारा उपयोग चंचल होता है, तब सुख की इच्छायें होती हैं। जो पंखे-कूलर में भी पूजन की भावनायें रख रहा है, उसकी प्रभु के चरणों की आस्था पवित्र नहीं है। मैं आपसे कुछ नहीं कह रहा हूँ, मैं तो बस इतना कह रहा हूँ कि कैवल्य में ये आ रहा है कि नहीं आ रहा है? आ रहा है। जिनमन्दिर में पंखा-कूलर चला कर पूजन कर रहा है और उड़ते-उड़ते चिड़िया आयी और पंखे में फँस गई, उस पंचेन्द्रिय की हिंसा हुई और तू पूजा कर रहा है। असंयम है। जब यहाँ श्रावक से कहा जा रहा है, हे श्रावक! तू तो पर की पूजा कर रहा है तो पंखा नहीं चला रहा है। हे श्रमण! तुम तो निज की पूजा कर रहे हो, तो तुम पंखा कैसे चला सकते हो? आराध्य-आराधक भाव में, द्वैत्व भक्ति में जब परमात्मा को देखते हैं, तब निज के देह को नहीं देख सकते हैं। आपसे मेरा एक प्रश्न है। जब इनका चेहरा देखोगे, तब अपना चेहरा भी देख लोगे कि नहीं? जब मैं पर पुरुष का चेहरा देखते समय निज पुरुष का चेहरा नहीं देख पाता हूँ, तो परमात्मा की पर्याय, परमात्मा का द्रव्य और परमात्मा के गुण को निहारनेवाला उस समय अपने चर्म के द्रव्य को कहाँ देखेगा? जो चर्म की पर्याय को देख रहा है, उसे परमात्मा का द्रव्य-गुण-पर्याय कहाँ दृष्टिगोचर होगा? नाग तन पर घूम रहा है, भक्त निहार रहा है प्रभु के तन पर। बेटे को कालिया नाग ने डस लिया और पत्नी खड़ी हुई है 'ये है इनकी पूजा, बेटा चला गया।'

भक्त प्रभु के चरणों में क्या कह रहा है? नाथ! कामपुरुषार्थ का फल चला ही गया है, मैं धर्मपुरुषार्थ क्यों छोड़ूँ? एक गृहस्थ का इतना धैर्य। कामपुरुषार्थ का फल पुत्र था, जब वह चला ही गया है, प्रभु! '**धम्मं सरणं पव्वज्जामि**' आपको कैसे छोड़ सकता हूँ? जब पुजारी की पूजा पूरी हो गई, फिर कहता है, 'नाथ! मुझे विकल्प यह नहीं है कि सेठ धनञ्जय का बेटा खत्म हो गया। विकल्प इतना अवश्य आता है कि कल को लोग प्रभु-पूजा पर अश्रद्धान न कर बैठें।' ऐसा कह करके गन्धोदक का पवित्र नीर लेकरके बेटे के मस्तक पर छोड़ता है 'विषापहार स्तोत्र' पढ़ते-पढ़ते। बेटा उठकर बैठ गया। कवि कह रहा था, हे नाथ—

एक ग्राम पति जो होवे, सो भी दुखिया दुख खोवे।
तुम तीनभुवन के स्वामी, दुःख मेटो अन्तर्यामी॥

हे नाथ! एक गाँव का सरपंच होता है उसके द्वारे पर भी कोई पहुँच जाये तो अपनी सीमा के अनुसार वह भी उसके कष्ट को दूर करने की सामर्थ्य रखता है। आप तो तीनलोक के नाथ हो, ऐसा कैसे हो सकता है कि विष से दूषित पुत्र निर्विष न हो जाये? फिर धीरे-से कहता है—

विघ्नौघाः प्रलयं यान्ति, शाकिनी-भूत पन्नगाः।
विषं निर्विषतां याति, स्तूयमाने जिनेश्वरे॥

बेटा कहता है, 'माँ! कहाँ लेकर आयी हो?' विष निर्विष हो गया। धन्य हो उस भक्त के लिये, उसने बेटे को नहीं निहारा, पहले प्रभु को निहारा। इसलिये मुमुक्षु! जब एक माँ के पालने में पलने वाला शिशु आनन्द के साथ वृद्धिमान हो सकता है, सुखमय हो सकता है, तो हे मेरे शिशु! 'यथाजात स्वरूपोऽहं', हे निर्ग्रन्थ बत्स! हे जिननाथ के लघुनन्दन! आप तो चारित्र के पालने में पल रहे हो। एक शिशु भी पालने के बाहर पैर निकालता है और अन्दर कर लेता है कि कहीं मैं गिर न जाऊँ। पालने में पलने वाले बेटे को भी इतना बोध है, तो हे मुनीश्वर! तुम तो चारित्र के पालने में पल रहे हो, तुम्हारा चारित्र का पैर नीचे नहीं आना चाहिये, नहीं-तो असंयम की भूमि में पतन हो जायेगा। छोड़ने के बाद जोड़ने का विचार कैसा? चलने को पैदल चल लेगा, नियम है कि कहीं एक चींटी की हिंसा न हो जाये, इसलिये तुम सागर बन कर आ गये हो, अब तुम्हारे लिये अलग से गाड़ी चाहिये। मात्र दौड़ने की क्या आवश्यकता? हिंसा तो बराबर चल रही है। जो संयम को धारण करने के उपरान्त पुनः भोगों की आकांक्षा रख रहा है, ऐसा जीव चक्रवर्ती पद को छोड़ करके दासी का दास बनने जा रहा है। एक वह जीव है प्रशंसनीय, एक वह जीव है निन्दनीय। कौन?

एक वह महापुरुष जो तपस्या करने के लिये चक्रवर्ती पद का विसर्जन कर रहा है, वह प्रशंसनीय है और वह निन्दनीय है जो भोगों के लिये तपस्या को छोड़ रहा है। धिक्कार हो।

हे श्रावको! उठाने का प्रयास करना, गिराने का प्रयास मत करना। गिरते हुये को सहारा देते रहना, और-धक्का मत दे देना। पुराण ग्रन्थों का भी वाचन होना चाहिये।

पुण्यपुरुषों की व्याख्याओं से कभी कभी स्वयं के परिणाम भी सँभल जाते हैं, दृढ़ता आती है।

माताओ! आपका स्वामी आपको जंगल भेज दे तो आप क्या करोगे? बोली 'महाराज! जंगल बाद में, मैं पहले कोर्ट में खड़ा करूँगी।' आप कोर्ट तो भेज दोगे, लेकिन आपका जगत् में सती सीता जैसा नाम कभी नहीं आयेगा। धन्य हो सीता को, जंगल में जाने के बाद भी जिसने ये नहीं कहा था कि श्रीराम का दोष है। ये दोष मेरे कर्मों का है, प्रज्ञा का है। **घर में हर पुरुष पत्नी को तो जानकी-जैसी देखना चाहता है, परन्तु स्वयं राम बनने का विचार कभी नहीं करना चाहता।** स्वयं के हृदय को भी तो टटोल लो कि मेरा मन भी राम है कि नहीं? पूजा की दृष्टि सर्वत्र दिखाई दे रही है, परन्तु पूज्यता करने की दृष्टि नहीं दिख रही है। आजकल व्यक्ति सम्मान उतना ही चाहता है आपसे, जितना तुम महावीर स्वामी का करते थे। यथार्थ मानिये, आज का मुनि भी वही सम्मान चाहता है जो तीर्थंकर महावीर का था। स्वामी! हम आपको वैसा ही सम्मान देते हैं। ब्रह्माण्ड में अष्टद्रव्य से भगवान्-जैसी पूजा किसी भी सम्प्रदाय में साधु की नहीं होती। एकमात्र दिगम्बर जैनपरम्परा ऐसी है जिसमें पंचपरमेष्ठी भगवान् के स्थान पर रख करके वर्तमान के साधुओं को भी अष्टद्रव्य से 'भो स्वामिन्! अत्र-अत्र तिष्ठ-तिष्ठ' कहकर पूजा की जाती है। जितनी आस्था वर्तमान के श्रावकों को है, हम श्रवणों को चाहिये कि आपकी श्रद्धा को धक्का न लगे, ऐसी प्रवृत्ति हो। जगत् के द्रव्यों से साधक जितना अपरिचित होगा, उतना श्रावक साधु से परिचित होने की इच्छा रखता है। आप योगियों का सर्वथा सहयोग करना इस बात पर कि स्वामी! मैं आपको परिग्रह के मल से मलिन नहीं होने दूँगा।

माताओ! एक बात पूछूँ? तुम कैसी माँ होगी जब तेरी आँखें खुली हों और तेरा जवान पुत्र अग्नि में कूद रहा हो? सत्य बताना, क्या तुम खड़ी-खड़ी देख सकती हो? नहीं। शायद ऐसी कोई क्रूरपरिणामी माँ हो जो देखते-देखते अपने बेटे को अग्नि में कूद जाने दे। यदि ऐसा नहीं देख सकती हो, तो इन संयम के लालों को तुम परिग्रह की अग्नि में टपकते कैसे देख सकते हो? कहना, 'हे निर्ग्रन्थ! हे जिनदेव के लघुनन्दन! मैं अपनी आँखों से आपको परिग्रह की आग में झुलसते नहीं देख सकता हूँ। आप तो चलो, मैं आपको नमोऽस्तु-नमोऽस्तु कह रहा हूँ। आप तो उसी

मार्ग पर चलो जिसमें तीर्थंकर अरहन्त चले। निर्ग्रन्थ भावी श्रमण! हम अपनी मृत्यु को भावी श्रमण के रूप में देखना चाहते हैं। आप वर्तमान में ऐसा करोगे तो हम भावी श्रमण कैसे बना सकेंगे? आस्थायें चारित्र में हैं, आस्थायें शील में हैं; असंयम में आस्थायें नहीं हैं। बाजार में भी सामग्री लेने जाते हो तो जिसमें शील लगी होती है, उस पर विश्वास होता है। कहीं शील खुल जाये तो आप कहते हो कि कुछ गड़बड़ है क्योंकि पैकिंग ठीक नहीं है। जब बाजार की वस्तु शील खुलने पर अविश्वास की पात्र बन जाती है, तो हे जीव! जिसका शील सुरक्षित है, उस पर ही विश्वास है। जिसका शील सुरक्षित नहीं है, उस पर कोई विश्वास नहीं है।

मात्र पशुवृत्ति का होना ही कुशील नहीं है। जितने प्रकार के अशुभ कर्म हैं, वे सभी कुशील हैं। जो जिसके योग्य नहीं है, वह उसके लिये कुशील ही है। आवश्यकता है इन ग्रन्थों को वाचने की।

हे श्रमणो! सुनो। जितने श्रावक आते हैं, वे तुम्हारे संयम को निहारने आते हैं, इसलिए किञ्चित् भी कोई विकल्प दिखाई दिया तो उनका मन कहेगा कि मुझे यहाँ नहीं आना था।

विद्यार्थियों को अपनी बुद्धि ठीक करना हो तो सुबह से उठकर सबसे पहले जितनी प्राचीन प्रतिमा हों उनके आज्ञाचक्र (मस्तक) को देखें। वहाँ आपको लगेगा कि मेरे भीतर कुछ प्रवेश कर रहा है।

कोई दीपक रखकर ध्यान करते हैं, कोई शून्य बनाकर त्राटक करते हैं। यदि तुम्हें त्राटक ही करना है, तो श्रीजी को निहार कर करो। उपासना का, आराधना का एक नियत स्थान तो करना है। वे वर्गणायें भी आपको प्रभावित करती हैं। इसलिये साधु को साधुओं के बीच रहना चाहिये, तब उनका मन विचलित नहीं होगा, एक दूसरे की पवित्र वर्गणायें आपको प्रभावित करेंगी। यदि अशुभ वर्गणाओं के बीच में रहोगे तो विश्वास रखना, जिनालय का वातावरण भिन्न होता है और वेश्यालय का वातावरण भिन्न होता है। वो अपना वातावरण बनाकर रखते हैं, यदि वो वैसा वातावरण नहीं बनायेंगे तो कामी पुरुषों को कामभाव नहीं आयेंगे। जब एक वेश्या अपने यहाँ का वातावरण बनाकर रखती है, तो हे मुमुक्षु! आप भी निर्ग्रन्थ हो। वह जगत् को अपने तन में ले जा रही है, तुम जगत् को चेतन में लगा दो, इसका नाम दिगम्बर धर्म है।

श्रमण के पास पहुँचकर भी साधुता की गन्ध न आये, तो श्रमणत्व कैसा? पानी में हाथ जाये और अँगुली शीतल न हो, तो नीर का शीतलत्व कैसा? अग्नि में हाथ जाये और अँगुली न जले, तो उष्णता कैसी? साधु के पास जाये और साधुता न झलके, तो साधु-स्वभाव कैसा?

इस कारिका को लिखते समय आचार्य कुलभद्र स्वामी निर्ग्रन्थ की भक्ति में परिपूर्ण डूबे होंगे। 'परमात्मप्रकाश'-कर्ता योगेन्द्रदेव स्वामी, परम अध्यात्म की व्याख्या करने वाले योगी, जब मुनियों की भक्ति में उतरते हैं तो लिखते हैं, हे निर्ग्रन्थो! धरती के देवता! मैं आपके चरणों की बलिहारी हूँ। लोग फूटे मकान को छोड़ने में त्रास आते हैं, फटे वस्त्र उतारने में परेशानी आती है, कटोरे में भीख माँग कर खा सकते हैं, लेकिन निर्ग्रन्थ नहीं बन सकते हैं। आप सारे सुख छोड़कर निर्ग्रन्थ दीक्षा धारण किये हैं, आपके निर्ग्रन्थ परिणामों की मैं वन्दना करता हूँ। आपके बन्ध भावों की वन्दना नहीं है, आपके निर्ग्रन्थ परिणामों की वन्दना है। जब भी मुनिराजों के पास जाओ, जगत् की कोई चर्चा नहीं, एक ही बात करना, स्वामी! एकत्व-विभक्त भगवान्-आत्मा की प्राप्ति कैसे हो? कुछ नहीं करना, साम्राज्य पद को छोड़कर दासी-पुत्र नहीं होना। लौकिकता से दूर होना ही पड़ेगा। आपने सारे जगत् का वेदन किया है। कोई छतरपुर आये तो कहता है कि यहाँ तक आया हूँ तो खजुराहो की वन्दना कर लेना चाहिये। देश की चौदह सौ पिच्छियों से मेरा कहना है कि जब जिनमुद्रा धारण कर ही ली है, यहाँ तक आ ही गये हैं, अब यदि स्वानुभूति की अनुभूति नहीं चख पाये, तो मुनि बनना कैसा? दुनियाँ की अनुभूतियाँ तो हर भेष में प्राप्त हो सकती हैं। ईंट-चूने की अनुभूति तो हर व्यक्ति लेना जानता है। पैसों का संग्रह तो बड़ी-बड़ी संस्था वाले भी जानते हैं। सुन्दर-से-सुन्दर भवनों (भक्तों) की व्यवस्था तो किसी भी नेता के यहाँ मिल जायेगी। पुष्पों की वाटिका में जो भी प्रवेश करता है, भौंरा ही प्रवेश करता है, कौआ प्रवेश नहीं करता। कौआ तो वहाँ मिलेगा जहाँ सड़ा तिर्यञ्च पड़ा होगा। आपने कभी पुष्पवाटिका में गिद्धों को देखा? गिद्ध तो वहीं मिलेंगे जहाँ सड़ा मृतक तिर्यञ्च पड़ा होगा। पुष्पवाटिका में सुगन्ध ही होती है। पुष्पवाटिका में प्रवेश करे, वहीं मल की सुगन्धि हो, ऐसा सम्भव नहीं है। निर्ग्रन्थ चारित्र की पुष्पवाटिका है, इसलिये वहाँ विषयकषाय दुनियाँ के प्रपञ्च के मल की दुर्गन्ध नहीं आना चाहिये।

कठोर अवश्य है, लेकिन सत्य यही है। निर्ग्रन्थों को देवपूजा और धर्म-आयतन के लिये मात्र दूर से आशीर्वाद देना चाहिये कि ठीक, आप अच्छा काम कर रहे हो, परन्तु मैं आपके गड्ढे खोदने में खड़ा नहीं हो पाऊँगा, क्योंकि मैं षट्काय की हिंसा का त्यागी हूँ। वहाँ भूमि का खनन होगा तो षट्काय जीवों की हिंसा होगी। ठीक है, आप मन्दिर बना रहे हो, जब तक यह मन्दिर रहेगा, तब तक जिनशासन जयवन्त रहेगा। आप मन्दिर नहीं बना रहे हो, आप उस भूमि पर जिनशासन को स्थापित कर रहे हो। इसलिये श्रावक कुल में जन्म मिला है तो जिनप्रतिमा जिनमन्दिर तो स्थापित करना-ही-करना, लेकिन निर्ग्रन्थों से कहना, 'स्वामी! आप स्वयं मन्दिर हो। आपका देह देवालय है। आत्मदेव ही देव है। आप उस देव की वन्दना करो।' परमार्थ दृष्टि। इसलिये जब भी मुनिराज बनने के भाव आयें तो 276 नं. का श्लोक पढ़ लेना, फिर सोचना कि अब मुनि बनूँ कि नहीं बनूँ?

आचार्य श्री! लेट हो गये।

कोई लेट नहीं हुये। लेट फीस लगा कर काम चलता है। जितनी अनुकूलता हो, उतना काम करना। देखा, 'जो है सो है।' पर्याय विलीन तो मेरी घर में भी होगी, पर्याय विलीन साधना में होगी। जब विलीन होना नियत है तो

धीरेण वि मरिदव्वं णिद्धीरेण वि अवस्स मरिदव्वं।
जदि दोहिं वि मरिदव्वं, वरं हि धीरत्तणेण मरिदव्वं॥100/मूला.॥

धीर भी मरता है अधीर भी मरता है, जब दोनों को मरना ही है, तो क्यों न धीरता के साथ मरें?

सीलेण वि मरिदव्वं णिस्सीलेण वि अवस्स मरिदव्वं।
जइ दोहिं वि मरिदव्वं, वरं हि सीलत्तणेण मरियव्वं ॥ 142/मूला.।।

मुमुक्षु! शीलवान भी मरता है, नि:शीलवान भी मरता है। जब दोनों का मरना नियत है, तो क्यों न मैं शील के साथ मरूँ?

जब कर्म का उदय तीव्र होता है, तो बुद्धि भी कर्म के अनुसार होती है। यदि कर्म के अनुसार ही बुद्धि को चलाओगे, तो कभी सुबुद्धि हो ही नहीं सकती है, क्योंकि कर्म तो हर समय रहेगा-ही-रहेगा। **कर्मविपाक के उदय आने पर कोई पुण्य-पाप का बन्ध नहीं होता है। कर्म का उदय आना पुण्य-पाप का कारण नहीं है, कर्म के**

उदय में हर्ष-विषाद का होना पुण्य-पाप का कारण है। क्या इन मुनिराजों का कर्म का उदय नहीं चल रहा? चल रहा है। कर्म का उदय आने पर भी आपने अपने मनुष्यआयुकर्म को विषयों में लगा दिया है, इन्होंने मनुष्य-आयुकर्म के उदय को योग में लगा दिया है। जैसा प्रयोग करना चाहो वैसा काम होता है। जो है, सो है।

'**बुद्धि कर्मानुसारिणी**' कह करके हम सर्वथा यह नहीं कह सकते हैं कि कर्म बुद्धि को पलट देते हैं। बुद्धि भी कर्म को पलट देती है। आपने प्रतिमा धारण की है, कर्म क्या कर पाये? आप जिस दिन सोच लेते हो कि आज रात्रि में मुझे पानी नहीं पीना, तो प्यास कुछ नहीं कर पाती।

फुलाकर पिचकाते रहोगे तो पक्के रहोगे। तुरन्त फूल गये तो कच्चे-ही-कच्चे रहोगे। हाथ की रोटी खाई? व्यवहार झूठा होता है, लेकिन उस झूठे व्यवहार के बिना जी नहीं सकते हो। इसलिये व्यवहार उपचार है। हीटर की रोटी का तात्पर्य हीटर पर बनने वाली रोटी। वह तुरन्त फूल जाती है। माँ ने कपड़े से उसे पुनः दबा दिया, पिचका दिया, दो मिनट में वह फिर से फूल गई। फिर पिचका दिया। तीसरी बार फूली सो उठाकर रख दिया। आगम की आज्ञा है कि विशिष्ट व्रत करना हो, विशिष्ट ग्रन्थों का अध्ययन करना हो, तो गुरु की अनुमति माँगना चाहिये।

साधना का काल। पहले फूले, तो पिचकाओ। जब पुनः पुनः फूल कर आओगे तो पक्के होकर आओगे। ऐसे-ही यह मोक्षमार्ग है, तुरन्त फूले को उठाकर रखने का नहीं। कच्ची रोटी खाओगे तो पेट फूलेगा। पेट फूलेगा तो भोजन भी बिगाड़ोगे, भूमि भी बिगाड़ोगे। इसलिये पक्की खाओ। कच्ची रोटी खाने से अभक्ष्य का दोष लगता है, क्योंकि उसमें मिश्र योनि बनती है। अतिथि-संविभाग व्रत, भोगोपभोग-परिमाण व्रत के अतिचार हैं अधिक कच्चा, अधिक पक्का, काला-कलूटा, जली हुई सामग्री खाना। श्रावक के ही बारह व्रतों में दोष है। प्रतिमाधारी जली रोटी नहीं खा सकता, कच्ची रोटी नहीं खा सकता। जब प्रतिमाधारी नहीं खा सकता है, तो महाव्रती कैसे खा सकते हैं? कितना कठिन मोक्षमार्ग है, कितना सरल मोक्षमार्ग है। यहाँ-जैसा आनन्द तो कहीं नहीं है। **जो छोड़ने में आनन्द है, वह जोड़ने में नहीं है। बिना खाये तीन दिन रह सकता है, लेकिन बिना जाये नहीं रह सकता।** अन्यथा कपड़े खराब कर देगा। देखा, बिना छोड़े शान्ति नहीं मिल सकती। छोड़ना तो पड़ेगा-ही-पड़ेगा। जब पेट का भरा

छोड़ देता है, तो साता का अनुभव करता है। शान्ति मिल गई। जब पेट खाली करने से इतनी शान्ति मिल सकती है, तो पेटी खाली करने पर कितनी शान्ति मिलेगी? स्वप्न में भी महाव्रती बनने के परिणाम आयें तो सँभालकर बनना। जिसको गाड़ी ऊट-पटाँग चलाना ही है, भले ही बोर्डों पर लिखा रहे :- 'अंधा मोड़ है, पुलिया संकीर्ण है।' उसको तो दौड़ाना ही है। अब बेचारा बोर्ड क्या करेगा? **प्रवचन देना कठिन नहीं है, प्रवचन का जीवन जीना कठिन है। चारित्र की चर्चा करना सरल है, परन्तु चारित्र की चर्या कठिन है,** इसलिए चारित्र धारण करके अच्छे से पालन करना, तभी संसार-भ्रमण से छुटकारा मिलेगा।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।



चारित्रवान त्रैलोक्यपूज्य

शील-संधारिणां पुंसां मनुष्येषु सुरेषु च।
आत्मा गौरवमायाति परत्रेह च संततम्॥ (277/सा.स.)

अन्वयार्थ—(शीलसंधारिणां पुंसां आत्मा) चारित्र को पालने वाले पुरुषों का आत्मा **(परत्र इह च)** परलोक में तथा इस लोक में **(मनुष्येषु सुरेषु च)** मनुष्यों में तथा देवों में **(संततं)** सदा **(गौरवम् आयाति)** पूज्यता को प्राप्त होता है।

भावार्थ—हे भव्यात्मा! चारित्र को धारण करनेवाले भव्य की मनुष्य क्या, देवता भी पूजा करते हैं। चारित्र पालनेवाले इहलोक एवं परलोक में भी पूज्यता को प्राप्त होते हैं।

॥सद्-देशना॥

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज सारसमुच्चय जी में उन मुमुक्षु जीवों को समझा रहे हैं जिनको यथार्थ में भव से भय है, पापों से भीरुता है। मोक्षतत्त्व की व्याख्या, स्वरूपदृष्टि की व्याख्या मात्र उनके लिये है जो भवभीरु हैं। जिन्हें संसार के भ्रमण से किञ्चित् भी क्लेश नहीं है, दु:ख नहीं है, उनके लिये कोई मोक्षमार्ग की व्याख्या नहीं है।

उपदेश उनके लिये है जो अपना कल्याण चाहते हैं। कल्याणदृष्टि है, तो तत्त्व का उपदेश सर्वत्र है और कल्याणदृष्टि नहीं है, तो आगम के अनेक ग्रन्थों को पढ़ लेना, कोई प्रयोजन नहीं है। **एक शब्द भी आत्मसिद्धि का साधन है, यदि आत्मदृष्टि है तो। आत्मदृष्टि नहीं है तो सर्वज्ञदेव साक्षात् भी विराजमान होंगे, फिर भी कुछ भी नहीं कर सकते।** समझनेवाले की ही समझ होती है समझाने की। जब तक समझने वाले की समझने की समझ नहीं आयेगी, तब तक समझानेवाले की समझ परिवर्तन नहीं कर सकेगी। इस भ्रम को निकाल दो कि मेरे कहने से मेरा बेटा मेरी बात मानता है। जितने पिता इस अहं में फूल रहे हों, इस अहं को आज से निकाल देना कि मेरा बेटा मेरी बात मानता है। कितना ही सीधा-साधा पुत्र होगा, कितनी ही आपकी बात मान रहा होगा, लेकिन इस कर्तृत्वबुद्धि को आज से निकाल दो कि बेटा तुम्हारी बात मानता है। ध्रुव सत्य है, जो संतान अपने आप को सज्जन बनाकर रखना चाहती है, वह आपकी बात को मान नहीं रही है, वह आपकी विनय कर रही है। पुनः

सुनो। आपकी बात कोई नहीं मान रहा है। जिसे अपना हित स्वयं समझ में आता है और हितभूत बात होती है, उसे चाहे आप कहो चाहे दूसरा कहे, जैसा मैं चाहता था वैसा ही तो आपने कहा है, उसे ही तो मान रहा है।

जिस बेटे को अशुभ करने की आदत ही हो चुकी है और वह चाहता है कि अशुभ ही करूँगा, पिता जी से पूछना, उसको आप सुधार सकते हो क्या? जब तक स्वयं की समझ 'समझ' नहीं होती है, तब तक पर की समझ समझाने में सहकारी नहीं होती है। **संविधान सज्जनों के लिये है, दुर्जनों पर कोई संविधान लागू नहीं होते।** इसलिये जब भी तत्त्व-उपदेश प्रारम्भ होता है, सबसे पहले वक्ता यही कहता है, 'अहो भव्य! भो ज्ञानी!' जिसके अन्दर भद्रता होगी, वही तुम्हारी बात सहन करेगा, स्वीकार करेगा। मैं इसलिये कह रहा हूँ कि अपने परिणाम संक्लेशित मत करना कि कोई मेरी बात क्यों नहीं सुनता है? आपकी ही नहीं, कोई किसी की भी बात को नहीं सुनता है। जो जिसके लिये उपयोगी होती है, वह अपने आप को ही सुनता है, आपको कोई नहीं सुनता। क्या ऐसा नहीं है? ऐसा ही है। आप स्वयं सोचकर आये हो कि आज तो मुझे भगवान् की पूजा-अभिषेक करना है, उसी समय कोई कह दे भैया! आज पूजा कर लो, हाँ, 'ठीक है, किये लेता हूँ, आपने बहुत अच्छा कहा है।' ज्ञानी सोचता है कि मेरा मित्र मेरी बात तुरन्त मानता है। जबकि सत्यता यह है कि तेरी बात नहीं मानी गई है, उसके मन की बात को तूने कह दिया है, इसलिये तुझे लगता है कि मेरी बात मान ली गई है। ये तुम्हारा अहं बोल रहा है। ये तुम्हारी कर्ताबुद्धि बोल रही है कि मेरी बात मन गई। तेरी बात कोई मानता ही नहीं है। आप अपनी बात मानने की बात कर रहे हो, ये विश्व ऐसा महाज्ञानी है कि भगवान् तक की नहीं मानते। यदि भगवान् की मानते होते, तो ये सबके-सब मुनि बने बैठे मिलते। भगवान् ने यूँ कहा है—मेरे मित्र! तू किञ्चित् भी परिणाम कलुषित करेगा तो पाप का बंध होगा।

वे परमब्रह्म परमात्मा कह रहे हैं, मेरे मित्र! यदि तू किञ्चित् भी 'पर' पर आँख उठाकर देखेगा तो ये अब्रह्म भाव हो जायेगा। तू किंचित् भी दूसरे की वस्तु बिना स्वीकृति के निहार लेगा, तब भी चोरी हो जायेगी। किसी भी द्रव्य को तू देखने का भाव करेगा, लगता है कि यह मेरे पास भी होना चाहिये थी, परिग्रह होगा। इससे

आपको पाप का बन्ध होगा। ऐसा भगवान् ने कहा है, आप इसको स्वीकार कर रहे हो। ये तो मानते हो कि भगवान् ने ठीक कहा है, फिर भी आप दूसरी ओर क्यों चले जाते हो? इसका तात्पर्य क्या है? महाराज! जब तक मेरी कषाय मेरे अनुकूल है, तब तक मैं किसी की सुनने वाला नहीं हूँ। जब मेरी कषाय मुझे कषायभूत दिखने लगेगी, तब मैं भगवान् की बात भी मान लूँगा। लगता ऐसा है कि भगवान् की मान रहा है, परन्तु सत्य यही है कि निज की ही मानी जाती है। कोई आपको व्रती नहीं बना सकता। व्यवहार में सही भी लगने लगता है। मुनिराज कह रहे थे—मुझे आचार्य विरागसागर महाराज ने दीक्षा दी है, वे उपकारी हैं, उन्होंने बहुत बड़ा उपकार किया है। हाँ, व्यवहार में ऐसा ही कहना चाहिये। यही सत्य है। लेकिन ध्रुव सत्य है कि मेरे भीतर वैराग्य न होता तो वे क्या कर सकते थे? ये इतने मुनिराज बैठे हुये हैं, ये सब यही कहते हैं कि आपने मेरा बहुत बड़ा उपकार किया है। मेरे मित्र! अपने संयम की कर्ताबुद्धि मेरे ऊपर थोप रहे हैं। मुझे अहंकार में डुबाने का प्रयास मत करना। मुझे बहुत अच्छे से मालूम है कि मैं आपके सिर पर लोंग रखने मात्र का कर्ता हो सकता हूँ, लेकिन आपके परिणामों की विशुद्धि के कर्ता आप ही हो। आपके मन में भाव आया था, इसलिये तो आप आये हो। ज्ञानी कहता है कि आपके दर्शन करने मैं आया हूँ। परन्तु सत्यता यह है कि तेरे मन में तद्रूप परिणाम हुये हैं, इसलिये तू अपने परिणामों की इच्छा की पूर्ति के लिये आया है, मेरे लिये तू बिल्कुल नहीं आया। जिस असत्यता को अनादिकाल से सुनते-समझते आये हो, उसे वैसा ही हम स्वीकार लेंगे तो तत्त्व को सुनने का उद्देश्य क्या है? ज्ञानी कहता है कि मैं इनको लेकर आया हूँ। यदि इनके मन में भाव न होते, तो तेरे पास इनको लाने की कोई ताकत नहीं थी।

ये जीव पाप भी करता है तो स्व बुद्धि से ही करता है। पुण्य भी करता है तो स्व बुद्धि से ही करता है। कुछ विषय ऐसे हैं, सामनेवाले के पाप करने के परिणाम तो थे, परन्तु लोकलाज के कारण फँसा देता है आपको, कि मैं चाहता ही नहीं हूँ कि ऐसा हो। ऐसे कितने लोग हैं? 'मैं गुटका खाना नहीं चाहता था, पिता जी! मैं क्या करूँ? वो संगत में ऐसा हो गया।' बेटा! ये व्यर्थ की बातें मत करो। संगति कुछ भी नहीं कर सकती है। ये बुंदेलखण्ड के श्रावक बड़े चतुर हैं। खट्टे आम को भी मीठा करना जानते हैं। वह भी कड़वी नीम की पत्ती में रखकरके। पाल

लगा करके कच्चे आम को पकाना जानते हैं। मित्रो! जब कड़वे नीम के पत्ते रख करके आम को पकाया जा सकता है, उस नीम की कड़वाहट ने आम को मीठा कैसे किया? उसे तो कड़वा करना चाहिये? **जिसकी परिणति स्वयं में उपादानभूत पवित्र होती है, उसे बहिरङ्ग कड़वे निमित्त की मधुरता ही देकर जाते हैं।**

कुलभद्र स्वामी कह रहे हैं—'कड़वी नीम मधुरता का साधन', बिल्कुल सत्य है। लंकेश! तेरी कड़वाहट श्रीराम को मधुर कर गयी। यदि तू न होता, तो सारे विश्व में कोई राम की माला फेरनेवाला न मिलता। नीम की कड़वाहट आम को मधुर कर रही है। रावण के अनाचारों ने राम का बहुमान बढ़ाया कि नहीं? बढ़ाया।

दुनियाँ में कोई बिरला ही जिनालय होगा जिसमें तीर्थंकर पारसनाथ न विराजते हों। मन्दिर-मन्दिर में पारसनाथ मिलेंगे। हे कमठ! तेरे भीतर यदि कड़वाहट न होती, तो आज मन्दिर-मन्दिर में पारसनाथ कैसे होते? तेरे भीतर के आक्रोश से उनके ऊपर किये उपसर्गों से, तू सोच रहा था मैं उपसर्ग से कष्ट में ला दूँगा, वहाँ वे योगीश्वर ध्यान में इतने लीन हो गये कि कैवल्य को प्राप्त हो गये। वही कड़वा कमठ पारसनाथ के चरणों में सिर टेकने आया। जहाँ उपसर्ग कर रहा था, वहाँ सम्यक्त्व प्राप्त कर रहा है। इस बात को कितने ही बाहर की आँखों से बोल दो कि अमुख व्यक्ति के नियोग से मेरे अन्दर ऐसा हो गया। मनःस्थिति ढीली न पड़े तो परिस्थिति कुछ भी करने वाली नहीं है। ऐसे बेटे भी इस सभा में बैठे हुये हैं जिनके बेटे की माँ तेरी माँ को बिल्कुल भी नहीं चाहती, तब भी आपकी दृढ़ता अधिक है तो आप अपनी माँ की सेवा में लगे हो।

जन्म देने वाली माँ को छोड़ करके बेटे की माँ के पीछे जो पड़ गया, वह कितना अभागा होगा? आज राष्ट्र की समाज को शिक्षा देने की आवश्यकता है, ये तन्त्र आपके हाथ में है। वकील, डॉक्टर, अध्यापक इन तीन के हाथ में समाज है। राजा और गुरु बाद में। पहले अध्यापक, दूसरे वैद्य, तीसरे वकील। इन तीन के हाथ में समाज है। छात्र का जीवन अध्यापक के हाथ में है। वैद्य! आप पचने देते नहीं हो और खाना प्रारम्भ कर देते हो। रात्रि में भोजन करके सो जाओगे तो वह जैसा-का-तैसा रखा रहेगा। आयुर्वेद शास्त्र भी कहता है कि सोने के कम-से-कम तीन चार घण्टे पहले भोजन कर लेना चाहिये। जैनदर्शन तभी तो कह रहा है कि रात्रिभोजन मत कीजिये।

कोई अपराधी आपके यहाँ पहुँचा। उसको शिक्षा दो, 'भाई! मेरा घर भरने आप क्यों आते हो और लोक में इतने सम्मान को प्राप्त होना क्यों चाहते हो? ऐसे खोटे काम मत करो तो आज भी आपकी साधु के समान पूछ होगी।' ये शिक्षा भी दे सकते हैं।

जगह-जगह वृद्ध-आश्रम खुल रहे हैं, ये बहुत गलत हो रहा है। अधिकांश लोगों को मेरे प्रवचन उल्टे लगते हैं और तभी तक उल्टे लगते हैं, जब तक उनकी बुद्धियाँ उल्टी होती हैं। जब उनकी बुद्धियाँ ठीक हो जाती हैं, तब लगता है कि यही बात सत्य है। भारत की भूमि पर, तीर्थंकर बलभद्र नारायण जैसे महापुरुषों की भूमि पर, वृद्ध-आश्रम खुलना बहुत बड़ा पाप है। क्यों? वृद्ध-आश्रम खोलकर आपने भारत के बेटों को एक धर्म से वंचित कर दिया। राम जी अपने पिता के चरण छूकर जाया करते थे। जंगल में निवास करना पसन्द कर लिया, लेकिन पिता की आज्ञा को भंग नहीं किया। वे श्रवण कुमार जैसे बेटे इस भारत की भूमि पर हुये हों, जिन्होंने कांधों में अपने वृद्ध माता-पिता को बिठाकर तीर्थवन्दना करायी हो। यह वो भूमि है जिसमें अपने माता-पिता को दूसरे के यहाँ नहीं छोड़ा जाता, उनकी सेवा करके धर्म मानते थे। तुमने वृद्ध-आश्रम खोल दिया तो तुम्हारी वह दशा हो गई जैसे गाय जब तक दूध दे रही थी, तब तक तुम्हारे घर में सेवा चल रही थी। दूध देना बन्द हुआ, सो कसाई को सौंपकर आ गये। आप अपने बूढ़े माता-पिता को वृद्ध-आश्रम में डालने जा रहे हो तो मैं यही मानता हूँ कि तुम उस व्यक्ति के समान हो जिसने गाय का दूध निचौड़ करके कसाई को सौंप दिया है। जितना द्रव्य तुम वृद्ध-आश्रम में लगाओगे, उतना द्रव्य संगृहीत करके तुम जानकारी लो कि ऐसे किस कुल के किसके अभागे बेटे हैं जो वृद्ध पिता को देखना भी नहीं चाहते। जानकरके वह द्रव्य लेकर आओ और कहना, 'भैया! ये हमारी समाज की तरफ से उपहार है। इस वृद्ध दादा की सेवा करना।'

अपनी समाज के बीच ऐसा भवन निर्मित मत कर देना। श्रमणसंस्कृति भवन तो बनाना, जिसमें श्रमणों का निवासस्थान तो हो, लेकिन उसके नीचे चौके लगाने का स्थान नहीं बनाना। यदि आपने ऐसा भवन बना दिया कि आप यहाँ चौका लगा सकते हो, तो घर के चौके 'किचन' बन जायेंगे, चौके समाप्त हो जायेंगे। आपने स्थाई

चौके की व्यवस्था कर दी तो समाज को तुमने प्रमादी बना दिया और प्रमाद ही हिंसा है। यदि आपने वृद्ध-आश्रम खोल दिया, तो मैं हिंसक क्यों कह रहा था? क्योंकि तुम्हारे बहू-बेटे प्रमादी हो जायेंगे, वह प्रमाद ही हिंसा है। फिर वृद्ध माता-पिता की सेवा के परिणाम नहीं कर पायेंगे। भैया! तेरा ही बेटा कह दे कि आज से आप उस कमरे में रहोगे, तब आप चले तो जाओगे, लेकिन मन कहेगा कि कैसा लड़का है? मुझे यहाँ भेज दिया। मैं इसी कमरे में रहने वाला था। जब एक कमरा बदलने पर कष्ट होता है और वृद्धअवस्था में तुम घर बदलकर दूसरे घर में पटकने जा रहे हो, उसके परिणामों में कितनी हिंसा होगी?

मैं आँखों से देखी बात बता रहा हूँ। सोनकच्छ के पास पुष्पदन्तसागर महाराज जी ने एक पुष्पगिरि तीर्थ बनवाया। वहाँ पर रुकनेवाले श्रावकों की ऐसी व्यवस्था की है कि घर के बेटे भी क्या करेंगे? वहाँ छात्रावास भी है। अन्य जगह के छात्र सूखे-सूखे मिलेंगे, पुष्पगिरि के बच्चे मुस्कराते मिलते हैं। क्यों? क्योंकि वहाँ भोजन की परिपूर्ण व्यवस्था की गई है। हर बच्चे को दूध भी मिलता है। एक अरबपति-खरबपति श्रावक शाम को भक्ति के बाद मेरे पास आकर बैठ गया। उसका चेहरा देखकर लग रहा था कि कोई बहुत बड़ा अधिकारी होना चाहिये। व्यक्ति के चेहरे पर सब झलकता है। नमोऽस्तु करते ही उसकी आँखों से आँसू टपकने लगे। मैंने पूछा—दादा जी! आप ऐसा क्यों कर रहे हो? कोई परेशानी है क्या? महाराज! यहाँ तो किञ्चित् भी परेशानी नहीं है, लेकिन मेरे आठ पुत्र हैं, मैं आठ बेटों का पिता हूँ, उच्च अधिकारी पद पर आसीन। मैं इस बात को जानता था कि अन्त में **'धम्मं सरणं पव्वज्जामि'।**

इन्द्रियों को (शरीर को) अधिक भोगों में लिप्त करके जल्दी पूरा मत कर लेना। कुछ वृद्ध 'वृद्ध' होने पर भी वृद्ध-जैसे नहीं लगते। इन्होंने अपने माता-पिता के द्वारा दिये गये संस्कार को अच्छे से संजोकर रखा है। असंयम को भी संयम के साथ सेवन किया है। **शादी जैनदर्शन में व्रत है। स्वदार-संतोष-व्रत।** बहुत अच्छा ये था कि तुमको शादी नहीं करना थी। यदि तुम अपने आप को नहीं रोक सके, तो समाज कह रही है, धर्म कह रहा है कि जो असीम नारियों पर तेरी दृष्टि जा रही थी, उसको एक पर नियन्त्रित कर लो, शेष को माँ, बहन, बेटी समान देखो। जो अनन्त नारियों पर तेरी आँख जा रही थी, वह आँख तुम्हारी एक पर आ चुकी है, इतना संयम हो चुका है, स्वदार-सन्तोष व्रत।

यदि तुम ब्रह्मचारी बनकर नहीं रह सकते हो, तो इतना तो व्रत ले ही लेना चाहिये। मन में सोच लो और कायोत्सर्ग कर लो। मेरे जीवन में मैंने मात्र जिसके साथ पाणिग्रहण संस्कार किया है, वह ही मेरी पत्नी है, शेष मेरी माँ और बहन हैं। पारिमाण हो गया, उसका व्रत हो गया। इस व्रत को लेने के उपरान्त पुनः कहेंगे, 'हे पापी! भले एक के साथ तेरा व्रत हो गया है, तब भी तू धर्मात्मा नहीं है। एक बार के अब्रह्म में नवकोटि जीवों की हिंसा होती है। कम-से-कम तू प्रतिज्ञा कर ले कि पर्व के दिनों में अब्रह्म का सेवन नहीं करेंगे।' फिर उससे पुनः कह रहे हैं, 'हे जीव! सिंह भी तो वर्ष में एक बार अब्रह्म का सेवन करता है। तू कैसा पापी है? महीने में नियम ले लो। एक महीने में हम पच्चीस दिन व्रत पालन करेंगे, पाँच दिन का व्रत पालन करेंगे। कुछ तो सीमा बना लो। ऐसा करते-करते ये संस्कार जो उसको दिये जा रहे हैं, महाव्रत की ओर ले जा रहे हैं। जिस व्यक्ति ने अपनी युवावस्था में असंयम में भी संयम बरता है, वह व्यक्ति बूढ़ा होने पर चारपाई पर पड़ा-पड़ा कराहेगा नहीं, उठकरके कम-से-कम भगवान् के दर्शन तो करता रहेगा। **नेत्र उनके जल्दी नष्ट होते हैं जिनके शील अधिक नष्ट हो चुके होते हैं। कमर उनकी जल्दी टूटती है जिनके तीव्र अब्रह्म-परिणाम होते हैं।** अब जो है, सो सुनो। यह भी जानना आवश्यक है। हमारे पास आयुर्वेद शास्त्र भी है। जिनागम में आयुर्वेद शास्त्र भी है। आज युवाओं की बुद्धियाँ भ्रष्ट क्यों हो रही हैं? ज्ञान क्षीण क्यों हो रहा है? मेरी वृद्ध माँ होती, वह कहती—बहू! अशुद्धि के दिन कमरे के भीतर बैठो, बाहर नहीं निकलना है। तुमने बड़ी-पापड़ भी देख लिया तो उनका रंग खराब हो जाता है। फिर तू मनुष्य का चेहरा कैसे देखेगी जब जड़ के ऊपर प्रभाव पड़ता है? अब तुम कालेज का जीवन जी रहे हो, अशुद्धि का कोई ध्यान ही नहीं है। एक-दूसरे को देख रहे हो। उसका परिणाम है कि बुद्धियाँ भ्रष्ट हो रही हैं। पाँच दिन मौन रहने का है। एकान्त वास। नीरस भोजन करना चाहिये उस बहु/बहिन को। जिनके घर में इन नियमों का पालन होता है, उनके घर में वर्द्धमान महावीर जैसे बेटे होते हैं। जिनके घर में इन नियमों का पालन नहीं होता, उनके घर में कंस, रावण जैसे बेटे होते हैं।

आठ पुत्रों का पिता, पुष्पगिरि में, मैंने पूछा—'दादा! जब आठ बेटे हैं, तो आँसू क्यों बहा रहे हो?' 'महाराज श्री! पता नहीं क्यों?' कभी-कभी ऐसा होता है कि किसी व्यक्ति को देख करके आत्मीयता प्रकट होती है।

ज्ञानी स्वयं तो दस-दस उपवास किये और शिविर में सब शिविरार्थियों की सेवा कर रहे थे। मैंने कहा, 'तुम स्वयं तो थके हो?' कहता है—'सेवा करने से तो शक्ति मिलती है।' कुछ जीवों के सुभग नामकर्म का ऐसा उदय होता है, ऐसी प्रशस्त वर्गणायें होती हैं। कोई तन्त्र-मन्त्र जादू-टोना नहीं, यथार्थ समझिये। रैकी ज्ञान। **स्वयं के प्रशस्त परिणाम को जो संगृहीत कर लेता है, उसके शरीर से ऐसी ऊर्जा निकलती है कि वह हाथ भी रख दे तो तुम्हारा दर्द ठीक हो जाये।** सबसे बड़ा दर्द दिल का दर्द होता है। भैया! विश्व में बहुत सारी समितियाँ होती हैं जो पैसा लेकर तुम्हारा सहयोग करने को खड़ी हुई हैं। आप ऐसी समिति बनाइये जो दीन-हीन/दु:खी परिवारों में दो मिनट मात्र अच्छी बात करके आ जायें। पैसे देने वाले मिल जायेंगे, परन्तु सान्त्वना दिलाने वाले नहीं मिलते। एक समय ऐसा आता है जब व्यक्ति अपने आप को अकेला महसूस करता है और उस समय न बेटे साथ दें न बहुयें साथ दें न भैया देखने आये, तब लगता है कौन हैं? मेरे मित्र! यदि आपको ऐसा महसूस हो रहा हो, तो आज मैं आपको बता दूँ, सो सुन लो, आज से ही अपना मित्र बनाना प्रारम्भ कर दो। **अमित्रों का मित्र सत्-साहित्य है, जिनवाणी है।** पढ़ने का अभ्यास करो। जब कोई नहीं होगा, तब शास्त्र पढ़ो। जिसको स्वाध्याय का अभ्यास हो जायेगा, वह कभी अपने आप को अकेला महसूस नहीं करेगा। जिनको गप्पों का अभ्यास था, जब अशुभ दिन आते हैं तो जो हाथ डाल कर चलते थे वे बात नहीं करते। **सबके दिन एक-से नहीं होते हैं। जिन महलों में राजा-महाराजा रहते थे, जिनमें कलश भरकर जाया करते थे, उनमें आज लोग लोटा लेकर जा रहे हैं। जहाँ घूरे पड़े थे, वहाँ बड़े-बड़े भवन खड़े हो गये और जहाँ भवन थे, वहाँ घूरे पड़ रहे हैं।**

वह श्रावक कह रहा था कि मेरे आठ पुत्र हैं, मैंने अपने शासनकाल में ही इतना कमाया कि आठों बेटों को आठ कोठियाँ/बँगले बनाकर दे दिये। जब आज मैं वृद्धत्व की ओर आया, तो मेरा स्वयं का बँगला भी छीन लिया। आज मैं पुष्पगिरि में, जितना मेरे पास है उतना दान देकर, निवास कर रहा हूँ। पता नहीं आपको देखकर क्यों ऐसी आत्मीयता जाग्रत हुई कि मेरी आँख के आँसू रुक नहीं रहे हैं। मैंने कहा, 'दादा! तुमने बहुत अच्छा कहा, आपकी इस बात से में भी शिक्षा लेता हूँ कि मैं सबके साथ अवश्य रहूँगा, लेकिन सबके साथ बिल्कुल नहीं रहना। मैं अकेला ही हूँ। 'अहमिक्को'। अकेलापन उनको हो, जो अपने को अकेला भ्रम से ही मानते हैं।

जो जानता ही है कि मैं अकेला ही हूँ, तो अकेलापन होगा क्यों?

चारित्रवान् पुरुष परको परही जानता है, सबके साथ रहते हुए भी स्वयं में अकेला ही वेदता है।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।



चारित्र से भव पार

आपदो हि महाघोराः सत्यसाधन सङ्गतैः।
निस्तीर्यन्ते महोत्साहैः शीलरक्षण-तत्परैः॥ (278/सा.स.)

अन्वयार्थ—(सत्यसाधन सङ्गतैः) जो साधुजन सत्य-मार्ग का साधन करते हैं, **(महोत्साहैः)** बड़े भारी उत्साहवान हैं, **(शीलरक्षणतत्परैः)** चारित्र के रक्षण में तत्पर हैं वे **(महाघोराः आपदः हि निस्तीर्यन्ते)** वे महान् घोर आपत्तियों से भी पार हो जाते हैं।

भावार्थ—हे भव्यात्मन्! जैसे साहसी पुरुष तैरकर नदी पार कर लेता है, महाभयानक जंगल को भी पार कर लेता है, वैसे-ही महासाहसी, चारित्र-रक्षा में तत्पर साधु मोक्षमार्ग में बड़े उत्साह से चलते हैं और घोर आपत्ति/संकट तथा उपसर्ग पड़ने पर उनको शान्ति से सहन करके मोक्ष की सिद्धि कर लेते हैं।

॥सद्-देशना॥

आचार्यप्रवर गुणभद्र स्वामी ग्रन्थराज सारसमुच्चय जी में उस महायोगी की व्याख्या कर रहे हैं जिनको निहार करके विपत्तियाँ भी सिर टेक कर चली जाती हैं। विषमताओं को जो समता से सह लेते हैं, उन्हें विषमता होती ही नहीं है।

राग, द्वेष, मोह ये आत्मा के दोष हैं। जहाँ इन तीन दोषों का अभाव है, वहाँ किञ्चित् भी विपत्ति हो ही नहीं सकती। जहाँ इन तीनों की सत्ता है, वहाँ समता हो ही नहीं सकती। **जहाँ मोह है, जहाँ राग है, वहीं तो अपमान है। जिसके राग ही नहीं है, जिसके मोह ही नहीं है, उसका कौन-सा अपमान?** जिसने विचार कर लिया है कि आज सभा में मुझे तिलक लगेगा, शायद संचालक नहीं बुला पाया तो वह संचालक को अपना शत्रु मान लेगा और कहेगा कि इसने मुझे बुलाया नहीं, जबकि आज मुझे तिलक लगना चाहिये था। बहुत सारे श्रावक बैठे हैं, उनके मन में ये भावना नहीं है। वह जीव क्या बोलता है? मेरा अपमान हो गया है भरी सभा में, मुझे बुलाया क्यों नहीं गया? तेरा अपमान संचालक ने नहीं किया है, तेरा अपमान उस अपमान के भाव ने किया है। अपमान किसके हाथ में है? जो निर्णय करके आया था कि मुझे सम्मान चाहिये ही नहीं है, उसका अपमान कहाँ होगा?

दो मित्र एक ज्ञानी के घर पहुँचे। उस ज्ञानी ने दोनों को आधा-आधा ग्लास दूध दिया। इसने दिया ही है या आपसे कुछ लिया है? नहीं। जो यूँ सोच कर गया

था कि पूरा गिलास भर कर मिलना चाहिये, उसको दूध का स्वाद नहीं आयेगा, क्योंकि उसको आधा खाली दिखता है। जिसने निर्णय लिया था कि आज ज्ञानी के यहाँ निमन्त्रण है, कुछ अच्छा ही खाने को देगा, उसने बढ़िया सुवासित करके दूध दिया है, भले ही आधा गिलास था, लेकिन दूध बड़ा मधुर था। उसे आधा गिलास नहीं दिखा, दूध बड़ा मधुर था यह दिखा। जिस बेटे ने निर्णय कर लिया है कि पिता हिस्से में जो देगा, वह बराबर है, उसको पिता के प्रति अशुभ भाव नहीं आया। जिसने यूँ निहार लिया कि पिता जी मुझे पूरा ही सौंप दें, वह वृद्ध भी अपने लिये कुछ रखेगा कि नहीं? रखेगा। जितना मिल चुका है, उसके लिये कभी नगर में यूँ कहने नहीं जाता कि मेरे बिना कमाये मेरे पिता ने मुझे इतना द्रव्य दे दिया है, परन्तु ये जरूर कहने जायेगा कि अभी भी बुड्ढे को शर्म नहीं आ रही है, अभी भी ताले बन्द किये बैठा हुआ है, देता ही नहीं है। देखा? ऐसा है संसार। इकलौता बेटा भी जब पिता की निन्दा पड़ोस में करने जाये, उससे कहना, 'तेरे से बड़ा पापी कौन होगा? जबकि तुझे मालूम है कि तू इकलौता ही है, ये चले जायेंगे तो कौन बाँध कर ले जायेंगे, ये तो तेरे लिये ही है। समझदार बेटा होगा तो कमाकर भी लायेगा तो पिता को देगा, क्योंकि उसे पता है कि मिलना तो मुझे ही है, तो इनको सन्तुष्ट करके क्यों न रखूँ? विषय को समझो, गहरी बात है।

आप ससुराल गये थे, जबकि आपका वहाँ कोई भी उस समय साढूभाई नहीं आया था। उस दिन आप अकेले ही थे। सारी व्यवस्थायें आपके लिये बनाई गई थीं। आप चाहो तो सम्मान सहित वहाँ रह सकते थे, आप चाहो तो आपका अपमान वहाँ हो जायेगा।

जैसे वक्ता को आपने बोलने नहीं दिया। दो मिनट दिये, पाँच-दस मिनट दिये। वक्ता अच्छा है, पाँच मिनट के अन्दर अपने आपको महान् सिद्ध करके चला गया। वक्ता चाहे तो पाँच मिनट में अपनी नाक कटा कर चला जायेगा। एक वो समझदार होगा कि मुझे पाँच मिनट मिले हैं, पाँच मिनिट में मुझे तत्त्व की चर्चा करना है। वह मंगलाचरण छोटा कर लेगा, जय भी छोटी कर लेगा, भूमिका बनायेगा ही नहीं। पाँच मिनट के अन्दर तत्त्व की बात कह देगा।

एक वो होगा जो यों कह रहा है कि संचालक ने पन्द्रह मिनट संचालन में ले लिये और मुझे पाँच मिनट दिये हैं। ऐसे राग-द्वेषात्मक वचन कह कर उसने अपने

पाँच मिनट भी बर्बाद कर लिये। एक वह है जो पाँच मिनट में अपनी बात कहकरके पूरे जीवन की छाप छोड़कर चला गया। एक वह जीव है जो पाँच मिनट में अपना पूरा यश नष्ट करके चला गया। मंच के ऊपर बैठकरके कषायभूत दिखना प्रारम्भ हो जायेंगे। एक जीव साम्यभाव से अपनी बात कह रहा है कि मैं तो संयम का जीवन जीने के लिये जिन्दा हूँ। आप उस संयम की अनुभूति को मेरे मुख से सुनना चाहते हो। जितने समय तक सुनना चाहते हो, तो सुनो, परन्तु मैं अपने संयम की अनुभूति को बताने का ही विचार करता हूँ, पर मैं अपनी कषाय की अनुभूति में जाना पसन्द नहीं करता। दृष्टि देखना।

जब आप ससुराल पहुँचे थे, सबकुछ इनके लिये ही बना था। ये चाहता तो सिर झुका करके शान्ति से बैठा रहता, सासू माँ एक-एक वस्तु करके तुझे सहज परोसती जाती। आप मौन से भोजन करते रहते, रोज की अपेक्षा से भले दूना खा लेते। तब भी सासू यही कहती कि मेरे दामाद ने कुछ भी नहीं खाया। महाराज कितना भी आहार ले लें, तब भी श्रावक क्या बोलते हैं कि महाराज ने कुछ नहीं लिया। ये भक्ति है। जब तक आस्था है, तब तक कुछ नहीं लिया और आस्था गई, तो यही जीव कहेगा—क्या खड़े-खड़े कितना सारा खाते हैं। जब श्रद्धा से माँ परोस रही थी, आप सहज भोजन कर लेते, विश्वास रखना, भोजन का भोजन खाने को मिला, पीछे से आपको टीका लगेगा और यश मिलेगा कि मेरा दामाद तो देव है। टीका में कुछ कम नोट भी मिले हों, तब भी तू शान्ति से रख लेगा। अगली बार जब तू जायेगा तो वही सासू माँ दुगने देगी। वे कैसे अभागे जीव हैं जो ससुराल जाकरके भिखारी बन कर बैठ जाते हैं? अपने कुल की धुलाने पहुँच गये, वंश की धुलाने पहुँच गये। जब भोजन करने बैठा, हर सामग्री की ओर आँख फेंक रहा है, तो परोसनेवाला भी सोचता है कि कहाँ से भिखारी आ गया। कोई आपका सम्मान करे तो आपको सम्माननीय बन जाना चाहिये। दृष्टि तुम्हारी कैसी हो, वाणी तुम्हारी कैसी हो, भाषा तुम्हारी कैसी हो, भाव-भंगिमा तुम्हारी कैसी हो?

देवत्व कहीं बाहर से लाया नहीं जाता, पुरुष ही दैवत्व को प्रकट करता है। इसका नाम जैनदर्शन है। जिस दर्शन में देव को भी देव नहीं कहा जाता, पुरुष को ही देव बनाया जाता है। देव की मूर्ति बन जाये, तब भी कोई नमस्कार नहीं करता

जब तक देव में देवत्व नहीं भरा जाता। प्रतिमायें तो आपने मँगा ली थी, जब तक प्राणप्रतिष्ठा/सूरिमंत्र निर्ग्रन्थ योगी से नहीं हुआ, तब तक आपने सिर कहाँ टेका था। देव की प्रतिमा तो जयपुर से आ सकती है, लेकिन देव जयपुर से नहीं आते हैं। देवत्व तो मंत्रों/संस्कारों से आता है। जैसे आचार्य प्रतिमाओं की प्राणप्रतिष्ठा कर देता है, वैसे माता-पिता अपने बेटे की प्रतिष्ठा कर देते हैं। संस्कार भर दिये हैं तो तुम्हारा बेटा समाज में देवत्व के रूप में देखा जाता है और संस्कार नहीं भरे तो बेटा पाषाण की भाँति ठोकरें खाता है। इतना करके जाना कि आपकी सन्तानें रोड पर ठोकरें न खायें। जैसे मन्दिर की वेदी पर प्रतिमा बनकर पुज रही है, ऐसे समाज में प्रतिमा की भाँति पुजे, इतना करके चले जाना।

देवत्व बाहर से नहीं आता। आस्था पर को होती है, आस्था पर से नहीं होती है, परन्तु आस्था तो आपको होती है। आस्था आपको अपने ही गुणों से बनानी पड़ेगी। यदि आप पर की आस्था को चाहते हो, दूसरे के शीश को अपने चरणों में झुकाने की इच्छा रखते हो, तो आपको चारित्र के प्रति शीश झुकाना पड़ेगा। **जिसके स्वयं के शील निर्मल नहीं हैं, जिसके स्वयं के संयम निर्मल नहीं हैं, जिसकी स्वयं की भाषा निर्मल नहीं है, जिसके स्वयं के भाव निर्मल नहीं हैं, जिसकी प्रवृत्ति निर्मल नहीं है, उसके प्रति किसी की आस्था नहीं है।** विश्वास रखो, आपको दूसरे के सिर को अपने चरणों में झुकाने की इच्छा है तो आपको संकट सहन करके सामने वाले की रक्षा का भाव करना पड़ेगा। इन पिच्छी-धारियों से पूछना, लोग आपको तब नमस्कार कर पाये जब आपने इस पिच्छी को लेकरके वायुकायिक तक के जीवों की रक्षा का भाव किया है। वनस्पतिकायिक तक के जीवों की रक्षा का भाव किया है। धूप से छाँव में आने पर मार्जन करने की प्रवृत्ति दिखाई देती है, तब लगता है कि कितना करुणाशील जीव है, इनके चरणों में झुक जाना चाहिये। यदि पिच्छीधारी के ही परिणामों में दूसरे को परेशान करने की परिणति चल रही है तो विश्वास रखना, बगैर पिच्छीधारी भी मौका खोजते हैं कि भैया! बाहर से निकल चलो, नहीं-तो नमस्कार करना पड़ेगा। शील/संयम नहीं है, मात्र भेष बनाकर बैठे हो, तो भाई! तेरे परिणाम होते हैं कि पीछे से निकल चलो, क्योंकि सामने जायेंगे तो झुकना पड़ेगा और श्रद्धा है नहीं, तो कैसे झुकूँ?

यदि जिनबिम्ब को देखकर सम्यक्त्व होता है, तो जिनागम में जिनबिम्ब के दो विभाग किये। चेतन जिनबिम्ब, अचेतन जिनबिम्ब। अरहन्त की प्रतिमायें अचेतन जिनबिम्ब हैं, दिगम्बर मुनिराज चेतन जिनबिम्ब हैं।

हे योगी! आपको निहार करके मिथ्यादृष्टि जीव को, घोर मिथ्यादृष्टि इन्द्रभूति, अग्निभूति, वायुभूति पाँच सौ पाँच सौ शिष्यों के गुरु ऐसे जीवों को भी, हे वर्द्धमान्! आपने मन्त्रित नहीं किया, आपने कोई तन्त्र नहीं किया, आपने कीला नहीं है, आपके चारित्र की पवित्र वर्गणाओं के प्रभाव से, जो आपको समझाने के लिये गये थे वे समझ कर बैठ गये और केशलौंच प्रारम्भ हो गया। तीर्थंकर महावीर स्वामी को एक दिन में पन्द्रह सौ तीन शिष्यों की प्राप्ति हुई थी, वही तो आप गुरुपूर्णिमा मनाते हो। जिस दिन को वर्द्धमान-जैसे गुरु मिले थे, वही गुरुपूर्णिमा का दिन है। अग्निभूति, वायुभूति, इन्द्रभूति ये तीनों भाई इसलिये गये थे कि मैं नाथ-पुत्र को समझाकर आऊँगा, लेकिन साधु के चेहरे को देखकरके सिंह भी श्रावक बन जाये तो-ही साधु का श्रेय है।

जैसे मचला बेटा माँ की गोद पा ले तो बिना खिलौने के मुस्कराने लगता है, ऐसे-ही मचले मन जिनके पास पहुँचने से शान्त हो जायें, बस यही साधु का मन्त्र है। लगता ऐसा है कि क्यों जायें तीर्थवन्दना करने, क्यों जायें महाराज के पास? पर सत्य यह है कि जो पहुँचता है, वह आता है जाता है, उसे मालूम होता है एक निमेषमात्र काल में बस। हजारों किलोमीटर चलकरके मात्र चेहरा देखने आये थे। अश्रद्धावान को नहीं पता कि क्या करने आया था। श्रद्धावान कहता है कि मैं अपनी बैटरी को चार्ज करके जा रहा हूँ। वह वर्गणाओं को लेकर जा रहा है, शक्ति को लेकर जा रहा है। साधु को देखकर सिंह भी श्रावक बन जाये। नहीं बना क्या? बना। जिन्हें तुम महावीर स्वामी मानकर पूज रहे हो, उनसे पूछ लेना, भैया! सिंह की पर्याय में निर्ग्रन्थ को देखकर श्रावक हो लिये। फिर समन्तभद्र जैसा महाश्रमण, उन्होंने तो लिख ही दिया—हे प्रभू! आपके पादमूल की महिमा देखो कि अभद्र भी भद्र हो जाता है।

माँ की गोद में पहुँचने मात्र से बेटा आनन्दित हो जाता है, तू कैसी अभागिन माँ है जो जरा-से दूध के चक्कर में मेरे गाल पर चाँटा मारती है? दूध मीठा था, कि माँ का दुलार? माँ से कहना-मत डाँटो, मैं ही काम में आऊँगा, सबके दिन एक-से

नहीं होते। अभी तुम्हारा समय चल रहा है। किसको मालुम है जीवन में कौन-कौन गलती नहीं करेगा? डाँटकर-मारकर सुधारना कोई सुधार नहीं है। उन्हें सुधरने का मौका दो। यही मेरे जीवन का प्रायश्चित्त है। जिनशासन क्या कहता है? मेरा न्याय क्या बोलता है? न्याय दे दूँ। आपकी न्यायपीठ बोल रही है कि फाँसी पर टाँग दो और वर्द्धमान की गद्दी बोल रही है कि आप उसको सुधरने के तख्ते पर बिठाल दो। आपने कोई सुधार का मौका नहीं दिया, उसे सुधरने का मौका दे दो। पश्चात्ताप ही प्रायश्चित्त है। यदि इसके भीतर पश्चात्ताप नहीं आया, उपवास भी कर लेगा तो लंघन मात्र है, उपवास नहीं है। बेटा! कहना माँ से—माँ! तू माँ बाद में बनी है, पहले किसी की बेटी थी। तू मुझे जितना पीटेगी, मैं तो विशुद्धसागर का शिष्य बनकर आया हूँ। '**कार्यलिंग हि कारणं।**' तू मुझे पीट रही है, इसका मतलब है कि पहले बहुत पिटी होगी, तभी उसका बदला मेरे से निकाल रही है।

जब मैं किसी मुनिराज के पास होता हूँ तो उनकी वर्तमान और भावी पर्याय को जरूर देखता हूँ। मैं आपको साँचा देखता हूँ। जैसे ईंट बनाने का साँचा, गुझिया का साँचा। गुझिया का साँचा गुझिया नहीं होती है। नहीं-तो साँचा खाने बैठ जाओ। गुझिया का साँचा तो साँचा है, परन्तु गुझिया साँची नहीं है। जो भीतर भरा जायेगा, वह बनेगी साँची गुझिया। साँचा साँचा है, गुझिया साँची-साँचा नहीं है। ऐसे-ही हे महाराजो! तुम्हारा भेष तो साँचा है, साँचा ही है, क्योंकि जिनदेव ने उसे स्वीकारा है, लेकिन तुम्हारे अन्दर भावों का मसाला क्या है, वह साँची गुझिया है। गुझिया का साँचा खाया नहीं जाता, उसमें गुझिया बनती है। ऐसे-ही हे मुनिराजो! तुम्हारा भेष मुनि नहीं है, ये तो भगवान् बनने का साँचा है। तुम्हारे भीतर जो भावों की भंगिमा बैठी हुई है, जो परिणामों की विशुद्धि है, उसका नाम साधु है, वह भगवान् बनने की गुझिया का मसाला। साँचे को ही गुझिया मत मान बैठना। साँचे में तो मिट्टी भी भर दो तो आकार गुझिया का ही निकलेगा। आकार तो एक-सा है, परन्तु स्वाद एक-सा नहीं है। एक को खाओगे तो मुख गंदा हो जायेगा, एक को खाओगे तो मुख मीठा हो जायेगा। ऐसे-ही द्रव्यलिङ्ग और भावलिङ्ग दोनों के साँचे तो एक-से हैं, लेकिन स्वाद एक-सा नहीं है। बाह्य लिङ्ग तो एक-सा ही दिखता है, लेकिन स्वाद एक-सा नहीं है। साँचे को साँचा देखो, परन्तु अनुभूति तो मुख में रखने पर ही आयेगी कि कौन साँची गुझिया है। सच्चे मुनि कैसे होते हैं, तुम स्वयं बनकर देखो।

साँचे ने गुझिया तो बनाई, परन्तु गुझिया का स्वाद साँचे को आता ही नहीं है। ऐसे-ही द्रव्यलिङ्ग तो द्रव्यलिङ्ग दिख रहा है, उसको ही पता नहीं है कि द्रव्यलिङ्ग की अनुभूति क्या है। आपने जो भेष बनाकर रखा है, उस भेष को ही मालूम नहीं है कि मुनि का स्वाद कैसा होता है। इस भेष को ही मालूम नहीं है कि जिसने मुझे धारण किया वह साँचा है कि नहीं? ये तो कर्ता को ही मालूम है, कर्म को भी मालूम नहीं है, करण को मालूम नहीं है। कर्म का बोध कर्म को नहीं है, कर्म का बोध करण को नहीं है। कर्म व करण का बोध तो कर्ता को ही है। रसोइये ने, आटे के द्वारा, रोटी बनाई। आटा करण, रोटी कर्म, बनानेवाला कर्ता। 'यः करोति, स कर्ता। यत् क्रियते, तत् कर्म। एन क्रियते तत् करणं।' जो क्रिया को करता, सो कर्ता। जिससे किया जाय, वह करण। जिसको किया जा रहा, सो कर्म। बेलन से रोटी बनाई, वह करण। आटे को रोटी बनाया गया है, रोटी है कर्म।

रोटी का स्वाद कैसा है, न करण को मालूम है, न कर्म को मालूम है। वह तो जो कर्ता-भोक्ता है, उसे ही मालूम है। ऐसे-ही ज्ञानियो! भेष को पता नहीं है कि मुझे धारण क्यों किया गया है? पिच्छी-कमण्डल को मालूम नहीं है कि मुझे स्वीकार क्यों किया गया है। ये तो उसी को मालूम है जिसने प्राप्त किया है। भोजन की व्यवस्था के लिये किया है, कि भजन की व्यवस्था के लिये किया है? बात जो है, सो है। भजन की व्यवस्था के लिये मुनि बनने जा रहा है, कि भोजन की व्यवस्था के लिये मुनि बनने जा रहा है? यदि तू भोजन की व्यवस्था के लिये मुनि बनने जा रहा है, तो पक्का मान कर चलना कि तू अगली पर्याय में तिर्यञ्च बन जायेगा और भजन के लिये मुनि बनने जा रहा है, तो विश्वास रखिये, भावलिङ्ग से तूने भजन किया है, तो नियम से तेरी भविष्य की पर्याय है अशरीरी सिद्ध भगवान्। अब सँभलकर जीना। ये ज्ञानी गया दिल्ली। चलो, लाल मन्दिर चलते हैं, वहीं पूजा करेंगे। पूजा करेंगे तो कोई-न-कोई भव्य पूछेगा ही कि 'कहाँ से आये? चलो, मेरे यहाँ भोजन कर लो।' पूजा करी भगवान् की, सो पेट की व्यवस्था बन गई। एक काम कर लो, ज्ञानी सोले का भोजन करते हैं, व्यवस्था कहीं दिख नहीं रही है, पता करो इस नगर में महाराज हैं या नहीं? हाँ, भैया! ऐसा होता है। चलो कपड़ा बदल लो, आहार देने चलो। जब आहार देने जायेंगे, तो ऐसे कौन-से अभागे श्रावक होंगे जो भोजन के लिये न पूछें?

अरे! खेत की मेढ़ पर किसान भोजन करता है तब वहाँ से कोई आदमी निकले तो वह भी पूछ लेता है कि आओ, भोजन कर लो। कोई झूठ-मूठ को ही बोले तो बैठ जाते हैं। यदि इस उद्देश्य से तू आहार देने भी गया है, यहाँ धर्मशाला में कौन पूछेगा? चलो, चौके में चलें, वहीं एक ग्रास आहार दे लेंगे, वहीं बैठ जायेंगे। यदि ऐसे भाव हैं, तो तुम्हें आहार-दान का फल नहीं मिला, अपनी पेट-पूजा का फल मिला। धीरे-धीरे सब कह दो, कोई आँख दिखाये तो कह देना 'जो है सो है।' आप ही बताओ, क्या ऐसा नहीं है? यदि आपने ऐसे परिणाम किये हैं, तो सही है और आपने ऐसे परिणाम नहीं किये, तो वह भी सही है। भैया! वस्तुस्वरूप इतना पवित्र है कि इसमें जरा-सा भी कोई विकल्प नहीं है।

बड़े होने पर जीव कितनी मायाचारी करता है, मन की बात मन में रख लेता है। मुस्कराना तो दूर है, सो नहीं पाता। इसलिये छोटी अवस्था कितनी अच्छी कि जब रोना सो रो लो, चुप होना सो चुप हो गये अपनी इच्छा से।

मान वहाँ है, अपमान वहाँ है, जहाँ राग और द्वेष है। जहाँ राग-द्वेष नहीं है, वहाँ न मान होता है न अपमान होता है। जीवन के अन्तिम समय की यह व्याख्या याद आ गई तो तेरी समाधि हो जायेगी। नियम से सल्लेखनामरण होगा। नहीं-तो ऐसे भी जीव मिल जायेंगे, कह देंगे कि आज से हमारा सल्लेखना व्रत। जैसे-जैसे समय नजदीक आता-जाता है, उस जीव की तपस्या बढ़ती चली जा रही है। भोजन-पानी कम करने लगा है। लेकिन जो धीरे-से कहता है 'क्यों, मुझे देखने कितने लोग आ रहे हैं? पेपरों में छप रहा कि नहीं कि मेरी समाधि चल रही है?' मेरे मित्र! तूने भूखे रहकर पेट व शरीर तो पिचका लिया, लेकिन मानकषाय न पिचकी तो समाधि भङ्ग हो गई। शरीर को सुखा लेना पराश्रित भाव है, पर वस्तु नहीं दी तो शरीर तो सूख गया, लेकिन जो स्वाश्रित काषायिक भाव था, उसे नहीं सुखाया, तो समाधि कैसे होगी?

लोग कहने लगते हैं कि आप इन बच्चों को इतना स्थान क्यों देते हो? आपको पता नहीं है। आप लोग तो हमारे साथ पूरे हो जाओगे, समय तो इन बच्चों का आयेगा। नगर में चमकते शरीर वाले महाराज आ जायें तो ये सब दौड़कर आ जाते हैं। वृद्ध मुनि के पास भी जाना, हे स्वामी! आपके शरीर में कोई बाधा तो नहीं है? उनकी सेवा करने जब पहुँचो, तब सोचना कि ये साधु समाधि को प्राप्त करने वाले हैं।

बेटे! वृद्ध दादा-दादी को, माता-पिता को, वृद्ध साधु को कभी दुतकारना मत। वृद्ध दादा यदि पागल हो जाये तो उनको पागलखाने में क्यों छोड़ देते हो? तुम नहीं छोड़ोगे और तुम्हारे दादा पागल भी नहीं होंगे, क्योंकि पागल वे होते हैं जो जवानी में देव-शास्त्र-गुरु को गाली देते हैं। धर्म से दूर होते हैं, वे पागल होते हैं। जो अपनी आयु में मन्द परिणामों से, भद्र परिणामों से, पुण्यकार्य के साथ जीता है, वह कभी पागल नहीं होता, परमात्मा होता है।

कोई वृद्ध दादा पागल हो जायें तो उनको पागलखाने में क्यों छोड़ देते हो? 'इलाज के लिये।' जितना अच्छा इलाज तुम स्वयं करवा लेते, वे पागलखाने वाले क्या इलाज करवायेंगे? साँची बोलो, न छुपाओ। ये काम स्त्रियाँ करती हैं कि मन में कुछ होता है, मुख से कुछ बोलती हैं। माँ! बुरा मत मानना, अब जो है सो है। मेरे-जैसा कहने वाला और आपके-जैसा सुननेवाला। कितने सीधे-साधे हो। धन्य हो आपकी समता को कि कैसे सुन लेते हो और अपनी धुलवाने में ताली बजाते हो।

अपनी परेशानी से बचने के लिये पिता जी को पागलखाने में छोड़ दिया। अपनी परेशानी से तो बच गये, परन्तु पिता की सेवा का परिणाम हुआ क्या? बहुत सारे लोग अपने वृद्ध माता-पिता को, घर का सगा पुत्र भी क्यों न हो, जिसकी उम्र दस वर्ष की है, उसको भी बम्बई में छोड़ दो, विकलांग अस्पताल में डाल दो, होस्टल में डाल दो, मात्र निजी परेशानी को दूर करने के लिये। माँ! धाय माँ को क्यों लगाती हो सन्तान के लिये? तू सन्तान को जन्म देती तो अपने आँचल का पान कराती। तूने वासनाओं को जन्म दिया था, तो तू उसको पान नहीं करा पायी। वह भी कहता है कि जब तुम मुझे दूध नहीं पिला पाई हो, तो मैं तुम्हें अन्त में पानी व जिनवाणी कैसे पिलाऊँगा? इसलिये दूध पिलाना सीख लो। अपनी परेशानी दूर करने के चक्कर में वृद्ध दादा को पागलखाने में डाल दिया और स्वयं आकरके भगवान् के चरणों में पूजा कर रहा था, 'मेरीभावना' का पाठ कर रहा था 'सुखी रहें सब जीव जगत् के'। ज्ञानी शान्ति-धारा कर रहा था और बोल रहा था—

संपूजकानां प्रतिपालकानां, यतीन्द्र-सामान्य-तपोधनानां।
देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञः करोतु शान्तिं भगवान् जिनेन्द्रः॥शा.भ.॥

घर में बेचारा वृद्ध पिता परेशान हो रहा है, उसको देखने तक नहीं जा रहा और कह रहा है 'करोतु शान्तिं भगवान् जिनेन्द्रः।'

हे जीव! किंचित् भी तेरे भीतर शान्तिधारा के परिणाम चल रहे हैं, तो अपनी व्याधि को टालने का प्रयास मत करो, उस जीव के कल्याण का भाव सोचो। बहुत कठिन तपस्या है। स्वयं अकेले में जा करके, पाँच दिन के पंचकभूत नियम लेकर बैठ गये—महाराज! मैं पाँच दिन तक यहाँ से उठूँगा नहीं। ज्ञानी! ये साधना सरल है। उसमें दूसरे का कोई तनाव नहीं है। स्वयं के घर में क्लेश हो जाये, फिर अशुभ सोचे बिना अच्छे से पाँच मिनिट भी निकाल लो, ये पाँच उपवास की साधना परिपूर्ण हो चुकी। ये आनन्द तब आयेगा, जब आपके बेटे की माँ और आपकी माँ में विसंवाद हो जाये, फिर तेरे निर्णय का विषय है। देख, क्या करेगा? ये बाहर की बात मत समझना। माँ का पक्ष लोगे, कि बेटे की माँ का पक्ष लोगे? दोनों में आपको घाटा है। यदि तू बेटे की माँ का पक्ष लेता है तो धिक्कार हो तुझे, तू जन्म देने वाली को छोड़कर कहाँ जा रहा है? यदि तू स्वयं की माँ का पक्ष लेता है, तो धिक्कार हो कि जिसने तुझे जीवन सौंप दिया, उसके साथ तू कैसा व्यवहार कर रहा है? **वे उन्मत्त लोग हैं जो माँ के राग में पत्नी को छोड़ देते हैं। वे महा उन्मत्त लोग हैं जो पत्नी के राग में माँ को छोड़ बैठते हैं।** तो तुमको क्या करना चाहिये? माँ के चरण छूना, 'हे माँ! तुम तो मेरे लिये भगवती तुल्य हो। यदि आपको इससे परेशानी हुई, तो इसे क्षमा करो, मुझे बताओ कि क्या करना है।' और पत्नी से कहता है, 'हे देवी! तुझे मैं लेकर आया हूँ तो छोड़ कैसे सकता हूँ? बहुत अच्छा हो कि जैसा तुम अपनी माँ के साथ व्यवहार करती हो वैसा मेरी माँ के साथ करो।' माँ से कहना, 'माँ! जैसा तुम मेरी बहिन के साथ व्यवहार करती हो, वैसा इसके साथ व्यवहार करो।' दोनों का टेंसन (मानसिक तनाव) समाप्त। परन्तु गहरा पक्ष दोनों में से एक का भी मत लेना, क्योंकि तेरे लिये दोनों एक हैं। एक को भी छोड़ दिया तो पहले सोच लेना कि कलंक का टीका तेरे माथे पर लगने वाला है। पत्नी छोड़कर भागती है तो मेरे-जैसा आदमी कहेगा कि जब तेरे पास इतनी सामर्थ्य नहीं थी, तो शादी क्यों की? माँ को छोड़ेगा तो मैं कहूँगा कि कैसा अभागा है, इस कषाय के राग में जन्म देने वाली माँ को छोड़ दिया? क्या कह सकते हैं?

यहाँ तुम सैट न हो पाओ तो हमारे साथ चले चलना। यहाँ तो बहुत कुछ सहना पड़ता है। परन्तु सत्य यह है कि कहीं भी चले जाओ, **समता है तभी तुम जी पाओगे।**

समता नहीं है तो दुनियाँ में कोई तुम्हारा साथी नहीं है।

मैं छोटा था तब देखा। निकासी के समय मैंने कहा कि संसार की वधू को वरने जा रहा है तो कितना सम्मान। चंदोबे में जा रहा है। आज तो ऐसे अभागे लोग हो गये कि महाराज, जो मुक्तिवधू को वरने जा रहे हैं, उनके लिये भी चंदोबा नहीं लगाते। एक वृद्ध माँ कहती है कि पीछे मुड़कर मत देखना। उस युवा ने पीछे मुड़कर नहीं देखा, उसने इतनी बात मान ली। ज्ञानी! जब संसार की वधू से मिलने गया था, तब पीछे मुड़कर नहीं देखा था, तो जो मुक्तिवधू को वरने जा रहे हैं, वे पीछे मुड़कर कैसे देखेंगे? जीवन में उतने ही क्षण आनन्द के होते हैं जब जिनवाणी सुनते हैं। शेष मुझे पता है कि क्या करते हो। जब तक यहाँ होता है, तब तक कैसे भावों की विशुद्धि बढ़ती है। कई युवा तो बोल ही जाते हैं कि उस समय तो ऐसा लगता है कि महाराज बन ही जाओ। जैसे-ही बाहर निकले, सो पता नहीं क्या हो जाता है। अच्छे सुन्दर चेहरे वाले महाराज बने तो ये काले-कलूटे लोग सोचें मैं भी कैसा हूँ जो ये काले चेहरे से काले काम करने जा रहा हूँ। ये सुन्दर चेहरे वाला कितने सुन्दर काम करने जा रहा है। मैं तो नायक बनने जा रहा हूँ, ये भगवान् बनने जा रहा है। यहाँ यही कह रहे हैं आचार्यदेव कि -

सद्मार्ग की साधना करने वाले, जो शील की साधना में लवलीन हैं, उनके ऊपर घोर आपत्ति भी आ जाये, तो समता से सहन करते हैं। पूछो गजकुमार मुनि से, कैसे उपसर्ग आये, तब भी समता से सहन करते रहे।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।



शील के साथ मरण श्रेष्ठ

वरं तत्क्षणतो मृत्युः शीलसंयम-धारिणाम्।
न तु सच्छील-भङ्गेन कल्पान्तमपि जीवितम्॥ (279/सा.स.)

अन्वयार्थ—(शीलसंयम-धारिणाम् तत्क्षणतः मृत्युः वरं) शील-संयम के धारी साधुओं का संयम पालते हुए शीघ्र मरना अच्छा है **(तु)** परन्तु **(सच्छील भङ्गेन)** सम्यक् शील को भंग करके **(कल्पांतम् अपि जीवितं न वरं)** कल्पोंकाल तक जीना भी श्रेष्ठ नहीं है।

भावार्थ—हे भव्य! शील-संयम के साथ शीघ्र मरण श्रेष्ठ है, परन्तु सम्यक्शील को छोड़करके बहुत जीना भी श्रेष्ठ नहीं है।

चारित्र पूज्य है

धनहीनोऽपि शीलाढ्यः पूज्यः सर्वत्र विष्टपे।
शीलहीनो धनाढ्योपि न पूज्यः स्वजनेष्वपि॥ (280/सा.स.)

अन्वयार्थ—(सर्वत्र विष्टपे) सर्व जगह इस लोक में **(शीलाढ्यः)** चारित्रवान् पुरुष **(धनहीनः अपि)** धनहीन भी हो तो भी **(पूज्यः)** आदर के योग्य है, किन्तु **(शीलहीनः)** जो चारित्ररहित **(धनाढ्यः अपि)** धनवान् भी है वह **(स्वजने अपि)** अपने लोगों में भी **(पूज्यः न)** पूज्यनीय नहीं होता है।

भावार्थ—हे भव्यात्मन्! चारित्रवान् पुरुष धनहीन होने पर भी पूज्य है, किन्तु धनवान् चारित्रहीन अपूज्य ही है।

॥सद्-देशना॥

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज सारसमुच्चय जी में सहज दृष्टि से उस परम सत्य की व्याख्या कर रहे हैं जो धर्मभूत है। जगत् की सारी व्याख्यायें सम्प्रदाय की हैं, धर्म की कोई परिभाषा नहीं है। जो परिभाषा-शून्य हो चुका है, सम्प्रदाय-शून्य हो चुका है, पंथ-शून्य है, पक्ष-शून्य है, वही वस्तु का स्वभाव है। जो भी संज्ञायें हैं, पक्षों की हैं, सम्प्रदायों की हैं। धर्म तो स्वभाव ही है। स्वभाव प्राकृतिक है। जो-जो विकृतियाँ हैं, वे सब अधर्म हैं। जो कर्माश्रित है, वह अधर्म है। जो स्वाश्रित है, वह धर्म है। विकार अधर्म है। इसलिये क्षमा धर्म है, ऋजुता धर्म है, लघुता धर्म है, सत्यता धर्म है, निर्लोभता धर्म है, त्याग धर्म है, ममत्व का अभाव धर्म है, शील धर्म है।

इससे विपरीत जो भी है, वह सब अधर्म है। 'मैं कुछ हूँ,' अधर्म हो गया। 'मैं कुछ करने लायक हूँ' अधर्म हो गया। जहाँ अहमेदं-ममेदं भाव है, संकल्प-विकल्प है, वह सब अधर्म है। सँभलकर समझना। 'मैं ज्ञानी हूँ, इतना तपस्वी हूँ,' अधर्म है। 'मैं ज्ञानी हूँ, तपस्वी हूँ, लोग मुझे क्यों नहीं समझते हैं?' जिसे मैं धर्म समझता था, उसे आपको कहने की आवश्यकता ही नहीं थी। जो आप कह रहे हो कि मैं ज्ञानी तपस्वी हूँ, जो 'हूँ' है, वह धर्म नहीं है। जो 'हूँ' से रहित है, उसका नाम धर्म है। विश्वास मानिये, मिश्री को कभी नहीं कहना पड़ता कि आओ, मुझे पहचानो, मैं मीठी हूँ। मिश्री में मिठास होती है तो चीटियाँ स्वयमेव पहुँच जाती हैं। धर्मात्मा में धर्म की सुगन्ध होती है तो उसे सम्मान स्वयमेव मिल जाता है। इसलिये धर्मात्मा को चाहिये कि अपने सहज शील धर्म को न खोये जिससे कि बाहर के लोगों से सम्मान भी हो जायेगा। ये बहुत सरल है। **बाहर के लोगों से सम्माननीय हो जाना बहुत सरल है, भीतर से सम्मान प्राप्त कर पाना बहुत कठिन है।** दो दृष्टियाँ समझना। बाहर से तात्पर्य है कि दादा ससुराल गये, तब भी लोग सम्मान कर रहे हैं, क्योंकि उनको मालूम है कि कल तो उनको चला जाना है, सम्मान कर दो; लेकिन जितना इनके बेटे की माँ के भैया ने सम्मान किया है, उतना सम्मान इनका बेटा स्वयं कर देता, तो समझ में आता कि सम्माननीय जीव है। पर के पोतों से सम्मान करवा लेना इतना कठिन नहीं है, स्वयं के बेटे से तिलक लगवा पाना बहुत कठिन है। जिसका स्वयं का पुत्र सम्मान करता हो, वह समझ ले कि हाँ, मेरे पास कुछ है। भैया! आप किसी के बेटे को गाली मत देना और यह भी मत कहना कि बेटा पिता का ध्यान नहीं रखता। बेटों की चर्चा कल कर चुके, आज पिता की बात करना है। वर्तमान के वृद्धों को यदि अन्तिम श्वास सम्मान के साथ पूर्ण करना है तो मेरी इतनी-सी बात मान लेना कि आप पचास वर्ष पुराना जीवन जीना बन्द कर दो। अपने लिये जियो पुराना जीवन, परन्तु वर्तमान लोगों के लिये पुराना जीवन मत जियो। साठ वर्ष पहले आप दौड़ना जानते थे, चलना जानते थे, आज आपके हाथ में लाठी आ चुकी है। आप मुझे पचास साठ-साल पूर्व जैसा घुटनों से चलना दिखा दो? जब पुराने लोग जैसा नहीं चल सकते हो, तो वर्तमान के बच्चों को बूढ़ा बनाने का प्रयास क्यों करते हो?

घर में सास बहू का विसंवाद होता है, उसका मूल कारण यही है कि सासें अपनी पुरानी अवस्था को भूल चुकी होती हैं और नये लोगों से पुराने दिन देखना चाहते हो, कहाँ संभव है? आप वही नहीं बचे जो दस वर्ष पहले थे। जब आप वही नहीं बचे हो, तो दुनियाँ को वही क्यों देखना चाहते हो? सँभलकर सुनना, समझने की दृष्टि से समझना। धर्म की भूमिका को समझना।

पहले पौधा विशाल वृक्ष दिखता है, कुछ दिन बाद उसका भविष्य सूखा दिखता है। ये संसार नश्वर है। इन्द्रियों की अनुभूतियाँ हैं। ये **संतान की वृद्धि उस पौधे के तुल्य है जो प्रारम्भ में छोटे दिखते हैं, मध्य में विशाल दिखते हैं, फिर अन्त में सूखापन।** श्मशान घाट की राख सबको दिखती है, क्या यह सत्य नहीं है? जब यही सत्य है, तो आज से देखना प्रारम्भ कर दो। पौधा विशाल भी होता है, भविष्य देखते-देखते मुझे पौधा ही नहीं दिखा। भविष्य के बीच में अकारण साधन भी बहुत आते हैं। कहीं इस पहाड़ी पर गाय चढ़ गई तो बचा क्या भविष्य? और बीच में दिखा कि जड़मूल से नष्ट हो चुका। जिस शिशु में तुम भविष्य का विशाल वृक्ष देखते थे, एक दुर्घटना, तो किस्सा खत्म। गाय आ गई तो पौधा दिखाई नहीं देता है।

माताओ! आज से जीवन बदल दो। **पर्याय ने पर्याय तुम्हें प्रदान नहीं की। पर्याय कोई भी हो, पर्याय कभी पर्याय प्रदान नहीं करती है। पर्याय में होने वाले परिणाम अगली पर्याय को प्रदान करते हैं।** निगोद की पर्याय से निकला जीव सीधे मनुष्य बनकर सिद्ध बन सकता है, तो नारीपर्याय से निकल करके जीव, मनुष्यत्व को प्राप्त करके, निर्ग्रन्थ दशा को प्राप्त करके, निर्वाण को प्राप्त कैसे नहीं कर सकता है? देह का पुरुषार्थ तुम्हें पर्वत पर चढ़ा सकता है, लेकिन परिणामों का पुरुषार्थ तुम्हें चौदहवें गुणस्थान तक चढ़ा सकता है। इसलिये जो भी धर्म करो, धर्म में आकर धर्म करो, तो धर्म करने का विचार करो, अन्यथा तुम्हारा धर्म देखकरके वर्तमान के युवा तुम्हारे धर्म को ढोंग कह देते हैं। धर्म में आकर धर्म करो और धर्म को खोकर धर्म करोगे तो वर्तमान के युवा तुम्हें ढोंगी कहेंगे। आपकी कषाय के राग में कहीं प्रतिमा बदनाम न हो जाय, आपकी कषाय के राग में आकरके कहीं मुनिचर्या बदनाम न हो जाय। ये श्रावक से साधु तक को कह रहा हूँ। धर्म में आकर धर्म करो, धर्म के लिये धर्म करो, धर्ममय होकर धर्म करो। ये जिनवाणी है, ग्रन्थ है, ग्रन्थ खोलकरके

स्वाध्याय प्रारम्भ किया। शाम का समय है। एक बेटे ने आकर लाइट बन्द कर दी। हो सकता है कि वह आपकी परीक्षा कर रहा हो कि ये मेरे दादा स्वाध्याय कर रहे हैं, ये वास्तव में धर्मात्मा हैं कि ढोंगी हैं? लाइट बन्द करके, टार्च जलाकर, इनका चेहरा देखता है कि अब ये क्या कर रहे हैं? यदि ये जीव धर्म करने के लिये स्वाध्याय कर रहा था, तो इसका अलग रूप होगा। यदि ये समय को पूर्ण करने के लिये ग्रन्थ पढ़ रहा था, तो इसका रूप अलग होगा। धर्म खोकरके धर्म कर रहा है, तो उसका रूप अलग होगा। बालक देख रहा था कि अब ये जीव क्या कर रहा है? स्वाध्याय तो मौन से कर रहा था, जैसे-ही लाइट बन्द की, वह मुखरित हो उठा। उसने टार्च और सामने लगा दी, बोला, भो ज्ञानी! तू अक्षर गिनने को आया था कि अक्ष को पहचानने आया था? तू अक्ष को लिखने के लिये आया था, कि अक्ष की पुष्टि के लिये आया था? अक्ष यानि आत्मा और अक्ष यानि इन्द्रियाँ। आपका लक्ष्य सासों के अक्षरों पर था, कि इन्द्रियों की पुष्टि में था, कि आत्मा पर था? मुझे तो परिणामों की विशुद्धि के लिये यहाँ आना था, भावों की पवित्रता के लिये मैं स्वाध्याय कर रहा था। कोई बात नहीं है, लाइट बंद हो चुकी है, मैं जाप किये लेता हूँ, क्योंकि मुझे तो परिणाम अच्छे रखना है, मैं तो इसीलिये स्वाध्याय कर रहा था। बेटा आयेगा, आपके चरण स्पर्श करेगा, कहेगा, 'दादा! क्षमा करना। मैंने लाइट बन्द कर दी थी।

क्रोध की उत्पत्ति के कारण मिलने पर भी, निमित्तों के आने पर भी, जो क्रोध को प्राप्त नहीं हो रहा है, उसके पास उत्तमक्षमा धर्म है। तू धर्मात्मा कहाँ है? तू धर्म खोकर धर्म कर रहा है। अक्षर पढ़ने के राग में तू मुझे डाँट रहा है। तूने किया क्या? अपना धर्म खोया, मेरे परिणाम कलुषित किये सो मेरे धर्म को खोया, हे ज्ञानी! तू दोगुना पापी है, कौन कहता है तू धर्मात्मा है? धर्म करके धर्म करना सीखो। धर्म की आड़ में धर्म करना मत सीखो। बालक कहेगा कि धर्म में आकर धर्म करो। क्षमा लाकर स्वाध्याय करो। आपने दान की घोषणा कर दी, लेकिन आपका नाम पटिया पर नहीं लिख पाया, फिर आप कहते हो कि मैंने इसलिये दिया था क्या? तो बेटा कहेगा, 'ज्ञानी! धर्म करके धर्म कर। तूने मानकषाय के लिये दिया था, कि जिनशासन की प्रभावना के लिये दिया था? बहुत कम लोग हैं जो धर्म में आकर धर्म कर पाते हैं।

'महाराज! अब तो मैंने ब्रह्मचर्य ले लिया है।' तो ब्रह्म में लीन होने के लिये लिया है या दुनियाँ में हल्ला करने के लिये लिया है? यह भी अब्रह्म है। आपने स्त्री मात्र के विषयसुख के त्याग को ब्रह्मचर्य समझ लिया है। ज्ञानी! कषाय ही अब्रह्म है। जो-जो कषाय है, वह सब अब्रह्म है। आपने मानकषाय कर ली, तो एक प्रकार से अब्रह्म हो गया। अठारह हजार शील में दस धर्म भी आते हैं। धर्म खोकरके कितना धर्म किया है? अभिषेक के लिये कलश उठाया और आपके सामने कोई दूसरा आकर कर ले, तब भावों से पूछो? अहो! धर्म खोकर धर्म किया। धर्म में आकर धर्म करता तो तू कहता कि पहले आप करिये। कैसे अज्ञानी जीव हैं। घर में भोजन करता है तो कहता है कि पहले आप बैठो, पहले आप बैठो। मोह में पहले दूसरे को भेजता है, भगवान् के अभिषेक के लिये नम्बर आया तो पहले कलश उठाता है कि मैं नहीं करने दूँगा, मैं करूँगा। तब तेरी प्रज्ञा कहाँ पलायन कर गई थी? पूजन की थाली में एक बादाम बचती है तो भैया धीरे-से चावल में छुपा देता है, क्योंकि महार्घ्य में मुझे चढ़ाना है। शान्तिधारा बिना बोली के हो रही हो तो देखो लोगों की क्या हालत होती है। सबसे कहता जरूर है, आओ, कर लो, कर लो, लेकिन कलश छोड़ता बिल्कुल नहीं है। जैसे सासू के नोट। दामाद जाता है, सासू टीका करती है, तो वह कहता है कि नहीं चाहिये, नहीं चाहिये; लेकिन पकड़े रहता है, छोड़ता नहीं है। जब जीव रिश्तेदारी में जाता है, तब कहता तो यही है कि नहीं चाहिये, नहीं चाहिये, लेकिन हाथ थाली से दूर कर देता है कि तुम रख तो दो, हम तो ऐसे-ही कह रहे हैं। जिसे आप व्यवहारिकता कह रहे हो, वह शुद्ध मायाचारी है, पाप है। इससे तुमको नियम से तिर्यञ्च गति का आस्रव-बंध होगा। इसलिये सँभलकर जीना। मासिक, तिमाही, छः माही पेपर होते हैं, उनके नम्बर भी जुड़ते हैं। ऐसे-ही जीवन की जो भी तुम क्रिया कर रहे हो, उसके भी नम्बर जोड़े जायेंगे। बचपना शरीर का होता है, काषायिक भावों का कोई बचपना नहीं होता। बच्चे भी पाप करेंगे तो पाप का बन्ध उनको नियम से होगा। धर्म में आकर धर्म करो। धर्म को खोकर धर्म मत करो। आपके घर में आपका सम्मान होना चाहिये। और यदि त्यागी हो, सारसमुच्चय ग्रन्थ को सुन रहे हो, जगत् में **ऐसा कौन-सा जीव है जो भगवत् शक्ति से शून्य हो? विश्व में प्रत्येक जीव के अन्दर भगवत्ता विद्यमान है। यदि छोटे के प्रति भी आपके अशुभ भाव**

आ रहे हों तो उसके भी पैर पड़ लेना, क्योंकि वह भी भावी भगवान् है। करोड़ों का दान देना सरल है, परन्तु छोटों से क्षमा माँगना कठिन है। करोड़ों के दान में सम्मान बढ़ेगा, क्षमा माँगने में मान विगलित होगा। जिनको निरोग रहना हो, वे क्षमा माँगना सीख लें, तो उनका रोग ठीक होना शुरू हो जायेगा। **जो मानसिक रोग से ग्रसित प्राणी हैं, वे यदि अपना रोग ठीक करना चाहते हों, तो क्षमा माँगना सीख लें।** इसलिये तुम्हारे यहाँ उत्तम क्षमा से धर्म प्रारम्भ होता है और क्षमावाणी पर पूर्ण होता है। क्षमा माँगना सीख लो और क्षमा करना सीख लो, आपके रोग आज ही ठीक हो जायेंगे। **मानसिक तनाव से पाचनशक्ति मंद हो जाती है, फिर पेट में गैस बनती है, फिर वह गैस मस्तिष्क में भरती है, फिर आदमी पागल हो जाता है।**

मेरे मित्र! वर्तमान के युवाओं को समझाना सीखो। मुझे मालूम है कि दो भाइयों के भाव आपस में खराब हो रहे हैं, झगड़ा होने की पूरी-पूरी सम्भावना है, यदि मैं धर्मात्मा हूँ, तो नारद जी का काम नहीं करूँगा। तो क्या करना चाहिये? 'अरे भैया! आपका छोटा भैया तो आपको पिता के समान मानता है।' इतना शब्द सुनते ही उनके हार्मोन्स बदल गये। गाय के सामने किसान लाठी लेकर पहुँच जाये तो उसके शरीर के परिणाम और रक्त की धारा बदल जाती है और उसी गाय के सामने हरी घास लेकर किसान पहुँच जाये और साथ में बछड़ा लेकर पहुँच जाये, तो गाय के आँचल में दुग्ध वृद्धिमान हो जाता है। भूल जाओ वे पुरानी बातें। पूछो इन बुजुर्गों से, कहीं मेहमानी करने भी जाते थे तो मीठा का डिब्बा साथ में लेकर जाते थे। जब गाय हरी घास लेकरके दूध छोड़ देती है और बछड़ा कदाचित् न बचा हो, खत्म हो गया हो, तो पहले खाना डाल देता है, तो वह दूध देना प्रारम्भ कर देती है। एक तिर्यञ्च भी प्रीति को प्राप्त हो जाये तो उसके हार्मोन्स बदल जाते हैं। अब जब तुम मीठे का डिब्बा लेकर जाते हो, तो 'आज तो मामा आये, मीठा लेकर आये' तो घर का वातावरण बदल जाता है। जिसे तुम रूढ़ियाँ समझते हो, उसमें आध्यात्मिकता है। मीठे को देखकरके बच्चे-बच्चे के भाव बदल गये। यदि यह मालूम चल जाय कि किसी के घर में झगड़ा हो गया, तो दो-गुना मीठा लेकर जायेगा। किसी के घर मृत्यु हो जाये, तब भी मीठा लेकर जाते हैं। इसके यहाँ दुःख है इसलिये भोजन लेकर चलो, उसे खिलायेंगे। खाने मत जाना। '**श्राद्धं न भुंजीत।**' मरे के यहाँ क्या खाने जाने का?

तेरहवीं का नहीं खाना। बेचारे के घर में तो कष्ट है। देखो कैसी होनी थी कि पिता जी चले गये, बेटा कंगाल हो गया। घर में कुछ नहीं था, जमीन बेचकरके तेरहवीं करनी पड़ी। ये सब परम्परायें बन्द करो, बहुत अच्छा है। आपने शान्ति विधान किया है, वहाँ दृष्टि को देखो। अपन अच्छा सोचो। जो परिणामों में कलुषता चल रही थी, यदि उपवास करो तो समता है या शान्ति से भोजन करो तो समता है। भगवान् की भक्ति-पूजन के माध्यम से सारे रिश्तेदार मिल गये, एक-दूसरे से बातचीत हो गई, इनका दु:ख हल्का हो गया, अब तुम अपने घर जाओ। कोई कहे, भैया! बड़े लोगों के यहाँ हो जाता है। इस सोच को बदल दो। जो जितना बड़ा होता है, उसकी तृष्णा भी उतनी बड़ी होती है। हरदा नेमावर में एक ऐसा परिवार है जिसके घर में सौ सदस्य हैं। उस परिवार में आज की तारीख तक हिस्सा-बाँट नहीं हुआ है। वे दादा कह रहे थे कि जब शाम को कोई बाहर का आ जाता है तो कहता है कि तुम्हारे यहाँ कोई कार्यक्रम है क्या? जब सौ दो सौ लोग भोजन करने जाते हैं तो उनके चरणपादुका बाहर होते हैं और घर में हलचल होती है। बाहर के लोग कहते हैं कि कोई कार्यक्रम है, तो मैं कहता हूँ हाँ, कार्यक्रम ये है—**सत्त्वेषु मैत्रीं गुणिषु प्रमोदं।** हम सब मैत्री के साथ रहते हैं, बड़े आनन्द के साथ रहते हैं, तो लोगों को आश्चर्य लगता है। इस काल में इतने बड़े परिवार के साथ रह पाना बहुत कठिन है। ये दुनियाँ एक सूत्र बना चुकी है—'हम दो, हमारे दो'। ये पागलपन है। एक समय था जब घर में सारे सदस्य एकसाथ रहते थे तो एकाध भैया मन्दिर में पूरे समय बैठा रहे तो कोई तनाव नहीं रहता था। अब एक-एक हो गये, अब मन भी करता है कि चलो, महाराज जी के प्रवचन सुनकर आयें, लेकिन अकेले हैं तो दुकान भी खोलना है। प्रीति कम हो गई।

यदि आपको रोगों से मुक्त होना है तो क्षमा करना सीखो और क्षमा माँगना सीखो। जब आपने कहा कि छोटा भैया तो आपको पितातुल्य मानता है। बड़े भाई से मिले तो भैया! कुछ भी हो, आपका बड़ा भैया तो सही में देवता है। क्यों? एक बार चर्चा कर रहे थे कि मुझे अपना भैया तो बच्चों से भी ज्यादा प्यारा है। यदि लड़का खत्म हो जाये तो हम दूसरा जन्म दे सकते हैं, लेकिन दूसरा भैया कहाँ से लायेंगे? बेटे उत्पन्न करने की सामर्थ्य तुम्हारे पास है, लेकिन भैया उत्पन्न करने की

सामर्थ्य तुम्हारे पास नहीं है। इसलिये भैया को आँच नहीं आने देना। जब इन शब्दों का प्रयोग किया तो छोटा भैया कहता है कि मैं बड़े भैया के पास जाता हूँ, अभी क्षमा माँगकर आता हूँ। मेरे मन में ऐसे भाव आ रहे थे, गुस्सा-सी आ रही थी। ओ हो! तुमने दो टूटते हृदयों को जुड़वा दिया, इसका नाम धर्मात्मा है। तुमने जाकर यहाँ की वहाँ, वहाँ की यहाँ की, नारद का काम किया, जुड़ते हृदयों को तोड़ दिया, यह धर्मात्मा की पहचान नहीं है। ऐसा कहते रहेंगे, तबतक भाइयों के द्वारा सम्मान को प्राप्त होते रहेंगे। ये परम सत्य है।

बन सके तो गोंद का काम करो। सुई का काम करो। जीवन में कभी छुरी का काम मत करना। यदि भूल हो चुकी हो तो आज सुधार कर लेना, क्योंकि यह सुनिश्चित है कि एक सप्ताह के अन्दर हम सभी को जाना है। कोई सोमवार को जायेगा, कोई मंगलवार को, कोई बुधवार, गुरूवार, शुक्रवार, शनिवार, रविवार को जायेगा। इन सात दिनों के अन्दर सभी लोग जायेंगे, तो क्यों न हम अच्छे से रहें? कदाचित् किसी जीव ने कषाय करना धर्म ही में चुना हो तब भी तुम कषाय नहीं करना। 'ठीक है, भाई! जब तू अपना स्वभाव नहीं बदल सकता है, तो मैं अपना साम्य स्वभाव क्यों छोड़ूँ?'

एक सज्जन मेरे से ही कहने लगे—'महाराज! आप आचार्य हो, थोड़ा डाँटना सीख लो।' ज्ञानी! आचार्यत्व का मतलब यह है क्या कि कषाय करना सीख लो? यह कौन-सा धर्म हुआ? कौन-सा गुण बढ़ गया? समरस। वह पानी श्रेष्ठ है जो वनस्पति से लेकर पंचेन्द्रिय तक को हरा कर देता है। **वही साधुपुरुष है, वही धर्मात्मा पुरुष है, जो पानी की भाँति हो। पानी वनस्पति में जाय तो उसको हरा-भरा कर देता है और तुम्हारा कण्ठ सूख रहा हो तो पानी जाकर ताजगी प्रदान कर देता है, उत्साह-शक्ति भर देता है। जैसे पानी एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक के जीवों को आर्द्र कर देता है, ऐसे-ही तुम्हारी वाणी एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक के जीवों को आनन्द दे, वही धर्म का उपदेश है, वही धर्मात्मा है।** गुरु को अपने शिष्यों को यही सिखाना चाहिये। कभी किसी पर कटाक्ष, कभी किसी के आलोचना पुराण नहीं। मात्र तत्त्व की व्याख्या करो। लोग आनन्दित होने आते हैं, कलुषित होने नहीं आते। आपने क्यों रखे श्रीफल? आनन्दित होने के लिये। धर्मसभा में आया जाता है, कलुषित होने

के लिये धर्मसभा में प्रवेश नहीं किया जाता। यदि यहीं धर्मसभा में भाव बिगड़ गये, तो भाव सुधारने कहाँ जाओगे? कुम्भकार घड़े ठोकता जरूर है, परन्तु फोड़ने के लिये नहीं ठोकता, सुधारने के लिये ठोकता है। अन्दर हाथ पसार के ऊपर मारे चोट।

तत्त्व की व्याख्या में आपने कभी वीर रस का प्रयोग किया, कभी शान्त रस का प्रयोग किया। इनके करने के बाद भी, निर्वेद भाव होना चाहिये। साहित्य में नव रस हैं।

भोजन के रस नीरस भी हों तो काम चलेगा, लेकिन वाणी सरस होना चाहिये, तो उसे नीरस भोजन भी सरस लगेगा। यदि भोजन मधुर कराया है और वाणी नीरस पहुँचती है, तो यही कहेगा कि चलो, कहीं-और देखेंगे। क्यों भैया? कब आये? कब जाना है? खा-पीकर आये हो कि खाना है? हमारे यहाँ बहुत बना है। खा लो, खा लो। वह कहेगा 'चलो यहाँ से, क्या खा लो?' एक ऐसा बोलता है—हमारा अहोभाग्य होगा जो आप मेरे आतिथ्य को स्वीकार कर लो। धन्य हो उस श्रावक को। जब तुम्हारे घर में मुनिराज पधारते हैं, आपकी भक्ति तो देखो। द्वार पर खड़े होकर 'भो स्वामिन्! आप मेरी कुटिया में पधारो, मेरा घर पवित्र हो जाये। खिलाते समय भजन गा रहे हैं और भेजते समय भजन गा रहे हैं। साधुओं का भोजन भी भजन होता है और रागियों का भोजन भोग ही होता है। आप देखो श्रावकों की आस्था। साधुओ! इनकी भक्ति को निहारो, इनके धैर्य को निहारो। ये श्रावक शील की पूजा कर रहे हैं, धर्म की पूजा कर रहे हैं और धर्म में होने वाले धर्मात्मा की कर रहे हैं।

कई नगरों में परम्परा है। श्रावकों को चैन नहीं पड़ता त्यागियों को भोजन कराये बिना। यदि साधु नहीं हैं तो नगर में जितने प्रतिमाधारी हैं, उनको निमन्त्रण देते हैं। क्यों? मेरा अतिथि-सत्कार व्रत है, मैंने अतिथि को आहार नहीं कराये, मैं भोजन कैसे करूँ? कई नगरों में ऐसी परम्परा है कि त्यागी-व्रतियों को भोजन कराने में धर्म मानते हैं। माँ! कोई बाहर से व्रती आ जाये तो तुम कितनी भक्ति से भोजन कराती हो, उसे धर्म मानती हो। ऐसे-ही तुम इतनी धर्मात्मा हो जाओ, अपरिचित हो जाओ कि तुम्हारी बहू तुम्हें भोजन कराके धर्म माने, कि मैं आज त्यागी को भोजन करा रही हूँ। सम्मान से अन्तिम श्वास लेना चाहते हो तो आज से मौन का अभ्यास प्रारम्भ कर दो। **जितना कम बोलोगे, उतना तुम्हारा सम्मान जीवित रहेगा।** करते बनता

नहीं है, खाते बनता नहीं है, पचता है नहीं, परन्तु बोलना इतना ज्यादा है कि कान फूट जायें। **जितने अनादर होते हैं वह अधिक बोलनेवालों के होते हैं।** हाथ में एक माला ले लो, बस अपनी माला फेरो।

शासन (भारत सरकार) एक समय तक ही तो आपसे काम लेती है, फिर आपको पेंसन देना शुरू कर देती है। शासन ने तो कह दिया कि तुम भगवान् का भजन करो, तब भी ऐसे अभागे लोग हैं कि वे दुकान खोलकर बैठ गये। ये स्वयं के साथ अतिभारारोपण है। स्वयं के साथ छल मत करो। जिनकी सर्विस पूरी हो चुकी है, उनसे कहना है, तुम नयी सर्विस प्रारम्भ करो यानि जिनवाणी का स्वाध्याय करो और समाधि की तैयारी करो, अपना हित चाहते हो तो। जैसी दुनियाँ मरती है, ऐसे मर गये, तो क्या? आजकल के लोग समझते हैं कि अच्छा मकान बना लूँ, अच्छा पैसा कमा लूँ, तो मैं बहुत बड़ा आदमी बन जाऊँगा। बया पक्षी इतना अच्छा घोंसला बनाता है, ऐसी मिट्टी खोज कर लाती है जो रात्रि में चमकती है, घोसलों में प्रकाश होता है।

जो पैसा कमा करके, जन्म लेकरके, जन्म देकर के, घोंसले बना करके चला जाता है, वह बहुत महान् नहीं है। महान् वे हैं जो घोंसला छोड़कर पिच्छी-कमण्डल लेकर जाते हैं। देखो आज के बच्चे बहुत समझदार हो चुके हैं। इनके साथ बहुत शान्ति से जीना चाहो तो पहले के बच्चे 20-25 साल में जितना समझ पाते थे उतना आज तीन साल में समझ जाते हैं। आप कम्प्यूटर नहीं चला पाओगे, वे तुम्हें सब दिखा देंगे। एक ज्ञानी महावीर स्वामी की पूजा बड़ी तन्मयता से कर रहा था, तभी उसकी डिबिया बज गई, बेचारा आधी पूजा छोड़कर बाहर चला गया। मैंने कहा, 'ओहो! कहीं घण्टी के चक्कर में अन्तिम घण्टी बज जाये तो बेचारा भगवान् के द्वार से बाहर मरने गया। कम-से-कम मन्दिर में उपदेश के समय ये घण्टियाँ बन्द करके रखा करो। कहीं उस घण्टी के साथ अन्तिम घण्टी बज गई तो तू कहाँ जायेगा? कम-से-कम मोबाइल लेकर मन्दिर मत आया करो। जो मोबाइल चलाना नहीं जानते, वे बड़े भाग्यवान् जीव हैं।

यहाँ आचार्यभगवन् कह रहे हैं कि हे जीव! शीलवन्त पुरुष धन से हीन भी क्यों न हो, तब भी सर्वत्र पूजित है, सभी जगह पूजा जाता है। जब रावण सीता से

कह रहा था—'हे देवी सीते! आप मुझे स्वीकार लो। इस स्वर्णपुरी लंका का पट्टमहिषी पद स्वीकार लो।' तब ताकत आ गई शीलवन्ती सीता के पास जिससे उसने कहा—'हे रावण! **शीलहीन पुरुष का धन केवल मल है, शीलवन्त पुरुष की दरिद्रता भी आभूषण है।** शीलविहीन का धन केवल मल है, इसलिये आपके धन की मुझे कोई आवश्यकता नहीं।' धिक्कार हो उन जीवों को, जो पैसे के राग में अपने शरीर का भी व्यापार करते हैं। धनहीन भी यदि शील सहित है, तो पूज्य है। जिसके पास शील धर्म नहीं है, वह कितना ही धनपति क्यों न हो, अपने परिवार के द्वारा भी सम्मान को प्राप्त नहीं होता।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।



चारित्र की चमक

वरं शत्रुगृहे भिक्षा याचना शीलधारिणां।
न तु सच्छीलभङ्गेन साम्राज्यमपि जीवितम्॥281॥
वरं सदैव दारिद्र्यं शीलैश्वर्यसमन्वितम्।
न तु शीलविहीनानां विभवाश्चक्रवर्तिनः॥282॥

अन्वयार्थ—(शीलधारिणां) चारित्र पालने वालों को **(शत्रुगृहे)** शत्रु के घर में भी **(शिक्षा याचना वरं)** भिक्षा लेना अच्छा है **(तु)** परन्तु **(सच्छील-भङ्गेन)** सदाचार को नाश करके **(साम्राज्यं अपि जीवितम् न)** चक्रवर्ती होकर भी जीना ठीक नहीं है। **(शीलैश्वर्यसमन्वितम्)** शील या चारित्र रूप धन सहित **(द्रारिद्र्यं)** दरिद्री होना **(सदैव वरं)** सदा ही अच्छा है **(शीलविहीनानां)** जो चारित्र से शून्य हैं **(चक्रवर्तिनः विभवाः न)** उनकी चक्रवर्ती की विभूतियाँ भी ठीक नहीं हैं।

भावार्थ—हे जीव! चारित्र के साथ भिक्षा माँगना श्रेष्ठ है, परंतु चारित्र-विहीन का चक्रवर्ती पद भी व्यर्थ है। शील-संयम सहित दरिद्री होना अच्छा है, परन्तु चारित्र-शून्य होना अच्छा नहीं है।

॥सद्-देशना॥

ज्ञानियो! भाषा अपने आप में मृतक है। **भावों की अभिव्यक्ति का कोई साधन है उसका नाम भाषा है। इसलिये भाषा महान् नहीं है, भाव महान् हैं।** लोक ने धर्म को एक क्रिया से जोड़कर रखा और भगवान् को अपने से दूर करके रखा। सत्य है, जो धर्म है, उस पर विश्व का लक्ष्य पहुँच पाये तो सारा विश्व भारत के ऋण को कभी चुका नहीं सकता। लोग ग्रन्थों को पढ़-पढ़कर धर्म को पढ़ते हैं, जबकि धर्म का स्वभाव जो है वह ग्रन्थों में नहीं है, वह निर्ग्रन्थों में है। धर्म की खोज ग्रन्थों में जो भी करेगा, वह नियम से लड़ेगा। जब से ग्रन्थों में धर्म की खोज होने लगी, तब से विसंवाद प्रारम्भ हो गये। जब प्रकृति से धर्म की खोज होती थी, तब हम सब एक पंक्ति में बैठते थे। मध्यकाल में ग्रन्थों का लेखन हुआ है, उस समय धर्म गौण हो गया था, सम्प्रदाय प्रधान हो गया था और प्रत्येक व्यक्ति ने अपने विचारों को धर्म कहना प्रारम्भ किया, जबकि व्यक्ति का विचार धर्म नहीं होता है। धर्म के अनुसार व्यक्ति का विचार होना चाहिये। व्यक्ति का विचार यदि धर्म हो जायेगा,

तो धर्म के कई रूप हो जायेंगे, हर व्यक्ति अपना-अपना धर्म कहेंगे, जबकि ये कोई भी धर्म नहीं है। विचार धर्म नहीं है, वस्तुस्वरूप धर्म है। भारत की भूमि पर कब से धर्म प्रारम्भ हुआ है? इस बात को बोलना ही अधर्म है।

भैया! दूरियाँ दूरियों को बढ़ाती है। धर्म की सत्यता को समझना है तो एक दूसरे के पास बैठकर विचार करने की आवश्यकता है। विचार करने की आवश्यकता तो है, लेकिन विचारों को धर्म मत कह देना।

धर्म और विचार। धर्म अद्वैतभूत है, विचार द्वैतभूत हैं। धर्म अद्वैत है, विचार द्वैत है। धर्म में द्वन्द्व नहीं होता है, विचारों में द्वन्द्व होता है। नगर अवाच्य है, मौन है, अवक्तव्य है, लेकिन विचार करने वाले इतना विचार कर लेंगे, कि आपस में द्वन्द्व छिड़ जायेगा कि मैं इनके विचारों से सहमत नहीं हूँ, मैं उनके विचारों से सहमत नहीं हूँ। **जहाँ परस्पर के विचारों के आदान-प्रदान के साथ एक-दूसरे का आरोपण कराने का भाव होता है, उसका नाम हिंसा है, उसका नाम सम्प्रदाय है। निज के विचारों को पर पर थोपना, यह भावों की हिंसा है।** व्यक्ति की स्वतन्त्रता का वेदन नहीं होने देना। आज भारत के साथ क्या हुआ? एक भैया बोल रहे थे कि स्वतन्त्र विचारों पर 'पर' के विचारों का आरोपण था, उस पर के विचारों के आरोपण को हटाया है, हम तो स्वतन्त्र थे ही, हम परतन्त्र हुये कब? वही भारत है, वही नदियाँ हैं, वही तालाब हैं, वही पर्वत है, वही समुद्र है। यहाँ से एक भी वस्तु गई नहीं है और एक भी वस्तु आयी नहीं है। मात्र पर के विचारों में हम जी रहे थे, वे विचार हट गये हैं, मैं तो स्वतन्त्र ही हूँ। मैं परतन्त्र हुआ ही नहीं था। यदि किसी पर राज्य करना हो तो धन पर राज्य नहीं हो सकता, जब तक दूसरे के विचारों को दबा कर नहीं रखा जाये। बड़े-बड़े ऋषि, मनीषी, विचारक धर्म के पास नहीं पहुँच पाये, सम्प्रदाय के पास बैठ करके जीवन को सान्त कर लिये। धर्म संकुचित नहीं है, धर्म विराट् है। सम्प्रदाय संकुचित है। जब हम सम्प्रदाय को देखेंगे तो सीमित संख्यायें दिखेंगी। जब हम धर्म को देखेंगे तो असंख्यात दिखेगा। अद्वैतभूत। सम्बन्ध सम्प्रदाय है, वस्तुस्वरूप धर्म है। आप पुत्र हैं, आप पिता हैं, आप भाई हो, आप पति हो, मेरे मित्रो! ये सम्बन्ध हैं, धर्म नहीं है। जीवद्रव्य तो त्रैकालिक है। वह धर्म है। सम्बन्ध नष्ट होंगे, लेकिन जीवत्व नष्ट नहीं होगा। इसलिए वैदिक कहो, जैन कहो, बौद्ध कहो, अन्य मुस्लिम

कहो, ईसाई कहो, पारसी कहो, ये धर्म नहीं हैं, विचार हैं। अब धर्म की व्याख्या प्रारम्भ करो। जहाँ सारे जगत् के लोगों के विचार शान्त होते हैं, वहाँ भारत की भूमि का धर्म प्रारम्भ होता है। जब-जब वैज्ञानिकों की बात करोगे तो भारत में अणु-परमाणु की व्याख्या करने वाला दर्शन है जैन और वैशेषिक। शून्य की बात करोगे, तो जितने विश्व में कर्ता होंगे, उनको कहना पड़ता है कि भारत न जाते तो मुझे जैनाचार्यों से 'शून्य' न मिलता। यह तो आश्चर्य है कि क्षत्रियों द्वारा प्रवाहित जो मार्ग था, उसको ब्राह्मणों ने रक्षित किया और उपभोग के लिए वैश्यों के हाथ में चला गया, इसलिए सबके पास नहीं पहुँच पा रहा है।

'वीर हिमाचल तें निकसी।' भगवान् महावीर कोई वैश्यपुत्र नहीं थे, ब्राह्मणपुत्र नहीं थे, वे क्षत्रियपुत्र थे। तीर्थंकर चौबीस हुए और ऐसी अनन्तानन्त चौबीसियाँ हुई हैं। तीर्थंकर का जन्म क्षत्रिय कुल में ही होता है। और जो महावीर स्वामी के प्रमुख शिष्य गौतम थे, वे ब्राह्मण थे। गंगा प्रकट कहाँ से हुई? क्षत्रियों से। और प्रवाहित कुण्ड में कहाँ जा रही है? ब्राह्मण। और पान कर रहे हैं वैश्य, जो तराजू लिए बैठे हैं, किसी के पास भेज ही नहीं रहे हैं। जिस विचार को सारे विश्व में जाना चाहिए था, वह विचार तुम्हारी सीमा में रह गया है। पहले क्रियापक्ष को एक तरफ रख देना चाहिए। वैदिक दर्शन में जब पढ़ते हैं तब वेदों का क्रियापक्ष खड़ा होता है और उपनिषदों का ज्ञानपक्ष देखना चाहिए। क्रियापक्ष जीवन में आडम्बर-भूत है और ज्ञानपक्ष शुद्ध धारा है। **कठिन क्रियाधारा नहीं होती, कठिन ज्ञानधारा होती है।** धर्म अद्वैत है, विचार द्वैत है। जो-जो स्वभाव है, वह धर्म है। यदि हम जैन को धर्म कहेंगे, बौद्ध को धर्म कहेंगे और वैदिक धर्म कहेंगे, तो आज का वैज्ञानिक युवा आपसे प्रश्न करेगा कि आप भारतीयों का धर्म है क्या? आप सत्य बताइये, हम विवेक से युक्त होकर आये हैं। हम आपके भेष को पूजने नहीं आये हैं, हम धर्म के लिये आये हैं। आप तो हमे वह बताइये जिससे आत्मशान्ति हो। ये तो भेष है, हम भेषों को जानना नहीं चाहते। आप तो हमें ये बताइये कि धर्म क्या है?

'वत्थुसहावो धम्मो।' विश्व में धर्म की कोई परिभाषा इससे विराट् नहीं मिलेगी। इसमें न कोई जैन शब्द है, न वैदिक शब्द है, न अन्य कोई शब्दों का प्रयोग है 'वत्थुसहावो धम्मो'। **जो वस्तु का स्वभाव है, वही धर्म है।** अग्नि का स्वभाव है उष्णता, पानी

का स्वभाव है शीतलता, जीव का स्वभाव है ज्ञान-दर्शन (चेतनता)। जो-जो वस्तु का स्वभाव है, वह उसका धर्म है।

अब आप खोजिये—वस्तुस्वभाव खोजेगा तो धर्म मिलेगा, वस्तुस्वभाव नहीं खोजेगा तो सम्प्रदाय मिलेगा। 'पंचास्तिकाय' में कुन्दकुन्द स्वामी ने लिखा है—भाव, अभाव, अभावभाव, भावाभाव। सत् का विनाश नहीं होता है, असत् का उत्पाद नहीं होता है। यदि आप कहो कि जीव परमाणु से बना है, तो परमाणु जड़वस्तु है और जीव चेतन-वस्तु है, एक विजातीय वस्तु से दूसरी विजातीय वस्तु की उत्पत्ति होती नहीं है। विजातीय पर्याय तो उत्पन्न हो सकती है, लेकिन वस्तु उत्पन्न नहीं होती। जो पौद्गलिक है, जड़ है, वह जड़भूत ही परिणमन करेगा और जो चेतन है, वह चैतन्य रूप ही परिणमन करेगा। चेतन का परिणमन जड़रूप नहीं हो सकता और जड़ का परिणमन चेतनरूप नहीं हो सकता। वर्तमान का विज्ञान कहता है कि ऊर्जा का विनाश नहीं होता, मात्र एक पर्याय से दूसरी पर्याय में परिणमन होता है। एक रस्सी में किसी ने आग लगा दी, वह नष्ट होगी क्या? बहुत विवेक से बोलना। मैं कह रहा हूँ भारत की भूमि में जन्म लेने के बाद भी यदि कोई परमाणु से आत्मा की उत्पत्ति मान लेगा, तो सारे वेद पुराण झूठे हो जायेंगे। हम लोग नास्तिक नहीं हैं, आस्तिक हैं और आस्तिक इसी बात पर हैं कि हम आत्मा की सत्ता को त्रैकालिक मानते हैं, तात्कालिक नहीं मानते। रस्सी में आग लगने पर नष्ट हो गई क्या?

कैसे कहते हैं कि ये लोग समयसार नहीं जानते? कैसे कहते हैं कि लोग जिनवाणी नहीं जानते? जैसे आपने आज यह सभा रखी है, ऐसी सभायें देश में कई बार और कई जगह होनी चाहिए।

भैया! जब तक पुण्य तेज चल रहा है, जगत् के फीते अनन्त बार काटे हैं, लेकिन भारतीय साहित्य, संस्कृति और तत्त्वदेशना का तू प्रचार करता रहेगा तो सारा विश्व समझेगा कि कोई ऐसा भी जीव हुआ था जिसने तत्त्व को प्रचारित किया है। रस्सी जलने पर नष्ट नहीं हुई है, रूपान्तरित हुई है। वक्ताओं को ये भूल जाना चाहिए कि हम वही पुरानी पौराणिक कहानी सुनायें, वही व्याख्यान प्रारम्भ कर दें। हम किसी भी सभा में जाते हैं तो कुछ नया सुनने का मन बनाकर जाते हैं।

असत् का जन्म नहीं होता, सत् का विनाश नहीं होता है। ऊर्जा का विनाश

नहीं होता, यह किसका सिद्धान्त है? आप किसी वैज्ञानिक का नाम लेते हो, लेकिन जब उस वैज्ञानिक का जन्म नहीं हुआ था, क्या उस समय ऊर्जा का विनाश होता था? इसलिए विश्वास रखना, वैज्ञानिकों की प्रयोगशाला होती है, उनकी कर्ताशाला नहीं होती। विश्व में कर्ता कोई भी नहीं है। विश्व का कर्ता कोई किसी को मान भी ले, यह मान्यता ही हो सकती है, लेकिन विश्व का कोई कर्ता होता नहीं। मान्यतायें विचारधारायें हैं और स्वभाव धर्म है। यदि आप कहो कि कोई-न-कोई कर्ता अवश्य होना चाहिए, तो मेरा प्रश्न है कि उस कर्ता का कर्ता कौन है? ब्रह्माण्ड का कोई कर्ता नहीं है, रचयिता नहीं है। विश्व स्वतन्त्र है। रस्सी का नाश नहीं हुआ है, परिणमन हुआ है। एक छात्र से पूछा, 'सेवफल ऊपर से नीचे ही क्यों गया?' गुरुत्वाकर्षण बल के कारण। 'यह सिद्धान्त किसका है?'

वस्तुस्वभाव त्रैकालिक होता है, किसी के कहने से वस्तु का कर्ता नहीं हो जाता है। न्यूटन ने सेवफल को नीचे गिरते देखा। न्यूटन के जन्म के पहले क्या सेवफल ऊपर जाते होंगे? नहीं। इसलिए ध्यान दीजिये, वस्तुस्वभाव त्रैकालिक होता है, तुमने जान लिया है तो बता दिया है। तुम बताने के कर्ता हो, जानने के कर्ता हो, लेकिन किसी के बनाने के कर्ता नहीं हो। इसी प्रकार, ये जो सम्प्रदायों के नाम दिए हैं, ये व्यक्तिगत दिए गए नाम हैं। मैं भगवान् महावीर को जैनदर्शन का कर्ता किञ्चित् भी नहीं मानता हूँ। इतिहासकारों ने जो इतिहास लिखा है, वह झूठा इतिहास लिखा गया है, जो कह रहे हैं कि बौद्ध के बाद महावीर हुए, कि जैनदर्शन वैदिकदर्शन का परिष्कृत रूप है। जबकि सत्यता यह है कि धर्म किसी का परिष्कृत रूप नहीं होता है, धर्म तो धर्म है। अग्नि की उष्णता किससे परिष्कृत है? पानी की शीतलता किससे परिष्कृत है? मेरे जीवन में अहिंसा किससे परिष्कृत है? धर्म परिष्कृत रूप नहीं होता है। जो होता है, वह होता है। जो होता है, वह होता नहीं है। जो होता है, वह होता ही है। जिसको उत्पन्न किया गया है, वह होता नहीं है। जो होता है, वह उत्पन्न होता नहीं। वस्तु को उत्पन्न नहीं किया गया। आप आज कह रहे हैं कि महाराज! आज ये जो नये-नये आविष्कार दिखाई दे रहे हैं? आप पदार्थ के कर्ता नहीं हो, आप प्रयोग के कर्ता हो। आपने हल्दी को जन्म नहीं दिया, आपने चूने को जन्म नहीं दिया। आप हल्दी में चूना मिलाने के कर्ता हो सकते हो, सो आपने लाल रंग कर लिया है। आप हल्दी-चूने के कर्ता नहीं हो, ऐसे-ही जगत् में वस्तु का कर्ता कोई होता ही

नहीं है। यदि कोई मेरा कर्ता हो गया, तो मेरी स्वतन्त्रता का क्या होगा? मैं ऐसे परमात्मा से मिलना भी पसन्द नहीं करता हूँ जो मुझे अपने में मिला ले। मैं उस परमात्मा के पास जाना पसन्द नहीं करता हूँ जिसमें मैं मिल जाऊँ। मैं अपनी आत्मा की स्वतन्त्रता का नाश करके किसी परमात्मा के पास जाना पसन्द नहीं करता हूँ। मीमांसक दर्शन में लिखा हुआ है, 'हे केशव! हे नारायण! मैं वृन्दावन का गीदड़ बन जाऊँ।' मैंने षट् दर्शन का अध्ययन किया है। जब तक भारतीय दर्शनों का अध्ययन नहीं होगा तब तक वक्तापन तो आ ही नहीं सकता। पहले वक्ता नहीं होता है, पहले ज्ञाता होता है। जो ज्ञाता होता है, वही वक्ता होता है। मीमांसक कह रहे हैं, हे केशव! मैं वृंदावन का गीदड़ बन जाऊँ, लेकिन बौद्ध का मोक्ष न जाऊँ। क्यों? जहाँ आत्मा का ही नाश हो जायेगा, मेरा अभाव ही हो जायेगा, तो मोक्ष का आनन्द कौन लेगा? इसलिए मैं आपका जूठन खाना पसन्द करता हूँ, कौआ बनना पसन्द करता हूँ, गीदड़ बनना पसन्द करता हूँ, लेकिन आत्मा के नाश वाले का मोक्ष जाना पसन्द नहीं करता।

आचारवृत्ति और विचारवृत्ति। किसी ने विचारवृत्ति को धर्म मान लिया है, किसी ने आचारवृत्ति को धर्म मान लिया है। जहाँ आचार-विचार दोनों एकसाथ होते हैं, उसका नाम वीतराग धर्म है, उसी का नाम सत्यार्थ मार्ग है। वस्तु का विनाश नहीं है। परिवार में जाकर कहना, छात्रों से कहना-इन सिद्धान्तों को वैज्ञानिकों के सिद्धान्त मत मान कर चलिए। इस सिद्धान्त को भारत की भूमि में अनन्त काल से योगी, तपस्वी, ऋषि, मुनियों ने, तीर्थंकर भगवन्तों ने कह रखा है। भगवान् तीर्थंकर अपने ज्ञान से किसी वस्तु को उत्पन्न नहीं करते। जो हम जानते नहीं हैं, पहचानते नहीं हैं, उसे बता देते हैं, लेकिन बनाते नहीं हैं। उपकारी के उपकार को मानिये, परन्तु उपकारी को कर्ता मत मानिये। मैं तीर्थंकर महावीर की वन्दना करता है, नमस्कार करता हूँ, क्योंकि उन्होंने सोते प्राणियों को आसरा दिया। **जब धर्म का विनाश होने लगा, आगम का विघात हुआ, पाप की सम्पदा बढ़ने लगी, लोगों को धर्म में ग्लानि होने लगी, तब जिनदेव जन्म लेते हैं।** तीर्थंकर महावीर जैसे एक नहीं हुए हैं, अनन्तानन्त हुए हैं। इसलिए यह मानकर मत बैठ जाना कि भारत की भूमि पर जैनदर्शन को बनानेवाले महावीर स्वामी हैं। महावीर स्वामी ने जैनदर्शन को महान् नहीं बनाया, जैनदर्शन ने महावीर को भगवान् बना दिया। हे बीज! तूने भूमि को महान् नहीं बनाया। भूमि की उर्वरा शक्ति ने तुझे एक दाने से हजारों दानों में बदल डाला। यह धर्म की महिमा

है। यदि हम कर्ता मान लेंगे तो स्वतन्त्रता का विनाश हो जायेगा। इसलिए धर्म जो है वह सम्प्रदायातीत, जात्यातीत, पंथातीत है।

अब सुनिये धर्म क्या है? जब सब जगह के कुए सूख जाते हैं, तब भी झाँसी के कुए में पानी रहता है। विश्वास रखना, कुए वहीं के सूखेंगे जिनके अहिंसा के प्राण सूख गये होंगे। जिनके करुणा दया के प्राण नहीं सूखे हैं, उनके यहाँ पानी भी होगा और वनस्पति भी होगी। कुए से एक जैन बन्धु पानी लेकर आया, दूसरे कुए से दूसरा लेकर आया और कहता है, 'महाराज जी! आप पधारें, हमारे मटके में बहुत शीतल पानी है।' अज्ञानी मटकों को देखेगा, ज्ञानी कुए के पानी को देखेगा। आप सभी अपने-अपने पात्रों में भर कर तो लाये हो, परन्तु बनाकर नहीं लाये हो। जिसके घट में भर गया, वह अपने घट का पानी कह रहा है, जबकि पानी किसी के घर का नहीं है, पानी कुए का है। ऐसे-ही जिस व्यक्ति ने जो व्यवस्था समझ ली है, उसे अपनी व्यवस्था कह रहा है, जबकि धर्म किसी के घर की व्यवस्था नहीं है, वह तो 'जो है सो है'। क्या है? जो है, सो है। सम्प्रदाय समय-समय पर जन्म लेते हैं और सम्प्रदाय समय-समय पर मिटते हैं। मैं विश्वास के साथ कहता हूँ, जब हम सम्प्रदाय के इतिहास को पढ़ते हैं तो **धर्म का नाश जितना किसी विधर्मी ने नहीं किया, उतना धर्म का नाश सम्प्रदाय के विधर्मियों ने किया है।** शैव ने वैष्णव मन्दिर तोड़ दिये, वैष्णव ने शैव मन्दिर तोड़ दिये और जैनमन्दिर तोड़ दिये। इस प्रकार मध्यकाल में जब द्वन्द्व छिड़ा था, किसके नाम पर? वह धर्म के नाम पर नहीं था, मेरा सम्प्रदाय सत्य है इसके नाम पर था। जब धर्म समझ में आया तब सब कहने लगे—'**सत्त्वेषु मैत्रीं गुणिषु प्रमोदं**', '**सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयः**' धर्म ये है। क्षमा धर्म है, सत्य धर्म है, शौच धर्म है। जीव कहाँ भूल गया? एक दूसरे को देखना पसन्द नहीं कर रहे हैं, मन्दिर में घण्टों-घण्टों घण्टी बजाते रहते हैं, जैसे-ही मन्दिर से बाहर आते हैं तो वे जीव कहने लगते हैं कि ये कृष्ण का भक्त है, मैं इसे नहीं मानता हूँ। एक कहता है कि ये राम का भक्त है, मैं इसे नहीं मानता हूँ। ये महावीर का भक्त है, मैं इसे नहीं मानता हूँ। मैं सत्य बता रहा हूँ, राम कृष्ण महावीर जब सामने थे, तब कभी ऐसा भेद नहीं था। भेद तुम लोगों ने किया है, महावीर ने नहीं किया, राम ने नहीं किया, कृष्ण ने नहीं किया। यदि कृष्ण के मन में भेद होता तो गायों

के बीच में क्यों रहते? जिनको प्राणिमात्र पर करुणा/वात्सल्य है, उन्होंने अपनी वंशी की तान से प्राणियों को भी वश कर लिया था। जिसको करुणा होती है, वह बाँस से बाँसुरी बजाता है। जिसको करुणा नहीं है, वह बाँस से लाठी बनाता है। वस्तु-व्यवस्था भिन्न नहीं है। मुख वही है, शरीर वही है। **जीवन में यदि बदलना है तो धर्म नहीं बदलना है मात्र दृष्टि बदलना है। बिल्ली उसी मुख से चूहे को उठाती है उसी मुख से बच्चे को उठाती है। जब बच्चे को उठाती है तो माँ कहलाती है और चूहे को उठाती है तो हत्यारिन बन जाती है।** मुख बदला क्या? मुख नहीं बदला, दृष्टि बदल गई।

हिंसा चार प्रकार की है—संकल्पी, आरम्भी, उद्योगी, विरोधी। इन चार भागों में यदि विभाग नहीं किया जाता तो श्रमण धर्म और श्रावक धर्म में संकट खड़ा हो जाता। साधु व्यवस्था और गृहस्थ व्यवस्था इन दोनों में भेद कैसे करो?

कहीं किसी नेता के मन में आ गया कि महाराज! मैं देश का सम्राट् बन गया तो आपकी अहिंसा के अनुसार देश की रक्षा कैसे करूँगा? एक ओर कहा जा रहा है द्रव्यहिंसा और भावहिंसा। द्रव्यहिंसा के विषय में बात करना तो सारी दुनियाँ जानती है, परन्तु भावहिंसा का निषेध करनेवाले जगत् में बिरले लोग हैं। यदि भाव हिंसा ही उत्पन्न न हो पाये, तो द्रव्यहिंसा हो ही नहीं सकती। सबसे पहले भावहिंसा का जन्म होता है और भावहिंसा विराम ले ले तो द्रव्यहिंसा अपने-आप समाप्त हो जाये। **संकल्पपूर्वक किसी जीव का वध करना संकल्पी हिंसा है। आपकी घर-गृहस्थी में भोजन आदि बनाने में जो हिंसा होती है, वह आरम्भी हिंसा है। व्यापार में होने वाली हिंसा उद्योगी हिंसा है। किसी शत्रु ने आपके राज्य पर आक्रमण कर दिया, अब उसको मारने के लिये नहीं, अपने राज्य की रक्षा के लिये उसका जो विरोध किया है, वह विरोधी हिंसा है।** इन चार प्रकार की हिंसा में गृहस्थ को संकल्पी हिंसा नहीं करना चाहिये, लेकिन साधु को चारों प्रकार की हिंसा नहीं करना चाहिये। मानसिक हिंसा यदि आ जाती है, तो अहिंसा परमब्रह्म किसके लिये है? क्षर, अक्षर। जिसका क्षरण नहीं है, वह अक्षर है और अक्षर ब्रह्म है। ब्रह्म के दो भेद हैं। उपनिषद में ब्रह्मा वाला ब्रह्म नहीं है। चतुर्मुख वाला ब्रह्म उपनिषद का ब्रह्म नहीं है। उपनिषद का ब्रह्म 'समयसार' का ब्रह्म है।

मन से रहित, ज्ञानमयी परमब्रह्म जो सिद्धशिला पर विराजा है, वैसा ब्रह्म मेरे हृदय में विराजा है। जो दृष्टा है, वह दृष्टव्य नहीं है और जो द्रष्टव्य है, वह दृष्टा नहीं है। जिन्हें तुम निहार रहे हो, वे दिखाई नहीं देते। जिन्हें तुम देख रहे हो, वे देखनेवाले नहीं हैं। जो देखनेवाले हैं, वे किसी को दिखाई देते नहीं हैं। वही ब्रह्म है। वह ब्रह्म क्या? अद्वैत निज आत्मा।

अक्षर अर्थात् जिसका क्षरण नहीं है। वह जो परम अद्वैतभूत है। शब्दब्रह्म, आत्मब्रह्म। जो शब्दब्रह्म है, वह तुम्हारी लेखनी में आता है। जो आत्मब्रह्म है, वह लिखने में नहीं आता है, वह लखने में आता है।

हे वर्द्धमान! आपने सत्य अहिंसा अचौर्य ब्रह्मचर्य अपरिग्रह का सिद्धान्त लिखा है, यह भी आपने बनाया नहीं है, वह भी शाश्वत है। यदि महावीर ने बनाया होता, तो ऋषभदेव ने क्या कहा? ऋग्वेद में क्या लिखा? वक्ता को श्रोताओं में दूरी नहीं बनाना चाहिये। श्रोताओं के साथ मित्र बनकर बैठना। जब भेद रहता है कि मैं वक्ता हूँ और ये श्रोता है, तो श्रोता सोचता है कि ये ज्ञानी लोग हैं, हम अज्ञानी हैं। जबकि ऐसा है नहीं। **अपने आपको ज्ञानी प्रकट होने मत देना और अपने आपको अज्ञान में विलीन होने मत देना। यही वक्ता का मुख्य लक्षण है।** भगवान् ने किसी बहुत बड़ी भाषा का प्रयोग नहीं किया। कठिन भाषा का प्रयोग, जो श्रोताओं के अनुकूल नहीं है, यदि तुम कर रहे हो, वह भी व्यभिचार है। आप समझाने के लिये आये हो, कि अपने आपको समझाने आये हो? अपना दिग्दर्शन कराने आये हो तो तुम कठिन ही बोलना, आप हित के लिये आये हो तो मेरी भाषा में बोलना। साहित्य का अर्थ ही यह है कि **जो जगत् का हित कर दे, वही तो साहित्य है।** इसलिए जैनाचार्यों ने उस समय की भाषा में लिखा है। उस समय प्राकृत बोल-चाल की भाषा थी, जैसे अभी बुंदेलखण्डी है। ज्ञानी! लोक तो बदल जायेगा और अपन भी बदल जायेंगे, रहेंगे तो नहीं। मैं तो नहीं रहूँगा। सत्य यही है कि न मैं रहूँगा न आप रहेंगे, लेकिन ये साहित्य यदि पूर्वाचार्यों ने न लिखा होता तो आज न हमारा धर्म बचता न भाषा बचती। तुम वर्तमान के भौतिक युग में कितने भी आ जाना, लेकिन अपने घर की भाषा बुंदेलखण्डी छोड़ मत देना। लिख लोगे तो बची रहेगी, नहीं-तो बचनेवाली नहीं है।

महावीर स्वामी ने अपने शिष्यों से जो अहिंसा की व्याख्या की, रहस्य क्या था? जब लोगों ने यह कहना प्रारम्भ कर दिया कि जीवों को बलि पर चढ़ा दोगे, तो तुमको वैकुण्ठ मिलेगा। धर्म के नाम पर यह ताण्डव नृत्य होने लगा। तब बौद्ध ने क्षणिक सिद्धान्त का प्रयोग किया। दया का सिद्धान्त बनाने के पूर्व दया पर ध्यान रखा जाय। वर्तमान का वैज्ञानिक खोज भी करता है तो रिमोट रखकर करता है। मंत्रवादी से कहा जाता है कि जब मंत्र सिद्धि करना है तो उसके प्रतिद्वन्द्वी मंत्र को पहले साथ में रखना और उसकी शक्ति को झेलने की सामर्थ्य रखना। ऐसे-ही जो कुछ नया दिखाना चाहते हैं, उन्हें विवेक होना चाहिये कि कहीं नयेपन में पुराने का घात न हो जाये। बौद्ध और महावीर दोनों समकालीन थे। भगवान् महावीर स्वामी ने अपने शिष्यों को समझाया कि जो अँजुली (कर पात्र) में आ जाये वह स्वीकार करना। देखना अन्तर। बौद्ध ने कहा कि आपके पात्र में जो आ जाये उसे स्वीकार कर लेना, लेकिन एक शब्द भूल गये जब अनित्य की व्याख्या कर रहे थे। वेदों में हिंसा इसलिये बढ़ रही है कि वैकुण्ठ जाने के राग में (दैवत्व की प्राप्ति के राग में) और पूर्व भव होता है इस विषय में जैनदर्शन और वैदिक दर्शन एक माना जाता है। अपने मुख से कभी अपना खण्डन मत कर लेना। जब भारत में आत्मा आत्मा की व्याख्या बढ़ गई, पुनर्भव बन गया। बढ़ नहीं गया। जो होता है, वह क्या बनेगा? वह तो है ही। लेकिन पुनर्भव के नाम पर जो ये कह रहे थे कि मैं इस जीव की बलि चढ़ा दूँगा तो वह और-अच्छी पर्याय को प्राप्त करेगा, अच्छे भव को प्राप्त करूँगा, इस बात को दबाने के लिये कि हिंसा न भड़के, बौद्ध ने कहा कि पुनर्भव होता ही नहीं है, सब अनित्य है, क्षणिक है। क्षणिक में फिर यह हुआ कि किसी ने किसी का भी घात कर दिया और कहा कि हिंसक अलग था, हिंसनीय अलग था, वह समय गया।

एक ज्ञानी की गाय चराने के लिये एक चरवाहा ले जाता था। जब एक महीना हो गया, तो वह चरवाहा कहता है—'भैया! महीना पूरा हो गया, अब पैसा तो दे दो।' तो वह ज्ञानी कहता है, 'किसकी गाय? कौन गाय? कब ले गया था? वह समय गया।' चरवाहा भी ज्ञानी था, सोचता है कि एक महीने से मैं गाय चरा रहा हूँ और पैसे के लिए बड़े सिद्धान्त दिखा रहे हो। अन्त में उसने सोचा कि अब बुद्धि से काम

करो। वह चरवाहा प्रतिदिन की भाँति गाय चराने ले गया, शाम को अपने घर में बाँध ली। ज्ञानी प्रतीक्षा करते-करते उस चरवाहे के घर पहुँचा। कहता है, 'भैया! वह गाय आज घर नहीं पहुँची।' तो ले जाने वाला चरवाहा वह कहता है—'कौन-सी गाय? किसकी गाय? वह समय गया।' ज्ञानी कहता है कि कहाँ सीखा? वह चरवाहा कहता है कि जहाँ आपने सीखा, वहीं मैंने सीखा।

जब भारत में ऐसे दार्शनिक युद्ध होने लग गये, तो महावीर स्वामी ने कहा कि जो करपात्र में आये, सो ले लेना, लेकिन निरामिष, प्रासुक, मर्यादित और सुकुल घोर में जाना। बड़े नियम डाल दिये। एक बार भोजन एक बार पानी। ज्ञानियो! नकल के साथ अकल की बहुत आवश्यकता होती है। महावीर ने भी दीक्षा दी और बौद्ध ने भी दीक्षा दी। महावीर स्वामी ने जो दीक्षा दी, उसके विभाग कर दिये—आर्यिकायें अलग रहेंगी और मुनि अलग रहेंगे। साधु के रहने के स्थान अलग होंगे। वहाँ भिक्षु-भिक्षुणियों के स्थान एक होते थे। बौद्धदर्शन में स्त्रीदीक्षा होते ही भारत से बौद्धदर्शन पलायन कर गया। क्योंकि आपको यह तो स्वीकार करना पड़ेगा कि तुम व्यक्तिगत अनाचारी तो हो सकते हो, लेकिन भारत का संविधान अनाचारी नहीं है। आप व्यक्तिगत अनाचार कर रहे हो, यह आपका है, लेकिन यहाँ संविधान को अनाचार रूप परिणमित नहीं कराया जा सकता। अभी की कितनी चर्चायें चल रही थीं। लेकिन भारत की भूमि, धन्य हो इस तीर्थभूमि के लिये। यहाँ की सरकार ने भी स्वीकार नहीं किया और सारे साधु सन्त एक मुख से बोलने लगे कि व्यक्तिगत अनाचार हो सकता है, लेकिन धर्म और सिद्धान्त के नाम पर अनाचार नहीं हो सकता। यदि भगवान् महावीर के सिद्धान्तों पर सारा विश्व जीने लग जाये, तो अब नहीं कहना पड़ेगा कि विश्वशान्ति कैसे हो? आपके अन्दर अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह प्रवेश कर जाये तो जगत् में कौन किसका दुश्मन है? **न मे शत्रु, न च मे प्रिया'** न मेरा कोई शत्रु है, न मेरा कोई प्रिय है। निज का राग ही शत्रु है, निज का राग ही मित्र है। **जहाँ राग की पूर्ति हो रही है, वे मित्र दिखते हैं। जहाँ राग की पूर्ति नहीं होती है, वे शत्रु दिखते हैं।** विश्व में कोई शत्रु या मित्र होता नहीं है। यदि दूरियों को दूर करना चाहते हो तो ऐसी गोष्ठियाँ करने रहना। **महावीर स्वामी ने जो सिद्धान्त बताये हैं, वे विश्व के नागरिकशास्त्र हैं और समाजशास्त्र है। यदि आपको विश्व का अर्थशास्त्र**

पढ़ना है तो दिगम्बर मुनि का कमण्डल देख लो। इसमें पानी बड़े मुख से भरते हैं और निकालते टोंटी से हैं। आय होना चाहिए बड़े मुख से और व्यय होना चाहिए छोटे मुख से। 'जियो और जीने दो' ये कर्तव्य और अधिकार है। **जीना तुम्हारा अधिकार है, दूसरे को जीने देना तुम्हारा कर्तव्य है।** आज विश्व में हिंसा और अहिंसा का विशद वर्णन करने वाला एक ही ग्रन्थ है 'पुरुषार्थ-सिद्धि-उपाय'। इसमें सूक्ष्म हिंसा का वर्णन है कि लगेगा-धन्य हैं वे निर्ग्रन्थ योगी। आप तो कहते हैं कि मैं क्या करूँ? ये जैन मुनि अभी यहाँ से बाहर जायेंगे तो पूरे शरीर का मार्जन करेंगे। क्यों? इस भवन के उष्ण वातावरण के जो जीव हैं, वे यहीं-के-यहीं रह जाय। ये पिच्छी चिह्न मात्र नहीं है, ये सूक्ष्म अहिंसा का प्रतीक है। धूप से छाँव में, छाँव से धूप में आने पर भी शरीर का मार्जन करते हैं। यदि ऐसा नहीं कर रहे हैं तो महावीर स्वामी कह रहे हैं कि हे मुनि! आपकी अहिंसा का पालन नहीं हो रहा है। जहाँ प्रमाद है, वहाँ हिंसा है। जहाँ अप्रमाद है, वहाँ अहिंसा है। इसलिए जीवन में प्रमादरहित वृत्ति को अपनायें और सुखमय जीवन जियें।

संपूजकानां प्रतिपालकानां, यतीन्द्र-सामान्य-तपोधनानां।
देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञः, करोतु शान्तिं भगवान् जिनेन्द्रः॥स.भ.॥

सारे विश्व में सारे देश में शान्ति हो। लेकिन यह तभी सम्भव है, जब हमारे हृदय में शान्ति है। हमारे हृदय में शान्ति है तो सारे विश्व में शान्ति है।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।



चारित्र का फल

धनहीनोऽपि सद्वृत्तो याति निर्वाणनाथतां।
चक्रवर्त्यप्यसद्वृत्तो याति दुःखपरम्पराम्॥283॥

अन्वयार्थ—(धनहीनः अपि) धनहीन होकर भी मनुष्य यदि **(सद्वृत्तः)** सदाचारी है, सम्यक्त्व सहित चारित्र का पालनेवाला है, तो वह **(निर्वाणनाथतां याति)** मोक्ष को प्राप्त कर लेता है, किन्तु **(चक्रवर्ती अपि)** चक्रवर्ती सम्राट् भी हो **(असद्वृत्तः)** और मिथ्यात्वसहित कुत्सित आचार को पालनेवाला हो तो **(दुःख परम्पराम् याति)** दुःखों की परम्परा को पाता रहता है।

भावार्थ—हे भव्यात्मा! जो समीचीन चारित्र धारण करता है, वह मोक्ष प्राप्त करता है। वहीं जो मिथ्यात्व सहित कुचारित्र धारण करता है, वह भव-भव में दुःख प्राप्त करता है।

॥ सद्-देशना ॥

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज सारसमुच्चय जी में इस बात को समझा रहे हैं कि संसार में सम्पत्ति का मिल जाना बहुत बड़ी बात नहीं है, सन्तान का मिलना बहुत बड़ी बात नहीं है, परन्तु सम्पत्ति और सन्तान मिलने के साथ सम्यक् संस्कारों का मिलना बहुत कठिन है। सम्पत्ति भी आपके पास है, सन्तान भी आपके पास है, पर संस्कार आपके पास नहीं हैं तो न तुम्हारी सम्पत्ति है न तुम्हारी सन्तान है। खोटे संस्कार तुम्हारे भीतर बैठ गये हैं तो सम्पत्ति का नाश कर दोगे। खोटे संस्कार तुम्हारे भीतर हैं तो सन्तान तुम्हें देखकरके स्वयं भग जायेगी, आप सन्तान और सम्पत्ति दोनों से शून्य हो जाओगे। **जिनको अपनी सम्पत्ति सुरक्षित रखना हो, जिनको अपनी सन्तान सुरक्षित रखना हो, उनको संस्कारों को सुरक्षित रख लेना चाहिये। धन की रक्षा धन से कभी नहीं होती, धन की रक्षा के लिये भी धर्म चाहिये। धर्म से ही धन की रक्षा होगी।** जो संस्कार से युक्त है, उसका खर्च भी कम है। जिसके संस्कार खोटे हैं, मजदूर हैं, ऑटोरिक्शा चला रहा है, दिन भर कमा रहा है, शाम को अशुद्ध भोजनपान करके ज्यों-का-त्यों है।

उच्चकुलीन जीव है, घर का शुद्ध भोजन कर रहा है, सौ भी कमायेगा तो पच्चीस रुपये में शुद्ध सुन्दर भोजन कर लेता है, पचहत्तर उसकी जेब में सुरक्षित हैं। आप

कहो कि तुम्हारे पास पैसा कहाँ से आ रहा है? भाई! पैसा तो आपके पास भी आ रहा है, लेकिन अन्तर इतना है कि मैंने संस्कारों की सुरक्षा की है, इसलिये मेरी सम्पत्ति सुरक्षित हो रही है। आपके बेटे सुबह से मन्दिर की ओर दौड़ रहे हैं, मेरा बेटा मदिरालय की ओर जा रहा है, कारण क्या है? कुछ नहीं है, मैंने सन्तान व सम्पत्ति को नहीं देखा, मैंने संस्कारों को सुरक्षित रखा है, इसलिये मेरी सन्तान मन्दिर की ओर जा रही है, मदिरालय की ओर नहीं जा रही है। इसलिये मेरा कहना है कि चौबीस घण्टे धन के पीछे मत पड़े रहो। प्रातः हुआ, पिता ऑफिस चला गया। जब तक बेटा सोता है। जब पिता वापस आया, तब तक बेटा सो चुका था। अब बताओ, पिता ने उस बेटे को संस्कार दिये कब हैं? बेटे को राम बनाना चाहते हो तो दशरथ बनने का प्रयास प्रारम्भ करो, नहीं-तो विश्वास रखो, वह छींके पर ही टाँगेगा।

आचार्य कुलभद्र स्वामी कह रहे हैं कि धन सबकुछ नहीं है। कितने धनपति विश्व में विलख रहे हैं। रोते मिल जायेंगे। कहीं तुम्हारा धन साँप की मणि तो नहीं बन रहा है? कहीं तुम्हारा धन मधुमक्खियों का छत्ता तो नहीं बन रहा है? मधुमक्खियाँ अनेक पुष्पों से पराग ला-ला करके छत्ते में संगृहीत कर रही हैं, परन्तु ऐसा पापी कहीं मिल गया कि उसने आग लगा दी, पानी फैला दिया और छत्ते को निचोड़ लिया, साथ में उन बेचारियों की जान भी चली गई। **एक बूँद शहद का पान करने वाले जीव को सात गाँव जलाने बराबर हिंसा का पाप लगता है।** तुम्हारे अन्दर किञ्चित् भी दया हो, मेरे मित्र! एक का सिक्का जेब से गिर जाये तो कैसा लगता है? जिसने एक-एक बूँद को पुष्प से चूस-चूस कर संगृहीत किया हो और ऐसे धर्मात्मा भी मिल जाते हैं जो धर्म के नाम पर भी शहद का प्रयोग कर लेते हैं। ये धर्म नहीं है। मधुमक्खियों को निचोड़निचोड़ करके शहद निकालते हैं। माताओ! बच्चों को जन्मघूटी में शहद का पान मत कराओ।

क्या मालूम था, एक अंकुर था, उसमें कोटि-कोटि जीव थे, तुमने पत्थर पटक दिया, उस अंकुर का क्या होगा? जो जनक-जननी अपने बच्चों को जन्म से ही शहद और मदिरा का पान करा रहे थे, वे यूँ मानकर चलिये कि एक साधुपुरुष के अंकुर पर तूने पत्थर पटक दिया है। कौन-सा बालक आज का मुनि बननेवाला हो, लेकिन तुमने उसके संयम को जन्म से ही भ्रष्ट करा दिया है। जब तक बालक आठ वर्ष का नहीं हो जाता है, उसके संयम का पालन उसके माता-पिता के हाथ में होता है।

मधुमक्खियों के छत्ते को जैसे नींबू निचोड़ कर फेंक दिया जाता है, धर्मविहीन धनिकों का यही होता है। तुम जोड़-जोड़ कर रख जाना, कोई छापा मार कर ले जायेगा या कोई डाका डालकर ले जायेगा। हुआ ये कि मक्खियों के प्राण भी गये और उनका धन भी गया। ऐसे-ही कई लोगों की सम्पत्ति भी चली जाती है और प्राण भी चले जाते हैं। इसलिये जो मिला है, उसके पीछे मत दौड़ो। जिससे मिलता है, उसके पीछे दौड़ो। धर्म से धन मिला है, कि धन से धन मिला है?

पुण्यफला निच्छन्ति, पुण्यं कुर्वन्ति कदाचना।
पापफलं नेच्छन्ति, पापं कुर्वन्तु यत्नसाः॥

यह जगत् की धारा चल रही है कि यह जीव पुण्य के फल को तो चाहता है, परन्तु पुण्य नहीं करना चाहता। ऐसे भी लोग आते हैं—'महाराज! आप आशीर्वाद दे दो ताकि मेरे संकट दूर हो जायें।' उनसे कहो कि भगवान् की माला फेरो, तो वो कहते हैं 'महाराज! समय नहीं मिलता, आप तो आशीर्वाद दे दो।' तुम तो ऐसे किसान हो, मुझे तो ये बता दो कि कैसे धान्य निकलता है? विधि बताते हैं तो कहते हैं—'ये नहीं हो सकता है। आप तो यह बताओ कि खलियान से धान्य कब लाया जाता है? वह सम्भव नहीं है। जो-जो सुख तुम्हारे सामने दिख रहा है, वह कार्य है, कारण नहीं है। पूर्व में जो तुमने कारणभूत पुण्य किया था, उसका कार्यफल तुमको मिला है। वर्तमान में जो पुण्य कर रहे हो, वह आज तुम्हारा कारण बनेगा और भविष्य में कार्यभूत परिणत होगा।

'बीज राख फल भोगवे ज्यों किसान जग माँहि।' हे ज्ञानियो! तुमसे श्रेष्ठ वह किसान है, जैसे-ही फसल आती है, वह किसान बालें सुरक्षित रख लेता है। क्यों? बीज को सुरक्षित नहीं रखूँगा तो अगली फसल कहाँ से आयेगी? पहले बीज को सुरक्षित रखता है, फिर फल को भोगता है। ऐसे-ही तत्त्वज्ञानी जीव, विवेकी पुरुष पुण्य के फल को भोगने के साथ पुण्य को सुरक्षित भी करता है। पूरा भोग डालेगा तो फिर असाढ़ में क्या बोयेगा? जैसे किसान बीज रख करके फल भोगता है, ऐसे-ही ज्ञानी पुरुष संसार का सुख भी भोगता है तो बीज रख करके। पूरे पुण्य को खोखला मत कर लेना। जिन-जिन को अन्तिम श्वास शान्ति के साथ निकालना हो, वह बड़े सँभलकर सुनना।

किशोर अवस्था माता-पिता के द्वारा दी गई। पोषित करने के लिये उन्होंने तुझे सुरक्षित रखा। युवावस्था तेरी पत्नी ने सुरक्षित रख दी। परिपूर्ण सुख के साथ रखा। वृद्धावस्था की तैयारी करिये। जिसने शिशु व युवावस्था को संयम के साथ जिया है, उसकी वृद्धावस्था पवित्र निकलेगी। जिसने शिशुअवस्था, किशोर अवस्था, युवावस्था को असंयम में जिया है, उसकी वृद्धावस्था को सुरक्षित रख पाना बहुत कठिन है। **आँखों का धर्म करने वाले जीव वृद्धावस्था में तड़पते मिलते हैं। इसलिये आत्मा के धर्म पर भी लक्ष्यपात करना।**

कभी-कभी ऐसा लगता है कि भैया अपने बहुत धर्मात्मा हैं। भगवान् के सामने माला भी फेर लेता है, चाक्षुष धर्म चल रहा है, दृष्टिगोचर धर्म है। माला तो शान्तिनाथ भगवान् के चरणों में लंकेश भी फेर रहा था। आप क्या भक्ति करोगे? वह तो भक्ति में ऐसा तल्लीन था कि उसकी वीणा के तार टूट गये तो उसने अपनी भुजा से नस निकालकरके उस तार में जोड़ दिया और पुनः भक्ति में तल्लीन हो गया। ऐसी भक्ति में रावण तल्लीन था, लेकिन जब विद्या सिद्ध करने बैठता है तो ऐसा ध्यान किया, ऐसा ध्यान किया, यदि ऐसा ध्यान मुनि बनकर कर लेता तो भगवान् ही होता। आपको तो माला फेरते-फेरते किसी ने पास में दीपक रख दिया तो तुम उठके भाग जाओगे। मच्छर ने तो मात्र शरीर में ही काटा है, तुमने उसके ऊपर हाथ पटककर उसके प्राण ही ले लिए। ऐसे धर्मात्मा ढोंगी हैं, यहाँ करेंगे प्रतिक्रमण - वहाँ आल-आउट कछुआछाप लगाकर सो रहा है और कह रहा है 'मैं पाँचों पापों का त्याग करके सो रहा हूँ।' तू जाल बिछा करके, उन मच्छरों को मार करके, अपनी जान बचाकर, सो रहा है और कह रहा है कि मैं पापों से मुक्त होकर सो रहा हूँ। कैसे ढोंगी लोग हैं? घरों में इलेक्ट्रिक यन्त्र लग गए जो मच्छरों को खींच लेते हैं। ज्ञानी! तेरा पुण्य तेज है, सो तू इतने जीवों की रक्षा के भाव रखता है, तो इतना ध्यान रखो। जगत् के प्रत्येक घर में जाकर देखना कि किन-किन के घर में ऐसे यन्त्र हैं। वहाँ लिखकर आना 'कसाईखाना'। महाराज! वह नाराज हो जायेगा। इसीलिए तो लिखवा रहा हूँ। जिनके घर में चूहे पकड़ने के पिंजरे रखे हों, उन लोगों से कहना तुम्हें मालूम होना चाहिए है कि इन जीवों का पुण्य न होता तो तुम्हारे घर में कैसे आते ? उनकी गोदियाँ कभी नहीं भर पायेंगी। ये ही गोदी से सूने रहते हैं। उनके लाल-लाल जीवों को

तड़पा-तड़पा कर मार दिया, आपने पिंजड़े में उसकी माँ को बाहर निकाल दिया। रोड पर कभी चूहे मिले क्या? रोड पर कभी चूहे मिलते क्या ? रोड पर वे ही चूहे मिलते हैं जो घरों से बाहर निकाले जाते हैं। मूसक वाहन किसका है ? एक ओर गणेश को पूजते हैं और उनके वाहन को तोड़ते हैं। नागपंचमी का पर्व आया सो नाग को पूजने जाते हैं बाँमी में, दूध पिलाने जाते हैं और घर में नाग दिख जाये तो लाठी से मारते हैं। कैसे अभागे हैं? तुम्हारा हाथ कोई खींचे तो कैसा लगेगा?

आप विश्वास मानिये, परम्परा निभाने का धर्म जगत् में सब कोई कर लेता है परन्तु 'जियो और जीने दो' के सिद्धान्त पर चलनेवाले जीव अँगुलियों पर गिनने लायक हैं। नागरिकशास्त्र का अध्ययन कीजिए। बड़ी ईमानदारी से काम करना चाहिए। बच्चो! तुम्हारे पिता कितना पाप करके पैसा कमाते हैं और तुम्हारी पढ़ाई में लगाते हैं? बेटा! यदि तुमने ईमानदारी से पढ़ाई नहीं की, तो मायाचारी के महान् पाप का बंध होगा। नागरिकशास्त्र में एक पाठ है 'कर्तव्य और अधिकार'। जिस दिन तुम जगत् को भूलना प्रारम्भ कर दोगे, सबको भूलना सीख जाओगे, उस दिन तुमको सबकुछ याद होना शुरू हो जायेगा। जब तक दुनियाँ को याद करोगे, तब तक तुमको कुछ याद नहीं होगा। जगत् को भूल कर ही विशुद्धि का जन्म होता है और विशुद्धि से ही क्षयोपशम बढ़ता है। ये मस्तिष्क एक मशीन है। गाड़ी आगे बढ़ाओ या नहीं, यदि स्टार्ट कर दी है, तो गर्म तो होगी। ब्रेक लगाकर खड़ी कर दो तो आपका तेल भी जलेगा और इंजन भी घिसेगा, पर एक कदम भी आगे न जा पाओगे। ऐसे-ही जो व्यक्ति/छात्र है जो पढ़ो-पढ़ो-पढ़ो, ऐसा बनना वैसा बनना, पढ़ाई के लिये इतना विकल्प है कि पूरा मस्तिष्क गरम कर लिया, पढ़ने बैठे तब तक थक चुके थे। इसलिए अध्ययन का भी टेंशन नहीं करना, अध्ययन करना चाहिए। जो जीव तपस्या का भी टेंशन करता है, तपस्या करूँ तपस्या करूँ, वे कभी तपस्वी नहीं बन पाते। मानसिक तनाव बन्द करो, तपस्या करो। जो तप रहा है, वह क्या तपस्या करेगा ? तपना बन्द करो, तपस्या प्रारम्भ करो। इसलिए बहुत नहीं सोचना चाहिए। ब्रह्माण्ड में पागलों की जितनी संख्या है, वह बहुत सोचने वालों की है। चिन्ता करने वाले कभी जीवन सुखमय जी नहीं पायेंगे और चिन्तवन करने वाले कभी दु:खी हो नहीं पायेंगे।

'चिन्तया नश्यते ज्ञानं।' चिंता करने से सबसे पहले ज्ञान का नाश होता है। 'चिन्तया नश्यते बलम्' चिन्ता से बल नष्ट हो जाता है। अभी पता चल जाये कि दुकान में

कुछ हो गया है तो बेचारे की हालत खराब हो जायेगी। चिन्ता करने से क्या मिलता है? जो है, सो है। चिन्ता से बल क्षीण हो जाता है। 'चिन्तया नश्यते बुद्धिः।' **जैसे पाला पड़ने से फसल नष्ट हो जाती है, किसान को रोना पड़ता है, फसल झुलस जाती है, वैसे ही चिन्ता से बुद्धि झुलस जाती है।** जिनके चेहरे काले होनें लग जायें, समझ लेना उसकी बुद्धि भ्रष्ट होने वाली है। आप समझा करो। कितना भी गोरा आदमी होगा, चिन्ता में डूब जायेगा तो चेहरे की रौनक समाप्त हो जायेगी। लोग कहते हैं इसकी सूरत देखो, क्या हो रहा है? कहाँ गई इसकी चमक? कैसा लग रहा है रूखा-रूखा? जैसे पानी का मटका रूखा हो जाता है, ऐसे-ही जिन जीवों के अन्दर चिन्ता प्रवेश कर चुकी है उनके चिन्तवन तो नष्ट हो चुके हैं। जिनकी बुद्धि नष्ट करवाना हो उनको चिन्ता में डाल दो। करना नहीं, क्योंकि बहुत पाप का बंध होगा। बड़ों का सम्मान रहेगा तो अच्छा राज्य चलेगा। जिस दिन तुमने बड़ों का अनादर किया, उस दिन समझ लेना कि गया काम से।

वे ही घर सुखमय आनन्द में रहते हैं जिनके घरों में क्लेश नहीं होता। जिनके घरों में क्लेश प्रारम्भ हो जाये, वह कितना ही सम्पत्तिशाली होगा, चन्द दिनों के अन्दर सड़क पर आ जायेगा। क्यों? 'चिन्तया नश्यते बुद्धिः। व्याधिः भवति चिन्तयात्।' जब घर में क्लेश होगा, एक दूसरे से मुख बोलेंगे नहीं और बोलने की इच्छा रहेगी, तो चिन्ता सतायेगी। चिन्ता सतायेगी तो भोजन पचेगा नहीं। जब भोजन नहीं पचेगा, तो व्याधि हो ही जायेगी। व्याधि हो जायेगी तो शरीर भी नष्ट होगा और घर का धन डॉक्टर के घर में जाने लगेगा तो तू खोखला हो जायेगा। उसके बाद रोड पर आ जायेगा। कुछ नहीं, इतना ही तो होना है। व्याधि हो जायेगी तो जो रखा है, वह जाना प्रारम्भ हो जायेगा। दुकान में बैठने की ताकत नहीं बचेगी सो आना बन्द हो जायेगा। फिर रोड पर तो आना ही पड़ेगा। जिनको रोड पर आना हो, सो ऐसो करियो। जिनको नहीं आने, वो ऐसो न करियो। **'जं रुच्चई तं कुज्जा'**, अब आपको जैसा रुचे, वैसा करो, मैंने तो बता दिया। याद कर लो, आज घर में सबको यही कहना है। देवी से कह देना 'चलती बिरिया है, सेवा करना मेरी माँ की। नहीं कर रही तो 'जं रुच्चई तं कुज्जा'।

आपने कम चिन्ता की, सो शान्ति से बैठे हो। बड़े-बड़े धर्मात्मा जीव अन्त समय में उन्मत्त हो गए। उनको यही चिन्ता सताती रही कि मेरे बाद मेरे घर का क्या होगा? कैसे पागल लोग हैं?

वर्तमान में जो आपके पास है, पिता जी आपको कितना देकर गए थे ? सही-सही बताना। 'पिता जी तो आशीर्वाद छोड़कर गए थे।' बहुत अच्छा, ये है समझदार बेटे की भाषा। ज्ञानी बेटे को ऐसा ही बोलना चाहिए। ये एक दिन सुना रहे थे, महाराज! एक दिन मैंने वह देखा था कि गेहूँ नहीं खरीदता था, क्योंकि गेहूँ की रोटी के लिए घी चाहिए पड़ता था, सूखी रोटी कण्ठ में अटकती थी, तो हम गेहूँ नहीं खरीदते थे, छोटे भैया को खिला देते थे, मैं ज्वार खरीदता था, वह मीठी होती थी, नमक से भी खा लो तो कण्ठ में उतर जाती थी। महाराज! वे दिन देखे हैं जब ज्वार की रोटी खाता था, लेकिन भगवान् को नहीं छोड़ा। सबके दिन एक-से नहीं होते। बालको! ध्यान से सुनो। जिसने ज्वार की रोटी खाई हो, आज उसके घर में पचास लोग पहुँच जायें तो बाटी खिलाने की ताकत रखता है घी में डुबो करके। आप कल्पना करिये। जिसके पिता जी मात्र आशीर्वाद छोड़कर गये थे, आज ये जीव सुखी हैं कि नहीं? सांसारिक दृष्टि से पूछ रहा हूँ ? हैं। सबके दिन एक-से नहीं होते। तुम्हारे पिता जी के जाने के बाद तू आनन्दमय जीवन जी रहा है अपने पुरुषार्थ और पुण्य के बल पर। पुरुषार्थ है और पुण्य नहीं है, तो पुरुषार्थ कुछ नहीं कर सकता। पुरुषार्थ और पुण्य के बल पर जब आप स्वयं में जी सकते हो, तो जो तेरे घर में जन्में हैं वे भी पुरुषार्थ और पुण्य के बल पर अच्छे से जी पायेंगे, तुम उनकी चिन्ता में क्यों सूख रहे हो ? जितने पिता बन चुके हैं, विवेक से सुनो। बेटे के राग में सूखना बन्द करो। जब तू अपने पिता के जाने के बाद आनन्द से जी सकता है, तो उसका भी पुण्य होगा तो वह भी आनन्द से जियेगा। अंतिम समय की बेला में भजन करना प्रारम्भ कर दो, भोजन की चिन्ता भी छोड़ दो, अन्यथा कर कुछ नहीं पाओगे, चिन्ता करके सूख-सूख करके समाधि भंग तो करेगा, लेकिन चिन्तवन करेगा तो समाधिमरण करेगा। छोड़ो चिन्ता।

यदि पाप निरोधोऽन्यसम्पदा किं प्रयोजनम्।
अथ पापास्रवोऽस्त्यन्य सम्पदा किं प्रयोजनम्॥27/र.श्रा.॥

भारत को गरीब जितना अंग्रेजों ने नहीं किया, उतना अपने बुजुर्गों ने किया है। कैसे? ज्ञानी के पिता के पास करोड़ों के हीरे-मोती थे। उसने जमीन में गाड़ दिए। इतना राग की चलती बिरियाँ भी सोच रहा था कि जिऊँगा तो मैं क्या करूँगा? तो

बेटे को भी नहीं बताया और मरकर स्वयं उस पर नाग बनकर बैठ गया। अब मंदिरों में बड़े-बड़े साँप निकल पड़ते हैं, भक्त चिल्लाने लगते हैं, अरे! देव आ गये। अरे! देव नाग बनकर क्यों आयेगा ? उसको आना होता तो अच्छे भेष में आता। अब कालिया बनकर घूम रहा है। अरे! साँची-साँची कहो कि मंदिर के खजाने से राग था, चाबी समाज को नहीं दे गया, सो नाग बन गया। अब देख रहा है। भैया ! अपन को छिपाना नहीं है। जितनी आये, सब मंदिर में लगाओ। द्रव्य बचे तो आस-पास-पड़ौस के मंदिर गिर रहे हों उन सब में लगा दो।

पिता जी पैसा जमीन में गाड़ गये और स्वयं नाग बनकर बैठ गये। अब अरबपति खरबपति का बेटा भीख माँगने लग गया। ऐसे देश में गरीबी छा गई। वे पारसमणियाँ, दुनियाँ की मणियाँ कहाँ चली गईं और विद्या का क्या हुआ ? जिनके पास तान्त्रिक, मान्त्रिक, ज्योतिष, गूढ़ विद्यायें थीं, किसी को सिखाई नहीं और चले गये।

विदेशों में लोगों ने यंत्रों को बनाना तो सीखा है, लेकिन मंत्रों को बनाना नहीं सीखा। भारतभूमि यन्त्र, मंत्र और तन्त्र इन तीनों से युक्त भूमि है। ये विमान आज की वस्तु नहीं हैं, पद्मपुराण में देखो, पुष्पक विमान रावण के पास था और मयूर विमान जीवन्धर के पिता के पास था। अपनी पत्नि को मयूर विमान में बिठाया और चल दिए। ये यंत्र-मंत्र आज की विद्या नहीं है। जब रामेश्वरम् में सेतु बना, तब वहाँ कौन इंजीनियर था ? नल व नील भी इंजीनियर थे। जब-जब अवधपुरी की रचना होती है, तब सौधर्म इन्द्र आदेश करता है और कुबेर उसकी रचना करता है। जितने विवेकी पुरुष हैं वे डॉक्टर क्यों बन रहे हैं ? वे बन नहीं रहे हैं, अविवेकी पुरुष की बुद्धि जीवों को बचाने में कैसे चलेगी? व्यसनी पुरुष डाक्टर बन गया, वह बचाता कि ऊपर भेजेगा ? सात्विक/शाकाहारी पुरुष की बुद्धि विशिष्ट होगी, क्षयोपशम विशिष्ट होगा। ये सारी-की-सारी विधायें भारत की भूमि पर क्यों हुई? जितने महापुरुष हुए, नारायण, प्रतिनारायण, बलभद्र, रुद्र, तीर्थंकर, चक्रवर्ती सभी का जन्मस्थान भारत है। भारत में भी उत्तर भारत में हुए, दक्षिण भारत में नहीं हुए। उत्तर भारत में जन्म लेने के बाद भी उनकी प्रभावना का स्थान मध्यभारत था।पर्वत पर कितना ही पानी गिरे, ठहरता वहाँ है जहाँ भरने का स्थान होता है। चाहे दक्षिण में पानी गिरे चाहे उत्तर में पानी गिरे, बहकर आता तो मध्य में ही है। चाहे वे शान्तिसागर

हों, चाहे विद्यासागर हों, वे ठहरे कहाँ? प्रभावना कहाँ हो रही? मध्यभारत में। जब मध्यप्रदेश का नक्शा तैयार किया गया विमान से, तो मध्यप्रदेश की राजधानी भोपाल का आकार तो आया है ॐ के रूप में, किसी प्रदेश का नक्शा ॐ के रूप में नहीं आया। मध्यप्रदेश का नक्शा ओंकार के रूप में आया, क्यों? क्योंकि विश्व में सर्वाधिक तीर्थों का प्रदेश है मध्यप्रदेश। अलग से लोग बुंदेलखण्ड की यात्रा को जाते हैं। जिले के अन्दर तीर्थ है विश्वविख्यात खजुराहो और दो सिद्धभूमियाँ द्रौणगिरि, नैनागिरि।

महाराज! आपको बच्चों से बड़ी प्रीति है। आप चाकलेट भी नहीं बाँटते हो और इनाम भी नहीं बाँटते हो, फिर-भी वे आपके पास आते क्यों हैं ? ज्ञानी! आपको मालूम होना चाहिये कि यहाँ अपने-आप संस्कार क्यों प्रकट हो रहे हैं? जिस भूमि पर तीर्थंकर का समवसरण आ चुका हो, उस भूमि के संस्कार यहाँ पर प्रकट हुये हैं। जब नैनागिरि में समवसरण आया होगा, तो निकला यहीं से होगा। ये ही संस्कार हैं। धर्म ऐसे ही चलता रहेगा। कहीं धर्मात्मा भी टेंशन में हो कि मेरे बाद क्या होगा, तो इस टेंशन को भी छोड़ दो और अच्छी समाधि करो। कुछ लोग इसी चिन्ता में डूबे रहते हैं।

सोनागिरि में विश्वप्रसिद्ध प्रतिष्ठाचार्य बोले—बेटा! तू प्रतिष्ठाचार्य बन जा। मैंने सोचा कि ये ठीक तो कह रहे हैं। मैं ये सोच रहा था कि जब पण्डित जी चले जायेंगे, तो जैनदर्शन में प्रतिष्ठा कौन करायेगा ? लेकिन पण्डित जी गये, प्रतिष्ठायें हो रहीं कि नहीं हो रहीं? हो रही हैं। बहुत प्रतिष्ठाचार्य हो गये। ऐसे-ही आप लोग कोई विकल्प मत करना, कि मेरे जाने के बाद मंदिरों को कौन देखेगा ? विश्वास रखना, ये ही बच्चे देखेंगे, और अच्छे से देखेंगे। आप लोग तो अपने अन्दर की चिन्ता करो। चिन्ता भी मत करो, चिंतन करो।

आचार्यभगवन् कह रहे हैं—यदि पूत सपूत हो, तो क्या धन संचय और पूत कपूत है, तो कितना ही कमा कर रख लो, सब राख हो जायेगा। यदि सपूत है, तो अपने-आप कमा लेगा और कपूत है, तो सब बर्बाद कर देगा। इसलिए चिन्ता करना छोड़ दो। रोज पूजा करना छोड़ मत देना।

ये श्रावक बड़े चतुर हैं, कभी भी अपने घर के द्वार पर ये नहीं लिखते कि ये नरक के नारकियों का निवास है, ये दरिद्रियों का निवास है। क्या लिखता है?

कुबेर के भण्डार भरे रहें, शुभ-लाभ। चाहे दरिद्रता हो, चाहे धनवान्पना हो, जो है सो है। उसको कौन बदल सकता है? वस्तुव्यवस्था व्यवस्थित है। भो ज्ञानी ! देख ही पाओगे, ले कुछ नहीं जा पाओगे। इसलिए 'देखो, जानो, जाने दो'।

आचार्य कुलभद्र स्वामी कह रहे हैं कि **धनहीन भी यदि चारित्रवान् है, व्रती है, संयमी है, तो निर्वाण पद को प्राप्त कर लेता है; परन्तु यदि चारित्र से विहीन है, तो चक्रवर्ती भी क्यों न हो, वह दुःख-परम्परा को प्राप्त होता है।** जिनके द्वार पर हाथी शोभायमान होते थे, उन बेचारे के द्वारों पर आज श्वान भी नहीं बैठते। कौआ/चिड़िया भी उनके घर पर नहीं आते। (इसका मतलब पाल मत लेना।)

कौआ भी पुण्यात्मा के घर आते हैं, पापी के घर तो कौआ भी नहीं आते। पुण्यात्मा के घर ही तो जूठन वगैरह मिलेगा, पापी के घर में तो खाने को ही नहीं है। जब जूठन ही नहीं मिलेगा, तो कौआ क्यों आयेंगे? जिनके घर में बच्चे होंगे, वे आँगन में जूठन फैलायेंगे तो कौआ आयेंगे। अब जो बेचारे पुण्यहीन हैं, उनके सन्तान ही नहीं है, तो जूठन क्या फैलेगा? तो कौवे भी नहीं आयेंगे।

पीपल का एक विशाल वृक्ष था। एक भैया उसके नीचे लघुशंका करके आ गया, तो वे बोले 'अच्छा, अब हम तुम्हें देखते हैं।' सो वह आ गया। बड़े झाड़ों में, वृक्षों में व्यंतरों के निवासस्थान होते हैं। नदी का किनारा, तालाब के किनारे, विशाल वृक्ष, खण्डहर और जिन कमरों में तुम कभी जाते नहीं हो। कोई नहीं जायेगा, तो उनको आना पड़ेगा। घरों में जो कूड़ा-कचरा डाले, काँटे वाले वृक्ष लगाये, वे समझ लें, अब वहाँ व्यन्तरों का वास होगा और जिनके घरों में रोज झगड़ा होता है, उनके यहाँ पक्के में भूत हैं।

जिनको अपना घर भूतों से बचाना हो, वे वात्सल्य के साथ रहें और घरों में रोज महामंत्र की जाप करें, सो भूत भग जायेंगे।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।



सुख/दुःख

सुखरात्रिर्भवेत्तेषां येषां शीलं सुनिर्मलम्।
न सच्छीलविहीनानां दिवसोऽपि सुखावहः ॥284/सा.स.॥

अन्वयार्थ—(येषां सुनिर्मलम् शीलम्) जिनका पवित्र चारित्र है **(तेषां सुखरात्रिः भवेत्)** उनकी रात्रि सुख से, निराकुलता से बीतती है **(सच्छीलविहीनानां)** जिनका चारित्र ठीक नहीं है, जो सदाचारी नहीं हैं, उनका **(दिवसः अपि सुखावहः न)** दिन भी सुखदायी नहीं है।

भावार्थ—हे भव्य ! जिनका चारित्र पवित्र है, वे सुखमय जीवन व्यतीत करते हैं और जो चारित्र-विहीन हैं, वे दुःखी ही हैं।

॥सद्-देशना॥

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज सारसमुच्चय जी में, अन्तरङ्ग परिणामों की विशुद्धि से विशुद्ध हुआ जीव तत्क्षण शील की रक्षा में तल्लीन हो जाता है, इस बात को समझा रहे हैं। जिसने निज शील को सँभाल लिया है, उसने सर्वस्व सँभाल लिया है। जिसका शील सुरक्षित नहीं, उसका संसार में कुछ भी सुरक्षित नहीं। चेहरे पर हास्य प्रकट कर लेना बहुत सरल है, लेकिन चेहरे को प्रमुदित करके रख पाना बहुत कठिन है। कषाय से हँस लेते हैं। चारित्र का नाम प्रमुदित होना है। स्व के शील को भंग करके, जगत् में तुम चेहरा मुस्कराकर तो ला सकते हो, लेकिन प्रमुदितपना नहीं ला सकते हो। **अग्नि की दाह को ठीक कर सकते हो, लेकिन काम की दाह को ठीक करने के लिये न चंदन के छींटे काम करेंगे, न छतरी काम करेगी, न चन्द्रमा की चाँदनी काम करेगी। शीतल पूर्णमासी की चाँदनी में भी उसका शरीर झुलसता है, क्योंकि उसके अन्तस् में कामनायें चल रही हैं।** ये सारे चारित्र तभी तक टपकते हैं, तभी तक मन में पवित्रता रहती है, जब तक वासनाओं के वाण से बिधा नहीं है।

आचार्य कुलभद्र स्वामी कह रहे हैं कि बाहर का राज्य अहंकार तो दिखा सकता है, परन्तु बाहर का परिग्रह भीतर का आनन्द नहीं दे सकता। समझो, सँभलो। ये व्याख्यान दूसरे के लिये नहीं। हृदय को टटोलो। स्व को स्पर्श करके देखो कि ये वस्तु कठोर है कि नरम है, ठण्डी है कि गरम है, हल्की है कि भारी है? ये तो

आपने स्पर्श, रसपान किया है। पर भीतर के परिणाम तेरे निज के हैं। कौन किसका शत्रु है? लंकेश ! राम तेरे शत्रु हैं कि लक्ष्मण तेरा शत्रु है, कि सीता तेरी शत्रु है ? तेरे भीतर काम शत्रु न होता, तो ये शत्रु कहाँ से आते ? भीतर के शत्रुओं को तो तू देख नहीं पाता है, बाहर के शत्रुओं के लिये तू धनुष-वाण लेकर खड़ा हो जाता है।

मुमुक्षु ! काम पर वाण लग जाये, तो काम टूट जाये, तो जगत् में किसी पर वाण चलाने की आवश्यकता नहीं है। जितनों की कमर टूट चुकी है, कमर टूट रही है, कमर टूटेगी, वे सब काम के बाणों से टूटी है। **मुमुक्षु ! कोटि-कोटि अङ्गनाओं का रमण शान्ति नहीं देता जितना एक समय का ब्रह्मधर्म आनन्द देता है।**

स्वयं को स्वयं में स्वयं के लिये, स्वयं से दुःख करने का कोई साधन है तो अपनी वासनाओं के वश हो जाओ, फिर आप बड़े आनन्द के साथ दुःखमय जीवन जिओगे। स्वयं को वासना से दूर करना है तो वासना के पास अपना वास मत लाओ। जितना इन्द्रियसुख भोगोगे, उतना अतीन्द्रिय सुख का नाश होगा। सुख चाहिए तो शान्ति के पास नहीं पहुँच सकते। सुख की कामना करनेवाले शान्ति के पास नहीं पहुँच सकते हैं। **इंद्रियसुख की आकांक्षा जहाँ से प्रारम्भ होती है, वहाँ से शान्ति पलायन कर जाती है।**

ज्ञानियो ! आपको सुख चाहिये, कि शान्ति चाहिये ? दोनों । दोनों तो संभव नहीं है। शान्ति चाहिये है तो सुख छोड़ना पड़ेगा। बन्दर ने मटके में हाथ डाल लिये। उस मटके में चने थे। उसने मुट्ठी बांध ली। किसके लिये? सुख के लिये। जैसे-ही उसने हाथ निकालना चाहा, उसका हाथ फँस गया, तो उसको क्लेश प्रारम्भ हो गया, उसकी शान्ति भंग हो गई। अब उससे पूछो, सुख चाहिये कि शान्ति ? सुख चाहता है तो तेरा हाथ फँसा हुआ है और शान्ति चाहता है तो चना छोड़ दे और हाथ निकाल ले। पूछो, हे मन-बन्दर! सुख चाहिये कि शान्ति चाहिये? सुख चाहिये तो शान्ति की बात करना छोड़ दे और शान्ति चाहिये तो सुख को आज छोड़ दो, अभी शान्ति हो जायेगी।

एक ज्ञानी के एक करोड़ रुपये दूसरे ज्ञानी ने रख लिये। वह बेचारा प्रतिदिन उनके घर के चक्कर काट रहा है, भाई! मेरा द्रव्य वापस कर दो। क्यों ? मुझे भी कुछ अपने लिये करना है। यही दुःख चल रहा है कि अपने लिये कुछ करना है।

स्वयं शान्ति में जी रहा है। जिसके द्वारे माँगने जाता है, वही सोचता है कि ये आ गये परमेश्वरे माँगने। ये तो निज के द्रव्य की बात थी, अपनी सम्पत्ति माँगने जा रहा था। यदि आपको विश्वास न हो तो मंदिर के रसीद-कट्टा लेकर निकल जाना। मंदिर का दान माँगने भी किसी के घर पर जाओगे तो उसको भी लगता है कि हाथ फैला लिया। इसलिये हमारी जिनवाणी में लिखा है-

माँगन मरण-समान है, मत माँगो तुम भीख।
मँगन से मरना भला, ये सद्गुरु की सीख।

अपने आप को छोटा करना हो तो किसी के घर में माँगने चले जाना। भले ही न जाते हो, परन्तु मुस्करा कर कितने लोग देते हैं? मुस्करा कर देने के उसके भाव होते तो तुम्हें माँगने की आवश्यकता ही न पड़ती। माँगने जाना पड़ रहा है, इसका तात्पर्य समझिये। दान वह होता है, जैसे सुबह छोड़कर आते हैं। कोई से पूछने जाते कि छोड़ूँ या न छोड़ूँ ? जब भी कहीं जाता तो पहले पूछ लेता कि यहाँ व्यवस्था है या नहीं ? जैसे तुम्हें प्रातः लगता है कि वजन बढ़ रहा है, जल्दी छोड़ना चाहिये। ऐसे ही दाता वह होता है जिसको परिग्रह का वजन लगने लग जाये कि जल्दी छोड़ना चाहिये। उसके यहाँ माँगने नहीं जाना पड़ता, वह तो दान बोलने के पहले लेकर आता है। वे कैसे दानी जिनके घर में माँगने जाना पड़ जाये? नहीं जाना पड़ता। यही बोलना भाई ! मैं तुम्हारे यहाँ माँगने नहीं आ पाऊँगा, न अपना अपमान करूँगा। निर्माल्य द्रव्य खाना हो तो मस्ती में खाना और नहीं खाना हो तो तुरन्त दे देना।

एक ज्ञानी! दूसरे ज्ञानी के यहाँ चार-पाँच बार हो आया, वह एक करोड़ दे ही नहीं रहा था। सुख के पीछे सबकुछ कर रहा था। शान्ति चाहते हो क्या? एक सेकण्ड में तुझे शान्ति दिला सकता हूँ।

शान्ति चाहते हो तो क्या करना चाहिये ? बोल दो—ज्ञानी ! अपन एक दूसरे का चेहरा नहीं देख पा रहे। ये शत्रुता आज पूरी कर ही दो। आज मैं लिख कर दे रहा हूँ कि मैंने तेरे लिये एक करोड़ का दान दिया। माँगना बन्द हो गया, संक्लेशता दूर हो गई, छोड़ दिया, समाप्त। जब-तक पर को पकड़ने की दृष्टि है, तब तक अशान्ति। जब से तुमने दूसरे को पकड़ रखा है, तब से तुम्हारी शान्ति समाप्त हो गई।

ज्ञानी ! जब वह दे ही नहीं रहा है, तो मैंने छोड़ दिया। ज्ञानी ! पर की पुत्री को जिस दिन तूने पकड़ा, सत्य बताना, शान्ति बड़ गई क्या? अरे! घबराता क्यों है, चोर-चोर मौसेरे भाई। ससुराल में किसी का वियोग हो जाये, भले ही मन न हो, परन्तु वहाँ बैठने तो जाना पड़ेगा। चेहरा भी बनाना पड़ेगा। कल्पना करो, जिनागम क्या कह रहा है? कोई क्या कहेगा? भले तुम चेहरा बना लो, लेकिन असातावेदनीय कर्म का बन्ध तो निश्चित होगा।

ज्ञानी ! यदि तू प्रवचन कर रहा था और प्रवचन करते-करते तुम्हारे मन में भाव आया कि मैं सबको हँसाऊँ अथवा रुलाऊँ, तो करणानुयोग कह रहा है कि उस वक्ता को आस्रव होगा। अन्तरङ्ग में बैठा हुआ है कि मैं लोगों को हँसाऊँ, तो हास्य चारित्रमोहनीय कर्म का आस्रव होगा। रुलाने का भाव है, तब भी असातावेदनीय कर्म का आस्रव होगा। इसलिये व्याख्यान के काल में भावात्मक दृष्टि की व्याख्या करो, परन्तु भावुकता में न बहो। बन्धस्थान किसी को नहीं छोड़ेगा। शान्ति के लिये आये हो, कि सुख के लिये आये हो? बेटा ! एक बात बताओ, इस समय आपको न लड्डू खाने को मिल रहे हैं, न कोई खिलौना खेलने को मिल रहा है, तुझे कुछ-भी नहीं दिया जा रहा है, तू बन्दर-जैसा चंचल बालक, तब भी तू यहाँ शान्त क्यों बैठा है ? सुबह से तू शौच को गया, अब प्रवचन में आकर बैठ गया, ये तेरे प्रवचन सुनने की उम्र है क्या? ये बूढ़े लोग सुनते हैं। जब गर्दन हिलने लग जाय, तब प्रवचन सुनने जाना चाहिये। अभी तो तुम्हारे खेलने-कूदने का समय था, लेकिन तुम तो ऐसे बैठे हो जैसे बूढ़े हो गये हो। 'अच्छा लग रहा है, इसलिये बैठा हूँ।' कैसा अच्छा लग रहा है? तुझे कुछ खाने को नहीं मिल रहा है, दूध भी पीने को नहीं मिल रहा है। घर में होता तो खाता-पीता। फिर भी तू शान्ति से बैठा है। उसका तात्पर्य है कि शान्ति कुछ-और वस्तु है और इन्द्रियसुख कुछ-और वस्तु है। जहाँ शान्ति विराजमान होगी, वहाँ नियम से सुख होगा; परन्तु जहाँ सुख होगा, वहाँ शान्ति हो, कोई नियम नहीं है। तूने अपने पिता जी से कहा मुझे कपड़े चाहिये। जब तक कपड़े नहीं आये, तब तक 'चाहिये' का कष्ट था। लाकर दे दिये, मन के नहीं आये, सो कष्ट। सुख में आंशिक शान्ति है। उस काल में जो आंशिक शान्ति है, मन्दता/भद्रता आयी है, लेकिन वह ऐसी शान्ति है जैसे सागर-भर जहर में एक बूँद अमृत की।

एक वक्ता इस विषय को बोल तो गया। मेरी दृष्टि से वह सत्य बोल रहा था, लेकिन लोगों ने उसे पीट दिया। क्यों ? क्योंकि उसने जगत् का चेहरा नहीं देखा और भूमिका के अनुसार व्याख्या नहीं की। यदि वह पहले समझाकर बोलता, तो शायद लोग मानते।

एक समय की वह शान्ति, उसको वहाँ पुण्यास्रव करा देती है। वह पुण्यास्रव कैसा है ? पुण्यरूप होने पर भी उसका फल पापरूप परिणत हो जायेगा। जैसे जहर के मध्य में मिश्री की एक कणिका, कड़वी तुमड़ी के भीतर दुग्ध। क्या दूध मधुर नहीं है ? कड़वी तुमड़ी में रखा दूध मधुर ही है; लेकिन आप पी कर देखो, वह मधुरता नहीं देगा, मुख कड़वा ही करेगा।

'**बन्धेधिऽकौ पारिणामिकौ च**' सूत्र लगा लीजिये। कड़वेपन के शक्त्यांश अधिक होने के कारण दुग्ध के शक्त्यांश मंद हो गये हैं और कड़वी तुमड़ी का कड़वापन ही फलित हो रहा है। कड़वी तुमड़ी जहर है, जहर। जैसे कड़वी तुमड़ी में रखा हुआ दूध का पान करनेवाला कटुक फल को ही प्राप्त होता है, ऐसे-ही इन्द्रियसुखों की शान्ति कटुक फल को ही देनेवाली है।

आचार्य उमास्वामी महाराज ने 'तत्त्वार्थ सूत्र' में छोटा-सा सूत्र लिख दिया '**दुःखमेव वा।**' कोई भी इन्द्रिय का सुख-दुःख नहीं होता। जब जादूगर खेल दिखाता है तो सबसे हाथ जोड़कर कह देता है कि आप उठकर नहीं जा सकते हो, मेरा बेटा पड़ा हुआ है, उठकर मत जाना, आप सब चले जाओगे तो मैं बेटे से रहित हो जाऊँगा। मित्रो! जिनको जाना हो तो अभी उठकर चले जाओ, नहीं-तो पूरी बात सुनना, अन्यथा भ्रमित हो जाओगे, अपने हृदय से सत्य का हरण कर लोगे। इन्द्रियसुख में सुख होता है। इन्द्रियसुख को सुख नहीं मानोगे तो चार गतियों की विशेषता का अभाव हो जायेगा। वक्ता को वैराग्य के साथ ऐसी माया कहाँ होगी? वक्ता बोलता है-सब सुखाभास है, तो प्रश्नकर्ता प्रश्न करने खड़ा हो जायेगा। सब सुखाभास है, लेकिन मुझे तो आनन्द आता है, आप सुखाभास कैसे कहते हो? महाराज ! यदि ये दुःख होता, तो नाली में बिलबिलाते तड़पते कीड़े को देखकरके आओ क्या मैं ऐसा हूँ? यदि ये मेरा सुख-दुःख है, तो जिन तिर्यञ्च को पशु को कसाई ने उल्टा टांग दिया है, वह सुख है या दुःख? और वह दुःख एक-सा है क्या? जब भूखा तड़पता आदमी दिखता है तो आप भी

तो कहते हो कि इसके मुख में पानी दे दो। आप दया की बात करते हो।

चरणानुयोग को न्याय की भाषा में आप सुन रहे हैं। यह शैली अकलंक स्वामी मात्र के पास मिलेगी। चरणानुयोग को भी न्याय की दृष्टि में कहनेवाला भारत की भूमि पर कोई संत हुआ है तो महा न्यायाचार्य अकलंक स्वामी हुये। भक्ति और चरणानुयोग को न्याय में कहनेवाले योगी आचार्य समन्तभद्र स्वामी हुए हैं। इतने गहरे न्याय से चरणानुयोग भरा है।

भारत की भूमि पर जितने पिच्छीधारी विचरण कर रहे हैं, उनको कम-से-कम तत्त्वार्थसूत्र का सातवाँ और नौवाँ अध्याय तो अच्छे से पढ़ना चाहिये। भावों की भङ्गिमा को समझ नहीं पा रहे हो। दूसरे, छू-छू-वाद को धर्म मान बैठे। पहले सिद्ध करो कि सुख है, फिर सिद्ध करो कि दु:ख है। यदि सुख सिद्ध नहीं करोगे, तो गतियों की प्रत्यासत्ति इनमें संकर दोष खड़ा हो जायेगा और सुख नहीं मानोगे तो संसार का अभाव हो जायेगा और संसार का अभाव हो जायेगा तो मोक्ष का अभाव नियत हो जायेगा। **बंधपूर्वक मोक्ष होता है, अबंधपूर्वक मोक्ष नहीं होता है।** आप जेल में छुड़ाने किसको जाओगे? जो बंधन को प्राप्त हुआ है, उसे ही तो छुड़ाने जाओगे। आज तक आपने उसी गाय को, भैंस को छुड़ाया है जो खूँटी से बँधी थी। जो बंधन को प्राप्त नहीं था, जंगल में विचरण करनेवाले हिरण को कब छोड़ा ? जो बंधनयुक्त है, वही निर्बंध होता है। जो बंध-हीन है, उसका मोक्ष कैसा ? जो जीव अपने आपको सदा शिव मानता है, सदा मुक्त मानता है, उस जीव से कह रहे हैं कि जब तू सदा शिव ही है, तो फिर धर्म का पुरुषार्थ किसका ? मैं ब्रह्मस्वरूप अवश्य हूँ, ब्रह्म की प्राप्ति की लीनता के लिये सद्-ध्यान कर रहा हूँ, लेकिन वही ब्रह्म नहीं हूँ जो वही है। वही होता, तो यहाँ कैसे ? जमीन पर बैठा हुआ है जीव और कह रहा है मैं तो वही हूँ, शुद्ध हूँ।

हे जीव ! यदि तू स्वभाव से शुद्ध ही है, वर्तमान में ही शुद्ध है, तो चारों तरफ की व्यवस्थायें व्यर्थ हो जायेंगी, ऐसा कार्तिकेय स्वामी 'कार्तिकेयानुप्रेक्षा' ग्रन्थ में कह रहे हैं । नरकगति की वेदना देहजन्य ही तो है, परिणामजन्य ही तो है, स्थानजन्य ही तो है। अशुभ-अशुभ ही तो होते हैं। तिर्यञ्चों की पीड़ा देखकर आप अपने आप को सुखी महसूस कर लेते हो, नारकियों की पीड़ा देखकर अपने आपको सुखी महसूस

कर ही रहे हो, परन्तु देवों के सुखों को देखकर अपने आपको दु:खी कर ही रहे हो। हर व्यक्ति के मुख से क्या शब्द निकलता है? 'हे भगवान्! वैकुण्ठ चला जाऊँ, स्वर्ग चला जाऊँ।' आज तक किसी ने भावना नहीं भायी कि मैं नरक चला जाऊँ। या तो मोक्ष की बात करता है, मोक्ष नहीं है तो स्वर्ग की बात करता है। पशु बनने को कोई नहीं बोलता, नारकी बनने को किसी ने नहीं बोला। वर्तमान में सुखिया तो यही कहते हैं कि मैं तो मनुष्य ही बन जाऊँ। बाहर की भाषा को सुनकर आप किसी बात को सत्य मत मान लिया करो। भीतर क्या चल रहा है ? क्यों भाई ! तू बूढ़ा होना चाहता है क्या? वे दिन कहाँ गये जब तुम दौड़ा करते थे ? चले गये, अब कब आयेंगे? जब यहाँ से चले जाओगे, तभी आ पायेंगे, इसके पहले नहीं आयेंगे वे दिन। चाहे पसेरी भर दूध पीना, दो पसेरी घी पी लेना।

ज्ञानियो! इन्द्रियसुख सुख है, आप स्वीकारो। आप वैराग्य को लेकर बोलोगे तो सुख नहीं भोग पाओगे। युवक युवतियाँ घर में संक्लेशित होने लगते हैं, वे क्यों हो रहे हैं? इन्द्रिय सुख में वैराग्य लेकर आये थे और राग छोड़ पाते नहीं हैं, तो इनके घर की व्यवस्था भङ्ग होना शुरू हो जाती है। या तो वैराग्य हो जाये सो घर छोड़कर भाग जाओ या अच्छे राग में रहो, सो जीवन जी पाओ। जो न रागी न वैरागी है, बीच में है, एक क्षण को पाप करना छोड़ नहीं पा रहे हैं और मन में भाषा ऐसी बोलते हैं जैसे परम वीतरागी हों। ऐसे जो **तनाव से भरे हुए निर्णय हैं, वे संक्लेशता को प्रदान कराते हैं। निर्णयविहीन वृत्ति हर समय संक्लेशता देती है।** समझो मैं किस भाषा का प्रयोग कर रहा हूँ। आप यह मत सोचना कि तुम्हारे इन्द्रियसुखों की मैं पुष्टि कर रहा हूँ। हाँ, मैं पुष्टि इस बात की कर रहा हूँ, यदि इसकी पुष्टि नहीं की जायेगी तो जगत् में कोई अच्छा काम ही नहीं करेगा। यदि आपको इन्द्रियसुख ही चाहिये, क्षणिक सुख ही चाहिये, कह अवश्य रहे हो कि क्षणिक है, लेकिन लगे तो उसी में हो। जब उसमें लगे ही हो, तो अच्छे से बात सुनो-यदि आपको यही सुख चाहिये, तब भी धर्म करना चाहिये। बिना धर्म किये यह सुख भी मिलनेवाला नहीं है। भक्ति से भरा जीव है, लेकिन यदि कोई संकट की घड़ी आती है तो जीव को लगता कि भगवान् का नाम ले लें तो संकट दूर हो जायेगा। जो भक्ति से भरा होता है, जिसने गरीबी के दिन देखे हों और आज उसके घर में पैसा आ जाये, सो यही

कहता है कि देखो भैया अपन ने भगवान् की भक्ति करी सो भगवान् ने धन दे दिया, जबकि भगवान् किसी को कुछ देते नहीं.....। आपने भक्ति की, सो असाता साता में संक्रमित हो गई, सो आपका फिर दौड़ना प्रारम्भ हो चुका है। इस बात को ध्यान में रखकर बोलना चाहिये। जितने गरीब हैं, दरिद्री हैं, रो-रो कर और-दरिद्री हो जाओगे। भगवान् की भक्ति में लग जाओ तो भगवान् देने नहीं आयेंगे, लेकिन तुम्हारी असाता साता में बदल जायेगी तो अपने आप पैसा आना प्रारम्भ हो जायेगा।

एक ही सुख दीर्घ काल तक स्वर्ग के देवों को मिलता है, वह कैसा मिलता है ? वह देवों का सुख देवों-जैसा ही होता है। जिस सुख की मैं व्याख्या कर रहा हूँ, उस सुख के अभाव में इतनी संक्लेशता होती है।

मित्रो ! पशुओं के पास कौन-सा ज्यादा परिग्रह है? न दुकान है न मकान है और आपके आगम में लिखा हुआ है- '**बह्वारम्भ-परिग्रहत्वं नारकस्यायुषः।**' बहुत आरम्भ-परिग्रह करे तो नरक में चला जाता है, लेकिन तिर्यञ्च भी नरक में जाते देखे जाते हैं। महामत्स्य आदि, सिंह आदि, क्रूर परिणामी जीव नरक जाते हैं। भले ही उनकी सीमा है, लेकिन परिग्रह तो है ही नहीं, फिर नरक कैसे चले जाते हैं ? किसके बल पर जाते हैं? '**अति संक्लेशभाव तैं मर्‌यो, घोर श्वभ्र सागर में पर्‌यो।**' तिर्यंच के पास धन-वैभव नहीं है। आपने परवस्तु को ही परिग्रह मान लिया है- **मूर्च्छापरिग्रहः।** अति संक्लेशता किस बात पर? उस तिर्यञ्च को एक तो समय पर भोजन नहीं मिल पा रहा, पानी नहीं मिल पा रहा, उस द्रव्य के अभाव में उसमें संक्लेशता बढ़ रही है, अशान्ति बढ़ रही है, क्लेश हो रहा है।

वर्तमान में बिना पाप किये पूर्व के पापफल की संक्लेशता भी तुमको नरक ले जाती है। जगत् का परिणमन तो धारावाहिक है। **जो परवस्तु को निज वस्तु मानेगा, परवस्तु में निजत्व की खोज करेगा, परवस्तु में आत्मसुख मानेगा, परवस्तु को संगृहीत करेगा, परवस्तु को सुरक्षित करेगा, उसे नियम से संक्लेशता होगी।**

ज्ञानी ! मोक्ष चाहिये तो '**संक्लेश-मुक्त मनसा**' अपने मन को संक्लेशता से मुक्त कर लो, तो कर्म तुझे छोड़ देंगे। तुम संक्लेशता से मुक्त होना नहीं चाहते हो तो तुम्हें कर्म छोड़नेवाले नहीं हैं। जो गाय रोज पाँच किलो दूध दे रही हो, सुंदर बछड़ों को जन्म देती हो और दान में मिल गई हो, उसे कौन अभागा छोड़ना चाहेगा? जो

गाय स्वयं साफ-सुथरी हो, बाहर जाकर गोबर करती हो, बाहर जाकर लघुशंका करके आ जाती हो, गंदा भी नहीं कर रही है, भोजन स्वयं चर कर आ रही है, तुमसे कोई सेवा भी नहीं ले रही है और रोज पाँच-पाँच लीटर आपको दूध दे रही है और सुन्दर बछड़े दे रही है, ऐसी गाय को तुम छोड़ोगे क्या? आप कषाय को बाँध कर रखे हुये हो और कषाय की पूर्ति में अच्छी तरह लगे हुये हो, तो फिर संक्लेशता कह रही है कि हम क्यों छोड़ें आपको? जब तुम संक्लेशता नहीं छोड़ पाओगे, तो कर्म कह रहे हैं कि हम क्यों छोड़ें आपको? जब तुम्हारी सखी नहीं जा रही है, तो अपनी सखी को मैं क्यों छोड़ूँ?

ज्ञानी ! इन्द्रियसुख सुख है, उस इन्द्रियसुख के अभाव में तिर्यञ्च संक्लेशता करके नरक जा रहा है और एक जीव इन्द्रियसुख को भोगते हुये भी स्वर्ग जा रहा है, क्या संभव है? भोगभूमिया नहीं, कर्मभूमिया की बात कर रहा हूँ। भोगभूमिया तो जाता ही है। जो भी आप धर्म कर रहे हो, वह कषाय की मन्दता के लिये कर रहे हो, भोगभूमिया जीव के कषाय-मन्दता की सहज क्षेत्रगत् व्यवस्था है, इसलिये नियम से स्वर्ग जाता है। परन्तु उनके स्वर्ग जाने की सीमायें हैं, पर तुम्हारा स्वर्ग असीम है। जो कर्मभूमिया जीव, इन्द्रियसुख को भोगते हुये भी जिसने व्रत ले लिया है कि मैं जगत् में एक नारी के अलावा सम्पूर्ण नारियों को माँ की दृष्टि में देखूँगा, भगिनी की दृष्टि में देखूँगा, मैं एक नारी के अलावा सारी नारियों का त्याग करता हूँ। भोग को भोग रहा है, कषाय मंद हो रही हैं। मैं अपने पास पाँच खेतों के अलावा जमीन नहीं रखूँगा, पचास दुकान से ज्यादा दुकान नहीं रखूँगा, सीमा बाँध ली है, उसकी संक्लेशता कम हो चुकी है, जैसे कि सीमा में अणुव्रतों को प्राप्त कर लिया है। सम्यग्दर्शन प्रकट होते ही उसका मिथ्यात्व विगलित हो गया। ऐसा जीव चक्रवर्ती पद का भी भोग करता रहेगा, तब भी नरक नहीं जा सकता है। सम्यग्दृष्टि नरक नहीं जा सकता है और जैनेश्वरी दीक्षा लेने के बाद वह जीव आहार को भी जाता है, आनन्द के साथ जी रहा है, संक्लेशता की हानि चल रही है, वह जीव नरक नहीं जायेगा, स्वर्ग ही जायेगा, सिद्ध बनेगा। **इन्द्रियसुख में लवलीन होकरके जो संक्लेशता में जी रहा है, उस जीव की दुर्गति नियत है।** इन्द्रियसुख भी सुख है। तत्त्व को समझे बिना इन्द्रिय-सुख को दु:ख कह दिया, ऐसा दु:ख कह करके अब ज्ञानी के उपवास कराना

शुरू कर दो। मेरे मित्र! इन्द्रियसुख दुःख है। आपने असमय में उसका भोजन रोक लिया तो उसकी संक्लेशता बढ़ेगी कि घटेगी? संक्लेशता बढ़ जायेगी। इसलिए कह रहा है कि तुम भोजन इन्द्रियसुख के लिये मत करो, भोजन तो शरीर की रक्षा के लिये करो, शरीर की रक्षा करते हुये संक्लेशता से रक्षा करना आत्मा की और संक्लेशता से रक्षा हो जायेगी, वह भोजन कैसा होगा? अब सुनिये, जो रागी भोजन कर रहा था, उसके 'बैल को घास' की संज्ञा थी। वैरागी भोजन कर रहा है, उसका भोजन 'गाय को घास' की संज्ञा थी। जब बैल को घास खिला रहे थे, उसके तो मात्र मल-मूत्र ही निकलना था। जो गाय को घास खिलाई जा रही है, साथ में दूध निकल रहा है। ऐसे-ही जो त्यागी होकरके जो भोजन ले रहा है, वह भोजन तेरे लिये गौ के भोजन के समान है, आप-का भोजन साधना करके सिद्धि को ले जानेवाला है। इसलिए किसी भी आगम में आपको लिखा नहीं मिलेगा बैल वृत्ति। गोचरी वृत्ति मिलेगा। यह भी एक रहस्य है कि गाय भोजन करके दुग्ध देती है।

इन्द्रियसुख सुख है, यहाँ तक पहुँच गये। अब यह मत बोलना कि इन्द्रियसुख दुःख है। इन्द्रियसुख सुख ही है। यह कारण में कार्य का उपचार है। दुःख नहीं है। दुःखी क्यों कहा? **'दुःखमेव वा'**। आप कहोगे कि उमास्वामी के सूत्र को आप बदल दोगे क्या ? नहीं। कहाँ बदल रहा हूँ? उनकी ही तो बात कर रहा हूँ। इंद्रियसुख दुःख है। सपरं। दुःख कैसे ? मेरे पिता जी मुझे वह सामग्री नहीं दे रहे हैं। बताओ, तू कितना समझदार था कि महाराज से कहूँगा तो मिल ही जायेगी। सपरं यानि पराधीन। तू भले ही कमा कर लाता है, बेटे की माँ भोजन बनाती है, तू पूछता है, 'क्यों आज क्या बना है? देर क्यों हो रही है?' भले ही आप पढ़े-लिखे हो, सो अच्छी भाषा बोल रहे हो, परन्तु भीतर से ईर्ष्या भर रही है। भोजन के पीछे अच्छी बनावटी भाषा में बोलना पड़ रहा है—'अरे! आप देर क्यों कर रहे हो ? जल्दी थाली लगाओ ना।' मुझे समझ में आ रहा है कि कौन बोल रहा है? ये तू नहीं बोल रहा है, क्षुधा-वेदनीय बोल रही है। ये आहार-संज्ञा बोल रही है। और बड़े प्रेम से बोल रहा है, हाँ, और झूठी प्रशंसा भी कर रहा है कि आज तो आपने बहुत अच्छा बनाया। क्यों ? कल फिर से बनाना। भले ही मालूम है कि बिल्कुल बेस्वाद बनाकर रख दिया, तब भी बेचारे को झूठी प्रशंसा करनी पड़ती है। किसी के यहाँ आमंत्रण/निमंत्रण में जाये तो फिर तो और-क्या कहना ? माया भी चल रही है।

लोगों ने तो कभी सोचा ही नहीं कि ये भी बंध के कारण होते हैं। भीतर से तो ऐसा लगता है कि मेरा भाग्य ही ऐसा है कि मुझे भोजन करना पड़ गया, क्या करूँ, अब ठीक है, जो है, सो है। 'सपरं' पराधीन है ये सुख। जो-जो इन्द्रियसुख है, पराधीन ही है। पाँच इन्द्रिय का एक भी विषय स्वाधीन नहीं है। दूसरे के हाथ तो जोड़ने ही पड़ते हैं। हाथ ही नहीं, तुझे क्या-क्या नहीं करना पड़ता है, ये आप बहुत अच्छे से जानते हो। बेटे की माँ की डाँट भी झेलते हो, मुझे थोड़े-ही बताने आते हो। कितने लोग तो आगे-आगे काम करके आते हैं। अपने घर की कौन कहे, कौन धुलाये यहाँ बैठ कर, परन्तु सत्य यही है कि घर के कपड़े भी धोने वाले लोग हैं संसार में, बर्तन माँजने वाले लोग भी हैं संसार में। क्या करें ? किया, सो भोगो। जिनको ऐसा न करना हो, वो सोच लो। वैराग्य हो तो मेरे पास आना, नहीं तो आप मेरे से ही बोलोगे कि तीन बजे से सोने नहीं देते। सामायिक करो, स्वाध्याय करो, प्रतिक्रमण करो, फिर मंदिर चलो। यदि वैराग्य है, तो घणा आनन्द है। धन्य हैं वे जीव, जो सुबह से जिनवाणी लिये बैठे हुये हैं। धिक्कार के लायक हैं वे जीव, जो बेटे के शरीर के पिण्ड को झुला रहे हैं कि बेटा! चुप हो जाओ। ऐसे काम करो हाथ में जिनवाणी लेकर बैठना हो तो। **'सपरं बाधासहियं विच्छिन्नं।'** नियम से समाप्त होंगे और बन्ध का कारण है, विषम हैं। जो इन्द्रिय से प्राप्त हो रहा है, वह संक्लेशता का कारण होने से दु:ख ही है। कारण का कार्य में उपचार। इन्द्रियसुख दु:ख ही है, इसमें सुख मान मत बैठना।

बेटा ! यदि शान्ति चाहिये तो इन्द्रियसुख लेना ही नहीं। ठीक है, आप जिस गुरु के शिष्य हो, उसी का मैं हूँ। जिनवाणी में जो कहा, सो ठीक है। 'जो है, सो है।'

उस जीव को रात्रि में सुख होता है जिसका शील निर्मल है। जो शील-विहीन है, उनको दिन में भी सुख नहीं है।

उल्लू को दिन में दिखाई नहीं देता, परन्तु कामी पुरुष को दिन व रात दोनों में दिखाई नहीं देता।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।



कामाग्नि

श्लोक : देहं दहति कामाग्निस्तत्क्षणं समुदीरितम्।
वर्द्धमानः समामर्ग्यं चिरकाल समार्जितम्॥285/सा.स.॥

अन्वयार्थ : (कामाग्नि) कामभाव की आग **(समुदीरितम्)** जब उठ खड़ी होती है **(तत् क्षणं देहं दहति)** तब उठने के साथ ही शरीर को जलाती है **(वर्द्धमानः)** जब वह कामकी अग्नि बढ़ जाती है तब **(चिरकाल समार्जितम्)** दीर्घकाल से अभ्यास में लाई हुई **(समामर्ग्यं)** शान्ति को मुख्यता से जला देती है।

भावार्थ : हे भव्यात्मन्! कामाग्नि महाभयंकर है जो शान्ति के सरोवर की सलिल धारा को सुखा देती है, अतः काम वासना का त्याग ही श्रेष्ठ है।

॥सद्-देशना॥

आचार्यप्रवर भगवन् कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज सार समुच्चय जी में निज ब्रह्म में लीन होने के उपाय की व्याख्या कर रहे हैं।

इस शरीर को, देह को दाह उत्पन्न करने वाला कोई अन्य द्रव्य नहीं है। ज्ञान का विकल्प पर ज्ञेय में अशुभ होकर प्रवेश करता है तो निज की देह झुलसना प्रारम्भ हो जाती है। ज्ञान ही विकृत होता है और ज्ञान का विकार देह को गरम कर देता है। देह में विकार नहीं है देह को विकारित करने में साधन देही का परिणाम है।

चेहरा दर्पण है, जैसा द्रव्य सामने आता है वैसा दर्पण में झलकता है। आश्चर्य है दर्पण तो पर के चेहरे के बिम्ब को झलकाता है भावों की भंगिमा को प्रतिबिम्बित करने का कोई स्थान है वह तेरा चेहरा है इस मुख पर सब कुछ लिखकर आ जाता है। हे पुरुष! तेरे भीतर जैसा पुरुषार्थ चलता है उस पुरुषार्थ को तेरा चेहरा प्रकट करा देता है। चेहरे में दोष नहीं, चेहरे में पाप नहीं है, चेहरे में पुण्य भी नहीं है पुण्य-पाप जैसा हमारा परिणाम होता है वैसा चेहरे पर लिखा होता है अनक्षरी भाषा में।

जिसके भीतर विशुद्धि चलती है उसका चेहरा अलग होता है, जिसके भीतर स्नेह होता है, उसका चेहरा अलग दिखता है, जिसके अन्दर प्रीति होती है उसका चेहरा अलग होता है, जिसके भीतर प्रेम दौड़ता है उसका चेहरा अलग दिखता है, जिसके अन्दर वात्सल्य रहता है उसका चेहरा अलग झलकता है। स्नेह में सूखे आँचल से दूध झरने

लगता है, राग में वासनायें झरने लगती हैं। स्नेह में माँ के आँचल से दूध झरता है और जिसको राग की पराकाष्ठा, वासना काम की ज्वाला जब भड़कती है तो चेहरे पर पसीने की धारायें झलकना प्रारम्भ हो जाती हैं, शरीर की धातु बाहर छलकने लगती है ये भीतर की वासना है।

जहाँ वात्सल्य होता है, जहाँ धर्मानुराग होता है वह अपरिचित पुरुष को भी देखकर के धर्म से ओतप्रोत हो जाता है, वही धर्मात्मा जीव है। स्नेह में परिचय होता है, प्रेम में राग की परीक्षा होती है। वात्सल्य में कोई परिचय नहीं होता। शल्य रहित जो प्रीति है उसका नाम वात्सल्य है। किसी भी क्षेत्र का पुरुष हो, जीवों पर करुणा करते दिख जायेगा अपने आप आपके परिणाम होंगे धर्मात्मा जीव है।

छोटा-सा बच्चा धोती-दुपट्टा पहने दिख जाय आपको भी लगेगा क्या संस्कार हैं, एक बालक लड्डू खाने के लिए मचल रहा है, झगड़ रहा है कि मुझे खाना है और एक बच्चा सुबह से उठकरके कमण्डल पकड़ रहा है मुझे लेना है इसमें उसको कौन सा लड्डू मिल रहा है। तब लगता है धर्म की प्रीति अलग है अनक्षरी भाषा किसी बोर्ड पर लिखी जाती है तो वह तेरा मस्तिष्क है, चेहरा है। भावों का मापदण्ड चेहरे की भंगिमा है। वैराग्य अंकुरित हो जाता है, उस काले पुरुष का चेहरा भी सफेद हो जाता है और जो वात्सल्य से दूर हो जाते हैं उनके सफेद चेहरे भी काले हो जाते हैं, बिना काँच के अपना चेहरा दिखना प्रारम्भ हो जाता है, इतने सहज हो जाओ कि आपकी आँखें आपका चेहरा आपके ज्ञान में आने लग जाये। क्या ऐसा नहीं होता? स्वयं का चेहरा आपके ज्ञान में आना प्रारम्भ हुआ क्या? चाहे हाथ फेरना चाहे रूमाल फेरना। बाहर की कारोंच के कालेपन को चेहरे को तो तुम रूमाल से पौंछ सकते हो, लेकिन विकारों की जो कालिमा होती है वह रूमालों से पुछती नहीं है।

सफेद गद्दी पर यदि कारोंच लगा दी जाय उसे आप पौंछ सकते हो, लेकिन लकड़ी को जला कर जो कोयला कर दिया गया है। सफेद लकड़ी पर पाटी में पढ़े आप लोग श्याम पट तो जानते हो ब्लेक बोर्ड विदेशियों की भाषा जल्दी जानते हो, लकड़ी का श्याम पट उसमें आपने कालौंच लगाई है उस कालौंच को तो छुटा कर पुनः सफेद किया जा सकता है उस लकड़ी को जला कर आपने कोयला बना लिया है उसको सफेद कैसे करोगे? बाहर की कालौंच को तो आपने पौंछ लिया जिसने वासना की

आग से निज के परिणामों को कोयला बना दिया है। उसको कौन साफ करेगा? देखते-देखते चेहरे बदल गये। चिन्तवन शील का चेहरा चमकता रहेगा, चिन्ता शील का चेहरा मुर्छा जायेगा। दोनों के ज्ञान में ज्ञेय है, दोनों के ज्ञान में प्रमेय है। पिता जी की मृत्यु हो चुकी है, तेरे मस्तिष्क में, तेरे ज्ञान में पिता जी का चेहरा आ रहा है, परंतु स्वयं का चेहरा मुरझाया हुआ है। महावीर का निर्वाण हो चुका है तेरे ज्ञान में महावीर का चेहरा आ रहा है तो तेरा चेहरा मुस्करा रहा है। दिवंगत हुये पिता का चेहरा जब बेटे के मस्तिष्क में आता है तो उसका स्वयं का चेहरा मुर्झा जाता है कैमरे वाले से कहो हर समय का मेरा फोटो खींचो। जब फोटो खिचवाने खड़े होना तो अपना चिन्तन बदलने जाना, एक समय में अपने ज्ञान में पिता जी को लाना और जैसे ही पिता जी आ जाये फिर कहना अब फोटो खींचो उस चेहरे की भंगिमा अलग होगी फिर कहना थोड़ा ठहरो पिता जी को बुलाने में देर नहीं लगी थी परमात्मा को बुलाने में देर लग रही है, आप विश्वास मानिये।

जिन रूपों को नहीं आना चाहिये उन रूपों को आने में समय लगता है और भगवान् को देखने के लिये मुझे बार-बार कोशिश करनी पड़ती है। जैसे बने वैसे मेरे मस्तिष्क में भगवान् मेरे नैनों में भगवान् की तस्वीर आ जाये। प्रभु को विराजमान करना है तो नयन कमल बनाना पड़ेंगे। प्रभु को विराजमान करना होगा तो हृदय कमल बनाना पड़ेंगे और नारी को विराजमान करना है तो भोगों की शैया चाहिये पड़ती है वह शीघ्र दिख जाती है, लेकिन प्रभु को बुलाने के लिये नयन कमल चाहिये पड़ते हैं। जब तक हृदय में कमल की धारा नहीं खुलेगी नैनों में कमल नहीं आयेगा हाथ कमल नहीं बनेगा तब तक प्रभु विराजमान हुये कैसे?

ज्ञानियो! प्रभु को विराजमान करने के लिए निर्मलजल सा, एक बार जल में किञ्चित् शैवाल आ जाय, मन में किञ्चित् विकारों का शैवाल आ गया तो अब प्रभु का वास संभव नहीं है। अभी तो मैं प्रतिमा वाले भगवान् की बात कर रहा हूँ अभी तो मैं अपने भगवान् की बात कर रहा हूँ।

भगवान् की प्रतिमा को अर्थात् साक्षात् भगवान् को अपने नैनों से निहारने के लिये समय लग जाता है, फिर भगवान् से भी हट करके निज के ब्रह्म को निहारने के लिये कितनी ताकत चाहिये है। जो आँखों से दिख रहा है, जो आँखों से देख चुके हो उसे

बुलाने में कोई समय नहीं लगता। जो आँखों से देखा जा सकता हो, आँखों से पहचाना न जा सकता हो ऐसे पहचानन हारे को जानने के लिये और बहुत समय चाहिये है। वह कौन है वह मैं ही हूँ कोई दूसरा नहीं है। कुछ नहीं मात्र ज्ञान को पकड़ लीजिये, भाषायें बिलात हो चुकी हैं, वस्तु एक है एक वस्तु को अनन्त भावनाओं के कारण पिसना पड़ रहा है। वस्तु एक है भाषायें अनेक हैं, भाव अनन्त हैं।

स्वयं में एक आत्मा है। ज्ञानी! का नाती दादा बोलता है, इनका बेटा पिता जी बोलता है। पड़ौसी कण्ठ का भैया बोल देता है कण्ठ का, पेट का नहीं। पत्नि इनको पति बोल रही है अन्य सम्बन्धी कई सम्बन्ध लेकर आ चुके हैं।

हे जीव! साध्य साधन सम्बन्ध है, ये पर के सम्बन्ध हैं तू तो एक ही है और पर के सम्बन्धों में इतना लिप्त हो रहा है कि एक को छोड़कर नानत्व को पकड़ रहा है, यह भोगी की पहचान है और नानत्व को छोड़करके एक को पकड़ता है, यह योगी की पहचान है। क्लेश नाम की कोई वस्तु नहीं है। जो तुम नहीं हो, जिनमें तुम नहीं हो, उनमें अपने को लेकर पहुँच रहे हो यही तुम्हारा कष्ट है। कोशिश मेरी ये है कि- आप कुछ भी समझो, आपको लगता है कि- महाराज मुझे उपदेश देने आये हैं, परन्तु सच बताऊँ मैं अपनी आत्मा को उपदेश देने यहाँ आता हूँ। जो तुम अकेले में नहीं सोच पाते हो वह सबके साक्षी पूर्वक बात करो, अर्हत् साक्षी, सिद्ध साक्षी, आचार्य साक्षी, उपाध्याय साक्षी, साधु साक्षी, सर्व साक्षी। भगवान् की साक्षी में जो बात करोगे उसमें तुम धोका दे सकते हो, इसलिए लोक की साक्षी में बात कीजिये।

वर्तमान में इस कलिकाल में कभी एकान्त में दीक्षा नहीं होना चाहिये, एकान्त में किसी को व्रत नहीं देना चाहिये। परमात्मा की साक्षी में, गुरु की साक्षी में तम्हें व्रत लेना सो भले लो, लेकिन समाज की भी साक्षी होना चाहिये है। मैं दीक्षा ही दूँगा, आहार तो समाज ही देगी, पालन तो समाज करायेगी। उसको भी पता होना चाहिये ये प्रमाणिक है कि अप्रमाणिक? इसलिए कलिकाल में स्वदीक्षा नहीं होगी और अकेले में बन्द कमरे में दीक्षा नहीं होगी, भीड़ भी सामने होना चाहिये। लोगों को लगे, कल छोड़ने के परिणाम हो जायेंगे तो चलो उसी भीड़ के सामने चलो, वहाँ जाकर छोड़ो। जगत् के साक्षी में लेने के बाद भी पालन उसी का होगा जिसकी स्वसाक्षी पवित्र होगी, संयम का पालन वही कर सकेगा। मैं इस बात पर विश्वास रखता हूँ कि- जगत् की

साक्षी में मायाचारी हो सकती है। कलयुग में लोगों के काले चेहरे भले ही न हों, लेकिन कलयुग के काले परिणामी जीव हैं, ये परमात्मा को भी दगा दे सकते हैं।

ये कलयुग के काले लोग हैं, ये भगवान् को भी बोल सकते हैं मुझे नहीं है मालूम क्या है नहीं तो मैं आपको बता सकता हूँ। एक ज्ञानी ने भगवान् के सामने बोल करके एक करोड़ की बोली लगाई अब कहने लगा मेरे बच्चे बड़े-बड़े हो गये अब तो इन्हें भी कुछ देना पड़ेगा पहले भाव पूछ लेते अब भाव बदल गये अब कहता है, एक करोड़ तो नहीं दे पाऊँगा, जितना बनेगा उतना करूँगा। जीव बदल गया। लोगों ने भगवान् की साक्षी में लगे व्रत छोड़ दिये, लेकिन जब स्वसाक्षी में बैठेगा तो मैं विश्वास के साथ कहता हूँ उसको रोना पड़ेगा। पद्मपुराण ग्रन्थ को उठाकर देख लेना, रावण जब अपने में बैठता था जिस समय कोई चेला चपाटे नहीं होते थे, कोई दास नहीं होते थे कोई मुख प्रशंसक नहीं होते थे। विश्वास रखना आपको तलवार से वार करने वाला शत्रु कमजोर मिल जायेगा, लेकिन तुम्हारे चेहरे के सामने प्रशंसा करने वाला शत्रु महाशत्रु होगा। जो तलवार से बार करेगा वह मात्र शरीर को विदीर्ण करेगा और चेहरे पर प्रशंसा करेगा वह मान कषाय की छुरी तुम्हारे अन्दर झोंक रहा है। जो तुम नहीं हो वहाँ तक तुमको भेज देता है उसे पता होता है चला जा फिर आयेगा कहाँ से? भैया! ऐसा ही है कभी मुख प्रशंसक की बातों में आकर फूल मत जाना। हृदय के सच्चे हो न, कान के पक्के हो न, तो जगत् पूज्य हो जाओगे। कान के कच्चे, हृदय के झूठे हैं इनको तो दूर से ही देखकर चले जाना कुछ लोग लगते बड़े अच्छे हैं, पर होते नहीं हैं। घोड़े की लीद और किम्पाक फल और माया चारी पुरुष को दूर से ही देखना ये सब चिकने ही दिखते हैं उसमें हाथ चला जायेगा तो दस बार धोने से भी बदबू नहीं जायेगी ऐसे ही किम्पाक फल, मायावी पुरुष मुख पर प्रशंसा करेगा, आपके सामने दूसरे की निन्दा करेगा तो समझ लेना जो मेरे सामने दूसरे की निंदा कर सकता है वह मुझे कैसे छोड़ सकता है। बहुत समय दे देना, लेकिन जब स्वसाक्षी में आयेगा अब देखिये किससे बात कर रहे हो।

जब रावण स्वसाक्षी में बैठता था- तब कहता था धिक्कार हो मुझे, दशरथ तनय श्री राम ने मेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ा, दोष मेरा है सती सीता का भी कोई दोष नहीं है, उसे सौंदर्यता पुण्य से मिली है, दोष मेरे नेत्रों को भी नहीं है नेत्र तो भगवान् को

भी दिखवा देते है। जैन दर्शन में आँख फोड़ कर मुनि नहीं बना जाता दृष्टि मोड़कर मुनि बना जाता है। दोष आँखों को भी नहीं है। आँखों में दोष होता तो तीर्थ की वन्दना कैसे होगी, शास्त्रों का स्वाध्याय कैसे होगा? आँख में दोष होता तो मैं जीवों की रक्षा कैसे करता? दोष आँखों को भी नहीं है। दोष मेरी देह को भी नहीं है यह देह तो तपस्या भी करा देती है। दोष न नेत्रों को है, दोष न देह में है पाँचों इन्द्रियों में कोई दोष नहीं है, दोष उस दोषी में है जो जगत् के दोष देखने जा रहा है।

न इन्द्रियों को सुधारो, न देह को सुधारो सँभाल सकते हो तो अपने ज्ञान के विपर्यास को सँभालो, स्वसाक्षी में आइये। वे ढोंगी लोग हैं जो आत्म साक्षी में बैठ करके आत्मा का ध्यान करना चाहते हैं, पहले आत्मा की साक्षी इसमें लगाना चाहिये कि पाप कौन कर रहा है? निमित्त करवा रहा है कि शरीर करवा रहा है कि इन्द्रियाँ करवा रहीं हैं कि पाप अपनी आत्मा ही कर रही है? आत्मा की साक्षी पापों से कराइये। इस विषय की परा दशा में चलिये आप, लोगों में ये भ्रम फैल गया है कि भोग, इन्द्रियाँ भोग रही हैं, पुद्गल का भोग पुद्गल कर रहा है मैं तो कुछ करता ही नहीं हूँ। सत्य ये है जगत् तेरा कुछ नहीं करता, तू ही तेरा कर्ता है। ये मिथ्या भ्रम है कि- लड्डू को शरीर ने खा लिया है। ये लड्डू को शरीर ने नहीं खाया, रस को चखने वाला तेरी आत्मा का ही विभाव भाव है।

शरीर साधन मात्र है, इन्द्रियाँ साधन मात्र हैं। रसास्वाद कौन ले रहा है? अशुद्ध जीव, जीव की विभाग दशा, पुद्गल की विभाव दशा इन दोनों की संयोग धारा सारे जगत् के पापों में लिप्त हो रही है। स्वसाक्षी में आओ मस्तिष्क को ठण्डा करो। जिनको सिर टेक रहे थे माथा टिक रहा है श्रद्धा की मुद्रा में, भाव वासना के चल रहे हैं। लोक को छलने के लिये हाथ राखी बँधवाने को बढ़ा रहा है और अनुभूति वासना की ले रहा है।

हे मायावी! स्वसाक्षी से पूछ जनक-जननी को ठगने के लिये, लोक की आँखों को ढकने के लिये मिर्च और धूल झोंक रहा है। दृश्य दिखा रहा है मैं इससे राखी बँधवा रहा हूँ ये राखी नहीं राग बढ़ा रहा है। यह अतिश्योक्ति की बात नहीं चल रही है। माँ से बोल कर गया मैं मंदिर जा रहा हूँ तीर्थंकर परमात्मा की वन्दना करके आऊँगा। यहाँ जिनालय में बैठ करके तेरी आँख किसी दूसरे की आँख पर जा रही

है। मेरे मित्र यह आँख का दोष नहीं है ये आत्मा का ही दोष है। दूसरों में मत जीना। किस किस क्षेत्र में जाकरके कैसे-कैसे भाव किये? उन बन्ध स्थानों को सोचिये।

युवाओं को दोष मत दो युवा मन से पूछो तुमने बूढ़े होने के पहले क्या किया था? वृद्धों को लगता है कि- महाराज जी तो युवाओं को सुधार रहे हैं। अभी ये कुछ कर भी नहीं पाये, करने के लिये खड़े हो, जो तुम करके आ चुके हो, तुम जाने वाले हो तुम पहले सुधर कर जाओ। मैं इसलिए नहीं कह रहा हूँ कि आप रो ओ। रो ओ मत तुम्हारे जाने के पहले तुम्हारे गुण गाने के पहले तुम सबको हँसाकर जाओ, तेरे वियोग में लोग तो रोयेंगे, वे बाद में रोयें, परन्तु तुमने अपने हृदय को जो रुलाया है उसको हँसा कर जाओ। पहुँच जाओ मिथ्यात्व के जीवन में, पहुँच जाओ स्वयं की युवावस्था में बनाइये स्वयं को साक्षी। प्रवचन में तो हम कह लेते हैं कि आपके बच्चे बिगड़ रहे हैं । तुम अपने बच्चेपन की तो सच्ची बात बताओ।

किसी बेटे को डाँटने के पहले, स्वयं की तेरी बेटे की पर्याय रही पहले उसको निहार लेना। तब समझ में आयेगा। कम-से-कम ये ऐसा करके आये हैं, परन्तु मायाचारी करके नहीं आया। मैं तो ऐसा रहा हूँ कि लोगों की आँखों में भोला दिखता रहा हूँ और भीतर में अग्नि का गोला बनकर रहा हूँ। स्वसाक्षी में देखिये 'हा दुट्ठ कयं' हाय मैंने दुट्ठ किया है। जिनके चरण छूता था उनके भी आचरण को मैंने भङ्ग किया था। 'हा! दुट्ठ कयं' मिलो अपने हृदय से, जिनको मैं अर्घ चढ़ाता था जिनको नमोऽस्तु करता था उनके प्रति भी दुष्ट चिन्तन कर लिया है। सोचता है हे भगवान् पारसनाथ स्वामी! मेरे शत्रु का नाश हो जाये मैं श्रीफल चढ़ा रहा हूँ, परन्तु उसका पुण्य इतना तेज था कि जो तू सोच रहा था उससे उसको और उल्टा फलित हो गया तो फिर ये सोचता है देख ली भगवान् की शक्ति, शत्रु को बढ़ा रहे हैं। दादा जी! ऐसा ही होता है। लोग भगवान् के प्रति भी अशुभ बोलते हैं। एक नगर में एक व्यक्ति का एक्सीडेंट हो गया, वह कामा में चला गया दो वर्ष तक कामा में पड़ा रहा उसके भाई ने चारों तरफ जगह-जगह की तस्वीरें लगवा दीं। कोई-न-कोई तो मेरे भैया को ठीक कर देगा, एक दिन उसकी अंतिम श्वास भी निकल गई उसने भाई के शरीर के संस्कार बाद में किये, जितनी तस्वीरें वह लेकर आया था उन तस्वीरों के संस्कार पहले कर दिये। कुछ नहीं मिला फोड़ने को, तो स्वयं के मुक्के से वे तस्वीरें फोड़ डालीं, सो

हाथ में काँच लग गया, रक्त निकल गया। दीवाल पर एक तस्वीर नहीं बची, सारी तस्वीरें उसने तोड़ दीं, बोला कोई भगवान् में शक्ति नहीं होती।

मेरे मित्र! अपने पुण्य-पाप आयु कर्म पर ध्यान रखो, अपने राग में भगवान् की शक्ति को खोखला मत करो। इसलिए निष्काम आराधना होना चाहिए, निःकांक्षित आराधना होना चाहिए। तुम कामना लेकर आओगे और तुम्हारा पुण्य नहीं है तो तुम भगवान् में दोष खोजोगे, अपने पाप में दोष नहीं खोजोगे। गरीबी भगवान् की पूजा से नहीं आयी है, जो तुमने पूर्व भव में दान बोले थे और दान का खा गये थे उससे गरीबी आई है।

ज्ञानी! जीवन में कभी बोली मत लगाना और लगाना तो उसी दिन दे देना। एक क्षण वह द्रव्य रहेगा तेरे घर में वह निर्माल्य का द्रव्य होगा। आज कल तो ऐसी भी बोलियाँ चलीं हैं कि- अन्दर-अन्दर बात हो जाती है, तुम देना तो दस हजार, लेकिन बोलना एक लाख, ऐसा क्यों? अरे! हम आचार्य महाराज हैं, हमारे बोली इतने की गई है जरा सबको पता होना चाहिए। ये कौनसा धर्म प्रारम्भ हो गया। तुम देना तो एक ही लाख, लेकिन बोली लगाना करोड़ की। अन्दर-अन्दर सैटिंग है ट्रस्ट कमेटी से भी, दाता से भी महात्मा की। ऐसा क्यों महाराज। लोगों को पता चलना चाहिए कि इतने करोड़ की बोली गई है। महाराज इससे तुम्हें क्या मिलेगा? कुछ नहीं तिर्यञ्च पर्याय तो मिल जायेगी अच्छे से, क्यों कि माया चारी कर रहा हूँ और मायाचारी करवा रहा हूँ कर्म नहीं छोड़ता किसी को, चिन्ता मत करो।

''कर्म प्रधान विश्व कर राखा, जो जस करहिं सो तस फल चाखा''

स्वयं किया गया कर्म निश्चित फलित होगा, यदि स्वयं का किया गया कर्म पर में चला गया तो स्वयं का कर्म व्यर्थ हो जायेगा।

कैसे लोग हैं, इनकी करतूती समझ में नहीं आती। अभी तू मिर्च खा, आँखों में पानी, नाक से पानी चेहरे में सी-सी अनुभूति हुई कि नहीं? और मिश्री खायेगा तो जितनी जलन थी सब शान्त। ऐसे ही व्यक्ति कहे न कहे स्वयं के अशुभ कर्म स्वयं समझ में आ जाते हैं और दिखना भी प्रारम्भ हो जाता है, लेकिन कह नहीं पा रहे- कोई का के है। कह नहीं पा रहा इसका मतलब यह तो नहीं कि समझ में नहीं आ रहा है, सब समझ में आता है।

अन्तर्मुहूर्त के अन्दर ही कर्म दिखना प्रारम्भ हो जाता है। कम-से-कम इतना समय चाहिए उसको।

रावण जब कह रहा था, मैंने ठीक नहीं किया। मैंने दुष्ट किया है माँ! तू कैसी पापिन है! बुरा नहीं मानना, अब जो है सो है। एक बच्चा कह रहा माँ माँ माँ तब भी तू उसे मारती चली जा रही है। वह तो फिर भी माँ कह रहा है।

मैं तो फिर भी माँ ही बोलूँगा। धन्य हो बेटे। माँ कह रही है मर जाता, जब मारना ही था तो तूने जन्म क्यों दिया? ये तो जगत् को पता है बच्चा जन्म लेगा तो रोयेगा भी, मचलेगा भी यदि आपको ये पसन्द नहीं तो अपने उस मचले युवा मन को मना लेती तो इसे न मनाना पड़ता। अब कहता है मैं बहुत परेशान हूँ, कभी ये माँगता कभी वो माँगता क्या-क्या लाकर दूँ, क्या तुझे ये मालूम नहीं था? यदि इससे तू दुःखी हो रहा है तो बहुत अच्छा होता अपने मचले मन को उस समय मना लेता सो आज इन्हें न मनाना पड़ता। मैं तो किसी बच्चे को नहीं मनाता। अब किया है सो भोगो, चाहे रोकर भोगो चाहे हँसकर भोगो। 'जो है, सो है'। आज से यह तो मत कहना कि माता पिता ने जबरदस्ती कर दी है, ये झूठी बातें मत बोलना। तुम स्वयं जान बूझकर गये हो अच्छे से। अब जरा सी विषमता आ गई सो हे परमेश्वर भगवान्! मेरे से क्यों रूठे हो। अरे! सीधी-सीधी कहो तेरा मन भी तेरे से रूठा था, उस समय मना लिया होता तो आज क्यों मनाना पड़ता? कोई नहीं रूठा यह भी सत्य है जब मनायेगा तो तू स्वयं को ही मनायेगा। सम्बन्ध अनन्त हैं। भाषायें अनन्त हैं, मैं तो एक हूँ। जो मेरे नहीं हैं उनके पीछे कितने दुःख सहन कर रहा है, क्योंकि मैं हूँ उसमें कोई कष्ट नहीं है।

ज्ञानी! जगत् में वस्तु के पीछे कभी कष्ट नहीं हो सकता, जो त्रैकालिक है वह कष्ट नहीं देता अज्ञानियों के समय व्यर्थ जाते हैं, ज्ञानियों के समय कभी व्यर्थ नहीं जाते। मथानी मथते रहो तो मक्खन निकलता है, तत्व की चर्चा करो तो रस निकलता है। मिट्टी है, उसे मिटा पाओगे क्या? घट है मिट सकता है कि नहीं? आपने मिट्टी के लोंदे को घट का आकार दिया उसकी कीमत बाजार में अच्छी आँकी जा रही है, कीमत घड़े जड़ की आँकी जा रही है और मुस्करा ज्ञानी रहा है ऐसा क्यों? पैसे तो बाद में देता है, पहले प्रशंसा करता है। क्या घट बनाया? उस कलाकृति को देखा, शिल्पकार की प्रशंसा हुई, बहुत अच्छा शिल्पकार है। पैसे की तो बात ही नहीं चल

रही? मुस्कराहट क्यों चल रही है इसकी आकृति का कर्ता मैं हूँ, खुश हो रहा है। उसी समय एक अनाड़ी चंचल बालक पहुँचा उसके हाथ में पत्थर था उसने सोचा देखूँ तो क्या होता है? उसने पत्थर मटकी पर छोड़ दिया।

चेहरा उदास हो गया, परन्तु मिटा क्या है? मिट्टी मिटी? नहीं, त्रैकालिक के पीछे किसी को कोई कष्ट नहीं है, जो शाश्वत होता है उसमें कोई विकार नहीं है। जो तुम बनाते हो वह मिटता है। उसका मिटना भी नियत है, तुम्हारा चेहरा उतरना भी नियत है, शाश्वत में कोई विकार नहीं। जो बनाया जाता है वह मिटता है जो होता है वह होता ही है। मेरे लिये आज-तक कोई नहीं रोया। मैंने अनन्त पर्याय धारण कीं, परन्तु आज तक कोई रोने वाला नहीं मिला, क्योंकि मेरे बारे में कोई रोता ही नहीं है। जो रोता है, वह पर्याय के राग में पर्याय को रुलाता है। मेरे द्रव्य के बारे में कोई जानता ही नहीं है कि क्या है? भक्ति धारा द्वैत धारा, छोटे लोगों की है। जो चर्चा कर रहे हो वह बहुत ऊँची है। मेरे लिए जगत् में कोई रोया ही नहीं है। न रोया है, न रो सकता है, जो रोये हैं वे पर्याय के लिए रोयेंगे। मैं तो त्रैकालिक ध्रुव हूँ, कोई अच्छी बातें करे तो कदम धीरे हो जाते हैं और कोई यहाँ वहाँ की बातें करे तो चाल बढ़ा देता हूँ। सुनना ही नहीं है, थक जायेगा सो वह अपने आप पीछे हो जायेगा। जिस घर को तूने तीन साल में बनाया और उसकी एक दीवाल खिसक जाय, तो तेरे दिल में क्या होगा? तू ही जान सकता है और जिस मकान को तूने बनाया ही नहीं है वह पूरा धराशायी हो जाय तो तुझे कुछ नहीं होता। इसलिए कष्ट वहीं है, जहाँ कर्त्तृत्व छिपा है। जहाँ कर्त्तृत्व नहीं है, वहाँ जगत् में कोई कष्ट नहीं है। ज्ञानी के देखते कितने लोग ऊपर चले गए थे, पर रोया नहीं और जिसमें कर्त्तृत्व निहित है उस जीव की अंतिम श्वासें चल रही हों, तो भी वैद्य से कहेगा- भैया! बचालो, मैं तेरी पेटी भर दूँगा।

कभी भी साधु बनने के परिणाम आयें, तो शरीर को साधु बाद में बनाना, पहले कर्त्तृत्व बुद्धि के कपड़े उतार देना। कर्त्तृत्व बुद्धि के कपड़े नहीं उतार पाये तो मालूम चला घर की झोपड़िया तो नहीं बना पाये, परन्तु यहाँ धर्म शालाओं में लिप्त हो जाओगे।

मुमुक्षु! सारी विद्यायें आती हों, लेकिन विद्याओं के प्रकट करने का कोई भाव भी न हो। प्रवचन हों आप सुनना चाहते हो तो कर दूँगा। आप नहीं सुनना चाहते तो मुझे कोई विकल्प नहीं है, मैं स्वाध्याय कर लूँगा। ऐसे परिणामों से युक्त हो करके सारी

विद्या सीख लेना, परन्तु ध्यान रखना तुम्हारी विद्या किसी के लिये अस्त्र का काम न करे। हर समय अपनी विद्या को दिखा करके दूसरे के मन में हीन भावना मत लाओ। यह बहुत बड़ी दया है, नहीं तो तुम्हारे सामने सामान्य लोग बैठेंगे नहीं, क्योंकि यह ध्रुव सत्य है अज्ञानता से बड़ा जगत् में कोई दु:ख नहीं है। हम सभी विद्या के बल पर जीते रहे हैं।

किसी को हीन भावना उत्पन्न मत करो, मैं इतना ज्ञानी। ज्ञान का क्षयोपशम अलग है, दया परिणाम होना चाहिए। तुम सबकी शरीर की रक्षा के तो भाव रखते हो और मन को विचलित करा रहे हो।

ये क्षयोपशम ही तो है, कब किसकी बुद्धि को क्या हो जाये? कब आदमी पागल हो जाये। न विद्या का मद करना, न ज्ञान का मद करना, कुछ नहीं करना। **सरल और सहज होना सीख लो इसी में कल्याण है।** शरीर के लिये मत सोचना कि मैं बहुत सुन्दर हूँ, पता नहीं कब क्या हो जाये? सफेद दाग हो जाये, कोई को कुछ भी हो सकता है। चलते-चलते हाथ टूट जाये, यही सोचना जो मिला है पुण्य से मिला है उसको संजोकर रखूँ और पुण्य-पाप से रहित होकर सिद्ध बनूँ, सब झंझट ही समाप्त।

देहं दहति कामाग्निस्तत्क्षणं समुदीरितम्।
वर्द्धमानः समामर्ग्यं चिरकाल समार्जितम्।।

यह काम की ज्वाला देह को झुलसा देती है, दीर्घकाल में उपार्जित किया जो साम्य भाव है उसे क्षण मात्र में भस्म कर देती है। तभी तक आनन्द है तभी तक ज्ञान है जब तक काम की ज्वाला में नहीं झुलसा। जैसे ही काम सताता है तब पता नहीं चलता कहाँ गये ग्रन्थों के पाठ कहाँ गया तुम्हारा विज्ञान, कहाँ गया तुम्हारा सदाचार, बुन्देलखण्ड में कहावत है-

भूख न देखे जूठोभात, नींद न देखे टूटी खाट,
काम न देखे जात कुजात।

जिन कुलों में भगवान् का अभिषेक देखा जाता हो, निर्ग्रन्थ को दान दिया जाता हो, उनकी वाणी सुनी जाती हो उन कुलों को भी काम एक क्षण में कलंकित कर देता है। बच्चों से बोल कर रखना तुम्हारे दादा परदादा बहुत कुछ देकर गये हैं। बेटों को यह शिक्षा देना- धर्मात्माओं की सभा में आगे बैठते रहना इतना काम करना। कहीं

तुमको मंदिर की सीढ़ी पर बैठने का मौका न मिले। वासना का समय बहुत अल्प है, अल्प समय में ही पूरे जीवन की यात्रा को कलंकित कर लेता है। रावण जैसा उज्जवल कुल, पण्डित था। जितनी विद्यायें रावण ने सिद्ध कीं कोई कर नहीं सका, लेकिन क्या कर सकते हैं? फोड़ा ठीक हो सकता है, लेकिन गूद ठीक नहीं होती। परिणाम सुधर सकते हैं, लेकिन जो कलंक का टीका लग चुका है उसे नहीं सुधार सकते हो।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं।
आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।
भगवान् महावीर स्वामी की जय।

क्रोध का फल

श्लोक : क्रोधेन वर्धते कर्म दारुणं भववर्धनम्।
साम्यं च क्षीयते सद्यस्तपसा समुपार्जितम्॥286॥
सुदृष्टमनसा पूर्वं यत्कर्म समुपार्जितम्।
तस्मिन् फलप्रदेयास्ते कोऽन्येषां क्रोधमुद्वहेत् ॥287॥

अन्वयार्थ : (क्रोधेन दारुणं भववर्धनं कर्म वर्धते) क्रोध कषाय से भयानक संसार को बढ़ाने वाला कर्मबंध बढ़ता है **(तपसा समुपार्जितम् च साम्यं सद्यः क्षीयते)** तथा तप करने से जो प्राप्त की हुई समता है वह शीघ्र ही नष्ट हो जाती है। **(सुदृष्ट मनसा)** सम्यग्दृष्टि मनुष्य के द्वारा **(पूर्वं यत् कर्म समुपार्जितं)** पूर्व में जो कर्म उपार्जन किया गया है **(तस्मिन् फल प्रदेयाः ते)** उसका फल प्राप्त होने पर **(कः अन्येषां क्रोधं उद्वहेत्)** कौन दूसरों पर क्रोध करेगा ?

भावार्थ : हे भव्य ! क्रोध की एक कणिका वर्षों की साधना को नष्ट कर देती है, फिर ऐसा कौन महापुरुष होगा जो क्रोध करेगा?

॥सद्-देशना॥

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज सारसमुच्चय जी में परम-शान्त-स्वभावी, समरसी भाव की व्याख्या कर समझा रहे हैं कि हे जीव ! मोक्षमार्ग बहुत सरल है, बहुत सहज है, इससे बड़ा आनन्द का कोई स्थान है ही नहीं। जहाँ अशान्ति और क्लेश है, वहाँ मोक्षमार्ग नहीं। यह भी एक विद्या है, यह भी एक आनन्द है। जिसने सत्यार्थ आनन्द के स्वरूप को नहीं समझा, उसको यहाँ ढोंग का जीवन दिखेगा और जिसने सत्यार्थ को समझ लिया, उसे ढंग का जीवन दिखेगा। अपने सोच से जो सोचने की आदत है, इससे सत्य के पास नहीं पहुँच पा रहा है। इसलिए सोचने वाले का ज्ञान प्रमाणित नहीं है। जिसका सोच ही समाप्त हो चुका है, जो सोचातीत है, ऐसे सर्वज्ञ की वाणी ही प्रमाण है। हम जो भी सोचते हैं, अपने सोच से नहीं सोच पाते और इतने अन्दर चले जाते हैं कि अपने सोच से दूसरे के जीवन को देखना प्रारम्भ कर लेते हैं। यह जीवन की पहली भूल है। अपने सोच से हम दूसरे के जीवन में प्रवेश कर जाते हैं और इतना अन्दर प्रवेश कर जाते हैं कि जहाँ जिसके बारे में सोच रहे हो उसने कभी

सोचा ही नहीं था और तुम उससे ऊपर पहुँच जाते हो और दु:ख प्रारम्भ हो जाता है। कभी-कभी तो ऐसा भी होता है कि क्या मालूम यह ज्ञानी मेरे बारे में क्या सोच रहा है? जबकि वह कुछ भी नहीं सोच रहा था और आप इतना सोच चुके हो कि मूर्छा खाकर गिर गये हो कि मेरे बारे में क्या सोच रहे होंगे। उस बेचारे के पास समय ही नहीं था। वह तो भगवान् को, जिनवाणी को, गुरु को देखने में लगा था लेकिन तुम सोच रहे थे कि ये मेरे बारे में क्या सोच रहा था। अपने सोच से पर को देखना बन्द कर दो। जितने पाप हुये हैं, जितने पाप हो रहे हैं, जितने पाप होंगे, ये सब आपके निज के सोच से हो रहे हैं। जगत् में कोई वस्तु बुरी नहीं है, अशुभ नहीं है। बिल्ली अशुभ है क्या? ज्ञानी गाड़ी से जा रहा था, बिल्ली रास्ता पार गई तो गाड़ी रोक ली। बोले—बिल्ली निकल गई है, गाड़ी रोक लो। मेरे मित्र ! क्या बिल्ली अशुभ है ? उसके बच्चों से पूछो कि वह बिल्ली कैसी है ? परन्तु चूहे से मत पूछना कैसी है ?

ज्ञानी ! आप अच्छे हो क्या? बेटे की माँ से पूछेंगे तो वह कहेगी कि बहुत अच्छा नौकर मिला मुझे। लेकिन जिस ऑफिस में काम करता है, वहाँ कोई काम कराने आये, उससे पूछना कि ज्ञानी कैसा है? आप अच्छे हो क्या? महाराज ! मैं तो जैसा हूँ वैसा ही हूँ। जो हूँ, सो ही हूँ। जिस का मेरे से राग हो जाता है, उसके लिये मैं अच्छा हो जाता हूँ और जिससे मेरा राग छूट जाता है, उसके लिये मैं बुरा हो जाता हूँ। मैं तो न अच्छा हूँ न बुरा हूँ। मैं तो जो हूँ, सो हूँ।

जगत् में कोई वस्तु अशुभ नहीं है। अपनी सोच से देखना प्रारम्भ कर दिया है। आप चिन्तन कर लो कि आज मुझे बिल्ली दिख गई, नियम से अच्छा होगा, तो उसको अच्छा ही होगा। जिसको रास्ते में दिगम्बर मुनि भी दिख जाये, वह यूँ सोच लेता है कि आज तो अपशकुन हो गया क्योंकि ये नंगे लोग दिख गये, उसका अपशकुन होना ही है। जो व्यक्ति यह चिन्तन कर रहा है कि अहोभाग्य है कि दिगम्बर मुनि, धरती के देवता के आज प्रात:काल दर्शन हुये हैं। परिणामों से पूछना, उसका नियम से अच्छा ही होना है। कितने भक्त यहाँ श्रीफल चढ़ाते हैं, उनको तो सब देख लेते हैं, लेकिन उन भक्तों को किसी ने नहीं देखा जो प्रात:काल झाड़ू लगाने के पहले धर्मशाला के सामने पैर पड़ रहे होते हैं। उन्हें कोई नहीं देखता। वे कहते हैं कि महाराज यहाँ विराजे हैं, पाँव पड़ लो। कितने जीव आस्था से भरे हैं। घर के द्वार पर चौक बहुत देर बाद

पुरता है, भाव-भवन में चौक पहले से पुर चुका होता है। तभी ये बच्चे धोती पहन कर आ रहे हैं। घर के द्वार पर पूरे गये चौक कह रहे हैं कि जब इनके भवनों के चौक इतने सुन्दर हैं, तो इनके आनन्दभवन के चौक कितने सुन्दर होंगे। जब इनके द्वार पर मुनिराज खड़े हो सकते हैं, तो इसके हृदय-चौक पर जिनराज क्यों नहीं खड़े हो सकते हैं? भैया! जैसे द्वारे पर सुन्दर चौक बने हैं, ऐसे-ही भीतर के चौक सुन्दर बने रहें, इसीलिये तो चौका लगा रहे हैं। जिसकी द्रव्यशुद्धि है, जिसकी भावशुद्धि है, कालशुद्धि है, क्षेत्रशुद्धि है, ये चार शुद्धियाँ जहाँ विराजती हैं, वही तो चौका है। जहाँ कषाय प्रारम्भ होती है, वहाँ चौका समाप्त हो जाता है। जहाँ चौका समाप्त हो जाता है, वहाँ चौक क्रिया रहती है।

जयपुर में राजस्थान जैसी गर्मी और वहाँ दिन के तीन बजे पाण्डाल में वाचना होती थी और जयपुर के ज्ञानी लोग दौड़े-दौड़े धूप में आते थे और सब मुमुक्षु आकर बैठ जाया करते थे। तब मैं सोचता था कि कौन कहता है कि लोगों की मुनियों पर आस्था नहीं है। एक समय आ गया था कि पूरे देश में सूचना पहुँच गयी थी कि बापू नगर में वाचना चल रही है। टोडरमल स्मारक में प्रवचन हुआ। नहीं, ये सर्वथा नहीं है कि श्रमणों पर श्रद्धा नहीं है। श्रद्धा तो प्राणिमात्र का गुण है, परन्तु श्रद्धेय को श्रद्धा जगाने की क्षमता चाहिये।

ज्ञानी ! अपनी सोच से जगत् को देखना बन्द कर दो। महान् बनना है भगवान् बनना है तो अपनी सोच से जगत् को देखना बन्द कर दो, शुचिता से देखना प्रारम्भ कर दो। सोच तुम्हारा ऐसा होता है जैसे बादलों की ध्वनि। बैंड बज रहा हो, उसकी ध्वनि जो है सो है, लेकिन आपको नहीं सुनाई पड़ती है जो तुम सोच लेते हो। यदि आपने बैंड के बजने में णमो अरिहन्ताणं सोच लिया है, तो आपको णमो अरिहन्ताणं ही सुनाई देगा। कोई अभागा सोच ले कि ये मुझे गाली बक रहा है, तो उसे गाली ही सुनाई देगी।

कोई सामने अपने मित्र से मुस्कराकर बात कर रहा था। तू दुःखी होकर निकल रहा था। तूने कहीं देख लिया तो तू यही सोचेगा कि शायद ये मुझे देखकर मुस्करा रहा है। कई बार मैंने अमित्रों में मित्रता देखी है और कई बार मैंने शत्रुओं में मित्रता देखी है, जबकि था कुछ भी नहीं, मात्र मेरा सोच था। जन्म देनेवाली माँ को भी शत्रु मान बैठा, पर ऐसा कुछ था नहीं ।

अनेक विडम्बनायें आज चल रही हैं। भैया! विश्वास रखना, जब भी किसी के बारे में अशुभ सुनने को मिले, एक बार मंदिर का समय छोड़ देना, लेकिन उस व्यक्ति को देखने जरूर जाना जिसके बारे में किसी ने अशुभ चर्चा की हो। क्यों ? कहीं चर्चा करने वाला ही तो अशुभ नहीं है। महावीर कब खराब थे? पर ध्यान रखना, इन्द्रभूति, अग्निभूति, वायुभूति ये तीनों सगे भाई महावीर के दर्शन करने नहीं गये थे। ये तीनों 500-500 शिष्यों को पढ़ानेवाले गुरु थे। अट्ठारह पुराण, चार वेदों के प्रकाण्ड विद्वान् थे। वे दर्शन करने नहीं गये थे, वे महावीर को समझाने गये थे कि मैं नाथपुत्र को बताकर आऊँगा। परन्तु जैसे-ही पहुँचते हैं, लोग क्या कह रहे थे? ये तो सर्वोदयी तीर्थ में लवलीन हैं।

वे तीनों भाई कह रहे थे मैं नाथपुत्र को पढ़ा कर आऊँगा। जैसे-ही नाथपुत्र महावीर स्वामी के समवसरण में पहुँचे, उन्हीं के श्रीमुख से निकल पड़ा, 'ये किसी के बारे में अहित क्यों सोचेंगे? जिनके श्रीचरणों में गाय और सिंह एक घाट पर पानी पीते हैं, उनके परिणामों में दुनियाँ के बारे में अशुभ हो नहीं सकता।

ज्ञानियो ! जिनके हाथ में मयूरपंख की पिच्छी दिखती हो, उसके बारे में मेरा तो यह सोच रहता है कि जो पंख आँख में जाने पर वेदना नहीं होने देता है, ऐसे मयूरपंख को लेकर घूमनेवाले लोग इतने कठोरहृदयी कैसे हो सकते हैं? अपन को पंख के समान हृदय की कोमलता देखना चाहिए।

विश्वास किस पर नहीं होता ? दयाविहीन पर श्वान भी विश्वास नहीं करता, इंसान क्या करेगा। तुम पत्थर लेकर खड़े हो जाना, तुम्हारे घर के द्वारे पर कुत्ता भी नहीं आना पसंद करेगा और रोटी लेकर खड़ा हो जायेगा तो काल भी आ जायेगा। क्यों माताओ ! वे दिन कहाँ गये जब पहली रोटी गाय की, अन्तिम रोटी श्वान की। अब आप हँसो न, तो बताऊँ आपकी तरफ से? स्वामी ! जब निर्लोभ वृत्ति होती थी, तो गाय दिखती थी। जब निर्लोभ वृत्ति होती थी, तो अन्तिम रोटी श्वान की होती थी। अब तो मेरे घर में फ्रिज है फ्रिज। जो-जो वासा होता है, उसमें बास करता है और सुबह वह ताजा हो जाता है। वासा किसको खिलाया जाता है, आप जानते हो। अब वे मेरे घर में ही पलने लग गये हैं तो दुनियाँ को क्या खिलाने जाऊँ? अब माँ सुबह का पराठा शाम को खिलाये या शाम का सुबह खिलाये, तो कह देना 'माँ! मैं द्वार

पर बैठनेवाला नहीं हूँ।' ये बच्चों की बुद्धियाँ भ्रष्ट क्यों हो रही हैं ? बेटा स्कूल भी जाता था तो माँ सुन्दर स्वच्छ ग्लास भर कर दूध पिलाती थी, आज ये पचासों दिनों की सड़ी-सड़ाई बिस्कुट और ब्रेड खिला रहे हैं। जिनमें कोटि-कोटि जीव सड़ रहे हैं, ऐसे द्रव्य को खिलायें तो बुद्धि बढ़ेगी क्या ? और कह रहा है, 'बेटा! खा लो डबल रोटी।' बिल्कुल ठीक कह रहा है। सड़ा-सड़ाकर डबल बना दी गई है, वह डबल रोटी है। आपको पता होना चाहिये कि भिखारी रोटी भी जाकर बेच देते हैं। वह रोटी फिर से बनकर आती है, वह होती है डबल रोटी। ज्ञानी! कभी-कभी ऐसा भी सोच लिया करो।

जो माँ प्रातः होते ही अपने बच्चों को डबल रोटी या बिस्कुट पकड़ा रही है, विश्वास रखो, वे तो माँस के टुकड़े को पकड़ा रही हैं। जो सामग्री मर्यादा के बाहर हुई, वह चलित हो गई। जो गाय के मुख का सामान था, वह भी तुम्हारे मुख में आ गया। जो श्वान के मुख का भोजन था, वह भी तुम्हारे मुख में आ गया है, क्योंकि इन्सान की दृष्टि पता नहीं कहाँ चली गई है। **प्रीति को तिर्यञ्च भी समझता है। हाथ में पत्थर है तो श्वान भी नहीं आयेगा, इन्सान कैसे आ सकता है? जितना खोटा हाथ का पत्थर नहीं है, उतना खोटा तेरे भावों का पत्थर है। हाथ का पत्थर किसी ने फेंक कर मार दिया तो सिर ही फूटेगा। किसी ने भावों के पत्थर फेंक दिये तो विशुद्धि का घात हो जायेगा।**

तो वर्द्धमान के सामने इन्द्रभूति, वायुभूति, अग्निभूति कहते हैं 'हे वर्द्धमान ! मैंने जो सुना था, वह कुछ-और ही सुना था।' सत्य यही है कि जब तक पास नहीं पहुँचो, तब तक सत्य को जान नहीं सकते हो और ईष्यालु कभी सत्य को बता नहीं सकता। ईष्यालु कभी सत्य की व्याख्या कर नहीं पायेगा और तुम सुनोगे तो उस बात को समझ नहीं पाओगे। यह जीवन का बहुत बड़ा धोका है। वर्द्धमान के चरणों में जैसे-ही तीनों भाई पहुँचते हैं, उनके श्रीमुख से क्या निकलने लगा? दया। कसाई पर कोई विश्वास नहीं करता कि कब छल कर देगा और कब मेरे प्राण ले लेगा। परन्तु दयालु पर श्वान भी विश्वास करता है।

अवन्ती देश, उज्जयिनी नगरी, क्षिप्रा के तट पर वर्द्धमान ध्यान में लीन थे। उज्जैन में जब जंगल जाते थे तो मयूरों की टोलियाँ मिलती थीं। बच्चों को देखकर वे उड़कर

वृक्षों पर बैठ जाते थे और मुनियों के पास आकर बगल में खड़े हो जाते थे। यहाँ तक कि आकरके नृत्य करने लग गये। वे पक्षी भी समझ गये थे कि जो मेरे ही पंख लिये बैठे हों, वे मेरा घात कैसे कर सकते हैं? श्रेयांसगिरि में पत्थर की शिलायें ही चौकियाँ थीं और उन्हीं पत्थर पर पत्थर रख दो तो शास्त्र की पीठ बन जाती थी। एक दिन महाराज लिख रहे थे, एक काला नाग आकर उस पत्थर पर बैठ गया। वे लिख रहे थे, वह बैठा रहा। विषधर को भी दृष्टिगोचर हो रहा है कि ये निर्ग्रन्थ अरहन्त की मुद्रा है, ये मुझे पीड़ित नहीं कर सकते हैं। वह भी निडर होकर बैठा था, मैं जिनवर के लघुनन्दन को पीड़ित कर कैसे सकता हूँ? विश्वास रखना, जहाँ दया बरसती होती है, वहाँ कुछ ऐसे पुण्यात्मा जीव मिलेंगे जो चलें तो पशु-पक्षी भी उनके साथ हो लेते हैं और ऐसे अभागे लोग भी मिलेंगे जो चलें तो उनके घर के लोग भी साथ छोड़कर भाग जाते हैं, 'परमेश्वरे को जाने दो।' दयाशील पर विश्वास होता है। दयाशील से बड़ा विश्वास उस पर होता है जिसने अपनी इन्द्रियों का दमन कर लिया है। दयावान् से जयजिनेन्द्र तो कर लोगे, पर प्रणाम नहीं करते हो; परन्तु जो दमनशील है, जिसने इन्द्रियों पर दमन कर लिया है उसके चरणों में सिर टेककर कहते हो—भो स्वामिन्! नमोऽस्तु। वस्त्रधारी पर विश्वास नहीं होता।

आजकलके बच्चों की जेबों से परिचित ही हो। जेबों में घर का द्रव्य ले जा सकते हैं, युग ऐसा चल रहा है। पहले बेचारे गरीब थिगरा लगाते थे, अब थिगरा का शौक चल रहा है। अब ठीक तो है, जिनके भावों में थिगरा लग चुके हैं, उनके वस्त्रों में थिगरा लग ही रहे हैं। थिगरा युग चल रहा है और अज्ञानी लोग शेर के चित्र बनाये मिल जायेंगे। टेटू से चित्र बना लेते हैं, क्यों ? महाराज! मेरा आकार तो मनुष्य का है, पर मेरे भाव वे ही हैं जो मैं पहने हूँ।

मन में अशुभ भाव आयेंगे तो तुम वस्त्रों में छुपा लोगे, परन्तु धन्य है वह निर्ग्रन्थ मुद्रा, जहाँ तुम्हारे पास छिपाने को भी कोई साधन नहीं है। तुम पर कितना विश्वास है। मित्र! संयम की साधना हो सके या नहीं, परहितैषी बनने के परिणाम करना। विश्वप्रसिद्ध, त्रैलोक-वन्दनीय पद है। जन-जन में एक भाव रहता है, कई नगरों में लोग बताया करते हैं, बारिस नहीं हो रही थी, अब तो पानी जरूर गिरेगा। क्यों? नागा बाबा आ गये। नगर वालों की आस्था देखो। एक दिन तो मेरी ही आँखें गीली हो गईं।

अमरावती में एक बालक था 8 वर्ष का। बच्चा अपने घर के चबूतरे पर खड़ा हुआ था। प्रातःकाल हम लोग वहाँ से निकले, वह मराठी में कहता है 'आई आई! लउकर आ, जैनियों के भगवान् जा रहे हैं।' वह कह रहा था 'दादी माँ! जल्दी आओ, जैनियों के भगवान् जा रहे हैं।' उस बच्चे ने जैसे ही यह कहा, एक क्षण को पैर रुक गये। उस बच्चे ने नंगा नहीं देखा, साधु नहीं देखा, उसने देखा तो भगवान् को देखा।

जब भी आपको सूचना मिले कि यहाँ दीक्षा हो रही है, वहाँ जरूर जाना और दीक्षार्थी से जाकर जरूर मिल लेना—भैया ! तुम यदि जिनशासन को आगे बढ़ाने की सामर्थ्य रखते हो, तो-ही कपड़े उतारने का विचार करना। पैसे आदि संग्रह करने के परिणाम तुम्हारे भीतर बैठे हों, तो मेरे मित्र! चलो मेरे साथ, मैं तुम्हारी दुकान खुलवा दूँगा, जिनशासन को लजाने मत जाओ। साधु बनने जाते हो तो मैं तुम्हारे दर्शन करने आऊँगा और बहेलिया बनने जा रहे हो तो तुम यहाँ से लौट जाओ। बहेलिया का अर्थ है चिड़िया-मार। आखेटक/शिकारी झाड़ी में छुपकरके गुलेल से चिड़िया को मार देता है। ऐसे-ही संयम की झाड़ी का भेष बना करके चारित्र की चिड़िया को मत मार देना।

मैं आपके छतरपुर में आ करके, जितने बाहर के श्रावक आये इनसे कह दूँ कि इतना इतना दान दे दो, तो आप बड़े खुश होंगे कि महाराज ने बहुत इकट्ठा करवा दिया। लेकिन आप जब घर में बैठोगे तो तुम्हारा मन यही कहेगा कि यह महाराज का काम नहीं है। सतना में एक साधक आये, वे माइक लेकर बोली लगाने लग गये। मैं भी वहीं था। जब उन साधक ने बोली लगवाई, पैसे तो समाज को देने थे और जाना भी समाज में ही थे। साधक भी मुस्कराये और समाज की मुस्कराये। उसने खूब पैसे लुटाये और नियोग ऐसा बना कि सतना अध्यक्ष के यहाँ मेरे आहार हुये। वे अपने घर में धीरे-से कह रहे थे 'अरे यार! बोली तो अच्छी लगी, लेकिन मजा नहीं आ रहा था। हर इंसान साधु को साधु देखना चाहता है, विद्वानों को विद्वान् देखना चाहता है, त्यागी को त्यागी देखना चाहता है और वीतरागी को वीतरागी देखना चाहता है। हृदय सत्य को ही देखता है, कषाय असत्य को ही देखती है। जो असत्य को देखता है, उसको भी समय दे देना, वह भी ठण्डा हो जायेगा और वह भी सत्य को देखना शुरू कर देगा।

विश्वास मानना। यह विषय भूल जाना कि महाराज जी! असत्यवादियों की संख्या अधिक है। आज सारे विश्व में सत्यवादियों की संख्या ही अधिक है। 'आप क्या बोल

रहे हो? मैं तो अभी दुकान में जाकर झूठ बोलूँगा और आप कहते हो कि सत्यवादियों की संख्या अधिक है? हाँ, तब भी सत्यवादियों की संख्या अधिक है। आप मेरी बात से सहमत नहीं हो रहे क्या? सत्य को स्वीकारने वालों की संख्या विश्व में सर्वाधिक है। आप विश्वास मानिये।

वकील साहब! कदाचित् किसी व्यक्ति से गलत निर्णय हो भी जाय, तब भी घर आकर एक बार जरूर अपने आप से कहता है कि आज आप निर्णय ठीक करके नहीं आये।

ज्ञानी! तू खदान खोद लेना, परन्तु जब ठण्डा होगा तो सोचेगा कि पैसे के पीछे मैंने कितने पर्वत तुड़वा दिये। एक दिन तो मन में आयेगा। कितने झूठे लोगों से भी कहना पड़ता है। जब-जब तू ठण्डा होता है, तब-तब सत्य दिखने लगता है। जिन बेटों ने अपने वृद्ध माता-पिता की सेवा नहीं कर पाई और वे ऊपर चले गये, अथवा नहीं कर रहे हैं, वे जब ठण्डे होकर बैठते हैं तब उनको भी समझ में आता है—शील की सम्पत्ति का नाश करके जिसने मुझे जन्म दिया हो, मैं ऐसा अभागा हूँ कि उन्हें एक लोटा पानी भी नहीं पिला पाया। बेटा! भूल मत करना, युवावस्था की आँधी में डूब मत जाना। निज के लिये कठोर ही होना चाहिये, पर के लिये सरल ही होना चाहिये।

दया, दम, त्याग। तीसरा सूत्र दे रहे हैं—त्याग। अब जहाँ त्याग का भी त्याग कर दिया गया। ऐसा विश्व में कौन बोलने वाला होगा जो यूँ कह रहा है? यदि ये लिस्ट लेकर आ गया कि ये छोड़ा, ये छोड़ा, अरे ज्ञानी ! तूने सबकुछ छोड़ा, परन्तु इसे नहीं छोड़ा कि 'ये छोड़ दिया' । जिसे छोड़ा है, अब उसकी स्मृतियाँ भी छोड़ दीजिये। अब क्यों छोड़ा है? आपने वस्त्र उतारकर फेंक दिये, क्यों छोड़ दिये ? वो गाँठ लगाने और खोलने में जितना समय बरबाद होता है, आप समय के स्वरूप में लीन रहो और जिसको धोने और सुखाने में समय बरबाद होता था, वह समय स्वाध्याय में लगाओ। अब तुम उसी स्मृति में लगाये हो कि ऐसे कपड़े धोते, तो समय तो वैसे भी बरबाद हो रहा है, तो छोड़ा क्या है ? छोड़ने को तो छोड़ा ही नहीं है। छोड़े को छोड़। यदि उस समय छोड़ दिया होता तो वहाँ क्यों बैठना पड़ता? यहाँ मंच पर बैठता। विहार करो, उसी में सार है। विहार तो बहुत कराये। ये जन्तर-मन्तर, जादू-टोना कोई काम में नहीं आते।

धन्य हो उस त्यागी को, जिसे छोड़ चुका था उसको भी छोड़ चुका है। उस पर भी दृष्टि नहीं है।

तीन तक तो सब कर लेंगे, पर चौथे के लिये साधना है। 'समाधि-निष्ठं'। लोगों ने मृत्यु को समाधि मान लिया है। वह तो मरण है, समाधि नहीं है। कैसे अज्ञानी जीव हैं, मर गये सो समाधि। जो जीते-जीते समाधि लेता है, उसकी सही समाधि होती है। तो क्या पानी में डूब जायें, अग्नि में कूद जायें? ये आत्महत्या है, आत्महत्या समाधि नहीं है। समाधि का अर्थ समझिये। न गिरनार पर्वत से गिरकर मर जाना समाधि है, न नदी में डूब कर मर जाना समाधि है। समाधि का अर्थ समझिये सम-धी।

जैसे उनके बेटे के प्रति उनके भाव हैं, वैसे उस बेटी के प्रति तुम्हारे बेटी-जैसे भाव हों और तेरे बेटे के प्रति जैसे तेरे भाव हैं, वैसे उसके प्रति उसके भाव हैं, इन दोनों की समान बुद्धि हो गई है, उसका नाम समधी है। जो बहुओं में आग लगायें, वे काहे के समधी? वे तो हत्यारे हैं। आप बहू को बेटी-जैसी मानते हो, तब तो आप समधी हो। जब एक दो के प्रति समान बुद्धि बन जाये, तो समधी बन जाता है। **जिसकी जगत् के प्राणिमात्र के प्रति समधी हो जाये, उसका नाम समाधि है। जगत् के प्राणिमात्र के प्रति जिसकी साम्य बुद्धि है, उसका नाम समधी है। जहाँ आर्त्त-रौद्र ध्यान का त्याग करके, स्वरूप में लीन होकरके, निर्विकल्प ध्यान में जा रहे हैं, उसका नाम समाधि है। समाधि सहित जो मरण हो जाये, उसका नाम समाधिमरण है।** जब-तक समाधि नहीं, तब-तक समाधिमरण नहीं।

आजकल अच्छी परम्परा चली कि मरने लगे सो कपड़े उतार दो, भैया! हो गई समाधि। ऐसे समाधि नहीं होती है। अच्छा कर रहे आप कि कपड़े उतार रहे हो। साथ में मन की भावना तो देख लो, उनके परिणामों की विशुद्धि तो देखो।

एक गाँव में ऐसी अलौकिक घटना देखी। उनके तो प्राण ही चले गये। मुर्दे को लेकर मेरे पास आ गये, कहने लगे, महाराज! पिच्छी-कमण्डल दे दो। क्यों ? उनकी पहले से भावना रही और हम जुलूस निकालना चाहते हैं। मैंने कहा 'तेरे मान के पीछे मैं पिच्छी-कमण्डल का मान भङ्ग कराऊँ क्या? अब जिसके प्राण ही निकल गये, डॉक्टर ने ही मना कर दिया। अरे! तुम्हें लाना था तो जब श्वास चल रही थी तभी ले आते। बेटों से कह देना, 'जब मैं बीमार होने लग जाऊँ तो यमपुरी दिखाने मत

जाना, निर्ग्रन्थों के चरणों में ले जाना। यमपुरी यानि हॉस्पिटल, यमदूत यानि डॉक्टर। आजकल ऐसा जमाना चल गया है। एक मशीन चली है, आदमी मर जाये तो उसके अन्दर रख दो, श्वास चल रही है। नहीं, भाई! श्वास नहीं चल रही है, पैसे खींचने की श्वास चल रही है। क्या समय है, कोई डॉक्टर हो तो क्षमा करियो। अब जो है, सो है। डॉक्टर साहब! ऐसो न करियो, उल्टी-सीधी दवाइयाँ न करियो।

जब ये कहा दया, दम, त्याग, समाधिनिष्ठ। मैं तो आपको बहुत खराब मानता था, लेकिन जब इन चार सिद्धान्तों से भरा आपको पाया, तब उस जीव के मुख से क्या निकलता है ?

नय व प्रमाण से युक्त आपकी दिव्य देशना है। हे जिनदेव वर्द्धमान महावीर ! मैं जिस मत में जी रहा था, उस मत में मेरी बुद्धि नष्ट हो रही थी। हे जिन! आपका मत ही अद्वितीय है। जब तक मैं दूर था, तब तक मुझे समझ में नहीं आया; जब नजदीक पहुँचा, तब समझ में आया। कहने वाले अपने सोच से सोच रहे थे। वस्तुस्वरूप भिन्न है। जब जब कोई किसी की निन्दा करे तो उसके पास जरूर जाना, वास्तव में निन्दनीय है, कि पूजनीय है? इस समय सबसे ज्यादा पत्थर खाने पड़ रहे हैं बेर के वृक्ष को। जेठ में पत्थर खाना पड़ेंगे आम को। जिसमें फल लगे होते हैं, उसे ही पत्थर खाने पड़ते हैं। पर धन्य हो उन वृक्ष को जो पत्थर खाने के बाद भी फल देते हैं। ऐसे-ही ये योगी उपसर्ग सहन करने के बाद भी सबका भला ही चाहते हैं। कमठ ने पत्थर बरसाये और प्रभु ने केवलज्ञान प्राप्त किया और उसे (कमठ को) सम्यक्त्व प्राप्त हो गया। जिसके पास जो होता है, वही देता है। रागियों वैरागियों में इतना ही अन्तर होता है। श्रेणिक ने साँप डाला, उन्होंने आशीर्वाद दिया। इतनी समता आ गई हो तो, जरूर साधु बनना और इतनी समता न आ पाये तो साधु के चरणों में सिर टेकते रहना जिनशासन को लजाना मत।

''आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्''

आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।



युद्ध कर्मों से करो

श्लोक : विद्यमाने रणे चद्वच्चेतसो जायते धृतिः।
कर्मणा योध्यमानेन किं विमुक्तिर्न जायते॥288॥

अन्वयार्थ : (रणे विद्यमाने) युद्ध क्षेत्र में रहते हुए **(यद्वत्)** जिस तरह **(चेतसः धृतिः जायते)** चित्त को धैर्य रहता ही है **(कर्मणा योध्यमानेन)** तब कर्मों से युद्ध करते हुए **(विमुक्तिः किं न जायते)** मोक्ष क्यों नहीं होगा ?

भावार्थ : जो साहसी और धैर्यशाली होते हैं, वे युद्ध में विजय प्राप्त करते हैं; उसी प्रकार कर्मयुद्ध में जो साहसी होते हैं, धैर्यशाली होते हैं, वे हँसते-हँसते कर्मजन्य आपत्तियों को सहन करते हैं और कर्मबन्धन तोड़कर अवश्य ही मुक्ति को प्राप्त कर लेते हैं, अतः कर्मोदयजन्य दुःखों को हँसते-हँसते सहन करना चाहिए। आत्मध्यान में मग्न होकर, कर्मबन्धन तोड़कर, मुक्ति प्राप्त करनी चाहिए। जैसे युद्धक्षेत्र में चित्त को धैर्य रहता है, उसी प्रकार कर्मों के साथ युद्ध करते हुए भी क्या मुक्ति नहीं होगी? अवश्य होगी।

॥सद्-देशना॥

आचार्यप्रवर कुलभद्राचार्य ग्रंथराज सारसमुच्चय जी में मुक्तिबधू की व्याख्या करते हुए समझा रहे हैं।

आनन्दित होना है तो आनन्द लेना बंद कर दो। जब तक आनन्द लेने के भाव रहेंगे, तब तक आनन्दित नहीं हो सकते हो। जो विषयों का आनन्द ले रहे हो, जो कषायों का आनन्द ले रहे हो, उसको बन्द कर दो, आनन्दित हो जाओगे। **जिसके बाद क्लेश हो, उपशम भाव का अभाव हो, वह आनन्द नहीं, कषाय है।** कितने सारे जीवों ने अभी तक धर्म के मर्म को नहीं समझा है। कषाय की अनुभूति को धर्म मान लिया है, उसे ही आत्मानन्द मान रहा है। इच्छाओं का उत्पन्न होना कषाय है। कहता है 'आहा! बड़ा अच्छा लग रहा है।' यह धर्म की अच्छाई नहीं है, यह तेरी कषाय की पूर्ति की अच्छाई है। जहाँ सोचना बन्द हो जाय, जहाँ माँगना बन्द हो जाय, जहाँ छोड़ना बन्द हो जाय, जहाँ लेना बन्द हो जाय, जहाँ देना बन्द हो जाय, तब भी आनन्द आये, वही आत्मा का आनन्द है। छोड़ने के लिये बुद्धि चल रही है, चौकड़ी बैठी हुई है, आप

लोग कितना सँभलकर रहते हो कि कहीं तस्कर तस्करी न कर जाये, कहीं डाकू डाका न डाल ले जाये, कहीं चोर चुरा न ले जाये; परन्तु मेरे मित्र! आपको बोध नहीं है, जड़ रत्नों की रक्षा के लिए इतनी सावधानी है।

जो हमारी आस्थायें हैं, श्रद्धायें है, उस सम्यक्त्व को चुराने के चार चोर हैं। अनन्तानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ। ये चार कषायें सम्यक्त्व को चुराने वाले चोर हैं। धर्म की भावना में बह मत जाना। आपने मंदिर में विचार किया था कि आज मुझे शान्तिधारा मिल जायेगी और नियोग ऐसा बना कि दूसरा व्यक्ति आया, बोली बहुत लम्बी खींच कर चला गया, आपको शान्तिधारा नहीं मिल सकी। वह तो पराधीन थी, लेकिन शान्ति धारण करना यह पराधीन नहीं, स्वाधीन है। शान्तिधारा के राग में शान्ति खो बैठे और मंदिर में ही उबल पड़े, 'क्या मतलब? पैसे वालों का राज्य है, हम गरीबों का क्या होगा?' अरे ज्ञानी! ऐसा क्यों सोचते हो? उसका पुण्य तेज था, इसलिए उसे श्री भी मिली और श्रीजी भी मिल गये। तुम्हारा पुण्य कमजोर था, इसलिए श्री के राग में तुम शान्तिधारा नहीं कर पाये। शान्तिधारा के लिये पैसे लगते थे, परन्तु शान्ति धारण करने में कौन-से पैसे लगते थे? नहीं कर सके तो देख लेते, भाव बिगाड़ने की कोई आवश्यकता नहीं थी। दूसरे के पुण्य में हम स्वयं पाप भोग रहे हैं। यदि अनुमोदना कर लेता दूसरे के दान की, तो तुझे पुण्य ही लगता। तेरा दानान्तराय कर्म का क्षयोपशम नहीं था, उदय चल रहा था, तो दान तो नहीं दे सका, दूसरे की अनुमोदना नहीं कर सका तो अनुबन्ध और कर लिया। धर्म करने के लिये धैर्य चाहिए। जिसके पास धैर्य नहीं है, वहाँ कोई धर्म नहीं है।

नीतिकारों ने भी स्वाध्याय किया है। अहो श्रावको! आपके धैर्य की क्या महिमा है? कपड़े की दुकान पर बैठे थे। ग्राहक आये, पचास थान पटकवाये, खुलवा भी लिए और एक भी कपड़ा नहीं लिया और तू शान्ति से लपेट कर रख रहा है। धन्य हो तेरे धैर्य को। गुस्सा तक नहीं किया। क्यों ? गुस्सा करूँगा तो ग्राहक दुबारा आयेगा कैसे? जैसे दुकान पर धैर्य धर लेते हो, ऐसे-ही मोक्षमार्ग में धैर्य आ जाये, तो मुक्तिलक्ष्मी का वरण हो जाये। जब धीरता के बिना संसार की लक्ष्मी नहीं मिलती, तो मोक्षलक्ष्मी कैसे मिल सकती है?

दान के बिना यश और ज्ञान के बिना मोक्ष कैसे ? जब भी मोक्ष मिलेगा, तो ज्ञान से ही मिलेगा। आगम कहता है कि चारित्र से मोक्ष मिलता है।

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्गः। तीनों की एकता से मोक्ष मिलेगा। आपको मालूम होना चाहिए कि ज्ञान में प्रवेश करेगा तो ज्ञान ही करेगा और चारित्र में परिणमन ज्ञान ही करायेगा। श्रद्धान भी ज्ञान ही करायेगा। **बिना ज्ञान के न सम्यक्त्व होता है न चारित्र होता है, न तत्त्वबोध होता है।**

ज्ञान से तात्पर्य है भेदविज्ञान। भेदविज्ञान के बिना व्यक्ति को मोक्ष नहीं मिल सकता। बिना ज्ञान के मोक्ष हो ही नहीं सकता है। भो महाराज! आप कह रहे हो कि बिना ज्ञान के मोक्ष नहीं हो सकता है, तो फिर शिवभूति नाम के मुनिराज को तो णमोकार ही याद नहीं होता था, उनको मोक्ष कैसे हो गया ? ज्ञानी! उनको बिना ज्ञान के मोक्ष नहीं हुआ। जब भी मोक्ष होगा, तो पहले केवलज्ञान प्रकट होगा। बिना ज्ञान के मोक्ष हो ही नहीं सकता।

ज्ञानी ! तूने किसको ज्ञान मान लिया है? पोथियों को मात्र पढ़ लेना ज्ञान नहीं है।

जिनालय में प्रवेश करते ही व्यक्ति की पहचान हो जायेगी कि ये कौन हो सकता है। नमस्कार की प्रणाली बता देती है कि ये कौन हो सकता है। प्रणाम कर रहा है, कि मत्थे वन्दामि बोल रहा है, कि दण्डवत् हो रहा है, कि नमोऽस्तु बोल रहा है, मालूम चल जायेगा कि ये कौन है? किसी दर्शन में 'प्रणाम' कहा जाता है, किसी सम्प्रदाय में 'मत्थे वन्दामि' कहा जाता है, किसी दर्शन में 'दण्डवत्' बोला जाता है, तो जैनदर्शन में 'नमोऽस्तु' बोला जाता है। **व्यक्ति की भाषा, व्यक्ति की वन्दना, व्यक्ति की मुद्रा व्यक्ति के व्यक्तित्व का बोध करा देती है।** शिवभूति महाराज को बारह वर्ष तक णमोकार याद नहीं हुआ। आप लोग घबराना नहीं, परन्तु पुनः एक बार सुनना। अज्ञानपूर्वक चारित्र कभी धारण मत करना। जो अज्ञानपूर्वक चारित्र ग्रहण करते हैं, वे संयम को भी तज देते हैं और सद्मार्ग में विडम्बना खड़ी कर देते हैं। ज्ञान के अभाव में जितने संयमी बने हैं, वे संयम में नहीं जी सके, मात्र संयम के भेष में जीते हैं। भेष से रहित मोक्षमार्ग होता है। कपड़े से रहित होना यदि मोक्षमार्ग होता है, तो जंगल में जितने पशु तियञ्च हैं, वे सब मोक्षमार्गी हो जाते। मयूर के पंख लेने से मोक्षमार्ग होता है तो मयूर को ही मोक्ष जाना चाहिए। नारियल के कमण्डल से मोक्ष होता है तो नारियल वृक्ष को ही मोक्ष हो जाना चाहिए। इन उपकरणों के भीतर मोक्ष होना नहीं

है, मोक्ष तो अन्दर की धारा है। रत्नत्रय दृष्टि भावात्मक है। जिस व्यक्ति को नहीं मालूम आगम के पृष्ठों का, तब भी ज्ञानी और जिसको हजारों श्लोक गाथायें याद हैं, तब भी अज्ञानी।

ममत्वसहित बहुत ज्ञान भी अज्ञान है और ममत्वरहित अल्प ज्ञान भी ज्ञान है। जिस जीव के अन्तस् में मिथ्याधारणा बैठी हुई है, वह बहुश्रुतज्ञानी भी अज्ञानी है। जिसके सम्यक्त्व है, उसका अल्पज्ञान भी सम्यग्ज्ञान है। इतना तो निर्णय होना ही चाहिए कि मैंने चारित्र धारण किया क्यों? छोड़ने के बाद जोड़ने के लिए, कि निज में जुड़ने के लिये? जिसे छोड़ा है, उसे जोड़ने के लिये साधु नहीं बनना। छोड़ने के बाद निज में जुड़ने के लिये साधु बनना। शिवभूति महाराज को कैवल्य कैसे हो गया ? शिवभूति महाराज को तो णमोकार भी याद नहीं था, आप तो फिर भी ज्ञानी हो। गुरु ने समझाया 'बेटा! तुषमास भिन्नं।' यह पाठ याद किया, वह भी भूल गये। ऐसा है ज्ञान का क्षयोपशम। एक माँ दाल धो रही थी, छिलके अलग कर रही थी। मुनिराज ने देख लिया, बस-बस, समझ गये, गुरुदेव ने यही तो कहा था। अब नहीं जाना चर्या को। आहार को जाऊँगा और पुनः भूल गया तो मेरा क्या होगा? वहीं एक शिला के ऊपर बैठ गये।

तुसमासो घोसंतो भावविसुद्धो महाणुभावो य।
णामेण य सिवभूई केवलणाणी फुड जाओ॥53/भा.पा.॥

तुष-मास का घोष करने मात्र से भावों की विशुद्धि से युक्त होकरके एक अन्तर्मुहूर्त में कैवल्य को प्राप्त कर लिया, आचार्य भगवन्त बैठे रह गये और शिवभूति मुनि भगवान् बन गये। शिवभूति महाराज को ज्ञान था कि नहीं? द्रव्य श्रुत नहीं था, भावश्रुत पूर्ण था। बिना भावश्रुत के शुक्लध्यान नहीं होता। बिना शुक्लध्यान के केवलज्ञान नहीं होता। इसलिए दुनियाँ के अक्षरों को सीखने का विकल्प अक्ष से दूर कर देगा। दुनियाँ के अक्षरों को सीखने का राग भी अक्ष से दूर कर देगा। अक्ष यानि आत्मा। ये पढ़ना, ये पढ़ना, मालूम ही नहीं चला कि तुम पढ़ क्यों रहे हो। पढ़नहारे को पढ़ लो, दुनियाँ को पढ़ने की क्या आवश्यकता ? पढ़नेवाले को पहचानने के लिये ही स्वाध्याय किया जाता है। जिसे समझ में आ रहा है, बस उसे ही समझ लो, दुनियाँ को समझने की कोई आवश्यकता नहीं है। जब वो समझ में नहीं आता है तब जीव जगत् को समझने

की चेष्टा करता है। जब जगत् समझ में नहीं आ पाता, क्षयोपशम नहीं था, तब फिर जीव की कषाय बढ़ती है। फिर अनेक प्रकार की कषाय करता है। इस पर ध्यान दो। स्वयं की अज्ञानता पर भी कषाय करता है तो वह कषाय ही है। आपने 'रत्नकरण्डक' ग्रन्थ को याद करने का विचार किया, क्षयोयशम नहीं था तो श्लोक याद नहीं हो सका तो हीन भावना में उतर गया, स्वयं की बुद्धि पर गुस्सा करने लग गया कि कैसा मेरा दिमाग है, कुछ याद ही नहीं होता? मित्र! यह मत सोचना मैं कौन दूसरे पर कषाय कर रहा हूँ, स्वयं पर ही तो कर रहा हूँ। कषाय तो चाहे स्वयं पर करो या दूसरे पर, कषाय तो स्वयं में ही होती है। बंध होगा कि नहीं ? नियम से होगा। महाराज! मैंने तो कभी किसी के बारे में गलत सोचा ही नहीं है। मेरे साथ कैसे हो गया ? मेरे भीतर तो किसी का नहीं सोचना पड़ा, लेकिन सोचने वाले के प्रति तो सोचा ना ? आवश्यक नहीं है कि वस्तु के होने पर ही ज्ञान चले। आवश्यक नहीं है कि पर के होने पर ही कषाय हो। बिना द्रव्य के भी अन्तरङ्ग में कषाय होती है।

ऐसे कितने लोग बुद्धिविहीन हैं जिनके जीवन में झलक रहा है कि मैं एक सिक्का भी कमाने लायक नहीं हूँ और मेरे हाथ में कभी एक सिक्का आयेगा नहीं, फिर भी लाखों का राग उसको सता रहा है। स्वयं का पुण्य-पाप समझ में आता है। एक है उसके मुख से स्वच्छ आवाज नहीं निकल रही है, हकला रहा है, कभी अच्छा बोलने की संभावना भी नहीं है, फिर भी वह क्या बोलता है कि यदि मुझे माइक मिले, मैं मंच पर आऊँ, तो ऐसा-ऐसा सुनाऊँगा। उसको कभी माइक व मंच मिलना नहीं है, कभी सुनाने को मिलना नहीं है, लेकिन सुनाने के राग में इतना कर्म बुला चुका है कि एक अगली पर्याय और कम पड़ जायेगी भोगने के लिये। सुनाने की अपेक्षा मौन धारण कर लेता तो सर्वांग से सुनाता। केवली भगवान् बनकर ही सुनाता। वर्तमान में जो-जो अच्छा बोलना जानते हैं, वे ये न समझें कि मैं आज के पुरुषार्थ से अच्छा बोल रहा हूँ। भूत के पुरुषार्थ ने तुमको सुभग नामकर्म का उदय दिया है, भूत के पुरुषार्थ ने तुमको सुस्वर नामकर्म का उदय दिया है, भूत के पुरुषार्थ ने तुमको यशः कीर्ति का उदय दिया है, उसके नियोग से सबकुछ हो रहा है। भूत का पुरुषार्थ न होता तो वर्तमान में जो सुन्दर रूप आदि मिले हैं, वे होते ही नहीं। जो-जो दैव है, जो-जो भाग्य है, भाग्य के भरोसे मत बैठे रहना। जो-जो भाग्य दिखाई दे रहा है, यह भाग्य कोई वस्तु

नहीं है, भूत का पुरुषार्थ ही वर्तमान में भाग्य बनकर आया है। **जो वर्तमान का पुरुषार्थ होगा, वही भविष्य का भाग्य बनेगा।** भाग्य है, लेकिन पुरुषार्थपूर्वक ही भाग्य होता है। प्रमाद/आलस्य कभी भाग्य नहीं सँवारता। 'मैं तो कुछ करूँगा ही नहीं, क्योंकि मेरे भाग्य में ही नहीं है।' भाग्य में नहीं है, कुछ नहीं करोगे, क्या कुछ नहीं करोगे ? ऐसा करो, ऐसा करो कि कुछ भी वास्तव में नहीं करो, यही पुरुषार्थ है। **विश्व का सबसे बड़ा पुरुषार्थ कुछ भी नहीं करना है। न मन में कुछ सोचना, न तन से कुछ करना, न वचन से कुछ बोलना।** ऐसी शक्ति तुम्हारे भीतर प्रवेश कर जाये कि कुछ भी नहीं करना। **अकर्तृत्व भाव में लीन हो जाना, इससे बड़ा कोई पुरुषार्थ नहीं है।**

जहाँ लेना-देना नहीं होता, वहाँ भी बोल लेता है। जो आपके घरों में विसंवाद हो रहे हैं, उनमें कोई बहुत बड़ी बात नहीं होती। मात्र बोल पड़ी थी, हे द्रोपदी! कुछ भी तो नहीं था। अन्धों के अन्धे ही होते हैं—आपकी इतनी ही तो जीभ हिली थी, तो महाभारत की तलवारें कैसी हिल गईं। माताओ! विश्वास रखना, यदि आप मौन व्रत रख लोगे तो इन पर बड़ी दया हो जायेगी। विश्वास रखो, आपकी सास का बेटा अपनी माँ को कभी नहीं छोड़ सकता यदि आप लोग उस पर कृपा कर दो तो। **जैसे पानी छान-छान कर पीते हो, कुए में जाकर बिलछानी करते हो, ऐसे-ही वाणी को छान-छानकर प्रयोग करो तो तुम्हारे घर में कभी युद्ध नहीं हो सकता।** जो वाणी छान-छान कर बोलेगा, उसके अड़ौस-पड़ौस में भी वातावरण अशुभ नहीं होगा। क्योंकि मैंने अनुभव किया है कि जब संगति से पड़ौसी छान-छान कर पानी पी सकता है, तो जिनके घर में वाणी छान-छानकर मिलती होगी, उसके मोहल्ले में भी छान-छानकर वाणी मिलती होगी। जब छान-छानकर वाणी मिलेगी, तो पूरा-का-पूरा नगर अयोध्या हो जायेगा। तुम पानी भी छानो, वाणी भी छानो। तुम्हारी पानी वाणी तभी छन पायेगी जब मन छन जायेगा। पानी छानने के लिये कपड़े का छन्ना काम में आता है, परन्तु मन-वाणी को छानना है तो जिनवाणी सिर पर लेकर चलना पड़ेगी। **जब तक जिनवाणी मस्तिष्क में नहीं होगी, तब तक न मन छन सकता है न वाणी छन सकती है।** प्रतिक्षण जिनवाणी को लेकर चलें। जैसे जब-जब आपको पानी पीने की आकांक्षा होती है तो तुरन्त छन्ना निकालते हो, ऐसे-ही जब भी बोलने की इच्छा हो तो पहले जिनवाणी देखना कि क्या बोलना चाहिए और क्या नहीं बोलना चाहिए। सोचने को

मन करे तो तुरन्त सोचना चाहिए, कि क्या विचारणीय है और क्या विचारणीय नहीं है?

बन्धस्थान को बन्द कर दो, तो बन्ध होना बन्द हो जाये। बन्धस्थान तभी बन्द होगा, जब संक्लेश स्थान बन्द कर लोगे। संक्लेश स्थान पराधीन नहीं है, स्वाधीन है। जगत् में किसी वस्तु में आपकी संक्लेशता नहीं है, संक्लेशता तो आपके निज के परिणामों में है। जिसे देखकर आप संक्लेशित हो रहे हो, उसी स्थान पर उसे देखकर कोई प्रसन्न भी तो हो रहा है। कोई भिन्न स्थान नहीं है। परन्तु बहुत कठोर साधना है। **मुकुट में लगी कलगी, मंदिर के शिखर का ध्वज तूफान में स्थिर हो जाये, ये शायद सरल है, परन्तु गृहस्थी और रागियों के बीच में अपने भावों के ध्वज को स्थिर करने के लिए घोर तपस्या की आवश्यकता है।** तुम पीपल के पत्तों को बांधने मत जाओ, मंदिर के ध्वज को बांधने मत जाओ। यदि कुछ बांधने का विचार है तो ज्ञान की रस्सी से अपने भावों को स्थिर करा लो। **देह के धर्म को धारण कर लिया और देही के धर्म को समझा नहीं, वह जीव धर्म के क्षेत्र में आकरके भी संक्लेशता में ही जी पायेगा।**

लोग क्यों समझना चाहते हैं अध्यात्म को? आँखों का धर्म देखते-देखते आँखें थक गईं, परन्तु आत्मा के धर्म के पास नहीं पहुँच पायीं। सोच रहा था कि कुछ-और दिखेगा, लेकिन देखते-देखते देखनहारे को शान्ति ही नहीं मिली, तब महसूस हुआ कि आँखों का विषय भिन्न है और आत्मा का विषय भिन्न है। इसलिये कुलभद्र स्वामी कह रहे हैं कि जब इच्छा की पूर्ति नहीं होती, आकांक्षा की पूर्ति नहीं होती, तब झुँझलाहट होती है। विश्वास मानो, त्यागियों में भी झुँझलाहट दिख जायेगी। त्याग तो कर देते हैं। तू सौ का नोट लेकर पहुँचा, दुकानदार को पकड़ा भी दिया और कहा मुझे अमुक सामग्री चाहिये। देनेवाले ने नोट तो रख लिया, परन्तु बदले में द्रव्य नहीं दिया। बोल ज्ञानी! तू क्या सोचेगा ? थोड़ी देर तो सज्जनता के नाते खड़े रहोगे। कुछ लोग भेष का भी ध्यान रखते हैं। थोड़ी देर ठहरेगा। जब धैर्य के बांध टूट जायेंगे, तो पहले धीमी भाषा में कहेगा—'भाई ! समझो, समय हो रहा है।' साधु-भाषा में बात करेगा। थोड़ी देर बाद साधु-भाषा नष्ट हो जाती है। 'आप समझते नहीं हो।' अभी साधु का वेष सुरक्षित था। थोड़ी देर और खड़ा रहेगा। 'तुझे समझ में नहीं आता, मुझे जाना है।' भाव मर

चुका था साधु का, भाषा बची थी, वह भी मर गई। मात्र शरीर बचा था, अब वह भी मर गयी। अब तू कहीं का बचा ही नहीं है। अब क्या बोलेगा, बोल।

जब इच्छा की पूर्ति नहीं होती है तो कषाय सामने खड़ी हो जाती है। ऐसे-ही जब जीव साधु के भेष में आता है और जिस द्रव्य की प्राप्ति के लिये साधु बना था उसको अपनी दुकान पर सामग्री मिल ही नहीं रही है, शान्ति मिलना चाहिये थी, आनन्द मिलना चाहिये था, वहाँ तो मानकषाय (प्रभावना) की दौड़ चल रही है, फिर वह झुँझलाता है कि तुमने मेरा पोस्टर नहीं छपाया क्या ? और छपवाया भी तो क्या छपवाकर रख दिया? तुम मुझे साधु नहीं समझते, मैं कितना बड़ा साधु हूँ। बस, समझ गया महाराज! पूरा समझ गया। तुम्हारी जितनी लम्बी कषाय है, उतने तुम असाधु हो। बाकी सब समझ गया। **जो भीतर जीता है, उसे बाहर की तस्वीर किस काम की? जो बाहर की तस्वीर देखता है, उसे भीतर की तस्वीर कहाँ दिखाई देती है?** ज्ञानी! तस्वीरों के चक्कर में मत पड़ो, सिद्धों की याद करो।

किञ्चित् मात्र कषाय की कणिका ने स्पर्श किया है, विशुद्धि का भवन तो ठह गया है। जिस व्यक्ति ने जीवन में एक बार भी, मात्र एक बार, अब्रह्म का सेवन कर लिया, तुम कितने ही बाहर साधु के रूप में आ जाना, पर तुम इस जीवन में अपने नाम के आगे बाल-ब्रह्मचारी शब्द लगा नहीं सकते हो। और शादी नहीं की, इसका मतलब बाल-ब्रह्मचारी नहीं है। हृदय से टटोल कर पूछना, मैं बाल-ब्रह्मचारी हूँ कि नहीं हूँ? कागजों में, पुस्तकों में तो लिखा मिल जायेगा, लेकिन अपने पवित्र हृदय से पूछना कि मैं बालब्रह्मचारी हूँ क्या? एक क्षणमात्र को तूने अशुभ भावों से परस्त्री को निहार लिया है, अब्रह्म पर दृष्टि ही है। बाहर बालब्रह्मचारी शब्द जैसे विलीन हो गया, ऐसे-ही एक क्षणमात्र को तूने क्रोध कषाय कर ली है तो तत्क्षण में तेरी विशुद्धि का ब्रह्म नष्ट हो गया। कठिन है। इसलिये कागजों पर विश्वास मत करना। कागजों और तस्वीरों तथा टीवी में आनेवाले चित्रों पर विश्वास मत करो। चित्र विश्वास के पात्र नहीं हैं। विश्वास का पात्र तो चारित्र है। चित्रों की पूजा इसीलिये जैनदर्शन में नहीं है। माला, चित्र, फोटो, कलेण्डरों की कोई पूजा नहीं है। जो व्यक्ति तस्वीरों के सामने चावल चढ़ाता है, अर्घ्य देता है, वह तो मिथ्यात्व की पुष्टि करता है। फोटो पर कोई पुष्पाञ्जलि नहीं। मात्र प्रतिष्ठित प्रतिमा और साक्षात् आचार्य, उपाध्याय, साधु,

अरहन्त, सिद्ध के समक्ष ही द्रव्य समर्पण करना। तस्वीरें प्रतीक मात्र हैं। ये कागज पूज्य हो जाते तो पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा की क्या आवश्यकता थी?

लोक में अज्ञानी ज्ञानियों की भाषा में उलझ करके जिनवाणी की भाषा को मत बदल देना। जिनशासन में प्रतिष्ठित प्रतिमा ही पूज्य है। वह भी रत्नमयी, स्वर्णमयी, रजतमयी, धातुमयी, पाषाणमयी। न प्लास्टिक, न मिट्टी, न ईंट, न चूना। ये कोई भी प्रतिमा जिनशासन में पूज्य नहीं है। दृढ़ता तो रखना पड़ेगी, दृढ़ता तो लानी पड़ेगी, नहीं-तो, युग ऐसा चल रहा है कि हर व्यक्ति अपने आप को भगवान् कहलाने की भावना रखता है।

बिना पंचकल्याणक किये, बिना सोलहकारण भावना भाये, तीर्थंकर होने की लोगों में ताकत है। ये जीव बिना संयम धारण किये भी भगवान् बनने की समर्थ्य रखता है, परन्तु मेरे मित्र! विश्वास रखना, दूध में घी अवश्य होता है, लेकिन उसको भी जामन की मटकी में दही के लिये पहुँचना पड़ता है। जब गंभीर चर्चाओं में श्वास रुक जाती है, तो गंभीर अनुभूति में गंभीर चारित्र की श्वास रुकती है। जब गंभीर चर्चाओं के सुनने से चेहरे गंभीर हो जाते हैं, तो अनुभूति के होने पर जिसकी चर्या गंभीर न हो, तो शुद्धोपयोग की दशा कैसी?

ये फोटो/तस्वीरें प्रतीक हैं। अगरबत्ती की क्या जरूरत है? तू तो शुद्ध घृत का दीपक जला। जैसे ज्ञानी कहे, 'महाराज! मन शुद्धि, वचन शुद्धि, काय शुद्धि, आहार-जल शुद्ध है। काहे की शुद्धि ? 'अभी-अभी कपड़े सुखा कर लाया हूँ।' ज्ञानी! सुखाकर तो लाया है, लेकिन नील डाल कर लाया है, अनन्त जीवों का रस चुआ कर लाया है। आगम में लिखा है कि नील की खेती होती है, उसकी पत्तियों को सड़ा-सड़ा करके जब उसमें अच्छे कीड़े पड़ जाते हैं, तब उन्हें सुखा करके, पीस करके ये नील बनकर आती है, जिसे तुम सोले के वस्त्रों में लगाकर घूमते हो।

आजकल एक शब्द और आ गया 'केमिकल'। अब वे केमिकल किस वस्तु से बनते हैं, उसका वर्णन करो। हमारा ज्ञानी वैद्य था सीधा-सादा। एक व्यक्ति आया, उसने कहा 'मेरा पेट दर्द हो रहा है।' उसने कहा, 'राख खा ले।' तो वह उठकर भाग गया कि कहीं राख से पेट ठीक होता है क्या? फिर उसने बढ़िया पैकिंग की उसी राख की, और फिर पहुँच गया। वह बोला-बहुत दिन से पेट ठीक नहीं हो रहा है। तो वह बैद्य बोला, 'ये है हमारे पास गोमय भस्म। इसे ले लो, ठीक हो जायेगा।' उसने ले

लिया और घोलकर पी गया। गोमय राख में क्षार होता है, उससे उसके पेट में जो व्यर्थ का मल जम चुका था तो ठीक हो गया। बोला, तुमने बढ़िया दवाई दी। जमाना पेकिंग का चल रहा है। अभी मंदिर का शिलान्यास होगा तो सोने की ईंटें, चाँदी की ईंटें बिकेंगी।

पण्डित जी! मैं आरती का निषेध नहीं कर रहा हूँ। मैं ये कह रहा हूँ कि विवेकपूर्वक, शुद्धिपूर्वक, शुद्ध घी का प्रयोग करो। उतना ही घी डालो जितनी आरती करनी है, बाकी का विश्रान्त करो। आप भर कर चले गये, उसमें कीड़े गिरेंगे। ये अच्छी बात नहीं है। जिनवाणी की आरती करो।

वस्तुस्वरूप समझो। जब इच्छा की पूर्ति नहीं होती है, तब यह जीव कषाय से भर जाता है। मान की पूर्ति न हो पाये, बस, समझो क्रोध तो आना ही है। लोभ की पूर्ति न हो पाये तो भी आ जाता है।

माँ ! जिस बच्चे को आपने दूध पिला दिया है, वह पालने में खेल रहा है, कितना सुन्दर लगता है। उसी को जब भूख लगे तो रोने लगता है। आप उसकी अनुभूति लेना चाहो तो अपनी गोदी में दूसरे बच्चे को बैठा लेना और उसको जमीन में बिठा देना। छोटा-सा दुधमुही बालक जो दूसरा गोदी में बैठ गया है, उसके पैर खींचता है—'मेरी माँ की गोदी में तू कैसे बैठ गया?' तब समझो कि कितना मानी है। और यहाँ तक होता है कि वह शब्द तो नहीं कह सकता है, कुछ कर भी नहीं सकता है। बच्चों के पास और देवियों के पास एक ही अस्त्र है। इसमें तो सारे परिवार भीग गये। बस, आँखों से आँसू टपके और तुम फिसले। ऐसा नहीं है क्या ? है। जो है, सो है।

आँखों में आँसू लाकरके ये देवियाँ अपनी पूर्ति कर लेती हैं। भगवान् जाने इनके पास कितना समुद्र भरा है। जैसे-ही काम बना, वैसे-ही ऐसे आँसू सूखते हैं जैसे गर्मियों में बरसा पानी। काम बना, सो चलो तुम कौन कहाँ के ? यदि बुरा लगे तो क्षमा करना और ज्यादा बुरा लगे तो सुधार करना। जैनदर्शन बड़ा विशाल है। हो सकता है कि द्रव्यलिंग पुरुष हो और भाव से स्त्री हो। अपने में सुधार करना। जो आदमी तुरन्त हँसे और तुरन्त रोये और भावुक हो जाये, उससे तनक सँभल कर रहना। उस पर विश्वास नहीं किया जा सकता कि कब बदल जाये।

एक महिला तो मेरे सामने आकर रोने लग गई—महाराज ! बच्चा हास्पिटल में है, तीन हजार चाहिये। फिर वहाँ से दूसरे गाँव पहुँची, तीसरे गाँव पहुँची। फिर वह महिला

पकड़ी गई। अब तो कुछ ब्रह्मचारी बनकर सफेद कपड़ों में घूम रहे हैं। बच कर रहना। अभी मैं भिण्ड में था। पंचकल्याणक में एक त्यागी पहुँचे। उन्होंने बड़ी लम्बी-चौड़ी बातें कीं कि मैं हॉस्पिटल बना रहा हूँ। दो लोगों की किडनी फैल हो गई है, इलाज करवाना है, पैसा दे दो। उसने समाज से लाखों रुपये झटके। जब पता करवाया तो कौन रोगी कौन कहाँ ? काहे का रोगी, उसको तो अपना घर बनाना था। इसलिये बड़े सँभलकर रहना। सोलापुर के चातुर्मास में एक श्रावक तीन दिन से पड़ा रहा, बोला—अमुक तीर्थ का उद्धार करा रहा हूँ। वहाँ के ट्रस्टी अत्यन्त समझदार थे, उन्होंने उसको दान भी दे दिया। लेकिन अभी आप ठहरो, अभी आपको और देंगे। वह सोचता है कि इतना तो मिल गया, और मिलेगा। धीरे-से उन ट्रस्टियों ने क्षेत्र पर फोन लगा दिया जिस तीर्थ के नाम पर इकट्ठा कर रहा था। समाज के लोग पहुँचे कि कौन है क्या है ? जो गलत करते हैं, उनकी ताकत कितनी होती है ? तनक-सी। दूसरे दिन ट्रस्टी ने ऐसा डाँटा, बोले कि निकालो, कितने हैं तुम्हारे पास? सब निकलवा लिये और वहाँ से भगा दिया। फर्जी आदमी था। अब तुम्हें दान भी कोई तीर्थ में देना हो तो अपने हाथ से देने जाना। पारस चैनल वगैरह में बहुत एड आ रहे हैं कि इस तीर्थ को भेज दो। बुंदेलखण्ड का युवा श्रावक मेरे से इस बात का प्रायश्चित्त लेने आया था 'महाराज! मैंने तीर्थ के नाम पर करोड़ों इकट्ठे किये, अब आज से त्याग कर रहा हूँ।' दिल्ली, बम्बई, नागालैण्ड, आसाम, बंगाल, गौहाटी चले जाओ और सब लूट कर लाओ। वहाँ के श्रावक भी अब समझदार हो गये हैं, पूछ लेते हैं कि क्या चाहिये? ये लो, और जाओ। बेचारे थक गये। भैया! ऐसा नहीं करना।

क्रोध करने से दारुण दु:ख को बढ़ाने वाले कर्म का आस्रव-बन्ध होता है और क्षमा धारण करोगे तो कर्म शान्त हो जाते हैं। **तप करने से जो प्राप्त हुई समता है, वह क्रोध करने से शीघ्र ही नष्ट हो जाती है। क्रोध करने से कर्मों का तीव्र आस्रव-बंध होता है और पुण्य का क्षय होता है।** इस मन ने ही कर्म उपार्जित किये हैं, वे विपाक में आयेंगे। जीव मुस्कराते-मुस्कुराते कर्म बांधता है। जब वह पाप उदय में आता है, तो गंगा-यमुना-जैसी धारें बहती हैं—'भगवान् मेरे से ही रूठे हैं।' भगवान् नहीं रूठे, तू ही तेरे पर रूठा था। भगवान् किसी पर नहीं रूठते। वे तो वीतरागी हैं। तू ही तेरे पर रूठा होता है। तू बीड़ी, सिगरेट, तम्बाकू आदि का सेवन कर रहा है, फिर केंसर के रोग की पीड़ा कौन सहन करेगा? भगवान् नहीं रूठे। युवावस्था में तू भूल गया था, वृद्धावस्था में रोना पड़ता है।

कौन किस पर रूठा? स्वयं ही स्वयं पर रूठे हो। कर्म का उदय ऐसा आयेगा, तो ऐसा क्यों करूँ ? क्रोध पर विजय प्राप्त करने का एक ही उपाय है—कर्म के फल को देखो। कोई किसी को सताता नहीं है, स्वयं ही जीव परेशान है।

जब युवा युद्ध करने खड़ा होता है तो कितना धैर्य रखता है? सतर्क रहता है। स्वयं के अस्त्रों पर ध्यान है, स्वयं के शरीर पर ध्यान है, उधर शत्रु पर ध्यान है कि मेरा कवच नष्ट न हो जाये, दूसरे का कवच गिर जाये। ऐसे-ही हे योगी ! तू ध्यानरूपी रणभूमि में खड़ा हुआ है। तेरे ज्ञान का कवच छिद न पाये और कर्म का कवच छिद जाये, ऐसा युद्ध करो।

कर्म नष्ट हो जायें, पर तेरा ध्यान विचलित न हो पाये। जैसे रण में धैर्य रखने से विजय प्राप्त कर लेता है, उसी प्रकार जो कर्मों से युद्ध करेगा, वह मुक्ति को प्राप्त कैसे नहीं करेगा? अपितु अवश्य ही करेगा। इसलिए आज से धैर्य धरना प्रारम्भ कर दो।

''आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्''

आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।



कृतघ्न कौन ?

श्लोक : स्वहितं यः परित्यज्य, सयत्नं पापमाहरेत्।
क्षमां न चेत् करोम्यस्यमकृतघ्नो न विद्यते ॥289॥

अन्वयार्थ : (यः स्वहितं परित्यज्य) जो अपने आत्मकल्याण को त्यागकर **(सयत्नं पापं आहरेत्)** यत्नपूर्वक पाप को एकत्र करता है **(क्षमां चेत् न करोमि)** इसको क्षमा मैं नहीं करता हूँ, क्योंकि **(अस्यमत्कृतघ्नो न विद्यते)** उसके जैसा अन्य कोई कृतघ्नी-(उपकार को भूलने वाला) नहीं है।

भावार्थ : हे आत्मन् ! जो अपने आत्मकल्याण को त्यागकर यत्नपूर्वक पापों को एकत्र करता है, मैं उसको क्षमा नहीं करता हूँ, क्योंकि वह कृतघ्न नहीं है क्या ? अर्थात् उसके बराबर कोई कृतघ्न नहीं है।

॥सद्-देशना॥

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज सार-समुच्चय जी में ध्रुव परम तत्त्व की व्याख्या करते हुए समझा रहे हैं। सिद्धि चाहिए, तो मन-वचन-काय की शुद्धि की आवश्यकता है। जिनका मन पवित्र नहीं है, उनकी वाणी में पवित्रता असंभव है। जिसकी मन और वाणी अशुद्ध है, उसकी वृत्ति सम्यक् हो, यह आवश्यक नहीं है। जितना बाह्य विकल्प है, इन सब का संचालन अन्तरङ्ग से है। कितना भी धर्मात्मा जीव अपने आप को धर्मात्मा कहे, जब तक स्वयं के अन्तःकरण को अपवित्र नहीं कर लेगा, तब तक तन से पाप नहीं कर सकता और वचन से अशुभ बोल नहीं सकता। **जीव जब तक अन्तरङ्ग को अशुद्ध नहीं कर लेगा, तब तक बहिरङ्ग में पाप करने की सामर्थ्य नहीं आयेगी।** जिस जीव ने निज की आत्महत्या की है, एक दिन के निर्णय में जीव कभी आत्महत्या नहीं कर सकता। वर्षों-वर्षों अपने आपको ढालता है। एक चींटी तक को आत्मरक्षा का भाव रहता है, वह पानी से अपने आपको मोड़ लेती है, अग्नि से मोड़ लेती है। पंचेन्द्रिय जीव आत्महत्या करने बैठ जाये, कितना कठिन है। बार-बार प्रेरित करता है, तब कहीं आत्महत्या कर पाता है। प्रथम अवस्था में व्यक्ति को पाप करने के परिणाम करने के लिये बहुत पुरुषार्थ चाहिये पड़ता है। एक बार अशुभ कर बैठा, फिर तो उसका मार्ग प्रारम्भ हो गया। अशुभ करने के लिये उसको

बहुत शक्ति चाहिये पड़ती है, जितनी शक्ति शुभ करने के लिये नहीं चाहिये पड़ती है। क्योंकि शुभ करने पर तो प्रसंशायें मिलती हैं, लोग अच्छा कहते हैं। अशुभ करने वाले की माँ भी उसे बेटा कहना पसन्द नहीं करती। अशुभ करने वाले का सम्बन्धी भी उसे स्वीकार नहीं करता। राग के वश डाकू की माँ भी उसे फाँसी के फन्दे से बचाने की चेष्टा करेगी, राग के वश पत्नि, भाई सब रक्षा करेंगे, लेकिन सत्य की दृष्टि की बात करोगे तो सम्बन्धियों के मन गिर जायेंगे। जो भी पापी की रक्षा की बात आती है, ये विश्वास रखना, ये राग बोलता है; लेकिन जब सत्य बोलता है, तो यही कहेगा कि अच्छा नहीं किया। निज में टटोल कर सुनना, जीव को अशुभ करने के लिये मन बनाना पड़ता है।

भगवान् को विराजमान करने के लिये मैं इतने दिन तक भावना बनाता रहा। जैसा भाव बना, सो व्यवस्था हो गई। **भाव और भावना में बहुत अन्तर है। भावना प्रेरित करती है, भाव ग्रहण करता है। भावना भाव नहीं है। भाव वस्तु है, भावना वस्तु की प्राप्ति का प्रयास है।** अज्ञानी प्राणियों ने भावना को भाव कह दिया और भावना को भाव कह करके यह मोक्षमार्ग से भ्रमित हो गया। साधु बनने की भावना तो हो जाती है, भाव नहीं होते। तद्रूप होना भाव है, उस भाव की प्राप्ति के लिये भाना, उसका नाम भावना है। कितनी बार आप भावना भाते हो 'हे भगवन् ! मैं भी मुनि बनूँ।' मुनि-भावना भाने से भाव मुनि नहीं हो गये। जो कपड़े उतार कर फेंक चुके हैं, वे द्रव्य के मुनि हैं। 'हम मन में भावना भा रहे हैं, हम भाव के मुनि हैं।' फिर तो आप सब भाव के मुनि हो जाओगे, ये सब द्रव्य के मुनि हो गये हैं। पुनः समझो, जो निश्चय को पहले मानता है, फिर व्यवहार को मानता है, वह इसी मिथ्यात्व के लिये बैठा हुआ है। जब निश्चय हो ही गया है, तो व्यवहार की क्या आवश्यकता है ?

पहले भावना होती है, फिर व्यवहार में प्रवृत्ति होती है। **व्यवहार की प्रवृत्तिपूर्वक जो आत्म-स्थिरता होती है, उसका नाम भाव है।** एक जीव ने पुण्य करने के लिये इतने दिन से भावना भायी, तब आज भाव कर सका। यह तो अच्छा काम था। मित्र! जीव बुरे काम के लिये भी भावना भाता है, तब वे भाव कर पाता है। अशुभ भावना के काल में कोई भगवान् मिल जाये तो अशुभ भाव नहीं हो सकते। वह तो जिसने फाँसी लगाई है, ऊपर चला गया, वह बताने नहीं आया है; परन्तु जिन लोगों ने कोशिश

की है, कहीं किसी ने उसको बचा लिया, उससे पूछना कि आप ये कब से सोच रहे थे? क्योंकि मेरे पास तो बहुत प्रकार के लोग आते हैं।

माताओ ! घर को सुरक्षित रखना चाहते हो तो अपनी भाषा और भावना दोनों को सुरक्षित रखना। समाज को सुरक्षित रखना चाहते हो तो भाषा और भावना को पवित्र कीजिये। देश/राष्ट्र धर्म को अच्छा देखना चाहते हो तो भाषा और भावना को पवित्र कीजिए। भावना भ्रम से विकृत होती है। इस कलिकाल में बहुत सारे विषय स्पष्ट करके दिखाना चाहिये। ऐसा समय चल रहा है। वे दिन जा चुके हैं कि पिता ने कह दिया कि गड्ढे में डूब जाओ, तो बेटा यह सोचे कि किसी हित की दृष्टि से ही पिता ने गड्ढे में कुदवाया होगा। ये प्रश्न जल्दी होने लगा। क्यों ? वे दिन कहाँ चले गये कि पिता ने कहा गड्ढे में कूद जाओ तो हाँ, पिता जी। बेटा ! तुझे जंगल जाना है। 'मैं ज्येष्ठ पुत्र हूँ, मैं जंगल क्यों जाऊँ ? राज्य का बटवारा करो ना।' नहीं, पिता ने जो आदेश दिया है, वह शिरोधार्य है। रामचन्द्र जी ने मुड़कर नहीं देखा कि माँ से तो मिल लूँ। कुछ नहीं, बड़े गहरे निर्णय हैं। आनन्द में जीना चाहते हो, रहस्यमयी आनन्द में जीना चाहते हो, शारीरिक कष्ट तो सहन करने पड़ेंगे, कभी-कभी मानसिक कष्ट भी सहन किये जा सकते हैं। वे दिन निकल जायेंगे तो भेजने वाले भी तुम्हारे भजन गायेंगे। यदि पिता कहता है कि अब बहुत हो गया, अब मैं दूसरे बेटे को कुछ देना चाहता हूँ, आपसे थोड़ा दूर रहना पसन्द करता हूँ। तब भी पिता के चरण स्पर्श कर कहना-पिता जी ! जब भी आपको आवश्यकता हो तो आप मुझे जरूर बुलाना, मुझे तो आपकी आवश्यकता रोज है, मैं आपके पास रोज आऊँगा। क्यों ? मुझे मालूम है कि इस पर्याय से हंस निकल जायेगा, फिर मैं मात्र चर्चा कर पाऊँगा। आपकी रोज आवश्यकता है। उन्होंने आपको दूर किया है, परन्तु आप दूर क्यों हो रहे हो ?

चलती बिरिया है, कब हंस उड़ जाये। वृद्धों का कोई नियत नहीं है। उन हंसों के उड़ने के पहले हंस-आत्मा को निहार लेना। शत्रु भी क्यों न हो, उसमें प्रवेश करो। कष्ट हो, वो भी आनन्द लूटना अपमान होता है, अशुभ शब्द सुनाई पड़ते रहें, तब भी मैं अपनी मस्ती में झूमूँ, वह आनन्द कुछ अलग ही है। लोग मुझे दोनों प्रकार से कहने वाले मिले। एक कहे कि तुम कैसे पागल हो ? आप तो समझदार हो, अपना हिस्सा माँग लो। और एक ये कहे-धन्य हो उस बेटे को, पिता की बात को मानकरके जंगल

की ओर जा रहा है। मध्यस्थ रहो। ऐसे भी मिलेंगे। अब भाई! भीतर की बातें हैं, कौन जाने ? इन सब बातों को जानते हुये वेदन करना, वे आनन्द के क्षण ही अलग हैं। सबकुछ होने के बाद भी हाथ में खाने को रोटी न हो, सबकुछ होने के बाद भी दिख रहा है मैं इतना वैभवशाली हूँ, तब भी हाथ में खाने को रोटी न हो, वे दिन कैसे होंगे?

श्री राम लक्ष्मण सीता जब अवधपुरी से निकले, एक दिन ऐसा भी आया था कि सन्ध्या हो गई, एक विप्र के यहाँ शाम को रुक गये। पत्नि थी, पण्डित जी बाहर गये हुये थे। उनकी धर्मपत्नि ने देखा कि ये पुरुष कोई महापुरुष हैं, परन्तु इनके पास कुछ भी नहीं है, अपने पास कम-से-कम झोपड़िया तो है। ये लोग ऐसे-ही घूम रहे हैं। हाँ, ऐसा भी होता है। ब्राह्मणी के मन में दया आ गई और उसने तीनों को शुद्ध भोजन कराया शाम का और विश्राम कराया। कितना पुण्यात्मा जीव होगा। आप विश्वास रखना, जितना **पुण्यात्मा जीव होगा, वह किसी से न बहुत ज्यादा राग रखता है, न द्वेष रखता है, न ज्यादा किसी से मतलब रखता है, सहज जीवन जीता है।** आज मैं यहाँ हूँ, कल कहाँ, इसलिये किसी से क्या लेना देना? ठहरना ही तो है, वहीं ठहर गये। प्रातः जब पति आया, अपरिचित पुरुषों को जब कुटिया के बाहर देखा विश्राम करते, आगबबूला हो गया और पत्नि से कहता है कि तूने ये क्या किया? अपरिचित लोगों को घर में ठहरा लिया। उसने पत्नि को बहुत डाँटा। लक्ष्मण को गुस्सा आ गई। राम ने कहा—नहीं, भैया! आपको मालूम होना चाहिये कि स्त्री, ब्राह्मण, बाल, यति, ऐसे लोगों पर क्षत्रिय का हाथ नहीं उठता है। छोड़ो। परन्तु लक्ष्मण की भातृ-भक्ति देखो। ठीक है, आगे चलो। परन्तु बार-बार याद आ रही थी कि मैं सम्राटपुत्र स्वयं, नारायण भाई बलभद्र और सती सीता के साथ होने पर भी आज इस ब्राह्मण ने मेरा तिरस्कार कर दिया है। राम मुस्करा रहे थे कि वह सूत्र तो अनादि है। राम मुस्करा रहे थे- लक्ष्मण! सबके दिन एक-से नहीं होते। बोले, भैया! आप तो ऐसे ही बोलते रहते हो। तो क्या बोला? जो है, सो है। उस समय की अनुभूति लो। जो व्यक्ति एक छोटे-से मोहल्ले का पार्षद बन जाये, उसको इतना मान हो गया हो कि मैं तो राजा बन गया हूँ। फिर जिसका पिता राजा हो, जिसका ससुर राजा हो। जनकपुरी का सम्राट् जनक, अवधपुरी का सम्राट् दशरथ। जिनके बेटे बहू हों और जिनके दामाद हों, स्वयं

मालूम है कि मैं बलभद्र हूँ, स्वयं मालूम है कि मैं नारायण हूँ। एक बात सीख लेना चाहिये कि **जगत् तुमको गरीब देखे, उसे मत देखना। जगत् तुम्हें अमीर देखे, उसे मत देखना। तुम्हारे भीतर क्या भरा हुआ है, उसे देखो, आनन्द के साथ जियो।** जिसके जेब में पन्ना का हीरा रखा हुआ है और मैले-कुचेले कपड़े पहने हुये है, छतरपुर के बच्चे उसे पागल समझ कर पत्थर फेंक रहे हैं। तू पत्थर ही तो फेंकेगा, वह तो मस्ती में जा रहा था। तुम्हारी दृष्टि में कपड़ों का मैलापन दिख रहा है, पागल दिख रहा है, परन्तु चौबीस घण्टे उसको हीरे की गर्मी आनन्द दे रही है। तुम्हारे गरीब मानने से मैं गरीब नहीं हूँ; परन्तु मुझे मालूम है कि मेरे पास सौ कैरेट का रखा हुआ है। तू गरीब कहता है तो कहता रह।

अपनी निजी भाषा नहीं छोड़ना। बना-बनाकर बोलोगे तो पकड़े जाओगे और बनावटीपन में मिठास नहीं होती। जलेबी कितनी ही मीठी हो, रसवन्ती कितनी ही मीठी हो, लेकिन उतनी मीठी नहीं है जितनी मीठी मिश्री होती है। रसवन्ती खाने में तो आटे का रूखापन का स्वाद तो आयेगा ही, लेकिन मिश्री की मिठास में मिलावट है ही नहीं। ऐसे-ही मुमुक्षु! जो बदली भाषा का प्रयोग करते हैं, वे रसवन्ती जैसे हैं। जो निजी भाषा होती है, वह मिश्री का मीठापन होता है।

रसतन्ती का रस बाहर से डाला हुआ है। यह ऐसे ही मानना कि पड़ौसी के कपड़े पहन कर ससुराल पहुँचे। कहीं तेरे बेटे की माँ का भैया तेरे साथ में आ गया, उसी बीच पड़ौसी पहुँच गया, हो आये ससुराल ? हमारे कपड़ा दे दो। अब देखो कैसा लगता है? ऐसे-ही जो व्यक्ति गुणहीन हो करके गुणी बनकर बैठना चाहता है, भीतर तो कोई परिणामों की विशुद्धि नहीं है और बाहर में भेष को सुन्दर बना कर रखना चाहता है, वह ससुराल में पड़ौसी के कपड़े पहन कर गया है।

ज्ञानी! बनावटीपन बहुत दिन नहीं चलता। व्यक्ति कहीं-न-कहीं पकड़ा जाता है। या तो बोलने में पकड़ा जाता या थाने में पकड़ा जाता। भोजन करने की शैली से भी कुल की पहचान हो जाती है। हमारे देश की ये परम्परा रही है कि कोई भी व्यक्ति हो, उसको भोजन कराओ, आगे कुछ नहीं करना। जो भोजन करते समय पाँचों अँगुलियाँ मुख में ले जाये, ऐसे मुख फाड़ रहा है जैसे अजगर हो, चपचप की ऐसी आवाज हो कि रोड में सुनाई पड़ जाये, तो समझ लो कि ये कितने कुलवान् हैं। कुलवन्ती नारी

कभी दौड़ते नहीं मिलेगी, कभी भागते नहीं मिलेगी। उसकी चाल मंदर होगी और कुलवान् पुरुष के मुख से भोजन करते समय चपचप की आवाज नहीं निकलेगी। पाँचों अँगुलियाँ मुख में ले जा रहा है और बार-बार अँगुली चाटता है तो समझ लो कि यह हीन कुलाचार से ग्रसित है। उच्च कुल में भले ही जन्मा हो, परन्तु कोई दूसरे का बदला बेटा है। हो सकता है कि हॉस्पिटल में बदल गया हो। सत्यता यह है कि बेटा मेरा है या किसका है, यह तो पिता को भी सही पता नहीं है। यह पता तो माँ को ही है। बेटा किसका है, यह तो माँ को मालूम है, पिता को क्या मालूम है? माँ ने कह दिया बेटा! वह तेरा पिता है, सो वह 'पिता' बोल रहा है। भावों से पूछो। जो मुख से आवाज निकल रही है, वह तो माँ के द्वारा कहलाये गये पिता की बात है। परन्तु सत्य यह है कि जो तुम बोल रहे हो, वह क्या कैसे बोल रहे हैं? जैसे सत्य बेटे का बोध माँ को होता है, ऐसे-ही अपनी भाषा का सत्य आपके भावों को ही पता होता है कि तुम बनावटी मुनि बोल रहे हो कि वास्तव में शील होकर बोल रहे हो।

जिनके सोच पवित्र होते हैं, उनके चेहरे भी सुन्दर होते हैं। जिनके सोच खोटे होते हैं, उनके सुन्दर चेहरे भी कुछ दिन बाद बदल जाते हैं। जब भी तुम्हारे घर में दो लड़ें, तो समझाने मत जाना। बस, कैमरा लेकर पहुँच जाना, फोटो खींचनेवाले को ले जाना। ये जमाना नहीं है समझाने का, अन्यथा अपने ऊपर विपत्ति खड़ी हो जायेगी।

जो काम पचास लोग नहीं कर सकते थे, वह काम एक कैमरा कर लेगा। यंत्र, मंत्र, तन्त्र। यही तो विशेषता है। जो काम पचास लोग नहीं कर पाते, उसको एक मंत्र/तंत्र/यन्त्र कर देता है। आप जिनालय में कब तक जागते रहोगे? थक जाओगे। आपने कोने-कोने में यंत्र लगा दिये, वे रात भर अपना काम करते हैं। यंत्र बहुत बड़ी सिद्धि है। यंत्र से महान् सिद्धि मंत्र की है। यह मंत्र ही तो था कि बेटा ! आपको जंगल जाना है, बेटा जंगल की ओर चला गया। मंत्र था, जंगल चला गया। विप्र ने भगा दिया, वहाँ से भी चले गये। महापुरुष मंत्र का सम्मान करते हैं। जो मंत्र का सम्मान रखता है, मंत्र उसके लिये सम्पत्ति से बढ़ कर है। देखते जाना, सबके दिन एक-से नहीं होते।

श्रीराम जंगल में चले गये। जाते-जाते चातुर्मास का समय आ गया। चातुर्मास में जंगलों में विचरण कहाँ करेंगे? वहाँ के यक्ष ने प्रसन्न हो करके राम नगर बसा दिया।

सिंहासन पर राम बैठे हुये हैं, बगल में लक्ष्मण, राज्य चल रहा है और किमिच्छिक दान की घोषणा कर दी, मेरा क्या जाता है ? ज्ञानी! जब तू जमीन पर गिरा, तो कोई उठानेवाला मिला कि नहीं ? मिला । तुम्हारा जिनके घर में जन्म हुआ, तू उनको कुछ कमा कर दे गया था क्या ? आज जो-जो चाहिये पड़ता है, मचल करके रो-रो कर सब ले लेता है और उनको लाकर देना पड़ता है। जैसे कपड़े चाहिये पड़ते हैं सो कपड़ा ले लेता है, जैसा भोजन चाहिये पड़ता है सो मिलता है। जो तुझे लुटाना पड़ता है वह लुटाकर भी आ जाता है। हाँ। अभी तूने एक दिन भी कमा कर नहीं दिया। अठ्ठारह वर्ष तक तू किसी की सेवा कर सकता है क्या ? तेरी सेवा अठ्ठारह वर्ष तक हुई, अभी भी जो चाहिये वह बराबर मिल रहा है। जब पूर्व में किया है, सो बरस रहा है। राम ने क्या किया ? किमिच्छित दान की घोषणा कर दी, क्यों ? मैं कौन लेकर आया था? मुझे मिला, तो मैं दे दूँ। ऐसे-ही तुम्हारे पास जितनी सम्पत्ति हो, सो खूब मंदिर बनवाओ, खूब प्रतिमायें रखो। मिला है, सो हमें कौन लेकर जाना है? बेटा ! अभी तू कपड़ों को मचला, अब मचल जाना कि सबने भगवान् रखवा दिये, अब हमें रखवाना है। भीतर का निर्णय देखो क्या हो रहा है। आदमी अपनी स्वतन्त्र दशा को समझ ले। देखो ये बालक कुछ भी लेकर नहीं आया, ये अपरिचित लोग उसको इतने अच्छे से रखे हुये हैं।

मैं तो ऐसे-ऐसे जंगलों में जाता हूँ, वियावान् जंगल, वहाँ पर भी रात्रि में नौ बजे सेवा करने वाले मिल जाते हैं और जब दस ग्यारह बजे, कितना ही जंगल हो, वहाँ भी कमण्डल में पानी भरा मिला मुझे और नमोऽस्तु-नमोऽस्तु करके आहार देने वाले मिल जाते हैं। तब मैं देखता हूँ कि मैंने इन लोगों को क्या दिया है। अपरिचित व्यक्तियों को लोग कैसे गाड़ी-गाड़ी भर कर ले जाते हैं। अभी एक जंगल में लोग घबराने लगे, 'महाराज! क्या होगा ?' मैंने कहा कि डर उनको लगे जिनके पास कुछ हो। डाकू भी आयेगा तो वह प्रणाम करके जायेगा। 'आपका तो ठीक है, परन्तु मेरा क्या होगा ?' मैंने कहा कि चिंता मत कर। मंदिर के द्वार पर पहरेदार होते हैं। कचहरी जाने पर सबसे पहले किससे मिलते हो ? तेरे पास भी आयेंगे तो ध्यान रखेंगे कि ये साधु महात्मा के पीछे लगे हुये हैं, ये कोई धर्मात्मा जीव है। रात्रि के बारह बजे मैं माला फेर रहा था। एक लम्बा, अस्सी साल का, पुरुष हाथ में लोटा लिये, मात्र अधोवस्त्र पहने था।

उस वृद्ध ने सुना कि हमारे खेत में जैन मुनि रुके हुये हैं। वह दो-तीन कि.मी. दूर से चल कर आया और लोटे में दूध भर कर लाया, अरे! महात्मा लोग जग रहे हैं। जो लोग साथ में चल रहे थे, उन्हें जंगल में खाने को कुछ मिला नहीं, उनके पेट में चूहे लोट रहे थे, तो वे भी नहीं सोये। एक श्रावक ने पूछा, 'बाबा जी! कैसे आये ?' वह वृद्ध बोला-भैया! मेरो तो जीवन धन्य हो गओ। मेरे खेत में महात्मा पधारे हैं। अब जिसके खेत में महात्मा पधार जायें, उसको कितना आनन्द होता है? तो फिर जिसके चौके में महात्मा पधार जायें, उसे कितना आनन्द होगा? अब वृद्ध कहता है, 'मैंने सुना कि मेरे खेत में महात्मा पधारे हैं, तो मैंने सोचा कि अपनी भूमि पर भूखे साधु नहीं रोक सकते हम, इसलिये अपने हाथ से अपनी गाय लगाकर लाया हूँ। लोटा मांज-मांज कर लाया हूँ। तनक ये दूध इन महात्माओं को पिलवा दो। उनने समझाया—दादा जी! जे ऐसे महात्मा हैं कि दिन में एक ही बार पानी पीते हैं और एक ही बार भोजन करते हैं। ये तो नहीं पी सकते हैं। 'अब बताओ बेटा! का करें हम ?' अब वापस ले जाओ। 'काये बेटा! तुम ओरे भी नहीं पियत? हम तो पियत हैं। अब वे सब सुबह आये और इतने खुश हुये। अब उनके समझ में आ गई कि जब भाग्य होता है तो मिलता ही है। हमने कभी सोचा भी नहीं था कि जंगल में दूध पीने को मिलेगा। साधुओं के पास पहुँचो तो कोई-न-कोई आ ही जाता है। भगवान् की भक्ति करो, दुनियाँ में भटकने की जरूरत नहीं है, सब मिल जाता है।

अब राम के पास तो सबकुछ था। पूरा राज्य था। रामनगर का राज्य था। अब जिस ब्राह्मण ने भगा दिया था, उसने भी सुना कि यहाँ रामनगर बसा हुआ है। वहाँ के राजा राम हैं और वे किमिच्छित दान दे रहे हैं। वह भी भीख माँगने पहुँच गया। जैसे-ही वह पहुँचा, लक्ष्मण ने पहचान लिया। लेकिन तब भी लक्ष्मण ने कुछ नहीं कहा। गौर से देखा, ब्राह्मण ने लक्ष्मण को पहचान लिया और सोचा कि अब तो मेरी फाँसी लग जायेगी। दान नहीं माँगा और तुरन्त भागने लग गया। राम ने कहा कि उसको पकड़ लाओ, मेरे दर से विप्र खाली नहीं जा सकता। उसको पहरेदारों ने पकड़ लिया। बोला - भैया! क्षमा करो, क्षमा करो। 'अरे! क्षमा नहीं, तुमको दान मिलेगा। अरे! दान नहीं, मेरे प्राण चले जायेंगे। क्यों? ये मेरे घर रुके थे, मैंने इनको भगा दिया था। वह बोला कि तुम चिन्ता मत करो, ये राम हैं, तुम चलो तो। बेचारे को घसीट कर ले गये। श्रीराम ने क्या कहा? सबको तो एक-एक थाली जवाहरात दिये, इसको दो थाली दो।

शिक्षा सीखो बहुत बड़ी कि आदमी को कैसे शिक्षा लेना चाहिये। राम ने लक्ष्मण से पहले ही कह दिया था कि अपने द्वार पर शत्रु भी आये तब उसको भी सताया नहीं जाता। सबके दिन एक-से नहीं होते। वह वैसे भी भाग रहा है, तुम तो मौन ही रहियो। जैसे-ही दो थाल जवाहरात के देखे, बेचारा थर-थर काँपने लगा। व्यक्ति को कैसे ठीक करना चाहिए? ग्लानि से भर गया कि घर में आये महापुरुष को मैंने दुतकार दिया था और एक ये हैं महापुरुष जो अविनय करने वाले की भी अवहेलना नहीं करते। जब उसको दो थाल मोती दे दिये, फिर राम कहते हैं, 'हे विप्र ! आपको लगता ये है कि ये सबकुछ मैंने कमाकर रखा है। तेरा **पूर्व का पुरुषार्थ नहीं है, भाग्य नहीं है, तो वर्तमान का पुरुषार्थ कार्यकारी नहीं होता और पुण्य का द्रव्य प्रबल है तो जंगल में भी श्री बरसती है।** अतिथि सत्कार व्रत का पालन करना। तुमको और चाहिए है तो और लेकर जाओ, लेकिन कभी द्वार पर आये व्यक्ति को भगाना मत। जब दे दिया, तब यह शिक्षा दी। पुण्य से मिला है।

कितने लोग भोजन करने नहीं तरस रहे? दान देने के लिये तरस रहे हैं, क्योंकि उनके पास इतना है ही नहीं। जब स्वयं का ही पेट नहीं भर पा रहे हैं, तो दूसरे को क्या दे पायेंगे? तुम्हारे घर पर कोई भोजन करने बैठ जाये तो कभी उठाना नहीं। यह ध्रुव सत्य है कि उसका पुण्य का नियोग न होता, उसका लाभान्तराय कर्म का क्षयोपशम न होता, तो कोई के खिलाने के भाव भी नहीं होते। कोई घर के बाहर भी निकालना चाहे तो ठीक है, जाता हूँ, पर इतना ध्यान रखना, मुझे आप घर से निकाल दो, कोई विकल्प नहीं है, परन्तु प्रीति से बाहर मत निकालना। जिसके पीछे मुझे आप बाहर कर रहे हो, वह तो सम्पत्ति/धन है, ये किसी का होता नहीं है। नगर नारि का प्यार यथा। वैश्या की प्रीति किसके प्रति है ? जिसके पास पैसा है। अज्ञानी समझता है कि मेरे से प्रीति है। उसको तुमसे प्रीति नहीं है, उसको पैसे से प्रीति है। ऐसे-ही इस धन को तुमसे प्रीति नहीं है, तेरे पुण्य से प्रीति है। **पुण्य तेरे साथ होगा तो धन तो और मिल जायेगा। पैसे के राग में प्रीति मत खो बैठना।**

सत्यता यह है कि संसार में कोई किसी को दुःखी-सुखी नहीं करता। आप अपनी आकांक्षाओं की सीमा बढ़ा लोगे, उनकी कौन कितनी पूर्ति कर सकता है? तो फिर तुम दुःखी हो जाओगे और धर्म के मार्ग पर कोई दुःखी होता ही नहीं है। उसको दुःख

जरूर होगा जिसने सोच लिया है कि आज मुझे सम्मान मिलना चाहिये और कहीं लिस्ट में तेरा नाम नहीं आया तो वहीं तेरा सिरदर्द प्रारम्भ हो गया। बड़े उत्साह से तू आया और संचालक तुझे नहीं बुला पाया और प्रवचन शुरू हो गया, तो मन में थोड़ा कुड़कुड़ाता है- अरे! जल्दी आ जाते तो श्रीफल चढ़ाने मिल जाता। और आ भी गया, सबके नाम बुल गये, तेरा नाम छूट गया, तो भाव आता 'मेरा नाम क्यों नहीं बुला?' ये जो भाव आया है, इस भाव ने तुझे दु:खी कर दिया। यदि यहाँ श्रीफल चढ़ाने की व्यवस्था न होती, बस आप अपने हाथ से लाये और चढ़ाकर चले जाते, तो कोई कष्ट ही नहीं था। **कष्ट तब होता है जब पर के सम्मान में अपना अपमान स्वीकार करना प्रारम्भ हो जाय।** अथवा अपने सम्मान में पर का अपमान होना प्रारम्भ हो जाये, तो आनन्द आना प्रारम्भ हो जायेगा। कहीं आनन्द नहीं है, **आनन्द तो निज का धर्म है।** जगत् में कुछ भी नहीं है, तू गृहस्थ बनकर रह रहा है और इस विषय को बहुत अच्छे से जानता है कि जिससे अच्छे से बोल लो, उसका सम्मान बढ़ जाता है। कहीं तुम बोल नहीं पाये, तो उसे अपना अपमान महसूस हो रहा है। सत्य यह है कि उसे पता ही नहीं था कि मैंने अपमान किया किसका है ? कभी-कभी ऐसा भी होता है। कितने सारे जीव अपने आपको दु:खी किये हुये हैं मात्र भ्रम के कारण। यथार्थ मानना। राम जंगल चले गये थे, वे दु:खी होकर गये थे कि सुखी होकर गये थे ?

ज्ञानियो! जिसने निर्णय कर लिया है कि मेरे अन्दर जो है सो है, पर का सुख 'सुख' नहीं है, पर का दु:ख 'दु:ख' नहीं है, मैं स्वतन्त्र हूँ। **जिसने स्वतन्त्रता की अनुभूति ले ली है, उसको जगत् में दु:ख होता ही नहीं है।** एक दिन पिता जी से बोलना कि आप मुझे देखोगे तो आपको बेटा दिखेगा, आप जीवद्रव्य देखोगे तो दोनों में समरस दिखेगा। बहुत सारे लोग समाज में आनन्द से नहीं रह पाते। समाज ही उसके आनन्द को भङ्ग करती है क्या? नहीं, नहीं। स्वयं करता है । जब आप सामान्य होते हो, तो सबके बीच में बैठे रहते हो, बड़ा आनन्द आता है। जैसे-ही विशेषण लगा, तो सामान्य लोगों से भिन्न हो गया, अपने आपको हटा हुआ समझ लिया। जो व्यक्ति होने पर भी कहता है कि ये बाद की बात है, पहले तो मैं समाज का एक सदस्य हूँ, उसको आनन्द-ही-आनन्द है। जितने विशेषण हैं, उनको हटा कर बैठेगा तो आनन्द आयेगा और विशेषण लगाकर आओगे तो नियम से दुनियाँ को भगवान् दिखेंगे, मुझे

सम्मान दिख रहा है। जो अपरिचित होकर आता है, वह बड़े आनन्द के साथ प्रवचन सुनकर चला जाता है। परिचित होकर आता है तो कहता है अरे! प्रवचन शुरू हो गये, मेरा तो नाम ही नहीं बुला।

किसी ने किसी का उपकार किया और वह उसको भूल गया, तो वह कृतघ्नी है। आ. विद्यानन्द जी ने इन्द्रिरा गाँधी को 'कुरल काव्य' पकड़ाया था। इसे सभी सम्प्रदाय के लोग अपना ग्रन्थ मानते हैं। काँग्रेस में हाथ का पंजा कब से आ गया? गोम्मटेश अभिषेक के समय आ. विद्यानन्द जी ने इन्दिरा गाँधी को हाथ से आशीर्वाद दिया, सो उसने कहा कि आजसे मेरा चुनाव चिह्न पंजा ही है। 'कुरल काव्य' में आचार्य तिरुवल्लभाचार्य लिखते हैं, **'विश्व में पापी अनन्त हैं, लेकिन पापों का पिता वह है जो उपकारी के उपकार को नहीं मानता है। वही महापापी है।** जीवन में किसी ने किञ्चित् भी उपकार किया हो, उसको भूल मत जाना। आपने दिया क्या है? पिता ने तुमको जन्म दिया है, आपने दिया क्या है ? गुरु ने आपको मोक्षमार्ग दिया, जीवन में कभी भूल मत जाना। जगत् के व्यवहार की बातें तो दुनियाँ ने कहीं। आचार्य कुलभद्र स्वामी कह रहे हैं – हे जीव ! जिस पुण्य ने यहाँ तक पहुँचाया, जिस धर्म ने यहाँ तक पहुँचाया, उस धर्म को ही तू भूल गया, तो तेरे से बड़ा कृतघ्नी कौन होगा ? तूने पुण्य से इतने अच्छे घर में जन्म लिया, यदि उस पुण्य को ही छोड़ देगा, तो तेरे से बड़ा पापी कौन होगा ?

जीवन में कैसी भी अवस्था घटित हो जाये, मंदिर जाना मत छोड़ना, गुरुचरणों को मत छोड़ना, जिनवाणी मत छोड़ना। इस खोटे काल में कोई दूसरा साधन दिखाई नहीं दे रहा है। भगवान् की भक्ति करो। जिसने तुमको एक अक्षर भी दिया हो, कभी उसके उपकार को मत भूलना। सबके दिन एक-से नहीं होते। जिस माँ ने आँचल का पान कराया हो, उस माँ को भूल मत जाना।

''आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्''

आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।



शूरवीर और पण्डित कौन ?

श्लोक : शत्रुभावस्थितान् यस्तु करोति वशवर्तिनः।
प्रज्ञाप्रयोग-सामर्थ्यात् स शूरः स च पण्डितः ॥290॥

अन्वयार्थ : (यः तु) जो कोई **(शत्रुभावस्थितान्)** राग-द्वेषादि शत्रुओं को **(वशवर्तिनः करोति)** अपने वश कर लेता है **(प्रज्ञा-प्रयोग-सामर्थ्यात्)** भेदविज्ञान के अभ्यास की शक्ति से **(स शूरः स च पण्डितः)** वह वीर है तथा वही पण्डित है।

भावार्थ : हे भव्यात्मन् ! जो महापुरुष भेदविज्ञान के अभ्यास से रागद्वेषादि शत्रुओं को अपने वश कर लेता है, वही वीर है, वही पण्डित है।

॥सद्-देशना॥

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज सारसमुच्चय जी में तत्त्व की व्याख्या कर रहे हैं। पुरुषार्थ ही सफलता का साधन नहीं है। पुरुषार्थ कितना ही कर लो, कभी कार्य की सिद्धि हो ही नहीं सकती है यदि पुरुषार्थ में 'सम्यक्' शब्द नहीं है तो। पुरुषार्थ में 'सम्यक्' शब्द का होना अनिवार्य है। सम्यक्त्वविहीन पुरुषार्थ अकिञ्चित्कर है। कुछ नहीं कर सकता।

मथानी हाथ में है, मटका रखा हुआ है, गोपिका भा (मथ) रही है, परन्तु भीतर पानी है। मथानी है, मटका है, गोपिका पुरुषार्थ कर रही है, लेकिन मटके में दही के स्थान पर पानी है। पानी के मथने से मक्खन की प्राप्ति सम्भव नहीं है, ऐसे-ही असम्यक् मार्ग में पुरुषार्थ करने से सम्यक् मार्ग की प्राप्ति संभव नहीं है। इतना सबकुछ करने के बाद भी, जैसे किसी जीव ने दान भी दिया, कुमार्ग में दे दिया, कुक्षेत्रों में दे दिया, मथानी भी है पुरुषार्थ भी है, लेकिन उसके भीतर दही नहीं है, तो मक्खन कहाँ से निकलेगा ?

वे जीव धन्य हैं जिनका पुरुषार्थ सम्यक्त्व से युक्त है। मथानी भी है, मटका भी है और गोपिका भा रही है दही को। जैसे द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के चौक पुरते हैं, तो जीव के सहज ही सद्मार्ग में परिणाम होने लगते हैं। एक वे जीव हैं जिनको पैसे कमाने के राग में नींद नहीं आ रही है। उन अभागों से पूछो। एक वे लोग हैं जो दान न दें तो रात में नींद नहीं आ रही है। एक वे बच्चे हैं जो अपने दादा से कह रहे हैं

मुझे खिलौना दिला दो, एक वह बच्चा है जो ये कह रहा है मेरे भगवान् विराजमान करा दो। इस विषय के लिये आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती देव ने 'गोम्मटसार' जी ग्रन्थ में बड़ी सुन्दर बात लिखी है। जिस प्राणी के अन्तस् में मिथ्यात्व बैठा हुआ है, मिथ्याज्ञान बैठा हुआ है, एक बालक जैसे, उसको कुछ समझ आती है तो हाथ में गुलेल होती है। चिड़ियों को मारने का जिसका उद्देश्य बन चुका है, उसका वही खेल है। एक जीव विषकूट पंजर का प्रयोग कर रहा है अपने ज्ञान से। जिस जीव को कुमति, कुश्रुत भरा हुआ है, वह जीव खोटे काम में ही ज्ञान लगायेगा। जिसके भीतर सम्यग्ज्ञान भरा है, वह खेल भी खेलेगा तो भगवान् की प्रतिमा का अभिषेक करेगा। आज ये छोटे-छोटे बच्चे आपस में समझौता कर रहे थे, किस बात का ? आप कमण्डल गेट तक लेकर चलोगे, आप तालाब तक लेकर चलना, आप मंदिर तक लेकर चलना। झगड़ा नहीं है, पर व्यवस्था बना लो। नहीं तो लोग कहते 'भैया! वजन हो रहा है। आप ले लो।' **जब जीव का तीव्र पुण्य प्रबल होता है, तब जीव के सत्य मार्ग पर पुरुषार्थ करने के परिणाम होते हैं। जिसका पाप-उदय प्रचुर होने को तैयार हो चुका है, उस जीव का ज्ञान और बुद्धि का परिणमन भी विपरीत-विपरीत ही होता है।** ऐसे नरक का नारकी जीव भी चाहता है कि मेरे अच्छे परिणाम हों, लेकिन उसके अच्छे परिणाम होते ही नहीं हैं।

ज्ञानियो ! आपके जीवन में भी कभी-कभी ऐसे दिन आते हैं कि कोई हेतु समझ में आ ही नहीं रहा है और भावों में अशुद्धि आ रही है। अशुभ-अशुभ ही परिणाम आते हैं। कुछ नहीं, ये तीव्र असाता सामने खड़ी हो रही है। मैं सोच भी रहा हूँ कि अच्छे भाव आयें। मंदिर में भगवान् की प्रतिमा के सामने भी जिसको अशुभ ही नजर आता हो, सोचो उसका कितना अशुभ कर्म उदय में आया है। सामने जिनेश्वर विराजे हैं, उसके मन में विकार आ रहे हैं। किसी से पूछने मत जाना कि मेरे शुभ दिन कब आयेंगे ? अशुभ दिन कब जायेंगे? **सहज ही, बैठे-बैठे, पूजन-अभिषेक के परिणाम आ रहे हैं, गुरुवन्दना के भाव आ रहे हैं और स्वप्न में भी जो तीर्थों की वन्दना के भाव आ रहे हैं उनके पुण्य के उदय आ रहे हैं, जिसको स्वप्न भी अशुभ-अशुभ आयें, समझ लेना कि अशुभ दिन आने के संकेत आ रहे हैं।** स्वप्न के आने से अशुभ नहीं होता, स्वप्न के आने से शुभ नहीं होता। ये तो सूचना मात्र है। तीर्थंकर की माँ

को सोलह स्वप्न आये, तो क्या सोलह स्वप्न के आने से तीर्थंकर का जन्म हुआ ? नहीं। तीर्थंकर प्रभु का जन्म होना था, उस शुभ सूचना के लिये स्वप्न आये। सोलह स्वप्न तीर्थंकर की माँ मात्र को आते हैं। **जिसके उदर में श्रेष्ठ सन्तान है, उस माँ का दोहला भी श्रेष्ठ होता है। जिस माँ के गर्भ में खोटी संतान बैठी है, उसको दोहला भी खोटा होगा।** एक माँ अपने पति से कह रही है, 'स्वामी ! मेरे भाव हो रहे हैं कि कारागार में जितने भी बंदी हैं, उन्हें छोड़ दिया जाय। जब अभय कुमार अपनी माँ के गर्भ में आया, तो कैदखाने के सभी कैदियों को रिहा करा दिया, मुक्त करा दिया। तभी उसका नाम अभय कुमार रखा गया। एक अभागा पुत्र आया तो चेलनी को दोहला हुआ 'मैं पति की छाती से लगकर रक्तपान करूँ।' विमलसागर महाराज जब माँ के गर्भ में थे, तब उनकी माँ को सोनागिरि की वन्दना के भाव बार-बार होते थे। नियोग देखो, वे नौवें महीने में सोनगिरि आयीं, वहीं बेटे का जन्म भी हो गया। जीव के परिणाम तो देखो। पुण्यात्मा जीव है। एक माँ कह रही है मुझे मिट्टी खाना है, खटाई खाना है, मिर्च खाना है। समझ लो कि कौन अभागा बैठा है। भावों की दशा है ये। निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध पर दृष्टिपात करो। ऐसी गंभीर व्यवस्था है परिणामों के भीतर।

कुलभद्र स्वामी कह रहे हैं कि जिसने तुम्हारे शरीर पर उपकार कर दिया हो, एक अक्षर, एक पद, एक वाक्य को भी किसी ने तुम्हें सिखा दिया हो, उसके नाम को भूल मत जाना। जिसने जो सिखाया है, निह्नवाचार का पालन करना। अनिह्नवाचार में कभी लीन मत हो जाना। **एक अक्षर सिखानेवाला तुम्हारा गुरु है। जीवन में कभी उपकारी के उपकार को मत भूलना।** जिसने आपको शिक्षा दी हो, जिसने आपको दीक्षा दी हो, जिसने आपको कल्याण मार्ग दिखाया हो, जिसने आपको कल्याण मार्ग पर लगाया हो, उसको भूल मत जाना। सबके दिन एक-से नहीं होते। जीवन में इतना ध्यान रखना, उपकारी के उपकार को बटलोयी की पेंदी के समान स्वीकार करना, ढक्कन के समान मत स्वीकारना। चूल्हे पर बटलोयी रखी होती है। सबसे पहले तपन पेंदी सहती है, पेंदी कभी छोड़कर नहीं जाती। मेरे मित्र! पेंदी-जैसा तुम्हें मित्र मिल जाये, तो उसे कभी मत छोड़ना। सिर पर ढक्कन बैठता है। जब बटलोई ठण्डी और भरी रहती है, तब ढक्कन सिर पर बैठा रहता है। जब दूध में उबाल आता है तो बटलोई की पेंदी ही सहन करती है, परन्तु ढक्कन भाग जाता है। कुछ ऐसे लोग रहते हैं कि

जब तक सुख के दिन होते हैं तब तक तुम्हारे साथ रहते हैं, उस दिन मालूम चलता है जब दु:ख की घड़ियाँ आती हैं, वह पेंदी बनकर रहता है कि ढक्कन बनकर भागता है।

सुख के दिनों में तो सब कोई अपने साथ रह लेते हैं। **जो सम्पत्ति बाँटने को खड़े हो जायें और विपत्ति बाँटने के लिये भागने लग जायें, वे सपूत नहीं, कपूत हैं।** भैया! ऐसा भी होता है कि जब किसी बेटी की शादी होकर ससुराल आयी थी, तब अरबपति खरबपति परिवार था तो उसको पति बहुत सुन्दर लगता था। समय कहता है कि मैं अभी अपनी गति पर हूँ, मेरी गति कभी बन्द नहीं होती। चक्र चलायमान है। जो क्रतान्त चक्र तो तोड़ देता है, कर्मचक्र तो तोड़ देता है, उसके सामने धर्म-चक्र चलता है। जिसका पुण्यचक्र प्रबल चलता है, उसके हाथ में चक्ररत्न होता है। जो पुण्य-पाप को छोड़ कर चल देते हैं, उनके आगे-आगे धर्मचक्र चलता है। परन्तु यह सब तभी संभव है, जब हमारे पाप का चक्र टूट जाये। समंतभद्र स्वामी जब स्तुति करने बैठते हैं, कैसे गूढ़ विषय रख देते हैं। बहुत सारे विषय ऐसे होते हैं, ये मत सोचा करो कि लोगों को समझ में नहीं आयेंगे। इतना तो समझ में आयेगा कि ये वे तीर्थंकर हैं जिनकी स्तुति समन्तभद्र स्वामी ने की है।

जब घर में आयी, तब घर बड़ा सम्पन्न था। पत्नि से जाकर कह देना कि मेरा पतन तो शुरू हो चुका है। परन्तु धर्मपत्नि से अभी मत कहना। उस दिन कहना जिस दिन घर में दाना न हो। वनवास सीता को नहीं हुआ था, वनवास राम को हुआ था। सीता तो अपनी माँ के पास भी रह सकती थी, अपने पिता के पास रह सकती थी, ससुर के यहाँ भी रह सकती थी। वनवास श्रीराम को था। किसको मालूम था कि एक राजकुमारी को जंगलों में भटकना पड़ेगा? लेकिन कर्म कहता है, दैव कहता है कि जो किसी को मालूम न हो वह होकर दिखा दे, वही तो दैव है।

अबुद्धिपूर्वक जो इष्ट-अनिष्ट होता है, उसका नाम है दैव, कोई नहीं जानता। सोचने से जो हो जाय, वह तुम्हारे पुरुषार्थ के खाते में चला जायेगा। कहीं सोचा ही नहीं था, वह भी हो जाये, वह तुम्हारे भाग्य के खाते में चला जायेगा। जो होना सहज हो जाय, अबुद्धिपूर्वक, वह तुम्हारा पूर्व का पुरुषार्थ है। वह आज का तुम्हारा भाग्य है। आँचल का दूध खरीद कर नहीं लाया है। जब तू आया था, तब पहले से ही तेरी व्यवस्था

बन गई थी अथवा कोई नारी सन्तान को जन्म दिये बिना आँचल में दूध भर कर दिखा दे?

आप इस बात पर परेशान क्यों हो कि देश में जनता बढ़ जायेगी तो खाने को नहीं मिलेगा? इस भ्रम को निकाल दो। जिनके घर में सबकुछ भरा होता है, और पुण्य खाली होता है, उनको मूँग की दाल का पानी पीना पड़ता है और उबली लौकी। रोटी की ऊपर की पपड़ी मात्र चलेगी, और-कुछ नहीं चाहिये। पता चला कि वह देश का बहुत बड़ा नेता है, अरबपति-खरबपति है। अब हजम कहाँ से हो? सब तो हजम कर गये। जो पहले पूरा पुण्य हजम कर जाते हैं, उनको सूखी रोटी भी हजम नहीं होती है। क्या करूँ, बिना रबड़ी खाये नींद नहीं आती। वस्तुस्वरूप समझो। एकाएक कैसे हो जाता है? चार दिन पहले जिनके घर में चन्द्रमा चमकता था, आज दीपक भी नहीं जल रहा है। बात क्या हो गई? कुछ नहीं, मेरे मित्र! सुबह अच्छी दूध रबड़ी मलाई रसगुल्ले गरिष्ठ गरिष्ठ खा लो, शाम को देख लेना, क्या होता है? जब नोकर्म प्रत्यक्ष में दिख रहा है, तो कर्म कहता है कि जब नोकर्म प्रभावी है तो कर्म भी प्रभावी है। बिना नोकर्म के कर्म कभी आता भी नहीं है। आप जो-जो भोजन कर रहे हो, वह सब नोकर्म कहलाता है। नोकर्म को बुलाता कौन है? भावकर्म। भावकर्म और नो-कर्म के मिश्र होते ही द्रव्यकर्म आ जाता है।

कर्म कर्महिताबन्धि, जीवो जीवहितस्पृहः।
स्वस्वप्रभावभूयस्त्वे, स्वार्थं को वा न वाञ्छति॥31इष्टो.॥

कर्म कर्म का हित चाहता है, जीव जीव का हित चाहता है। सारे जगत् में ऐसा कौन है जो अपना स्वार्थ न चाहता हो? कर्म भी कहता है कि तुम तो अच्छे मन से पाप करो, हम अच्छे से तुमको बंध जायेंगे और पुण्यकर्म कहता है कि आप अच्छे भाव करो, हम अच्छे शुभरूप में बंध जायेंगे। नष्ट होते भी दिखता है, प्रकट होते भी दिखता है।

कंकड़ों-पत्थरों के बीच में जानकी श्रीराम के साथ चली गई। ऐसे संकट की बेला में भी, राजकुमारीपने को तिलाञ्जलि देकरके, सम्राट् की पुत्रबधू का भाव न करके, पति के चरणों में रहने का निश्चय कर लिया हो, इसका नाम धर्मपत्नि है। **जब संकट के दिन आयें, तो मंत्री-जैसी सलाह दे, उसका नाम है धर्मपत्नि।** जो सुख के दिनों मात्र में मित्र रहे, उसका नाम है मात्र पत्नि। सुख के दिनों में स्वार्थी बनकर रहे, वह

तो मात्र पत्नि, और संकट के दिनों में मंत्री-जैसी मंत्रणा करे कि नहीं स्वामी! आप घबराओ नहीं, मैं साथ हूँ।

जो धर्म के पास लेकर आये, उसका नाम है धर्मपत्नि। जो छोड़-छोड़कर भग जाये, उसका नाम क्या होगा ? जितनी ये वासनाओं के प्रेम में शादियाँ हो रही हैं, वे सब बाद में रोयेंगे क्योंकि वासना की उम्र बहुत ज्यादा नहीं है। जो विजातीय विवाह आदि करके आते हैं वासना के राग में, वे ज्यादा नहीं चल पायेंगे। जो धर्म और जाति से बंध कर आयेंगे, जिनको धर्म और जाति का राग होता है, वे अंतिम श्वास तक एक दूसरे का सहयोग करते हैं। जो वासना से भर कर आते हैं, 'उनको-तुम चले जाओ ना, तुम कौन मेरी जाति के हो।' हो गया धर्म। छोड़कर भाग जायेगी। जीवन भर युद्ध होगा। एक कहेगा मैं जिनालय जाऊँगा, दूसरा कहेगा मैं अमुख आलय जाऊँगा। अब बताओ तुम्हारे बेटे का क्या होगा? अब जैसे चौबीसी बन रही है, कहीं तेरे भी भाव हुये कि मैं भी एक भगवान् विराजमान कर दूँ, तो पंच कहेंगे भैया फिर इनका बेटा अभिषेक करने भी आयेगा। उस दिन तुमको खटकेगा कि एक क्षणिक राग के वश मैंने क्या कर डाला? वही कामवाण है

जिसको करते समय मुस्कराहट आये और दूसरे को सुनाते समय मुस्कराहट आये, स्वप्न में भी आनन्द ले, खाते समय भी आनन्द ले, पीते समय भी आनन्द ले, दरिद्री हो जाय तब भी आनन्द ले। सम्पत्ति तो जाना ही है, चलो भैया उसके पहले ये काम कर लिया, एक मंदिर बनना लिया। आह्लाद चल रहा है। कहीं धन नष्ट हो गया तो? क्योंकि नष्ट होने वाला नष्ट होता ही है। उसके बाद सोचता है कि ऐसा मुझे मालूम होता कि जाने वाली है ही तो और-कुछ कर लेता। समझ में आ रहा है क्या? समझ में आने वाले कुछ दूसरे होते हैं। जिनको समझ में आ जाता है, वे मेरे बगल में आ जाते हैं। जिनको मात्र समझ में आता है वे मुस्कराते रहते हैं।

पानी बरसे और मिट्टी गीली न हो, ऐसा होता नहीं है। जिनवाणी बरसे और हृदय गीले न हों, ऐसा होता नहीं है। एक ज्ञानी बोला-'महाराज जी ! एक विकल्प था, लेकिन अब विचार कर ही लिया है कि जो भाग्य में होगा, नियत है। अब मैंने पिता जी से कह दिया है कि तुमको जिनको सम्पत्ति देना हो सो दे देना, मैंने तो लिख कर दे दिया।' देखो जीव के परिणाम, कब कौन बदल जाय। उसी क्षण से आनन्द आया कि

नहीं आया। इसलिये यह तो मानना पड़ेगा कि नगरों में श्रमणों का प्रवेश करवाना, उनके उपदेश करवाना, पता नहीं वह कितना भाग्यवान् जीव होगा। एक भगीरथ गंगा नहाने से सारे विश्व में उसका नाम हो जाता है कि भागीरथ गंगा नहाये। उस गंगा में तो जड़ पानी था, परन्तु आपको यतियों की गंगा को प्रवाहित करना है। यह ध्रुव सत्य है कि पता नहीं कितने-कितने जीवों के परिणाम बदलते हैं। हृदय की धड़कन जो तेज होती थी, वह जिनवाणी सुनते-सुनते धीमी हो जाती है। मानसिक रोगियों को न तो नींद की गोलियाँ खाने की आवश्यकता है न मानसिक तनाव की गोलियाँ खाने की आवश्यकता है। डॉक्टर मानसिक रोगियों को अधिकांशतः नींद की गोलियाँ खिलाते हैं। बेहोश कर दो, फिर अपने आप पूरा बेहोश हो जायेगा। नींद की गोलियाँ खाते-खाते कुछ दिन में ऐसी गर्मी बढ़ेगी जैसे अंग्रेजों ने चाय पिलाई पैसे दे-दे के। पहले पीना सीख लो, फिर अपने आप पैसे देकर पिओगे। वही हालत है, पहले गोली बेहोश होने के लिये खिलाई जाती है, फिर आदमी अपने आप बेहोश हो जाता है, फिर खाता है कि होश में कैसे आ जाऊँ?

इसलिये जिन जीवों की निद्रा भङ्ग हो रही हो, जिन जीवों को मानसिक तनाव हो, उनको सारी दवाइयाँ फेंक देना चाहिये, मात्र एक दवाई रख लेना चाहिये।

'जिण-वयणं मोस-मिणं।'

जो जिनेन्द्र भगवान् के वचन हैं, वह परम औषधि है। मात्र उसी औषधि को लेना चाहिये, बाकी सभी दवाइयाँ फेंक देना चाहिये। जिस औषधि से जन्म-मरण का क्षय होता है और विषय-विकारों का भेदन हो जाता है, ऐसी औषधि का नाम है जिनेन्द्र-वचन।

जिनको नींद न आ रही हो, वे परम सौभाग्यशाली जीव हैं। कम-से-कम ग्रन्थों का स्वाध्याय करोगे और स्वाध्याय करोगे तो अपने आप नींद आना प्रारम्भ हो जायेगी। डॉक्टर साहब! कोई भी रोगी आपके पास आये, उसको नींद की गोली खाने की सलाह मत देना। नींद नहीं आ रही है तो जिनवाणी पढ़ो, तुम्हारी मानसिकता ठीक होगी तो नींद आना शुरू हो जायेगी। **वे जीव धन्य हैं जो विषमता के आने पर भी कृतज्ञता को भूलते नहीं हैं। जो कृतज्ञता को खो बैठे होते हैं, वे किसी के विश्वास के पात्र होते नहीं हैं।** उनको ऐसे ही पछताना पड़ता है। आम्रवन में एक पका आम अलग से

दिख रहा था। एक बागवान् ने आम चुना और 'प्रथम फसल आई है इस मौसम की,' ऐसा विचार करके सोचता है कि यह पहला आम सम्राट् को भेंट करूँगा तो मुझे इनाम मिलेगी। जैसे ही राजसभा में प्रवेश किया, राजा प्रसन्न हो गया और उस बागवान् को बहुत अच्छा इनाम दिया। सहज है कि जब घर में कोई नयी वस्तु आती है तो बच्चों के प्रति भाव आता ही है। एक ही फल था, एक ही बेटा था। उसने वह फल राजकुमार को दे दिया। जैसे-ही राजकुमार ने फल मुख पर रखा, वह मूर्छा खाकर गिर गया। एक तरफ तो वैद्यों को बुलाने का आदेश कर दिया कि राजकुमार मूर्छित है शीघ्र बुलाइये राजवैद्यों को, दूसरी ओर बिना विचारे आदेश कर दिया कि उद्यान में जितने आम्रवृक्ष हैं उन सबको समाप्त कर दिया जाय। हरे-भरे उद्यान को धराशायी कर दिया। सारे वृक्ष भूमिगत हो गये, निकलते-निकलते एक वृक्ष रह गया, उसका नम्बर नहीं आ पाया था। वैद्यों ने देखा कि इसको तो जहर चढ़ रहा है। आयुर्वेद में आम्रकल्प नाम की एक औषधि होती है। आम्रकल्प का तात्पर्य होता है कि रोगी को कुछ भी खाने को नहीं देना, मात्र आम-ही-आम देना। अम्ल और मधुर युगपद दो तत्त्व आम के अन्दर हैं। किसी को कड़वी लौकी खाने में आ जाये तो उस व्यक्ति को दवाइयाँ मत खिलाना, घी पिला दो और मीठा मावा का पेढ़ा खिला दो, उसका जहर शान्त हो जायेगा। अम्ल पेट को साफ करेगा, मधुर पित्त को शीतल/शान्त कर देता है। वैद्यों ने कहा कि राजकुमार को आम्रकल्प कराया जाय। राजा के नेत्र और-रक्त हो गये, क्या वैद्यों को भी व्यन्तर लगते हैं? आम के खाने से ही तो बेचारा मूर्छित हुआ है और वैद्य लोग कह रहे हैं कि उसे आम्र खिलाओ? राजन् ! राजकुमार को बचाना है तो जैसा कह रहे हैं वैसा काम करो। वैद्य आप नहीं हो, मैं हूँ। बोले-वनपाल! वृक्ष तो आपने सब निकलवा दिये। कोई वृक्ष नहीं बचा क्या? हाँ, एक वृक्ष बचा है। उसको रोक दो। लेकिन राजा के मन में एक क्लेश है, पूछता है, वैद्य जी ! आम खाकर ही तो बीमार हुआ है? राजन् ! आम से बीमार नहीं हुआ है, कितनी बार हम आपको बता चुके हैं।

यदि बेटा आपको गाली देने लग जाय, मित्र ! मेरी एक बात मान लेना, चाहे बेटा हो, चाहे नाती हो, किञ्चित् भी कहीं लम्बे स्वर में बात करे, आप उसको उत्तर मत देना और पड़ौसी से बोलने मत जाना, क्योंकि बेटा तो सुधरके पैर पड़ लेगा लेकिन

जो पड़ौसी तुम्हारे मुख से सुन लेगा, वह कभी नहीं सुधरेगा। वह यही कहेगा कि मुझे मालूम है, तुम्हारी कितनी औकात है, बेटे की गाली सुन ली है। गहरी बात समझना। राजा बार-बार कहता है कि आम्र के वृक्ष से बेटा मूर्छित हुआ है, वैद्य जी कहते हैं कि आम्र के खाने से बीमार नहीं हुआ। बेटा गाली दे तो इतना तो सोच लेना कि नहीं, बीज तो मेरा है, वह गाली दे कैसे सकता है? मेरे से उत्पन्न हुआ है, संस्कार मेरे हैं, गाली दे कैसे सकता है?

राजन् ! ये पका आम खिलाने से मूर्छित नहीं हुआ। तो कैसे हो गया? स्वामी! बेटे को आम्र का असर नहीं है, बेटे को जहर का असर है। इसको आम खिला दीजिये, इसको दस्त हो जायेंगे। ऊपर से इतना पानी पिलाना कि वमन होने लग जाये, तो जहर निकल जायेगा, शरीर शुद्ध हो जायेगा। क्रिया पूरी हो गई, राजकुमार स्वस्थ हो गया, लेकिन अभी शंका स्वस्थ नहीं हुई थी। राजा पुनः कहता है—वैद्य जी! मुझे समझ में नहीं आ रहा है, आम खाने से ही तो बेटा बीमार हुआ है? राजन् ! आपके पास तो विराट् सेना है, आप अपनी सेना को आदेश करो, उद्यान के चारों ओर खोज करो कि कोई विषाक्त द्रव्य है क्या? खोज की गई, आम्रवन के थोड़ी दूर पर एक चील कालिया नाग को लिये बैठा हुआ है। जब उस चील ने साँप को उठाया और आम्र उद्यान से गुजर रहा था, तब नाग के जहर की बूंद आम्रफल पर पड़ गई और जहर पड़ते ही आम्र असमय में पीला पड़ गया। राजन्! यह आम से बीमार नहीं हुआ है, ये जहर से बीमार हुआ है। जैसे जहर के पड़ने से आम पीला हो गया, ऐसे ही किसी की संतान गाली देने लग जाये, तो समझ लेना इसमें कुसंगति के जहर की बूँद पड़ गयी है अन्यथा सन्तान तुम्हें गाली नहीं दे सकती है। उस बूँद को हटाने का प्रयास करो, बेटे को गाली मत दे देना। जब इतना निर्णय हो गया, तब राजा कहता है कि हाय! मैंने यह क्या कर दिया ? लोक में कहावत है कि मनुष्य का बेटा और आम का वृक्ष बराबर सेवा चाहता है। दोनों को बहुत सँभालकर रखना पड़ता है। मैंने इन हरे-भरे वृक्षों को निकाल कर फिकवा दिया, हाय! अब क्या होगा? बिना विचारे कभी ऐसे झगड़े लेकर मत बैठ जाना कि आवेश में आकर उपकारी के उपकार को मत भूल जाना। क्या राजा ने अच्छा किया ? नहीं। जिन आम के वृक्षों ने उपकार किया था, उन्हीं आम्रवृक्षों को निकलवा कर फेंक दिया।

भैया! इस बात का ध्यान रखना, विश्व में ऐसे भी लोग पड़े हैं जिन्होंने उपकारी के उपकार को कैसे संजोकर रखा?

एक और सम्राट् था, जो भूखा-प्यासा जंगल में भटक गया था, कंठ की आवाज सूख गयी थी, बोल नहीं पा रहा था। एक गरीब ने झोपड़ी से निकलकर एक ग्लास पानी उसको पिलाया। राजा अपने को स्वस्थ महसूस करता है। अब तो मैं रात्रि तक पहुँच जाऊँगा। उस राजा ने वहाँ से आकरके उस गरीब के लिये एक नगर बना दिया। जिसने मेरे प्राणों की रक्षा की है, उसको स्वयं के राज्य की कोठी दिला दी। मौसम अपना मौसम न छोड़े, मनुष्य के खोटे भाव कब उभर जायें, कोई विश्वास नहीं। जगत् का विश्वास करने से पहले अपने मन का विश्वास कर लेते तो बहुत अच्छा होता। जगत् को विश्वासी बनाने की अपेक्षा स्वयं पर इतना भरोसा हो जाये कि जो मैं आज हूँ, ऐसा जीवनभर रहूँगा, मैं उस व्यक्ति को बहुत-बहुत आशीर्वाद देता हूँ।

वे ही साधुपुरुष हैं जिनको विश्वास है। जिनको विश्वास है कि आज मैं जैसा हूँ वैसा जीवनभर नहीं रहूँगा, वे ही तो साधु बन पायेंगे। किसी के मोह में आकरके धर्म मत छोड़ देना। यदि तुझे स्वयं पर विश्वास होगा, तो सारा विश्व तेरे ऊपर विश्वास करेगा। **जो निज पर अनुशासन कर लेता है, उसका जगत् में अनुशासन चलता है।** जो निज पर ही अनुशासन नहीं कर पा रहा है, वह किस पर अनुशासन करेगा? महावीर इसलिए महान् नहीं हैं कि वे सिद्धार्थ के बेटा थे। राम इसलिए महान् नहीं हैं कि वे दशरथ के बेटा थे। वे इसलिए महान् नहीं थे कि इन्होंने राज्य किया। इसलिए भी वे महान् नहीं थे कि वे भगवान् थे। रागी ही तो जगत् के रागियों पर राज्य करते हैं और जो जगत् पर राज्य करते हैं उनको तो नरक का फल मिलता है। राज्य में चक्रवर्ती मरण करेगा तो कहाँ जायेगा? नरक। चक्रवर्ती दीक्षा लेता है तो उसकी गति स्वर्ग और मोक्ष। यदि राज्य में ही मरण करता है तो नियम से नरक जाता है। जो जगत् पर अनुशासन करता है, उसके लिये पुरुषार्थ नरक तक भेजता है। जो आत्मा पर अनुशासन करता है, उसका पुरुषार्थ मोक्ष भेजता है। आत्मानुशासन। निज पर विश्वास करना सीखो तो जगत् का विश्वासपात्र होयेगा। जगत् का विश्वासपात्र बनने के लिये माया कषाय भी काम कर सकती है, लेकिन आत्मा में विश्वास करने के लिये कोई कषाय काम नहीं करती।

आज आप जैसे हो, ऐसे जीवनपर्यन्त रह सकते हो तो बने-बनाये भगवान् को तो मंदिर में पूज लेना, लेकिन जिसको यह विश्वास है कि मैं आज जैसा हूँ वैसा जीवनपर्यन्त रहूँगा उस बनने वाले भगवान् की पूजा स्वयं कर लेना।

सम्राट् जब घर पहुँचता है तो उस व्यक्ति को उसने भवन दे दिया, इतनी आत्मीयता दी कि वह राजकुमार तक को वहाँ खेलने भेज देता था। परन्तु क्या कर सकते हैं जीव की परिणति को, मनुष्य के कषायोदय को। अलंकार से अलंकृत वस्त्र-आभूषणों से सुसज्जित जब कुमार उसके भवन में खेलने पहुँचा, उसके भाव बदल गये। उस अभागे ने राजकुमार की हत्या कर दी। राजकुमार लापता है, खोज-बीन करो। क्षणमात्र में खोज हो गई। महाराज! जिस व्यक्ति को आपने कोठी प्रदान की थी, उसने राजकुमार का घात कर दिया। भविष्य का राज्य अब किसके हाथ में ? राजकुमार तो मर चुका है। मंत्री प्रधानमंत्री आदि-आदि की भरी सभा में उसको खड़ा कराया गया। राजा उसको आँख उठाकर देखता है और अपनी आँखें शीघ्र ही भूमिगत कर लेता है। राजा कहता है, मित्र ! सेनापति, मंत्रिओ ! इस बात की पीड़ा जान सकता हूँ कि मेरे इकलौते बेटे की आज हत्या हुई है। इस विशाल साम्राज्य का भविष्य का सम्राट् आज नष्ट हो चुका है, इस पीड़ा को मैं बहुत अच्छे से समझ रहा हूँ। लेकिन वह दिन भी मुझे याद है जब जंगल में मेरा कण्ठ सूख रहा था तब इसने मुझे एक ग्लास पानी दिया था। मैं बेटे की पीड़ा को झेल रहा हूँ, लेकिन उपकारी के उपकार को नहीं भूल सकता हूँ। मैं इसको फाँसी नहीं दे सकता हूँ। ये वह भूमि है जहाँ किसी के उपकार को भुलाया नहीं जाता है। आजकल थोड़े में ही लोग शत्रु बन जाते हैं, क्योंकि गहरे में प्रवेश ही नहीं किया। तुरन्त भूल जाते हैं कि कौन था किसका था ? फटी चड्डी फटी बनियान कभी मत भूलना, कितने ही वैभव में रहना, लेकिन उन दिनों को याद रखना। **महाजनों की संगति से धर्म के प्रति अनुराग बढ़ता है।** उससे आपके परिणाम विशुद्ध हुये हैं तो श्री-सम्पत्ति सहचरी है। **जहाँ-जहाँ पुण्य जाता है, वहाँ-वहाँ सम्पत्ति अपने आप पहुँच जाती है।** जो सुन रहे हो, उस पर ध्यान दो। यह तो बहिरङ्ग कृतज्ञता की बात हुई, अब अन्तरङ्ग की बात सुनो—

आत्मा ने पूर्व में पुण्य किया, सो आज ऐसे परिवार में धनपतियों के बीच में जन्मा है। सारी सुख-सुविधायें मिल रही हैं, यह किसका उपकार है ? तेरे दादा का , पिता

का या फिर तेरे पूर्व पर्याय के पुण्य परिणामों का? मेरे मित्र ! तेरी आत्मा का ही तेरे ऊपर उपकार है। ऐसी उपकारभूत आत्मा के लिये तू पाप करके नरक में भेज देना चाहता है, तू कैसा कृतघ्न है?

हे जीव ! अपने उन परिणामों का उपकार स्वीकार करो और आज से पाप करना छोड़ दो।

आचार्यभगवन् उस परम समरसी भाव की व्याख्या कर रहे हैं जिसकी प्राप्ति के अभाव में पंचमकाल की प्राप्ति हुई है। यदि ये समरस जीव को पूर्व में प्राप्त हो गया होता, तो ऐसे दग्ध काल के दर्शन करने की स्थिति नहीं होती। जब यह जीव कोटि-कोटि परिणामों की विशुद्धि को प्राप्त करने का पुरुषार्थ करता है, तब एक समय-प्रमाण-काल विशुद्धि हो जाय पंचमकाल में, बहुत है। **द्रव्य का मिलना सहज है, परन्तु द्रव्यदृष्टि का मिलना बहुत कठिन है।** द्रव्य तो अपने पास सहज ही है, द्रव्य तो अपने से भिन्न कभी हुआ ही नहीं है। जो आप हैं, मैं हूँ, जगत् है, वही तो द्रव्य है; परन्तु द्रव्यदृष्टि नहीं है। जो द्रव्य जिस ज्ञान-दर्शन गुण से सारे जगत् के द्रव्यों को निहार रहा है, आश्चर्य है कि वही द्रव्य अपनी ही दृष्टि से अपने को नहीं देख पा रहा है। कुन्दकुन्द जैसे योगियों ने और-कुछ नहीं किया, निज द्रव्य पर तेरी दृष्टि का अभाव हो रहा था तो उस दृष्टि का बोध कराने के लिये चौरासी ग्रन्थ लिखे। इनका आने का उद्देश्य मात्र इतना ही है कि हमारे भगवन्तों निर्ग्रन्थों अरहन्तों ने जिस देशना को परोसा है, उसको मैं कितना सुरक्षित कर सकता हूँ। पर्यायदृष्टि से परिणमनशील होने पर भी, द्रव्य की अनित्यता को निहारते हुये भी, द्रव्य की नित्यता पर भी दृष्टि है। वही द्रव्य स्वभावी है। तीन स्थानों में आपने 'ध्रुव' का प्रयोग किया है। द्रव्य अनित्य है, यहाँ तात्कालिकता की बात कर रहे हैं। द्रव्य ध्रुव है, यह नित्यता की बात कर रहे हैं। तीसरी बात कर रहे हैं कि यदि तू इस अवस्था को निहार लेगा तो तू ध्रुव स्वभाव को प्राप्त कर लेगा। यह नित्य-स्वभाव पर दृष्टि है, सिद्ध-स्वभाव पर दृष्टि है। दृष्टि डाले बिना दृष्टि हटती नहीं और दृष्टि हटाये बिना दृष्टि हटती नहीं। दृष्टि लगाये बिना दृष्टि में दृष्टि प्रवेश करती नहीं। निर्ग्रन्थ पर दृष्टि डालोगे, अरहन्त पर दृष्टि डालोगे तो सग्रन्थों से दृष्टि हटाओगे। सग्रन्थ से दृष्टि हटाओगे, तभी निर्ग्रन्थ पर दृष्टि होगी और निर्ग्रन्थ पर दृष्टि होगी, तभी निज दृष्टि में दृष्टि होगी। जैसे बच्चों

को सँभालते हो, वैसी निज की दृष्टि सँभाल ली होती तो आप मेरे साथ होते। **उन्हीं जीवों को जगत् मनाना पड़ता है जो जगत् में निज को नहीं मना पाते। जो निज को मना चुके हैं, वे जगत् के मान् होते हैं, वे सिद्धभगवान् हैं।**

जिस ग्रन्थ में कहा गया है कि जिनशासन में मात्र दो का ही वर्णन है-मार्ग और मार्ग का फल। मार्ग रत्नत्रय धर्म है और मार्ग का फल निर्वाण है। ये 'नियमसार' का पूरा सार है। नियम नहीं है तो सार कैसा ? नियमपूर्वक ही सार होता है। इसलिये कुन्दकुन्द भगवन्त ने कहा कि यदि समयसार को प्राप्त करना है तो पहले नियमसार में प्रवेश करो। कुन्दकुन्द स्वामी के उन रहस्यों को ही कुलभद्र स्वामी ने सारसमुच्चय ग्रन्थ में भरा है।

ये मेरा शत्रु है, ये मेरा मित्र है, उस जगह मैं नहीं जा पाऊँगा क्योंकि वहाँ मेरा कोई नहीं है। उस नगर में मेरे मित्र हैं। मेरे मित्रो ! जो देहजन्य शत्रु दिख रहे हैं, इनके प्रतिकार की तुमने कितनी व्यवस्थायें करके रखी हैं। देश में चार्वाक अब आँखों से तो नहीं दिख रहे हैं, परन्तु अन्तस् के चार्वाकों की संख्या सर्वाधिक है। यदि निर्ग्रन्थ मुनिराज के सामने बैठे हुये जीव के मन में यह चल रहा है कि ज्ञानी ने मेरे साथ ऐसा किया है, इस व्यक्ति का बदला तो चुका कर ही रहूँगा। हे मुनिराज ! हे श्रावक ! जगत् में परमब्रह्म अहिंसा है, वह तो तेरे पास दृष्टिगोचर हो नहीं रही है, लेकिन चार्वाक दृष्टि अवश्य ही है। द्रव्य का चार्वाक और भाव का चार्वाक। यदि आपके भावों की दशा चल रही है कि इस व्यक्ति ने मेरे साथ ऐसा किया है, मैं इसे छोड़ूँगा नहीं। जितने यहाँ विद्वान् बैठे हैं, उन सबकी अपनी-अपनी विधायें हैं। कोई सिद्धान्तशास्त्री, कोई भाषा-वैज्ञानिक है और एक दर्शनाचार, एक प्रतिष्ठाचार्य। मैं दर्शनाचार्य से बात करना चाहता हूँ।

भारत की भूमि पर जितने जीव विचरण कर रहे हैं, इनके अन्तस् में एक सूत्र प्रवेश कर जाये **'कार्यलिङ्ग हि कारणं,'** तो न कोई शत्रु रह पायेगा न मित्र रह पायेगा। वस्तुव्यवस्था समझ में आ रही है, लेकिन कठिन ये है। जगत् के शास्त्रों को समझना सरल है, लेकिन निज के भावों को समझा पाना बहुत कठिन है। मुझे जो दु:ख हुआ है, वह दैव से हुआ है कि पुरुषार्थ से हुआ है ?

तू उपकारी का उपकार क्यों नहीं मानता ? भैया! आपकी भूत की पर्याय के

परिणामों ने क्या किया? आप भाव, अभाव, भावाभाव इसको माननेवाले हो। जो करनेवाला है, (पर्याय की दृष्टि से कथन करते हैं) वह भोक्ता नहीं है और जो भोगनेवाला है, वह कर्ता नहीं है। महाराज! आप सुगत हो क्या? हाँ, मैं सुगत ही हूँ। पर सोगत गति से शून्य सुगत नहीं हूँ। जिसकी गति सोगत, वह वाला सुगत हूँ। जो शून्यवादी सुगत है, ऐसा सुगत मैं नहीं हूँ। जो कर्ता है, वह भोक्ता नहीं है और जो भोक्ता है, वह कर्ता नहीं है। तो वह आप क्षणिकवादी नहीं हो महाराज? स्यात् । पर यह सत्य है कि जो कर्ता है, वह भोक्ता नहीं है और जो भोक्ता है, वह कर्ता नहीं है। वह द्रव्य और गुण को छोड़कर पर्याय को बोलता है, मैं द्रव्य को छोड़कर पर्याय को बोलता हूँ। मैं पर्याय को लेकरके द्रव्य की सत्ता में बोलता हूँ। इस पर्याय में जो पाप करेगा, उसका फल नरक किस पर्याय को मिलेगा ? नरकपर्याय को मिलेगा, कि मनुष्यपर्याय को मिलेगा ? आनन्द लूटा मनुष्यपर्याय ने, और भोगने को कौन ? नारकी बनेगा। जिसने किया, उसने भोगा नहीं पर्यायदृष्टि से और जिसने भोगा है, उसने किया नहीं है पर्याय दृष्टि से। परन्तु भूल कब करेगा ? जिसने किया है, उसी ने भोगा है और जिसने भोगा है, उसी ने किया है द्रव्यदृष्टि से।

जो पाषाण खदान में होता है, उससे भवन कहाँ बनता है? जिससे भवन बना है, वह आकार खदान में होता कहाँ है ? मिट्टी का लोंदा अभी ईंट नहीं है। ईंट मिट्टी का लौंदा नहीं है आकार-दृष्टि से। परन्तु ईंट बना कौन है ? मिट्टी का लौंदा ही बना है। ऐसे-ही नरक गया कौन है? जो मनुष्य का जीव था, वही तो नरक गया है। जिस जीव ने इस विषय को नहीं समझा, वह चार्वाक दृष्टि में कैसे प्रवेश करेगा कि मेरे लिये कष्ट दिया है? तो मैंने प्रश्न किया था कि दैव ने कर्म किया है, कि पुरुषार्थ ने कर्म किया है? दैव ने सुख दिया है, कि पुरुषार्थ ने सुख दिया है? दैव ने दुःख दिया है, कि पुरुषार्थ ने दुःख दिया है? भैया! तू कृतज्ञ है कि कृतघ्नी है? क्यों महाराज? इसलिये कह रहा हूँ कि पूर्व की पर्याय के निर्मल परिणाम ने तुझे इतना बड़ा विद्वान् बना दिया। उच्च कुल प्रदान कराया है, प्रज्ञा प्रदान की है। यदि तू इस प्रज्ञा का प्रयोग पाप में कर रहा है, तो कितना कृतघ्नी हुआ कि उन परिणामों में तू यह भी नहीं देख सका कि इनने मेरा इतना उपकार किया है, इन उपकारी परिणामों के फल को प्राप्त करके मुझे उपकारभूत और-अच्छे काम करना चाहिये। यदि आप उस पर्याय के परिणामों का फल इस वर्तमान की मनुष्यपर्याय को प्राप्त करके पापों में लिप्त

कर रहे हो, तो आप-जैसा अपकारी, उपकार से विहीन, कृतघ्नी इस लोक में कोई दूसरा होगा नहीं। पर के उपकार को उपकार माननेवाले कोटि-कोटि जीव हैं, निज के उपकार को निज उपकार-भूत माननेवाले बिरले पण्डित लोग हैं। पुरुषार्थ ने आपको मनुष्य बनाया, कि दैव ने आपको मनुष्य बनाया ? पुरुषार्थ ने आपको उच्च कुल दिया, कि दैव ने दिया ? वर्तमान की पर्याय से पूछोगे तो दैव ने दिया है, भूत की पर्याय से पूछोगे तो भूत के पुरुषार्थ ने दिया है, ऐसा समन्तभद्र स्वामी बोल रहे हैं।

अबुद्धिपूर्वापेक्षायामिष्टानिष्टं स्वदैवतः।
बुद्धिपूर्वव्यपेक्षायामिष्टानिष्टं स्वपौरुषात्॥91/आ.मी.॥

भूल जाओ चार्वाक वृत्ति को, अब हम मात्र निज से ही बात कर रहे हैं। आपको परमात्मा ने यहाँ भेजा है क्या?

मित्र! इतना ही समझ में आ जाये तो आप अपनी पत्नि को भी आँख उठाकर नहीं देखोगे। तेरा पुत्र डण्डा मार कर घर से भी भगा देगा, तो तुम यह नहीं कहोगे ओहो ! क्या मैंने तुझे इसलिये जन्म दिया था? तुम यह कहोगे कि तेरा जन्म तो तेरे योग से ही हुआ है। मेरा उदय ये ही था। अहोभाग्य मेरा था कि मेरे जीते-जीते और सँभले-सँभले काल में यह सब हुआ, अन्यथा तुम कोर्ट में पहुँचोगे कि वकील साहब इसको मैंने जन्म दिया है और इसने मुझे डण्डा मार कर भगा दिया। कोर्ट में तो तुम न्याय करके आ जाओगे, लेकिन कर्म के कोर्ट का न्याय वकील साहब नहीं कर पायेंगे। मैं इसलिये कह रहा हूँ कि आप तुरन्त दूसरे पर दोष देना सीख गये हो। जिस दिन अपने कर्मों पर दोष देना सीख लोगे, उस दिन सच्चे जिन बन जाओगे।

ज्ञानियो ! एक वर्ष का अखण्ड उपवास लेकर बैठना इतना कठिन नहीं है जितना पर के द्वारा कृत कष्टों को अपना कर्मकृत कह पाना कठिन है। तुरन्त मुखर हो पड़ोगे कि महाराज! क्या देखता हूँ, सामने तो दिख रहा है, मैंने कुछ भी नहीं किया, फिर भी वह मुझे कष्ट दे रहा है। बस यही चार्वाकदृष्टि है। सामने मैंने कुछ भी नहीं किया लेकिन फिर भी मुझे कष्ट दिया है, यानि तुम प्रत्यक्ष प्रमाण को माननेवाले हो, तुम परोक्ष प्रमाण को नहीं मान रहे हो।

कितना धैर्य चाहिए, कितनी समता चाहिए? द्रव्य की त्रैकालिकता पर दृष्टि होगी तभी तुम समझ पाओगे; क्योंकि जो चाक्षुष है, उसी पर दृष्टि अधिक जाती है। अचाक्षुष को आप श्रद्धा का विषय बनाओ। पर वो भी कितनी-सी है? जीव चाक्षुष को ग्रहण कर रहा है।

ज्ञानी ! तू धर्म के प्रभाव से इस कुल में जन्मा है, कि पाप के प्रभाव से ? धर्म के प्रभाव से। अब कहाँ जाना चाहते हो ? मोक्ष जाना चाहते हो। विचार तो उत्कृष्ट है। अब ध्यान रखना, मोक्ष जाने के लिये मोक्ष करना पड़ता है। 'मुञ्च्' धातु से मोक्ष बनता है। मोक्ष तभी जा पाओगे जब मोक्ष कर लोगे। जब तक राग का मोक्ष नहीं होगा, जब तक द्वेष का मोक्ष नहीं होगा, जब तक स्वयं वस्तु का मोक्ष नहीं होगा, तब तक कर्मों का मोक्ष नहीं हो सकता। मोक्ष करना पड़ता है, कि मोक्ष हो जाता है? यही तो भवितव्यतावादी है ना? उनको ये सीखना पड़ेगा कि तुम मोक्ष तो चाहते हो, परन्तु मोक्ष कर नहीं रहे हो। पहले मोक्ष किया जाता है, फिर मोक्ष हो जाता है। पहले पाप छोड़ना पड़ेंगे, तब मोक्ष जा पाओगे।

अनार्य को अनार्य की भाषा में समझाना पड़ता है, परन्तु विद्वान् को अनार्य की भाषा में नहीं समझाना पड़ता है। आर्य को तो आर्य की भाषा में समझाना पड़ता है। जब दोनों बैठे हों, तो दोनों का प्रयोग कर देना चाहिये।

बड़ी गहरी बात है कि जो देह के शत्रुभूत दिख रहे हैं, उसकी तो बात कर लेते हो, लेकिन जो शत्रुभाव अंतर में स्थित है, उसकी बात नहीं करते हो। आज तक जगत् में कोई किसी का शत्रु बना ही नहीं है। यदि भाव से शत्रु समाप्त हो जाये, तो बाहर का शत्रु स्वयमेव समाप्त हो जाये। परिणामों की जो दशा है, राग-द्वेष है, वह तुम्हारा भाव ही शत्रु है। कितनी व्यवस्था किये बैठे हो। प्रत्येक राष्ट्र के संविधान, विशाल सुरक्षाबल, ये शत्रुओं से रक्षा के लिये हैं। उल्टा लग रहा होगा, परन्तु दो मिनिट में ठीक हो जाओगे। आपके घर के सामने रात्रि में कोई पहरेदार भी रखा है तो शत्रु की रक्षा के लिये ही रखा है। जितने सुरक्षास्थान बना कर रखे हैं, शत्रु की रक्षा के लिये बना कर रखे हैं। अपनी रक्षा के लिये नहीं। लेकिन कहता है कि मैंने अपनी रक्षा के लिए रखे हैं। ये पूरी बातें उल्टी हैं। थोड़ा ठण्डे दिमाक से सोचो, सब सीधी होना शुरू हो जायेंगी। शत्रु की रक्षा के लिये सुरक्षित स्थान बनाकर रखे हैं। तू जितना पैसा कमा-कमा कर घर में रख रहा है ढो-ढो करके, सब शत्रु के लिये।

मेरे मित्र! राग शत्रु है, द्वेष शत्रु है। तू जो भी रक्षा के उपाय खोज रहा है, मात्र राग-द्वेष की रक्षा के लिये खोज रहा है। जिस दिन तेरा शत्रु तुझे शत्रु दिखने लग जायेगा, उस दिन तू सारे विश्व में कपड़े उतारकर नंगा घूमेगा और दिगम्बरत्व को प्राप्त करके फिर 'न मे शत्रुः न मे प्रियः।' न मेरा कोई शत्रु होगा न कोई मेरा प्रिय होगा।

जब कोई ज्ञानी जीव कहे महाराज ! ये मेरा बेटा है। हे जीव ! तू अपने शत्रु को अपना कह रहा है। बेटा, बेटा नहीं है। वह तो अहेतुक है, अजन्मा है। द्रव्य का जन्म कब होगा? द्रव्य का नाश होता है क्या? तो आपका बेटा कैसे हो गया? यदि आप वेदान्त की बात कर ही रहे हो, तो उपनिषद् और द्रव्यानुयोग को देख लिया करो। उस उच्च कोटि की बात क्यों न कर लो ? जिसे तुम पुत्र कह रहे हो, ये सब सम्बन्ध हैं, मिश्रधारा है। जो-जो मिश्र है, वही सम्बन्ध है। जो-जो सम्बन्धी हैं, वे सब मिश्र हैं। स्वभाव नाम की वस्तु होती ही नहीं है, अमिश्र में, किसी का मन मिलता नहीं है। अहेतुक को क्यों नहीं लख पा रहे हो ? चेला चेली का एक-भाव सम्बन्ध स्थापित हो रहा है, वह भी बन्ध-भाव ही है। बन्ध की अवस्था देखना चाहते हो, कि निर्बन्ध की अवस्था देखना चाहते हो ? कौन-सा उपदेश सुनने की भावना लेकर आये हो ? **निर्बन्ध की भावना है तो शत्रु को शत्रु कहना बन्द कर दो, मित्र को मित्र कहना बन्द कर दो। राग-द्वेष रहित परिणाम ही मित्र है और राग-द्वेष सहित परिणाम ही शत्रु है।** खोजना तो पड़ेगा ही, भले ही आप व्यस्त हो। निर्णय तो गृहस्थों को ही लेना पड़ता है, निर्णय तो रागियों को ही लेना पड़ता है। रागी जब तक निर्णय नहीं लेगा, तब तक वैरागी कैसे होगा ? वैरागी निर्णय नहीं लेगा, तो वीतरागी कैसे होगा ?

आज तक यही पट्टी पढ़ाई जाती है कि वैराग्य की बातें तो मुनियों को शोभा देती हैं, गृहस्थों को शोभा नहीं देती हैं। परन्तु सत्यता तो यह है कि वैराग्य मुनियों को नहीं होगा, गृहस्थों को होगा।

गोष्ठी, जहाँ गायें इकट्ठी हो जायें। गर्मियों में सारी गायें चर कर आती हैं और एक वृक्ष के नीचे इकट्ठी हो जाती हैं। तिष्ठ धातु के अनेक अर्थ होते हैं। देखो, मनुष्यों के पास कुछ भी नहीं है, सब पशुओं से पकड़कर लाये हैं। चार गायें इकट्ठी हो गईं, फिर बैठकर जुगाली करती हैं। गो यानि वाणी।

जिनवाणी का सोलहवाँ नाम गो है। गो यानि वाणी। जहाँ वाणी तिष्ठ जाये, वही तो गोष्ठी है। जहाँ दन्ती का दमन हो जाये, इन्द्रियाँ नियन्त्रित हो जायें और जो भीतर भरकर लाये हैं उस जिनवाणी की जुगाली प्रारम्भ हो जाये, उसका नाम है गोष्ठी।

अब बताओ, वैराग्य रागी को होता है, कि वैरागी को ? लोई तो लोई है, रोटी तो रोटी है। लोई से ही तो रोटी बनेगी। इस प्रकार वास्तव में वैराग्य रागियों को ही होता है। तीर्थंकर भगवन्तों के बारे में उल्लेख आता है कि भगवान् को ज्ञान हो गया।

क्या अभी तक ज्ञान नहीं था? भेदज्ञान हो गया। गृहस्थ रागी है, उसी को तो वैराग्य होगा। जो वैराग्य को प्राप्त करेगा, वह मुनि बनेगा। अब उस मुनिपने को सुरक्षित कौन रखेगा? तो पुनः वैराग्य चाहिये। वह जो प्रारम्भ दिन का वैराग्य था, वह अंतिम दिन तक रुका रहा, तो फिर मुनिपना सुरक्षित है, अन्यथा भेष बना रहेगा लेकिन भाव नष्ट हो जायेंगे।

जीव हाथ जोड़ रहा है, चरण स्पर्श कर रहा है, लेकिन अन्तरङ्ग में विनय नहीं है, तो वह विनय किस काम की ? कभी किसी के घर में पर्याय का परिणमन हो जाये तो लोग रोने पहुँचते हैं, परन्तु कभी-कभी ऐसा भी होता है कि आँख में एक भी आँसू नहीं होता, पर जब तक हल्ला नहीं करे तो कोई का कैहे? बड़े-बड़े हाव-भाव प्रकट हो रहे हैं, परन्तु बिना स्नेह के महिलाओं का रोना। जैसे भक्ति से रहित विनय, महिलाओं का स्नेहरहित रोना, वैराग्य के बिना चारित्र शोभाविहीन है।

प्रज्ञा के प्रयोग की सामर्थ्य से जो शत्रुभाव (राग-द्वेष) को अपने वश कर लेता है, वही विजयी होता है। बड़े-बड़े शत्रुओं को तो काँख में दबा लिया, परन्तु जिसे हृदय में बिठाये हो, उसे तुम दूर क्यों नहीं कर रहे हो ? **कोटि-कोटि शरीरों के धड़ को पृथक् करके रक्त बहा देना, भूमि को रंग देना, यह शूरपना नहीं है। अपने भीतर के विकारों को नष्ट कर देना, इसका नाम 'शूर' है।** सः शूरः, सः पण्डितः। कोटि-कोटि ग्रन्थ पढ़कर बैठ गया और निज के भीतर का विकार नष्ट नहीं कर पाया, तो क्या पाण्डित्य है? पण्डा बहुत बड़ा शब्द है। अब क्या करे? जैसे पाखण्डी बदनाम हो गये, वैसे ही पण्डा बदनाम हो गये। वही पण्डित है, वही शूर है, जिसने अपनी प्रज्ञा के बल पर राग-द्वेष को वश कर लिया है।

जो समयसार में लवलीन है, रत्नत्रय धर्म से युक्त मुनि ही समयसार है और उन समयसारभूत मुनि की उपासना करनेवाला श्रावक समयसार-उपासक है। मुनि ही पण्डित है, मुनि ही धनी है। विश्व में सबसे बड़ा धनाड्य चौदहवें गुणस्थानवर्ती मुनि है। ब्रह्माण्ड में महा सम्पत्तिशाली कोई है तो वह चौदहवें गुणस्थानवर्ती अयोगकेवली भगवन्त हैं। जिसको अट्ठारह हजार शील की सम्पत्ति मिली है, इनसे बड़ा सम्पत्तिशाली कौन हो सकता है? उनके आगे सब भिखारी हैं। जितने विकारी हैं, वे सब भिखारी हैं। आप कहोगे-महाराज! हम करोड़पति-अरबपति सेठ बैठे हैं, आप भिखारी कह रहे हो?

करें क्या? भिक्षु शब्द भी छीन लिया। ठीक ही तो है, अब तुम भिखारी ही तो बचे, भिक्षु भी नहीं हो। 'मूलाचार' में दिगम्बर मुनि को भिक्षु कहा है। भिक्षुक ही भगवान् हैं।

ध्रुव सत्य है, तीर्थंकर देव के समवसरण में जब जीव प्रवेश कर जाता है, तब उसको न भूख लगती है न प्यास लगती है। जब यहाँ प्रवचन में ही जीव सबकुछ भूल जाता है, लेकिन होना चाहिये प्रवचन।

घास का परिणमन ही दूध है; लेकिन योग्यता गाय में ही है, बैल में नहीं है।

''आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्''

आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।



कलह और विवाद नहीं करना

श्लोक : विवादो हि मनुष्याणां, धर्म - कायार्थनाशकृत्।
वैरान् बन्धुजनो नापि, नित्यं वाहित कर्मणाम्॥291॥

अन्वयार्थ : (मनुष्याणां विवादो हि) जो मानवों में परस्पर विवाद या झगड़ा करता है वह **(धर्मकामार्थ नाशकृत्)** धर्म, अर्थ, काम तीनों पुरुषार्थों का नाश करता है, क्योंकि **(वाहित कर्मणां)** कर्मों के फल को भोगने वाले मानवों के **(वैरान् बन्धुजनः नापि नित्यं)** वैरी एवं बंधुजन कोई नित्य नहीं हैं।

भावार्थ : हे भव्यात्मन् ! जगत् में झगड़ा करने से बहुत हानि उठानी पड़ती है, कलह के कारण शत्रु अनेक हो जाते हैं। जगत् में न बन्धुजन नित्य हैं, न शत्रु नित्य है। अतैव ज्ञानी को उचित है कि शांत जीवन बिताये, राग-द्वेष न करे, विवाद न करे, तब उभय लोक में सुख होगा।

॥सद्-देशना॥

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज सारसमुच्चय जी में आत्मस्वरूप की प्राप्ति के उपाय की व्याख्या करते हुये समझा रहे हैं। **हे जीव ! निज की प्रज्ञा ही तेरी मित्र है, जिन की प्रज्ञा ही तेरी शत्रु है। प्रज्ञा का उपयोग सम्यक् है तो मित्रभूत है और प्रज्ञा का उपयोग असम्यक् है तो शत्रुभूत है।** छः द्रव्य तटस्थ हैं आपके बन्ध के लिये और छः द्रव्य तटस्थ हैं आपके मोक्ष के लिये। एक आत्मद्रव्य ही बन्ध का कारण है और आत्मद्रव्य ही मोक्ष का कारण है। कालद्रव्य आपके परिणमन का बोध तो करा रहा है, लेकिन काल किसी का परिणमन नहीं करा रहा है। कालद्रव्य आपके परिणमन का बोधक तो है, परन्तु आपके परिणमन का कर्ता नहीं है। हम कितने कषाय से भरे होते हैं कि अपनी करतूती को तो दोष नहीं दे पाते हैं। कभी कर्म को दोष दे देते हैं, परन्तु यह नहीं सोच रहे हो कि जो जगत् को दोष दे रहा है, वही दोषी है। मेरा समय कैसा है ? आज का दिन पड़ौसी के लिये मंगलभूत है और मेरे लिये अमंगलभूत है। नहीं मित्र ! दिन न दूसरे के लिये मंगल है न आपके लिये अमंगल है। जो आपने बंध करके रखा था, उसका उदय जिसके लिये शुभभूत आ रहा है, उसके लिये मंगलभूत तुझे दिख रहा है और जिसने अशुभ का बन्ध करके रखा था, उसका उदय आ रहा

है, सो अमंगलभूत दिख रहा है। क्यों कारण पर कलह कर रहे हो? जब-जब इन्द्रियों से जाना है, जब-जब इंद्रियों से देखा है, इन्द्रियों का कार्य ही है पर को देखना। पाँचों इन्द्रियाँ बाहर-बाहर का ही वेदन करती हैं, भीतर का वेदन करती ही नहीं हैं। बहिः तत्त्व में लीनता है इन्द्रियों की। इन्द्रियों ने अंतर का स्पर्श किया ही नहीं है। आँखें किसको देख रही हैं? जो पाँच वर्ण हैं, वे तेरे से भिन्न हैं।उनको ही तो देख रही हैं। कान किसे सुन रहे हैं? पर को ही तो सुन रहे हैं। रसना किसको चख रही है? पर को ही तो चख रही है। स्पर्श किसका स्पर्शन कर रहा है? पर का ही कर रहा है। घ्राण किसे सूँघ रही है? पर को ही तो सूँघ रही है। पाँचों इन्द्रियाँ अपना वेदन कहाँ कर रही हैं। जीव आनन्द के साथ मुस्करा रहा है 'आ हा! मैंने इन्द्रियसुख समझ लिया है।' इन्द्रियों से तूने पर को ही समझा है। द्रव्य-इन्द्रिय से कभी निज का वेदन हो नहीं सकता है। यदि निज का वेदन करना है तो उपयोग को उपयोग में लगाना होगा। यही ध्यान है, यही सामायिक है। निमित्तों से घबराओ मत, निमित्तों का नाश मत करो, उनको उपयोग में लगा दो। जिस दिन आपने बर्फ को निर्मित किया है, बर्फ कोई भिन्न वस्तु नहीं है, पानी का ही परिणमन है। जो शीतल हुआ है, वह कोई दूसरा द्रव्य नहीं हुआ है, पानी का ही परिणमन है। जब एक उज्जवल जड़ पानी शीतलता को पूर्ण प्राप्त हो सकता है, बर्फ की फैक्टरी में जाकर निहारना, वहाँ क्या हो रहा है ? मात्र पानी ही पानी घूम रहा है। जो द्रव्य परभूत है, वहीं उपयोग ले जा रहा है, वह बहिःभाव है। जो निज उपयोग को निज द्रव्य में ही स्थापित कर रहा है और निज द्रव्यों के विकल्प से भी भिन्न हो करके मात्र उपयोग को उपयोग में ले जा रहा है, यह योगी की अन्तरधारा है। द्रव्य पर दृष्टि नहीं है, वह तो उपयोग को उपयोग में ही स्थिर किये है। यह भी संभव है कि उपयोग को उपयोग में ही स्थापित किये है। जब उपयोग को उपयोग में ही स्थापित किये है, जो जान रहा है प्रमाण से, जो देख रहा है नय से, वह भले ही दुनियाँ में भेद-अभेद दृष्टि हो परन्तु जो उपयोग को उपयोग में लगाये है, उसे नय-प्रमाण का कोई विकल्प नहीं है। चिद्चिद् एव। जो उपयोग को उपयोग में ही लगाये हुये है, ऐसा वीतरागी तपोधन कालद्रव्य से घिरा है। जैसा मैं हूँ, वैसे आप हो। प्रत्येक द्रव्य अपने पारिणामिक भाव से युक्त है। कोई भी द्रव्य पर-पारिणामिक भाव से युक्त होता नहीं। प्रत्येक द्रव्य निज के पारिणामिक भाव का परित्याग नहीं करता। प्रत्येक द्रव्य

अपने पारिणामिक भाव में ही परिणमन करता है। लगता अवश्य है कि भोगता मैं हूँ, परन्तु हे मुमुक्षु ! तू अपने ज्ञान का ही भोक्ता है। तू विषयों का भोक्ता नहीं है, विषयों का भी तू ज्ञाता ही है, पर विषयों का ज्ञाता भी व्यवहार से ही है, पर तू तो ज्ञान का ही ज्ञाता है। ज्ञान को जब परमसमरसी भाव और परमपारिणामिक भाव में प्रवेश करते हैं तो हमारे विद्वानों को भी डर लगने लगता है कि मेरे व्यवहार का क्या होगा? उनके मन में दे रही फिर बन्ध क्यों हो? विषयों का भी मैं ज्ञाता हूँ। भोक्ता किसका हूँ? तू अपने आप की अशुभ उपयोग की धारा का भोक्ता है। उस अशुभ उपयोग की धारा के भोक्तत्व भाव से तू अशुभ बन्ध का कर्ता है। व्यवहार से तू ही जगत् को भोग रहा है, लेकिन एक क्षण को उस परमार्थ की बात को समझ कि मैं क्या कह रहा हूँ। ये लेखनी जो दिख रही है, जिसे तुम देख रहे हो, इसे ही देख सकते हो, पर देखनहारे को नहीं देख सकते हो। इस शरीर को तुम देख रहे हो, यह देखनहारा नहीं है। जो देखनहारा है, उसे तुमने आज तक देखा ही नहीं है।

विश्व में चराचर द्रव्यों को प्रत्यक्षभूत कोई जाननहारा है, उसका नाम केवली भगवन्त है और केवली भगवन्त ने जो कहा है, वही परोक्ष ज्ञानियों ने अपने मस्तिष्क से सोच करके निबन्धन किया है। मैं ज्ञाता हूँ, मैं उपयोग का ही उपयोक्ता हूँ। एक क्षण को उस झलक के पास भी तो पहुँचो। ज्ञानी ! जिह्वा पर नमक है, नमक की डली आप जान रहे हो कि अपने में मिला रहे हो? उसे जान रहे हो कि खा रहे हो ? उसे जान रहे हो कि निज रूप कर रहे हो ? उसे तुम तो जान रहे हो, वह जा रहा है, कहाँ जा रहा है ? आकाश से मेरे आकाश में जा रहा है, तुम तो जान रहे हो। नमक की डली को ये जीव जान रहा है। वह जान रहा है, अपने में ही परिणमन कर रहा है। तेरे में परिणमन कर देता तो तन्मयभूत हो जाता, फिर उसे भी चैतन्य होना पड़ जाता। वह तेरे अन्दर रहता ही नहीं है, आकाश में भी रुकता नहीं है। ये रागी मात्र भोक्ता/भोगी बनकर राग ही कर पाते हैं। वस्तु कहती है कि तुम राग करो, मैं तेरे में रहूँगा नहीं। सुबह बाहर निकल जाती है। परिणमन किसमें हुआ है ? परिणामी में परिणमन हुआ है। निज परिणामी में परिणमन हुआ है, कि पर-परिणामी में परिणमन हुआ है? कितना ही छिपाते रहोगे, आप जमीन में गाढ़ सकते हो तो उसको उखाड़ा जा सकता है, लेकिन कुछ ऐसे भी तो लोग हैं जो मुख में रख लेते हैं। और पेट में

देखो आप, कहीं भी नहीं है। तुम कितना ही छुपा लो, लेकिन द्रव्य कहता है मैं किसी के पेट में भी नहीं रहता हूँ। जब पेट में नहीं छुपा पाये हो, तो पेटियों में क्या छिपा पाओगे? सन्तुष्टि है, सो कर लो। यहाँ मुख से रख लो, फिर कहीं से निकल जायेगा। यहाँ से रखा, वहाँ खर्च हो जायेगा। सन्तुष्टि कर लो, लेकिन आप रख तो नहीं पाओगे। रखा तो रखा रह जायेगा, पर तुम उठ जाओगे। अरबों-खरबों का जोड़ कर रख तो गये, परन्तु भोग नहीं पाये। भोगनेवाला तो कोई दूसरा ही होगा और कोई किसी को भोगता ही नहीं है। निज का परिणमन चलता है। वस्तुस्वभाव ऐसा है। सन्तुष्टि ही भोग है।

ज्ञाता-दृष्टा भाव भोग हो गया तो जगत् में मुनि भी भोगी ही कहलायेंगे। सन्तुष्टि भोग है। एक क्षुधावेदनीय कर्म के उपशमन के लिये आहार लेने जा रहा है, दूसरा जीव सरस भोजन के लिये जा रहा है। जो सरस भोजन करने के लिये जा रहा है, वह भोगी है और जो क्षुधा रोग के शमन करने के लिये जा रहा है, वह योगी है। सन्तुष्टि भोग है, सामग्री नहीं है। कुछ ऐसे द्रव्य हैं जो मात्र आँखों से ही भोगे जाते हैं। तूने छतरपुर को ही नहीं भोगा। किसी प्रदर्शनी को देखने गया, उसे भी भोगकर आ गया। भर्तृहरि कहते हैं 'द्रव्य ने किसको भोगा?' जिसको भोगा है, उसका विनाश होना चाहिये; परन्तु भोगों का विनाश देखा नहीं गया, भोगने वाले का विनाश हो गया। भोगों ने तुम्हें भोगा, कि तुमने भोगों को भोगा? एक व्यक्ति सिगरेट पी रहा था, वह पीते-पीते ऊपर चला गया, तो किसने किसको पिया ? जिसने अभक्ष्य का सेवन किया, मदिरा का पान किया, सिगरेट आदि धूम्रपान किये, देखो मैं पी रहा हूँ, उसका पूरा शरीर खोखला हो गया, तो किसने किसका सेवन किया? परन्तु भर्तृहरि की दृष्टि देहजन्य व्यवस्था मात्र पर थी। कुन्द कुन्द की दृष्टि कह रही है कि न तुमने भोगा, न उसने भोगा। वस्तु का परिणमन सहज चल रहा है। जब नमक, नमक में है, तो जब नमक न मिले तो फिर कैसा लगता है? जो चिन्तन यहाँ चल रहा है, वह थाली के सामने भी चलना चाहिये। यथार्थ में ये विषय उसी के लिये है उस क्षण यह विचार आ जाये कि पारिणामिक द्रव्य का परिणमन, प्रत्येक द्रव्य का पारिणामिक भाव निज स्वभाव में परिणमनशील है। परभाव में परिणमन कोई भी द्रव्य करता ही नहीं है। कालद्रव्य तुम्हारा परिणमन नहीं करा रहा है। कालद्रव्य से तुम अपने परिणमन होने को व्यवहार से जान

रहे हो। धर्मद्रव्य तुमको चला नहीं रहा है। अधर्म द्रव्य तुमको ठहरा नहीं रहा है। उदासीन निमित्त हैं। चलना चाहो तो चलो, ठहरना चाहो तो ठहरो; लेकिन किसी को चलाता नहीं है धर्म द्रव्य, कभी चलता नहीं है धर्म द्रव्य कभी चलाता नहीं है परन्तु धर्मद्रव्य के बिना जीव व पुद्गल चलते नहीं हैं। अधर्म द्रव्य किसी को ठहराता नहीं है। ठहरना चाहो तो ठहर सकते हो। वह तो अपने निज स्वभाव में परिणमन कर रहा है।

पहले वस्तु-व्यवस्था को समझो, फिर निमित्त-नैमित्तिक दृष्टि को समझो। अग्नि तो जल रही है, उसने भोजन कहाँ पकाया ? उस अग्नि ने कभी अपने स्वभाव का अभाव किया ही नहीं है। वह तो अपने उष्ण धर्म से युक्त है। बटलोई बटलोई में है, चावल चावल में है, प्रत्येक द्रव्य का परिणमन अपने स्वभाव में चल रहा है। अपने स्वभाव का लोप मत करो। वस्तुव्यवस्था व्यवस्थिति है। अग्नि कोई विकार न करे, फिर भी अग्नि के होने पर भोजन पक जाता है। रागियो! गृहस्थो! विश्वास रखो, आप न किसी को राग की शिक्षा दो, न द्वेष की शिक्षा दो। जैसे अग्नि की सत्ता में भोजन पकने ही लगता है, ऐसे-ही संसार और कर्म की सत्ता है, उसके प्रभाव से जीव राग-द्वेष अपने-आप सीख लेते हैं, उन्हें सिखाने की कोई आवश्यकता नहीं है। बहुत सारी माँ अपनी बिटिया की शादी में उल्टी बातें भी सिखाती हैं, 'बेटा ! कोई से दबना नहीं।' जबकि सीधे सिखायें, उल्टा तो वह अपने आप सीख लेती है। कोई शिक्षा देने की आवश्यकता नहीं है। बेटा बाहर जाने लग जाय तो ये मात्र आपको राग बोलता है कि देखकर चलना। विश्वास रखना, जो चलने लगता है वह देखने लगता है, परन्तु जो घटना घटनी होती है, वह देखनेवाले के साथ भी घट जाती है। जो सहजता खोकर ज्यादा सजग होता है, उनके साथ घटनायें ज्यादा घटती हैं। **जो सहज होकर जीवन जीता है, वह सफल हो जाता है।** तुम असहज हो गये हो 'मेरे साथ कुछ हो न जाय' तो आप अच्छे से चल नहीं पाओगे। जिसने निर्णय किया है मुझे तो सम्मेद शिखर की वन्दना को जाना है, तो वह जा रहा है, कोई तनाव नहीं है, वह बहुत अच्छे से चला जायेगा। जिसके अन्दर यह भाव घुस गया है मेरे साथ कोई दुर्घटना न घट जाय, तो वह आनन्द नहीं ले पायेगा। कारण यह है कि जैनदर्शन इतना गहरा है कि इसकी किस-किस विधा का व्याख्यान किया जाय? आम कच्चा था, पाल लगाने से असमय में पक गया। तुम्हारे परिणाम कच्चे थे, भावों की विशुद्धि बन गई तो वे परिणाम भी समय के पहले पक

जाते हैं। उदीरणा होगी कैसे? क्रमवर्ती। इसलिये क्रमवर्ती है, स्यात् अक्रमवर्ती है। कैसे?

"एकस्मिन्-द्रव्ये क्रम-भाविनः परिणामाः पर्यायाः आत्मनि हर्षविषादादिवत्।" ॥प.सू.॥

एक ही द्रव्य में परिणमन चल रहा है क्रम से जब चेहरे पर हँसी होगी, उस समय विषाद नहीं होगा और जब विषाद होगा, तो हर्ष नहीं होगा। जब हृदय प्रमुदित होगा तो विषाद नहीं होगा, विषाद होगा तो प्रमुदित नहीं होगा। एक समय में चेहरे में दो अवस्थायें खड़ी कर सकते हो क्या?

विक्स लगाकर आँसू तो टपक सकता है, लेकिन वह रोना नहीं कहलायेगा। हर्ष में भी आँसू टपकते हैं। मैं हर्ष के आँसू नहीं टपका रहा हूँ, प्रसन्नचित्त भी हूँ।

यदि जैनदर्शन से बोल रहा है तो तू ऐसा बोल नहीं सकता और ऐसा बोल रहा है तो जैन हो नहीं सकता; क्योंकि जिनागम कहता है कि एक समय में एक उपयोग होता है, एक समय में दो उपयोग होते ही नहीं हैं। तो जिनागम से खण्डन कर दो कि एक समय में हर्ष और विषाद युगपद् नहीं होते हैं। यदि एक समय में हर्ष विषाद युगपद् हो गये, तो एक समय में युगपद् दो उपयोग हो गये, तो तुझे केवली मानना पड़ेगा। केवली के दर्शन-ज्ञान युगपद् होता है, लेकिन आपके नहीं होगा। लेकिन जब होगा, मेरे भीतर होगा। पर के युगपद् होने से मुझे क्या प्रयोजन? छद्मस्थों के दोनों उपयोग युगपद् नहीं होते हैं, केवली भगवान् के दोनों युगपद् होते हैं।

आप लोगों को पण्डित जी! कर्तृत्व भाव का निषेध करना चाहिये। प्रतिमाओं का मिथ्यात्व छुड़ाने में देर नहीं लगती, लेकिन कर्तृत्व का मिथ्यात्व छुड़ाने में तुम्हारे भव-भव लग जायेंगे। भगवान् महावीर के जीव ने प्रतिमाओं के मिथ्यात्व को नहीं फैलाया था, कर्तृत्व के मिथ्यात्व को फैलाया था मारीचि की पर्याय से।

हे मुमुक्षु ! मैं तो किसी भी अपेक्षा से पर के कर्तृत्व को स्वीकार नहीं कर सकता हूँ, फिर भी मैं सांख्य नहीं हूँ।

हे जीव ! तू उपचरित असद्भूत व्यवहारनय से घट पट आदि का भी कर्ता है। हे जीव! तू व्यवहार नय से अशुद्ध निश्चयनय से रागादिक भावों का कर्ता है। हे जीव ! तू निश्चय नय से शुद्ध भावों का कर्ता है, किन्तु परमशुद्ध निश्चयनय से न किसी

का कर्ता है न किसी का भोक्ता है। गोली देकरके, चाकलेट दिखा करके बच्चे को तुम पढ़ने भेज सकते हो, मेरे मित्र! विश्वास रखना, यह आपने ठीक नहीं किया। फिर आप कहते हो मुकदमा विधान, केश जीतो विधान, बुद्धि वर्धक विधान। ऐसा क्यों नहीं बोलते हो कि अरहन्त की भक्ति करो, अरहन्त की आराधना करो, आपकी असाता का द्रव्य साता में संक्रमित हो जायेगा, तो अपने आप दुःख दूर हो जायेंगे। तुम भगवान् को भी कर्ता मत बनाओ और आप भी कर्ता मत बनो। आपके भावों की विशुद्धि से कर्मों की निर्जरा हो जायेगी।

यदि हम ऐसा कह कर लाये हैं कि तुम मंदिर चलो, तुम्हारे संकट दूर हो जायेंगे। हमने उसको मंदिर लाने की चेष्टा तो करा दी, व्यवहार कहेगा लोक कहेगा ज्ञानी को धन्य हो, क्योंकि मेरा बेटा मंदिर नहीं जाता था, कम-से-कम मंदिर तो जाने लगा। मेरे मित्र ! तुमने द्रव्य-मंदिर तो भेज दिया, लेकिन भाव से मंदिर नहीं भेज पाया। उसके भीतर एक बात बिठाल दी थी कि जो तुम्हारी दुकान नहीं चल रही थी, तुम पूजा करने लग जाओ, दुकान चलने लगेगी। उसको भगवान् की भक्ति में दुकान दिखेगी हर समय। उसको लोभ कषाय से प्रेरित होकर बुलाया है, साकांक्ष भाव से बुलाया है, साकांक्ष भाव से बुलाकर इस भाव को भुला ही दिया-

कर्मपरवशे सान्ते दुःखैरन्तरितोदये।
पापबीजे सुखेऽनास्था श्रद्धानाकाङ्क्षणास्मृता॥12/र.श्रा.॥

जब इस सूत्र की व्याख्या करेंगे तो ज्ञानी ऐसी ही व्याख्या करेंगे जैसी मैं बोल रहा हूँ।

उससे यही कह दिया बेटा ! तू क्या कर रहा है लोभ कषाय में आ करके? जिसे तुम धर्म कह रहे थे, आखिर में अरहन्त का मिश्रण करके दिया, अरहन्त का मिश्रण करके ही लाया हूँ, पर कोई बात नहीं है, कभी-कभी पट्टी खोलने के लिये ही पट्टी बाँधी जाती है। पट्टी बाँधने के लिये पट्टी नहीं बाँधी जाती है। जब किसी का हाथ-पैर टूट जाय तो प्लास्टर चढ़ता है, वह प्लास्टर चढ़ाये रहने के लिये चढ़ाया जाता है, कि उतारने के लिए चढ़ाया जाता है? ऐसे-ही कोई जीव आपको लोभ देकर मंदिर लाया है तो यही समझना कि लोभ को भी छोड़ने के लिये ही मंदिर लाया है, लोभ में लाने के लिये मंदिर नहीं लाया है; लेकिन बता देना भैया! ये पट्टा इसलिये लगा है कि

जब पैर ठीक हो जाये, तो उसे उतार देना। और फिर भी नहीं उतारेगा तो पहले तो पट्टा ठीक करेगा, तुमने नहीं उतारा तो ऐसा खराब करेगा कि कभी नहीं हुआ होगा। ऐसे-ही ज्ञानियो! एक समय तो तुम यहाँ आना, पतला हो जायेगा सराग अवस्था में। लेकिन आप उस लोभ से ही आते रहे और कहीं तेरे अशुभ कर्म के उदय से कार्य सिद्ध नहीं हुआ, तो तेरी दशा ऐसी पतली होगी जैसे पट्टे में पैर पतला हो गया था।

एक जीव ने कह दिया कि आपको बेटा होगा, लेकिन हुई बेटी, अब पूछो उसकी श्रद्धा का क्या होगा? तुम केवली नहीं हो, इसलिये उसकी श्रद्धा टूट जायेगी। इसलिये ऐसा मत बोलो। मैंने कहा अमुक नेता जीत जायेगा और वह नहीं जीत पाया, तो इससे तुमने प्रभावना की कि अप्रभावना की? उसकी श्रद्धा चकनाचूर हो जायेगी। इसलिये जगत् के कर्ता मत बनो। होता स्वयं जगत् परिणाम।

जो नय के पक्षों से अतिक्रान्त हो चुका, जहाँ नय पक्षपात का अभाव हो चुका है, उसका नाम समयसार है।

जो जीव तत्त्वज्ञानी हो लेकिन चारित्र से शून्य हो, तो वह तत्त्वज्ञानी नहीं है, भ्रष्ट ज्ञानी है। जो तत्त्वज्ञानी होगा, वह नियम से व्यवहार का पालन करेगा। व्यवहार के अभाव में तत्त्वज्ञान का जन्म होता ही नहीं है। अंकुर हो ना और फल लग जाये, यह संभव नहीं है। परन्तु अंकुर फल होते नहीं हैं, अंकुर को ही फल मान कर मत बैठ जाना, अन्यथा विफल हो जाओगे। अंकुर को फल मान लिया तो विफल हो जाओगे, लेकिन अंकुर के बिना फल नहीं होता, ये बराबर है।

ईश्वर-कर्तृत्व से तो हट गये, लेकिन मित्र मेरा कर्ता है। ईश्वर-कर्तृत्व से तो हट गये, लेकिन काल द्रव्य से मेरा परिणमन हो रहा है, काल द्रव्य कर्ता। ईश्वर-कर्तृत्व से तो हट गये, लेकिन करण मेरा कर्ता। धर्म, अधर्म, आकाश, काल द्रव्य मेरे परिणमन के कर्ता। आखिर में तूने किया क्या है? विषय का परिवर्तन किया है, श्रद्धा का परिवर्तन नहीं किया। उसको कुन्दकुन्द भगवन्त की भाषा में कहूँ तो वह है जैन मिथ्यादृष्टि। इस बात को जीव भूल ही गया। एक ज्ञानी दूसरे ज्ञानी से कहता है कि हम तुम्हारे कमर का पट्टा उतरवा देंगे। आप विश्वास मानो, ये कौन-सी बड़ी बात है? कमर का पट्टा उतरवा देना कौन-सी बड़ी बात है, हम तो तुम्हारे कर्मों का पट्टा उतरवा देंगे, तुम उतार कर तो देखो। और ज्ञानी! ध्रुव सत्य यह है कि न प्रभु कमर

का पट्टा उतरवा पायेंगे न कर्म्म का पट्टा उतरवा पायेंगे। मेरा निज का किया पुरुषार्थ मैं ही करूँगा, ध्रुव सत्य तो यही है। जब ध्रुव सत्य ऐसा है ही, तो मैं जगत् के सरागियों के पीछे क्यों पड़ूँ? मैं वहीं जाना चाहता हूँ जहाँ जाकर विभुत्व को प्राप्त होऊँ। विभुत्व शक्ति में लीन हो करके जगत् के प्रपञ्चों से दूर होना चाहता हूँ। जैनदर्शन प्रभु में नहीं मिलाता, प्रभु के पास नहीं भेजता, निज के विभुत्व में विभुत्व को प्राप्त करके सर्वार्थ की सिद्धि कराता है।

सम्पूर्ण-अर्थों की सिद्धि के लिए ही यह परामार्थ प्ररूपणा है, तो अन्य द्रव्यों से तुझे क्या प्रयोजन है ?

अरे भैया ! ये सब बातें यहाँ बड़ी मधुर लगती हैं। जब जीव को राग सताता है, तो क्या कहता है? महाराज तो बोलते ही हैं, अपुन को तो संसार में रहना है, तो का करहें? बिल्कुल सही है। जिनको संसार में रहना है, वे ऐसे-ही सोचें और जिनको संसार में नहीं रहना है, वे जैसा हम कह रहे है वैसा ही सोचें। इसलिये जो जीव यति धर्म का उपदेश नहीं करता, पहले श्रावक धर्म का उपदेश कर देता है, वह दण्ड का भागी है।

सच्चा वक्ता वही है, जो उभय नय की व्याख्या करता है, वही शिष्यों को देशना का पुष्कल फल प्रदान करता है। जो निश्चय व्यवहार में से किसी एक को छोड़कर बात करता है, '**यत्र-तत्र देशनानास्ति।**' जो जीव मात्र व्यवहार को लेकर बैठा हुआ है या निश्चय मात्र को लेकर बैठा हुआ है **यस्य तस्य देशनानास्ति** उसके लिये देशना नहीं है।

जितना बने, 'पुरुषार्थ-सिद्धि-उपाय' का बहुत अच्छा अध्ययन करो। ये श्रावक व्यवहारनय निश्चयनय को मोक्षमार्ग मान रहे हैं, ये उनकी भूल है। निश्चय रत्नत्रय और व्यवहार रत्नत्रय तो मोक्षमार्ग है, वह क्रम से होगा; लेकिन निश्चय व्यवहार नय ये युगपद चलेंगे, व्याख्यान एक समय में एक का होगा।

जब तुझे पता है कि एक सिक्के के दो पहलू होते हैं, तो आचार्यभगवन् अकलंक स्वामी कह रहे हैं कि दीवाल का यह भाग है तो वह भाग भी होगा। जहाँ निश्चयनय होगा, वहाँ व्यवहार नय भी होगा और जहाँ व्यवहारनय होगा वहाँ निश्चय नय भी होगा। इसलिए विवाद मत करो।

जो मानवों में परस्पर विवाद या झगड़ा करता है, वह धर्म, अर्थ, काम तीनों पुरुषार्थों का नाश कर डालता है। इसमें मोक्ष इसलिए नहीं कहा, क्योंकि मोक्ष न विवादों से उत्पन्न होता है न विवादों से नष्ट होता है। मोक्ष अविसंवादी है, वहाँ कोई विसंवाद ही नहीं है।

यदि आपको संसार का ही सुख चाहिए, विवाद करने से तो भूमि भी नहीं मिलती, फिर मोक्ष का सुख कहाँ से मिल सकता है?

घर में यदि एक रोटी है, तुम चार भैया हो, तो चार भाग करके प्रेम से जितना मिले सो खाकर बैठ जाओ तो आनन्द से रहे आओगे। यदि चारों विवाद करोगे तो चारों नहीं खा पाओगे, उसी बीच में कुत्ता आकर उठा ले जायेगा, तुम देखते ही रह जाओगे। ऐसे ही कभी-कभी क्या होता है कि पुण्य एक रोटी के बराबर होता है जीव का और घर में इतना क्लेश कर बैठता है कि जो पुण्य की रोटी थी उसको भी अशुभ कर्म का श्वान उठा ले गया, अब तुम चारों के चारों खाली हो गये।

इसलिए विवाद मत करो। इससे धर्म, अर्थ, काम पुरुषार्थ का नाश होता है और बन्धुजनों में बैर बढ़ता है और कर्म का आना प्रारम्भ हो जाता है। शान्तिमय जीवन जीना हो तो सम्पत्ति भी चाहिए सुख भी चाहिए। शान्तिमय जीवन चाहिए है तो, परस्पर में कलह मत करो।

''आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्''

आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।



धन्य है क्षमावान्

गाथा : धन्यास्ते मानवा नित्यं ये सदा क्षमया-युताः।
वञ्चमाना न वै लुब्धा विवादं नैव कुर्वते ॥292॥

अन्वयार्थ : (ते मानवा नित्यं धन्याः) वे मानव नित्य ही धन्य हैं, प्रशंसनीय हैं **(ये सदा क्षमया युताः)** जो सदा क्षमागुण से पूर्ण होकर **(वञ्चमाना न वै लुब्धा)** दूसरों से ठगे जाने पर भी आकुलित नहीं होते हैं और **(विवादं नैव कुर्वते)** किसी के साथ विवाद नहीं करते हैं।

भावार्थ : हे भव्यात्मन् ! इस वसुधा पर वे मानव धन्य हैं, प्रशंसनीय हैं जो सदा क्षमागुण से पूर्ण होकर, दूसरों के द्वारा प्रताड़ित होने पर भी आकुलित नहीं होते और विवाद भी नहीं करते हैं।

॥ सद्-देशना ॥

आचार्यप्रवर भगवत् कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज सारसमुच्चय जी में रत्नत्रय से मण्डित, परम समरसी भाव में लीन, क्षमावान् योगी की व्याख्या कर रहे हैं।

धर्म की प्राप्ति के लिये धर्म छोड़ करके चले, उससे बड़ा विधर्मी कौन होगा? साधन तो साध्य की प्राप्ति के लिये होता है, परन्तु जिसने साधन को ही साध्य मान लिया हो और साध्य का विसर्जन करके साधन को ही सर्वस्व मान किया हो, वह साध्य को क्या प्राप्त कर सकेगा? 'मुझे आज एक मंदिर की स्थापना करना है', हे जीव ! किसके लिये ? साम्यभाव से, समता परिणति से युक्त हो करके मैं परमात्मा की आराधना करूँगा। बहुत अच्छी बात है, लेकिन यदि आप यह मंदिर नहीं बनने दोगे तो मैं आपको देख लूँगा। अब वह वहाँ क्या करने जायेगा ? बन चुके भगवान् की पूजा के राग में, बननेवाले भगवान् की हत्या के परिणाम तेरे चल रहे हैं, तू क्या धर्म कर पायेगा? प्रतिमा की पूजा के राग में एक जीव के प्रति तेरे कितने अशुभ परिणाम चल रहे हैं। धर्म के राग में धर्म खो रहा है। जबकि वह साधनभूत धर्म था, क्षमा साध्यभूत धर्म है। 292 नं. के श्लोक में आचार्यभगवन् यही तो कह रहे हैं। वे मानव धन्य हैं जो धर्म के लिये ही धर्म कर रहे हैं और धर्म में ही धर्म कर रहे हैं। **कर्तृत्व भाव जहाँ निहित होगा, वहाँ नियम से अधर्म होगा।** जिस धर्म की व्याख्या आप कर

रहे हो, मैं उस धर्म की व्याख्या नहीं कर रहा हूँ। आप लोग जो धर्म देखते हो, वह सम्प्रदायभूत है। भोजन की थाली के राग में कितनी थालियाँ फिक जाती हैं। वह इस बात को भूल चुका था कि परिणामों की विशुद्धि के लिये पूजन करने आया हूँ, पूजा की विशुद्धि बेचने नहीं आया हूँ। एक वेदी का अभिषेक हो गया तो हो जाने दो, हम दूसरी वेदी में कर लेंगे। मैं अभिषेक करने के लिये आया हूँ, न कि इसी वेदी पर अभिषेक करने आया हूँ। जिसके भीतर धर्म प्राप्ति के लिये क्रियाभूत पक्ष धर्म है, उसकी तो क्रिया धर्म का साधन बनेगी; परन्तु जिसके लिये साध्य परिणति का अभाव होकरके मात्र क्रिया ही की जा रही है, उसके लिये तो वह धर्म धर्म-का-साधन भी नहीं है। कितनी बार मैंने मंदिर में आ करके कषाय की है, कितनी बार मैंने जिनवाणी के पास बैठ करके कषाय की है, कितनी बार मैंने गुरु के सामने बैठ करके कषाय की है। हम धर्म को समझ ही नहीं सके। कितनी बार हम पर को धर्म में लगाने के राग में धर्म खो चुके हैं। ब्रह्मदेव सूरि ने 'वृहद् द्रव्य-संग्रह' की टीका में स्पष्ट लिखा है कि मित्र ! तत्त्वचर्चा भी उतनी ही करना जिससे विसंवाद न होने पाये। यदि विसंवाद होने लग जाये तो तत्त्वचर्चा को विराम दे देना और वहाँ से उठ कर चले आना। क्यों ? हम अकषाय भाव में जीने के लिये तत्त्वचर्चा करने आये थे और तत्त्वचर्चा में ही कषाय भाव होने लग गये, तो बंधस्थान होने लगेगा और जहाँ बंधस्थान होगा, वहाँ संसारस्थान होगा, जबकि मैं संसारातीत होने आया था, संसारी होने नहीं आया था।

आपको किञ्चित् भी 'गो' पर दया हो तो कषाय भाव छोड़ देना। गो यानि वाणी। गमन करने वाले प्राणी, उस गोचर की किञ्चित् मात्र दया हो तो जगत् के प्राणियों पर करुणा करने के साथ-साथ निज पर भी करुणा कर लेना। जितना कषायभाव हमने पर को सुधारने के लिये किया है, उतना निज के सुधारने के लिये नहीं किया। निज को सुधारने के लिये कषाय भाव करना ही नहीं पड़ता है और कषाय करने पर निज का सुधार करेगा कैसे? **कषाय नहीं-करना ही निज का स्वभाव है। पर का सुधार आप मंद कषाय में करते हो, निज का सुधार अकषाय में होता है और सुधार के भाव, चाहे निज के प्रति हों चाहे पर के प्रति हों, वे कषाय में ही होते हैं। जब कषाय का मंद उदय होता है, तो पर के सुधार के भाव होते हैं। पर सुधार तभी होता है, जब अकषाय में होता है। कषायी का सुधार तो हो नहीं सकता , सुधार तो अकषाय में होता है।** यदि सिद्ध अवस्था को सुधार मानते हो तो दसवाँ गुणस्थान साधन होगा,

लेकिन साधकतम करण तो बारहवाँ गुणस्थान ही बनेगा। और परम साधकतम करण तो अट्ठारह हजार शील की सम्पत्ति से युक्त जो अयोगकेवली अरहन्त भगवन्त हैं, वही है परम साधकतम करण। जो ऊपर का स्पर्श करता हो, तो नीचे की सारी अवस्थायें गौण हो जाती हैं। अभाव नहीं कर रहा हूँ।

धर्म के राग में जीव धर्म खो बैठा। कैसे खोया ? दोनों से दूर हो गया। एक बेटे के घर में बेटे की भी माँ है और स्वयं की भी माँ है। तू किससे दुश्मनी करना चाहता है ? बेटे की माँ का ज्यादा ध्यान रखेगा, तो तेरी माँ कहेगी कि तू बदल गया और अपनी माँ का ज्यादा ध्यान देगा तो बेटे की माँ तुझे चार बातें सुनायेगी। तो क्या करना चाहिये? समझदार होगा तो क्या करेगा ? बेटे की माँ के राग में जन्म देनेवाली माँ को नहीं छोड़ेगा, लेकिन जन्म देने वाली माँ के राग में बेटे की माँ को भी कष्ट में नहीं डालेगा। जो परभूत दया है, वह बेटे की माँ पर दया है और जो निजभूत दया है, वह निज की माँ पर दया है। पर रक्षा दोनों की होना चाहिये। वहाँ कहना '**धम्मो दया-विसुद्धो**'। यदि आपने अपने बेटे की माँ पर गुस्सा की और बेटा समझदार होगा तो कहेगा कि पिता श्री! मुझे और-कुछ नहीं कहना है, 'धम्मो दया-विसुद्धो'। पहले निज पर दया कर लो। कितने भाव तुमने कलुषित किये हैं?

हे तात्! जैसे-ही आपने कषाय की, तो आपने अपनी आत्मा को आत्मा से खारिज कर दिया है। एक करोड़ रुपये में आग लग जाये तो पुनः कमा लोगे; लेकिन उन पैसों के राग में जो विशुद्धि में आग लगा ली है, उसको कमाने कहाँ जाओगे ? यथार्थ बताऊँ, प्रयास ये रहता है कि सारे हेतु, पूजा-पाठ सब मिट जायें, परन्तु विशुद्धि का विच्छेद न होने पाये, संक्लेश वृत्ति न होने पाये। **संक्लेशता से आत्मा की रक्षा चाहते हो तो कर्तृत्व बुद्धि से रक्षा करना पड़ेगी,** अन्यथा संभव ही नहीं है। संक्लेशता की प्रमुख जननी कर्ताबुद्धि ही है। जहाँ कर्तृत्व सामने खड़ा हो जाता है, वहाँ कष्ट नहीं होता है।

जहाँ कर्तृत्वपना होगा, वहीं राग आता है। अकर्तृत्व में राग आता ही नहीं है। मेरे बुजुर्गों ने यह मंदिर बनवाया है, 'अहमेदं', इसमें आपका कर्तृत्व निहित हो गया। बिना कर्तृत्व के तो रागभाव होता ही नहीं है। पहले जीव कर्तृत्व को निहारता है। सँभलकर जीना होगा। इस जीव को पता नहीं कि देश का, प्रान्त का, जाति का, पंथ का, कितने कर्तृत्व भाव बैठे हुये हैं। वहीं व्यक्ति छोटा हो जायेगा। जैसे-ही आप घर पहुँचते हो, एक कमरे के हो जाते हो, फिर पिता से बेटा भी कह देता है पिता जी! आपका कमरा

वह है। **आप जितने अपनत्व में जाओगे, उतने आप छोटे हो जाओगे और जितने आप अपनत्व से दूर चले जाओगे, उतने आप विराट हो जाओगे। जिसको विराट् होना है, उसे अपनों से और अपनत्व से दूर होना पड़ेगा।** विश्वास मानिये, तुरन्त-ही बुद्धि छोटी हो जाती है।

सम्पूर्ण विश्व के चराचर पदार्थों का अवलोकन करने वाले, जिनके कैवल्य सूर्य के उदय में विश्व के सारे पदार्थ झलकने लग जाते हैं। जो अपने में झलकाते हैं, जो अपनों में जाते हैं, वे वैसे हो जाते हैं। छोटे होना हो तो अपनों में चले जाओ। अपनों में सम्बन्ध है, अपने में अधिकरण है। इसलिये हमारे अध्यात्म ग्रन्थों में सम्बन्धकारक की व्यवस्था नहीं है। षट्-कारक व्यवस्था है। **निज ने निज को निज के द्वारा निज के लिये निज से निज में अवलोकन जिसने किया, वह विश्ववंद्य हो ही गया।** परम समरसी भाव की व्याख्याओं में कलह/क्लेश लेकर जीव बैठ जाये, उससे बड़ा उसका निज का दुश्मन कोई नहीं होगा।

वे ही मानव धन्य हैं जो क्लेश और संक्लेश भाव से रहित हैं।

जिस देश में जिस काल में जिस विधान से नियत है, स्याद् उसको 'इन्दो वा जिणन्दो वा', न इन्द्र टाल पायेंगे न जिनेन्द्र टाल पायेंगे। देखते ही रह जाओगे कि कहाँ गये ? कब हृदयाघात हो जाये, कब जीव की पर्याय का विनाश हो जाये, कोई पता नहीं है। दिगम्बर जैन परम्परा के चोटी के विद्वान् बैठे हैं, उनसे मेरा कहना है कि भरत चक्रवर्ती इस भारतभूमि का व विश्व का प्रथम चक्रेश था, उसको भी एक दिन थोड़ा नीचा देखना पड़ा था। **हर समय संवेदनायें उनके प्रति जाती हैं जो कमजोर होते हैं, बलवानों पर संवेदनायें नहीं जाती।** जब अर्ककीर्ति ने जयकुमार के साथ व्यर्थ में युद्ध ठान लिया था, जबकि स्वयं उनका ही सेनापति था। अर्ककीर्ति ने शादी के राग में जब युद्ध किया, तब आखिर में जयकुमार तो समझ गये थे कि मेरे स्वामी का बेटा है, पर क्या करूँ? फिर भी युद्ध तो करना पड़ा। भरत को भी स्वीकार करना पड़ा, सेनापति से कहना पड़ा कि आप इसे स्वीकार कर लो।

विश्वास रखना, हर समय कषाय को छोटा होना पड़ता है। जगत् में कोई छोटा नहीं होता है और मनुष्य जैसा अहंकारी प्राणी किसी से छोटा हो जायेगा क्या? पुत्र को तू दोष दे रहा है, पर जिससे पुत्र हुआ था उसे तू दोष दे दे। जो परिणाम मचल

रहे थे, उन्हें मना लेता तो पुत्र के राग में तुझे नीचा क्यों देखना पड़ता? आज पुत्र-पुत्रियों को दोष देते हैं कि इन्होंने नाक कटवा दी। तेरी नाक तो उस दिन कट चुकी थी जिस दिन तू गले में माला पहनने गया था। तब बता तू कहाँ देख रहा था ? जब वरमाला पड़ रही थी, तब तेरी आँखें कहाँ थीं ? किसे खोज रहा था ? जब देवी गले में माला डाल रही थी, तू देवी के चरणों को देख रहा था, तब से तू देवीदास हो चुका था, देवीदास बन गया था। अहो आश्चर्य ! छः खण्ड का स्वामी, अपने पक्ष की गलती के कारण क्षमा माँग रहा था। कषाय हर समय छोटी होती है। आप-जैसे विद्वान् भी मुनि को नमस्कार करते हो। अब दो धारायें दृष्टिगोचर होती हैं। पण्डित दरबारीलाल कोठिया, एक नियोग बना था, 'न्यायदीपिका' उन्हीं से पढ़ी थी। साधु के पास जब-जब विद्वान् आते थे वृद्ध अवस्था ने पकड़ लिया था, तब भी चरण छूना है। एक दिन चर्या को जा रहे थे, पण्डित जी सामने दिख गये। उनसे कहा कि आप तो शरीर की विषमता देख करके ऐसे-ही यहीं से हाथ जोड़ लो। पण्डित जी बोले कि अब इसे तो छूटना ही है, इसके पीछे निर्ग्रन्थों के चरणों को क्यों छोड़ूँ ? विद्वान् ये शब्द बोल रहे थे, उस समय विशुद्धसागर सोच रहे थे 'सुनो ! अहंकार में मत डूब जाना। वयोवृद्ध विद्वान्, जिसने सरस्वती की आराधना की है, ये तुम्हारे जड़ शरीर की वन्दना नहीं कर रहा है, तुम्हारे भीतर जो रत्नत्रय धर्म है उसकी वन्दना कर रहा है। ये मत सोचना कि यह तुम्हारी वन्दना चल रही है। ये तो कारण में कार्य का उपचार है।

स्वभावतोऽशुचौ काये रत्नत्रय पवित्रिते।

किसी मुनि को मन में यह अहंकार न आ जाये कि मैं तो बहुत पूज्य हो गया हूँ विद्वानों से। उन विद्वानों से पूज्य तुम नहीं हो, विद्वानों से पूज्य रत्नत्रय धर्म है। यदि आपने उस रत्नत्रय धर्म को छोड़करके अपने आप को जीवित रखा है, तो विश्वास रखें, विद्वानों की वन्दना भी तुम्हारे बन्ध का कारण बनेगी, क्योंकि तुम मायाचारी से अपने आपको नमस्कार करवा रहे हो।

क्या आप बाँझ ही बनकर चले जाओगे? अरे भाई! भोगभूमिया बन कर जाओ। बंध्या आती है, खा-पी करके, जी करके चली जाती है, कुछ भी छोड़कर नहीं जाती है; लेकिन भोगभूमिया जीव जब भी जाते हैं, युगलिया छोड़कर जाते हैं। ऐसे-ही आप सब विद्वानों से कहना है कि आप भोगभूमिया बनकर जाओ, अब नये शिष्य बनाना प्रारम्भ करो।

यदि सभी पुराने साधु हो जायेंगे, तो मिथ्यात्व नाम की वस्तु क्या होगी ? और सभी वर्तमान के असाधु हो जायेंगे, तो साधु-परम्परा का भी लोप हो जायेगा। इसलिये स्यात् स्यात् आगे चलते हैं।

ज्ञानी ! कषाय सबको झुका देती है। जब बुजुर्ग विद्वान् छोटे-छोटे युवा मुनिराजों को नमोऽस्तु करने पहुँचते हैं, तब लगता है कि इन युवाओं को विद्वान् क्यों नमस्कार कर रहे हैं? मनुष्य-जैसा जन्मजात मानी प्राणी किसी को झुक जाये, यह बहुत कठिन है, फिर भी झुकना पड़ता है। श्रद्धापूर्वक झुकते हैं। कौन किसको झुका रहा है? हे मुनिराजो! इन विद्वानों से तुम्हारे तन की वन्दना नहीं चल रही है। इनके भीतर एक कमी रह गई थी, वह कमी तुम्हारे पास नहीं है, इसलिये वह कमी झुक रही है। कोई किसी को नहीं झुक रहा है। अचारित्र भाव ने चारित्र के नीचे सिर झुकाया है। उनका ज्ञान अपूज्य नहीं। ज्ञान तो विद्वानों का भी पूज्य है। जब अलमारी में रखे ग्रन्थों को सिर टेक सकते हो, तो इन विद्वानों के भीतर रखी जिनवाणी को तुम सम्मान क्यों नहीं दे सकते हो? श्रमण और विद्वान् इन दोनों का समन्वय बैठाना हो तो 'परमात्म प्रकाश' ग्रन्थ का स्वाध्याय करना होगा। इस ग्रन्थ में ब्रह्मदेव सूरि ने स्पष्ट लिखा है कि हे विद्वानो ! तुम साधुओं को ज्ञान में कमजोर समझकर उनका अनादर मत कर देना। ये सोचना कि मैं इतना ज्ञानी होने के बाद भी असंयम से दूर नहीं हो सका, मुझे धिक्कार हो। चारित्रमोहनीय की प्रबलता है। मैं साधु क्यों नहीं बन सका ? इसलिये तुम चारित्र की वन्दना करना।

हे साधु ! तुम विद्वानों को देख करके उनका अनादर मत करना। तुम ये क्यों नहीं कहते हो कि चारित्रमोहनीय कर्म का क्षयोपशम प्रबल था, सो मैं मुनि बन गया, लेकिन ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम अच्छा नहीं है, सो तुम ज्ञानी नहीं बन पाये। उन लोगों ने भी तो मेहनत की है। तुमने जो संयम की साधना की है, शरीर के उपयोग से सबकुछ की, लेकिन उन लोगों ने भी नेत्र इन्द्रिय से साधना की, तभी तो सरस्वती की आराधना कर सके, इसलिये उनका भी सम्मान करो। ऐसा दोनों समझ जायेंगे तो श्रमण और विद्वान् में कभी विघटन की भूमिका नहीं आयेगी। नहीं तो एक यहाँ जायेगा, दूसरा वहाँ जायेगा। आपको मालूम होना चाहिये-

एकेन कर्षन्ति, एकेन सिथलन्ति। (पु.सि.उ.)

छोड़ा दोनों को नहीं जाता। जैसे गोपिका एक को खींचती है दूसरे को ढीला करती है, लेकिन छोड़ती दोनों को नहीं है। ऐसे-ही जब साधु की प्रधानता हो तो साधु की व्याख्या करो, जहाँ विद्वान् की प्रधानता हो वहाँ विद्वान् की व्याख्या करो, लेकिन अभाव दोनों का मत कर देना। यही जैनियों की नीति है। जहाँ निश्चय की प्रधानता हो वहाँ निश्चय की व्याख्या करना, जहाँ व्यवहार की प्रधानता हो वहाँ व्यवहार की व्याख्या करना, लेकिन अभाव दोनों में से किसी का मत करना। नहीं-तो मक्खन निकलनेवाला नहीं है। एक भी रस्सी छोड़ दोगे तो मक्खन नहीं निकल सकता है।

अमृतचन्द्र स्वामी ने अनेकान्त को नमस्कार किया है। कोई अज्ञानी न समझ पाये और दीपक रखकर ध्यान कराने लग जाये और कहे कि अमृतचन्द्र स्वामी ने ज्योति को नमस्कार किया है। और एक ज्ञानी कहने लग जाये, 'आ हा हा! दिख गई, दिख गई, परमज्योति दिख गई।' मेरे मित्र! वह दिखनेवाली ज्योति नहीं है, वह तो अनुभववाली ज्योति है।

तज्जयति परं ज्योतिः समं समस्तैरनन्तपर्यायैः।
दर्पणतल इव सकला, प्रतिफलति पदार्थमालिका यत्र॥1/पु.सि.उ.॥

जिस योगी ने अनेकान्त की वन्दना की हो, वह किसी एकान्त में प्रवेश नहीं कर सकता।

पता नहीं कौन-सी कणिका बैठी रही जिसने इस दग्धकाल में भेज दिया। इस समय आप किसी की कितनी ही रक्षा करना, आप चाहो कि मैं सबको खुश करके रख सकूँ, तो इस खोटे काल में दुनियाँ को खुश नहीं कर सकते हो। **अपने सुख को जीवन्त रखना चाहते हो तो, जगत् को सुखी करने का आज से त्याग कर दो।**

हे वर्द्धमान! आज तक मुझे कैवल्य क्यों नहीं हुआ। वर्द्धमान कहते हैं-गौतम ! जब तक तुमको महावीर से राग है, तब तक तुम्हें कैवल्य होना सम्भव नहीं है। **जब वर्द्धमान का राग गौतम को कैवल्य नहीं होने दे रहा है, तो विषयों का राग तुम्हें भगवान् कहाँ बना पायेगा?** घर नहीं जाना क्या ? मैं तो नहीं चाहता कि आप लोग जाओ। इतई रहो, कहाँ जा रहे? हे समन्तभद्र ! जिस कवि ने आपको बहुमान दिया 'भावी तीर्थंकर,' उसने भले ही भक्ति के आवेश में दिया है, पर बड़े अच्छे से दिया है। भावी तीर्थंकर आप हो या न हो, लेकिन कवियों में आप तीर्थंकर दिखते हो। स्तुति-काव्य

में कवियों में तीर्थंकर समन्तभद्र स्वामी। उन्होंने नहीं कहा कि तेरी कृपा से सब काम हो रहा है। उन्होंने कहा '**पटुसिंहनादैः।**' (युक्त्यनुशासन)

आप जहाँ जाओ, चार आदमी भी हों, तब भी प्रवचन करो और 'प्रवचन' ही करो। आपने जिनवाणी नहीं सुनाई तो वह यही कहेगा कि वही है लपटा और औरिया। वक्ताओं को यह भूल जाना चाहिये कि लोगों को समझ में आयेगा या नहीं। आपको मैंने गद्दी पर बिठाया है तो आप इतने कठिन उपदेश देकर जाओ कि लोगों ने आज तक सुने ही न हों, भले ही समझ में नहीं आये, इतना तो समझ में आयेगा कि कुछ-और भी है।

वे जीव कभी ठगे नहीं जाते जो विवाद को प्राप्त नहीं करते। ठगे वे जाते हैं जो विवाद को प्राप्त करते हैं। घर में झगड़ा भी हो जाये तो भी बात करना बन्द मत करना। बात करते रहोगे तो बात बन जायेगी। बात ही करना बन्द कर दी तो बात बिगड़ जायेगी।

अहो ज्ञानी ! जगत् में कोई वस्तु नियत नहीं है पर्यायदृष्टि से। वर्तमान की पर्याय की अनुभूति को इतने गहरे में लोग समझ बैठते हैं कि भविष्य की पर्याय पर दृष्टि ही नहीं जाती है। **वर्तमान के शत्रु में इतनी शत्रुता मान कर मत बैठ जाना, वह शत्रु ही तुम्हारा मित्र होगा। वर्तमान के मित्र में इतनी मित्रता मान कर मत बैठ जाना, वह मित्र ही तुम्हारा शत्रु होगा।** इतिहास उठाकर देख लो। विवाद त्रैकालिक नहीं है, विसंवाद त्रैकालिक नहीं है। जिसके पीछे पूरी रामायण हो गई है, वही जीव तीर्थंकर बनेगा और जिसके पीछे जिसका घात हुआ, वही उनका गणधर बनेगा। जब लंकेश का जीव तीर्थंकर पद को प्राप्त होगा, तब सीता का जीव प्रतीन्द्र से च्युत होकरके गणधर पद को सुशोभित करेगा। कहाँ तीव्र बैर की दृष्टि और कहाँ घोर सम्बन्ध? विश्व में श्रद्धा-श्रद्धेय सम्बन्ध से बड़ा कोई सम्बन्ध नहीं होता है। जब महान् कोई तीर्थंकर होंगे तो महान् शिष्य गणधर के पद पर आसीन होंगे।

विवाद तो धर्म, अर्थ, काम का नाशक है। विसंवाद सबसे पहले धर्म का नाश करता है। आप जिस कुल में जन्मे हो, जिस सम्प्रदाय में जन्मे हो, जिस वंश में आप जन्मे हो, क्या यह शाश्वत् है? क्या इसी में जन्मते रहोगे? क्या इसी में जन्मते आये हो? व्यक्ति वस्तु की त्रैकालिकता को भूल करके तात्कालिकता के राग में धर्म को

खो बैठता है। एक जीव एक पर्याय में ही एक स्थान का नहीं रहा, तो वह अनन्त पर्यायों में एक गाँव का कैसे रह सकता है ? जिन गलियों में खेला था, जिन गलियों में खाया था, उन गलियों में मरने को मिल जाय, बहुत कठिन है। एक भव में ही तुम्हारा एक स्थान नहीं बचा, तो अनेक भवों में एक स्थान की क्या कल्पना कर सकते हो? मैं अमुख सम्प्रदाय मैं अमुख वंश का, मैं अमुख कुल का, मेरा कुल श्रेष्ठ है। इस कुल के श्रेष्ठ के राग में भीतर की श्रेष्ठता खोखली हो जाती है। उसका परिणाम निकलता है कि भिन्न कुल वाले को तुम मनुष्य नहीं समझ पाते हो और द्वेष करना प्रारम्भ कर देते हो। उसका परिणाम यह होता है कि नरकगति में पहुँच करके तुमको वहाँ की अनुभूति लेनी पड़ती है। इस युग में, विशेष करके पंचमकाल में यह तूफान चल रहा है, इस तूफान का शमन करना है तो न्यायशास्त्र पढ़ना पड़ेगा, 'प्रमेय-कमल-मार्तण्ड' ग्रन्थ का स्वाध्याय करना पड़ेगा। जिसने इस ग्रन्थ को हृदय से समझ लिया, वह धीरे-से पूछ लेगा, आप मेरे कुल में दोष लगा रहे हो कि ये ऐसा है, ये वैसा है, मेरे मित्र! मैं आपसे पूछे लेता हूँ कि तुम्हारा क्षत्रियत्व, तुम्हारा जैनत्व, तुम्हारा ब्राह्मणत्व इत्यादि को लेते हुये (प्रभाचन्द्र स्वामी लिखते हैं) विवाद किस बात में कर रहे हो ? अपने में मत ले जाना, मैं सामान्य व्याख्या कर रहा हूँ। तर्क की दृष्टि से देखना, बात कितनी गहरी है।

मित्र ! वंश को किस आधार पर शुद्ध मानते हो ? हे ज्ञानी ! माँ के नाम पर तू शुद्ध मानता है, कि पिता के नाम पर शुद्ध मानता है, कि दादा-दादी के नाम पर शुद्ध मानता है? बहुत गहरी बात है, बुरी लगे तो बहुत अच्छे से लग जाये। इस कुल को तुम किस नाम से शुद्ध मानते हो ? क्या तुम्हें अपने पिता की युवावस्था की चंचलता का बोध है ? किया क्या ? क्या आपको अपनी विद्यार्थी युवा दशा की चंचलता का बोध नहीं है ? कुमार अवस्था का पालन तुम्हारे दादा ने किया है, यह तुम्हें कैसे मालूम है? तुम्हारे वंश में जो दादा-दादी हुये हैं, इनके कुमार-कुमारी अवस्था का पालन हुआ है, यह तुम्हें कैसे मालूम ? जो माँ बनकर आयी है, जिसे तू माँ कह रहा है, उसका कुमार धर्म अच्छे से पालन हुआ कि नहीं ? यदि नहीं पालन हुआ है, तो तुम वंश के राग में आकरके किसी के प्रति अशुभ भाव क्यों ला रहे हो ? मत करो राग, मत करो द्वेष। निडरता हो हृदय में, तो सबसे बड़ा धर्म। तुम जहाँ निवास कर रहे हो, वहाँ

अच्छे से निवास करो। द्वेष को बाद में कहा जाता है, राग को पहले कहा जाता है। **लोग सर्वाधिक दोष द्वेष को देते हैं, जबकि द्वेष पहला दोषी नहीं है, राग ही पहला दोषी है।**

राग-द्वेष-द्वयी-दीर्घनेत्राऽकर्षण-कर्मणा।
अज्ञानात्सुचिरं जीवः, संसाराब्धौ भ्रमत्यसौ॥11/इष्ट.॥

जो दृष्टान्त अनेकान्त के लिये कहा गया है, वही दृष्टान्त दूसरी ओर ले जाते हैं। जैसे मथानी चलाते समय दोनों रस्सियाँ खिंचती हैं और ढीली होती हैं, तब बीच में क्या चलता है? राग-द्वेष की दो डोरियाँ हैं। नौती। इन दोनों डोरियों से **जैसे मथानी भ्रमण करती है, वैसे-ही जीव संसार में भ्रमण करता है। मथानी तो मात्र मटकी में घूमती है, तुम तो विशाल संसार-समुद्र में घूम रहे हो।** जब मेरी मृत्यु इस सम्प्रदाय से हो जायेगी, फिर किसका होऊँगा ?तुम्हारा राग नियत है क्या ? जिस पर तुम राग कर रहे हो, वह द्रव्य तेरे लिये नियत है क्या ? जिस पर तुम द्वेष कर रहे हो, वह द्रव्य नियत है क्या ? जिस पर राग-द्वेष दोनों कर रहे हो, वह द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव नियत है क्या ?आपको अपने दोनों बेटों के बेटों के प्रति एक-से भाव आ जायें, यह महान् तपस्या है। **अपने भावों को सम रखना बहुत कठिन है।**

कोटि-कोटि तीर्थों की वन्दना, कोटि-कोटि वर्षों की तपस्या कितनी ही कर लेना, जब तक जगत् के प्रति साम्य बुद्धि नहीं होगी, तब तक निर्वाणश्री की प्राप्ति संभव ही नहीं है, (व्यवहार दृष्टि)। लोगों ने व्यवहार को यूँ समझ लिया कि कुछ भी नहीं है। पहले व्यवहार की सम दृष्टि लाइये। जिस बेटे के यहाँ पिता रह रहा है, उसके प्रति भाव अलग होते हैं और जो बेटा पिता से अलग रह रहा है, उसके प्रति भाव अलग होते हैं। गृहस्थ जीवन में दोनों बेटों के प्रति साम्य अनुभूति यदि सीख गया है, उसको मुनि बन जाना चाहिये। दोनों के प्रति साम्य बुद्धि करना नहीं सीख पाया है, तो अभी अभ्यास करना चाहिये। सत्यता तो यही है कि जब तू घर में एक परिवार में साम्य अनुभूति नहीं रख सका, तो समाज के बीच में, विश्व के बीच में साम्य अनुभूति क्या रख सकेगा? **मोक्षमार्ग में आकरके गृहस्थी का वेदन करना श्रेष्ठ नहीं है, लेकिन गृहस्थी में रहकरके मोक्षमार्ग का वेदन करना श्रेष्ठ है। यदि घर में साधु की याद आये, तो वह महान् है और साधु बनकर घर की याद आये, तो तेरे से बड़ा अज्ञानी**

और-कौन होगा? चकौर बनना सीखो जो जमीन में होकर भी चंद्रमा को देखता है, लेकिन चील मत बनना जो आकाश में गमन करते हुये भी नीचे मांस के टुकड़े को देखता है। किस जगह पर कौन-सा प्राणी पड़ा हुआ है, उठा ले जाये। जो जीव रागियों के बीच में रहकर भी वीतरागता के चाँद को निहारता है, वह महान् है। जो वैरागियों के बीच में भी राग के माँस के टुकड़े को देखता है, वह चील-सदृश है।

जब जब कलह होगा तो धर्म का नाश होगा। धर्म का नाश नहीं करना हो तो क्लेश का विसर्जन कर लेना। विवाद होगा तो वैद्य, वकील और पुलिस मुस्करायेगी। विवाद होगा तो धर्म का नाश होगा, क्षमा परिणाम समाप्त हो जायेगा, स्मृति नष्ट हो जायेगी। किसी भवन में ऐसी अनुभूति होती है कि जैसे मंदिर हो। **जिसके माता-पिता धर्मात्मा हों, पुत्र-पुत्रियाँ, पत्नि धर्मात्मा हो और जिसके घर में प्रतिदिन जिनवाणी का वाचन होता हो, वह भले ही घर हो, परन्तु वास्तव में भावी भगवन्तों का मंदिर है। उस घर में भविष्य के भगवान् रहते हैं।** जहाँ णमोकार महामंत्र का पाठ चलता हो। भैया ! भोजन अलग बनता रहे, यह तो व्यवस्था है; लेकिन भैया भैया के भाव अलग न रहें, यह भावी भगवंतों की व्यवस्था है। नगर में जितने भी घर हैं, उन सबसे कहना-मेरे मित्र ! भवन की व्यवस्था अलग-अलग हो, कोई बात नहीं, यह तो व्यवस्था है, लेकिन भावों की भंगिमा अलग-अलग न होने पाये। भोजन अलग-अलग हो तो घर ही तो बढ़ गया, कमी क्या आयी है? यदि भाव बिगड़ गये, तो मेरे निज घर की व्यवस्था मिट जायेगी।

जब इन गलियों में निकलते हैं तो लगता है कि साढ़े अट्ठारह हजार वर्ष तक श्री जिन नमोऽस्तु शासन ऐसे ही जयवन्त रहेगा। भावी भगवन्तों का निवास है।

जिन जीवों की सल्लेखना श्रेष्ठ होने वाली है, उनके चेहरे अपने आप मुस्करायेंगे। उन जीवों की अंतिम श्वास श्रेष्ठ होनेवाली है। मटका पानी से भरा हो तो उसका ऊपर का भाव अलग दिखता है आर्द्र है और मटका खाली हो जाये तो फिर देखना कैसा दिखता है।

जिनके भीतर भावों की विशुद्धि का खून सूख चुका है, उनके चेहरे उसी मटके के समान रूखे हो जाते हैं, चेहरे पर स्निग्धता दिखाई ही नहीं देती है, और अज्ञानी जीव वैराग्य मान बैठा। जिस दिन दुकान अच्छी चल जाती है, उस दिन चेहरा बदल

जाता है। जिस दिन महाराज के आहार हो जायें, उस दिन श्रावकों के चेहरे देखो और जिस दिन आहार न हों, उस दिन का चेहरा देखो। जब किसी को एक जड़ रत्न मिल जाये तो आदमी का चेहरा बदल जाता है, तो फिर जिसके पास रत्नत्रय के तीन रत्न रखे हों, उस योगी का चेहरा लटक जाये, ये बात समझ में नहीं आती। जब आनन्द की अनुभूति आती है तो जीव का मौन तो होगा, लेकिन चेहरा बोलता मिलेगा। तब आचार्य पूज्यपाद भगवन्त को 'सर्वार्थसिद्धि' में लिखना पड़ा।

''मूर्त्तमिव मोक्षमार्गमवाग्विसर्गं वपुषा निरूपयन्तं''

जैसे अरहन्त की प्रतिमा कुछ भी बोलती नहीं है, लेकिन मुखपट्टी बांधनेवाले की मुख-पट्टी भी फिकवा देती है। चन्द्रगिरि पर्वत, अंतिम श्रुतकेवली भद्रवाहु स्वामी जैसे महान् योगियों की वर्गणायें उस पर्वत के कण-कण में भरी हुई हैं। उसी पर्वत की तलहटी में पार्श्वनाथ स्वामी का जिनालय है। कर्नाटक में मंदिर को 'वसदि' बोलते हैं। ज्ञानी बोले कि यह वही बस्ती है जहाँ से चन्द्रगुप्त चर्या को निकला करते थे। भारतभूमि का अंतिम सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य। दिगम्बर मुनि बनकरके जिसने भद्रबाहु स्वामी की शिष्यता को स्वीकार किया हो और भद्रबाहु स्वामी की गुफा में भद्रबाहु स्वामी के चरणों को अपने हाथों से लिखकरके अपने गुरु की आराधना की हो, ब्रह्माण्ड में गुरुभक्ति का इनसे बड़ा कोई उदाहरण नहीं मिलता। बारह वर्ष तक अपने गुरु के चरणों की आराधना करते रहे हों। जब जीवित रहे तो साक्षात् किये, फिर सल्लेखना के बाद भी उस पर्वत को छोड़ नहीं सके। जहाँ गुरु ने सल्लेखना की है, उस स्थान को कैसे छोड़ूँ? ये भी गुरुभक्ति है।

गुरुभक्ति मुक्ति प्रदान कराने में सहकारी होती है। उसे क्षुद्र शक्तियाँ, क्षणिक विभूतियाँ, छोटे कार्यों की सिद्धि क्या मायने रखती हैं? चन्द्रगुप्त स्वामी जिस स्थल से चर्या को निकलते थे, जहाँ उनके आहार देव कराया करते थे, वह बस्ती भी चन्द्रगिरि पर्वत के नीचे है। यह वह प्रतिमा है जिस प्रतिमा को देखने से नहीं, जिस प्रतिमा की मात्र तस्वीर देख करके कानजी भाई ने मुखपट्टी उतार करके फेंक दी थी। वह ये प्रतिमा है। जो श्वेताम्बर आम्नाय में उपाध्याय पद को सुशोभित कर रहा था, उस जीव के भाव बदल गये, 'ओ हो हो! अशरीरी स्वरूप को प्रदान करनेवाला रूप तो ये है। जिनबिम्ब दर्शन से सम्यग्दर्शन होता है, हेतु है। **धर्मोपदेश, जातिस्मरण, जिनविम्ब दर्शन—ये सम्यक्त्व उत्पत्ति के साधन हैं। निधत्ति व निकाचित कर्म के उपशमन**

कराने में कारण है अरहन्त बिम्ब की वन्दना, पञ्चपरमेष्ठी की वन्दना। तुम्हें कभी तीर्थंकर के चरण स्पर्श करने नहीं मिलेंगे, लेकिन अरहन्त की प्रतिमा में सिर लगाने को मिलता है। इसका मतलब पसीना छपाकर मत आ जाना, आसादना होती है। मित्र! ये है मूर्ति की महिमा।

खजुराहो के शान्तिनाथ जिनालय के सामने दो शेर रखे हैं। कभी मन करे तो उठवा मत देना। हो सके तो ऐसा संविधान बनाकर जाना कि इन दोनों शेरों को कभी मत उठाने देना। बड़ा रहस्य है। ज्ञानी के घर में बहू पधारी। इनकी परम्परा में था कि नयी शादी होकर आये तो जिनमंदिर जाओ और जिनसेन स्वामी का स्पष्ट कहना है कि शादी होते ही वर-वधू को सात दिन का ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिये और जिनालयों की वन्दना करने जाना चाहिये। यदि आपको महावीर-जैसी सन्तान चाहिये, तो अशुद्धि के पाँच दिन का संयम का पालन करना ही चाहिये। जिस कुल से बहू आयी थी, उस कुल में अरहन्तों के बिम्बों की पूजा नहीं होती थी। यहाँ माँ कहती है, बेटी ! आपको मंदिर जाना होगा। वह सीधा उत्तर देती है, 'माँ! मैं पत्थरों को नहीं पूजती।' लेकिन लोकपरम्परा का निर्वाह तो करना पड़ेगा। तुम्हारे सम्बन्धी आये हुये हैं, आप भले ही नहीं पूजना, परन्तु वहाँ तक चलो। बहू ने इतना स्वीकार कर लिया कि मैं चलूँगी अवश्य, लेकिन दर्शन नहीं करूँगी। माँ खुश हो गई।

"भवत्य भद्रोऽपि समन्तभद्र"। (यु.शा.)

इस सूत्र को अन्दर रखे हुये अन्दर-ही-अन्दर मुस्कराती हुई माँ नई बहू को खजुराहो के शान्तिनाथ जिनालय की वन्दना करवाने ले गई। जिनालय में अन्दर जाने के पूर्व उसको दो शेर दिख गये। वह नयी बहू कहती है, 'माँ! आप मुझे कहाँ लेकर आ गई हो? यहाँ तो शेर बैठे हुये हैं।' उसका यह उपहास था। परन्तु धन्य हो, ये होती है माँ की ममता कि सामनेवाला उच्छृंखलता वरत रहा हो परन्तु माँ गंभीर है। बेटी ! ये पत्थर ही तो है। माँ! लेकिन आकृति तो शेर की है, मुझे आकृति देखकर भय लगता है। माँ गद्गद् हो गई, उसे आनन्द आ गया, अब तो आज मेरा काम बन ही जायेगा। बोली, बेटी! घबराओ मत, ये तो पत्थरों के पिण्ड हैं। नहीं, माँ! ये पत्थरों के पिण्ड अवश्य हैं, लेकिन इनका आकार सिंह का है इसलिये डर लगता है।' बेटी ! जब तुझे पत्थरों के शेरों को देखकर डर लग सकता है, तो पत्थरों के भगवान् को देखकर वीतरागता

भी आ सकती है। वह बहू भगवान् के पास बाद में गई, पहले सासु के पैर पकड़ लिये, बोली, 'माँ ! मेरी बुद्धि ठीक हो गई। आपके जैसा गुरु जगत् में सबको मिले।' तब माँ धीरे-से बोली, बेटी ! तुझे मालूम नहीं है, मेरी आस्था में जहाँ कुन्दकुन्द होते हैं, एक ओर जिनसेन होते हैं तो दूसरी ओर समन्तभद्र स्वामी होते हैं। मैंने समझ लिया था, जिनसेन ने जो कहा था कि सात दिन ब्रह्मचर्य के साथ रहे, पहले जिनालय ले जाये, जिससे कोख में वे संस्कार आ जायें इसके गर्भ में, मंदिर की वेदी गर्भगृह कहलाती है। जब गर्भगृह में जिनदेव को देखकर आयेगी, तो अपने गर्भ में भावी जिनदेव को रखेगी। वे मातायें अभागिन हैं जो मंदिर नहीं आती हैं। गर्भावस्था में घर में बैठी रह जायें, उनको ज्यादा मंदिर आना चाहिये। ये गर्भगृह तो पाषाण का है, इसमें बिम्बभूत परमात्मा है; परन्तु तेरे गर्भगृह में तो भावी भगवन्त विराजते हैं। इसलिये माँ को कितने अच्छे से रहना चाहिये? जैसे गर्भगृह में अशुद्धि में प्रवेश नहीं होता है, ऐसे-ही गर्भवती माँ को किसी भी अशुद्ध द्रव्य को देखना भी पाप है। जैसे गर्भगृह को स्वच्छ रखते हो, ऐसे-ही गर्भवती माँ को सुरक्षित रखना चाहिये कि गर्भ में पलने वाला भगवान् विकृत न हो जाये। ये सब बातें ज्ञानी पण्डितों को सुनाना चाहिये। माँ धीरे-से कहती है, बेटी ! तुझे मालूम है, मैंने समन्तभद्र स्वामी को समझा है, 'युक्त्यनुशासन' ग्रन्थ में उन्होंने कहा है—

'भवत्य भद्रोऽपि समन्तभद्र।'

जिनके चरणों में अभद्र भी पहुँच जाये तो वह समन्तभद्र हो जाता है। पहले विशुद्ध बनेगा, फिर विश्राम करेगा, फिर श्रावक बनेगा, फिर मुनि बनेगा, फिर शुद्ध बनेगा। यह 'धवला' जी की भाषा है। जब भी जीव सम्यक्त्व को प्राप्त कर विशुद्ध होता है, फिर विश्राम लेता है, फिर आगे का काम करता है।

विवाद मनुष्यों के धर्म का नाश करता है। जैसे-ही कलह हुआ, नाश प्रारम्भ हो गया। भावी भगवान् कहाँ रह रहे थे? जहाँ पर मंगलाचरण हो रहे थे। वह भवन तो देवालय है जहाँ महामंत्र के नाद गूँज रहे थे। मानस में एक बात लिखी है कि सम्पत्ति कहाँ होती है? '**जहाँ सुमति तहाँ सम्पति नाना, जहाँ कुमति तहाँ विपति निधाना।**' साधु बनने के पहले ये सब साहित्य मैंने पढ़ लिये थे। **जिन लोगों को दरिद्री नहीं होना हो, तो अपने घर में सुमति बढ़ाइये। जादू-टोना, कलश, तंत्र-मंत्र कुछ भी**

काम में नहीं आयेंगे, क्योंकि तुम्हारे भीतर के मंत्र तो अशुद्ध डले हुये हैं। ये दुनियाँ के मंत्र क्या करेंगे ?

तेरे घर का बिजली का बोर्ड खराब हो गया, किसीको पकड़ कर ले जाओगे वह क्या करेगा ? मात्र पेंचकश ले जायेगा, लगायेगा कुछ नहीं, वहीं-के-वहीं जोड़ देगा। आप अंधेरे में बैठे थे, वह भीतर का वायर इधर-उधर हो गया, आप न-जानने के कारण अंधेरे में थे, उसमें मात्र वायर जोड़ दिया, प्रकाश हो गया। ऐसे-ही साधु करते कुछ नहीं हैं। जो तुम्हारे वायर इधर-उधर हो गये हैं, उनको ठीक कर देते हैं तो प्रकाश-ही-प्रकाश हो जाता है। बस, पेंचकश का कसना ही सीखना चाहिये, बाकी सब ठीक है। वे ही जीव नारकी बनते हैं, वे ही जीव देव बनते हैं, वे ही जीव भगवान बनते हैं। पेंचकश नहीं कसे गये, सो सब ढीले-ढीले हो गये। नरक में चले जाते हैं अंधेरे में। जिनके पेंचकस से कस गये, सो केवलज्ञान प्रकाश को प्राप्त हो गये, सिद्ध बन गये।

जिसके घर में कलह चल रहा है, वे नारकियों के स्थान हैं। कलह से काम का भी नाश होता है। चार बेटे थे, उस पिता से पूछना कैसे मुस्कराता है कि मेरे कामपुरुषार्थ के चार बेटे हैं। यदि चारों में झगड़ा हो गया और एक दूसरे पर बार कर दिया, विवाद ने कामपुरुषार्थ का नाश करा दिया। और कहीं पति पत्नी में झगड़ा हो गया, कोर्ट कचहरी तलब को गया, एक दूसरे धर्म से भ्रष्ट हो गये, कामपुरुषार्थ का नाश हो गया। जब विवाद होगा, तो तीन मुस्कायेंगे। वकील, वैद्य, पुलिस। अच्छे लड़े, सिर फूटे, सो पट्टी हमारे यहाँ बंधेगी, सो उसको पैसा मिलना है। अच्छे लड़े, विवाद हुआ, सो न्यायालय में हमारे पास आयेंगे। पुलिस सबसे पहले मुस्करायेगी कि लड़ो, जेब हमारी भरी जायेगी। तुमने जितना कमा-कमा कर रखा था, एक दिन के विवाद में तुम सब नंगे हो गये। विवाद करके नंगे हो गये सो नंगे ही रह जाओगे और निर्विवाद होकर नंगे होओगे तो दिगम्बर हो जाओगे।

एक-एक श्लोक में कितने रहस्य छुपे हुये हैं, निकालने की प्रज्ञा आनी चाहिये। मित्र! विवाद से शरीर का भी नाश हो जाता है। **बैरी और बन्धुजन में कोई नित्य नहीं है। आज बैर है, कल मित्रता हो जायेगी और आज मित्रता है, कल बैर हो जायेगा। इन सब को नित्य मत मानो। क्लेश करना बन्द कर दो। आँखें खुली हैं, सो तुम देख लो। आँखें बन्द हो गई, सो देख भी नहीं पाओगे।**

कर्म के फल को भोगनेवाले जीव! यह तो कर्म का विपाक है, कब आ जाये, कब चला जाय। यदि तनक भी समझ में आ रहा हो, जिनसे किञ्चित् भी विकल्प हो गया हो, तो आज उनके पैर छू लेना, कहना कि कोई नियत नहीं है कब क्या हो जाये।

दो डोलियाँ मिली थी। एक जा रही थी, एक आ रही थी। एक का गौना होकर आया था, एक डोली श्मशान की ओर जा रही थी। दोनों डोलियाँ टकरा गई। दोनों बतियाने लगीं, 'बहन! अन्तर कुछ नहीं है, कल तुम्हें भी यहीं आना पड़ेगा।'

वे मानव धन्य हैं जो नित्य ही क्षमा से युक्त हैं। वे दूसरे से ठगे जाने पर भी **'विवादं नैव कुर्वते'।** तुम ठग लो, मुझे मालूम है कि तुम्हारी दृष्टि में हम ठगे जा रहे हैं, परन्तु सत्य यह है कि ठगे तुम ही जा रहे हो। कर्म हमें नहीं, तुम्हें ही सतायेंगे।

एक गाँव की घटना है। ट्रस्टी लोग चतुर होते हैं। जैन भवन में संघ रुका हुआ था। संघ आने के पहले ये किसी शादी के लिये भवन दे चुके होंगे। बगल में एक भवन और था। ज्ञानी लोग कहते हैं, 'महाराज जी! उस भवन में बहुत अच्छी व्यवस्था है।' मैं समझ गया। वे बोले-स्वाध्याय के लिये भी अच्छा है, खुली हवा भी है, वातावरण भी अच्छा है।

मैंने कहा, भाई! सुन । तू चिन्ता मत कर। तू जहाँ रोकेगा, वहीं संघ ठहरेगा; लेकिन तुम घुमाकर मत बोलो, सीधी कहो कि यहाँ बरात रुकना है इसलिये महाराज वहाँ चलो। घुमा कर बोली बात सही में बिल्कुल अच्छी नहीं लगती। सीधा-सीधा बोलना बहुत अच्छा लगता है। कुछ लोग ज्यादा सीधे बन जाते हैं, वे भी रूखे बन जाते हैं। थोड़ा विवेकपूर्वक बोलना चाहिये, सीधी भी नहीं बोलना कि महाराज! इते बारात रुकने है उते चलो। 'पण्डित जी! खा-पी के आये हो, कि नई आये हो ? खाने हो तो खालो, नहीं तो भूखे मरोगे।' बेचारा सोचेगा 'बस, बेटा! पेट भर गओ।' इतने प्रेम से बोलो कि कोई को न भी खाना हो तो कहेगा कि इतने प्रेम से कह रहा है, चलो।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।



दुष्टों के साथ विवाद नहीं करना

श्लोक : वादेन बहवो नष्टा येऽपि द्रव्यमहोत्कटाः।
वरमर्थपरित्यागो न विवादः खलैः सहः॥293॥

अन्वयार्थ : (वादेन बहवः नष्टाः) परस्पर विवाद उठने से बहुत नष्ट हो चुके, **(येऽपि द्रव्यमहोत्कटाः)** बड़े-बड़े धनिक भी नष्ट हो गये, अतः **(खलैः सह विवादः न वरं अर्थ परित्यागः)** दुष्टों के साथ झगड़ा करना अच्छा नहीं, किन्तु द्रव्य का त्याग करना पड़े तो वह ठीक है।

भावार्थ : हे जीव ! परस्पर में विवाद से अनेक परिवार/कुल नष्ट हो गए हैं, अतः दुष्ट-स्वभावी के साथ झगड़ा नहीं करना, यदि द्रव्य को छोड़ना पड़े तो छोड़ देना।

॥सद्-देशना॥

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज 'सारसमुच्चय' जी में अन्तस् के काषायिक भाव के उपशमन करने की व्याख्या कर रहे हैं। **हे मुमुक्षु ! निज दृष्टि है तो, जगत् से अपरिचित हो जाओ, बहुत बड़ी साधना है। जो जीव वैराग्य में राग को उत्पन्न करके वैरागी होता है, वह अपने साथ धोका करता है। उसने राग के विषय को बदल दिया है, वैराग्य को प्राप्त नहीं हुआ है।** जिस जीव को मुनिदीक्षा अच्छी लगती हो, उसे मुनिदीक्षा नहीं लेना चाहिये। आपको लगता होगा कि महाराज कितना उल्टा बोल रहे हैं, परन्तु यथार्थ मानना, यही सीधा बोल रहा हूँ कि जिसको मुनिदीक्षा अच्छी लगे, उसे मुनिदीक्षा नहीं लेना चाहिये। जिसे विषय-कषाय अच्छे न लगें, उसे मुनिदीक्षा ले लेना चाहिये। कहीं ऐसा तो नहीं हो गया कि कपड़े पहनते-पहनते आपको उदासी आ गई हो, घर के लोगों के साथ सम्मान मिलना बन्द हो गया हो? कुछ ऐसा नया काम करो जिससे सम्मान मिलेगा, सम्मान की वृद्धि होगी। आपने नगर में आये मुनियों को देखा कि क्या सम्मान होता है, क्या पूजा होती है। उस पूजा से प्रभावित होकर यदि आप मुनिराज हो लिये, तो मुनिराज तो हो लिये, लेकिन यह मालूम नहीं था कि जिसकी पूजा हो रही है उसके पास पुण्य की सत्ता भी थी। भेष की सदृश्यता तो मिल जायेगी, लेकिन पुण्य की सदृश्यता नहीं मिलती, भावों की सदृश्यता नहीं मिल सकती।

पूजा पुण्य की सत्ता में होती है और यश भाग्य की सदृश्यता से मिलता है। पूजा भेष की सदृश्यता से हो जाये, परन्तु मोक्ष भावों की सदृश्यता से ही होगा। पुण्य सदृश्य नहीं है तो भेष की सदृश्यता तो मिल जायेगी, लेकिन पूजा की सदृश्यता नहीं मिल पायेगी। मुनिमुद्रा से प्रभावित होकर मुनि मत बनना, मुनि की तपस्या व संयम से प्रभावित होकर मुनि बनना। कहीं आप तपस्या से प्रभावित हुये, कहीं तपस्वी की क्रिया से प्रभावित हुये और मुनि बन भी गये, परन्तु भीतर का ज्ञान नहीं था, बाहरी तपस्या से प्रभावित हुये थे, तब भी वैराग्य नहीं है। जैसा एक साधक तपस्या कर रहा था, वैसी तपस्या आप भी करना प्रारम्भ कर दिये, लेकिन वह जीव अनुभूति आनन्द लेने के लिये तपस्या कर रहा था, तुम मात्र तपस्या में ही तपस्या कर रहे हो। तपस्या के लिये ही मात्र तपस्या में लग गये तो वह तपस्या तुम्हारे लिये यह उद्देश्य लेकर आयी थी कि सामने वाले का तपस्या करने से नाम हो रहा है तो वैसी तपस्या मैं भी कर सकता हूँ। ये तप मद में बदल जायेगा। मद में बदले वह तप 'तप' नहीं है, माया में बदले वह तप 'तप' नहीं है, लोभ में बदले वह तप 'तप' नहीं है, क्रोध में बदले वह तप 'तप' नहीं है। क्षमादि धर्मों से युक्त हो जाये, उसका नाम तप है। कहीं वैराग्य में तो राग नहीं हो गया? विषयों से वैराग्य है, तो वैराग्य है और वैराग्य में वैराग्य है, ब्रह्मचारी को कौन पूछता है ? क्षुल्लक ऐलक की क्या कीमत है? मैं तो मुनिमुद्रा में हूँ। रूप अलग से दिखाई देता है। ऐसा भाव तेरे भीतर था, तू योगी बन भी गया, लेकिन विश्वास रखना, सिद्धि सम्भव नहीं है।

एक दिगम्बर तपोधन वियावान् जंगल में बैठे थे। शान्तचित्त होकर तपस्या में लीन थे। उनके तप की प्रशस्त वर्गणाओं का नियोग निग्दिगंत में व्याप्त हो गया था। क्या मंत्री, क्या संत्री, क्या सम्राट्। सेठ साहूकार सभी उनके दर्शन करने आया करते थे। परन्तु चौबीस घण्टे तो भीड़ रहती नहीं है, भीड़ तो समय पर ही हो पायेगी। ऐसा भी क्षण आता था जब कोई नहीं होता था । एक गडरिया अपनी भेड़ों को लेकर जंगल में प्रवेश किया और देखता है कि मेरे पास कम-से-कम भेड़ें तो हैं, इनके पास तो कुछ भी नहीं है। मैं अपने आपको गरीब मानता था, लेकिन आज सन्तुष्टि हुई कि कम-से-कम मेरे पास भेड़ें तो हैं, कपड़े तो हैं, इनके पास तो एक धागा भी नहीं है, कितना गरीब आदमी बैठा हुआ है। कुछ भी हो, आज मैं देखूँगा कि ये करते क्या हैं। वह वहीं एक वृक्ष के नीचे बैठ गया, योगी एक शिलातट पर ध्यानस्थ हो गये।

जैसे-ही मध्याह्न की बेला आई, एक जुलूस-सा आते दिखा, उसके भाव बदल गये। **जीवन में जीना अलग विषय है और प्रत्येक तत्त्व का अन्वेषण करके जीवन जीना अलग विषय है।** पानी की धारा पानी में मिल जाये तो मालूम नहीं चलता कि कुछ हुआ कि नहीं ? जब प्रचुर अवस्था में दूसरी तरफ से पानी आते दिखाई दे जाये तो समझ में आता है कि कोई परिणमन हो रहा है।

आप अपने घर में रहते हो, आपके घर के सदस्यों के भीतर क्या क्षमतायें हैं? न पुण्य की क्षमतायें समझ में आती हैं, न पाप की क्षमतायें समझ में आती हैं। जब आपके घर में कोई मेहमान आ जाये तो आप एक मिनिट में समझ लेते हो कि इसके आने से घर का वातावरण कैसा हो रहा है। कुछ ऐसे लोग आते हैं जिनके प्रवेश करते ही क्लेश प्रारम्भ हो जाता है। कुछ ऐसे लोग आते हैं जिनके प्रवेश करते ही घर मंगलमय हो जाता है। संघ में लोग प्रवेश करते हैं, एक त्यागी आये तो सभी त्यागी क्लेश को प्राप्त हो जायें और उसके जाते ही संघ में शान्ति-ही-शान्ति। एक व्यक्ति आ जाये तो उसको देखते ही लोग गद्गद् हो जायें। इस विषय को समझें। समूह की पुण्य वर्गणायें, समूह की पाप वर्गणायें इस क्षेत्र को प्रभावित करती हैं। तिर्यञ्च पशु गाय, भैंस, घोड़ा, ऊँट इनके भीतर भी शुभाशुभ परिणतियाँ होती हैं। एक घोड़ा घर में आ जाये तो घर का वातावरण बदल जाये और एक घोड़ा जाये तो घर का वातावरण बिगड़ जाये। यही पुरुष और स्त्री के भीतर है। जब उस गड़रिया ने देखा कि भीड़ आ रही है, उस भीड़ को देखकर उसके भाव परिवर्तित हो गये कि क्या होने वाला है? कहीं लोग मुझे पकड़ने तो नहीं आ रहे? जो अभी तक सोच रहा था कि मैं इस पुरुष को देखकर सुखी हूँ। इसके तन पर धागा भी नहीं है, मेरे पास तो वस्त्र हैं। भले फटे ही सही, लेकिन मैं इससे बड़ा आदमी तो हूँ। भैया ! श्री से सुखी अपने आपको मत मान लेना। छल-कपट की विद्या सीख कर अपने आपको सुखी मत मान लेना, छल कपट की विद्या सीख लेने से अपने आप को श्रेष्ठ मत समझ लेना। दुनियाँ में भ्रमणशील होने से अपने आपको सुखी मत समझ लेना। अभिमान की अधिकता से अपने को श्रेष्ठ मत मान लेना। तो ? इस विद्या को भी समझो।

उपरिम-उपरिम जाति के देव '**गतिशरीरपरिग्रहाभिमानतो हीनाः**'।

श्रेष्ठ देव अधिक विचरण नहीं करते। ये जो लग जाते हैं भूत, व्यन्तर, आदि क्षुद्र

जाति के देव हैं। आपको तो ऐसा कहने में भी भय लगता है कि कहीं लग न जायें। मैं तो कहता हूँ कि जो नीच जाति के देव रहते हैं, वे ही लगते हैं। यहाँ लगने की ताकत नहीं है, मैं तो बोल रहा हूँ। जितनी सामर्थ्य अपने अन्दर है, उतनी सामर्थ्य उनके अन्दर नहीं है। लगते उनको ही हैं, जो अपनी भीतर की शक्ति को कमजोर करते हैं, उनको ही सता पाते हैं। **हर व्यक्ति को हर व्यक्ति नहीं सता पाता। तुम जरा दब जाओगे तो सामनेवाला तुम्हें सताने लगेगा।** उपरिम जाति के देव यत्र-तत्र विचरण नहीं करते, वे व्यर्थ में घूमते नहीं हैं। श्रेष्ठ पुरुष अपने स्थान पर ही शोभा को प्राप्त होता है, इसलिये गमन अधिक नहीं करना चाहिये। समर्थ हैं, लेकिन गमन नहीं करते। उत्कृष्ट जाति के देवों की शरीर की ऊँचाइयाँ भी छोटी हैं। अवगाहना बड़ी नहीं है। वे विक्रिया से बना सकते हैं। विश्वास रखना, **जितना श्रेष्ठ पुरुष होगा, वह मानी नहीं होगा। सज्जन होगा, उसको मान कषाय नहीं होगी।** जो भीख माँगा करते थे, किसी योग से उनके घर में पैसा आ जाये, तो उनके अभिमान देखना। जितना सम्राट् को नहीं होगा, उतना उन्हें होता है। कुछ लोगों की सोच होती है कि यदि हम किसी से अच्छा बोल देंगे तो शायद उसका सम्मान बढ़ जायेगा। ऐसे अपने मान से ग्रसित होकर जब भी किसी से बात करेगा तो तू-तड़ाके से करेगा। वह ये समझ रहा है कि मेरा ऐसा बोलने से सामनेवाला डर जायेगा और मेरा मान बढ़ जायेगा। **दुर्जन व सज्जन पुरुष, रंग दोनों के एक-से होते हैं, लेकिन वाणी एक-सी नहीं होती है। जो वर्ण से महान् बनने की चेष्टा करता है, वह कौये जैसा होता है।** अरे! तुम वर्ण से क्या पहचान कर रहे हो ? पहचान तो वाणी से होती है। कितना ही पीटा जाय, तब भी मृदंग ध्वनि ही देता है। धन्य हो उस चन्दन को, वसूले से छीला जाता है, तब भी अपनी सुगन्ध नहीं छोड़ता, बल्कि छीलनेवाले को भी सुगन्धित कर देता है। साधुपुरुष के तन को नष्ट भी कर दिया जाय, तब भी दुनियाँ को सुगन्ध ही देते हैं। **चन्दन को चाहे अग्नि में झोंक दो, चाहे सामान्य लकड़ी की भांति छील दो, लेकिन चन्दन सुगन्ध ही देता है। यही सज्जनों की दृष्टि है।**

देह की साधना के साथ-साथ भाषा और भाव की भी साधना हो। **जो भाषा और भावों की साधना नहीं कर पाता, वह मात्र तन की साधना करके शरीर को तो पुजवा लेगा, लेकिन स्वयं पूज्य नहीं हो सकेगा।** भाषा की साधना करो। एक वीणावादक

वीणा बजाने की कितनी साधना करता है, तब ध्वनि निकाल पाता है और विश्व में वीणावादक बन पाता है। विश्व में वाद्य यंत्रों की मधुर ध्वनि निकालने की साधना करने वाले कोटि-कोटि जीव हैं, परन्तु अपने कण्ठ को ही वीणा बना करके ध्वनि निकालने वाले बिरले जीव हैं। **जो साधना के क्षेत्र में अपनी वाणी को ही वीणा बना लेते हैं, उनकी साधना का फल यह होता है कि सर्वांग से दिव्यध्वनि खिरती है।** इसके लिये बहुत साधना चाहिये। माताओ ! सुन रहे हो? उपवास तो आप कर लेते हो, बहुत अच्छा है कि मौन साधना और बढ़ाइये। मौन साधना बढ़ा लोगे तो विश्वास रखना भविष्य की पर्याय में मुनि बनने का अहोभाग्य मिलेगा। और **मुनि बन कर भी मौन साधना नहीं कर पाओगे तो विश्वास रखना, भविष्य की पर्याय में मूक रहने का अवसर मिलेगा।**

वह गड़रिया सोच रहा था कि मेरे पास तो कुछ है, इनके पास तो कुछ भी नहीं है। महापुरुष परिग्रह से हीन होते हैं। सर्वार्थसिद्धि के देव के पास न अधिक परिग्रह होता है न अभिमान होता है न अधिक भ्रमणशीलता होती है। सर्वार्थसिद्धि का देव कभी तीर्थंकर का कल्याणक मनाने भी नहीं जाता। वह परमशुक्ल लेश्या में बैठा हुआ है। तैंतीस सागर तत्त्वचर्चा मात्र में जाते हैं। सरस्वती की ऐसी अलौकिक महिमा होती है कि आप यदि गमन करोगे तो कितना घूम पाओगे? यदि वह वर्णन ग्रन्थ में होगा, तो आप एक कमरे में बैठकर पढ़ लेना, आपको गली गली का ज्ञान हो जायेगा। एक कक्ष में बैठ करके तीनों लोकों की यात्रा कराने का साधन शास्त्र है। शरीर से जाओगे तो घूम ही नहीं सकते हो। सर्वार्थसिद्धि का देव भ्रमण नहीं करता। तैंतीस सागर तक जिनवाणी की व्याख्या करते हैं, आपस में तत्त्वचर्चा करते हैं और ऐसी जिनवाणी बोलते हैं कि उसको पुनः दोहराते नहीं हैं। सोचिये, कितना अगाध श्रुत होगा। तैंतीस सागर तक तत्त्वचर्चा करते हैं। उनके पास कोई परिग्रह नहीं है। लौकान्तिक देव, ब्रह्मर्षि एक-भव-अवतारी होते हैं।

ग्रन्थ खोलकर अध्ययन करने वाले जीव इतने ज्ञानी नहीं हैं। जगत् में ऐसा कौन-सा द्रव्य है जो मेरे लिये स्वाध्यायभूत नहीं है, मेरे स्वाध्याय का विषय नहीं है? ग्रन्थों में जो लिखा गया है, जगत् के द्रव्यों का ही तो वर्णन है। आपसे जो चर्चा हो रही है, वह जगत् के देखे द्रव्यों की ही तो व्याख्या है। वही तो ग्रन्थों में है। आपको शास्त्र

न भी मिले और स्वाध्याय का नियम है, तो प्रकृति में ऐसा कोई पदार्थ नहीं है जो मेरे स्वाध्याय का कारण न बनता हो। दर्पण देख रहे थे, दर्पण देखते-देखते चक्रेश के लिये यम का दूत आ गया, एक बाल सफेद आ गया, राज्य छोड़कर जंगल में चले गये। ग्रन्थ पढ़नेवाले जितने वैरागी नहीं हुए हैं, उतने प्रकृति को देखकर वैरागी हुये हैं, उनकी संख्या सर्वाधिक है।

जब गज पर सवार होकर जा रहे थे तो वृक्ष खड़ा हुआ दिखा, जब वापस लौट कर आये तब वृक्ष अवनी-तल पर सो चुका था। ओह! यह जगत् की अनित्यता है कि जो खड़ा था क्षणमात्र में वह जमीन पर आ गया। पर्याय के विनशने में समय नहीं लगता। देखो, ये जीव शेर-जैसे दहाड़ता था, आज शान्त बैठे हुये हैं। लगता है कि इस जीव ने वृद्धत्व का बोध कर लिया है। जिस बूढ़े को वृद्धत्व का बोध हो जाता है, फिर वह बूढ़ा बनकर नहीं जीता, फिर वह साधु बनकर जीता है। जिस बूढ़े को वृद्धत्व का बोध नहीं होता है, वह बूढ़ा होकर नहीं जीता, वह युवा होकर जीता है। चंचल चित्त, आकांक्षायें तीव्र, शरीर तो बूढ़ा हो गया, लेकिन उसका मन बूढ़ा नहीं हुआ। जिसने समझ लिया है कि जब शरीर काम कर ही नहीं रहा है, तो शरीर से काम करानेवाले को और ठण्डा कर लो, इसी का नाम साधु है। **शरीर के ढलते-ढलते भावनाओं को उठा दो, शरीर के क्षीण होते-होते कामनाओं को क्षीण कर दो, शरीर के क्षीण होते-होते इच्छाओं को सीमित कर दो, तो वृद्धावस्था साधुभूत होगी।**

दादा जी ! जैसा भोजन आप पहले पचा लेते थे, वैसा अब तो पचता नहीं होगा? नहीं। यदि तू घर में ऐसा कहेगा कि मेरे से बादाम का हलुआ नहीं पचता, तो घर की बहुयें बेटियाँ कहेंगी कि बूढ़ा तो हो गया, अब क्या पचायेगा? अपमान और हो जायेगा। बेटा ! जीवन भर खाया है, अब मन कर रहा है कि कुछ वस्तुओं का त्याग कर दूँ, सो ये बादाम के हलुये, काजू, किशमिश, इन सब का मैं त्याग करता हूँ। अब आप मेरे को बार-बार परेशान नहीं करना। ऐसा वही कर पायेगा जिसने इच्छाओं व वासनाओं को दूर कर दिया है। नहीं-तो यह भी कह सकता था, बेटा ! अब काजू चबते नहीं हैं, बादाम चबती नहीं है, इसलिये त्याग कर रहा हूँ। नहीं, मैं इच्छाओं का दमन कर रहा हूँ। तू मेरी बिटिया-जैसी बहू है, तू पीस कर भी तो खिला सकती थी। दाँतों से चबाते नहीं बनता तो पीस-पीस कर चना खा रहे हो। जब दाँतों में तोड़ने

की सामर्थ्य बची नहीं है, तो मैं मन से कहता हूँ कि स्वाद लेने की सामर्थ्य को और-कम कर दूँ। जब देख लिया कि शरीर में खाने की क्षमता कम हो चुकी है, तो धीरे-से कहना, बेटा ! अब मेरा मन कहता है कि आज से मैं एकासन करूँगा। तो बेटे-बहू कहेंगे नहीं, पिताजी! अभी नियम मत लो, जो चल जाये उतना शाम को ले लेना। तो आपका सम्मान बढ़ गया। तुमने हाय-हाय की कि ये स्वाद नहीं आता, ये स्वाद नहीं आता, तो बहू कहेगी कि इस बूढ़े से कहाँ पाला पड़ गया ?

साधना है क्या ? सल्लेखना है क्या ? समाधि है क्या ? शरीर मना करता जाये तो मन को आप समझा देना, इसी का नाम तो समाधि है। और असमाधि किसकी होती है? **शरीर काम करना भूल जाय, शरीर काम करने में असमर्थ हो जाये और मन काम करता रहे, इसी का नाम असमाधि मरण है। जिन जीवों के शरीर कमजोर होने पर भी मन कमजोर नहीं हो पाते हैं, वे अंतिम समय में परिपूर्ण अनादर को प्राप्त हो लेते हैं। जिनके शरीर काम करना बन्द कर देते हैं और वे अपने मन को सँभाल लेते हैं, वे सम्मान को प्राप्त होते हैं।** बहुत अच्छा किया, मैं देख रहा हूँ कि तुम किसी को सलाह देते भी नहीं दिखते हो। युवा कहते कि मैं भी कुछ करना चाहता हूँ। ठीक है बेटा! मैं देख रहा हूँ, तुम करो। अब मैं सलाह दूँगा, तो मेरा अपमान होने लगेगा। तुम सलाह लेने आओगे तो मेरा सम्मान होगा। प्रत्येक जीव को सलाह देने के लिये वकील बन जाना चाहिये। भले फीस मंदिर की गोलक में डाल देना, लेकिन कोई सलाह माँगने आये तो उससे फीस जरूर लेना। फीस इसलिये लेना कि सलाह लेनेवाले को महसूस होना चाहिये कि ये सलाह मैं पैसा खर्च करके लाया हूँ। तो वह तुम्हारी सलाह की गरिमा रखेगा, सम्मान रखेगा और जिस दिन से आपने बिना पूछे, बिना पैसे के सलाह देना शुरू कर दिया, तो व्यक्ति कहेंगे कि तुम सलाह देना ही जानते हो और-कुछ नहीं जानते हो।

वृद्ध-अवस्था में वकील बन जाना चाहिये पैसा लेनेवाला। जिसको तुम सलाह दोगे, तो सलाह की कीमत होगी। नहीं-तो मौन लेकर बैठ जाना। मुझे मालूम है कि अब मेरी सलाह कोई मानने वाला है नहीं, तो धीरे-से कह देना कि मेरा आज मौन है।

जब बारिस होती है तो मेढकों की आवाज आती है। जहाँ मेढक टर्रा रहे हों, वहाँ कोयल जाकर कूके, तो कौन सुनता है ? **जहाँ दर्दुर-जैसे लोगों की आवाजें चल रही**

हों, वहाँ सज्जन पुरुषों को मौन ही अच्छा लगता है। जब कोई सुनना ही नहीं चाहता है, तो अपनी वाणी को व्यर्थ क्यों नष्ट करूँ? मौन ले लो। विवाद को दूर रखना है तो मौन ले लो, अन्यथा यश चला जायेगा, अपयश मिल जायेगा यदि मौन नहीं रह पाये तो।

उस गड़रिया का भाव बदल गया। जैसे-ही भीड़ उस वृक्ष से तिरछी मुड़ी और उन साधु के पास पहुँच गई, उसमें मंत्री व सम्राट् भी थे और सेठ लोग भी थे। मुनिराज के उपदेश सुनने आये थे। जैसे-ही नमोऽस्तु निवेदित किया, सभी लोग बैठ गये, तो गड़रिया जो भेड़ों की ओर मुख किये था उसने भी साधु की ओर मुख कर लिया। चिन्तन की धारा और बढ़ती चली गई—मैं तो सोचता था कि मैं धनवान हूँ, इनके पास तो धागा भी नहीं है, तब भी ये राजा-महाराजा बैठे हुये हैं। मेरे पास तो भेड़ें भी हैं, लेकिन कोई पूछ भी नहीं रहा है, जबकि जंगल में हम दो ही हैं। जरूर कोई बात होना चाहिये। उपदेश सुनकरके सारी भीड़ चली गई। अब वह गड़रिया पहुँचा, देखूँ तो ये कौन-सा आदमी है? उनके बगल में पिच्छी-कमण्डल रखा हुआ था। वह बोला, 'महात्मन् ! आप भोजन कब करते हो?, यह जगत् की लीला है, **जीव का जितना क्षीण पुण्य होगा, उतनी ही भोजन की बात करेगा। जितना क्षीण पुण्य होगा उसका उतना भोजन अधिक होगा। जितना पुण्य प्रबल होगा, उसका भोजन कम होगा। पापीजीव का भोजन अधिक होता है। जब पुण्योदय होता है, तो अल्प भोजन ही उनके शरीर का सौष्ठव रखता है।** मुनिराज जब चर्या को निकले तो गड़रिया कहता है मैं चलकर तो देखूँ कि ये जाते कहाँ हैं? जब महाराज आहार को निकले, तो नगर में सभी लोग पड़गाहन को खड़े थे 'भो स्वामिन्! नमोऽस्तु नमोऽस्तु।' अब वह गडरिया कहता है कि इनके तो बड़े मजे हैं। कपड़ा नहीं पहने। जब इनके पास राजा आ सकता है, तो इनको बहुत बड़ा आदमी होना चाहिये। ये बर्तन भी नहीं लिये भीख माँगने को। क्या स्वाधीन वृत्ति है। लोगों को तो ये सोचना पड़ता है कि सबकुछ छोड़कर साधुभेष रख ले, तब भी कम-से-कम उसको इतनी चिन्ता रहती है कि वह खाने के बर्तन तो रखता है। यदि भिखारी भी होगा तो कटोरा रखता है। धन्य हो इनकी महिमा, क्या स्वाधीन वृत्ति है। खाने के बर्तन तक नहीं रख रहे हैं, अंजुली लगा रहे हैं। आप भोजन करने जाओ और कोई अच्छे से न बिठाये, तो नाराज हो जायेगा। हमें कोई टेंशन ही

नहीं है। बैठना ही नहीं है, खड़े-खड़े भोजन करना है। धन्य हो स्वाधीनता। क्या अलौकिक जीवन है। जब पड़गाहन हो गया, तो श्रावकों ने बड़े अच्छे-अच्छे आहार कराये। अब वह गड़रिया सोचता है कि भेड़ें छोड़कर तो आया हूँ, अब भोजन करके चलूँगा। किसी श्रावक ने सोचा कि महाराज के साथ आया है, चलो इसको भी भोजन करवा दो। अब माँ कहती है कि ये जो बच्चा है, सो इसको दे दो। अब उसने खाना शुरू किया। जब पूरा समाप्त हो गया, तो दो बाजरे की रोटी और दे दो। ये तो बहुत खाता है, चलो। बेचारा खाता जाये और सोचता जाये कि यह क्या लीला है? ये उनको तो बादाम का हलुआ खिला रहे थे और मुझे बाजरा की रोटी दे रहे हैं, वह भी चने की साग के साथ। ये तो मेरे घर में ही होता है। बेचारा जंगल पहुँचा, तब तक भेड़ें इधर-उधर चली गईं।

अब वह महाराज के पास पहुँचा, बोला—मेरे मन में एक बहुत बड़ी जिज्ञासा है। आपके भक्त कैसे हैं ? आपको तो बादाम का हलुआ खिला रहे थे, मैं सोच रहा था कि जीवन में एक बार तो अच्छा खाने को मिलेगा, लेकिन मुझे तो वहाँ भी बाजरे की रोटी और चने का साग खिलाया गया। बेटा! इन द्वन्द्वों में मत पड़ो। बात ऐसी है कि असुर जाति का देव नरकों में भी चला जाय तो उसको नरक की वेदना नहीं होती है, परन्तु निगोदिया जीव सिद्धशिला पर रहता है तब भी उसको सिद्धों का वेदन नहीं होता, उसको तो वेदन निगोद का ही होता है। जो जीव जितना पुण्यात्मा होता है, एक ही जगह पर वह सुखी रह लेता है और पाप का उदय है तो उसी घर में नौकर भी दु:खी रहता है। इसलिये ये मत देखो कि सामने वाला सुखी क्यों और मैं दु:खी क्यों ? **तेरा पुण्य प्रबल है तो कहीं भी रह लो, सुखी रहोगे और पुण्य क्षीण है तो कहीं भी रहो, कुछ नहीं।** इसलिये इन द्वन्द्वों में मत पड़ना कि बड़े भैया के पास इतना क्यों हो गया, मेरे पास इतना क्यों नहीं हुआ? जगत् में कहीं चले जाना, **हाथ में सिक्का है तो जगत् में सिक्का है, हाथ में सिक्का नहीं है तो कहीं भी सिक्का नहीं है। जिसका पुण्य का सिक्का दमक रहा है, वह वियावान जंगल में भी राज्य कर लेता है। जिसका पुण्य का सिक्का क्षीण हो गया है, उसे राजमहल में भी फाँसी लग जाती है।**

जगत् में हीनभावना करके हीन मत बन जाओ, दीन भावना करके दीन मत बन जाओ। अपने आप में यह मानकर चलो कि मेरे पास तो सबकुछ है। ज्ञान-दर्शन से

बढ़कर सम्पत्ति क्या है? सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र से बढ़कर सम्पत्ति क्या है ? सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र से बढ़कर टीका क्या है? इससे बड़ा कोई टीका नहीं है। इसलिये आचार्यभगवन् कह रहे हैं 'हे मुमुक्षु ! जितने नष्ट हुये, हो रहे, होंगे, पाप से हुये हैं। वंश के वंश/राजघराने नष्ट हो गये। नेपाल नरेश का क्या हुआ ? पूरा राजघराना घर की कलह में समाप्त हो गया। बाहर की इन्द्रिय से दिखे या न दिखे, लेकिन भीतर का दिखता बन्द न हो जाये। पन्ना में ड्योढिया जी थे। बड़ा मजाकिया जीव था। एक दिन बोला, महाराज! हम मंदिर आते हैं तो हमारे मित्र चिढ़ाते हैं। कहते हैं कि तुम मंदिर क्यों आते हो ? मैंने पूछा कि मुझे मंदिर क्यों नहीं आना चाहिये ? वे बोले कि जब तुम्हें भगवान् दिखते ही नहीं हैं, तब तुम इतना चल कर क्यों आते हो ? मैंने महाराज! ऐसी सुनाई कि 'दिखत तो हमें नइया, कोई बात नहीं। हम जिन्हें देखने आये, क्या उन्हें भी नहीं दिख रहा कि अन्धा आया है? मेरी आँखें फूटी हैं, भगवान् की भी फूट गईं क्या ? मैं तो रोज दो बार भगवान् के दर्शन करने आता हूँ।' ऐसे-ही कोईकहे कि तुम्हें दिख नहीं रहा, तो कहना 'ज्ञानी! तुझे पता नहीं है। तू मात्र दो से ही देख पाता है। मैं प्रज्ञा की आँख से देखता हूँ, जिसको देखने के लिये बहुत ताकत चाहिये। जिसकी प्रज्ञा की आँख खुल गई, उसे बाहर की आँख बन्द करना पड़ेगी। प्रज्ञा की आँख से निहारनेवाले को चर्मचक्षुओं की कोई आवश्यकता नहीं होती है। जब तक चर्मचक्षुओं से देखते रहोगे, तब तक प्रज्ञा की आँख से देख नहीं पाओगे। पूरा राजघराना नष्ट हो गया, ये तो आँखों से देख रहे थे। राजघराना विलीन हो गया।

मित्र ! श्री के पीछे, सम्मान के पीछे सगे भाई के सम्बन्ध को विलीन मत कर देना। मित्र ! श्री और स्त्री के राग में आ करके अपने माता-पिता को मत छोड़ देना। लगता है कि कुलभद्र स्वामी ने अनुभव कर-करके लिखा है। चाहे यतिसंघों को देखो, चाहे बड़े-बड़े अखाड़ों को देखो, चाहे राजे-महाराजों को देखो, चाहे सेठ-साहूकारों को देखो। जितने विघटन हुये हैं, विवाद से हुये हैं। **जगत् में सारे रोगों की दवाई है, लेकिन भ्रम की कोई दवाई नहीं है। जब भी कोई विवाद होगा तो भ्रम से ही होगा।** तू भ्रम को उत्पन्न नहीं होने देगा तो कभी तेरे घर में तेरे भाई का झगड़ा नहीं हो सकता। बात छोटी होती है, पुण्यात्मा उस बात को समाप्त कर देते हैं, अज्ञानी जीव बात को ठण्डा नहीं करना चाहता, वह बढ़ाता है। फिर नारद मंथरा जैसे सहयोगी मिल जायें तो-फिर क्या कहना?

आचार्य जितना अध्यात्म का कथन करना जानते हैं, उतना नीति का भी कथन करना जानते हैं। यदि ज्ञानी के पास एक लाख है और उसके चार बेटे हों, तो वे चारों लखपति हो गये। जिस दिन तुम यूँ कहोगे पिता जी! मेरे हिस्से बाँट दो, उसी दिन से तुम्हारा लखपतीपना समाप्त। तुम लखपति से हजारपति बन गये। विघटन ने लखपतिपना नष्ट कर दिया। पेट भी भरेगा तो विघटन से नहीं, संघात से भरेगा। पानी भी पीना पड़ेगा तो दोनों हाथ जोड़कर अंजुली बनानी होगी। जिनवाणी का भी पान करना है तो मन को एकाग्र करना पड़ेगा। आपको समाज में, देश में, घर में आनन्दमय जीवन जीना है तो एकजुट होना पड़ेगा। हाथ कितने ही फैलाये रहें, लेकिन तू मुख में भी भोजन रखेगा तो पाँचों अंगुलियाँ इकट्ठी करनी पड़ेंगी। हे पंचो ! जब तक तुम इकट्ठे नहीं होगे, तब तक समाज में कोई अच्छा काम हो ही नहीं सकता। जब तक डराते रहेंगे, तब तक ऊपर बढ़ते रहेंगे। जब डरना बन्द हो जायेगा, तो उन्नति भी बन्द हो जायेगी। शिष्य तभी तक ऊँचा उठता है, जब तक गुरु से डरता रहता है। बेटा तभी तक शेर बनता है, जब तक डरता रहता है। जिस दिन बेटे ने जबाव दे दिया, उसी दिन बेटा! तेरी विरक्ति ने जवाब दे दिया। जिस दिन गुरु को शिष्य ने जवाब दे दिया, बस बेटा! तुम्हारा जवाब पूरा हो चुका, अब तुम्हारी उन्नति समाप्त। जैसे अंजुली की पाँच अंगुलियाँ इकट्ठी हो गई हैं, ऐसे ही तुम्हारा मन वचन काय इकट्ठा हो जाये, तुम्हारी तीन गुप्तियाँ बन जायें, तो यहाँ तुमको भोजन मिलता है वहाँ तुमको मोक्ष मिलेगा तीन गुप्तियाँ इकट्ठी करोगे तो।

ये नेपाल नरेश की व्याख्या नहीं थी, ये सारे जगत् के नरेशों की व्याख्या थी। कुरू वंश का विशाल इतिहास मात्र बचा है, कलह ने सब नष्ट कर दिया। सम्पत्ति भी नष्ट हो जाती है। बड़े-बड़े महान् सम्पत्तिशाली जीव भी नष्ट हो गये मात्र कलह से। तीन-तीन चार-चार दिन घर में चूल्हा नहीं जल पाता और यदि बनाकर रख भी लिया जाये, उसी बीच में कलह शुरू हो गया। उस दिन घरों के माहौल क्या होते हैं? नरक की वेदना क्या होती होगी, इसकी कल्पना कीजिये। बेटो! यदि तुमको माता-पिता से हिस्सा लेना हो तो पंचायत की कोई जरूरत नहीं है। 'पिता जी ! जितना देना हो उतना दे दो, बाकी का पुण्य होगा तो आ जायेगा, लेकिन आप अपनी प्रीति मत छोड़ना, जब मैं बुलाऊँ तो मेरे घर जरूर पधारना।' कभी सम्पत्ति के पीछे झगड़ा मत करना।

आज सम्पत्ति बाँटने की शिक्षा नहीं देना चाहिये, पुण्य बढ़ाने की शिक्षा देना चाहिये। भाग्य पर भरोसा करो। भाग्य नहीं है तो पिता जी दे भी देंगे तब भी नष्ट हो जायेगा।

दो बेटे कहने लगे, 'पिता जी! हमें अलग कर दो।' पिता बड़ा समझदार था। कहता है, 'अलग तो कर दूँगा।' वह पिता सोचता था मैं सम्राट् हूँ। मुख्य राज्य किसको देना है? बड़ा बेटा कह रहा था मैं बड़ा हूँ, हकदार हूँ। पिता बड़ा समझदार था, बेटे ! ये चने हैं। इन्हें ले जाओ, एक वर्ष बाद मेरे चने वापस कर देना। मैं आपके बारे में सोचूँगा। दोनों बेटों को पिता जी ने एक-एक मुट्ठी चने दिये और कहा मैं एक वर्ष बाद आपसे चना माँगूँगा, जाओ। बड़ा बेटा बड़ा खुश हो गया और सराफे से सोने की एक डिब्बी लाता है और उस डिब्बी में चने सुरक्षित रख दिये। प्रतिदिन घी का दीप जलाता।

छोटा बेटा सोचता है कि इसको एक साल तक रखना बहुत कठिन है। ये तो सड़ जायेंगे। उसने उन चनों को खेत में बो दिये। फसल ऐसी लहराई कि उसके अनेक बोरे भर गये। एक वर्ष के उपरान्त पिताजी ने कहा 'बेटे! चने लेकर आना है।' बड़ा बेटा बोलता है, 'आप क्यों परेशान हो रहे हो? मैं लेकर आ जाऊँगा।' वह सोने की डिब्बी लेकर जाता है। वह सोचता है कि पिता जी खुश होंगे। कहता है 'पिता जी! मैंने एक साल तक घी का दीप जलाया है।' पिता सिर पकड़ता है, 'बेटा! तुम्हें कैसे राज्य दें?' जैसे ही उसने डिब्बी खोली, तिरूला निकलना प्रारम्भ हो गये, पूरे चने घुन गये थे, खराब हो गये थे। छोटे बेटे से कहा 'चना देखना है।' वह कहता है—पिता श्री! क्षमा करना। मैं ला नहीं सकूँगा। आपको चलना पड़ेगा। 'क्यों ?' बोला, 'मुट्ठी भर नहीं बचे, वे बोरों में गोदाम में भरे हैं।' पिता मुस्करा जाता है। साथ में बड़े बेटे को ले जाता है। राज्य किसको दिया जाय ? जो चने को ही खाख कर चुका है, वह प्रजा का क्या पालन कर पायेगा और वंश को क्या चला पायेगा? जिसने एक मुट्ठी चनों से गोदाम भर दिये हों, तू ही सोच ले कि क्या करना चाहिये। अब जो है, सो है। इसलिये विवाद की जगह बुद्धि का प्रयोग कर लेना चाहिये। आप अपनी बुद्धि की परीक्षा कर लो, फिर आप उस पद पर आसीन हो जाओ। अधिकारियों को परीक्षा के बल पर चुना जाता है, वही श्रेष्ठ है। जो रिश्वत देकर अधिकारी बना दिया जाता है, भारत की अवनति का कारण है। **आरक्षण की पद्धति देश की उन्नति नहीं है,**

सन्तुष्टि है। कहीं डॉक्टर भी आरक्षण में बनने लग गये, तब तो हो गया कल्याण। देश की उन्नति आरक्षण में नहीं, परीक्षा में है। आचार्य महाराज ने लिखा, सो मैं समझा रहा हूँ। बाकी तो जो है, सो है। तुम्हारा काम तुम जानो। दुनियाँ में कोई किसी को सुधार नहीं सकता। वस्तुस्वरूप स्वतन्त्र है।

यदि पड़ौसी तेरी धन-सम्पत्ति भी छीनना चाहे तो शीघ्र छोड़ देना, लेकिन खल पुरुषों के साथ विवाद मत करना। खलों के साथ खल नहीं होना, अपनी साधुता मत छोड़ना। **कोई कितना ही गन्दा बोले, अपन को अपनी भाषा गंदी नहीं करना,** क्योंकि वह तो गंदा है ही। सोने के लोटे में जीव कितना ही मल भर दे, परन्तु सोना कभी मल नहीं बनेगा। मल ही मल रहेगा, लेकिन सोने का लोटा सोना का ही रहेगा। ऐसे-ही कोई तुम्हारे ऊपर कितने ही शब्दों के मल फेंके, परन्तु तुम अपने आपको सोने का लोटा बनाकर रखना।

सत्य यही है कि **दुष्टों के साथ भी दुष्ट वृत्ति की चेष्टा मत करो।**

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।



अहंकार से हानि

श्लोक : अहंकारो हि लोकानां, विनाशाय न वृद्धये।
यथा विनाशकाले स्यात् प्रदीपस्य शिखोज्ज्वला॥294॥

अन्वयार्थ : (अहंकारः) अहंकार **(हि लोकानां विनाशाय)** निश्चय से लोगों का नाश करने वाला है **(न वृद्धये)** उससे उन्नति नहीं होती है **(यथा विनाशकाले प्रदीपस्य शिखोज्ज्वला स्यात्)** जैसे जब दीपक बुझने लगता है तब उसकी लौ बढ़ जाती है।

भावार्थ : हे जीवात्मा ! अहंकार सदाकाल विनाश का ही हेतु है, अतः भव्यों को अहंकार से अत्यंत दूर रहना ही श्रेयश्कर है।

॥सद्-देशना॥

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज सारसमुच्चय जी में आत्मशान्ति के मार्ग को उद्घाटित करके समझा रहे हैं।

अहो ज्ञानी ! निज समरस में लवलीन होना है तो क्लेश का प्रत्याख्यान कर दो। विवाद/विसंवाद अधिक समय तक अन्तस् में रखना अच्छी बात नहीं है। आयुकर्म के निषेकों का विदा होना, यह किसी के हाथ की बात नहीं है।

केवली यह तो बता सकते हैं कि आप इतने दिन में शरीर को छोड़ देंगे। अवधिज्ञानी भी बता सकते हैं। बता तो सब सकते हैं, लेकिन बचा कोई नहीं सकता। पर के ज्ञान में ज्ञेय का आना भिन्न विषय है। पर के ज्ञान में ज्ञेय ही आ सकता है, परन्तु पर का ज्ञान किसी ज्ञेय के परिणमन का कर्त्ता नहीं है। कोई जीव अंतिम श्वास भर रहा है, हम आँखों से देख सकते हैं, ज्ञान से जान सकते हैं कि अब यह जीव चन्द क्षणों में चला जायेगा, लेकिन जाते हुये को हम बचा नहीं सकते हैं। वैद्य/ज्योतिषी कर्म की सत्ता में ही सहकारी हैं, लेकिन आयुकर्म के क्षीण होने पर किसी का कोई सहयोग नहीं। इसलिये, ज्ञानियो! इस पर्याय से विदा होने पर कब कहाँ और कैसे मिलेंगे? विदा होने के पहले मिल लो, तो बहुत अच्छा है। तेरी **कषाय के साथ विदा हो गई तो फिर नरक में मिलोगे और कषाय से रहित विदा हो गई तो मनुष्य और स्वर्ग में मिलोगे और अकषाय में चले गये तो सिद्ध बनोगे।** इस परम सत्य को कोई नकार नहीं सकता है। प्रदेश का, भूमि का, भवन का राग तुझे आ सकता है, लेकिन

साथ में लेकर तो नहीं जा सकते हो। जिनालय के बगल में एक भवन खड़ा हुआ है, उसकी दीवालें गिर रही हैं। कभी इसका कोई स्वामी रहा होगा, आज उस पर वनस्पति, झाड़, कचड़े का स्वामित्व चल रहा है। भूमि कभी अपना स्वामी किसी को नहीं मानती। आज तक किसी भूखण्ड ने यह नहीं कहा कि तू मेरा स्वामी है। कोई कन्या तुझे पति रूप में न स्वीकारे, फिर-भी तू कहे, 'मैं इसका पति हूँ', तो सत्य बताना, तुझे लोग क्या कहेंगे? किसी कुँवारी कन्या ने तुझे पति रूप में स्वीकारा नहीं है, तब भी तू समाज में देश में हल्ला करने लग जाय 'मैं इसका स्वामी हूँ', मेरे मित्र! विश्वास रखना, सारा विश्व तुझे व्यभिचारी कहेगा। ऐसे-ही किसी भूखण्ड ने आज तक नहीं कहा कि आप मेरे स्वामी हो, लेकिन आप यूँ कह रहे हो कि इस भूखण्ड का स्वामी मैं हूँ, इसका मतलब है कि दृष्टि में व्यभिचार है। अविचार-बुद्धिशाली व्यक्ति ही पर में व्यभिचार करते हैं, विचारशील चेष्टा करने वाले जीव कभी पर में व्यभिचार नहीं करते। जब-जब भी क्लेश होगा, पर में निजत्व दृष्टि को खड़ा करेंगे, तभी होगा। **पर में निजत्व बुद्धि रखने पर ही क्लेश होगा, एकत्व-विभक्त में क्लेश की कोई संभावना नहीं है।** एक सिक्का जेब में डालकर कितना ही दौड़ लेगा, आवाज नहीं आयेगी। आपने दो सिक्के जेब में डाल लिये तो आवाज आना शुरू हो जायेगी। कहीं ऐसे स्थान से गुजर रहा हो जहाँ डर हो, वे सिक्के बजे, तो कैसा लगेगा? जहाँ द्वैत्व है, वहाँ द्वन्द्व है। जहाँ एकत्व है, वहाँ निर्द्वन्द्व है। द्वन्द्व वहीं होता है, जहाँ दो होते हैं। इसलिये भगवत् कुन्दकुन्द स्वामी कह रहे हैं 'मुमुक्षु ! आत्मा का सबसे सुन्दर स्वरूप एकत्व-विभक्त है। एक में कोई द्वन्द्व नहीं है। जिसके जीवन में मात्र एक बेटे ने जन्म लिया हो, एक ही हकदार हो, उस पिता को कितने हिस्से करने पड़ेंगे ? कोई हिस्सा नहीं करना पड़ेगा। एक में क्या झगड़ा होगा? इसलिये तीर्थंकर अपने पिता की एक सन्तान थे। नियोग देखो, इतना पुण्यात्मा जीव है। कहीं दो हो भी गये, दूसरे के काषायिक भाव उठे, द्वन्द्व छिड़ गया, तो इतिहास लिख जायेगा कि तीर्थंकर-जैसी आत्मा का झगड़ा हुआ। तीर्थंकर अपनी माता-पिता की इकलौती सन्तान होते हैं। निर्द्वन्द्व हैं।

जहाँ बंध है, वहाँ विसंवाद है। जहाँ एकत्व है, वहाँ सुखकर है। मिश्र में कष्ट है। मिलावट पर विश्वास कहाँ होता है? यदि मालूम चल जाये कि दूध में पानी मिला है, तो भाव बदल जाते हैं जीव के। मिलावट में विश्वास कहाँ है? बाजार से खरीदी गई सामग्री में मिलावट होती है, इसलिये विश्वास नहीं करते हो। जिसके परिणामों में

कुभाव भाव की मिलावट है, उस पर विश्वास कौन करेगा ? आप साधुओं पर विश्वास क्यों करते हो ? जैसे अशुभ भावों की मिलावट मेरी आत्मा में है, ऐसी इन लोगों की आत्मा में विषय-कषाय की मिलावट नहीं है। इनको कोई आकांक्षा नहीं है, इनको धन व धरती में राग-द्वेष नहीं है, स्त्री पुत्र आदि का राग-द्वेष नहीं है, ये सबसे भिन्न जी रहे हैं, इसलिये विश्वास है। यदि साधु भी इसी प्रपञ्च में पड़ जाये, तो मेरे मित्र! विश्वास मानना, साधु से भी विश्वास हट जाता है। योगी आत्म-घट की बात करे, तो सुशोभित होता है। कहीं योगी के मुख से धन की बात सुन लो तो मेरे मित्र! विश्वास रखना, नमस्कार करने के भी भाव नहीं बन पायेंगे। लोगों को कहना पड़ता है महाराज! क्या करूँ ? एक बात तो समझ में आ गई कि विश्वास मिश्र में होता नहीं। मिश्र से तात्पर्य है एक द्रव्य की दूसरे द्रव्य में मिलावट। जैसे किसी व्यक्ति ने दुग्ध में मिश्री की जगह फिटकरी घोल दी, तो आप कहेंगे कि कुछ मिला दिया गया है। मिलाई तो मिश्री भी गई है, लेकिन मिश्री के मिलाने का अभ्यास आपको अनन्त काल से है, मिश्री मिले दूध को पीना आपकी आदत में आ गया है, इसलिये उसे मिलावट नहीं मान रहे हो।

अब ये तो तुझे बहुत अच्छी तरह से अभ्यास है, क्योंकि आपका तो निश्चित घर है। साधुओं के भोजन करने का घर अनिश्चित होता है। कई बार दूध में फिटकरी मिलती है, कई बार नमक मिलता है। इतना ध्यान रखना कि यदि फिटकरी घुल गई, अल्प होगी तो पेट साफ हो जायेगा, अधिक घुल गई तो पेट की आँतें कट जायेंगी। **कहीं नमक दूध में घुल गया और आपने सेवक कर लिया, तो नेत्रों की ज्योति मंद पड़ जायेगी।** जिन लोगों का शौक रहता है कि हल्का-सा नमक रोटी में मिला देंगे, फिर कभी-कभी आप दूध में भी खा लेते हो, ये नेत्रों के लिये जहर है। नमक का सेवन दूध के साथ कभी नहीं होता। जैसे नमक का सेवन दुग्ध के साथ नहीं होता, क्योंकि वह नेत्रों की ज्योति को मंद कर देता है, ऐसे-ही विषय-कषाय का सेवन साधु के स्वभाव में कभी नहीं होता। **यदि साधु विषय-कषाय से युक्त हो गया, तो उसकी विवेक-ज्ञान की बुद्धि नष्ट हो जाती है। मिश्रधारा ज्यादा कष्टकारी है।** विश्वास तो शुद्ध पर होता है। आइये अपने भावों की ओर। जब मीठे पेड़े में एक कंकड़ आ जाता है तो पूरा पेड़ा किसकिसा हो जाता है, पेड़े का स्वाद आ नहीं पाता है। तनक-से कंकड़ ने पूरे मुख को किसकिसा कर दिया। ऐसे-ही कितना ही धार्मिक वातावरण

तुम्हारे भीतर पहुँच रहा हो, किञ्चित् भी तुम्हारे मन में भाई-भाई के प्रति अशुभ भाव आ गया, तो पेड़े के अन्दर कंकड़ आ गया। अब पेड़े का स्वाद कैसे चखूँ? जबकि पेड़ा तो पेड़ा ही है। जैसे पेड़े का कंकड़ निकाल कर फेंक देते हो, ऐसे-ही भीतर के विकार को फेंक दो जिससे तुम्हें शुद्ध पेड़े का स्वाद आने लग जाये। कष्ट कहीं नहीं है। मिश्र को अलग नहीं कर रहे हो।

माताओ! मेरी छोटी-सी बात मान लो। आप घर के कितने सारे काम करते हो। कुछ काम अपने बेटे और पति को दिखाकर किया करो, जैसे अनाज का बीनना। जब अनाज के बीनने का समय आये, जब घर में सब लोग आ जायें, फिर थाली में रखकरके आप अनाज बीना करो। इस तरह से बीनना। आप में वह ताकत है कि आप पत्थर को पिघला सकती हो। इस तरीके से बीनना जिसे देखकर उसके मुख से निकल पड़े 'आप क्या कर रही हो?' तो कहना 'क्या अन्धे हो? दिख नहीं रहा तुझे?' हाँ, सर्वाधिक संख्या अंधों की है। आँख विहीन अन्धे तो कम हैं, आँखों सहित अंधे अधिक हैं। कोई व्यक्ति माला फेर रहा हो, तब भी ज्ञानी कहता है 'क्या कह रहे हो ?' जब तुझे दिख ही रहा है, तो फालतू बोलने की आवश्यकता क्या है? जबकि सामने दिख रहा है कि मैं जिनवाणी का स्वाध्याय कर रहा हूँ, तब भी पूछेंगे 'क्या कर रहे हो ?'

कर्तृत्व दृष्टि और वक्तव्य दृष्टि, इन दो पर नियंत्रण करने की बहुत आवश्यकता है। कुछ लोग तो व्यर्थ के कर्ता बनकर और व्यर्थ के वक्ता बनकर फँस जाते हैं। एक बालक परीक्षा में नकल कर रहा था, दूसरा छात्र आया, उसने कहा 'देखो, कैसे नकल कर रहा है?' ठीक है। उसने पेपर किया, चार लड़के पकड़े और जैसे ही स्कूल के बाहर आये, जिनने कहा था कि नकल कर रहे हैं, उससे बोला 'अब बोलो क्या बोल रहे थे?' तोता पिजड़े में क्यों? दूसरे की नकल कर लेता है। जितने नकलची होते हैं, उनके साथ भी वही होता है जो तोते के साथ हुआ था। तोता मनुष्य की आवाज में बोलता है। जहाँ बोले, वहाँ फँसे। यदि आपको फँसना नहीं है, तो बोलना कम कर दो। बाद में सोचता है कि क्या करूँ, कह आयी। क्या कह आयी? अब भोगो।

बिना कमाये, बोलने मात्र से धन मिलता, बिना पड़गाहन किये बोलने मात्र से धर्म होता कि नहीं ? ये आपको चौबीस घण्टे का अनुभव है, इनके तो बोलने का पैसा इनको मिल जाता है। पैसा देने कौन आ रहा है? जो समाज में, अपने घर में फूट डालता

है, उसको पैसा देना पड़ गया। एक दिन के बोलने से वकील को पैसा देना पड़ गया। सीधे-से झगड़े नहीं होते, पहले भाषण ही होता है। बड़े-बड़े युद्धों में सेनापतियों का जब तक वीर रस में भाषण नहीं होता है, तब तक योद्धाओं की भुजायें नहीं फड़कती हैं। ऐसे-ही तुम्हारे घर में जो रामायण/महाभारत होती है, ये मुख से ही शुरू होती है। **महाभारत की युद्धभूमि न भीम के गदे से प्रारम्भ हुई है, न अर्जुन के वाणों से प्रारम्भ हुई है। महाभारत की युद्धभूमि द्रोपती की वाणी से प्रारम्भ हुई है। यदि द्रोपती की जीभ न हिलती, तो समरभूमि में गदा, बाण, तलवारें न नाचती। इसलिये बोलने के पहले सोच लो।**

आचार्य कुलभद्र स्वामी इस बात को बहुत अच्छे से समझा रहे हैं कि अकेले हो जाओ। आनन्दमयी होना है तो अकेले हो जाओ। ज्ञाता को जानना है तो अकेले हो जाओ। दृष्टा को देखना है तो अकेले हो जाओ। न मंदिरों में जाओ, न तालाबों में जाओ, न पर्वतों की चोटी पर बैठो, मेरे मित्र ! अकेले हो जाओ। तन को कहीं भी बिठा देना, परन्तु स्वयं अकेले हो जाओ। मोक्ष प्राप्त करके सिद्धत्व का आनन्द लूटना, वह तो अबुद्धि की धारा है। आपके प्रवचन में विरुद्धता न आये, इसलिये यहाँ विरोध कर रहा हूँ। आपके सुनने में विरोध न आये, इसलिये यहाँ विरोध कर रहा हूँ। तन को कहीं भी बिठाल दो। दादा पैरों में चरणपादुका पहन कर आये थे। जैसे-ही मंदिर में प्रवेश किये, उन्हें बाहर छोड़ दिये। जो आपको इतनी सुरक्षित लेकर आयीं, उन्हें बाहर छोड़ दिया, उनकी याद नहीं आ रही क्या?

जैसे श्रावक श्री जिनालय में प्रवेश करने के पूर्व चरणपादुका को बाहर रख कर आया, अब यहाँ पर उनका ध्यान नहीं कर रहा है। जिनके लिये आया था, उन जिन का मैं ध्यान कर रहा हूँ; लेकिन जब तक चल-चलके आ रहे थे, तब तब मार्ग में कोई विरोध न आ जाय, काँटा आदि न चुभ जाय, इसलिये आप पैरों को सुरक्षित करके आ रहे थे। ऐसे-ही तत्त्वज्ञानी योगी इस देह को भोजन भी देता है, पानी भी देता है, सुरक्षित भी करता है; लेकिन जब ध्यान में लीन होते हैं, तो कहते हैं कि जैसे द्वार के बाहर चरणपादुकायें हैं, अब मैं भीतर मंदिर में हूँ। ऐसे में चैतन्यपुर में प्रवेश कर जाते हैं तो इस देह को द्वार के बाहर छोड़कर आ जाते हैं। ऐसे ममत्वरहित होकर देखते हैं। यदि ध्याता पर्वत की चोटी पर बैठ गया, तो ध्यान नहीं होगा। यदि ध्याता मंदिर में बैठ गया, तो ध्यान नहीं होगा। ध्याता जमीन में बैठ गया, तो ध्यान नहीं होगा। ध्याता

आकाश में उड़ेगा, तो ध्यान नहीं होगा। तो ध्याता होगा कहाँ ? जगत् की आँखों में ध्याता पर्वत पर हो सकता है, मंदिर में हो सकता है, नदी/सरोवर के तट पर हो सकता है; लेकिन सत्यता यह है कि ध्याता कहीं नहीं होता, ध्याता तो ध्यान में ही होता है। रोटी का स्वाद चखते समय रोटी को खाता है कि पानी को पीता है कि थाली को देखता है कि परोसने वाले को निहारता है, कि अपने शरीर को देखता है, कि रोटी का स्वाद लेता है? तुझे उस समय कुछ भी दिखाई नहीं देता। जब सब दिखता है, तब रोटी का स्वाद नहीं दिखता। ऐसे-ही परम समरस में लीन तपोधन जगत् में होने पर भी जगती से भिन्न होते हैं। आत्मलोक में अवलोकन कर रहे हैं। वहाँ एकत्व-विभक्त था।

इन्द्रियसुख में निमग्न पुरुष भी निज इन्द्रिय को भूल जाता है, अनुभूति तो मात्र सुख की लेता है, न कि इन्द्रिय की लेता है। भक्ति में लीन हुआ पुरुष भी भगवान् को भूल जाता है, तब भक्ति का आनन्द लेता है और आत्मा में लीन हुआ पुरुष आत्मा को भी भूल जाता है। आत्मा-आत्मा तब तक करेगा जब तक आत्मा में लीन नहीं होता। जब आत्मा में विलीन हो जायेगा, तो आत्मा में रमण करेगा। जहाँ न शब्द मैत्री का आयेगा, न मध्यस्थ का आयेगा, न प्राणायाम आयेगा, न प्रत्याहार, न साधन, न साध्य, न ध्यान, न ध्येता, न ध्येय। कोई विकल्प नहीं होंगे, मात्र मध्य में होगा। जैसे विमान न जगत् के ऊपर जाता है, न अवनी पर उड़ता है, वह मध्य में चलता है, तब अपनी मंजिल को पूरी करता है। ऐसे-ही परिणामों की धारा जब मध्य हो जाती है, श्वास को मंद कर लेता है, तब वह योगी परमतत्त्व को प्राप्त कर लेता है। माँ ! गेहूँ बीना? जब बेटा कहे, 'माँ! क्या कर रही हो ?' तब कहना, 'अंधा है? क्या देख नहीं रहा है मैं क्या कर रही हूँ?' जब बेटा कहे कि इस गेहूँ से कंकड़ निकाल करके बाहर क्यों फेंक रही हो ? यदि इसमें एक भी कंकड़ रह गया तो आटा किसकिसाने लगेगा। इसका मतलब है कि **आटा पीसने के पहले कंकड़ बीनने पड़ते हैं, परमात्मा बनने के पहले कषाय के कंकड़ बाहर फेंकने पड़ते हैं। गेहूँ के साथ कंकड़ पिस गये तो आटा किसकिसा जायेगा।** परमात्मा तो दूर है, साधु बनने के परिणाम आ रहे हैं और कहीं उसमें विषय-कषाय का कंकड़ रह गया, तो तुम्हारी साधना किसकिसा जायेगी, सम्पूर्ण साधना की विराधना हो जायेगी। मध्य में रुक जाओ, मध्य में रहो। रीढ़ की हड्डी सीधी कर लो, श्वास छोड़ने का विचार मत करो, श्वास लेने का विचार मत

करो। वे अज्ञानी हैं जो कह रहे हैं मेरा चित्त चंचल है, माला फेरने से मन भटकता है। तत्त्व में लीन होना चाहते हो तत्त्व को जाने बिना। इन्द्रियों को वश करना है तो श्वास को वश कर लो। भयभूत होगा, कषायों में लिप्त होगा, कषाय की तीव्रता होगी, तो श्वास दीर्घ होगी। भाव जितना पवित्र होगा, निर्भयता होगी, चित्त की पवित्रता होगी, उतनी श्वासों की गति मंद होगी और नेत्र की टिमकार अल्प होगी।

कामी, क्रोधी, मानी, लोभी, डाकू, व्यभिचारी की पहचान कर लो। कितना ही आपसे कहे 'मैं सत्य कह रहा हूँ', उसके नेत्र के पलक द्रुत गति से झपक रहे हों तो समझ लेना कि यह झूठ बोल रहा है। सत्य में स्थिरता है, असत्य में चंचलता है। सत्यवाद को फाँसी भी लग रही होगी तब भी स्थिरता रहेगी। असत्य वाले को विजय दिला देना और सिंहासन पर बिठा देना, तब भी उसके भीतर का असत्य उसकी आँखों की टमकार बता देती है। **पुण्य की सत्ता में असत्य को सत्य तो कराया जा सकता है, परन्तु पुण्य की सत्ता में भी असत्य परिणामों को सत्य नहीं किया जा सकता।** आप पचास लोगों को इकट्ठा करके असत्य को सत्य कहलवा सकते हो, लेकिन पचासों के हृदयों से पूछना, वे सब कह रहे हैं कि हम कहने आये हैं, करने नहीं आये हैं। असत्य को कहा तो जा सकता है, परन्तु असत्य को किया नहीं जा सकता। ज्ञानी ! जब सौ रुपये मीटर के कपड़े को दौ सौ रुपये मीटर में बेचता है, तब दिल क्या कहता है? जब ठण्डे होकर सोचेगा, तब दिल कहेगा कि मैंने कितने गरीबों को लूटा है।

मैं तो महाराजों से बोलता हूँ, यदि ये पेन चल रहा है, तो बार-बार खोला-खाली मत करना। ये श्रावक तो तुरन्त नया दे जायेंगे, परन्तु तुमको मालूम होना चाहिये कि श्रावक कमाने जायेगा, तो उन गरीबों के बच्चों के हाथ का खींचकरके तुमको दिया जा रहा है। समाज के द्रव्य का अपव्यय नहीं कराना चाहिये साधुओं को भी। हम परिग्रह रखते नहीं हैं, परन्तु परिग्रह का दुरुपयोग करायेंगे तो श्रावक की तो आदत में है परिग्रह कमाना। जितना तुम व्यय कराओगे, उतना वह कमा कर भी तो लायेगा।

घर की जेब से निकालने में आपको कैसा लगता है और समाज का देने में कुछ भी नहीं, लो ले जाओ। ज्ञानी ! तूने छोटा-सा मकान क्या बनाया सो चौबीस घण्टे तेरा मस्तिष्क वहीं रहा कि एक दिन भी इधर-उधर न हो जाये, क्योंकि पैसा इतना ही है। जब समाज के मंदिर और तीर्थ बनते हैं, तो ट्रस्टियों को घोर पाप का बंध होता है। एक दीवाल खड़ी करेंगे, दूसरे दिन गिरा देंगे, फिर तीसरे दिन नया बनवायेंगे, फिर

गिरा देंगे। तुमको मालूम होना चाहिये कि समाज ने अपने पेट को काट-काट करके दान दिया था। बेटा ! तू कम खा लेना, लेकिन भगवान् का मंदिर अच्छा बनना चाहिए। एक भी सिक्का इधर-उधर नहीं होना चाहिये। आप देखो, बड़े बड़े तीर्थों में पहले बना कर खड़ा कर दिया, फिर मिटा दिया। स्वयं बनवा गये थे, स्वयं मिटवा गये। महाराज! आपको पता नहीं है कि कैसे कमा कर लाते हैं। वो तो आपके सामने मुस्करा कर देखते हैं, लेकिन भीतर हृदय रो रहा है कि ये विशाल जिनालय कैसे तोड़ दिये।

ज्ञानी! समाज ने विश्वास के साथ तुम्हें तीर्थ दिया है। ये अपना अहोभाग्य मानना। विश्व-स्तर का तीर्थ खजुराहो है, इसकी एक भी दीवाल को गिराने का विचार मत करना। **जो जीव मान लेता है, उसे ही समझाना चाहिये। जो न माने, उसे क्या समझाना?** आपको चौबीसी जिनालय बनाना है, अभी आप जो-जो वास्तु दिशा वगैरह दिखवाना हो अभी दिखवा लेना। खड़ा होने के बाद कुछ नहीं। कल एक श्रावक डेरा पहाड़ी देखकर आया, कहता है, ये छतरपुर समाज ने भी तो जीर्णोद्धार कराया है, बनाया-ही-बनाया है, मिटाया कुछ भी नहीं है, फिर भी कितने अच्छे लग रहे हैं, बने में जोड़ ही तो दिया है। नये पत्थर लगाये हैं, पर पुराने पत्थर हटाये नहीं हैं। यदि आपने डेरा पहाड़ी के पुराने पत्थर हटा दिये, तो डेरा पहाड़ी सन् दो हजार तेरा की हो जायेगी।

साहित्य और पुरातत्व ही संस्कृति की रक्षा के साधन हैं। साहित्य लुप्त हो गया और पुरातत्व विनष्ट हो गया, तो तुम्हारे पास कुछ भी नहीं बचा। खजुराहो के दुकानदार भी खिलौना बनायेंगे नयी लकड़ी का, फिर उसमें पोतेंगे, मिट्टी लगा देंगे, ये क्या कर रहे भाई ? आपको मालूम नहीं है कि भारतीय नया देखता है, विदेशी पुराना देखता है। यदि विश्राम करना हो तो नये घर में रहना और ध्यान करना हो तो पुराने घर में रहना। पुराने घर की वर्गणायें अब सुप्त हो रही हैं, वहाँ आप उन्नति नहीं कर पाओगे। विश्राम के लिये आप नये घर में जाना, ध्यान करने पुराने घर में। इसलिये जाना कि जो कभी चमकते थे, आज फिसल रहे हैं। जगत् की परिणति ऐसी ही है। गगनचुम्बी अवनि पर गिर रहे हैं। ध्यान करने पुराने खण्डहरों में चले जाना। फिर तुम अपने गये को देखना। मत करो अभिमान बिल्डिंग वालो! खण्डहरों को भी देख लिया करो।

लम्बी उम्र वासनास्थलों की नहीं होती है, लम्बी उम्र साधनास्थलों की होती है। जबलपुर में रानी दुर्गावती का महल है मदन महल। हम तो साधु हैं , फक्कड़ घुमक्कड़।

जैन साधु पक्के घुमक्कड़। जबलपुर में एक ओर मड़िया जी दिखाई देती है, दूसरी ओर दुर्गावती का महल। वह मदनमहल तो खण्डहर हो गया और छोटी-सी मड़िया हो गई विशाल। कारण पूछो क्यों ? मंदिर आज भी सुरक्षित है, क्योंकि लोगों की आस्था का केन्द्र है, सो दुनियाँ सुरक्षा करने जायेगी। तुम्हारे वासना के महलों पर किसी की आस्था नहीं होती, इसलिये उनको खण्डहर होना ही पड़ता है। यही कारण है कि साधु वृद्ध भी होता है तब भी उनका चेहरा/शरीर चमकता रहता है। उन शरीरों पर लोगों की आस्था है, इसलिये लोग उनकी सेवा कर रहे हैं। तुम्हारा वासनाओं का शरीर है, इसलिये बेटा भी देखता नहीं है, शान्त खड़ा मिलता है। अब जो है, सो है। किसी को अपनी बिल्डिंग को सुरक्षित रखना हो तो मंदिर के नाम दान कर दो, पूरी समाज लग जायेगी। किसी को अपनी देह को सुरक्षित रखना हो तो समाज को सौंप कर महाराज बन जाओ, तो तुम चमकने लग जाओगे।

बड़प्पन सहजता को नष्ट करने के लिये प्राप्त नहीं हुआ है, अपितु सहज होने के लिये मिला है। जो असहज हो गया, वह बेचारा न मुस्करा पा रहा है न किसी से बातें कर पा रहा है। पत्थर पर रस्सी पड़ते-पड़ते उसमें गड्ढे पड़ जाते हैं। उनके चेहरे बनते-बनते सूम-जैसे हो गये।

साधु के चेहरे में गंभीरता हो, लेकिन गद्गद् भाव का अभाव न हो। समुद्र गंभीर है, पर गद्गद् है। उसमें प्रतिक्षण लहरें उठ रही हैं। लहरें बंद हो जायें तो जैसे तालाब को कोई देखने नहीं जाता, ऐसे-ही तुमको कोई नहीं देखेगा। मुनियों के नाम के आगे 'सागर' क्यों लगाया जाता है? हे सागर ! जैसे सागर की लहरों को निहारने जाते हो, ऐसे-ही आपके अंतरङ्ग में जो चारित्र और वैराग्य की लहरें उठ रही हैं, उनको निहारने जाता हूँ। अद्भुत आनन्द आता है। वैराग्य और चारित्र की लहरें उठ रही हैं। भरे पानी में सड़ांध है, इसलिये साधुओं को विहार करते रहना चाहिये। दुनियाँ के लोग भले ही कहें कि महाराज आप घूमते ही रहते हो । तुम्हें क्या मालूम कि घूमने में जो आनन्द है, वह ठहरने में कहाँ है ? बहता पानी निर्मला, भरा पानी चला गया। विशुद्धसागर जैसे ही भरे, कि गये। जैसा **बहता पानी निर्मल रहता है, वैसे-ही साधु विहार करते रहते हैं तो निर्मल रहते हैं।** जिनने विहार रोक लिया, फिर तो वह गया। ज्ञानी ! दीक्षा भी लो तो ऐसे स्थान पर रहना और ऐसे भावों से लेना कि बहते रहना। मठ बनाकर मत बैठ जाना। मठाधीश बनेगा तो नेता और अभिनेता के पैर पड़ेगा कि कछु दे जाओ,

दीवाल खड़ी होना है। गृहस्थी को छोड़कर आया, यहाँ ईंट-चूने में लग गया। आत्मतत्त्व की सिद्धि के लिये विचरण करना, हो सके तो भगवन्तों की वाणी का प्रचार करना। ईंट-चूने को इकट्ठा करने के लिये जगह-जगह विचरण करके अपनी पवित्रता का ह्रास मत करना। आस्था जीवित रखे रहना। बुंदेलखण्ड में सर्वाधिक किले हैं। उनको देखकर लगता है कि कभी लोग यहाँ राज्य किया करते थे, आज क्या अवस्था हो रही है। सबके दिन एक-से नहीं होते। उनकी दीवारें तो गिर गईं, लेकिन पेंट नहीं हटा। ये शरीर रूपी दीवाल तो गिर जायेगी, परन्तु कर्म का पेंट नहीं हटेगा। इसलिये सँभलकर जीना। आयु नष्ट हो जायेगी, लेकिन पेंट बचेगा। कितना गाढ़ा रंग है।

यदि सुरिक्षत जीवन जीना है तो कषाय की दुर्गन्ध को दूर कर देना और पर्याय का नाश हो उससे पहले विभाव भावों का नाश कर देना।

ज्ञानियो! जलने के पहले जलना छोड़ दो। इस शरीर में आग लगे, इससे पहले दूसरों से ईर्ष्या करना छोड़ दो। इतना समझ में आ जाय तो सबका कल्याण आज ही हो जाय। कितनी ही काई लगी हो, जब बार-बार घिसेगा, साबुन-सोड़ा लगायेगा, ईंट घिस करके, मसाला डाल करके, तुम प्रतिमाओं को तो घिस-घिस कर चमका देते हो, पूरी जंग हटा देते हो, तो इन चैतन्य प्रतिमाओं के जंग और हटा दिया करो। इसीलिये तो क्षमावाणी मनाते हो।

अंतिम विरियाँ हॉस्पिटल मत ले जाना, गुरुचरणों में सल्लेखना कराना। सभी बुजुर्ग अपने बेटों से कह देना, सुनो बेटा! शीलधर्म का नाश करके मैंने तुझे जन्म दिया है, तुम मेरे साथ इतना भी नहीं कर पाओगे क्या? तू मरते समय भी शान्ति से मरने नहीं देगा, हॉस्पिटल ले जाकरके नाक कण्ठ छिदवायेगा क्या? यदि तुम मेरे बेटे हो, तो मुझे वीतरागी निर्ग्रन्थ के चरणों में भेज देना और णमोकार सुनाते-सुनाते, मंगल कलश दिखाकर, मेरी अंतिम विदा कर देना। जानते तो सबकुछ हो, मानते क्यों नहीं हो? जानता तो रावण भी था, परन्तु मानता क्यों नहीं था? मान लेता तो उद्धार हो जाता। तुम सत्य को छोड़ करके अहंकार को क्यों पाल रहे हो? **बांस के बड़े-बड़े पौधे धराशायी हो गये और घास झुकना जानती है तो कितने ही तूफान आयें, वह झुक जाती है और फिर खड़ी हो जाती है। घास बनो, अगर सुरक्षित रहना है तो।**

इस लोक में अहंकार विनाश का ही कारण है, वृद्धि का कारण नहीं है। तनक कछु हो भी जाय तो आप ही क्षमा कर लो।

'खम्मामि सव्व जीवाणं।' तुम सब पारसनाथ नहीं हो, कमठ ने दस भव तक पेरा था। देवियों को डाँटना मत, नहीं-तो व्यन्तर बनकर पेरेंगी। उसको अच्छे परिणामों से रखो। किसी को सताना नहीं। **सत्वेषु मैत्रीं।**

ये मात्र पढ़ने का नहीं है, जीवन में उतारो। ज्ञानी हॉस्पिटल में जाकर तो फल बाँटता है और भाई का बेटा सेव फल माँगे तो चाँटा मारता है और पढ़ता है 'सम्पूजकानां प्रतिपालकानां।' जब तुम मरीजों को खिलाने गये थे, तो बच्चे को भी दे दो, क्या जा रहा है तुम्हारा? हॉस्पिटल में देने जायेंगे तो पेपर में छपेगा, लोग देखेंगे। इस बच्चे को खिलाना कौन देख रहा है? बहू के ऊपर तेल डालकर आ गई, फिर कह रही है भगवान्! संपूजकानां। धन्य हो तुम्हारे ढोंग के धर्म को। यदि ऐसा धर्म कर रहे हो, तो वह धर्म सम्यक् नहीं होगा।

सुखी रहें सब जीव जगत् के, और घर में फूट डाल रहे हो। **जब दीपक के बुझने का समय आता है तो उसकी ज्योति बढ़ने लगती है। ऐसे-ही जिनके विनाश के काल आ जाते हैं तो उनके अहंकार चढ़ने लगते हैं।** जिनके अहंकार बढ़ने लग जायें, तब मुस्करा कर बैठ जाना कि अब साता मिल गई, क्यों ? कोई बड़े आदमी का लड़का गाली भी दे तो शान्ति से सुन लेना। क्यों ? कहना बेटा! जितनी चाहे सुना लो, हम सीधे-साधे। तुम जब सवा सेर को दोगे, तब अपने आप ठीक हो जाओगे। **सबका उत्तर समय है।**

बनिया का लड़का है, ईंट उखाड़ कर मारेगा। तुम्हें डर भी लगेगा कि ईंट उखाड़ रहा है। जब तक उखाड़ेगा, तब तक वह भाग जायेगा। कषाय का काल भी थोड़ा है। वह भी सुरक्षित, हम भी सुरक्षित। कहावतें भी विवेक से बनाई गई हैं।

जलने के पहले जलना छोड़ो।

''आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।



मत करो गोत्र का अभिमान

श्लोक : हीनयोनिषु बंभ्रम्य चिरकालमनेकधा।
उच्चगोत्रे सकृत् प्राप्ते कोऽन्यो मानं समुद्वहेत्॥295॥

अन्वयार्थ : (हीनयोनिषु चिरकालं अनेकधा बम्भ्रम्य सकृत् उच्चगोत्रे प्राप्ते) यह जीव नीच योनियों में दीर्घकाल तक अनेक तरह से जब भ्रमण कर चुकता है तब कहीं पुण्य के योग से एक बार उत्तम योनि में जन्म प्राप्त करता है **(अन्यः कः मानं समुद्वहेत्)** ऐसी दशा में कौन ऐसा है जो अहंकार करे ?

भावार्थ : हे भव्यात्माओ ! मनुष्यभव प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है, दुर्लभ है, फिर ऐसे दुर्लभ मनुष्यभव को प्राप्त करके दुर्गति का दाता 'मान' क्यों करना ? अर्थात् मान नहीं करना।

॥सद्-देशना॥

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज सार-समुच्चय जी में उत्तम मार्दवधर्म की व्याख्या करते हुये समझा रहे हैं। जिसके अन्तस् में मार्दव धर्म का प्रवेश हो चुका है, जिसका मान विगलित हो गया है, उसे सम्पूर्ण जीवों में जीवत्वपना दिख रहा है। **बहुत बड़ी भूल यह है कि निज पर किसी की दृष्टि नहीं है। हम समरभूमि के युद्ध को ही युद्ध मानते हैं, जबकि कषाय का भाव भी युद्ध ही है।** जितना सहज हो जायेगा, वह अपने में होगा। अपने आनन्द में लीन है तो पर के आनन्द में दृष्टि क्यों ? जब जीव सहज हो जाता है, तब किसी का प्रतिकार नहीं करता।

मैं ठीक बैठा हूँ, इसका तात्पर्य है कि आप की आँखें दूसरे को भी अपना-जैसा देखना चाहती हैं। आपकी आँखें उस व्यक्ति की विषमता को नहीं देख रही हैं। उस व्यक्ति के निजी सुख को नहीं देख रही हैं। आप तो अपने अनुसार देख रहे हो और लोक में बहुत कठिन साधना है कि जगत् को व्यवस्थित जगत्रूप निहार पाना। घर में यदि किञ्चित् भी क्लेश होता है तो पति सोचता है कि पत्नि मेरे अनुसार चले, पत्नि सोचती है कि पति मेरे अनुसार चले। एक दूसरे की स्वतन्त्रता को छीनने में बड़ा आनन्द आता है। किसी की स्वतन्त्रता में किसी को जीने देना, ये व्यक्ति की आदत नहीं है। लोक में हम पराधीन जीवन जीते हैं। कितना सारा लोक में हम दूसरे को

आधीन बनाकर जीते हैं। सहजता नाम की वस्तुयें विलीन हो गई। पर ध्यान रखना, इसका मतलब स्वच्छन्दता का जीवन जीना नहीं है, इसका तात्पर्य अनाचार में लीन होना नहीं है। **जितना विशिष्ट पुण्यात्मा जीव होगा, उसे किसी को समझाना नहीं पड़ता, उतना ही व्यवस्थित उसका स्वयं का जीवन होगा।** एक ही नगर में एक ही मोहल्ले में आपको ऐसे परिवार भी मिल जायेंगे जो बिल्कुल सच्चे दिखाई दे रहे हैं। उसी मोहल्ले में ऐसे लोग भी दिख जायेंगे जो बिल्कुल विपरीत चल रहे हैं। आप ऐसा नहीं कह सकते हो कि उनको ऐसा नहीं करना चाहिये। **जिसका पुण्य का नियोग तीव्र है, उसके योग भी पवित्र होते हैं। यदि काययोग प्रशस्त होगा, मनोयोग प्रशस्त होगा, तो वचनयोग भी प्रशस्त होगा।** शब्द भी बोले तो लगे जैसे कोई देव बोल रहा है। शरीर से संकेत भी करे तो ऐसा लगता है कि कोई महान् पुरुष संकेत कर रहा है। उसकी चिन्तनधारा भी निर्मल होती है। उसका चिन्तवन उसके सर्वाङ्ग से टपकता है। जितना प्रशस्त पुरुष होगा, इसका हाव-भाव भी इतना पवित्र है, तो फिर उसकी परिणति कितनी पवित्र होगी। पुण्य का उदय कई रूप में स्फुटित होता है। जिसके चरणों में देव सिर टेक रहे हैं सौ इन्द्र जिनकी वन्दना कर रहे हैं। झुकाने के लिये उतना आपके पास गुरुत्व भी चाहिये। अवगुणों का नहीं, गुणों का। गुणों का गुरुत्व होगा तो आप किसी को झुकाने जायेंगे नहीं, लोग झुक जायेंगे। तुम्हें झुकना भी सीखना पड़ेगा। पहला गुण झुकना ही है। **जो नमता है, वही तो नभ में जाता है। जो नमना नहीं सीखता, वह नभ में क्या जा सकेगा ? नमना सीखो। नमना सीख लोगे तो नभ में स्वयमेव चले जाओगे।** अहं में डूबोगे तो यथार्थ मानिये, अहंकारी पुरुष किसी को भी अच्छा नहीं लगता। वह अपने मन में ही सोचता रहेगा। बेरी का झाड़, जिसके अंग-अंग में काँटे हैं, अहंकारी पुरुष भी ऐसा-ही होता है। बगल में कदली का वृक्ष हो, उस बेर को क्या मालूम कि इनका क्या होगा ? काँटों के छिदने से उसके पत्ते छिन्न-भिन्न हो जायेंगे। ऐसे-ही अहंकारी को नहीं मालूम चलता है कि अहंकार के काँटों से कितने सज्जनों के पत्र छिन्न-भिन्न हो जाते हैं। मेरे अहंकार में झूमने से कितने सज्जनों के हृदय की श्रद्धा के पत्र छिन्न-भिन्न हो रहे हैं। हे गज ! जब तू मदोन्मत्त होकर दौड़ता है, तब तुझे मालूम नहीं होता कि तेरे पगतले कितने क्षुद्र प्राणी नष्ट हो रहे हैं। ऐसे-ही जब जीव को अहंकार सताता है, अहंकार का हाथी तेरे भीतर झूमता है, तब पता नहीं

चलता है कि मेरे पगतले कितने सद्गुण रूपी प्राणी नष्ट हो रहे हैं। स्वयं के भीतर ही सद्गुण का विनाश हो जाता है। जब मान उतरता है, तब माया प्रकट होती है। किसी का दृष्टान्त मत दो, स्वयं का चिन्तन करो। **जब मान चढ़ता है तो मानवता ढक जाती है, जब मान उतरता है तो मानवता प्रकट हो जाती है।** कितनी बार तुम सज्जन पुरुषों का अपमान कर चुके होते हो। जब मान उतर जाता है, तो पश्चात्ताप होता है कि ठीक नहीं किया। स्वयं का चिंतन करना। प्रतिकार का भाव प्रकृति नहीं होने देता। कितनी हिंसा? द्रव्यहिंसा तो जीव बहुत कम करता है, भावहिंसा कोटि-कोटि गुनी कर चुका होता है। यह सबको ज्ञात है भगवान् के पादमूल में आने से पुण्यास्रव प्रारम्भ हो जाता है, लेकिन तब भी विशिष्ट स्थान की प्राप्ति के लिये कुछ हटकर दिखाना चाहते हैं। यह भक्ति नहीं है, ये दिखावा भाव है, वह हिंसा का भाव है। द्वैतभूत। एक तो अहंभाव आया है, सो आपने पहले स्व की हिंसा की है और तुम्हारा अहं दूसरे को नीचा दिखाने के लिये आया था, सो उस जीव के परिणामों का घात किया है। वह स्व-पर का हिंसक है।

जिसे आप 'परमात्मा' शब्द से सम्बोधित करते हो, उस स्थान तक कैसे पहुँचा जाता है, उसकी बात करो। वे परमात्मा कैसे बनते हैं, यह बात करो। कुछ नहीं है। अपने-जैसे ही लोग थे। सफेद आटा काला-पीला दिख सकता है क्या ? सफेद आटा की पूड़ी बना दो, पीला हो जायगा। रसगुल्ले बना दो या अधिक सिक जायेगा तो काला हो जायेगा। हम सफेद आटे के रूप बदल सकते हैं, तो मेरी आत्मा के भी रूप बदल सकते हैं। जैसा प्रयोग कर दोगे, वैसी आत्मा बन जायेगी। नारकी या तिर्यञ्च भी बन सकती है। नपुंसक, स्त्री, पुरुष किसी भी वेद को प्राप्त कर सकती है। तेरी आत्मा परमात्मा भी हो सकती है। ये एक-ईश्वरवाद दर्शन नहीं है। प्रत्येक जीव को ईश्वर होने की क्षमता है। इस बात को कहनेवाला जैनदर्शन है। कहता है इसलिये नहीं है, ऐसा होता ही है इसलिये कहता है। आपके यहीं पर चेहरे बदल सकते हैं शीघ्र ही। जो परमात्मा हो गये, वे सहज हो गये।

पर का संयोग न होता तो आटा सफेद ही रहता। पर संयोग हुआ, तो आटे के अनेक रूप बदल गये। जो नाना वर्णत्व है, यह परसंयोगजन्य है, स्वभावजन्य नहीं है। मिश्रधारा ने आटे के रंग को बदल दिया है। कर्मों की मिश्रधारा ने मेरे परमात्मा के

रंग को बदल दिया है। इन रंगों का मिश्रण जब पृथक् हो जाता है, तो वही आत्मा परमात्मा हो जाती है। इसलिये सम्पूर्ण आवरण से अपने आपको दूर कर लो, सम्पूर्ण पंथों से अपने आपको दूर कर लो। मैं किसी पंथ में नहीं हूँ, मैं किसी आम्नाय/सम्प्रदाय में नहीं हूँ, मैं किसी जाति/वंश में नहीं हूँ, मैं स्त्री में नहीं हूँ, मैं पुरुष में नहीं हूँ, मैं नपुंसकवेद में नहीं हूँ, मैं चौरासी लाख योनियों में नहीं हूँ। मैं सबसे भिन्न देख रहा हूँ, वो कौन हूँ ? वह जो है वही परमात्मा है। परन्तु इन रागी जीवों ने परमात्मा तक को अपने में समेट लिया है। जिनको कपड़े बहुत अच्छे लगते हैं, उन्होंने अपने परमात्मा को कपड़े में लपेट लिया। जिनको कपड़े अच्छे नहीं लगते, उनने अपने परमात्मा को कपड़े से अलग कर लिया। जिनको मुकुट अच्छा लगता था, उनने मुकुट लगा दिया। जिनको हार अच्छा लगा, उनने हार पहना दिया। जिनको आँखें अच्छी लगीं, उन्होंने आँखें जड़कर रख दीं। जो परमात्मा का स्वरूप है, वह आँख वाला नहीं है, कान वाला नहीं है, शरीर वाला नहीं है। जिसके शरीर ही नहीं है, फिर तुम शरीर में रहना चाहते हो।

जहाँ अंग नहीं है, संग भी नहीं है, वह मात्र चैतन्यभूत अशरीरी है, अमूर्तिक है, ज्ञानमूर्ति है। भूतार्थ को समझो, सत्यार्थ को समझो। जो-जो आपको अच्छा लगा है, वह सत्य नहीं है। यदि अच्छा लगना ही सत्य हो गया, तो डाकू का डाका डालना भी सत्य हो जायेगा और पापी को अब्रह्म/कुशील भी सत्य हो जायेगा। जिसको छल-कपट करके आजीविका चलाने की आदत है, उसका छल-कपट भी सत्य हो जायेगा। जो तुमको अच्छा लग रहा है, वह सत्य नहीं है। जो सत्य होता है, वह सबको अच्छा लगता है। ऐसे भी तो लोग हैं जो भैया की सम्पत्ति पर ही नजर डाले बैठे हैं। यहाँ कोई टेंशन नहीं है। भैया! तुम कमा लो, हम हिस्सा माँग लेंगे। भाई कह रहा है कि जल्दी अलग हो जाओ, वो कहता है कि अभी ठहर जाओ और कमा लो। जितनी जल्दी मैं अलग हो जाऊँगा, उतना कम मिलेगा। इसी में लोग आनन्द लूट रहे हैं। जो आपको अच्छा लगता है, वो सत्य नहीं है। जो सत्य है, वह सबको अच्छा लगता है। सत्य सबको अच्छा लगता जरूर है, पर उसे सभी अच्छा कहनेवाले भी सत्य नहीं हैं। यही तो दार्शनिक सैद्धान्तिक पक्ष है।

कभी-कभी सत्य को कहनेवाले की मूर्ति बनाकर रख ली और पूजना प्रारम्भ कर दिया, जबकि वह जीवित था। सत्य पलायन कैसे करता है, आपको विधि बताऊँ?

सत्य बोलनेवाला पुरुष था। उसके सत्य बोलने से आपको बहुत तनाव था, आपकी आजीविका में बड़ी परेशानी थी। सत्यवादी अहंकारी मिल जाये, फिर देखो असत्यवादियों को क्या टेंशन खड़ा हो जाता है। उन्होंने एक युक्ति सोची कि इसकी मूर्ति बनाओ। उस सत्यवादी की मूर्ति बनाकर स्थापित कर दी, उसको पूजना प्रारम्भ कर दिया और उसको अवगत करा दिया कि आपके प्रति लोगों को कितनी आस्था और श्रद्धा है कि आपकी मूर्ति बनकर पुज रही है। उसकी ताकत कमजोर हो चुकी है जिसकी मूर्ति बन चुकी है और जिसने मूर्ति बनवायी है, उसकी ताकत बढ़ चुकी है। अब सत्य बोलनेवाला मान के तख्ते पर आ चुका है। जैसे-ही मान के तख्ते पर आता है, अब सोचता है कि जिनके लिये मैं सत्य बोलता था, उनने मुझे क्या दिया ? जिसके लिये मैं सत्य नहीं बोलता था, उनने मेरी पूजा की है। मौन रहो, होने दो पूजा। मान के फोड़े ने सत्य पर कब्जा कर लिया और सत्य को शून्य कर दिया और स्वयं का साम्राज्य फैल गया। अब नाम चलेगा सत्य का, लेकिन काम होगा असत्य का। इसलिये जिनको अपने सत्य को सुरक्षित रखना है, वे अपनी मान की मूर्ति न बनने दें, तब तो तुम्हारा सत्य जीवित रह पायेगा। कहीं तुम्हारी मूर्ति बनना प्रारम्भ हो गई, तो समझ लेना कि अब तुमको झुकना पड़ जायेगा। इसलिये कभी कोई आपके सद्गुणों की प्रशंसा अधिक करने लग जाये तो वहाँ से या तो तुम चले जाना या उससे कह देना कि अब मुझे तुम शान्ति से जीने दो। क्योंकि तुम जितनी प्रशंसा करोगे, उतना मुझे प्रशंसकों के नीचे होना पड़ेगा। प्रशंसा करने का भाव भी मन में आये तो प्रशंसनीय की परिपूर्ण परीक्षा कर लेना, नहीं-तो बहुत बड़ा धोका हो जायेगा।

एक गुण को लेकर कभी प्रशंसा में बैठ मत जाना। किसी व्यक्ति को दान देने की बहुत बहुत ललक थी। वह हर प्रकार का दान देता था। उसके पास धन भी था, दान भी देता था। दान तो लेना, परन्तु प्रशंसा मत करना। पहले और-भी जानकारी ले लो कि दान देने के साथ जुआ खेलने तो नहीं जा रहा है? यदि तुमने उस जुआरी के दान की प्रशंसा कर दी, तो हमारे युवा जो सुन रहे थे, वे कहेंगे कि जुआरी की प्रशंसा हो सकती है तो हम भी ऐसा पैसा दान देकरके समाज में प्रतिष्ठित हो सकते हैं, देश में विश्व में प्रतिष्ठित हो सकते हैं। आपको बोध होना चाहिये कि राष्ट्रपति पुरस्कार भी ऐसे ही नहीं मिलते हैं। जितना हो सकता है, भरसक प्रयास होता है कि

इसके आचरण का पता किया जाये। विदिशा में डॉ. विद्यानन्द जी को एक श्रेष्ठ अध्यापक के नाम पर पुरस्कृत किया गया है। उनको राष्ट्रपति पुरस्कार मिला। उनको ही मालूम नहीं था कि मेरे पीछे खुफिया पुलिस कब से लगी है। एक क्षण-क्षण की जानकारी उनके पास थी, तब उन्हें चुना गया कि आपको राष्ट्रपति पुरस्कार से पुरस्कृत किया जाता है। ऐसे पुरुष का राष्ट्रपति पुरस्कार फिर भी कमजोर हो सकता है, परन्तु तीर्थंकर जिनेन्द्र के मंच के सामने हर व्यक्ति के माथे पर तिलक लगाने के पहले उसके आचरण का पता कर लेना, क्योंकि इस सभा में तिलक लग गया तो वह तो प्रसन्न होकर बाहर पहुँच गया कि मैं तो धर्मसभा में पुरस्कृत हो चुका हूँ। सद्गुणों की पूजा हर समय करना, लेकिन मानकषाय को मत बढ़ाना। यदि मान कषाय को बढ़ा दिया, तो आपने उस जीव की हिंसा कर दी। कठोर लग रहा है क्या ? ये कठोर नहीं है, ये ध्रुव सत्य है।

सद्गुणों का सम्मान तो करना, लेकिन उसे मान कषाय के सिंहासन पर मत बिठाना। कभी-कभी ऐसा होता है कि जिसके नाम पर उसका सम्मान हुआ है, वह पुरुष अज्ञानी हो करके उस सम्मानीय को तो भूल गया और मात्र मान मान को रख लिया। यदि आपने किसी धर्मात्मा का सम्मान किया, तो धर्मात्मा यह समझ बैठा कि देखो मेरा क्या प्रभुत्व है, मेरा सम्मान हो रहा है। सत्य यह था कि समाज ने उसके अन्दर धर्म के संस्कारों का सम्मान किया था। वह दूसरे दिन से जगत् में अनेक फीते काटने पहुँचने लग गया। जो वह रोज मंदिर जाता था, अब उसे समय ही नहीं मिल रहा कि कब मंदिर जाऊँ। तुमने ये क्या कर दिया? उसको धर्म से दूर कर दिया। उतना ही सम्मान करना जिससे जहाँ सम्मान प्राप्त किया था उस स्थान को जाता रहे। नहीं तो यूँ कहे कि अब मुझे आपकी आवश्यकता नहीं है, अब मैं स्वयं अपने बल पर खड़ा हो चुका हूँ। वह मानी कह रहा है कि मान का भवन इतना ऊँचा खड़ा हो चुका है कि अब मुझे आपके धर्म की कोई आवश्यकता नहीं है।

परमात्मा कैसे बना है, इस पर दृष्टि रखना। जो सबकुछ खो चुका है, जो सबको भूल चुका है, जो सबसे छूट गया, वह जो बचा, वही परमात्मा है। **बेटा ! यदि कहीं पिता भी भूल में हों, तो पिता को पिता कहना तो मत छोड़ना, परन्तु पिता की भूल को पिता मत कहना।** शब्द कठोर बोल रहा हूँ। अब इससे बड़ा सत्य क्या होगा

? जिस टीचर से तू पढ़ने जाता है, यदि वह कक्षा में खड़े होकर सिगरेट पीता है, वह कितना ही होशियार हो, जब वह सिगरेट पी रहा हो, तुम सामने भी हो, उसको नमस्कार नहीं करना। उसके पैर मत छू लेना। व्यसनी का विनय नहीं। जब वह शिक्षा दे रहा हो, तो उसका विनय कर लेना। उस समय महसूस कर लेना कि मैं तुम्हारे ज्ञान मात्र का सम्मान करता हूँ, तुम्हारे सिगरेट का किञ्चित् भी सम्मान नहीं करता हूँ। पिता भी क्यों न हो, भाई भी क्यों न हो, उसको इतना अहसास करा देना कि तुम्हारे दुर्गुण से मैं किञ्चित् भी प्रभावित नहीं हूँ।

ज्ञानी यदि मुनिराज बन जाता है, बिल्कुल श्रेष्ठ साधना करता है, भावलिंगी मुनि बनकर बैठता है, यदि ये मुझे नमोऽस्तु करेगा तो मैं पिच्छी उठाकर उसे प्रतिनमोऽस्तु करूँगा। परन्तु दिगम्बर मुनि बनकर लौकिक कार्यों में लीन हो जाता है और साधना भी कर रहा है, तो मैं इसके लौकिक कार्यों की किञ्चित् भी प्रशंसा नहीं करूँगा कितना ही बड़ा/महान्-महान् साधु बन जाये। नेता-अभिनेताओं के पीछे इसकी चौबीस घण्टे वृत्ति चल रही है। इसको बुलाओ, उसको भगाओ, इसके साथ फोटो खिंचवाने के परिणाम चल रहे हैं तो ये लौकिक मुनि है, क्योंकि वीतराग धर्म का सम्बन्ध यहाँ किञ्चित् भी नहीं है। इतनी प्रेक्षा कर लेना। आपके कपड़े उपेक्षा से स्वच्छ हुये, कि अपेक्षा से स्वच्छ हुये? वस्त्रों में मल सापेक्ष था, बाहर का कचरा लग गया, सो वे काले दिखने लग गये। इस जीव ने पाउडर लिया, साबुन लिया और रगड़-रगड़ कर मल को उपेक्षित कर दिया, सो तेरे कपड़े चमकना प्रारम्भ हो गये। जैसे मल की उपेक्षा करने पर वस्त्र चमकते हैं, ऐसे-ही जगत् के राग-रंग की उपेक्षा कर देता है तो साधु आत्मा चमकता है। **जितना तेल लगायेगा, उतने ही कपड़े गंदे होंगे। जितना रागियों में स्नेह भरेगा, (स्नेह, तेल, स्निग्धता) जितनी स्निग्धता बढ़ेगी, उतना कर्म का बंध होगा, शिथिलाचार बढ़ेगा और साधुता का नाश होगा, परमात्मा से बहुत दूर हो जायेगा।** ये स्वच्छता का मार्ग है। परिचित को अपरिचित करने का सुन्दर मार्ग है। जिस दिन तू परिचयसम्मेलन में चला जायेगा, उस दिन से तू अपनी माँ से अपरिचित होना प्रारम्भ हो जायेगा। जिस दिन तू किसी से, परिचित हो जायेगा, उस दिन से तू अपनी माँ से अपरिचित होना प्रारम्भ कर देगा। सही है क्या? हाँ, सही है। एक वो दिन था जब तू अपनी माँ के बिना एक कदम नहीं रखता था, अब माँ के पास नहीं

जाता। और तो क्या, माँ के हाथ की रोटी खाना भी छोड़ दिया। जहाँ पर से परिचय बढ़ा, सो निज से अपरिचित होना प्रारम्भ हो गया। ऐसे-ही योगी/**साधु यदि रागियों से परिचय बढ़ा लेगा, तो निज से अपरिचित हो जायेगा।** कम-से-कम समझ में ही आ जाय, बहुत बड़ी बात है। परिचय अपरिचित कर देता है। बड़े-बड़े धनपतियों को धर्म से कोई प्रयोजन नहीं है। बस, महाराज! जितना द्रव्य खर्च करवाना हो करवा लो। क्यों ? आपके पोस्टर के नीचे नाम हमारा रहेगा तो मेरा परिचय बढ़ेगा और आप अपने आप से अपरिचित होने जा रहे हैं। ऐसा काम, वैसा काम। कहीं फिसल गये मान के पीछे, तो जिस प्रतिमा को प्रकट करने के लिये निकले थे, उस प्रतिमा को तो भूल गये और नेताओं की प्रतिमाओं से परिचित होना प्रारम्भ हो गये। हृदयांगन के एक कोने में वैराग्य का बीज रखा हो तो, मेरे मित्र! उसको सुरक्षित रखना, उसे चील कौओं से दूर रखना, कहीं वे चुग न जायें। हृदयांगन में रखे वैराग्य के बीज को नेता अभिनेता चुन ले जायेंगे।

स्वामी! आपकी तपस्या की प्रभा से भीड़ आती है तो आपके प्रभाव से हमारा प्रभाव बढ़ेगा, इसलिये मैं आपके पास रहता हूँ, सर्वथा मत समझना कि धार्मिक है। **जगत् में धार्मिक लोगों की संख्या बहुत कम है, सामाजिक लोगों की संख्या अधिक है।** इसलिये अपने भोले मन को किसी के चक्कर में फँसा मत लेना। लोगों को सामाजिक वैभव चाहिये, धार्मिकता से कोई प्रयोजन नहीं है। लेकिन विषय ऐसा है कि धर्म के बिना समाज मिलती नहीं है। अपनी जेब का द्रव्य भी खर्च करने को तैयार हो जायेंगे। ज्ञानी ! ग्राहकों को चाय पिला देता है, इतना दिलवाला कब से हो गया? इसके भीतर क्या है, उसे बताओगे क्या ? चाय पीकर ग्राहक खुश हो जाता है कि सेठ मेरा कितना सम्मान रखता है। उस भोले को ये पता ही नहीं है कि इस सम्मान में क्या होनेवाला है ?

जब एक व्यापारी इतना समझदार है, तो साधु को कितना समझदार होना चाहिये? इस शरीर को आहार दे ही देना चाहिये। क्यों ? तपस्या तो इसी से करूँगा। विहार भी इसी से करायेंगे, अध्ययन भी इसी से करायेंगे और साधना भी इसी से करायेंगे। जब शरीर ही नहीं होगा, तो साधना करायेंगे किससे? **'शरीर माध्यम खलु धर्म-साधनम्।'** घर में रहना, घर से बाहर मत जाना। वस्तुस्वरूप समझो। मान ने प्राण

किसी के नहीं लिये, लेकिन छोड़ा किसी को नहीं। क्रोध को फाँसी लगवा देता है, मान अन्दर-ही-अन्दर क्यों आता है? क्रोध तो फाँसी लगवा देता है, पर मान भीतर-भीतर घुटवाता है। बताओ माताओ! तुम्हें कष्ट क्या है? कुछ भी नहीं। परन्तु उस दिन देखना जिस दिन बेटा कह दे 'शान्त बैठो, मुझे अपना काम करने दो।' गलत बोला क्या? सही तो बोला है 'मुझे अपना काम करने दो, तुम शान्त बैठो।' बस, आपको लग गया धनुष वाण, और सूखने लग गये कि बेटे ने ऐसा बोल दिया 'शान्त बैठो, मुझे अपना काम करने दो।' यदि ये मान न होता, तो यही सोचता कि ठीक तो कह रहा है। मैं बड़बड़ कर रहा था, उसको काम क्यों नहीं करने दे रहा था? लग गया बाण। कितने लोग समय से पहले ऊपर चले गये इसी बात पर। बहू ने कह दिया कि बुड्ढा बिल्कुल साता नहीं लेने दे रहा है। मैं पुनः पुनः कह रहा हूँ कि **शान्ति का जीवन जीना हो तो जैसे-जैसे उम्र ढलती जाये, ज्यादा बात मत करो, मौन लेना प्रारम्भ कर दो। जितना अधिक मौन लोगे, उतना तुम्हारा सम्मान रहेगा।** जितना अधिक बोलोगे, उतना ही अपमान होगा। यदि मान को भी सुरक्षित रखना चाहते हो तो मौन लेना पड़ेगा।

कम बोलना सज्जनों की पहचान है। एक व्यक्ति मेरे से बोल ही गया मैं इतना अच्छा हूँ। मेरा संयम श्रेष्ठ है। मेरा चारित्र श्रेष्ठ है। मेरा क्षयोपशम श्रेष्ठ है। लेकिन मेरी बोलने की आदत इतनी खोटी है कि जहाँ जाऊँ वहाँ धक्का मिलता है। भैया! जब तुझे मालूम ही है, तो मौन ले ले। महाराज! मौन ले लो तो पेट फटने लगता है, सिर फटने लगता है। मैं उपवास या नीरस कर सकता हूँ, लेकिन मौन नहीं ले सकता। इससे मालूम होता है कि मौन कितना शक्तिमान है? मेरी बातों में आकर मौन मत ले लेना, लेकिन यह भी सत्य है कि मौन लिये बिना कल्याण नहीं होगा। सँभलकर, पूरी बात सुनकर, मौन लेना।

जेम्स वॉट ने वटलोई में भोजन पकाते-पकाते इंजन की खोज कर ली थी। भोजन पकाते-पकाते बटलोई का ढक्कन ऊपर उठ गया तो उसने विवेक लगाया। वाष्प में इतनी ताकत है तो उसने एक इंजन तैयार कर दिया। जिसका ढक्कन बन्द होता है, उसकी वाष्प अच्छी बनती है और जो ढक्कन बन्द करके भोजन पकाता है, उसका भोजन जल्दी पक जाता है। खुले में बनायेगा तो स्वाद भी नहीं आयेगा और देर भी लगेगी। ऐसे-ही

कहना माँ! ढक्कन बन्द करके भगवान् की भक्ति करेगी तो भजन भी अच्छा होगा और मुक्ति भी जल्दी होगी। जितना लोग ढक्कन बन्द करेंगे, उतनी जल्दी मोक्ष होगा और ढक्कन खोल कर रखेंगे तो जो है सो है। भगवान् महावीर! आपको धन्य हो। तीर्थंकर महावीर स्वामी ने दीक्षा लेते ही बारह वर्ष का अखण्ड मौन धारण कर लिया था। तीर्थंकर भगवन्त का नियम होता है कि दीक्षा लेते ही मौन ले लेते हैं, बोलते नहीं हैं। जब कैवल्य हो जाता है, तभी बोलते हैं। चौबीस घण्टे में पांच मिनिट मौन लेकर तत्त्वचिन्तन करना, यहाँ-वहाँ की मत सोचना।

मौन तब लेना जब अच्छी भीड-भाड़ आने वाली हो। कभी-कभी मौन से बड़ी-बड़ी आपत्तियाँ टल जाती हैं। संसार में विशाल आपत्तियों से मुक्त होने का उपाय मौन है। समय कैसे निकल गया, पता ही नहीं चला। ऐसे-ही पता ही नहीं चलेगा कि कब आये थे, कब चले गये।

परिणति उच्च रहे, तो कुल कुछ नहीं है। रास्ते में चलते-चलते जीवों को देख लिया करो, बेचारे उल्टे लटक रहे हैं। लटकाने वाले इस बात को भूल जाते हैं कि कर्म सबको देख रहा है। उन जीवों ने किया था, सो तुमने लटका दिया है। आगे का ध्यान रखना कि तुम करोगे तो तुम्हारा क्या होगा? कर्म का फल तो मिलता ही है। जीव को समझ में भी आता है। नाली के कीड़े से लेकर तुम अजगर तक हो चुके हो। शेर, नाहर, तेंदुआ सबकुछ हो गये हो। और म्लेच्छ से लेकरके बड़े-बड़े मनुष्य भी बन चुके हो। किसका मान कर रहे हो? अनेक बार जीव कहाँ-कहाँ जन्म ले चुका है ? जीवन जीना एक बार तो सीख लो। खुल कर जीवन जी लो। मैं किसी का नहीं हूँ, मैं तो मैं ही हूँ। एक बार खुल कर जी लो तो सारे गठबन्धन बन्द हो जायेंगे। ये भी कोई जीवन है कि निज के मस्तिष्क को ही खोलकर नहीं देख पा रहा है। मैं इनका हूँ, ये मेरे हैं। कहीं इनको मनाने में समय जा रहा है, कभी उनको मनाने में समय जा रहा है, कहीं उनको उठाने में समय जा रहा है । जो जगत् को मना रहा है, तू उसे ही मना ले। भगवान् को मानने वाले तो मात्र स्वर्ग ही जायेंगे, जबकि जो निज को मानता है वह भगवान् बन जायेगा। **चतुर्मुख ब्रह्मा समवसरण में विराजते हैं, उनको पूजनेवाला स्वर्ग ही जा पायेगा, जबकि जो निज ब्रह्म को पूजेगा, वह नियम से भगवान् बनेगा।** इसलिये हे जीव! तूने चिरकाल तक अनेक योनियों में भ्रमण किया है, कुयोनियों में

अनेक बार गया है। उच्च गोत्र एक बार तुझे मिल गया। सज्जन पुरुष को एक बार अच्छा पद मिल जाय तो अच्छा काम करके जाते हैं, क्योंकि फिर बार-बार मिला या नहीं ? दुर्जन ऐसे फँस जाते हैं, वे सोचते हैं कि एक बार मिला है, कर लो, जतार लो।

भागवत् गीता में एक कथा आयी है। एक ऐसा प्राणी था जो पूरे नगर को परेशान करता था। एक बार उसकी मृत्यु का काल आया तो बेटे से कहता है—बेटा! सुन। जब मेरी मृत्यु होने लग जाय और मेरे प्राण निकल ही जायें, तो तू मेरे मुख में खूँटा ठोक देना। 'ऐसा क्यों?' अब मैं तो मर ही गया, तू तो खूँटा ठोक देना और पड़ौसी के खेत में छोड़कर आ जाना। 'ऐसा क्यों करेंगे ?' तू पागल है, जानता नहीं है। बेटा बोला-'बताओ तो।' अभी तो मैं जी रहा हूँ तो सबको परेशान कर लेता हूँ। जब मैं मर जाऊँगा, तो कैसे परेशान कर पाऊँगा? जब तू खूँटा ठोक देगा, मैं पड़ौसी के खेत में होऊँगा, तो पुलिस पकड़ेगी। खूँटा ठोककर मार दिया तो पूरा गाँव बंधा-बंधा फिरेगा।

संसार में ऐसे भी जीव हुये हैं जो जीते-जीते तो सता रहे थे, मरने के बाद भी सताते हैं। जो आत्महत्या करते हैं, वे ऐसे ही लोग होते हैं। स्वयं तो मर गये, वंश को छह महीने के लिये पूजा-पाठ से दूर कर गये। एक बार उच्च गोत्र मिल गया तो ऐसा कौन-सा महापुरुष होगा जो मान करेगा? ऐसा सोचकरके मान से दूर हो जाओ। एक बार मौका मिला है तो अच्छे काम कर लो। कोई नेता अच्छे काम करता है तो फिर से चुन लिया जाता है। तुम अच्छा करोगे तो पुण्यकर्म तुम्हें फिर से चुन लेंगे। तुमने बुरा किया तो कोई तुम्हें चुननेवाले नहीं हैं। जाओ। जाना तो पड़ेगा ही। लेकिन ऐसे जाना, ऐसी जगह जाना कि जहाँ से फिर वापस न आना पड़े। वह स्थान सिद्धशिला है।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।



मोक्षमार्ग के लुटेरे

श्लोक : रागद्वेषौ महाशत्रू मोक्षमार्गमलिम्लुचौ।
ज्ञानध्यानतपोरत्नं हरतः सुचिरार्जितम्॥296॥

अन्वयार्थ : (रागद्वेषौ महाशत्रू) राग और द्वेष महाशत्रु हैं **(मोक्षमार्गम् अलिम्लुचौ)** मोक्ष के वीतरागविज्ञानमय मार्ग को लूटनेवाले हैं **(सुचिरार्जितम् ज्ञान-ध्यान-तपोरत्नं हरतः)** ये दीर्घकाल से संचय किये हुए ज्ञान, ध्यान, तपरूपी रत्न को लूट लेते हैं।

भावार्थ : हे भव्यात्मा ! मोक्षमार्ग के लूटनेवाले राग-द्वेष रूपी शत्रु चिरकाल से अर्जित ज्ञान, ध्यान और तपरूपी रत्न को चुरा लेते हैं, लूट लेते हैं।

जिनधर्म की दुर्लभता

श्लोक : चिरं गतस्य संसारे बहुयोनिसमाकुले।
प्राप्ता सुदुर्लभा बोधिः, शासने जिनभाषिते ॥297॥

अन्वयार्थ : (बहुयोनिसमाकुले संसारे) चौरासी लाख योनियों से भरे हुए संसार में **(चिरं गतस्य)** अनन्तकाल से भ्रमण करते हुए जीव को **(जिनभाषिते शासने सुदुर्लभा बोधिः प्राप्ता)** जिनेन्द्रभाषित धर्म में बड़ी कठिनता से ज्ञान का लाभ हुआ है।

भावार्थ : हे भव्य ! चौरासी लाख योनियों से भरे हुए इस संसार में अनन्त काल से भ्रमण करते हुए जीव को बड़ी कठिनता से जिनभाषित धर्म में बोधि की प्राप्ति हुई है।

॥सद्-देशना॥

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज सारसमुच्चय जी में वीतराग मार्ग की प्ररूपणा करते हुये समझा रहे हैं। अहो ज्ञानियो! मार्दव धर्म, आर्जव धर्म ये आपको ब्रह्मधर्म तक भेज पायेंगे। **जीव जितना लघु होता जायेगा, उतना गुरु होता जायेगा।** स्कन्ध कभी चौदह राजू गमन नहीं कर पाता। स्कन्ध जब परमाणु दशा को प्राप्त होता है, तब एक समय में चौदह राजू गमन करता है।

परिणामों की विशुद्धि होती है तब लोक में मंगल है द्रव्य मंगल, क्षेत्र मंगल, काल मंगल, नाम मंगल, स्थापना मंगल। इन **सारे मंगलों में भी कोई महा मंगल है तो उसका नाम है भाव मंगल। जब पूरी समाज का भाव मंगलभूत है, तो काम मंगल होना ही है।** मुहूर्त दिखा लेना, लेकिन साथ में ये देखना कि मुहूर्त दिखाने के बाद भी अमंगल क्यों हो जाता है? बड़ी-बड़ी कुण्डलियाँ बिठाई गईं, फिर भी बेचारे का तलाक हो गया। वशिष्ट जैसे गुरु देख रहे हों मुहूर्त, फिर भी राम को वनवास हो गया, कारण क्या था? केकई का भाव मंगल नहीं था। जब तीर्थंकर भगवान् का जन्म होता है, तो मुहूर्त लेकर नहीं होता है। पुण्यात्मा जब जन्म ले लेता है, उसके नाम का ही मुहूर्त हो जाता है। कोई मुहूर्त न निकले तो महावीर जयन्ती को काम कर लेना, रामनवमी को काम कर लेना, क्यों ? जबकि, नौवीं तिथि रिक्ता होती है, कोई काम नहीं करना पड़ता है। सीधी-सीधी कहो कि बड़े आदमी के आगे सारे मुहूर्त छोटे हो जाते हैं और छोटे आदमी के आगे सारे मुहूर्त बड़े हो जाते हैं।

एक बहुत बड़े ज्योतिषी आये थे, वे कह रहे थे 'महाराज ! घर में परेशानी है।' मैंने कहा 'तूने तो सारी दुनियाँ की परेशानी दूर की है, तुम अपनी नहीं कर पा रहे?' महाराज! बात ऐसी है कि जिसका पुण्य होता है, उसको हमारे मुहूर्त लग जाते हैं और जिसका पुण्य नहीं है, तो हमई रो रहे हैं। पण्डित जी! सत्य बताना, आप सही मुहूर्त क्या मानते हो ? वे पकड़े गये, बोले, महाराज जी! सही मुहूर्त तो कभी निकलता ही नहीं है। पूरे-पूरे सही निकलना तो बड़ा कठिन होता है। 'तो क्या करते हो ?' मैं तो भगवान् के सामने एक श्रीफल लेकर जाता हूँ। जब अच्छे विशुद्ध परिणाम होते हैं, तब वह काम कर लेता हूँ। स्वयं के लिये ऐसा करता है और दुनियाँ के लिये पोथी खोलता है। जब तुम्हें किसी विद्वान् के पास मुहूर्त दिखाने को न मिले और काम करना हो, तो कभी भटकना नहीं, न पूछने जाना, क्योंकि कहीं उल्टा बता दिया तो विचलित हो जाओगे। अच्छा प्रशस्त मन हो तो भगवान् शान्तिनाथ की पूजा-भक्ति कर लेना और चौबीसों भगवान् की पूजा कर लेना। रविवार आता है तो खोजते हैं कि पारसनाथ की प्रतिमा कहाँ है ? ये सब कहाँ से सीख गये? शीतला लग गईं है तो शीतलनाथ को खोजो। ये क्या है? मात्र मानसिकता है। चौबीस तीर्थंकर भगवन्तों में ऐसे कौन-से तीर्थंकर हैं जिनकी शक्ति में कमी है? नहीं है तो ये भेद-भाव करना बन्द करो। एक

तीर्थंकर की प्रतिमा के सामने चौबीसों भगवान् की भक्ति कर सकते हो। इसलिये चौबीस में ज्यादा विकल्प मत करना कि मैं ये ही भगवान् विराजमान करूँगा तो ही मुझे पुण्य मिलेगा। जिन भी तीर्थंकर भगवान् की भक्ति करोगे, पुण्य बराबर मिलेगा। कभी-कभी शंका में डालने वाले लोग ज्यादा शंका में डाल देते हैं। तुम्हारे राशि में जो आ रहे हैं, मन में आ रहे हैं, बहुत अच्छी बात है। राशि के भगवान् गौण हैं, भक्ति के भगवान् प्रधान हैं।

जयवन्त हों गोम्मटेश बाहुवली स्वामी, वे तो तीर्थंकर नहीं थे, चामुण्डराय ने विराजमान किये, तो-फिर राशि का क्या हुआ? माँ की भक्ति थी, सो आज सारे विश्व में दिगम्बरत्व को फैला रहे हैं। भारत की भूमि पर दो ही तीर्थ हैं। कर्नाटक के गोम्मटेश्वर और मध्यप्रदेश के खजुराहो। कुछ भी नहीं करना पड़ेगा, सारे विश्व को आप जैनत्व भेज सकते हो खजुराहो में बैठ करके। जब चौबीसी बन जायेगी तो आप लोगों की प्रशस्तियाँ तो लिखी जायेंगी। अच्छी बात है, लिखवा लेना। मान के लिये मत लिखवाना। इसलिये लिखवाना कि कदाचित् तूने भगवान् विराजमान किये और आपकी वंश-परम्परा बहुत पुरानी हो गई, बीच में कोई नगर छोड़कर भी चले गये और वहाँ से कभी दर्शन करने डेरा पहाड़ी आये, उन्होंने देखा कि इस मूर्ति में तो मेरे वंश की प्रशस्ति लिखी है, विश्वास रखना, वह भी धर्म की ओर पहुँच जायेगा कि मेरे वंश के लोगों ने भगवान् स्थापित किये हैं।

प्रशस्ति का उद्देश्य अहंकार नहीं लगाना। कदाचित् तुम्हारे वंश में कोई विधर्मी भी हो जाय, कभी वह भी दर्शन करने धोके से भी पहुँच गया, तो लगेगा कि मैं कितना पापी हूँ, मेरे वंश में अरहन्तों की स्थापना की गई थी लेकिन मैं दर्शन करने भी नहीं आ सकता हूँ? वह दर्शन करना प्रारम्भ कर देगा। पटिया में प्रशस्ति वही लिखवाना जो सेठ पाहिल ने लिखवाई। अलग से लिखवाना कि मैंने इतना दान दिया, बगीचे लगाये। सेठ पाटिल कहता है कि मैं नहीं बचूँगा, मेरा वंश बचे या न बचे, मैं उस व्यक्ति का दास का दास हूँ जो जिनमंदिरों की रक्षा करेगा। ब्रह्माण्ड में ऐसी प्रशस्ति एक ही है। उस सेठ की भावना भी फलित हो रही है। समाज रक्षा करे सो करे, भारत सरकार भी रक्षा कर रही है। **जहाँ आस्थायें बनती हैं, उसी की सुरक्षा होती है। जहाँ आस्था नहीं, वहाँ सुरक्षा का कोई विधान नहीं।** कभी इन जिनालयों को स्थापित करने वाले

ने सोचा होगा कि हमारे मंदिरों पर लाल पत्थर लगेगा। कदाचित् स्थापित करने वाला स्वर्ग में देव भी बना होगा तो अवधिज्ञान से देखकर मुस्करा रहा होगा। उसका मन भी करेगा कि जिन्होंने हमारे मंदिरों की इतनी शोभा बढ़ाई है, उनके घर की शोभा मुझे बढ़ाना चाहिये। भगवान् कभी चमत्कार नहीं दिखाते, न अतिशय करते हैं। अतिशय होते तो दिखता है, वह कैसे होता है, कौन करता है? आप महाराज के साथ विहार कर रहे थे। वह तो जाकर सामायिक में बैठ गये। आप द्वार के बाहर बैठे थे। जैसे-ही जिस नगर में गये, वहाँ तुमको श्रावक देखते बड़ी श्रद्धा से, चलो भैया! भोजन तो करो। तुम थक गये होगे। तुम हमारे गुरु महाराज को विहार करा कर लाये हो। गुरु की आस्था से वह तुम्हारे भोजन की व्यवस्था कर रहा है। ऐसे-ही जो अरहन्त के भक्त देव होते हैं, जब तुम भगवान् की भक्ति करते दिखते हो, वे देव चमत्कार कर देते हैं। भगवान् चमत्कार नहीं करते, वे तो कृतकृत्य हो चुके हैं। जो भी चमत्कार तीर्थों में मंदिरों में होते हैं, वे तीर्थंकर-कृत अतिशय नहीं होते। परमात्मा अतिशय नहीं करते, अतिशय करने वाले तो सामान्य देव होते हैं। कहीं भटकने की आवश्यकता नहीं है। आप यहीं इसी जिनालय में अच्छे से पूजा करो विधि-विधान से, प्रतिदिन आनन्द के साथ, यहीं चमत्कार होना प्रारम्भ हो जायेंगे।

आस्था में चमत्कार है, श्रद्धा में चमत्कार है और पंचमकाल का तो सबसे बड़ा चमत्कार यह है—

इस कलिकाल में चित्त चमत्कार है, देह अन्न के कीड़े बने हुये हैं, तब भी ऐसे दग्ध खोटे काल में अरहन्त के भेष को धारण करने वाले मनुष्य दिखाई दे रहे हैं। यह पंचमकाल का सबसे बड़ा चमत्कार है। मंदिर समवसरण का प्रतीक है। समवसरण में पहले भक्ति-पूजा होती है, फिर उपदेश सुना जाता है। जो व्यक्ति भक्ति पूजा करे और बिना स्वाध्याय करे चला जाय, वह तो आधा-अधूरा होकर गया है। वह भक्ति करके तो आ गया, लेकिन दिव्यध्वनि तो सुनी ही नहीं। यदि पूजा करने में दो घण्टे लगाते हो तो पांच मिनिट स्वाध्याय अवश्य करना। तुम समवसरण में आये हो और पूजा करके चले गये। भगवान् की वाणी सुनने को बैठे हो तो वाणी सुनकर ही जाना। फिर जाकर घर के द्वार पर कलश लेकर खड़े हो जाना। चाहे नगर में साधु हो या न हो, आप तो विधिपूर्वक पड़गाहन कर रहे हैं। तीन कम नव कोटि मुनीश्वर इस ढाई

द्वीप में जहाँ भी होंगे, उनके प्रति आस्था-भक्ति प्रकट करना। चर्या तो मात्र छटवें गुणस्थानवर्ती की ही होगी। जितने निर्ग्रन्थ आहार को जा रहे हों, वे कोई-न-कोई मेरे द्वार पर आये और न पधारे, तो जहाँ उनकी चर्या हो रही हो, निरन्तराय आहार हों, ऐसा विचार कर लेना। स्वेच्छा से मन बना लो। एक भी जिनमंदिर ऐसा न रह जाये जहाँ स्वाध्याय न होता हो, चाहे सुबह चाहे शाम। **कितने लोग स्वाध्याय आदि का नियम ले रहे हैं? यही तो गुरुदक्षिणा है।** वाचना होने के बाद भी वाचना बन्द न हो।

खाली घर में भूत आने लगते हैं। **जिन श्रावकों के घर में कमरे खाली हों, उन्हें खाली मत छोड़ना, भले ही दिन में एक बार चले जाना। खाली मकान में भूत रहते हैं।** इसलिये इस हाल में बच्चों युवाओं से कहना कि वे सब बैठकर स्वाध्याय करते रहें। **जिस घर में जिनवाणी गूँजती है, उस घर में भूत व्यन्तर परेशान नहीं करते। जिन घरों में घूरे डलते हों, रोज झगड़े होते हों, उनके घरों में नियम से व्यन्तर रहना शुरू हो जायेंगे।** चाहे उल्लू बैठे चाहे कबूतर बैठे, तीन ही बैठे। जहाँ उल्लू, कबूतर, भूत बैठ गये, तब तो पक्का है कि तुम्हें भागना ही पड़ेगा। आप तो यहीं पाठशाला लगवाओ जिससे भवन में रौनक रहेगी, जिनवाणी गूँजेगी, वर्गणायें फैलेंगी। भूत को तो तुम मंत्रों से खाली करवा लोगे। कहीं जिन्दा भूत भर गये तो मंत्र भी काम नहीं आयेंगे।

कटोरे की खीर ? 'माँ ! खीर चाहिये।' माँ खीर कहाँ से देती? अश्रु ढारती है, 'बेटा! जब खीर थी, तब तू खाता नहीं था। आज खीर नहीं है, तो मचल रहा है।' पड़ौस में गई माँ, काम करके आयी। उसने पूछा, 'क्या चाहिये?' कुछ नहीं। एक कटोरी चावल और एक लोटा दूध दे दो। जब माँ ने खीर बना ली, तो बेटे से कहती है बेटा! तुझे तो मैं खीर दूँगी, लेकिन मैं कुए से पानी भरने जा रही हूँ, तुम देखना, कोई यहाँ से मुनिराज निकलें तो रोक लेना। पहले महाराज को आहार करायेंगे, फिर तुमको खीर खिलायेंगे। धन्य हो उस माँ को। माँ सिर पर कलश लिये पानी लेने जाती है और मुनिश्री नियम लेकर निकल पड़े कि जिसके सिर पर कलश रखा हो। क्या मालूम था विधि का विधान। यहाँ वह नन्हा-सा बच्चा सामने देखता है कि महाराज आ रहे हैं। कहता है, 'महाराज! ठहर जाओ ना?' फिर वह पैर पकड़ लेता है 'स्वामी! ठहर जाओ ना?' क्यों? 'तुम चले जाओगे तो मेरी माँ मुझे खीर खाने को नहीं देगी। आप रुक जाओगे तो मेरी माँ मुझे खीर खाने देगी।' उधर माँ चली आ रही है, देखकर

मुस्करा रही है कि देखो मेरा बेटा क्या कर रहा है? माँ धीरे-से सामने आकर खड़ी हो गई। यही उनकी विधि थी। मंगल कलश सिर पर हो, वहीं आहार करूँगा। जैसे-ही माँ दिखी, मुनिराज खड़े हो गये। पड़गाहन करके चौके में ले गई। अब खीर तो एक कटोरा ही थी। माँ ने अपने मन में तीन हिस्से कर लिये। एक महाराज को दूँगी, एक बच्चे को दूँगी जिसके लिये बनाई है, बच गई तो स्वयं ले लूँगी। अब मुनिराज को क्या मालूम था कि तेरे घर में कितनी खीर है। अब वह तो भक्ति का भोजन था। बड़ा अच्छा लगा, सो खीर लेते गये। अब माँ सोचती है कि महाराज का हिस्सा तो पूरा हो गया। कोई बात नहीं, मैंने जीवन में बहुत खीर खायी है। अपना हिस्सा महाराज को दे देती है। अब वह भी समाप्त हो गया। अब बच्चे का हिस्सा बचा। उसके हाथ कँपने लगे। वह बच्चा आँगन में बैठा-बैठा कहता है 'नहीं, माँ! और खीर दो।' जैसे ही माँ ने और खीर दी तो वह कटोरा खीर से पूर्णतः भर गया। माँ ने महाराज को खीर दी। मुनिराज के तो आहार हो गये, चले गये। वे महानस ऋद्धि धारी मुनिराज थे। ऐसे मुनिराज के आहार हो जायें, तो चक्रवर्ती का कटक भी खा जाये तो-भी रसोई खाली नहीं होती। जैसे बच्चों को भी खिला दिया, तब भी कटोरा भरा रहा। माँ सोचती है कि अपन ने पड़ौस में बहुत खाया, अब मैं नगर को खीर खिलाऊँगी। सबको खीर खिला दी, लेकिन कटोरा खाली नहीं हुआ। भक्ति का कटोरा भरा रहे तो खीर अपने आप भरती है। जीवों के भक्ति के कटोरे ऐसे ही भरे रहें। जब फूल में सुगन्ध होती है तो भौंरे अपने आप आते हैं।

धर्मात्मा प्रजा होती है पुण्यात्मा राजा के राज्य में। जब प्रजा का पुण्य प्रबल होता है तब धर्मात्मा राजा मिलता है।

ज्ञानियो ! न हंसगामिनी की वन्दना है न वीणावादिनी की वन्दना है। दुनियाँ में अरहन्त का भी इतना पवित्र स्थान नहीं है जो सरस्वती का है। अरहन्तदेव तो कमलासन पर विराजते हैं, समवसरण में विराजते हैं, लेकिन सरस्वती का निवास कहाँ है? न मयूर को देखना, न हंस को देखना। उस सरस्वती की बात तो समझो जो तीर्थंकर से भी पवित्र स्थान पर विराजती है।

सरस्वती का निवास कहाँ है ? **हे जिनवाणी ! तीर्थंकर तो कमल के ऊपर विराजते हैं, लेकिन तेरा निवास अर्हन्त का मुख-कमल है। इससे पवित्र स्थान**

किसका होगा? अर्हन्त के मुख पर निवास करने वाली ऐसी भगवती सरस्वती की वन्दना हो, तीर्थंकर जिनदेव को नमस्कार हो।

मुमुक्षु ! इस संसार में कोई तेरा शत्रु है, क्लेश और अशान्ति को देने वाला कोई है, वह राग और द्वेष है। **जहाँ-जहाँ तेरी राग की दृष्टि विशाल होती है, वहाँ-वहाँ अशान्ति प्रारम्भ रहती है। जहाँ राग की पूर्ति नहीं होती है, जिनके प्रति तू राग की पूर्ति चाहता है, वे तो तेरे राग की पूर्ति करने में असमर्थ हो जाते हैं, फिर तेरे भीतर द्वेष का जन्म होता है। बाहर कोई भी वस्तु संकट देने का निमित्त नहीं है।** जगत में ऐसा कोई द्रव्य नहीं है जो जीव को दु:खी करता हो। जगत् में ऐसा कोई पुरुष नहीं है जो दूसरे के दु:ख का साधन बनता हो। जीव की मानसिकता को व्यवस्थित करने की आवश्यकता है। हम पदार्थों को व्यवस्थित करने को आतुर हैं। एक क्षण को निज का ज्ञायकभाव समझ में आ जाता है तो सारे संकट के दिन एक क्षण में विलीन हो जाते हैं। सामने वाली बिल्डिंग के बारे में तेरा विचार हो गया कि इस बिल्डिंग में मेरा अधिकार होना चाहिये। भवन ने तुझे कष्ट कहाँ दिया है? तेरी लोभ कषाय ने तुझे कष्ट देना प्रारम्भ किया है। अब मायाधर्म को प्रारम्भ करेगा, अनेक लोगों से तू षड्यंत्र रचवायेगा कि ये भवन मुझे मिलना चाहिये। भवन तुझे कष्ट नहीं दे रहा था, तेरी लोभकषाय तुझे कष्ट दे रही थी। जब नहीं मिलता है, तो खिन्न होता है। मिल जाता है, तो प्रसन्न होता है। **वस्तु में कोई खिन्नता नहीं है, वस्तु में कोई प्रसन्नता नहीं है। राग की पूर्ति आपको खुश रख रही है और राग की पूर्ति नहीं हो रही है तो आपको दु:खी कर रही है।** जगत् में किसी पुरुष ने आपको व्यथित नहीं किया। यदि पुरुष व्यथित करते, वस्तु व्यथित करती, भवन व्यथित करते, तो उसके सामने से तो बहुत सारे लोग निकल रहे थे, फिर सभी व्यथित होना चाहिये?

दु:ख का साधन क्या है? अशान्ति का साधन क्या है? कहीं ऐसा तो नहीं कि वस्तु कहीं है और हम खोज कहीं-और रहे हैं? ज्ञानी अपने घर के सामने एक बूढ़ी माँ को देखता है। वह माँ कुछ खोज रही है। बालक पूछता है, 'माँ! आप क्या खोज रही हो ?' बेटा ! मेरी सुई गुम गई है। 'माँ ! प्रकाश में खोजो।' माँ उस कमरे से बाहर निकलती है, जहाँ नगरपालिका के बड़े-बड़े हेलोजन जल रहे थे, वहाँ जाकर खोजना प्रारम्भ कर देती है। एक ज्ञानी वहाँ पहुँचता है। वह कहती है, 'बेटा! मेरी कपड़े

सिलने की सुई गुम गई है। उसे मैं कक्ष में खोज रही थी, लेकिन एक बालक ने कहा कि प्रकाश में खोजो, तो मैं प्रकाश में आकर खोज रही हूँ।

मित्र! बताओ उसे सुई कब मिलेगी? माँ! बालक ने तो ठीक कहा था, लेकिन आपकी भूल ये है कि उसने ये नहीं कहा था कि जहाँ प्रकाश है तुम वहाँ खोजने लग जाओ। कमरे में प्रकाश लेकर आओ तो तुम्हारी सुई मिल जायेगी। आप जहाँ गुमी नहीं है, वहाँ खोजने गई हो।

ज्ञानियो ! जहाँ आनन्द है, जहाँ शान्ति है, वहाँ तुम खोज नहीं रहे हो। जहाँ शान्ति नहीं है, वहाँ तुम खोज रहे हो। कहाँ मिलनेवाली है ? किसी की बंगलों में, किसी की वस्त्रों में शान्ति की खोज चल रही है। जहाँ वस्तु ही नहीं है, वहाँ तुम क्या खोज रहे हो ? इच्छा की पूर्ति शान्ति नहीं हो सकती। कहीं ऐसा तो नहीं है कि हेलोजन रोड पर लगे हों वहाँ खोज रहे हो और दोष दे रहे हैं कि मेरी सुई क्यों नहीं मिल रही है? **जड़ द्रव्यों में और रागात्मक दृष्टियों में, द्वेषात्मक दृष्टियों में तुम शान्ति खोजने बैठे हो, यह आपकी अज्ञानधारा है।** जहाँ शान्ति संभव ही नहीं है, जहाँ शान्ति होती ही नहीं, पाषाण में तू केसर की सुगन्ध खोज रहा है। केसर की सुगन्ध चाहिये तो काश्मीर के खेतों में जाना होगा। यदि जिनदेव के चरणों की सुगन्ध को देखना हो तो तीर्थों पर भक्ति से जाओ। **माथा रंगना हो तो काश्मीर की केशर खोजने जाओ और कर्मों से माथे को साफ करना हो तो तीर्थंकरों के चरणों में जाओ।** खोज कहाँ चल रही है ? रक्त से दूषित वस्तु को रक्त से साफ करोगे क्या? इन बुजुर्गों से कहना कि उम्र ढल रही है, श्वास निकलने में समय नहीं लगता है। जिनके बारे में कल सुनते थे कि किसी रथ पर बैठे हैं, दूसरे क्षण सुना कि अर्थी पर बैठे हैं। सिंहासन पर बैठने वाले अधर में स्वाहा हो चुके हैं, अब मात्र बातें बची हुई हैं। पर्याय को छोड़ चुका है। मत खोज करो। राग-द्वेष के साथ में किसी ने किसी को बांधा है क्या ? कोई किसी को बांध पाया है क्या ? **रस्सी का बंधा तो तोड़कर भाग सकता है। वह बैल कितना महान् है जो मौका देख करके रस्सी को तोड़ना चाहता है, परन्तु बिना पूँछ के बिना सींग के कैसे बैल हैं, जहाँ रस्सी भी नहीं है, खूँटा भी नहीं है, अभी यहाँ से छूटोगे और घर की शाला में पहुँच जाओगे।** न रस्सी से बंधे हो न खूंटे से बंधे हो। बैल की रस्सी तो दिखाई पड़ती है, पर तेरे राग की रस्सी तो दिखाई ही नहीं

पड़ती। राग की रस्सी में बंधा पुरुष गिरनार या सम्मेदशिखर जी जैसे तीर्थों की वन्दना करने भी चला जाय तब भी लौटकर घर ही आता है। सम्मेद शिखर कैसा लगा? अच्छा। इतना अच्छा लगा होता तो लौटकर क्यों आता? देखने में अच्छा लगा, रहने में अच्छा नहीं लगा। भीतर की बात समझना। **लोगों को तीर्थ अच्छे लगते हैं, पर वैसे अच्छे नहीं लगते हैं जैसा अच्छा घर लगता है। यदि वैसे अच्छे लग जायें, तो घर लौट कर आये क्यों?** तीर्थ में ही रहने लग जाये। फिर तीर्थ में भी क्यों जायें?

तीर्थों से तीर्थ नहीं बने। 'जे गुरु चरण जहाँ धरें, जग में तीरथ होय।' **रत्नत्रय धर्म इस आत्मा में प्रवेश कर जाता है तो वह आत्मा जहाँ पैर रख देती है वह भूमि भी तीर्थ बन जाती है। पाषाण के खण्डों से तीर्थ नहीं बने, पर्वतों से तीर्थ नहीं बने। नदी तालाबों से तीर्थ नहीं बने। तीर्थभूत आत्माओं की स्थापना उनमें की, इसलिये वे तीर्थ बने।** जो तीर्थभूत आत्मा है, उसे भीतर खोजिये। खोजनहार को खोजने का विचार बना लो। तटस्थ होकर समझना।

राग-द्वेष शत्रु है, सत्यता तो यह है कि शत्रु कोई होता नहीं। तेरे भीतर का राग ही शत्रु है। बाहर के शत्रुओं को तो मारने चले गये, पर शत्रु बनाने ही तो गये थे। जब बाहर के शत्रु को मारने चला था, तब निश्चित राग भी था, द्वेष भी था। अपनों के प्रति राग था, पर के प्रति द्वेष था। वह कह रहा था मैं शत्रु को मारकर आ रहा हूँ। तू शत्रु को तो जिताने जा रहा है। किसी ने तुझे आज तक बांधा है क्या ? मैं ऐसे बन्ध नहीं करता, महाराज! माँ ने ये लड्डू क्या बनाकर रख लिये, अब मन नहीं करता है यहाँ से हटने का। इन लड्डुओं ने मेरे चित्त को भ्रमित कर दिया। 'बेटा ! सीधा बोल। लड्डू तो अचेतन है। उनका चित्त है कहाँ ? ये क्यों नहीं बोलता कि तेरे लड्डू खाने के राग ने तेरे चित्त को भ्रमित कर दिया है? **न किसी नारी ने नर को बांधा है, न किसी नर ने नारी को बांधा है। आपकी स्वयं की वासनाओं ने एक दूसरे को बांधकर रखा है।** सब व्यर्थ की भाषायें बोलना बन्द कर दो कि इसके कारण मैं परेशान हूँ। ये बालक न होता तो मेरा राग न होता। सीधी-सीधी बोलो। ये बालक या बालिका बांधने का निमित्त नहीं है। तेरे भीतर वासना बैठी है, वही बांध रही है।

शान्ति की खोज चाहिये तो ज्ञायकभाव पर दृष्टिपात करो। ज्ञायकभाव से देखो, उस दिन से आपको बेटे में भगवान् दिखना प्रारम्भ हो जायेगा। जिसे कभी आपने शत्रु

मानकर रखा था, उसमें भी आपको भविष्य का भगवान् दिख रहा है। ऐसा ही है। समय दे देते। **हिलते पानी में चेहरा कहाँ दिखता है? ऐसे-ही अस्थिर चित्त में सत्य दिखाई नहीं देता। जब चित्त स्थिर हो जाता है, तब सत्य दिखना प्रारम्भ हो जाता है।** जिसमें मेरी द्वेष दृष्टि थी, जिसमें मेरी राग दृष्टि थी, कि ज्ञानी मुझे कष्ट दे रहा है, वह ज्ञानी कष्ट नहीं दे रहा है, तेरी द्वेषबुद्धि तुझे कष्ट दे रही है, राग बुद्धि तुझे कष्ट दे रही है। निहारो अपने भावों को, कि मैं ही ठण्डा हो जाऊँ तो फिर कष्ट देगा कौन? लोहपिण्ड ने अग्नि में प्रवेश किया है, लोह रक्त दिख रहा है। आप लोह को ठण्डा करने का विचार समाप्त कर दो। लोहपिण्ड से हाथ जल रहा है, लोहपिण्ड हाथ को जलाता है क्या? परन्तु लोहपिण्ड से हाथ जलते दिखाई दे रहा है। यह लोहपिण्ड ने हाथ नहीं जलाया, लोहपिण्ड अग्नि के संयोग में रहा है, वह अग्नि में तप करके लाल हो चुका है, अब उसमें हाथ लगाओगे तो जल जायेगा। फिर भी ध्यान दो, हाथ को लौह ने नहीं जलाया, हाथ को अग्नि ने जलाया है। अग्नि के अंशों को ग्रहण न किया होता तो लोह कैसे जला सकता था? जैसे-जैसे वह रखा रहेगा, अग्नि की उष्णता पृथक् हो जायेगी, वह लोहपिण्ड को हाथ में ले लेगा, फिर वह नहीं जलायेगा। जिसे आप ज्वलनशक्तिरूप कह रहे हो, जिसे तुम दाहक कह रहे हो, वह लोह का पिण्ड पिटे तो वह ठण्डा हो जाता है। ऐसे-ही अग्नि के समान तेरे भीतर का द्वेष निकल जायेगा, तो हर वस्तु में तुझे पानी-जैसी शीतलता दिखेगी। **अशान्ति कहाँ है ? न बाप में है, न बेटे में है। अशान्ति तेरे भीतर बैठे राग-द्वेष में है।** राग-द्वेष महाशत्रु। अब कहीं व्यवहार में तुम्हें शत्रु दिख भी रहा हो तो उस शत्रु को शत्रु कहना बन्द कर दो। जो शत्रु को शत्रु कहनेवाला है, जो शत्रु को शत्रु कहलवा रहा है, श्रेष्ठ शत्रु तो वही है।

हे नाथ ! नाथ बनने के पहले तुम कषाय के नाथ थे। जब तक कषाय के नाथ बन कर रहे, तब-तक किसी वीतरागी नाथ ने तुम्हें नाथ नहीं कहा। जब कषाय का नाथ तुम्हारे भीतर से निकल गया, तो तुम जगत् के नाथ हो गये। **जब-तक तुम जगत् के द्वारा अपने आपको नाथ कहलवाने की भावना रखते हो, तब-तक तुम्हें तुच्छ ही देखा जायेगा। जब तक तुम जगत् से अपना सम्मान चाहते हो, जब-तक तुम जगत् से अपनी विनय करवाना चाहते हो, तब-तक तुम तुच्छ ही रहोगे। जब तुम**

कषाय की विनय बन्द कर दोगे, तब तुम अपने आप जगत् के नाथ हो जाओगे। वे ही बाहुवली स्वामी हैं जिन्होंने अपने सगे बड़े भैया को उठाकर चक्र-जैसा घुमा दिया था। इनसे पूछना जो भगवान् बने खड़े हुए हैं। इनको नमस्कार करने के साथ-साथ बतिया तो लिया करो। भरत चक्रवर्ती का दिग्विजय का रथ लौटता है तो उस चक्र-रत्न ने नगर में प्रवेश नहीं किया। छह खण्ड में दिग्विजय करने के बाद भी चक्ररत्न प्रवेश क्यों नहीं कर रहा है ? सेनापति धीरे-से कहता है, स्वामी! बाहर के शत्रु तो सब जीत लिये, लेकिन घर का शत्रु नहीं जीता। बोले, 'घर में शत्रु कौन है?' आपके बाहुवली सहित निन्यानवे भाइयों ने आपकी स्वाधीनता को स्वीकार किया, आपकी आधीनता को स्वीकार नहीं किया।

भरत के निन्यानवें भाई, ऋषभदेव के बेटे, उन्होंने ऋषभदेव के चरणों में जाकर दीक्षा ले ली, इस बात पर कि मेरा यह मस्तक मात्र वीतरागी दिगम्बर मुनि के चरणों में या अरहन्त के चरणों में झुकेगा, मैं किसी राजा-महाराजा के चरणों में झुकनेवाला नहीं हूँ, सो जाकर दीक्षा ले ली। भरत को पता ही नहीं चला कि मेरे निन्यानवें भैया दीक्षित हो गये। जब राग खड़ा था 'मैं चक्रवर्ती, बाहुबली मुझे प्रणाम क्यों नहीं करेंगे,' तो द्वेष ने आकरके स्थान ले लिया। राग की पूर्ति नहीं हुई तो द्वेष ने अपना कदम रख दिया आगे। भरत ने कह दिया सेनापति से-दूत को भेजो बाहुबली के पास। दूत गया। प्रणाम करके बाहुबली से कहता है- 'पोदनपुर नरेश ! छह खण्ड के स्वामी, भारतभूमि के प्रथम चक्रवर्ती, ऋषभदेव के प्रथम पुत्र आपको आदेश करते हैं।' दूत तो कैसेट है, जैसा भर दो वैसा सुन लो। दूत कहता है कि अवध-नरेश, अयोध्या के स्वामी, भरतेश ने आपको आदेश किया है कि आप चलकरके चक्रवर्ती भरत की आधीनता स्वीकार कीजिये, उनके अधीनस्थ हो जाइये। बाहुबली कहते हैं कि कौन भरत ? कौन प्रजापति ? उन प्रजापति से कह देना कि तू अकेला प्रजापति है, मेरे पोदनपुर में हजारों प्रजापति हैं। तू चक्र के अहं में डूब रहा है। अब कुम्भकार को प्रजापति कहा जाता है, उसके हाथ में चक्र रहता है। मैं उसको सिर टेकनेवाला नहीं हूँ। बाहुबली कुपित हो गये—'यदि सिर ही झुकवाना है तो समरभूमि में आये।'

बालको ! **फोड़ा ठीक हो जाता है, लेकिन उसका दाग बन ही जाता है। भरत भी भगवान् बन गये और बाहुबली भी भगवान् बन गये, कर्मकलंक तो मिट गये,**

लेकिन भाई से भाई का युद्ध तो भूमि के राग में हुआ था, ये लोक का कलंक भगवान् बन कर भी नहीं मिटा सके। घर का युद्ध अच्छा नहीं होता। घर का क्लेश अच्छा नहीं होता। बाहर के लोग कुछ नहीं कर सकते। देखेंगे और ताली बजायेंगे, और-ज्यादा होगा तो वकील को लेकर कोर्ट में खड़ा कर देंगे। **घर के युद्ध अच्छे नहीं होते। द्रव्य का ही नाश कर पाओगे, यश का ही नाश कर पाओगे,** लेकिन तुम चाहो कि यश मिल जाये, तो युद्ध में भरत बाहुबली को यश नहीं मिला, तुम्हें क्या मिलेगा? सेनापति भरत से कहता है कि दूत आ चुका है। चक्रवर्ती सोच रहा था कि कुछ अच्छा हुआ होगा, मित्र! **चेहरे पर जीवन का इतिहास लिखा होता है। खाने के गाल और नहाने के बाल अलग दिखते हैं। आदमी स्नान करके आ रहा हो तो बाल अलग दिखते हैं और भोजन करके आया हो तो उसके गाल अलग चमकते हैं।** चेहरे को देख करके भरत समझ गया कि उत्तर कुछ विपरीत हुआ है। दूत कहता है 'स्वामी! किसी भी अवस्था में बाहुबली आपकी आधीनता को स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं हैं।' माँ नन्दा व सुनन्दा ने कभी नहीं सोचा होगा कि जिसका पति तीर्थंकर हो, जिसका बेटा कामदेव व चक्रवर्ती हो, जिसके बेटे गणधर बने हों, उनके घर में भी ऐसा समय आ सकता है क्या? **कर्म का चक्र और काम का चक्र किसी को नहीं छोड़ता।**

हे मित्र ! तू सारे देश के विसंवाद ठीक कर सकता है, लेकिन जब तेरे घर का विसंवाद हो जाये, तब लगता है ओ हो! उस दिन आदमी कितना छोटा हो जाता है। जब आप किसी का निपटारा करने खड़े होते हैं, तब कितने बड़े होते हो और स्वयं के घर की कोई बात आ जाये तो कितना छोटा होना पड़ता है। छोटे से बच्चे से भी बोलना पड़ता है भाई! आपसे आँख नहीं मिला सकता। **विश्व में सबसे बड़ा कष्ट, स्वयं के काषायिक भाव हैं।** आवेश में आकर चक्रवर्ती भरतेश कह पड़ा, 'जाओ, युद्ध की तैयार करो।' मंत्री हो तो भरत बाहुबली के मंत्रियों जैसे हों। समाज में, देश में मंत्री बनाओ तो भरत बाहुबली के मंत्रियों जैसे बनाओ। मंत्रियों ने मंत्रणा की, कि ये दोनों चरमशरीरी हैं, दोनों पुण्यात्मा हैं। पाटे कभी नहीं पिसते, लेकिन पाटों के बीच में आने वाले कभी नहीं बचते। दोनों पाटों के बीच में जो दाने आ जाते हैं, वे कभी नहीं बचते। जिसको युद्ध में विजय मिलती है, वह कोई-और ही होता है। जो मृत्यु को प्राप्त होते हैं, वे सैनिक अलग ही होते हैं। प्रधानमंत्री कहाँ युद्ध करने गया था,

राष्ट्रपति कहाँ युद्ध करने गया था, परन्तु विजय तो उनको मिली थी, जबकि सेना पिसी थी। धन्य हो उन मंत्रियों को। दोनों ने निर्णय लिया कि ये युद्ध सेनाओं का नहीं होगा, शक्तियों का होगा, क्योंकि सेना तो दोनों तरफ की नष्ट होगी, इसलिये आप दोनों ही अपनी शक्ति प्रदर्शित कर लो। जो शक्ति में जीत गया, उसी का राज्य होगा। कर्म की कैसी विचित्रता है। छहखण्ड का अधिपति होकर भी अति किसी की न चली। सेनापति व मंत्रियों ने निर्णय लिया कि तीन युद्ध होना चाहिये। दृष्टि युद्ध, जल युद्ध और मल्ल युद्ध। अपन को तो भगवान् से भी डर नहीं लगता। क्यों डरूँ ? अपने ही तो भगवान् हैं। कोई कहे महाराज! आप तो भगवान् को भी नहीं छोड़ते हो, अरे! भगवान् को ही छोड़ दिया तो मेरा बचेगा कौन? क्यों छोडूँ।

भरत की अवगाहना पांच सौ धनुष और बाहुबली की अवगाहना सवा पांच सौ धनुष थी। सबसे पहले दृष्टि युद्ध हुआ। जब नेत्र खोलकर खड़े हो गये, तो भरत की तो पलक झपकने लगी और बाहुबली देखते रहे। शंखनाद हो गया, विजयश्री बाहुबली की हो गई थी। छोटा भैया जीत जाय तो बड़े भैया पर क्या बीतती है?

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।



मत करो प्रमाद

अधुना तां समासाद्य संसारच्छेदकारिणीम्।
प्रमादो नोचितः कर्तुं निमेषमपि धीमतां॥298॥

अन्वयार्थ— (अधुना) अब **(संसारच्छेदकारिणीं तां समासाद्य)** संसार को छेद करने वाली उस बोधि को पाकर **(धीमतां)** बुद्धिमान को **(निमेषं अपि)** एक क्षणमात्र भी **(प्रमादः कर्तुं न उचितः)** प्रमाद करना उचित नहीं है।

भावार्थ— हे भव्यात्मन् ! इस संसार का उच्छेद करने वाली उस बोधि को प्राप्त कर, बुद्धिमानों को एक क्षण भी प्रमाद करना उचित नहीं है।

॥ सद्-देशना ॥

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज सारसमुच्चय जी में मनुष्यपर्याय, सुकुल और जिनवाणी के श्रवण, इन तीन की दुर्लभता की व्याख्या करते हुये समझा रहे हैं कि ये बहुत ही दुर्लभ हैं। समय को प्राप्त करने के बाद भी समय पर सामायिक परिणाम कर पाना बहुत कठिन है। प्रमाद (आलस्य) में आ करके जीव सोता रह सकता है, घर में व्यर्थ के वचनालाप कर सकता है, मित्रों के बीच में दुष्ट गोष्ठियाँ कर सकता है, लेकिन अरहन्त की देशना को सुनने के परिणाम यदि सहज उत्पन्न हो जायें, ये बहुत दुर्लभ है।

आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी ने 'प्रवचनसार' जी में इस बात का वर्णन किया है कि **जिस जीव का अशुभ कर्म का उदय है, वह जीव दुष्टों की गोष्ठी में ही बैठेगा। तत्त्व तो उसको रुचिकर लगेगा ही नहीं, धर्म पर आस्था होगी ही नहीं, मोक्षमार्ग में नीरसता दिखेगी और संसारमार्ग में सरसता दिखेगी।** जिसको मोक्षमार्ग नीरस दिख रहा है, वह यूँ ही मान कर चलना कि दुग्ध कितना ही मधुर हो, परन्तु मुख में पित्त है, जिसको बुखार है, उस जीव को मधुर मिश्री घुला दुग्ध भी कड़वा ही लगेगा। ऐसे-ही **जिसके अन्तःकरण में मिथ्यात्व भरा है, अश्रद्धान है, उस जीव को सत्यार्थ मार्ग कड़वा ही लगेगा, सरस लग ही नहीं सकता।** जिन जीवों की होनहार पवित्र है, वे अंतिम श्वास तक सँभल जाते हैं कि हाय-हाय! मैंने जीवन भर क्या किया ? अशुभ-ही-अशुभ तो किया है। संसार के लोकरंजन में डूबा रहा। वह तो अशुभ करने के बाद भी शुभ चिन्तन करके अशुभ का क्षय कर रहा है। एक वह जीव है कि

ऐसा ईमानदारी में जिया कि वह जीवन में एक मकान भी नहीं बना सका, झोपड़ी में ही जीवन निकाल लिया। जीवन की अंतिम बेला में चिन्तन कर रहा है कि मैं अपने बेटों को भवन भी बनाकर नहीं दे सका, इतनी ईमानदारी का जीवन जिया, फिर भी लोगों ने मुझे क्या समझा? लोगों की समझ के राग में अपने को ना-समझ बना बैठा और उसी समय मृत्यु हो गई। जिसने जीवन भर पाप किया था, वह तो सँभल गया; लेकिन जिसने जीवन भर पुण्य किया था, उसने रागरंग को देखकरके अपने आप को नीचे डुबा दिया। लोग कहने लगते हैं कि नैया किनारे पर ही डूबती है। मैं जीवन भर तो बच्चों को पढ़ाता रहा, शिक्षक का जीवन जिया, जब स्वयं की शिक्षा का समय आया तो मैं दुकान पर बैठने लग गया, जबकि शासन ने तो मुझे निर्बंध कर दिया था। शासन निर्बंध कर सकता है, पर लोभ का शासन निर्बंध नहीं कर सकता। शासन कह रहा है कि मैंने आपसे काम लिया, उसके लिये मैं आपको अलग से पेंशन दे रहा हूँ, अब तुम अपना धर्मध्यान करो। परन्तु हे लोभ कषाय! तू इतना उन्मत्त कर देती है कि जीवन को ही नहीं जीने देती। कितने लोगों के पास इतना द्रव्य है कि चार पीढ़ियाँ भी शान्ति से बैठ कर जीवन जी सकती हैं, लेकिन ये कषाय शान्ति से जीने नहीं देती। वो सन्तुष्ट है जो चौबीस घण्टे में जरा-सा कमा करके शान्ति से रात्रिविश्राम करता है उनकी अपेक्षा से जो करोड़ों कमा रहे हैं, लेकिन फिर भी शान्ति से सो भी नहीं पा रहे हैं। उनको गोली खानी पड़ रही है। क्यों? उनको बहुत टेंशन है, तनाव है। तनाव किस बात का है? परवस्तु में तने हो, इसलिये तनाव है। तुम परवस्तु छोड़ दो तो अभी तनाव-मुक्त होते हो, कोई दवाई नहीं खानी पड़ेगी।

श्रेयांसगिरि में आचार्यश्री बोले 'आपकी मुनिदीक्षा होना है, आप अभ्यास करो।' मैंने कहा 'क्या अभ्यास करूँ?' बोले 'लंगोटी उतारकर सामायिक किया करो। सबके सामने कैसे निर्वस्त्र रहोगे? इसलिये अभी से अभ्यास करो।' ठीक है। मैं लंगोटी उतार कर तो बैठ गया, उसी समय एक श्रावक आ गया। जैसे-ही श्रावक आया, वो कहता है 'महाराज जी! दीक्षा कब हो गई?' मैं सोच रहा था कि मैं क्या बताऊँ दीक्षा कब हो गई। तू चला जा जल्दी तो मैं लंगोटी पहन लूँ। लंगोटी अभी भी नहीं है, लंगोटी तब भी मेरे से दूर रखी थी, लेकिन उस समय लंगोटी उतार कर रखी थी, छोड़कर

नहीं रखी थी। अभी लंगोटी छोड़ दी है तो नंगे महसूस नहीं होता है, दिगम्बरत्व की अनुभूति होती है। उस समय विकल्प था। क्यों? श्रावक कैसे आ गया? अब समझ में आया। लंगोटी तब भी मैं नहीं था, अब भी मैं लंगोटी नहीं हूँ, लेकिन ममत्व अन्दर में बैठा हुआ था कि मेरी वस्तु है। जब मैंने वस्तु का ममत्व हटा दिया तो तत् सम्बन्धी कष्ट समाप्त हो गया। जिनको सुखी होना हो तो ये मायाचारी की भाषा बोलना बन्द कर देना कि मैं सुख चाहता हूँ शान्ति चाहता हूँ। अरे! शान्ति तो चाहते हो, लेकिन जिससे अशान्ति है उसे छोड़ने का मन ही नहीं करता है और कहता है कि शान्ति चाहिये। बेचारे को जुखाम हो रहा है, गला रुंध रहा है और कहता है कि कैसे ठीक होऊँ? वैद्य कहता है कि चावल खाना छोड़ दे, सो कहता है कि उसके बिना पेट नहीं भरता है। लेकिन मेरा गला ठीक हो जाये। तीर्थंकर महावीर स्वामी भी आ जायें तो तुझे ठीक नहीं कर पायेंगे, वो आयेंगे नहीं और आप ठीक होयेंगे नहीं। यदि आप स्वस्थ होना चाहते हो तो यहाँ आ. कुलभद्र स्वामी कह रहे हैं- इस आत्मा का कोई महाशत्रु है तो राग-द्वेष है। राग-द्वेष का महान् हेतु परद्रव्य है। इन अकिञ्चनों को कभी निहार लिया करो। हाथ से फेंक देना फिर भी कठिन नहीं है। कितने लोग अपने हाथ से दान देते देखे गये हैं, वह भी कठिन नहीं है। कितने लोग भूमि/जमीन दान देते देखे गये हैं, वह भी महत्त्वपूर्ण नहीं है। महत्त्वपूर्ण क्या है ? जिसे तुम दे रहे हो, वह कहीं-न-कहीं तुम्हारे भीतर है। जिसे आप छोड़ रहे हो, वह कहीं-न-कहीं तुम्हारे भीतर है। लोग कितने करोड़ दान दे रहे हैं। कहीं-न-कहीं तेरे भीतर है। फिर कहेगा 'महाराज जी! मैंने एक करोड़ का दान दिया है।' मेरे मित्र! दिया है, त्यागा नहीं है।

तू सागमण्डी साग लेने गया। तूने पैसे दिये और साग ली। दादा से पूछो, ये पचास रुपये कैसे कमाये थे और आपने मुझे दे दिये कि जाओ बेटा! नींबू लेकर आओ। यदि पचास का नोट इनकी जेब से गिर जाता, फिर इनसे पूछते, दादा! कैसा लगा ? कुछ-न-कुछ तो होता। जीव कितना ही कहे कि कुछ नहीं होता। ये कह क्यों रहे कि कुछ नहीं हुआ? यही तो हुआ है। बोले-बेटा ! आज मेरी जेब से पचास का नोट गिर गया, लेकिन कुछ बात नहीं। यदि कुछ बात नहीं थी, तो आपने मेरे से कहा क्यों? वह तो गिर ही चुका था। यदि आप मन की सन्तुष्टि के लिये बेटे से कह रहे हो कि मेरा पचास का नोट गिर गया है। समझो, बात गहरी है। इतनी

मेहनत से कमाये हुये द्रव्य को तुम कुंजरे की दुकान पर देकर आये हो, तो इतना सरलस्वभावी तू नहीं है कि तू किसी के घर पैसा देने जायेगा। तू पैसा देने नहीं गया था, कुछ लेने गया था। ये परिवर्तन किया है, कुछ लेकर आये हो। बिना परिवर्तन के किसी को देकर आओ तो जानूँ।

यदि आपका मन करता है कि आज मैं एक करोड़ दान दूँगा तो समाज में मेरा यश फैलेगा, तो तुमने त्याग नहीं किया है, छोड़ा है। आपको उससे कुछ मिला है। क्या मिला है ? जो दिखाई नहीं दे रहा, वही मिला है। वह सबको मिल जाये तो अस्सी साल का वृद्ध भी दौड़ेगा। चाहे हलुआ खिलाओ, चाहे पूड़ी खिलाओ, यदि वो नहीं मिलता है तो आदमी बीमार ही रहेगा। आप आदमी को यश देते रहो, उसका सम्मान बढ़ाते रहो और उससे काम लेते रहो। ये ज्ञानी तो बस माला लिये मंच पर खड़ा रहता है कि लो पहनो माला और निकालो माल। देना बहुत बड़ी बात नहीं है। कुछ लोग तो देने के लिये ही तरस रहे हैं। परन्तु त्यागना बहुत बड़ी बात है। त्याग में कोई आकांक्षा नहीं है। त्याग के बाद आकिञ्चन्य में प्रवेश करता है। जो मेरा है ही नहीं, मैं उसे क्या दूँ और जिसे मैं अपना नहीं स्वीकार रहा हूँ, जिसे मैं भारभूत समझ रहा हूँ, जिससे मैं अपने आपको दु:खी समझ रहा हूँ, वह दु:ख तुमको कैसे दूँ? इसलिये यथार्थ समझना।

मेरी दीक्षा के पहले एक सज्जन बोले—बेटा! तेरा हिस्सा किसको देगा? तेरे नाम की जो सम्पत्ति होगी, वह तू किसको देगा? उस जीव का राग देखो, भाव देखो। मैंने कहा—मित्र! जो मुझे दु:खभूत महसूस हो रही थी, वह दु:ख मैं दूसरे को देना पसन्द नहीं करता। 'तो क्या होगा ?' मैंने स्वीकारा ही नहीं है, तो मैं छोडूँ किसको ? मुझे आज तक मालूम नहीं है कि मेरा कुछ है। मेरा कुछ है ही नहीं, मैं तो दूसरे के घर में जी रहा था, अब विश्व के घर में जिऊँगा । मैं इन झंझट में पड़ना पसन्द नहीं करता। जिसके मन में भाव चल रहा है कि अब मुझे सौंपना है, इसका मतलब है कि अभी तू इसके साथ है।

उत्कृष्ट मार्ग यह है कि न किसी को देकर जाना, न किसी से सँभलवाना। जब मुझे स्वीकार ही नहीं है, जब मेरा उसमें सत् ही नहीं है, मेरा अस्तित्व ही नहीं है, परवस्तु का मेरे में अत्यन्ताभाव है, तो मैं उसको छोड़ने का विचार करके व्यर्थ का परिग्रह क्यों बाँधूँ ? फिर स्मरण में आयेगा कि जब मैंने दीक्षा ली थी तब मैंने अपनी

सम्पत्ति अमुख व्यक्ति को दी थी। यदि कदाचित् वह दर्शन करने आ गया, तो अलग से भाव उमड़ेगा कि मैंने इसको दिया था। कदाचित् वह व्यक्ति आपके अहसान को न माने तो आप सोचोगे कि मैंने इसको देकर कितनी बड़ी भूल कर दी है। मालूम चला कि पिच्छी-कमण्डल लिये तो वर्षों बीत गये, लेकिन घर आज तक नहीं छूटा है। ऐसा ही है। उत्कृष्ट वैराग्य यही है कि किसी को व्यवस्था सौंपने भी नहीं जाना। इसमें विवश होने की क्या आवश्यकता है कि मैं छोड़ूँ? तुम्हारा था क्या? जो भूमि थी, वह वहीं है; जो भवन था, वह भवन वहीं है। तुम्हारा था क्या? वह रंच-मात्र भी नहीं खिसकता, तेरा राग-द्वेष ही खिसकता है। वस्तु तो जो है, सो है। इसलिये उत्कृष्ट धर्म आकिञ्चन्य है।

जो आकिञ्चन्य की सीमा में प्रवेश कर जायेगा, अब उसको ब्रह्म की खोज नहीं करनी पड़ेगी, वह स्वयमेव ही ब्रह्म में लीन हो जायेगा। आ. कुलभद्र स्वामी इस बात को यहाँ समझा रहे हैं। **परिणामों की स्थिरता के लिये, चंचल चित्त को वश करने के लिये, चित्त यत्र-तत्र विचरण न करे, इसलिये अनेक ग्रंथों का अध्ययन करना पड़ता है, लेकिन अध्ययन का सार मात्र इतना है कि आकिञ्चन्य में डूब जाओ।** श्रुत एक स्कन्ध है, जिसमें प्रमाण व नय की शाखायें हैं और निक्षेप के पत्र लगे हुये हैं और उसमें मोक्षमार्ग के सुन्दर फल हैं। मन तेरा मर्कट है। इस मन-मर्कट को यदि आप मधुर फल खिलाते रहो, तो वह बगीचे को उजाड़ेगा नहीं, अन्यथा आपने कुछ नहीं डाला तो उद्यान को ही उजाड़ देगा। ऐसे-ही हे मुनि! **हे श्रमण! इस मनरूपी मर्कट को श्रुतस्कन्ध पर चढ़ा दो, जो नय व प्रमाण के पत्तों को निहारते हुये, मोक्षमार्ग के फल हैं, जो रस है, उसका आस्वादन करेगा यह मन-मर्कट, तो वह तेरे चारित्र के बगीचे को उजाड़ेगा नहीं।** मंदिरों में रखा रहता है श्रुतस्कन्ध यंत्र, उसपर ले जाओ अपने आप को, जिससे आप अपने आप को अपने आप से सुरक्षित रख सको। जगत् से सुरक्षित रखने को बहुत बाड़ियाँ लगाई हैं। अपने आप से अपने आप को सुरक्षित कर लो। **सबसे ज्यादा असुरक्षित यदि कोई किसी से है, तो वह अपने आप से ही असुरक्षित है।** पागल कौन होते हैं ? वही होते हैं जो अपने आपको अपने आप से सुरक्षित नहीं रख पाते। **पुण्य न्यून है, आकांक्षायें विशाल हैं, इच्छाओं की पूर्ति होगी नहीं, मस्तिष्क आकांक्षाओं से भर जायेगा, पूर्ति नहीं होगी, तो तनाव बनेगा और तनाव बढ़ेगा तो नस फट जायेगी और वह पागल हो जायेगा।** यदि पागल

नहीं होना है, तो उतना ही सोचना जितना पुण्य है। ज्यादा सोचने की आवश्यकता ही नहीं है। कोई जीव पागल होकर ठीक हो गया हो, तो उससे एकान्त में पूछना, तू पागल हो कैसे गया था ? दादा जी! लोगों के नेत्रों की ज्योति चली जाती है। जिसको देख लिया था, वह देखने को न मिले तो देखने की दृष्टि ही समाप्त। दृष्टि तो उसी दिन नष्ट हो गई जिस दिन किसी को देख लिया था। जो चित्त परमात्मा के चरणों में टिकता था, वही चित्त कहीं खोटे स्थान पर चला गया, उसी दिन तू पागल हो चुका था। जब आगरा भेजा जाय तभी पागल कहलाओगे क्या ? यंत्रों के बीच में कमरों में बंद कर दिया जाय तभी पागल कहलाओगे क्या? जिस-जिसकी पाप के गालन करने की दृष्टि नहीं बन पा रही है, वे सब पागल हैं। उन्मत्त पुरुष यद्वा-तद्वा ही तो बोलता है। वह पर से ही तो पर भिन्न-भिन्न कहता है। बस, यही दृष्टि डालो कि कहीं मैं विवेकपूर्वक पागल तो नहीं हूँ? पहले निर्णय कर लो, फिर आगे चर्चा करते हैं। सही आदमी तो अंगुलियों में गिनने लायक ही मिलेंगे। पागल दो प्रकार के होते हैं। एक वे जो पत्थर मारते हैं, दूसरे वे पागल हैं जो पत्थर तो नहीं मारते हैं, सबको पास में बुलाते हैं। विवेकपूर्वक पागल। जो पुरुष सत्य को समझ रहा है, फिर भी सत्य को स्वीकार नहीं रहा है, क्यों ? पंचों की बात स्वीकार है, पंच तो परमेश्वर होते हैं, लेकिन मेरा खूँटा यहीं गड़ेगा। मुझे सब बातें स्वीकार हैं, पंचों का तो मैं सम्मान करता हूँ, पंच परमेश्वर होते हैं, परन्तु मेरा खूँटा तो यहीं गड़ेगा। बाकी जो है, सो है।

आज मस्तिष्क को ठण्डा करके सोचना पड़ेगा मैंने तो सोचा ही नहीं था कि मैं भी इसमें हूँ विवेकपूर्वक पागल। एक पुरुष आकर आपसे कहता है, 'वकील साहब मैं अपराधी हूँ। जेलर किसी को छोड़ता नहीं है। अब ये आपका काम है कि आप मुझे छुड़ा कर लाओ। आप विश्वास रखो, जितना आपका वजन होगा, उतना द्रव्य मैं आपको दूँगा।' ऐसा सामनेवाला बोल रहा है। कुछ क्षण पूर्व वकील साहब परमात्मा का ध्यान कर रहे थे और उनके चित्त में जो ज्ञेय बना हुआ था, वह पुरुष नहीं था। उनके मस्तिष्क में परमात्मा ज्ञेय बना हुआ था।

जब एक जड़ कैमरे में जिसका चित्र मैं लेना चाह रहा था, वहाँ कोई दूसरा आ जाय, तो सामनेवाले को लगता कि ये क्यों आ गया। जिसके चित्त के कैमरे में परमात्मा का चित्त खिंच रहा हो, उसके बीच में कोई श्री और श्रीमती का चित्र सामने खड़ा

हो जाय, तो विवेकी कहेगा कि धिक्कार हो, ये मेरे सामने ज्ञेय बनकर आ कैसे गया ? विवेकपूर्वक पागलपन सुनो। उस समय वकील साहब से कहा गया 'मैं आपको वजन बराबर द्रव्य दूँगा। वजन शब्द सुनते ही, जिसके मस्तिष्क में भजन चल रहा था वह भजन तो ऐसे निकल गया। जैसे टी.वी. में चैनल बदल देते हैं, वह चैनल तुरन्त बदल गया। सामने दूसरे चित्र प्रारम्भ हो गये। अभी परमात्मा से कह रहा था, 'हे स्वामी ! मैंने जीवन में घोर अपराध किये हैं। उनका प्रायश्चित्त क्या होगा? कम-से-कम वे लोग श्रेष्ठ हैं जिनके अपराधों को लोग जानते हैं और कह देते हैं, कि-

ये अपराधी हैं। तो उन लोगों को तो इतने में शान्ति मिलती है कि कम-से-कम मुझ पापी को लोग पापी तो कह रहे हैं; परन्तु मुझे कोई अपराधी भी नहीं कहता है, जबकि मैंने अपराध किये नहीं होते हैं, पर सबसे बड़ा अपराधी मैं ही होता हूँ। ऐसे परमात्मा से प्रार्थना कर रहा था। क्यों ? अपराधियों की पुष्टि करता हूँ और निरपराधियों को फाँसी दिला देता हूँ। अपराधी कौन है ? आलोचना चल रही थी। वजन वाले ने भजन दूर कराके ऐसा बटन चटका दिया कि परमात्मा की रील तो पता नहीं कहाँ चली गई। जहाँ आलोचना चल रही थी, वहाँ पुनः वही दृष्टि पहुँच गई और अब मस्तिष्क में गूँजने लग गया कि पचास वर्ष पूर्व ऐसा अपराध किसी ने किया था उसकी फाइल मिलना चाहिये और इस व्यक्ति को आज अपन बरी करा कर लायेंगे। मेरे में कुशलता देखो (चिंतन करो) कि इन सबको मौन कर दूँगा। सुनना, उस जीव का चिन्तन क्या प्रारम्भ हो चुका है। अशुभ ध्यान प्रारम्भ।

भैया! ये बुद्धि का प्रयोग चल रहा है कि नहीं? विवेक का प्रयोग चल रहा है कि नहीं? पूर्ण विवेक के साथ सोच रहा है, मस्तिष्क के अन्दर युद्ध प्रारम्भ हो चुका है। पूर्ण तैयारी हो चुकी है, सेना तैयार हो चुकी है। इसी बीच में एक परम-शान्त-चित्त का मित्र खड़ा हो गया, कहता है, मेरे मित्र ! तुम बहुत परेशान दिख रहे हो, क्यों? कोई परेशानी नहीं है। आज अपने वजन का वजन मिलनेवाला है। मैं आज बहुत विवेक से पैरवी करूँगा। कुशलतापूर्वक। हे जीव! आप जा रहे हो तो चले जाओ, परन्तु दो मिनिट मेरी बात सुनकर जाना। साधु-चित्त कह रहा है मित्र! ये तो बताना, तुम विवेकपूर्वक निर्णय ले रहे हो, जो आप एक असत्यवादी पापी को विजय दिलाने जा रहे हो? उसने एक हत्या की थी, उस हत्यारे की अनुमोदना करके, एक सज्जन

को तुम फाँसी लगवा कर आ जाओगे, उसका पाप का बंध आपको होगा कि नहीं होगा ? होगा। यह तुम्हारा विवेकपूर्वक पागलपन है कि नहीं? है। झूठ बोलना पुण्य है कि पाप ? पाप। हिंसा के बाद झूठ पाप का ही नम्बर है। हे ज्ञानी! तेरा कितना तेज पुण्य है कि पाप करने के बाद भी तुझे पैसा मिल रहा है। तुझे अपने पुण्य पर विश्वास होना चाहिये। जब पाप करने पर पैसा आ रहा है, यदि पाप नहीं करूँगा तो और-पुण्य बढ़ेगा, तो पैसा आयेगा कि नहीं आयेगा? आयेगा। **भूत का पुण्य प्रबल होता है तो पाप करने वाले को भी सम्पत्ति मिलती दिखाई देती है, कसाई के घर में भी पैसा आ रहा है। कसाई की हिंसा से पैसा नहीं आ रहा है, पूर्व में इतना पुण्य कमाकर लाया है कि खोटे काम के बाद भी पैसा आ रहा है।** लेकिन जिस दिन तेरा पुण्य समाप्त हो जायेगा उस दिन तू इसी भूमि पर कटोरा लेकर घूमेगा। ऐसा भी होता है, राजमहल के नीचे राजा को भीख माँगते देखा। जब समय फिरता है तो जिसके द्वार पर हाथी रुकते थे वहाँ श्वान भी नहीं होते हैं। जब समय फिरता है, तो जो श्वान का जीवन जीता था वह सिंहासन पर बैठता है। इसलिये सँभालकर रख सको तो अपने पुण्य को सँभाल लो, दुनियाँ को सँभालने की कोई आवश्यकता नहीं है। अब जो कह रहा था कि मैं कुशल हूँ, पापबंध की दृष्टि में तुम कुशल कहाँ निकले? ये था विवेपूर्वक पागलपन।

एक चोर पकड़ा गया। जब सामने-सामने पकड़ा गया, तो जज साहब ने कह दिया कि इसे फाँसी पर चढ़ा दो। लेकिन फाँसी के पहले अंतिम इच्छा पूछी गई, तो वह कहता है 'जज साहब ! मेरी कोई इच्छा नहीं है। सारी इच्छा पूरी हो गई हैं।' फिर-भी बोल दो कुछ हो तो। 'इच्छा ये है, आप पूछ ही रहे हो तो, मेरी इच्छा है कि मेरी फाँसी का फंदा ऐसे व्यक्ति से लगवाया जाय जिसने जीवन में कभी चोरी न की हो।' जल्लादों से पूछो, ये इसकी अन्तिम विदा है, मैं इसके साथ छल नहीं कर सकता हूँ। मैं भी कभी-कभी गड़बड़ कर लेता हूँ। धीरे-धीरे घूमते-घामते वकील, जज तो ठीक है, जिसके घर में चोरी पकड़ी गई थी, उसी से पूछा—भाई! इसकी अंतिम भावना है कि ऐसा व्यक्ति मेरा फंदा खींचे जिसने कभी चोरी न की हो। वह भी कहने लगा कि मैं कैसे खींचूँ ? चोरी हुई तो उसी की है जो मेरा नहीं था।

वह मुस्करा कर कहता है—भाई ! जल्दी खिंचवाओ ना। अब खींचे तो कौन खींचे? जब सब चोर-चोर मौसेरे भाई हैं ही, तो मुझे ही क्यों फाँसी लगा रहे हो? जज साहब

धीरे-से कहते हैं—उतर आ तू। तू ऐसा महान् आत्मा आया कि तू सबको ले जा रहा है। इसलिये भैया! किसी को फाँसी मत दो, सबको सुधरने के लिये समय दे दो। यही प्रायश्चित्त है कि तुम सुधार करो। मृत्युदण्ड कोई सुधार नहीं है। यदि उसने जीवन में सुधार कर लिया तो इससे बड़ा कोई दण्ड नहीं है। चित्त की विशुद्धि ही तो प्रायश्चित्त है। चित्त विशुद्ध हो चुका है, अब कोई प्रायश्चित्त नहीं। यदि चित्त विशुद्ध नहीं हुआ है, तुम हजार बार प्रायश्चित्त माँगो तो कोई फायदा नहीं। अब तो भैया! जितना कमाया हो, मंदिर में डाल देना। आपकी प्रशंसा करने वाले अनेक मिल जायेंगे, परन्तु चित्त को प्रसन्न रखवाने वाले नहीं मिलेंगे। **यदि जीवन में किसी ने कोई भूल की हो तो इस देह के विसर्जन होने के पहले बुद्धिपूर्वक पापों का विसर्जन करके जाना।** जिन-जिन को श्रेयो मार्ग चाहिये है, उन सबसे कह रहा हूँ। जिनको नहीं चाहिये, उनसे कह भी दो तो क्या होगा ? इसलिये आचार्य महाराज श्लोक क्रमांक 298 में कह रहे हैं, हे जीव! विलम्ब मत करो। हे बुद्धिमानो ! प्रमाद उचित नहीं है। एक नेत्र का पलक ऊपर से नीचे होने में जो समय लगता है, उसका नाम है निमेष। एक निमेष मात्र भी प्रमाद मत करो। कहीं श्वास वहीं रुक गई, फिर कुछ नहीं कर पाओगे।

वे लोग कितने अच्छे थे। प्राचीन काल में युद्ध होते थे। दिन भर युद्ध होता था, परन्तु शाम के समय शत्रु सेना में भी जाकरके जो सैनिक घायल होते थे उनका उपचार किया जाता था। समरभूमि में शत्रु है, अब तो तुम मनुष्य हो। एक-दूसरे की पट्टी किया करते थे और यहाँ तक देखा गया है कि युद्धभूमि में भी सैनिक ने सैनिक के कानों में णमोकार मंत्र सुनाया है। कितना ही लड़ लेना, झगड़ लेना, लेकिन फिर भी पास में जाकर यही कहना कि शत्रुता सम्पत्ति की है, राष्ट्र की है, इसलिये मेरे तेरे प्रति कोई अशुभ भाव न आयें। क्या मालूम किसकी विमानयात्रा में किसको जाना पड़े? इनकी रक्षा कर लें।

उन गायों की तो प्राणों की रक्षा कर रहा है, कसाइयों के यहाँ से लेकर आ रहा है। ये जो स्वयं के कषायी बने बैठे हैं, इनके भावों की रक्षा करो। एक ऐसी समिति बनाओ जो घर-घर जाकरके पांच मिनट तत्त्वचर्चा मात्र करे। तुम्हारे दुःख नहीं सुनना मुझे। कुछ नहीं सुनना, मात्र तत्त्वचर्चा। तत्त्वचर्चा में ऐसी चर्चा करो कि उनको अहसास हो, अनुभव हो कि कब जीवन चला जायेगा, कोई नियत नहीं है। जाने के पहले

अच्छे से जीना तो ज्यादा अच्छा है। सभी नगरों में समितियाँ होती हैं, ऐसी भी तो समिति होना चाहिये जो जाकरके मानसिक वेदना को हल्का करे। बहुत सारे लोग मरना नहीं चाहते, परंतु वे अपने आप में इतने उलझ चुके होते हैं कि बेचारे फाँसी लगा लेते हैं। मरना नहीं चाहते, लेकिन विश्वास मानना, जीवन जीने के लिये बहुत बड़ी बुद्धि चाहिये। यदि कोई मनोवैज्ञानिक आता, वह तुमसे पहले फीस लेता फिर बताता, तो तुम कहते कि बहुत अच्छी बात बताता है। **जीवन जीने के लिये भी ताकत चाहिये। आत्महत्या करने की वे ही सोचते हैं जिनकी शक्ति क्षीण होती है। ताकत नहीं होती, वे मरना चाहते हैं।** जिसका डर निकल चुका है, वह कहता है कि जीते-जीते देख ही रहा हूँ, मरूँ क्यों ? देखना चाहिये। मरते-मरते देखना सीखो और देखते-देखते मरना सीखो। हम लोग तो कभी-कभी मरने का ध्यान करते हैं। शवासन में ध्यान होता है। शरीर ढीला करके पड़े हुये हैं। चिन्तन कर रहे हैं कि अब मेरी सल्लेखना चल रही है। मुझे सम्बोधन दे रहे हैं। शरीर में पीड़ा भी हो रही है, कैसे सहन करेंगे? दु:ख में सुख को देखो और सुख में दु:ख को देखो।

लोग रसी करते हैं। कभी नमक छोड़ दिया, कभी मीठा छोड़ दिया। यदि ये रसी देश का प्रत्येक नागरिक करे, तो डॉक्टरों के घर कम जाना पड़ेगा। **रसी करने से शरीर में संतुलन बना रहता है।** घी पियेगा रोज और एक कदम चलना नहीं है, तो घी कहेगा कि तुमने मुझे नहीं छोड़ा, मैं तुमको क्यों छोड़ूँ? या फिर तुम घी पीते हो तो मेरे साथ पैदल विहार करो, नहीं-तो नलियाँ चोक हो जायेंगी। क्यों हो गई ? घी पीना छोड़ा नहीं और पैदल चलना हुआ नहीं। यथार्थ मानिये, जैनदर्शन का **चरणानुयोग शुद्ध वैज्ञानिक जीवन जीने की शैली है। स्वस्थ रहना है तो चरणानुयोग की शैली में जीवन जीना सीखो।** 'बारिस का मौसम हो गया, हरी छोड़ दो, पत्ती छोड़ दो, कितने विवेकी लोग हैं? उसी समय पत्ती होती है, उसी समय जैनी छोड़ देते हैं, कैसे पागल हैं? अभी तो खाने को मिलेगा और छोड़ दिया?' तुमको पागल लगते हैं, लेकिन बहुत बड़े ज्ञानी लोग हैं। पानी गिरता, धूप पड़ती, जगत् के सारे रोग उन्हीं वनस्पतियों में छा गये। कीटाणु हो गये, तो इन लोगों ने सोच लिया कि चार महीने खाना ही नहीं है। दाल खाओ। **वीतराग वैज्ञानिक को मान लिया करो तो जगत् के वैज्ञानिकों के पास नहीं जाना पड़ेगा। जीवविज्ञान की बात करना हो**

तो इनको जिनागम का चरणानुयोग रख लेना चाहिये। रात्रिभोजन नहीं करो, क्यों ? रात्रि में खाया और सीधा लेट गया तो पाचन क्रिया होगी नहीं, तो बीमार तो होंगे ही। सोने के चार घण्टे पहले भोजन करो, तो पचेगा। **आनन्दमयी निरोग शरीर जीना है तो चरणानुयोग में चलो। तनावमुक्त जीवन जीना है तो द्रव्यानुयोग में चलो, करणानुयोग में चलो। कषाय मत करो तो अन्तरंग में स्वस्थ है बहिरंग में स्वस्थ है। अन्तरंग व बहिरंग में जो स्वस्थ हो लेता है, वही तो मोक्षमार्गी है।** कठिन कुछ भी नहीं है। आज जिस बोधि को तुमने प्राप्त किया है, वह संसार का छेद करनेवाली बोधि रत्नत्रय है, उसमें निमेष मात्र भी प्रमाद करना उचित नहीं है। धर्म में शीघ्र लग जाओ। ये पण्डित-बुद्धियाँ काम में नहीं आयेंगी। **जब भी कल्याण होगा, सहज भाव से होगा।**

एक बार चाण्डाल को दया आ सकती है, कसाई को दया आ सकती है कि छोड़ दो इसको, परन्तु '**यमस्य करुणा नास्ति।**' तुम कुछ भी कर लो, जिस दिन आयुकर्म पूरा हो जायेगा, उसको कोई करुणा नहीं है। न वह यह देखेगा कि तुम्हारे बच्चे छोटे हैं, कि माँ रो रही है, पत्नी बिलख रही है। 'यमस्य करुणा नास्ति,' यमराज को कोई करुणा नहीं होती है। उस यमराज के आने के पहले कुछ ऐसा कर लो कि यमराज ही न आ पाये।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।



चारित्रहीन का संसारभ्रमण

प्रमादं ये तु कुर्वन्ति, मूढा विषयलालसाः।
नरकादिषु तिर्यक्षु, ते भ्रमन्ति चिरं नराः॥299॥

अन्वयार्थ— (ये तु मूढा) जो कोई मूढ़ पुरुष **(विषयलालसाः)** इन्द्रियों के विषयों के लम्पटी होकर **(प्रमादं कुर्वन्ति)** प्रमाद करते हैं **(ते नराः नरकादिषु तिर्यक्षु चिरं भ्रमन्ति)** वे मानव नरक-तिर्यंचादि गतियों में दीर्घकाल तक भ्रमण करते रहते हैं।

भावार्थ— जो मूढ़ात्मा इंद्रिय-विषयों में लिप्त होकर प्रमाद करते हैं, वे मनुष्य मरकर भव-भ्रमण करते हुए बहुत कष्ट प्राप्त करते हैं।

॥ सद्-देशना ॥

भव्य बंधुओ ! अंतिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्र की पीयूष देशना, जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। ये सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवंत हो। जयवंत हो वीतराग श्रमणसंस्कृति।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रंथराज 'सार-समुच्चय' जी में उन श्रेष्ठसूत्रों का व्याख्यान कर रहे हैं जो अंतस् की व्यथा को दूर कराके आत्मस्थ-दशा में प्रवेश करा देते हैं।

ज्ञानियो ! विकल्प तभी तक हैं जब तक परद्रव्यों में आत्मबुद्धि है। अनात्मीय द्रव्यों को आत्मीयभूत बनाने की चेष्टा जिसके अन्तस् में रहेगी, वह जीवन में कभी सुख की अनुभूति नहीं ले सकेगा। अनात्मीय द्रव्यों को आत्मदृष्टि में देखने की दृष्टि जब-तक बनी रहेगी, तब तक शांति का तुम्हारे पास अंश भी नहीं है। अनात्मीय द्रव्यों की आत्मभूत होने की कभी सम्भावना ही नहीं है। आप अनात्म द्रव्य में आत्मबुद्धि की वृद्धि तो कर सकते हो, परन्तु परद्रव्य को आप आत्मभूत बना नहीं सकते हो। जड़ कभी चेतन हो ही नहीं सकता है और चेतन कभी जड़ हो नहीं सकता है। यह त्रयकालिक सत्य है। विद्युत का संचार तारों (वायर) में होता है, परन्तु बायर कभी विद्युत नहीं होता है। वैसे-ही शरीर में आत्मा होती है, परन्तु शरीर कभी आत्मा नहीं होती है। शरीर भिन्न है और आत्मा भिन्न है।

मित्र ! अमरबेल हरे वृक्ष पर चढ़ जाये, तो वह वृक्ष को सुखा देती है और स्वयं हरी रहती है। ऐसे-ही शुभोपयोग के वृक्ष पर, आत्म-धर्म के वृक्ष पर राग की लता

चढ़ जाए तो आत्मधर्म सूख जाता है। राग बढ़ेगा तो साधना का वृक्ष सूख जायेगा।

ज्ञानियो! सँभलकर जियो, नहीं-तो जीवन के अंतिम क्षणों में देह सूखेगी और राग की बेल विशाल दिखेगी। मुमुक्षु ! उस बेल को हटा दो जो हरे वृक्ष को सुखा रही है। उस राग को हटा दो जो तेरे शुद्धोपयोग व शुभोपयोग को नष्ट कर रहा है।

मित्र ! परवस्तु किसी को नष्ट नहीं करती है, परवस्तु का राग नष्ट करता है। वेल किस पर चढ़ती है ? वेल परवस्तु पर ही चढ़ती है। परवस्तु राग नहीं है, परन्तु राग परवस्तु पर होता है, इसलिए मुमुक्षु ! परवस्तु को हटाना पड़ेगा। वस्तु राग नहीं है, वस्तु राग का साधन है। जब तक राग का साधन परिग्रह रखोगे, तब-तक राग नहीं हटेगा। ज्ञानी ! बुद्धिपूर्वक राग को हटाना पड़ेगा, तभी वस्तु को छोड़ पाओगे। **जब-तक राग की सामग्री नहीं हटाओगे, तब-तक राग भी नहीं हटेगा।** मुमुक्षु ! राग की सामग्री हट भी जाये, तब राग हट ही जाये, यह कोई नियम नहीं है। राग की सामग्री का संग्रह कर रहे हो और तुम कहो कि राग हट गया, यह सम्भव नहीं है। अन्वय-व्यतिरेक लगाना पड़ेगा। यह न्याय की भाषा है। जहाँ-जहाँ धूम है, वहाँ-वहाँ अग्नि है। जहाँ-जहाँ अग्नि है, वहाँ-वहाँ धूम हो भी सकती है और नहीं भी हो सकती है। निर्धूम अग्नि तो हो सकती है, परन्तु धूम अग्नि से रहित कभी नहीं होगा। धूम अग्नि के सद्भाव में ही होता है।

ज्ञानी ! जो सत्य को समझे बिना सत्य पर चलेगा, वह सत्य-मार्ग को कभी भी छोड़ देगा। **जब-तक गुण-दोषों को जानोगे नहीं, तब-तक गुणों को ग्रहण कैसे करोगे और दोषों को छोड़ोगे कैसे ? पहले जानो, फिर समझो, पश्चात् व्रत ग्रहण करो।** जब यथार्थ-निर्णय हो जाता है,फिर चाहे कितने भी कष्ट आयें, परन्तु साधक विचलित नहीं होता है। जीवन की गति को सँभालना चाहते हो, तो परिणति को सँभालना सीखो। **मुमुक्षु ! अनात्मभूत द्रव्यों से आत्मबुद्धि हटाना सीखो। जब-तक अनात्मभूत द्रव्यों से आत्मबुद्धि नहीं हटेगी, तब-तक तुम धर्म-मार्ग पर चलते तो रहोगे, परन्तु फिसलते रहोगे।**

मित्र ! मोटर-गाड़ी चलाना है, तो भी परमिट चाहिए, चालक विवेकवान् होना चाहिए, नहीं-तो गाड़ी फिसल जायेगी। प्रत्येक साधक की आगम पर दृष्टि होना चाहिए। **जब-तक अनात्मभूत द्रव्यों पर दृष्टि रहेगी, तब-तक मानसिक-पीड़ा होगी, क्लेश होगा।**

ज्ञानी ! शांति से मंदिर में बैठकर आप पूजन कर रहे थे और किसी ने आकर आपको समाचार दे दिया कि - आपके मकान की एक दीवार गिर गई है। यदि तेरी अनात्मभूत में ममत्व दृष्टि होगी, तो वहीं से अशांति प्रारम्भ हो जायेगी, कष्ट प्रारम्भ हो जायेगा, क्योंकि अनात्मभूत द्रव्य पर तेरी आत्मबुद्धि स्थापित है।

मुमुक्षु ! वस्तु कष्ट का कारण नहीं है, वस्तु पर तेरी जो आत्मबुद्धि है, वही कष्ट का हेतु है। आपकी जेब में दस का नोट है, आपने दस का नोट दान दे दिया तो कैसा लगेगा? और कोई जेब काट ले, तब के भावों को निहारना। दान करने पर आनंद आता है, परन्तु कोई छीनकर ले जाए तो कष्ट होता है। **भावना बने, उतना ही दान देना, परन्तु भावुकता में आकर दान नहीं करना। पहले परद्रव्य से अपनी आत्मबुद्धि हटाना, फिर द्रव्य का दान करना। किसी से उधार लेकर दान नहीं करना।** 'मूलाचार' जी ग्रंथ में साधु से कहा है कि - यदि यह ज्ञात हो जाए कि श्रावक जो आहारदान कर रहा है, वह द्रव्य यदि उधार माँगकर लाया है, तो ग्रहण नहीं करना। श्रावको! स्व-द्रव्य का ही दान होता है।

ज्ञानियो! यहाँ विषय को समझना। उधार लेकर द्रव्य लायेगा, तो मन-शुद्धि, वचन-शुद्धि, काय-शुद्धि, आहार-जल शुद्ध है, कैसे कह पायेगा ? जिसके सिर पर कर्ज चढ़ा हो, उसका मन पवित्र कैसे हो सकता है ? जिसके घर में शादी योग्य बेटी हो, करोड़ों का ऋण देना हो, उससे पूछना कि उसे नींद कितनी आती है और भोजन कितना स्वादिष्ट लगता है? उसे भोजन भी रुचिकर नहीं लगता है।

मित्रो! गरीबी का जीवन जी लेना, परन्तु ऋण लेकर जीवन नहीं जीना। संसार में कोई पीड़ित करने वाला है, तो वह ऋण है। अनात्मभूत द्रव्यों में आत्मबुद्धि रखेगा तो क्लेश होगा। **कर्त्ताबुद्धि रखोगे तो क्लेश होगा और कर्त्तव्य बुद्धि रखोगे तो आनन्द आयेगा।** प्रवचन भी करो तो कर्त्तव्य बुद्धि रखोगे तो आनंद आयेगा। प्रवचन भी करो तो कर्त्तव्य मानकर करना, परन्तु किसी को सुधारने के कर्त्ता नहीं बनना। ज्ञानी ! भूमि पर पानी की बूंद गिरे और भूमि गीली न हो, यह सम्भव नहीं है। ऐसे-ही जिनवाणी कभी व्यर्थ नहीं जाती। जो सुनेगा, वह सुधरेगा भी, चाहे समय कितना ही लग जाये।

ज्ञानी ! जीवन में कितनी भी विपत्ति आ जाये, परन्तु धर्म को नहीं छोड़ना। जब संसार के समस्त द्वार बंद हो जाते हैं, तब प्रभु का द्वार खुला होता है। **संशय का जीवन संकट का जीवन है। दूरियाँ संशय, शंका, अश्रद्धान को जन्म देती हैं। देव-शास्त्र-गुरु के समीप रहो, उन्हें जानो, समझो और अपनी मुक्ति-यात्रा प्रारम्भ करो।**

मित्र ! सब भ्रम छोड़ो। अनात्म-बुद्धि। अनात्म द्रव्यों से आत्मबुद्धि हटाने का पुरुषार्थ आज से ही प्रारम्भ करो, क्योंकि कब इस तन से प्राण-पखेरू उड़ जायेंगे, पता नहीं। ज्ञानी! एक व्यक्ति नवीन-वाहन खरीद कर लाया और घर की ओर जा रहा था। रास्ते में वाहन से दुर्घटना हो गई और जो वाहन खरीदकर लाया था, उसके प्राण-पखेरू उड़ गए। घर में पत्नि फूलमाला लिए खड़ी रह गई। जो माला वाहन पर सजाना था, वह शव पर सज गई। यह संसार की असारता है।

मुमुक्षु ! बाढ़ के पानी से कभी खेती नहीं होती है। बाढ़ के पानी से तो बड़े-बड़े वृक्ष धराशायी होकर पानी के बहाव में बह जाते हैं। वैसे-ही **हे ज्ञानी ! अशुद्ध द्रव्य घर में मत लाना। पाप से कमाया द्रव्य, निर्माल्य का एक दाना भी तेरे घर में आ गया तो तेरे घर की सम्पत्ति नष्ट होना प्रारम्भ हो जायेगी। पाप का धन तेरे धन को बहाकर ले जायेगा।** ज्ञानी! यह कभी नहीं सोचना कि पड़ौसी का धन मेरे घर में आ जाये। अपने पुण्य को सँभालना, तो पड़ौसी से भी अधिक धन तेरे घर में हो जायेगा। किसी के द्रव्य को हड़पने की आवश्यकता नहीं है। श्री के लिए 'श्रीजी' को नहीं छोड़ना।

पानी को रिसने में समय लग सकता है, परन्तु परिणामों के रिसने में देर नहीं लगती है। मित्र ! परिणामों को सँभालो, यदि सुखी जीवन जीना है तो। **जो शिवमार्ग की यात्रा करता है, जो परमात्मा पर श्रद्धान करता है, वह निर्धन नहीं होता है, वह धर्म से धन्य होता है, धनिक होता है।** जो शिवत्व की आराधना से शून्य हो जाते हैं, वही निर्धन हैं।

जिनकी श्रद्धा की आँख खुली है, श्रद्धा की श्वास चल रही है, मात्र वही अपने-आप को जीवित समझें और जिसकी पंचपरमेष्ठी के प्रति श्रद्धा निकल गई है, वह जी तो रहा है, पर जीवित नहीं है, वह धर्म से मर चुका है। **जिसकी आस्था जीवंत है, वो ही जीवंत है।** धन्य हैं वे तीर्थंकर वर्द्धमान स्वामी, धन्य हैं वे ऋषभदेव,

जो कोटि-कोटि वर्ष पूर्व हो गये, परन्तु आस्था से पूर्ण हृदयों में आज भी विराजित हैं। मित्र ! जीवन जिओ तो ऐसे जिओ कि मरने के बाद भी जीवित रहो। **जो जीते-जी दूसरों को शांति से जीने न दे, वह जीते हुए भी मरा है।**

आचार्यभगवन् कुलभद्र स्वामी कह रहे हैं कि - जो मूढ़/अज्ञानी-पुरुष प्रमादपूर्वक प्रवृत्ति करते हैं, इन्द्रियविषयों में अहोरात्र लिप्त रहकर भोग-भोगते हैं, वे मानव मरण कर नरक-तिर्यंच गति में जन्म लेकर दीर्घ-काल तक कष्ट भोगते हैं।

ज्ञानी! प्रमाद ही महापाप है इसलिये प्रमाद मत करो, क्योंकि कब किस क्षण कहाँ आयु पूर्ण हो जाये, पता नहीं है। यदि पाप करने का भाव आये, तो अवश्य प्रमाद करना। पाप करने का भाव आये तो सोचना कि बाद में करेंगे, हो सकता है कि बाद में भाव बदल जाय। आप पाप करने के पहले भी तैयारी करते हो, किसी से झगड़ने के पहले चिन्तन करते हो। **गायक पहले गुनगुनाता है, फिर गाता है। वैसे-ही व्यक्ति पाप करने के पहले भूमिका बनाता है।** मित्रो! पाप करते-करते पंचमकाल में आ गये, अब यदि छट्ठे काल में न जाना हो तो पाप करना छोड़ दो। **जिसकी अनात्म-द्रव्यों में आत्मबुद्धि चलती है, वही पाप में प्रवृत्ति करता है।**

यह चारित्र की महिमा है कि नब्वे साल का वृद्ध भी युवा मुनिराज को नमोस्तु करता है। त्यागियों को इतने अच्छे से रहना चाहिए कि आपके द्वारा किसी की श्रद्धा विचलित न हो। उस पिता से पूछना जिसका बेटा मुनि हो। वह अन्दर-ही-अन्दर आनन्द ले रहा है और वही बेटा कहीं अंजुली लगाकर द्वार पर आ जाये, तब की अनुभूति पूछना।

जो मूढ़ प्रमाद कर रहे हैं, विषयों की लालसा से युक्त होकर पापों में लिप्त हो रहे हैं, जो मोक्षमार्ग में प्रमाद कर रहे हैं, वे हिंसक हैं। जहाँ-जहाँ प्रमाद है, वहाँ-वहाँ हिंसा है। प्रमादी कभी अहिंसक हो ही नहीं सकता है।

मुमुक्षु ! चाहे जीव मरे, चाहे न मरे, लेकिन जो प्रमादपूर्वक चल रहा है, उसे हिंसा का ही दोष लगेगा, उसे नियम से कर्मबंध होगा। ज्ञानी ! श्वान भी पूँछ हिलाकर बैठता है, तुम तो मनुष्य हो। धन्य हैं दिगम्बर मुनि, जो मार्जन करके ही बैठते हैं और धूप से छाँव, छाँव से धूप में प्रवेश करते हुए शरीर का परिमार्जन करते हैं।

मित्र ! प्रमादी को दुःख-ही-दुःख मिलते हैं। एक व्यक्ति को बिच्छू ने डंक मार दिया, क्योंकि उसने बिना देखे जूते में पैर डाल दिया, उसमें पहले से ही बिच्छू बैठा

था। एक व्यक्ति की जीभ में वर्र ने काट लिया, क्योंकि उस व्यक्ति ने प्रमादपूर्वक गिलास उठाया और शर्बत पीने लगा। इसलिये आगम कह रहा है कि **पापों से बचना चाहते हो, तो प्रमाद मत करो।** जो प्रमादपूर्वक पापों में लिप्त है, वह नरक-तिर्यञ्च गति की यात्रा करता है।

ज्ञानियो! स्वाधीनता में ही आनंद है, पराधीनता में किंचित् भी आनंद नहीं है। आज पराधीनता छोड़ दो, प्रमाद छोड़ दो और चारित्र को धारण कर आनंद का जीवन जिओ।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।



स्वाधीन-सुख ही सच्चा सुख

आत्मा यस्य वशे नास्ति कुतस्तस्य परे जनाः।
आत्माधीनस्य शान्तस्य त्रैलोक्यं वशवर्तिनं॥300।।

अन्वयार्थ— (यस्य वशे आत्मा नास्ति) जिसके आधीन अपना आत्मा नहीं है **(परे जनाः कुतः तस्य)** उसके आधीन दूसरे मानव कैसे हो सकते हैं ? **(आत्माधीनस्य शांतस्य त्रैलोक्यं वशवर्तिनं)** जिसके आधीन अपना आत्मा है एवं जो शांत है उसके आधीन तीनलोक हो जाता है।

भावार्थ— हे विशुद्धात्मन् ! जो आत्मानुशासक होता है, क्षमावान् होता है, उसके आधीन समस्त संसार हो जाता है और जो अनुशासित नहीं है, उसके आधीन कोई नहीं होता है।

।। सद्-देशना ।।

आचार्यभगवन् कुलभद्र स्वामी ग्रंथराज सारसमुच्चय जी में समझा रहे हैं कि जो क्षमाशील है, आत्मानुशासक है, उसे सब जगह आनंद-ही-आनंद है।

प्रमाद शत्रु है, प्रमाद हिंसा है। इस बात की व्याख्या करते हुये समझा रहे हैं कि जीव का जितना घात किसी अन्य ने नहीं किया, उतना प्रमाद ने किया है। एक पुरुष प्रमाद छोड़ करके अपने कार्य में लीन है, वह आगे बढ़ गया। एक पुरुष प्रमाद में लवलीन है, वह स्वयमेव पीछे हो गया। चाहे आप सुख से जीवन जी लो, चाहे आप आनन्द का जीवन जी लो। प्रातः की नींद बड़ी मधुर लगती है, बड़ा सुख महसूस होता है, लेकिन उस नींद में सोते-सोते पूरे दिन निकल चुके हैं। जब विद्वानों की सभा में आप पीछे दिखाई देते हैं और आपका मित्र आगे बैठा होता है, तब देखो, सुख क्या कह रहा है? अब आनन्द दे रहा है क्या ? उस क्षण आप महसूस करते हो कि धिक्कार हो मुझे जब मैं अपने मित्र से कहता था कि सोना-ही-सोना है, आज समझ में आ रहा है सोना ही रोना है। **जो जितने सोयेंगे, उतने ही रोयेंगे।** बहुत अच्छे से रोना हो तो बहुत अच्छे से सो जाओ। न अध्ययन की आवश्यकता है, न साधना की आवश्यकता है। सुख और आनन्द। सुख इन्द्रियों से युक्त है, आनन्द अतीन्द्रिय है। **इन्द्रियसुख में जो सो गया, वह अतीन्द्रिय आनन्द से विमुख हो गया।** विनाशीक दृष्टि से देखते हैं जीव के लिये, तो ध्यान रखना, जितने विनाश को प्राप्त हो गये,

हो रहे हैं, होयेंगे, ये सब प्रमादी लोग थे। **जिन जीवों को सूर्य आकर जगाये, उनका सूर्य कभी चमकनेवाला नहीं है। जो सूर्य को जगाये, उनके सूर्य चमकनेवाले हैं। जो प्रातः सूर्य-उदय के पहले जागते हैं, उनके मस्तिष्क, विवेक, ज्ञान, आचरण जल्दी प्रशस्त होते हैं।** जिनको दिन के बारह बजे सूर्य आकर जगाये, उनकी बुद्धि तो कुण्ठित होनी ही है। एक दिन सूर्य-उदय के पूर्व जगकर तो देखो। सूर्य-उदय के पूर्व पलंग छोड़ ही देना। सबसे पहले अर्हत् बिम्ब को देखें, वे पुण्यात्मा जीव हैं। वे अभागे जीव हैं जो जागते ही नारी का चेहरा देखते हैं या अपना स्वयं का चेहरा दर्पण में देखते हैं या चाय की कप को देखते हैं। इनसे अभागे संसार में कोई नहीं होंगे। **वे जीव पुण्यात्मा हैं जो जागते ही सबसे पहले जिनदेव का श्रीमुख देखते हैं।** मंगलभूत पंचपरमेष्ठी का श्रीमुख है। प्रातः जागते ही जिन-सूर्य को देखो, पंचपरमेष्ठी को देखो। जिनको सूर्य जगा रहा है, उनको दिन भर आलस्य रहेगा।

विकास किसने किया ? ह्रास किसका हुआ ? यदि आपको किसी के प्रति ईर्ष्या आती हो, उसका विकास क्यों हो रहा है? तो पहले अपने प्रति द्वेष आना चाहिये कि मैंने प्रमाद क्यों किया ? एक कक्षा में अनेक छात्र अभ्यास करते हैं। जब एक छात्र देश में विशेषज्ञ बनकर आता है तो उनका चेहरा देखते ही आप कहते हो 'आओ साहब! बैठो साहब! कौन बोल रहा है? यदि तुम प्रमादी न होते, तो उनको साहब बोलने के लिये कौन रहते। **आपका प्रमाद ही दूसरे की उन्नति का साधन बन जाता है।**

यदि कोई व्यक्ति अपने बेटे को कोटि-कोटि द्रव्य (धन) देकर जा रहा है, वह कहता है मैंने अपने बेटे को सबकुछ दिया है। लेकिन पिता जी! ध्यान रखना, यदि आपने सुबह से जगना नहीं सिखाया, तो बेटे को कुछ नहीं दिया है। जगना सिखाओ। जगना ही सिखाना, जागते हुये सोना नहीं सिखाना। यदि जागने के उपरान्त जो समय उसको मिला है वह मित्रों के साथ व्यर्थ में घूमने जा रहा है अथवा तास आदि का खेल कर रहा है, तो उसे जगाकर तुमने सुलाया है। जगाकरके जगाना उसे 'बेटा! चलो, भगवान् जिनेन्द्र का अभिषेक करके आओ।'

पुद्गल का प्रभाव पड़ता है कि नहीं पड़ता ? यदि बादल छा जाते हैं तो आपके शरीर का रंग बदलने लगता है और जो मानसिकता धूप में होती है वह मानसिकता

बादलों के काल में नहीं होती है। जो मानसिकता शीतकाल में होती है, वह मानसिकता ग्रीष्मकाल में नहीं होती। गर्मियों में आदमी चौबीस घण्टे ऐसे दिखता है जैसे सो रहा हो। द्रव्य का प्रभाव देखो। आपकी मानसिकता परद्रव्य से प्रभावित हो ही रही है, आज ही अनुभव कर लेना, एक पत्थर को उठाना, उसमें पानी डाल देना, उस पत्थर पर पानी डालोगे, उस पानी को मस्तक पर लगाने से श्रद्धा का जन्म नहीं हो सकता। एक पुरुष ने परमात्मा की मूर्ति में मस्तक से पानी डाला है, वह गन्धोदक बन गया, आप श्रद्धा से माथे पर लगा रहे हो। मैना सुन्दरी ने अपने पति श्रीपाल के साथ सात सौ कुष्ठियों को ठीक कर लिया एकमात्र अर्हन्त के जिनबिम्ब के गंधोदक लगाने से। आप यूँ कह सकते हो कि यह मात्र रूढ़ि की भाषा है। यह रूढ़ि की भाषा नहीं है। मोबाइल की डिबिया तुम्हारे हाथ में है। हाथ में ले लो, कोई प्रभाव नहीं पड़ता। उसी में शब्द निकलने लग जायें तो कुछ लोग जो बात सुन रहे हैं, बात करनेवाला अमेरिका में होता है, परन्तु भारत में उसका हाथ हिल रहा होता है। हँसता भी है, रोता भी है, कोई इच्छित बात मिल गई तो मुस्कराता है, अनिच्छित बात मिल गई तो रोने लग गया। मोबाइल जड़ है ना ? है। शब्द भी जड़ है ? हाँ, है। लेकिन शब्द इतना प्रभावी होता है कि शब्द के माध्यम से बड़ी-बड़ी चट्टानें तोड़ी जा सकती हैं।

जो काम यंत्र नहीं कर पाते, जो काम तंत्र नहीं कर पाते, वह काम मंत्र करते हैं। ये शब्द की महिमा है। विज्ञान जिसको अन्वेषण करके बातें कर रहा है, उसको जिनागम कोटि वर्ष पूर्व कह चुका था। आशीर्वाद का हाथ उठते ही मन प्रसन्न हो गया। **जो व्यक्ति अपने हाथों को जितना साधना में सँभालेगा, उसके हाथ की तरंगें उतनी विशिष्ट होंगी।** जिसको आगम आशीर्वाद कह रहा है, आशीर्वाद की मुद्रा कह रहा है, आज के लोगों ने उसे ही तो उपचार की विधि में रख लिया है। रेकी क्या है ? जिसे तुम रेकी चिकित्सा कह रहे हो, वही जिनागम कह रहा है। आपको तो हाथ रखना पड़ रहा है, यहाँ तो योगियों के शरीर से स्पर्शित वायु यदि स्पर्श कर जाये, तो तुम्हारे रोग ठीक हो जाते हैं। आपकी शक्ति इतनी प्रभावी होना चाहिये। कक्ष में कोई क्रूर प्राणी बैठा हुआ है, उस समय आप जाओ तो भय पैदा होगा। जिस कक्ष में कोई साधु बैठा हुआ है, उस कक्ष में प्रवेश करते ही लगता है मैं एक ठण्डे

(शांत) लोक में आ चुका हूँ, तिर्यञ्च प्राणी भी जहाँ शान्ति से विचरण कर लेते हैं। इस बात को पकड़ना सीखो, समझना सीखो।

आपको निज की शक्ति का संग्रह करने की कला आना चाहिये। पर को प्रभावित करने का विचार मत करो, निज को प्रभावित करके जीने लग जाओ, तो आपकी संग्रह-शक्ति बढ़ जायेगी। किसान टार्च को चार्ज में लगा दो तो प्रकाश उसके अन्दर पहुँच जाता है, वहीं तुमने बटन को खोल कर रख दिया तो धीरे-धीरे उस प्रकाश की किरणें समाप्त हो जाती हैं। मित्र ! अब देखियेगा, ये नेत्र तुम्हारे प्रकाश को फेंकने वाले हैं। **पर की ओर तुम जितना अधिक देखोगे, उतनी तुम्हारी निज की शक्ति क्षीण होगी। जितना नेत्र बन्द करके बैठोगे, नासाग्र होगे, उतनी आपकी शक्ति वृद्धिगत होगी। यदि आप दूसरे को नहीं देखोगे, विश्वास रखना, लोग आपको देखेंगे।** जहाँ आपने दूसरे को देखना प्रारम्भ कर दिया, लोग आपको देखना बन्द कर देंगे। सहज है, आप यदि किसी से बात नहीं करोगे तो लोग आपसे बात करना चाहेंगे। आप ही बात करना प्रारम्भ कर दोगे तो लोग थक जायेंगे कि चलो यहाँ से चलते हैं।

शब्द रोग को भी उत्पन्न करता है, शब्द शोक को भी उत्पन्न करता है, क्लेश को भी उत्पन्न करता है। महाभारत हुआ तो किसके बल पर हुआ ? शब्द के बल पर हुआ है। क्रूरपरिणामी जीव भी शान्त होकर बैठ गया। कालिया नाग स्वतन्त्र होकर विचरण करता है, लेकिन सपेरे की टोकनी में कैसे आ गया ? शब्द ने कालिया नाग को वश कर लिया। स्वतन्त्र विचरण करने वाले हिरण भी शब्दजाल में फँस गये। आज के युग में युवाओं से पूछो और अपने आप से ही पूछ लो-मेरे मित्र ! नारी की मीठी बातें न सुनी होतीं तो आज तू मेरे साथ बैठा होता। जगत् में जितने जीव हैं, उनमें पहले वासनायें नहीं आतीं, पहले बातें ही आती हैं। निर्ग्रन्थों से क्यों कहा कि एकान्त में वास करो, विषमलिङ्गियों से दूर रहो। पहले वासना का जन्म नहीं होता, पहले बातों का जन्म होता है। बातें प्रारम्भ होते ही वे वासना में बदल जाती हैं। कोई व्यक्ति सीधे पाप नहीं कर सकता। प्रीति का जन्म पहले नहीं होता, पहले बातों का जन्म होता है। ट्रेन में चलते-चलते भी आपने आपत्ति खरीद ली थी। जब तुम्हारी सीट पर कोई पुरुष बैठा हुआ था, आपने दो बातें कीं, कुछ अच्छी-सी

बातें हो गईं, इतना राग बढ़ा कि पत्राचार प्रारम्भ हो गया। पाँच रुपये का टिकिट और लगने लग गया। एक लिफाफे का खर्च बढ़ गया। जो आपका समय णमोकार की माला फेरने में जाना चाहिये था, वह समय उस अभागे को पत्र लिखने में जाने लग गया। कुछ दिन बाद तुम्हारे घर में कोई विशिष्ट काम हुआ, उसको मालूम चल गया कि आज उनके यहाँ बेटे की शादी है, जल्दी-जल्दी में तू उसका नाम लिखना भूल गया। यानि तूने एक नया शत्रु खड़ा कर लिया। जिनको अपना मित्र बनाना हो, पहले शत्रु बनाओ। पहले मित्र ही बनाये जाते हैं, फिर वे शत्रु में बदल जाते हैं। पहले मित्र होते हैं। जो नजदीक का होगा, उसे ही तो ज्ञान होगा। जो नजदीक का नहीं होगा, उसे क्या ज्ञान होगा? बुंदेलखण्ड के लोग कहते हैं - जब भी आँख फूटती है, घर के कुरवे से ही फूटती है। सबसे ज्यादा **सुरक्षित रहना है तो जो तुम्हारे बहुत नजदीक आ चुके हैं, उनसे अपनी रक्षा करना सीखना। जब भी दगा देंगे, नजदीक के ही लोग देंगे।** इतिहास को उठाकर देख लो, राम के पास कोई विशिष्ट सेना नहीं थी, मात्र तीन ही तो जंगल गये थे, लक्ष्मण सीता राम। रावण के पास अट्ठारह अक्षोहिणी सेना थी। अट्ठारह अक्षौहिणी सेना का स्वामी भूमिगत क्यों हो गया ? रहस्य रावण को पता थे या विभीषण को पता थे। जिनको नजदीक रखते हो, उनको नजदीक आने के पहले सँभालने की आवश्यकता है। रहस्य किसने दिया ? धर्मनीति अलग है, राजनीति अलग है। राजनीति की दृष्टि से पूछोगे तो विभीषण ने ठीक नहीं किया। धर्मनीति से पूछोगे तो विभीषण ने सत्य का पक्ष लिया। भाई था, भाई। पार्श्वनाथ पर उपसर्ग किसने किया ? भाई था, भाई। पाण्डव को लोहे के आभूषण मामा ने पहनाये। गजकुमार मुनिराज के सिर पर सिगड़ी जलाकर ससुर ने रखी। सुकुमाल/सुकौशल पर उपसर्ग माँ/भाभी ने किया। इसलिये जीवन में ध्यान रखना, जो नजदीक के हों उन्हें सँभाल कर रखना। ये मत सोचना कि ये तो मेरा घर का है। जब भी तुम्हारे जीवन में गंभीर कष्ट आयेगा, इन्हीं से आएगा।

एक छोटी-सी बात बताऊँ। एक जंगल में गाड़ी लेकर किसान जा रहा था। छोटे-छोटे वृक्ष रोने लगे। वृद्ध वृक्ष पूछता है 'वत्स! क्यों रोते हो ?' तात्! अब हम बचेंगे नहीं। क्यों ? किसान गाड़ी लिये है, कुल्हाड़ी साथ में है। 'वत्स! ये तो बताओ कुल्हाड़ी है?कोई विकल्प मत करो। साथ में अपने वंश का तो नहीं है ? कुल्हाड़ी

अकेली कुछ नहीं कर सकती है। जब तक हमारे वंश का बेंत नहीं जाता है, कुल्हाड़ी काट नहीं सकती है। कुल्हाड़ी जब भी काटेगी, बेंत तो लकड़ी का ही होगा। जब भी तुम्हारे घर में संकट आयेंगे, तो बेंत तुम्हारे वंश का ही होगा। **'घर का भेदी लंका ढाये।'** लंका का विनाश हुआ है तो रहस्य देने वाले विभीषण थे। तुम्हारे घर की बातें जब भी बाहर सुनाई पड़ेंगीं, विश्वास रखना, तुम्हारा सगा ही जब मचल जायेगा, वह ही किसी के कान में फूँकेगा और अन्त में क्षमा तुमसे ही माँगेगा। रहेगा तुम्हारे ही पास, दूसरे के कान में फूँक कर आ गया, उसने आपका तो विनाश कर दिया। इतनी दृढ़ता लाओ कि जीवन में तुम किसी का सम्मान कर सको या नहीं, लेकिन अपमान करने की इच्छा हो तो अच्छे से कर देना। लेकिन किसी की रहस्यमयी बातों को किसी दूसरे को बताने मत चले जाना। **उतना घातक अजगर नहीं होगा, अग्नि नहीं होगी, सिंह नहीं होगा, जितना घातक घर की बात को बाहर भेजने वाला होगा।** आपका इतिहास कहता है। रानी लक्ष्मी बाई को पराजित क्यों होना पड़ गया? झाँसी के किले के पास अभी भी चित्र बने हुये हैं। वह स्थान सुरक्षित रखा गया है जहाँ से लक्ष्मीबाई अपने किले से कूदी थी। रहस्य किसने दिया था ? जो उनके अत्यन्त नजदीक के अंगरक्षक थे, पहरे पर रहनेवाले लोग थे।

मेरे मित्र! पानी में डुबो-डुबो करके बाजरे की रोटियाँ खा लेना, परन्तु धन के राग में धर्म के टुकड़े करके मत बेंच (फेंक) देना। जिस व्यक्ति का सत्य पलायन कर गया, जिस व्यक्ति का ईमान पलायन कर गया, उसके पास अब कुछ शेष बचा नहीं है। कालिया नाग, जिसके मस्तक में मणि होती है। गज का मोती, साँप का मणि। जब तक गज के पास मोती होते हैं, वह अपने आप में मस्त रहता है, उन्मुक्त घूमता है। साँप के पास मणि होती है, वह अपने आपको क्या मानता है? यदि साँप का कोई घात भी न करे, हाथी का नाश भी न करे, मात्र उसकी मणि/मोती निकाल ली जाय, छीन ली जाये, तो मणिविहीन साँप में कोई ताकत नहीं बचती। ऐसे-ही जिस पुरुष का ईमान निकल चुका है, वह मणिविहीन साँप के समान हो चुका है।

कोई प्रसंग आया तो पुलिस अधिकारी कहता है कि ये जैन है, ऐसा नहीं कर सकता है। मिश्रीलाल गंगवाल मध्यभारत के मुख्यमंत्री रह चुके हैं। पं. जवाहरलाल नेहरू जी अपने प्रधानमंत्री काल में जब इंदौर आये तो उन्होंने मुख्यमंत्री जी को सूचना

दी कि गंगवाल जी! भोजन आपके यहाँ होंगे, परन्तु मेहमानों का ध्यान रखा जाय। मुख्यमंत्री के नाते मना तो नहीं कर सकते थे। बात गहरी थी कि मेहमानों का ध्यान रखा जाये। जैसे मेहमान होंगे, वैसा भोजन होगा। गंगवाल जी कहते हैं, नेहरू जी! ये श्री का भक्त नहीं है। श्री तो इस घर में आयी ही है। ये भक्त श्रीजी का है। मैंने उस माँ के आँचल का पान किया है जिसने जन्मघूँटी में मुझे अरहन्त की जिनवाणी सुनाई है, निर्ग्रन्थों के दर्शन कराये हैं, अरहन्त का अभिषेक दिखाया है। मेरे घर में ब्रह्मा की उपासना नहीं होती है, मेरे घर में '**अहिंसा परमो धर्मः**' की उपाासना होती है। जिसके घर में अहिंसा परमब्रह्म की उपासना होती हो, मैं मुख्यमंत्री पद छोड़ने को तैयार हूँ, लेकिन नेहरू जी! मेरे घर में भोजन वह होगा जो हमारे श्रावक के घर में मारवाड़ी भोजन होता है। निरामिष भोजन होगा, जितने भी मेहमान होंगे उनको भोजन मिश्रीलाल गंगवाल करायेगा।

नेहरू जी ने कहा-'मनपसंद नहीं होगा लोगों को तो ?' थोड़ा जोश तो था, क्योंकि क्षत्रिय थे गंगवाल जी। कहते हैं, 'नेहरू जी! विश्वास रखो, जितने मेहमान आयें, अंगुलियाँ न चाटें तो आप मेरा नाम बदल देना।' जब भोजन करने बैठे, जितने मेहमान थे सब कह रहे थे 'नेहरू जी! प्राणियों के कलेवर को तो अनन्त बार चाँटा, लेकिन शुद्ध श्रावक के घर की चटनी जो है, जैनी के घर में चटनी न दिखे, इतनी मधुर कहाँ से बनाई गई है। तो गंगावाल जी धीरे से कहते हैं, 'ये चटनी जीवों के प्राणों को खींच कर नहीं बनाई गई है, ये चटनी अहिंसा का मिश्रण करके बनाई गई है। आपको इसलिये आनन्द आ रहा है।' परिणाम ये निकला उनका बेटा मुझे फोटो दिखा रहा था। ये सब मेहमान बैठे हुये हैं, पिताजी ने इनको शुद्ध दाल, वाफले, बाटियाँ खिलाई थीं।

जब तुम्हारे हृदय में दृढ़ता है, तो हर व्यक्ति को बदलने की सामर्थ्य है। ये तो मनुष्य थे, अमरचन्द दीवान ने शेर को दूध-जलेबियाँ खिलाई थीं। जीवन में ये ध्यान रखना कि मच्छर भी काटने के पहले संकेत देते हैं, धोके से नहीं काटते। मच्छर-जैसे भी तुम नहीं हुये तो इससे बड़ी उपमा अब क्या दी जाये ? यदि बेटे की माँ घर में आ जाये, मच्छर से कुछ सीखकर जाना, नहीं-तो बदनाम हो जाओगे। घर में खाँस कर जाना पड़ता है। बिना खाँसी के खाँसना पड़ता है। बूढ़े न होकर भी बूढ़े होकर

जाना पड़ता है। धिक्कार हो ऐसे परिवार को। भाग आओ ना? संसार में कितनी मायाचारी है? ओ हो! वे मच्छर कितने श्रेष्ठ हैं। वे कितने खोटे लोग हैं जो बिना संकेत किये दूसरे के कानों में दूसरे की बात भर देते हैं। विश्व में जब-जब अच्छे लोग हुये हैं, तो कोई-न-कोई कान काटनेवाले अवश्य हुये। परन्तु निन्दा-रसालुओं से कभी भयभीत मत होना। निन्दा से कोई कभी भयभीत मत होना, अपने हृदय की सत्यता को देखना। फिर जगत् में कोई कुछ भी कहता रहे, उसकी चिन्ता मत करना। दीवान अमरचन्द एक ऐसा दीवान जयपुर नरेश का हुआ।

सम्पत्ति प्राप्त करके सुखी होनेवाले दरिद्री कोटि-कोटि हैं, लेकिन विपत्ति के आने पर भी प्रसन्न रहने वाले धनवान बिरले होते हैं। पुद्गल के टुकड़ों को प्राप्त करके सुखी होकर जी लेना कोई बहुत बड़ी बात नहीं है। टुकड़े छोड़ने के बाद खुश होकर जीना। जो टुकड़ों को लेकर खुश होते हैं, वे भोगी होते हैं। जो टुकड़े छोड़कर सुखी होते हैं, ये योगी होते हैं। दीवान अमरचन्द की ईमानदारी ने क्या किया ? हिरण क्यों मारा जाता है? नाभि में कस्तूरी न होती तो बेचारे हिरण के प्राण क्यों जाते ? कभी अच्छाइयाँ भी लोगों को बड़ी घातक हो जाती हैं। पर मित्र! विश्वास रखना, अच्छाइयाँ घातक नहीं हैं, लोगों की ईर्ष्या घातक है। **हंडिया पर पारा रखा जा सकता है, लेकिन किसी के मुँह पर पारा नहीं रखा जा सकता।** इसलिये आप कहनेवालों की चिन्ता मत करो, आप तो ये देखो कि आपका सत्य 'सत्य' है कि नहीं ? दीवान अमरचन्द के बारे में लोगों ने राजा को भड़का दिया। यदि इसकी ईमानदारी रही तो हम लोगों के सब काम बिगड़ जायेंगे। ऐसा पाँसा फेंका कि सम्राट् कहता है कि अमरचन्द जी, जब तक मैं बाहर जाता हूँ तब तक जितने बंधक जीव हैं उनके भोजन की व्यवस्था, खास तौर से शेर के भोजन की व्यवस्था, आपके हाथ में है। अब राज-आज्ञा तो मानना ही पड़ेगी। अमरचन्द कहता है, 'राजन् ! स्वीकार है।' बोल तो दिया। घर आकर कहता है मन में, 'मैं श्रावक। यदि पद छोड़ता हूँ तो अहिंसा की पहचान कैसे करा पाऊँगा? मैं तो एक कोने में बैठ जाऊँगा, पद में रहकर मैं अहिंसा की पहचान कराकर आऊँगा। लोग तो तमाशा देखने के लिये नाटक करा रहे थे, अब देखना कि उस सिंह को कैसे जीवित रखेगा अमरचन्द, जिसका भोजन ही मांस हो?

करुणा की आवाज को क्रूर भी पहचानते हैं। आपकी आवाज में करुणा विशाल होना चाहिये। सड़े तिर्यञ्च की दुर्गन्ध के लिये कितने सेंट फैलाये जा सकते हैं, कि वहाँ दुर्गन्ध नहीं आ सकती। शक्त्यांश अधिक चाहिये। आगम क्यों निषेध करता है कि पंचमकाल में मुनियों को अकेले नहीं घूमना चाहिये, सभी के बीच में रहना चाहिये? कारण क्या है? मृतक वासनाओं की दुर्गन्ध इतनी विशाल फैली हुई है, तुम अकेले घूमोगे तो कहीं विचलित हो सकते हो। तुम्हारी चर्या बिगड़ जायेगी तुम साधुओं के बीच में रहोगे तो आपके संस्कार जीवित रहेंगे। शक्त्यांश बढ़ाना चाहिये। जब भीतर का भगवान् प्रबल होता है, तो जगत् के भाव बदल जाते हैं। स्व पर विश्वास करो। **जिसको स्व पर विश्वास है, वही जगत् का विश्वासी हो पायेगा। जगत् पर राज्य करने की प्रज्ञा सीख लो। सारे लोगों का सिर झुकवाना हो तो एक विद्या सीख लो, निज के ऊपर कठोर नियन्त्रण।** तुम्हें बच्चे-बच्चे का सम्मान चाहिये तो स्वयं के ऊपर कठोर नियन्त्रण प्राप्त कीजिये। तुम इन्हीं बच्चे, बच्चियों, पोतों के बीच में सिगरेट पिओगे अथवा मित्रों से मित्रों-जैसी बातें तुम बच्चों के सामने करोगे तो आपका सम्मान सम्भव नहीं है। अपने बेटे के सामने अपने मित्र से भी मजाक नहीं कर पाओगे। कोई खोटी आदत तुम्हारे भीतर पड़ी हो, मेरे मित्र! वह अपनी पत्नि से भी मत बताना। आदत तू छोड़ सकता है, लेकिन पत्नि के कान में कोई बात पड़ जाये तो उसके विश्वास को पुनः जोड़ नहीं सकता। आपकी खोटी आदत तो जीवन में सुधर जायेगी, लेकिन यदि उस आदत का बोध तेरी पत्नि को हो गया तो उसके विश्वास को नहीं जोड़ पायेगा। वह ताकत तेरे पास नहीं है।

दीवान अमरचन्द जब अपनी ड्यूटी पर पहुँचते हैं, एक हाथ में जलेबियों का थाल भरा हुआ, दूसरे हाथ में दूध से भरी बाल्टी और जब शेर के सामने पिंजरे के भीतर दूध-जलेबियाँ रखी गईं, शेर सूँघता है और दूर खड़ा हो जाता है। भूख के मारे दहाड़ता है। महामंत्र का पाठ करते हुये, महामंत्र की महिमा का उच्चारण करते हुये दीवान अमरचन्द पिंजड़े का गेट खोलता है और कहता है, 'वनराज! क्षुधा मिटाना है तो दूध जलेबियाँ हैं और माँस खाना है तो अमरचन्द्र सामने खड़ा है। लेकिन मैं जीवन जीते-जी दूसरे के माँस को नहीं दे सकता। शेर अमरचन्द के नयनों को निहारता है और अहिंसा से भरे अश्रुपात को देखकर धीरे-से दूध-जलेबियाँ खाना प्रारम्भ कर देता है। वे कान भरने वाले देखते रह गये कि इसने कोई मंत्र किया कि तन्त्र किया

जो माँसाहारी शेर को ये जलेबियाँ खिला रहा है। तुम कैसी बात करते हो? माँसाहारी शेर को महावीर बनाया जा सकता है तो उसको जलेबियाँ क्यों नहीं खिलाई जा सकती हैं ? माताओ! सँभलकर सुनना। एक दीवान ने शेर को दूध-जलेबियाँ खिला दीं, क्या तुम अपने बच्चों को दूध-रोटियाँ नहीं खिला सकती हो ? जिसके बेटे ढावे पर जायें, समझो उसकी माँ के अन्दर कोई ताकत नहीं है। हमारी वर्गणाओं में जोश नहीं है। शब्द क्या कह रहा है? एक अहिंसक श्रावक के शब्दों ने सिंह को बदल दिया, फिर साधु की संस्कारित वाणी जगत् को न बदल पाये, यह कैसे सम्भव है? भीतर से बदलता है। जो मंत्र से अभिमंत्रित होता है, वही पत्थर प्रतिमा का रूप ले लेता है। जब उसमें प्राणप्रतिष्ठा होती है, सूरिमंत्र दे दिया जाता है, फिर उस प्रतिमा पर डाला गया पानी श्रद्धा से भरा गंधोदक होता है। वह गंधोदक कुष्ट जैसे रोगों को ठीक कर देता है यदि आस्था है तो, विश्वास है तो। नहीं-तो आजकल तो लेबोरेट्री का जमाना है, सब पर रिसर्च होती है। आप सामान्य पानी भर कर खोज करवाना कि इसमें क्या शक्ति है और मंत्र पढ़कर भगवान् के मस्तक से ढारा हुआ पानी (गंधोदक), उसकी खोज करवाना, इसमें कोई विशेषता है कि नहीं ?

इस बात का ध्यान रखना, एक खाली डायरी पर रिसर्च की, कोई ओरा नहीं। मेरे सामने 'समयसार' रखा था। इंदौर की बात है। एक वैज्ञानिक आया। उसने ज्यों-ही अपना यंत्र इस ग्रन्थ के सामने किया, कहता है—महाराज! चारों दिशाओं में दश-दश/बारह-बारह किलोमीटर तक इस ग्रन्थ की वर्गणायें फैल रही हैं। मैंने कहा कि तू पूर्ण सत्य कह रहा है। जो शब्दवर्गणायें ग्रन्थ में निहित हैं और दश-दश किलोमीटर आगे-पीछे जा रही हैं, तो तीर्थंकर भगवान् का समवसरण जहाँ लगता हो, वहाँ बारह योजन तक सुभिक्ष हो जाये तो कोई आश्चर्य नहीं है। इसलिये **महापुरुष किसी के दुःख दूर नहीं करते, उनके होने मात्र से दुःख दूर हो जाते हैं।** लोग कहते हैं कि अमुक व्यक्ति ने अमुक के दुःख दूर किये। मेरे पास एक प्रश्न आया कि आपके महावीर स्वामी ने किसका दुःख दूर किया? उनका कोई उदाहरण ही नहीं मिलता। बाकी के सभी लोगों ने दुःख दूर किये हैं। मेरे मित्र! वे कितने हीन लोग थे जिनको उपक्रम करना पड़ गया दुःख दूर करने का। महावीर इतने महान् थे कि उनके शासन में कोई दुःखी ही नहीं हुआ। जब गाय और सिंह एकसाथ बैठ सकते हैं, तो मनुष्य मनुष्य एकसाथ न बैठ पायें, तो तीर्थंकर का शासन कैसा ? क्यों मित्र! घर में इतने ही शान्त बैठते हो क्या आप लोग ?

महाराज ! मंत्रवादी के उड़द के फेंकने से कालिया नाग शान्ति से बैठ जाता है। जब तक मंत्र की शक्ति रही, नाग शान्त रहा। जैसे-ही मंत्र का समय पूर्ण हुआ, नाग फिर से घूमने लग गया। ऐसे-ही इन ज्ञानियों के साथ होता है। जब-तक अरहन्त के मंत्र रहते हैं मंदिर में, तब-तक मैं शान्त रहता हूँ, लेकिन जैसे-ही क्षेत्र से बाहर हुआ, फिर मेरा राग नाचने लगता है। जिसने बहुत अच्छे से मंत्र सुन लिया है, उसको तो चौबीस घण्टे असर करता है। फिर जरा गड़बड़ हुआ तो फिर से आ जाता है। ज्ञानी यही तो कह रहा था, 'मैं चौबीस घण्टे की खुराक लेकर चला जाता हूँ।' बस जीवन में ध्यान रखना - जहाँ सत्यार्थ बोध होता हो। सारे द्रव्य तो सब जगह मिल जायेंगे, परन्तु शान्ति की अनुभूति कोटि-कोटि द्रव्य के छोड़ने पर भी मिलनेवाली नहीं है। एक मंत्र से अभिमंत्रित पानी जब गंधोदक बन सकता है, फिर जिनके मस्तिष्कों पर ही मंत्र गूँजते हों, वे भगवान् कैसे नहीं बन सकते हैं? आज से अब प्रवचन सुनने आना तो ऐसे ही सुनने आना कि मेरे कान में मंत्र जा रहा है। **विषय सत्य नहीं है, वासनायें सत्य नहीं हैं, निज में वास करना ही सत्य है।**

आ. कुलभद्र स्वामी श्लोक नं. 300 में कह रहे हैं कि जिसकी आत्मा ही स्वयं के वश में नहीं है, वे दूसरे को वश में क्या कर पायेंगे ? 'मेरा राज्य चलना चाहिये।' तेरा ही तेरे पर राज्य नहीं है तो तू दूसरे पर क्या राज्य करेगा? स्वयं पर चिन्तन करो। जिनका मन ही जिसके वश में नहीं है, वह जगत् को क्या वश करने जायेगा? 'मैं जगत् का स्वामी होना चाहता हूँ।' आप लोग साधु क्यों नहीं बने ? 'माँ-पिता जी ने शादी करा दी, तो परिवार को देखना पड़ा, हमारी ऐसी समस्या थी।' ये झूठी बातें यहाँ पर मत बोलो कि यदि मैं साधु बन जाता तो मेरे माता-पिता का क्या होता ? पिता जी से कहा कि दीक्षा ले लो। महाराज जी! मेरा छोटा-सा बच्चा है, इसका क्या होगा? बच्चे से कहो कि दीक्षा ले लो, तो वह कहता है—अरे महाराज जी! हम इकलौते हैं, हमारे पिता जी का क्या होगा? लोग कितने बढ़िया बहाना बनाना जानते हैं। फिर भी ये सत्य नहीं बोल रहे। माता-पिता ने रोक रखा है, सीधी-सीधी क्यों नहीं बोलते हो कि मोह ने रोक कर रखा है।

इनके ढोंग बताऊँ ? महाराज जी ! अब माता-पिता की बात कैसे टाल सकते हैं ? माता-पिता ने कहा, इसलिये शादी करा ली। तू माता-पिता का बड़ा आज्ञाकारी बेटा है, तो अब अलग रहने क्यों जा रहा है? सीधी-सीधी क्यों नहीं कहता ?

माता-पिता के कारण तुम घोड़े पर नहीं गये थे, तेरे भीतर स्ववशता नहीं थी। अपनी वासना के वश होकर शादी कराने गया था, माता-पिता ने कोई शादी नहीं की। उन्होंने तो अपने कर्तव्य का निर्वाह किया है।

जिसके वश में निज की आत्मा नहीं है, वह अन्य लोगों को क्या वश करेगा? **यदि दूसरे को वश करना चाहते हो तो अपने आप को वश कर लो, तो फिर सारा विश्व तेरे वश हो जायेगा।** जो जीव आत्माधीन हो गया है, जिसने अपनी इच्छाओं को शान्त कर लिया है, इन्द्रियों का शमन कर लिया है, वासनाओं का दमन कर लिया है, कषायों का उपशमन कर लिया है, ऐसे जीव की उपस्थिति में समस्यायें लोप हो जाती हैं। एक संगीतकार को कितने लोग सुन सकते हैं ? टी.वी. के माध्यम से सारा विश्व। उस संगीतकार से पूछना, कि जब तुझे सारा विश्व सुनता है, तब तू किस-किस को सुनता है? जब संगीत वाले ने संगीत सीखा होगा, उस समय किस-किस को और सीखा होगा ? जब एक संगीतकार को लाखों जीव सुन सकते हैं और बड़ी तन्मयता से सुनते हैं, सबकुछ भूल करके उसको सुनने बैठ जाते हैं, उससे पूछना, जब तक सीख रहा था, तब अपने आप में कितना वश था? अपने वश होकरके जो संगीत सीख लेता है, इसके गीत को विश्व सुनने बैठ जाता है। जो अपने वश में अपने आप को सुन लेता है, उसके लिये सारा विश्व सिर टेकता है। आज से कोई रस्सियाँ घर में रखे हों कि मैं इतने लोगों को बाँध कर वश करूँगा, फेंक देना। बेड़ियाँ रखी हों, उनको भी तोड़कर फेंक देना। किसी ने घर में कमरे बना लिये हों कि मैं पकड़-पकड़ कर इसमें भरूँगा, वे कमरे भी तोड़ देना। यदि तुम सारे विश्व को अपने पास रखना चाहते हो तो निज का विश्वास निज के लिये प्रदान कर दो। मैं मुनि क्यों नहीं बन पा रहा हूँ? तुम सीधी-सीधी बात करो कि आपका स्वयं पर स्वयं का भरोसा नहीं था कि मेरे परिणाम क्या होंगे ?

ठण्डी, गर्मी सबकुछ सहन कर लेगा, पर मन वासनाओं में ठण्डा होगा, उसका क्या करेगा? यदि तू ठण्डी भी सहन कर लेता है, गर्मी भी सहन कर लेता है, भूख भी सहन कर लेता है, लेकिन चन्द्रमा की चाँदनी भी झुलसा दे, जब काम के वाणों से बिंधा होता है। **पानी गिरे तो छतरी लगा लेता है, धूप पड़े तो छाता लगा लेता है, ठण्डी लगे तो कोट पहन लेता है, लेकिन जब विषयों की भूख सताती है, विषयों की गर्मी-ठण्डी सताती है, तब न छतरी काम आती है, न कोट काम में आते हैं, न चन्द्रमा की चाँदनी काम में आती है, न चंदन के छींटे काम में आते हैं। यदि**

वासना के काल में शान्ति चाहिये, तो एकमात्र जिनेन्द्र की वाणी ही शीतलता देती है। चन्द्रमा की चन्द्र-रश्मियाँ, गंगा का पानी, चन्दन के छींटे ये शीतलता प्रदान नहीं करेंगे। हे शीतलनाथ स्वामी ! आपका नाम ही इतना महान् है जो शीतलता प्रदान कर देगा।

आज घर जाकर अपनी देवी से कह देना - हे देवी! मैं तेरे वश नहीं हूँ। सत्यता यह है कि न तू मेरे वश है। हम ही अपने वश में नहीं हो पाये, इसलिये तेरी सेवा करनी पड़ रही है। इतना आपने बोला और कहीं देवी ने कह दिया 'स्वामी ! मैं आपको क्षमा करती हूँ। आप जाओ।' तो चले आना। भोजन का विकल्प तो करना ही नहीं, बहुत चौके लग रहे हैं।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।



आत्मसुख ही सुख

आत्माधीनं तु यत्सौख्यं तत्सौख्यं वर्णितं बुधैः।
पराधीनं तु यत्सौख्यं दुःखमेव न तत्सुखम्॥301॥

अन्वयार्थ—(यत् सौख्यं आत्माधीनं) जो सुख आत्माधीन है **(तत्सौख्यं बुधैः वर्णितं)** उसी को बुद्धिमानों ने सुख कहा है **(यत् तु पराधीनं सौख्यं)** जो सुख पराधीन है—इन्द्रियों के विषयों के आधीन है **(तत्सुखं न दुखं एव)** वह सुख नहीं है, किन्तु वह दुःखरूप ही है।

भावार्थ—हे भव्यात्मा! जो सुख आत्माधीन है, उसी को बुद्धिमानों ने सुख कहा है और जो इन्द्रिय-सुख है, वह वस्तुतः दुःख ही है।

॥ सद्-देशना ॥

कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज सारसमुच्चय जी में स्वात्माधीन सुख की व्याख्या करते हुये समझा रहे हैं कि आत्माधीन ही आनंद है। **पराधीन वृत्ति से बड़ा जगत् में कोई क्लेश नहीं है। सबसे बड़ा कष्ट/पीड़ा पर की आधीनता है। दूसरे की आज्ञा में रहना, इससे बड़ा कोई हीनता का साधन नहीं। कितना ही धन तुम्हारे पास हो, वैभव भी तुम्हारे पास हो, परन्तु पर की आज्ञा में रहना पड़ रहा है, यह बहुत बड़ी पीड़ा है।** आपकी जिसकी आधीनता है, उसका एक-एक क्षण का एक-एक शब्द अन्तःकरण को विदीर्ण कर देता है। इस भव से नहीं, अनन्त भव से यह जीव पराधीनता में जिया है। पराधीनता का कारण पर नहीं है, पराधीनता का कारण पर में स्व प्रतीति है। स्वाधीन जीना है तो स्वाधीन जीना पड़ेगा। पर की अनुमति में रहना नहीं चाहते हो, पर की अनुभूति को छोड़ना नहीं चाहते हो। जब तक पर की अनुभूति नहीं छूटती है, तब तक पराधीनता छूटनेवाली नहीं है। जो लोग परानुभूति में हैं, उनको पराधीनता में रहना ही पड़ेगा। जो लोग पर की अनुभूति का रसास्वाद ले रहे हैं, उनको पराधीन रहना ही होगा। स्वाधीन जीवन वही जी पायेंगे जो स्व की अनुभूति का रसपान करेंगे। जो इन्द्रियाधीन हैं, वे सब पराधीन हैं। इन्द्रियों की अनुभूति, इन्द्रियों का ज्ञान, इन्द्रियों का वेदन सब परभूत है, द्वैत्वभूत है। वस्तु तो अद्वैत है। इस धारा में जब प्रवेश करेगा, वहीं आनन्द प्रारम्भ हो जायेगा। वस्तु अद्वैत है, परन्तु रागी का भोग द्वैत्व है। जो रागी

का भोग है, वह पराधीनता का परिपूर्ण समर्थ कारण है। जिसे आप स्वाधीन मानते हो, वह मोह की भाषा है। जिसे आप स्वाधीन मानते हो, वह राग की भाषा है। जिसे आप स्वाधीन मानते हो, वह परास्त होने की भाषा है। हार चुके हो, इसलिये तुमने हार को स्वाधीनता स्वीकार लिया। यदि आप स्वाधीन हो गये, आपका आना स्वाधीन हो गया, आपका सुख स्वाधीन हो गया तो परम योगियों का सुख क्या होगा?

दर्पण में चेहरा देखनेवाला अपने आप को स्वाधीन मानता है और अपने आपको देखना कह रहा है। दर्पण के प्रतिबिम्ब को स्वसमय से प्रयोग कर रहा है कि देखो मैं कितना सुन्दर हूँ। यदि द्वैत्व ही सुन्दर हो गया, तो अद्वैत क्या होगा ? मिश्र ही सुन्दर हो गया, तो एकत्व-विभक्त असुन्दर हो जायेगा। जिसे तुम सुन्दर कह रहे हो, वह सुन्दर तो तुम हो ही नहीं। जिसे दर्पण में देख रहे हो, जिसे दर्पण में निहार रहे हो, जिसे आप दर्पण में निहार कर आये हो, वह आप नहीं हो। **पर को स्व कहना, यह ही मिथ्या बुद्धि है।** दर्पण में स्व दिखने लग गया तो स्वानुभूति में लीन हो किसे देखेगा? पर में निज के दर्शन होने लग जायें, तो निज में निज का क्या होगा? पर में निज का अवलोकन होता ही नहीं है। दर्पण में जो स्वयं को देख रहा है, वह तू स्वयं को नहीं देख रहा है, वह चर्म के पिण्ड को देख रहा है। जिस दिन स्वयं को देखने लग जायेगा, उस दिन दर्पण के पास जाने की कोई आवश्यकता ही नहीं पड़ेगी।

जितने विकारी/व्यभिचारी होते हैं, वे ही दर्पण के पास जाते हैं। बहुत अच्छे से कह रहा हूँ। स्वयं के शरीर को सजाना भी विकार ही है। बोलने का भिन्न विषय है, जीना भिन्न विषय है। ये मोक्षमार्ग बोलने का मार्ग नहीं, जीने का मार्ग है। आप कम-से-कम सत्य को स्वीकार तो कीजिये कि आप अभी मोक्षमार्गी नहीं हो। क्यों ? जब तुझे छतरपुर आना था तो आगे-पीछे कुछ नहीं दिख रहा था, मात्र छतरपुर ही दिख रहा था। रास्ते में कितने पुर मिले थे, आप वहाँ नहीं उतरे। जिसको छतरपुर उतरना था, वह अन्य किसी पुर नहीं उतरा। जिसको चैतन्य पुर उतरना है, वह दूसरे पुर में प्रवेश करेगा क्यों ? जब तक तुम दर्पण देखते रहोगे, तब तक तुम व्यभिचारी ही हो, कोई शंका मत करना। पर के चेहरे को भोगने के लिए आँखें खोल कर देख लेता है। पर के चेहरे को देखने में झिझक भी आयी, लेकिन स्वयं का चेहरा सबके बीच रहकर भोगता है। चेहरा देखने में आनन्द आता है कि नहीं ? अच्छा लगता है कि

नहीं ? लगता है। जो अच्छा लगता है, वही तो भोग है। यदि मृत्यु हो गई, अथवा आयु-बंध का काल आ गया, कहीं दर्पण देखते-देखते जीव चला गया, तो मालूम चला कि संस्कार होने के पहले वह आत्मा उसी शरीर में जन्म ले चुकी थी तो एकसाथ दो शरीरों के संस्कार हो गये। मरण के बाद अड़तालीस मिनट के अन्दर कोटि-कोटि जीव पड़ जाते हैं। वे अज्ञानी लोग हैं जो रात्रि के बारह बजे किसी की मृत्यु हो और दिन के बारह बजे संस्कार करें अथवा दूसरे तीसरे दिन संस्कार करें। कोटि-कोटि जीवों की हत्या साथ में और की जा रही है। इस अन्धविश्वास से अपनी आत्मा की रक्षा करो। देखनेवाले देखने आयेंगे अब। सत्य था, तब तो देखने नहीं आये। सत्य चला गया, मुर्दा देखने को तुम रखे हुये हो। इतनी ही देखने की आकांक्षा थी तो उसके पहले क्यों नहीं देख गये? जब देही सत्ता में ही है, तो उसको देखने की आवश्यकता भी नहीं है। आँख बन्द करेगा तो अपने आप दिखेगी।

भैया! बेटों से बोल देना बेटा! तुम बम्बई में हो, इसका मतलब मुझे ऐसे ही मत रखे रहने देना। मुर्दे को देखकर शिव की याद तो करोगे नहीं। शव को देखकर रोओगे, और-क्या करोगे ? जब रोना है ही, तो बिना शव को देखे रो लेना, लेकिन आप कोटि-कोटि जीवों की हिंसा मत करवाना। शरीर को निहार रहा था, चैतन्यपुरवासी! अचेतन में आनन्द कैसा ? वस्तुस्वभाव की व्याख्या; शब्दों की अनुभूति ले लेना भिन्न विषय है, परन्तु अन्तस् में जाकर निहारना, तब कहना निर्ग्रन्थों से, इन बालों को सजाना क्या? इन्हें उखाड़ कर फेंक दो, पंचमुष्टि केशलोंच कर लो। तूने क्या किया? बाल और बाला को सजाने में तूने अपने को बिगाड़ डाला। बाल और बालाओं के सजाने में ही तूने अपना जीवन बरवाद किया। क्यों मुस्करा रहे हो ? कितने ही काले करा लो, खिजाव लगा करके बाल तो काले करा सकता है, लेकिन आयुकर्म को नहीं बढ़ा सकता। श्मशान तो याद कर रहा है और ये बाल काले करके आ गया। एक निमित्त था, सिर में एक बाल देखा और वैराग्य हो गया। अब ये रागी सोचते हैं कि कहीं दिख न जाये नहीं तो वैराग्य हो जाये। धन्य हो। यमराज का दूत आ चुका है, संकेत था कि अब सफेदी आ चुकी है। अब सफेदी को बुला लो, काला समय गया। जब बाल काले थे, तो वासना भी बहुत काली थी। अब सफेदी आ रही है तो वासना भी कमजोर हो चुकी है। वासना कमजोर हो गई है तो साधना की सफेदी लाओ, पुनः काले करके मत बैठो। इसलिए विवेक से काम लो। किसी की असमय में रात्रि में मृत्यु हो भी जाये तो कम-से-कम प्रातः होते ही संस्कार कर देना चाहिये तो कम ही हिंसा

होगी। आपने एक रात्रि के स्थान पर चार रात्रियाँ व्यतीत की हों तो, और तो क्या, फिर कण्डे लेकर पहुँच गये। वह गया सो गया, कण्डों में अनन्तों को तुम और झोंक कर आ गये। सुन लो, जितनी बार आप कण्डे लेकर गये होंगे, उन सबका प्रायश्चित्त ले लेना। ज्ञानीजीव कण्डों पर बना भोजन नहीं करता और बना भी मत देना। जो मल है, गोबर है, आर्द्र है, तो उसमें जीव उत्पन्न होते हैं। और शुष्क है तो भी जीव उत्पन्न होते हैं। कण्डों में भी घुन लगता है, अनन्त प्राणी हैं। आप सोचो 'गणेश गोबर' के। ये तो लोगों की कल्पना है। गणेश गोबर के नहीं थे, वो तो लोगों ने बना लिये हैं। गणेश तो गणेश ही थे।

नमो वृषभसेनादि-गौतमान्त्य गणेशिने।
मूलोत्तरगुणाढ्याय, सर्वस्मै मुनये नमः ॥3/कात.॥

आदिनाथ से भगवान् महावीर स्वामी पर्यन्त जितने तीर्थंकर भगवन्त हुये हैं, उन सबके गणेश थे। गणधर परमेष्ठी। गणेश = गण + ईश। गण यानि समूह। **जो समूह के स्वामी हैं, उनका नाम है गणेश।** गणधर परमेष्ठी गौतम स्वामी तक चौदह सौ बाबन गणधर परमेष्ठी हुये। इसलिये ज्ञानियो! वस्तुव्यवस्था बहुत व्यवस्थित है। जिसकी राख होना है, उसमें तेरा कितना राग चल रहा है? कभी श्मसान घाट भी होकर आया करो। चमकते चेहरों की राख देखकर आया करो तो मालूम चलेगा कि जब सबका ऐसा होना ही है, तो-फिर मैं उस जीव पर लक्ष्य क्यों न रखूँ जिसकी कभी राख नहीं होना है? गोबर हो जाये तो आनन्द आ जाये। संस्कृत में वर यानि श्रेष्ठ और गो यानि वाणी। जो तीर्थंकर की श्रेष्ठ वाणी को झेलते हैं, वे गणधर, गो-वर-गणेश। आप खोज करो, कहाँ विपर्यास होता है। **लोक में जो प्रसिद्ध होता है, उसमें कुछ रहस्य होता है।** गोवर के ही गणेश क्यों ? लोगों ने गोवर का अर्थ गोबर लगा लिया। 'गोबर गणेश' का अर्थ 'गाय का मल' मत लगा लेना। कब बन रहे गो-वर-गणेश?

परवस्तु को देख रहे हो, राग ही हिंसा है। मेरे भावों की कितनी हिंसा हो रही है? कितना ही विरत होगा, देख रहा है तो बिना आसक्ति के देखा कैसे ? आपने कितना समय दिया? उसके लिये एक दो मिनट नहीं दिये। बाल व बालाओं को सँभालने के लिये कितना समय दिया है ? जिस दिन सत्य का बोध हो जायेगा, उस दिन से न बाल सजायेगा न बाला। लोग बाल क्यों सजाते हैं? उसको स्वयं तो दिखते ही नहीं हैं। स्वयं को तो नहीं दिखते, क्या दूसरों को भी नहीं दिखते? **कुछ लोग स्वयं**

के राग के लिये जीते हैं, कुछ लोग स्वयं पर, पर का राग रिझाने के लिये जीते हैं। तुम्हारे बाल स्व-पर घाती हैं। स्व का राग चल रहा है, सो निज के भावों की इच्छा हो रही है, तेरे सुन्दर बालों को देखकरके दूसरे प्रभावित हो जायें, वे तेरे को रागरूप देखने लग जायें, सो तूने दूसरे का भी घात किया है।

हे अहिंसा महाव्रत! आज समझ में आया कि मुनियों को अहिंसा महाव्रती क्यों कहा जाता है। ये केश मत सजाओ, केशलुंचन कर लो। हो सकता है कि कोई यही सोचे कि ये क्रिया है। ये क्रिया मात्र नहीं है, ये भी अहिंसा महाव्रत के अन्तर्गत है। इनमें बहुत राग होता है। एक बार जीव पानी छानने के छन्ने को तो भूल जाता है, लेकिन कंघी उसके पास जरूर मिल जायेगी। यमराज मुस्करा रहा है कि मेरा मित्र कब आ रहा है और ज्ञानी कहता है कि एक बार मेरी कंघी और कर दो। हे जीव! अंतिम श्वास के समय में भी तू बाल सेट कराने के भाव रख रहा है, उस भाषा का प्रयोग कर रहा है। **अंतिम समय में बाल न सँभाल करके भव सँभाल लेता, तो तू इस भव से पार हो जाता।** इस युग में तो ऐसा लगता है कि जो कुछ है सब बाल हैं। इन बच्चों से पूछो, कोई सींग खड़े करा रहा है। इन बेचारों को पता नहीं है कि **जब पुण्य खड़ा हो जाता है तो बाल खड़े होने लगते हैं।** इसलिये इनको नीचे कर लो। जब-जब जीव के अशुभ दिन आते हैं, ध्यान रखना, कितने ही सुन्दर कपड़े उसको पहना दिये जायें, कितने ही तेल-फुलेल लगा ले वह व्यक्ति, लेकिन बालों में सूखापन आ जायेगा और खड़े होना प्रारम्भ हो जायेंगे, तब समझ लेना कि तुम्हारे घर से पुण्य भागने वाला है। पानी डाल रहा है, तेल डाल रहा है, तब भी जिनके बाल खड़े होने लग जायें और शुष्क होने लग जायें, ये सूचना है— समझ लो कि अशुभ दिन आने वाले हैं। तो क्या करना चाहिए ? दिन अशुभ आने वाले हैं तो सब काम छोड़ देना चाहिए। भगवान् का नाम लेने बैठ आओ। ये निमित्त-शास्त्र बोल रहा है। बाल उनके सूखते हैं जिनके भाव सूख जाते हैं। भाव सूखे बिना भाग्य सूखता नहीं है। भाग्य सूखा, इनका मतलब है कि भाव सूख गये। तभी तो बात सूखे हैं। जड़ें सूख रही हैं, पत्ते सूख रहे हैं, तना सूख रहा है, इसका मतलब समझिये कि जमीन का पानी सूख चुका है। जमीन में आर्द्रता है तो सब हरा-भरा दिखेगा।

जिसका पुण्य का पानी ही सूख चुका है, उसका संयम सूखेगा, उसके परिणाम सूखेंगे। सब सूख जायेगा। सबकुछ हरा करना है तो पुण्य के पानी को सुरक्षित रखो।

स्वाधीन जीवन जिओ, **पराधीन जीवन जीना बन्द कर दो। निहार लो स्वयं के भीतर कि मैं स्व के लिये कितना जी पा रहा हूँ। जिसे तुम स्व का जीवन कह रहे हो, वही पर का जीवन है। पूरा समय पर के लिये लगा रहा है, तो स्वाधीन जीवन कैसा?** ज्ञानी कह रहा था कि अब तो स्वतन्त्र हो गये हैं, अपने घर में स्वतन्त्र रहते हैं। मेरे मित्र! तू स्वतन्त्र हुआ कब है? अभी भैया के मकान में रहता था तो सोचता था कि चलो, भैया का मकान है। अब तो और-पराधीन हो गया, एक मकान में और विध गया। व्यक्ति जिस-जिस को स्वाधीन कहता है, परमार्थ दृष्टि से तो और-पराधीन हो गये। सुख लगता अवश्य है, परन्तु जैसे मादक द्रव्य का सेवन करने वाले पुरुष को इतना गहरा नशा होता है कि उसको कहीं लग भी जाये तो महसूस नहीं होता है; ऐसे-ही इस जीव को कषाय का इतना मद होता है कि जितने इस शरीर के दु:ख हैं वे सब उसको समझ में नहीं आते। शरीर को सुखभूत मानता है। जैसे-जैसे मोह का नशा उतर जायगा, फिर समझ में आता है कि ये सब दु:खभूत हैं। **अद्वैत में जाना बहुत कठिन है, क्योंकि अनादि का अभ्यास द्वैत जीवन का है।** मैं एक हूँ, शरीर सहित मैं हूँ, द्वैत। मैं अद्वैत हूँ। ब्रह्म-अद्वैत जैसा नहीं हूँ, स्वतन्त्र अद्वैत हूँ। स्वतन्त्र अद्वैत कैसा ? नख से शिख तक मैं नहीं, मेरे में नख शिख भी नहीं है। जो नख-शिख की मिश्रधारा मैं चल रही है, यह द्वैत धारा है, अद्वैत नहीं है। अद्वैत होगा तो न नख है न शिख। जब नख ही नहीं है, तो निकालूँ किसको ? जब शिख ही नहीं है, तो छाटूँ/सँभालूँ किसको ? मैं तो जो हूँ, सो हूँ। अद्वैत हूँ। इसमें प्रवेश पाना बहुत कठिन है। इसमें कुछ करना नहीं पड़ता और वह कितना कठिन है जिसमें सबकुछ करना पड़ता है फिर भी वह सरल लगता है।

जिस विद्या का व्याख्यान इस समय कर रहा हूँ, यह गूढ़ विद्या सामान्य लोगों की विद्या नहीं है, राजविद्या है। ये राजयोग है। लोग भोगों में राजयोग लगाते हैं। **जितने श्रेष्ठ पुरुष होंगे, वे ज्ञानात्मक शैली में जीते हैं।** चक्रवर्ती भरत से पूछ लो, वे राज्य करते हुये भी एकत्व का ध्यान किया करते थे। घण्टों-घण्टों ध्यान करते थे राम के भैया भरत। चौदह वर्ष तक सिंहासन को खाली रखे रहना, ये कोई सामान्य व्यक्ति की बात नहीं है। इतिहास ये कह रहे हैं—पिता को राज्य करते-करते समय अधिक हो गया, वह अभी भी बूढ़ा नहीं हुआ, जाने वाला नहीं है, तो बेटे ने पिता को ही उठा करके जेल में पटक दिया कि आप यहाँ रहो, अब मेरे दिन कब आयेंगे ? औरंगजेब

ने पिता को ही किले में रख दिया। बेचारा शाहजहाँ इतना रागी जीव था कि किले में बैठा-बैठा ताजमहल को देखता रहता था जहाँ उसकी पत्नी को दफनाया गया था। अब कल्पना करो, एक भाई दूसरे भाई की सम्पति को छीनने के लिये कमर कसे हुये है और एक वो भाई था जो चौदह वर्ष तक सिंहासन पर खड़ाऊँ रखे रहा, क्योंकि राज्य तो राम का ही है। जैसे-ही राम अवधपुरी वापस आये, भैया! राज्य सँभालो। श्रीराम कहते हैं, भाई! पिता ने आपको राज्य दिया है। तब भरत कहते हैं—मैंने आपकी और पिता की आज्ञा का पालन कर लिया है। अब मैं उस पर राज्य करना चाहता हूँ जिस पर मैंने आज तक राज्य नहीं किया है। मैं अद्वैत परमब्रह्म पर राज्य करूँगा, आत्मतत्त्व पर राज्य करूँगा। मैं इस राज्य का राज करना नहीं चाहता हूँ, मैं स्वराज्य में ही रहना चाहता हूँ।

स्वराज्य का जो आनन्द है, वह पर राज्य में कहाँ है। स्वराज्य को देखा तो भरत जंगल की ओर चले गये। रविषेण स्वामी 'पद्मपुराण' में लिखते हैं—सब मनाते-ही-मनाते रह गये, पर भरत चले गये उस ओर जहाँ मनाया नहीं जाता है, मात्र मन में आ जाता है। उस शिवपथ की ओर चल दिये, दिगम्बरी दीक्षा ले ली। वैरागी कौन था ? इस विद्या को राजयोग क्यों कहा? **राजा होने पर भी जिसकी दृष्टि आत्मतत्त्व पर लगी हो, उस अध्यात्म विद्या का नाम राजविद्या है। सामान्य लोग इस विद्या में नहीं पहुँच सकते हैं।** 'लात जाओ, धरत जाओ, मरत जाओ,' वे इस विद्या में जायेंगे क्या ? जीवन में जहाँ तक बने उतना कमाना जितना जीवन जीने के लिये आवश्यक है, लेकिन बहुत सारा द्रव्य बैंकों में नहीं भेजना। रहस्य बताऊँ क्या ? ऐसा कौन पुरुष होगा जो दूसरे की सम्पति की रक्षा करे? कोई किसी की सम्पत्ति की रक्षा नहीं करता। आज के युग में बैंक में पैसा रखा हुआ है। ज्ञानी सोचता है कि मैं हिंसा ही नहीं करता हूँ, बैंक से ब्याज आता है उससे अपना जीवन जीता हूँ। कोई व्यापार नहीं करता, कोई हिंसा नहीं करता हूँ।

मेरे मित्र! तेरा बेटा बेकाम में पैसा कमाये, तू उसका उपयोग करेगा तो उसका दोष तुझे लगेगा कि नहीं लगेगा? तेरे पास पैसा है, तूने बैंक में डाल रखा है, उस पैसे से शासन या बैंक का स्वामी मुर्गी पालन केन्द्र, मछली पालन केन्द्र को लोन दे रहा है, कत्लखाने के लिये दे रहा है, उस द्रव्य से जो पैसा ब्याज का घर में आ रहा है, उसका पाप तुझे लगेगा कि नहीं लगेगा ? इसलिये मंदिरों के ट्रस्टियों से भी मेरा

कहना है कि यदि डेरा पहाड़ी में पैसा बढ़ जाये तो आप सिटी के मंदिरों में लगा देना, लेकिन बैंक में रख करके समाज के दान को मुर्गीपालन केन्द्र में मत लगवाना। **अध्यात्म के रहस्य को तो समझो। अध्यात्मविद्या प्रवेश कर जाये और आचरण न सुधरे, ऐसा हो नहीं सकता है। आचरण में अन्तर नहीं आ रहा है तो मात्र शब्द रट्टू हो, तुम्हारे पास अध्यात्म किञ्चित् भी नहीं है।** बैंक की जगह तुम भूमि खरीद कर डाल दो, वह कौन उठाकर ले जायेगा। गाड़ी में चलनेवालों की अपेक्षा पैदल चलनेवाले को ज्यादा ज्ञान होता है। काँटा कैसे चुभता है, गर्मियों के थपेड़े कैसे लगते हैं, उसका ज्ञान ए. सी. गाड़ियों में चलने वाले को होगा क्या ? नहीं। जब पैदल विहार करता है, तभी पता चलता है कि वस्तुस्वरूप क्या है ? तुमने कितने ही सुन्दर-सुन्दर कपड़े पहन लिये हों, सब आनन्द लूट लिया हो, लेकिन यदि एक बार मुनि बनने का आनन्द नहीं लूटा, तो कुछ नहीं लूटा। खुले बदन हर मौसम का आनन्द बिल्कुल शुद्ध। आपके पास हवा भी आयेगी तो पहले पसीने से युक्त कपड़े से टकराकर बीमारी ही देगी, जबकि यहाँ हवा भी सीधे आयेगी। सूर्य की किरणें भी सीधे आयेंगी। **आपको योगा करना पड़ता है, जैन योगियों के योगा प्रतिक्षण/प्रतिपल होता है।** आपने कितने आसन बदल दिये, जबकि ये मुनिराज एक ही आसन पर बैठे हैं। योगासन हो रहा है। जैसा 'मूलाचार' में लिखा है, श्रमण वैसी-ही प्रवृत्ति करता है तो उसका जीवन ही आयुर्वेदशास्त्र है।

धन्य है श्रमणों के लिए। यदि करवट भी बदलना है तो कोमल पिच्छिका से प्रमार्जन करेंगे। सोते समय प्रमार्जन करेंगे तब तक नींद ही गई। जो सोते हुए जागते रहे, यह जागरुकता का जीवन है। धोखे से किसी साधु ने करवट बदल दी तो सुबह प्रायश्चित्त लेते हैं। आड़े-तिरछे कैसे भी नहीं सो सकते। दो-दो, तीन-तीन, पाँच-पाँच दिन के अन्तराय आ आते हैं साधुओं को, तब भी सुख से जीवन जीते हैं। कैसे भोजन करें? कैसे भाषण बोलें? ऐसा नहीं है कि जो मन में आया कह दी। नहीं। इन आँखों मात्र से देखकर चलेगा तो साधु हो ही नहीं सकता। **रागी आँखों से देखकर चलते हैं, साधु आगम को देखकर चलते हैं।** इसलिए कुन्दकुन्द आचार्य ने 'प्रवचनसार' जी ग्रन्थ में बड़ी सुन्दर गाथा लिख दी। जो मोह से निवृत्त हो गया, वह जगत् से निवृत्त हो गया। जिसने जान लिया है कि जीवन जीने के लिए बहुत नहीं चाहिए, पेट भरने के लिए बहुत नहीं चाहिए, पेटी भरने के लिए बहुत-कुछ चाहिए। पेट भी भर गया, पेटी भी भर गई, तो बैंकों की ओर दौड़ रहा है। जीवन जीने के लिए बहुत नहीं चाहिए।

आनन्दमय जियो, यह जीवन है कि हाय-हाय में जियो, क्या यह जीवन है? दो हाथों से कमाते हैं फिर भी एक हाथ से खाने को शांति से नहीं मिलता। साधु एक हाथ से भी नहीं कमाते फिर भी दोनों हाथों से शांति व आनंद से खाते हैं। शांति व आनंद से खाने के लिए मेरे साथ आना, अन्यथा घर पर रहना। सत्य है, कितनी ही सुन्दर गाड़ी खरीदकर लाओ, चलाओगे नहीं तो जंग लग जायेगी। इतने सुन्दर-सुन्दर साधु हैं, इनको चलायेंगे नहीं तो इनको जंग नहीं लग जायेगी?

जंगलों में वनों में जब योगी होते थे और श्रावक अपना शहर छोड़कर आया करते थे, वह दृश्य यहाँ दिखाई दे रहा है। वन भी हैं, पर्वतमालाएँ भी। साधु जो है आँखों से देखकर नहीं चलता। आँखों का प्रयोग करता है देखने में, परन्तु देखता है आगम से। कुन्दकुन्द भगवन्त ने लिखा है—

आगमचम्खू साहू इंदियचक्खूणि सव्वभूदाणि।
देवा य ओहिचक्खू सिद्धा पुण सव्वदो चक्खू॥234॥

साधु का नेत्र कोई है तो आगम है, सामान्य लोगों का नेत्र आँख है, देवों का नेत्र अवधिज्ञान है, सिद्धों का नेत्र केवलज्ञान है। वे सर्वाङ्ग से देखते हैं। जब आगम-नेत्र से देखना प्रारम्भ हो जाता है, तो सारी आँखें खुलना प्रारम्भ हो जाती हैं। एक बार भीतर से यदि देख लिया आगम को, तब समझ में आता है कि वस्तुस्वरूप कैसा है।

जीव निज की कमजोरी से सँभल पाये या ना सम्भल पाये, परन्तु समझ तो जाता है। आगम समझ कर समझ जाता है कि कमी कहाँ है और यदि समझ जाता है कि कमी कहाँ है, तो एक दिन ऐसा अवश्य आयेगा कि समझ भी जाता है और कमी को दूर भी कर लेता है। इसलिए समझना तो चाहिए। इस भाषा का प्रयोग कभी मत करना कि जब सुधरते नहीं हैं तो प्रवचन क्यों करना? सुधरते नहीं हैं तो पढ़ने की क्या आवश्यकता? समझते हैं नहीं, तो स्वाध्याय क्यों करते हैं ? तुम्हें पता नहीं है, यहाँ चारों ओर खेती भी तो है। एक बार में ही बाग में वह नहीं उगता। पहले बखरता है जो उगता है, फिर बखरता है, फिर उसको सम करता है, फिर इतना करने के बाद फिर से पानी डाल देता है, फिर जोतता है। एक गेहूँ उगाने के लिए कितनी मेहनत करता है। जब गेहूँ उगाने के लिए खेत को कितना उवगाह करना पड़ता है तो जिसमें भगवानात्मा प्रकट होगी उस भूमि को कितना उवगाह करना पड़ेगा। पानी डालने के

बाद क्या सीधा ही बीज डाल दिया जाता है? जमीन सूखती है, किसान खेत जोतता है, बखरता है, फिर कभी बीज छोड़ता है, तब अंकुरण होता है। ऐसे-ही यह जिनवाणी का पानी है, हृदय की भूमि पर तुमने डाल दिया है, इसको भीतर जाने दो, फिर खेत जोतना भेदविज्ञान से, और अणुव्रतों से बखरना, महाव्रतों का बीज डालना, फिर मोक्ष का फल मिल जायेगा।

जीवन में पूर्व में भूल भी की हों तो ऐसा मत सोचना कि हाय मैं तो ऐसा पाप कर चुका हूँ। पाप कर चुके हैं, अब नहीं करूँगा, उसका प्रायश्चित्त करूँगा। उसी को याद करते रहोगे तो और-संक्लेषता बढ़ेगी। जो हो चुका है, उसका प्रायश्चित्त, प्रत्याख्यान। आगे नहीं करूँगा। आज से स्वाहा। पाप आपने किया है, तो सुधारेगा कौन? स्वयं ही। आज से ध्यान रखना, जो बैंकों का विचार कर रहे थे कि मैं विदेशों की बैंकों में भेजूँगा, वे अपना सोच ठीक कर लें। मात्र यहाँ बैठे-बैठे मुस्कुरा लेना कि मेरा विदेश में भी रखा है, परन्तु भेज ही पाओगे, भारत को खोखला करा दोगे, लेकिन लेकर आ नहीं पाओगे, लेने जाओगे। मर ही जाओगे, लाने की आवश्यकता नहीं है। खाने को तो मिल ही रहा है, इसलिये ऐसा मत करो, अपने घर की बात घर में ही रहने दो।

जब काँधे पर लेकर जा रहे थे अपने माता-पिता को श्रवणकुमार, एक ऐसा क्षेत्र पड़ा कि कहने लगे कि मैं अकेला और दोनों मेरे कंधे पर? अब मैं नहीं लेकर जाऊँगा। माता-पिता कहते हैं, 'बेटा श्रवण कुमार! ठीक। मत लेकर चलो, लेकिन इतना तो कर सकते हो कि इस अटवी से बाहर निकाल दो, फिर आप छोड़ देना।' ठीक है। जैसे-ही अटवी से बाहर निकाला, बेटे के भाव बदल गये—पिता! क्षमा करो, माँ! क्षमा करो। मेरा धर्म, मेरा कर्त्तव्य है कि आपकी यात्रा कराऊँ। मैंने क्या सोच लिया? 'बेटा! तेरा दोष नहीं है।' जैन साधु चौके में आहार लेते हैं। **जहाँ द्रव्य शुद्धि, भाव शुद्धि, क्षेत्र शुद्धि, काल शुद्धि होती है, उसका नाम चौका है।** इसलिए तो चौके में आहार करते हैं, किचन में नहीं करते हैं जहाँ किचकिच होता रहता है। बेटा! यह क्षेत्र का प्रभाव था। जिस क्षेत्र में भाव बदले थे, उस क्षेत्र में किसी बेटे ने माता-पिता का घात किया था, वे अशुभ वर्गणाएँ भरी हुई थीं। जैसे-ही क्षेत्र बदला कि भाव बदल गये। ऐसे-ही घर में झगड़ा बढ़ जाये तो यहाँ प्रवचनसभा में आ जाया करो। क्षेत्र बदलोगे तो भाव बदलेंगे। जो बहुत रोगी हो, ज्यादा दवाइयाँ खाओ और उसी कमरे में दवाइयाँ रख दो।

अरे भाई! तुम्हें पता होना चाहिए कि जहाँ जो वस्तु होना हो उसका उपयोग नहीं होना चाहिए। रोगी के कमरे में दवाई नहीं रखना चाहिए, लेकिन होता यही है कि जहाँ रोगी होते हैं वहीं दवाई भरकर रख देते हैं और लोग भी वैसे ही आते हैं जो चेहरा बनाते हैं कि बहुत बीमार हो। मेरे प्रसन्न होने से तुम लोग खुश हो रहे हो या नहीं ? मैं ही चेहरा बनाकर बैठ जाऊँ तो तुम भी ऐसा ही चेहरा बनाओगे। **परिणामों की विशुद्धि से बड़ी दवाई जगत् में नहीं है। तन छूट भी जायेगा, परन्तु चारित्र नहीं छूट सकता और विशुद्धि चली गई तो तन भी गया, धन भी गया और धर्म भी गया।** अब नहीं जाना चीरा-फाड़ी करवाने। पागलपन नहीं करना। सुख से जीना हो तो जी लो, जाना तो है ही। वहाँ चीरा-फाड़ी होते-होते चला गया तो क्या फायदा ? यहाँ णमोकार पढ़ते-पढ़ते जायेगा तो अगले भव में सुधर भी जायेगा।

भोजन चाहिए तो देखना पड़ता है, अनन्त सुखों की तो बात ही कुछ-और है। सब समझ रहे हो जो मैं कह रहा हूँ। यहाँ ही तो मुस्कुराते हो, घर जाकर तो रोना ही है। वहाँ तो लड़के को पुचकारेगा, लड़के की माँ को पुचकारेगा। हँसो मत, सब एक ही हो, चोर-चोर मौसेरे भाई हो। सबकी दशा एक-सी है। मानता नहीं है जीव। एक वे हैं जो दुनियाँ को योग सिखाते हैं, लेकिन योगी नहीं बन रहे। साथ-साथ चलने वाले जब एक-दूसरे को गुरु जी कहते हैं, तो अरे भाई! जब 'गुरु' संज्ञा लग ही गई है, तो पंचगुरु संज्ञा में और चला जा। इस पर्याय के ही गुरु बहुत हैं।

भगवत् गुणभद्राचार्य ने श्लोक क्रमांक 301 में कहा कि जो इन्द्रियसुख है वह पराधीन है, वह दु:ख ही है। कोई यह कहे कि मैं राजा बनकर सुख भोगूँगा तो वह भी लिख दिया कि, महा तेजस्वी राजाओं का राजा चक्रवर्ती भी क्यों न हो, **पराधीन सुख कष्ट ही देने वाला है।** जब राजा को भी दु:ख ही होता है, तो हे जीव! जो आत्माधीन सुख है, उसको पाने का प्रयास करो। उस आत्माधीन सुख को देखना हो तो भरत चक्रवर्ती को देखो। लोग कहने लगे कि भरत चक्रवर्ती घर में वैरागी कैसे? दूसरे की प्रशंसा सुन लेना बहुत कठिन होता है। चक्रवर्ती की प्रशंसा कर दी एक आदमी ने, एक सज्जन कहने लगा कि होता है क्या कि घर में बैठकर भरत वैरागी हो? उसको बुलाया चक्रवर्ती ने और तेल भरकर एक कटोरा दे दिया कि मेरे अन्त:पुर में जाना है, जहाँ रानियाँ रहती हैं। छियालीस हजार रानियों के अन्त:पुर में जाइये, और देखकर आइये कि कौन-सी रानी क्या कर रही है, मेरी पट्ट महिषी सुभद्रा को देखकर

आओ, वह अपना शृंगार कैसे कर रही है। परन्तु यह ध्यान रखना, यह तेल का कटोरा है, इसकी एक बूँद भी जमीन पर न गिरे। तेरे पीछे एक सैनिक रहेगा नंगी तलवार लेकर। जैसे-ही तेल गिरेगा, तेरा सिर निकाल दिया जायेगा। बेचारा अब फँस गया। वह कटोरा लेकर गया। उसे न सुभद्रा दिखाई दे रही थी, उसको तो लग रहा था कि कटोरे में से बूँद न टपक जाये, अन्यथा उधर वो टपकी इधर मेरा सिर टपका। पूरे रनवासे में बेचारा जनमासे की चाल में चला गया। जैसे जनमासे में चलकर गये थे, ऐसे मुनि बनकर चल लेता, तो तेरा मोक्ष हो जाता। जनमासे में नीची निगाह करके जा रहा था, ठीक है।

मुनियों को नीचे देखकर क्यों चलना पड़ता है? जब संसार की एक नारी से सम्बन्ध करने गया तो नीचे देख-देखकर जा रहा था कि कैसी होगी? फिर जो मुक्तिवधू से मिलन करने जा रहा हो, तो नीचे देखकर क्यों नहीं चलेगा? बेचारा घूमकर आ गया और फिर चक्रवर्ती के सामने खड़ा हो गया। पूछते हैं, 'क्यों, सुभद्रा क्या कर रही थी?' वह बोला 'स्वामी! पहले कटोरा उठवा लो, फिर बात करते हैं। स्वामी! मैंने कुछ नहीं देखा। एक दृष्टि गर्दन पर थी और एक दृष्टि कटोरे पर थी। क्या करूँ, दो ही आँखें थीं। 'ज्ञानी! जब तू कटोरे को देख सकता है और पूरे रनवासे में घूमकर आ गया, ऐसे-ही हे ज्ञानी! जब मैं स्वरूप की ओर निहारता हूँ तो मुझे संसार का कुछ दिखाई नहीं देता।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।



स्वाधीन सुख ही सुख है

पराधीनं सुखं कष्टं राज्ञामपि महौजसां।
तस्मादेतत् समालोच्य आत्मायत्तं सुखं कुरु॥302॥
आत्मायत्तं सुखं लोके परायत्तं न तत्सुखं।
एतत् सम्यक् विजानंतो मुह्यन्ते मानुषाः कथं॥303॥

अन्वयार्थ—(महौजसां राज्ञां अपि) महान् तेजस्वी राजाओं की भी **(पराधीनं सुखं कष्टं)** पराधीन सुख कष्ट का देनेवाला है **(तस्मात् एतत् समालोच्य)** इसलिए ऐसा भले प्रकार विचारकर **(आत्मायत्तं सुखं कुरु)** आत्माधीन अतीन्द्रिय सुख के लिए प्रयत्न करना योग्य है। **(लोके आत्मायत्तं सुखं)** इस लोक में स्वाधीन सुख है वही सुख है **(परायत्तं तत् सुखं न)** पराधीन सुख 'सुख' नहीं है **(एतत् सम्यक् विजानन्तः)** ऐसा भले प्रकार जानते हुए **(मानुषाः कथं मुह्यन्ते)** मनुष्य क्यों इन्द्रियसुख में मोह करते हैं?

भावार्थ—हे भव्यात्मन्! आत्मसुख ही सुख है, इन्द्रियसुख सुख नहीं है, अतः प्रयत्न पूर्वक स्वाधीन सुख प्राप्त करने का पुरुषार्थ करो।

॥ सद्-देशना ॥

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज सारसमुच्चय जी में भूतार्थ सुख की विवेचना करते हुये समझा रहे हैं। सत्य का बोध तभी सम्भव है जब आत्मा का शोध प्रारम्भ होगा। **जब तक आत्मा में शोध नहीं है, तब तक सत्य का बोध नहीं हो सकता। हित करने की आकांक्षा है तो विश्व में ऐसी कोई शक्ति नहीं है जो इस जीव का अहित कर सके।** यदि हित करने की आकांक्षा है तो ब्रह्माण्ड में ऐसी कोई शक्ति नहीं है जो आत्मा का अहित कर सके। जीव बुद्धिपूर्वक अहितभूत द्रव्य का रस लेता है। हितभूत द्रव्य के रस पर दृष्टि चली जाय तो कल्याण हो। एक समय में एक का ही आनन्द आता है। जहाँ दोलायन गति है, वहाँ शंकित भाव है; शंकित भाव में अशान्त परिणाम है। **जो निर्णय आपके मस्तिष्क में होता है, आप वही करते हो।** गुरु-मन भी एक बार कहता है कि यह उचित नहीं है। सत्य को सूचित करने वाला भी तेरे

पास है। पर मोह के वश कहता है कि चलो, कुछ नहीं। सत्य है, बहुत ठीक नहीं है। विश्वास का घात करानेवाला कोई है तो 'चलो, कुछ नहीं'। सत्य से दूर रखनेवाला है–'चलो, कुछ नहीं'। लोभ से ग्रसित करानेवाला है–'चलो, कुछ नहीं'। परन्तु वह नहीं समझ पाता है कि तेरा शब्द 'चलो, कुछ नहीं' वह कितने हृदयों को ठेस दे चुका है।

मेरा विश्वास है कि ज्ञानी अपनी दुकान पर कोई अभक्ष्य वस्तु नहीं बेचेगा। ब्राह्मण पुत्र के मन में भाव था कि मैं निरामिष द्रव्य का ही सेवन करूँगा और इस बात के लिये सबसे अच्छा महावीर का भक्त मिलेगा। महावीर के भक्त के लेवल को ले करके वह बेचारा ज्ञानी की दुकान से सामग्री खरीदता है, परन्तु एक बार मन करता है कि देख तो लूँ। उसमें भूरा चिह्न लगा दिख गया। उस समय उस ब्राह्मण पुत्र का मन क्या कहेगा? 'अब मैं किसके द्वारे जाऊँ?' जिस नाम के आगे जिन-भक्त लिखा हो, उसने ही मुझे ठग लिया। मेरे मित्र! भीख माँग कर खा लेना, लेकिन अधिक मुनाफा होगा इसलिये किसी के विश्वास का घात करने के लिये अशुद्ध द्रव्य दुकान पर रखने का विचार कभी मत करना। व्यापार ही नहीं देखना चाहिये, विश्वास भी देखना चाहिए। आपको मालूम नहीं है कि आस्था कितनी महान् होती है, धन महान् नहीं होता। यह सत्य घटना है इसी छतरपुर की।

कोई व्यक्ति सोचकर आया कि चलो महाराज जी के दर्शन करेंगे, व्यर्थ के कीचड़ से बचेंगे, नालियों में नहीं लोटना पड़ेगा, हम जिनवाणी की गंगा में अवगाहन करेंगे। ऐसा विचार करके वे नगर छोड़कर डेरा पहाड़ी आ गये। यहाँ पर आपने पर की निन्दा-आलोचना की। निन्दा की पिचकारी फेंकना प्रारम्भ कर दी तो वह श्रावक क्या सोचेगा? इससे अच्छा तो यह था कि नाले के कीचड़ में वस्त्र खराब होते उसको तो मैं पानी से धो लेता, यहाँ तो मेरा अन्तःकरण खराब हो गया। **मित्रो! तुम्हारे मन में कितनी ही कषाय भरी हो, लेकिन व्याख्यान के काल में कषाय नहीं बोलना, सत्य ही बोलना। कषाय आपका निजी विषय है, विकार आपके निजी विषय हैं, लेकिन वस्तु-तत्त्व की गवेषणा अर्हन्त की वाणी का विषय है।**

मोह से ग्रसित हुआ प्राणी भूतार्थ पर आँख ही नहीं ले जाता। भूतार्थ यानि सत्यार्थ। भूतार्थ पर दृष्टि ही नहीं जा रही है, अभूतार्थ का ही जीवन जी रहा है, उसी में मग्न है और इतना गहन मग्न है कि द्वैत्व में ही अद्वैत दृष्टि जा रही है। जिसने जीवनभर

पूड़ी खायी है, उस व्यक्ति को नहीं है मालूम कि वास्तव में आटे का स्वाद क्या है ? क्या पूड़ी आटे का स्वाद है? नहीं। यदि आपको विश्वास न हो तो आज पूड़ी और एक मुट्ठी आटा लेकर बैठना। प्रेक्टीकल करके देख लेना, फिर मालूम चलेगा-ओ हो! मैंने पूड़ी को आटे का स्वाद मान लिया है। आप पूड़ी की स्निग्धता से अपरिचित रहे और घी में आप आटे की रूक्षता से अपरिचित रहे, आटे में घी की स्निग्धता से अपरिचित हो, इन दोनों के मिश्रण का नाम पूड़ी चल रहा है, लेकिन आपको पता ही नहीं है कि शुद्ध घी का स्वाद क्या है और शुद्ध आटे का स्वाद क्या है? जब द्वैत्व में लवलीन हो, तो राग और द्वेष के रस का वेदन कर रहे हो, तो राग द्वेष जिसमें हो रहा है, उस आत्मा का स्वाद क्या है? वह तभी संभव है जब राग-द्वेष को अलग कर दो। तब देखो कि शुद्ध आत्मा का स्वाद क्या है? जब कड़ाही में चिकनई हो जाती है, तो माँ कितना ही माँजे, पाउडर से अच्छा मँजेगा नहीं। कड़ाही में जब चिकनई अधिक हो जाये तो उसमें आटा डाल दो, तो पूरा घी शोख लेगा, और कसार बन जायेगा। दो लाभ, कड़ाही भी साफ हो गई और आटे की पन्जीरी भी बन गई। अब इतना विवेक तो होना चाहिये। बुद्धि चले तो तब काम बने। कड़ाही भी साफ हो गई और घी भी बरबाद नहीं हुआ। कोई अज्ञानी (बिना विवेक की) माँ होगी, वह तो उसमें मिट्टी डालेगी। घर कैसे उजड़ते हैं? ऐसे उजड़ते हैं। यह अनुभव करके देखो। चिकनई की कड़ाही रख देना और कहना 'बेटी! इसको साफ करके आओ।'

जब किसी की शादी होने को हो, आप लड़की देखने जाते हो, तो विवेक से काम किया करो, ऐसे-ही मत देख आया करो। यदि वह सीधी मिट्टी डालती है तो सीधे घर लौट आना, नहीं-तो वह तेरे घर को मिट्टी कर देगी। इतना घी उसने व्यर्थ में मिट्टी में मिला दिया। वही बहिन यदि मिट्टी की जगह आटा डालती होगी, तो समझ लेना कि ये घर को बना कर चलेगी। अब जो है, सो है। विवेक देखा? कण मात्र भी घृत उसने व्यर्थ नहीं जाने दिया।

इस कड़ाही आटे को मत देखो, अन्दर की बात समझो। ज्ञानीजीव विशालहृदयी होता है। वह जगत् के प्रत्येक द्रव्य को उस दृष्टि में देखता है जिसमें उसको भगवान्-आत्मा दिखती है। वह शुद्ध घी को भी देखता है और शुद्ध आटे को भी देखता है। राग-द्वेष के बीच में होने पर भी उसकी दृष्टि में दिखता है कि राग भिन्न है और द्वेष भिन्न है, उसके बीच में मेरी आत्मा भिन्न है। ये निर्णय कौन करायेगा? पर के

निर्णय के लिये पर को बिठाया जा सकता है। चाक्षुष विषय का निर्णय तुम दूसरे के माध्यम से करा सकते हो, पर स्वयं के भीतर के तत्त्व का निर्णय पर नहीं करेगा, तू स्वयं करेगा। जब परमात्मा का निर्णय भी मेरी आत्मा का निर्णय नहीं है, फिर पर का निर्णय मेरी आत्मा का निर्णय कैसे? भगवान् जो जान रहा है, भगवान् जो देख रहा है, भगवान् जिसको अपने ज्ञान में अवलोकित कर रहे हैं, वह मात्र उनके ज्ञान में ज्ञान ही है, ज्ञेय नहीं है। ज्ञेय को जान रहे हैं, पर ज्ञेय ज्ञान नहीं है। इस दृष्टि से यदि ज्ञेय ज्ञान हो गया, तो अखण्डित ज्ञान खण्डित हो जायेगा। ये आशीर्वाद देते हुये हाथ आप देखते रहो, उसी समय किसी ने बीच में कुछ विघ्न डाल दिया, तो आपके ज्ञान में खण्ड हो गया।

मित्र! इस हथेली की रेखायें इस कैमरे में आ रही थीं, अब दूसरा हाथ सामने कर देने पर वे दब गईं। सँभलो समझो। इतनी देर तक विघ्न आया कि नहीं? जो रेखाओं को ही निहार रहा था, उसको बेचैनी हुई कि नहीं? हुई। जब तू परमात्मा को निहारता होता है, अपने ज्ञान का विषय बनाता है, उस काल में तेरे भावों में ही तेरी स्त्री आ गई, तूने परमात्मा के चेहरे के सामने नारी का चेहरा खड़ा कर दिया, तुझ पापी ने अपनी आत्मा के साथ कितना बड़ा छल किया है? अन्तराय डाल दिया। पूजा करते-करते दुनियाँ के ख्याल आ रहे थे, तेरे में अन्तराय पड़ा कि नहीं पड़ा फोटो कैमरे में आ चुकी है। अब जब तू सी.डी. में दिखायेगा, तो ऐसा ही आयेगा। अब मैं कितने ही अच्छे से बैठ जाऊँ, लेकिन जो खिंच गया, सो खिंच गया। बस, ध्यान दो, तुम बाद में कितने ही सँभल जाओ, लेकिन जो कर्मबन्ध हो चुका, सो हो चुका, वह तो रील में आ गया। मंदिरों में कैमरे लगे हुये हैं, यहाँ सँभल कर आया करो। आप कितने ही कहते रहना मैंने कुछ नहीं किया। लोगों को झूठा कर सकते हो, लेकिन मसीन को झूठा नहीं कर सकते। एक बार सीडी को तो डिलीट कर सकता है, लेकिन सर्वज्ञ के कैमरे में तेरी जो पर्याय आ चुकी है, उसे डिलीट करने कौन जायेगा? अनन्त भवों की पर्याय भी दिखाई जा सकती है। केवली के श्रीमुख के माध्यम से जानी जा सकती है। अनन्त भवों की पर्याय तो छोड़िये, अनन्त भवों में जो तूने परिणाम किये हैं, उन तक को जाना जा सकता है। मित्र! इतिहास को सुरक्षित रखने वालों से तो मात्र तुम्हारे माता-पिता/दादा-दादी की ही पीड़ियाँ मिलेंगी, परन्तु भगवान् तीर्थंकर के केवलज्ञान में इतनी विशाल फाइल है कि तुम्हारी सब मेमोरियाँ कमजोर हैं उनके ज्ञान में।

जैसे हाथ में रखा आँवला आप चारों ओर से देखते हो, ऐसे-ही केवली के कैवल्य में सम्पूर्ण विश्व की समस्त अवस्थायें चराचर झलक रही हैं। सम्पूर्ण द्रव्यों के गुण-पर्यायों को युगपद/एकसाथ। जो भी तुम पाप छुपा रहे हो, किसके लिये? मात्र पड़ोसी के लिये, माता-पिता के लिये। स्वयं और स्वयंभू से कहाँ छिपा पा रहे हो? स्वयं से छिपा कर दिखाओ? मैं इस बात को बिल्कुल स्वीकार नहीं करता हूँ कि तुमने अज्ञानता में पाप किया है। बहुत अच्छे से बुद्धिपूर्वक किया है। जितने अच्छे से किया है, उतनी अच्छी तैयारी से बैठो कि तुमको भोगना पड़ेगा। इन महाराजों ने साइंस की भी पढ़ाई की है। इनके उन भावों की हम वन्दना करते हैं। इन बच्चों ने दीक्षा लेते ही कॉलेज की उम्र तक के भी प्रायश्चित्त लिये। यदि विज्ञान की पढ़ाई में मेंढक आदि के भी प्रयोग किये हैं, कर लिया अज्ञानता में ज्ञानी बनने के लिये, लेकिन वह आजतक अज्ञान ही था, अब तुम्हारे पास विवेक जाग चुका है। भले ही तुमने सिल दिया हो, लेकिन उसकी वेदना को तुमने कहाँ लिया है?

"तीव्र-मंद-ज्ञाताज्ञात भावाधिकरण-वीर्य-विशेषेभ्यस्त-द्विशेषः।(त.सू.)।

जब जीव की होनहार अच्छी होती है तो भाव बदल जाते हैं।

वीतरागी आचार्यों ने अपने जीवन की श्वास-श्वास को जिनसूत्र में जिया है। **जिनभारती का रसपान ही संसार की विषय-कषाय की तृषा को दूर कर सकता है।** कुन्दकुन्द भगवन्त हजार वर्ष पूर्व जिस ग्रन्थ को लिख गये हों, ऐसा लगता है जैसे आज की बात हो रही हो। कितने गहरे में पानी पहुँच चुका है। विज्ञान का एक छात्र जो यूँ कहता था कि कुछ नहीं है। शरीर ठण्डा होना मृत्यु है, ऊर्जा का शान्त होना मृत्यु है, उस छात्र के अन्दर यह बात गूँज रही हो कि विज्ञान अभूतार्थ था। वीतरागविज्ञान पूछता है—जिस ऊर्जा से शरीर ठण्डा हुआ है, वह ऊर्जा कौन-सी वस्तु थी? वही आत्मा है। जिसे तुम चुभा रहे थे, वह ऊर्जा को कष्ट नहीं होता, वह आत्मा की ही पीड़ा थी। आपके मन में भाव आ रहा है कि सत्य समझ में अब आया, तो मुझे प्रायश्चित्त लेना चाहिये। सत्य है, यही जागरण है। न कोई देवी जागरण होता है, न कोई देवता जागरण होता है। यह आपके बीच में अज्ञान-दशा छा गई है। जागरण क्या है, सुनिये—**जो तेरे अन्दर अविद्या, मिथ्यात्व, अज्ञान बसा था, उस अज्ञान का पलट जाना और भीतर में विवेक जाग जाना, यही देवता जागरण है और प्रज्ञा का**

निर्मल हो जाना, यही देवी जागरण है। निज की देवी जगा दे, निज के देव को जगा दे, कोई पूछे तो कह देना कि आज मेरे यहाँ देव का जागरण हो रहा है। कौन-सा देव जग गया? मेरे पास विवेक नाम का देव जगा है और विवेक नाम के देव ने मुझे अहिंसा ब्रह्म के दर्शन करा दिये। हाँ, ध्रुव सत्य बोल रहा हूँ, आचार्य उमास्वामी कह रहे हैं कि जीव के जो पाप लद रहे हैं, पाप बढ़ रहे हैं, ये तुमको दिखाई नहीं देते, लेकिन यह बताओ कि जब तेरे से गलत कार्य हो जाय तो चेहरे की रौनक चली जाती है। भीतर के पाप ने बाहर के चेहरे का रंग बदल दिया। आगम कह रहा है कि आपको कर्म आते दिखें या न दिखें, लेकिन स्वयं के भाव समझ में आते हैं। कुछ भी कहो, गलत करने जाओगे तो परिणाम कहते हैं कि गलत ही है। वह तो व्यवहारिकता के नाते रिजल्ट लेने आना पड़ा, लेकिन सत्य तो यह है कि जिस दिन तू कॉपी में लिख रहा था, रिजल्ट तुझे उसी दिन पता था। कहीं तेरे पिता नेता हो गये, धनपति हो गये, किसी टीचर की जेब भर आये, तो घर से भी कॉपी लिखकर भेजी जा सकती है। घर से कॉपी लिखकर तो भेज सकते हो, परन्तु बुद्धि को लेकर नहीं आ सकते हो। **पैसे से प्रमाणपत्र तो बनवा सकते हो, लेकिन किसी की ताकत नहीं है कि पैसे देकर बुद्धि खरीद ली जाये।** वह बालक उच्चस्थान पर भी पहुँच जायेगा पैसे के प्रमाणपत्र से; लेकिन जब-जब प्रज्ञा की बातें आयेंगी, तब उसको नीचे ही देखना पड़ेगा।

ज्ञानी! कितने लोगों को पास किया पैसे लेकर? महाराज! पैसे तो नहीं लिये, लेकिन व्यवहारिकता निभाई है। जिन-जिन के साथ व्यवहारिकता निभाई है, उन सब के साथ अहित किया था। उस समय जरूर मीठा लग रहा था, लेकिन बाद में लगता है कि यदि शिक्षक पास न करता तो पढ़ तो लेता। शिक्षक पास करते रहे, सो हम भी मस्ती में जीते रहे; लेकिन आज हमसे कुछ नहीं बनता। जो शिक्षक पीटता है, उसकी क्लास में बच्चे अच्छे से पढ़कर जाते हैं। बाद में कहते हैं कि ये अध्यापक तेज थे, सो उनका विषय भी तैयार है। **ढीला-ढाला गुरु होता है शिष्यों का शत्रु।** देखो ये कह रहा है कि मेरे पढ़ाये बालक डॉक्टर हैं। उस गुरु को कितना अच्छा लग रहा होगा जो कहे मेरे पढ़ाये भगवान् हैं, सिद्ध हैं।

जब कषाय की तीव्रता होगी तो तीव्र बंध होगा, मंद होगी तो मंद होगा। ज्ञात भाव से कर्म किया, कि अज्ञात भाव से किया? शक्ति से युक्त होकर कर्म किया है,

कि क्षीणता में किया है? इन भंगों को बनाना पड़ेगा। ज्ञात भाव, अज्ञात भाव, तीव्र भाव, मंद भाव, काषायिक भाव कि मंद कषाय? 'वीर्य की ताकत की विशेषता से, कि ताकत की न्यूनता से? जैसे भङ्ग बनेंगे, वैसे कर्म का आस्रव-बंध होगा। अब जो आपके मन में आ गया कि जो बंध हो गया तो अब तो कुछ कर ही नहीं सकते हैं। मैंने पाप कर लिया, अब तो मुझे नरक जाना ही पड़ेगा, अब कुछ कर ही नहीं सकते।

मेरे मित्र! सुन, अभी कुछ-और भी है। यदि तुम चाहो कि हाथ न आये, तो तुम कुछ कर सकते हो। सुधार तो होता है। एक बार कैमरे में जो आ गया, सो आ गया। हटवाना चाहो तो हटनेवाला नहीं है। लेकिन तुमने अनुनय विनय किया कि ये हाथ सीडी में नहीं आना चाहिये, करेक्सन (सुधार) कर दो, तो कर सकते हो क्या? हाँ, कर सकते हैं डिलीट। करणानुयोग क्या कहता है? परिणाम है अपकर्षण, उत्कर्षण, संक्रमण भी होता है। यदि पाप का बंध होता-ही-होता है, तो तपस्या करने की क्या आवश्यकता, प्रायश्चित्त लेने की क्या आवश्यकता? जैसे सीडी से कोई सीन डिलीट कर सकता है, तो ऐसे-ही तुमने जो पाप किये हैं उनका प्रायश्चित्त ले करके उतनी तपस्या कर लेना, तुम्हारे कर्म की निर्जरा हो जायेगी। **'तपसा निर्जराश्च।'** तप से संवर भी होता है और निर्जरा भी होती है।

मूँगफली के ऊपर पानी पीने वाले को सर्दी-जुखाम हो गया, तो ऐसी भी कोई सामग्री होगी जिसको पीने से जुखाम ठीक भी तो हो सकता है। **जिन परिणामों से पाप किया है, उन परिणामों को बदल करके पुण्य के परिणाम कर लो तो तेरा पाप नष्ट हो सकता है।** कौन करेगा? स्वयं। हमने अपनी व्यवस्था किसी दूसरे के हाथ में नहीं सौंपी। जैनदर्शन की यह विशेषता है कि वह अपनी व्यवस्था ईश्वर के हाथ में नहीं सौंपता। जब मैंने किया है, मूँगफली के ऊपर पानी मैंने पिया है और दवाई के लिये दूसरे से कहता है कि तुम खा लो, तुम मेरे बकील हो। यहाँ वो नहीं चलता कि पाप ये करके आये और कहता है भगवान्। एक माँ बहू को पीटकर भगवान् के सामने आ गई और हमारे पास आ गई, 'महाराज जी! क्षमा कर दो। आज हमारा बहू पर हाथ उठ गया है।' मैंने कहा—यदि मंदिर में तुम्हारे क्षमा माँगने के भाव आये ही हैं तो जाकर बहू के पैर पड़ लो। बोली—'वो कैसे हो सकता?' यदि नहीं हो सकता, तो तुम्हारा पाप तीनकाल में नहीं छूट सकता। ऐसा होता है क्या कि गाली किसी को दो, क्षमा किसी से माँगो? कितने ढोंगी लोग हैं, भगवान् से क्षमा माँगने जाते हैं जिनसे

कभी लड़ाई ही नहीं हुई। वकील के पैर पड़ रहा है। जिसके साथ अपराध किया, यदि उसके पैर पड़ लेगा, तो अभी बरी हो जायेगा। सही नहीं है क्या? बहुत सही है। बहुत सही तो है, लेकिन मानेगा नहीं।

भारत में सबसे सस्ती कोई वस्तु है, सबसे सीधा-साधा कोई है, तो वह भगवान् है। कुछ भी कर लो और 'हे भगवन्! तेरी कृपा से सब काम हो रहा है।' तेरी कृपा से सब होने लग गया तो मेरी करनी कहाँ चली जायेगी?

कर्म-प्रधान विश्व कर राखा, जो जस करहिं सो तस फल चाखा।

तुलसीदास जी को कहीं-न-कहीं तो इस बात का पता था

कर्त्ता यः कर्मणां भोक्ता, तत्फलानां स एव तु।

बहिरन्तरूपायाभ्यां, तेषां मुक्तत्वमेव हि॥10/स्व.सं.॥

जो कर्म का कर्ता है, वही उसके फल का भोक्ता है। भट्ट अकलंक स्वामी ने 'स्वरूप संबोधन' ग्रन्थ में एक ही कारिका में सब समझा दिया है। जो कर्म का कर्ता है, वही फल को भोगेगा। छूटेगा कौन? जो अन्तरंग व बहिरंग उपाय करेगा तो वह स्वयं ही कर्मों से छूटेगा।

माताओ! जैसे तपेली को अंतरंग और बहिरंग दोनों शुद्धियाँ चाहिये। बहिरंग शुद्धि नहीं रहेगी तो अन्तरंग में भी संक्रमण (इन्फेक्सन) फैल जायेगा। इस प्रकार अंतरंग हेतु भी चाहिये और बहिरंग हेतु भी चाहिये। अंतरंग तपस्या भी चाहिये और बहिरंग तपस्या भी चाहिये। तभी कर्मों का क्षय होगा। जो अज्ञानी होते हैं, वे कहने लगते हैं कि हमारे भाव शुद्ध हैं और खा रहा है माँस मछली तो कौन कहेगा तेरे भाव शुद्ध हैं? **जिसका बहिरंग ही शुद्ध नहीं है, आचरण ही शुद्ध नहीं है, उसके परिणाम क्या शुद्ध होंगे?** उन ढोंगियों से कहना कि हम लोग इनको शुद्ध नहीं मानते। कहते हैं कि हम सब पर दया करते हैं, करुणा करते हैं और मनुष्य की सेवा में दुनियाँ को लगा देंगे। मानव मात्र की सेवा करना धर्म है, कि प्राणिमात्र की रक्षा करना धर्म है? **जिनके सूत्र मानवसेवा मात्र के लिए हैं, वे हिंसक लोग हैं। मानव के पीछे वे किसी का भी घात कर सकते हैं। मात्र मानवसेवा धर्म नहीं है, प्राणिमात्र की रक्षा करना धर्म है।** मानव-सेवा तो एक स्वार्थ-वृत्ति है, क्योंकि मनुष्य तुमको प्रमाणपत्र देगा, माला पहनायेगा, वह जी-हजूरी करेगा, लेकिन गाय कौन कुछ करनेवाली है, चींटी कौन कुछ

करनेवाली है? मानवसेवा मात्र धर्म नहीं है, '**अहिंसा परमोधर्मः**' है। मनुष्य की भी सेवा होनी चाहिये और प्राणिमात्र की भी सेवा होना चाहिये। मानवसेवा को सबकुछ करने तैयार हैं। बिल्कुल सफेद कपड़े दिखाई देंगे, लेकिन भीतर से थाली में क्या परोस कर आ रहा है?

युवाओ! कभी भी किसी भी व्यक्ति की बातों से बाहरी दया से प्रभावित नहीं होना। सबसे पहले उसके पास बैठकर भोजन करके देखना कि उसकी थाली में क्या लगकर आ रहा है। बस, समझ लेना कि **जिसका भोजन शुद्ध नहीं है, उसके भाव शुद्ध त्रैकालिक हो नहीं सकते।** जो जीवों के पिण्डों को मुख में रख रहा है, वह क्या करुणा करेगा? कुरुक्षेत्र में महाभारत का युद्ध क्यों हुआ? कोई दूसरा क्षेत्र नहीं मिला क्या? यथार्थ मानकर चलना, कहीं-न-कहीं रक्त का राग आता है तो धनुषवाण छूट जायेगा। आज भी वर्तमान में कोई नेता आता है तो उसके आने के पन्द्रह दिन पहले से भूमि का परीक्षण होना प्रारम्भ हो जाता है। माताओ! वे परम्परायें कहाँ चली गईं जब तुम महाराज को पड़गाहन करके ले जाते थे। कलश में पानी होता था और छीटें डालकर कहते थे—भो स्वामिन्! भूमि शुद्धि, भूमि शुद्धि। ये सब परम्परायें तुमने नष्ट कर दी। महाराष्ट्र में आज भी चलता है। पहले बुंदेलखण्ड में भी चलता था कि महाराज! मेरी रसोई शुद्ध है, मेरे परिणाम शुद्ध हैं और जिस भूमि से आपको लेकर जा रहा हूँ वह भूमि भी शुद्ध है। यह आपका परीक्षण चल रहा है।

कुरुक्षेत्र में युद्ध होने से पूर्व यह निर्णय लिया गया और राजा-महाराजाओं नेताओं के बीच में निर्णय हुआ। भीष्मपितामह गुरु द्रोणाचार्य जैसे लोगों ने परीक्षा के लिये सेना दौड़ा दी। भूमि की परीक्षा करो कि जहाँ भाई-भाई के युद्ध में तलवारें चल सकें। घुड़सवार दौड़ रहे थे। एक दृष्टि पड़ी कि 21 वर्ष का एक नौजवान बेटा मृतक पड़ा हुआ है, उसी स्थान पर माँ रोटी खा रही है। बेटे की लाश सामने रखी हो, ऐसी कौन से बज्र हृदय की माँ होगी जो रोटी खा रही हो? बस, यही क्षेत्र उपयुक्त है। क्यों? जिस क्षेत्र में ऐसी कलुषित वर्गणायें भरी हों, कठोर वर्गणायें भरी हों कि जहाँ बेटे की लाश रखी हो और माँ रोटी खा रही हो, इससे बड़ा युद्धस्थान क्या होगा? यानि सबकी दया पलायन कर जाये।

सुनिये द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव का प्रभाव। मौका है तो बोल लो, क्या जाता अपना। बाकी का उनका विषय है। देखा? प्रभाव नहीं पड़ता होता तो कल ही बच्चों के बाल ठीक हो गये हैं। जिनवाणी भीतर चली गई। परिधान का प्रभाव देखो।

लंकेश के पास जो विद्यायें थीं, विश्व में आजतक इतनी विद्यायें कोई पुरुष सिद्ध नहीं कर पाया। एक दिन रावण से एक व्यक्ति कहता है, 'स्वामी! आप क्यों परेशान हो? सीता की दृष्टि राम के प्रति है। वह मात्र राम को ही देखना चाहती है, किसी अन्य को नहीं देखना चाहती। इसलिये आप राम का रूप क्यों नहीं बना लेते हो? फिर सीता आपकी हो जायेगी।' लंकेश मुस्करा कर कहता है, 'ज्ञानी! जितना तू मुझे सिखाने आया है, वह मैं सबकुछ कर चुका हूँ।' तो क्या हुआ? 'बेटा! सुन। जब मैं राम का भेष बनाता हूँ, तब मेरे सीता के प्रति अशुभ भाव ही नहीं आते हैं। बिगड़ने के लिये भेष भी बनाना पड़ता है। जीन्स आदि वे ही पहनते हैं जो आगे बिगड़ने के लिये तैयार हो रहे हैं। जब तुम आहार देने जाते हो, तो धोती-दुपट्टा पहनते हो। बिना सिले कपड़े शुद्ध होते हैं। धोती-दुपट्टा, अखण्ड वस्त्र, उत्तरीय परिधान और अधो परिधान। ऐसा नहीं कि आधी धोती पहन ली और आधी लपेट ली। ये तो ऐसे हो रहे हैं जैसे कि चप्पलें कान में लटका ली। लगे बुरा तो अच्छे से लगना चाहिये। अरे! दुपट्टा अलग होना चाहिये और धोती अलग होना चाहिये। यदि तेरी इच्छा होटल में भोजन करने की हो, तो धोती-दुपट्टा में नहीं जा सकता। जब स्वयं अशुद्ध भोजन करने को होटल जायेगा तो उसको पहले कपड़े बदलने पड़ेंगे।

एक भैया आया, उससे श्रावकों ने कहा 'भैया! भोजन कर लो।' नहीं, हम कपड़ा बदलकर आते हैं। उससे पूछा, 'कपड़े बदल कर क्यों जा रहे हो?' बात ऐसी है कि ये कपड़े पहन कर बैठ जाओ तो लोग समझते हैं कि ये ब्रह्मचारी है, सो सूखा-सूखा खिलाते सब। लोग पूछते हैं कि नमक दूँ क्या? चटपटा कुछ देते ही नहीं हैं। ड्रेस चेंज करके भोजन करने जाओ तो सबके बीच में अच्छा चटपटा खाने को मिलता है।' मैंने कहा कि ठीक है। दूसरे दिन चेहरा बनाये घूम रहा था पेंट-शर्ट पहने। मैंने उससे पूछा—क्या हुआ? बोला, 'महाराज! फँस गया। आज मैंने कपड़े बदल लिये तो कोई ने पूछा ही नहीं है। कल से मैं कपड़े चेंज नहीं करूँगा। कम-से-कम जैसा मिलता है, मिलता तो है। धोती-दुपट्टा की महिमा है, भेष की महिमा है।

नियम स्वयं पालन करना चाहिये, किसी के कहने की आवश्यकता ही नहीं है। सात्विक रहो, सात्विक पहनो, सात्विक खाओ और यदि आपको वस्त्र वजनदार लगते हों तो मेरे साथ चलो, फिर अच्छे से रहो। पूरे पहनकर रहो या फिर पूरे उतार कर रहो। ये लोग चावल बादाम चढ़ाते हैं, उनका उद्देश्य है कि पूज्य के निमित्त से भी दूसरे को कष्ट देना पसन्द नहीं करता हूँ।

जिस जीव के मन में इतने विचार उठ चुके हैं कि मैं मंदिर में जाकरके फूल चढ़ाता था, उसके बारे में क्या चिन्तवन है? सत्य यही है कि जैनदर्शन तो वनस्पति के छेदन मात्र को हिंसा मानता है। लेकिन पूजन-विधि में आपको फूल चढ़ाने का भाव है तो एक बड़ी सुन्दर व्यवस्था बनाई है कि आप कैसे चढ़ा सकते हैं। आप पहले से कपड़ा डाल लो। उसमें जो पुष्प टपक चुके हैं, उन पुष्पों का आप प्रयोग कर लो। लेकिन मन कहता है कि नहीं चढ़ाना है, तो भैया! चाँदी का चढ़ाओ। नहीं-तो सूखे फूल ही तो चढ़ाना है। पीले चावल भी पुष्प ही हो जाते हैं। संकर विधि से लौंग भी पुष्प ही है, फल नहीं है। बादाम गुठली है, क्योंकि बादाम का फल तो अन्दर होता है। लेकिन तब भी। दुनियाँ में क्यों झंझट में पड़ते हो? सुमन है तो सुमन है। सुमन ही नहीं बनाया तो सुमन कितने ही चढ़ा लो।

यहाँ आचार्य श्री कह रहे हैं कि जो **स्वाधीन सुख है, वही सत्य है।** क्या करें? जब समझ में आया तब समय ही चला गया। जब समय था, तब समझ में नहीं आया। ज्ञानी! तेरे पास तो समय भी है और समझ में भी आ गया है, फिर देर क्यों?

आपने भोजन न करके, मात्र पानी पिया है, तो वह अनुपवास है। कुछ ले लिया, दूध भी पी लिया, तो एकासन हो गया, उपवास नहीं कहलायेगा। ऐसा नहीं है कि दिनभर शकला खाओ, आलू-प्याज खाओ और कहो उपवास है। ये उपवास नहीं है। ये फरारी तो कोई भी करता रहेगा। कुछ सूखे मेवा खा लेते हैं, कहते हैं उपवास है। नहीं। भैया! ठीक है, जितनी सामर्थ्य है उतना कर लो, लेकिन कन्द खाकर उपवास मत करना। **चारों प्रकार के भोजन-पानी का त्याग करना ही उपवास है। फिर जितनी सामर्थ्य हो उतना करना। साधना उतनी करना जिससे संक्लेशता न बढ़े।** स्वास्थ्य ठीक रहे तो चार माला करे तो ठीक है और उपवास करने के बाद पन्द्रह दिन पड़ा रहना पड़े, बोतलें चढ़वानी पड़े, उससे अच्छा है कि सामायिक कर लो। सामर्थ्य है तो उपवास कर लेना चाहिये। इसलोक में जो स्वाधीन सुख है, आत्मा का वास्तविक सुख वहीं है। पराधीन अच्छी तरह जान करके है। मनुष्य इन्द्रियसुखों में मोहित क्यों हो रहा है? सत्य तो यह है कि आत्मा का सुख ही सुख है। परवस्तुओं के पीछे, कितना ही बड़ा आदमी हो, जब किसी से कुछ चाहिये पड़ता है तो देदो शब्द बोलना पड़ता है। कितना ही बड़ा आदमी हो, ये गुटका बीड़ी सिगरेट वाले कभी बड़े हो ही नहीं सकते। कभी वो दिन आता है जब जेब में कुछ नहीं बचता, तो भिखारी बने ऐसे माँगते हैं—'एक बीड़ी दे दो,' जैसे अमृत माँग रहा हो। धिक्कार हो अज्ञानी को।

माँगना तो जीवन का बड़ा भारी क्लेश है, घोर कष्ट है। यही कारण है कि मुनिमहाराज कटोरा भी नहीं रखते। अँजुली लगाकर चले गये। वो भी तुमसे नहीं कहते कि रोटी खाने के पीछे तुम्हारो भलो करवे जायें कि भला हो तुम्हारा, संकट टल जायें। भाई! रक्षा करा लो। कुछ नहीं, हम तो मौन लेकर जाते हैं। तुम्हें देना हो तो दो। मेरा भाग्य होगा तो तुम अपने-आप पड़गाहन करोगे। भाग्य नहीं होगा तो पड़गाहन के बाद भी बाल आ जायेगा। कोई बोल दे तो उसके यहाँ जाना नहीं। निमंत्रण तो विद्वानों और श्रावकों के होते हैं, साधुओं के नहीं होते। ये तो अनियत हैं, अतिथि हैं। कोई कितना ही मक्खन लगाये, पधारना होगा तो पधार जायेंगे और यदि नहीं पधारना होगा तो नहीं पधारेंगे।

कीचड़ और रंग में चेहरे को मत लपेटना। यदि लपेट सको तो चारित्र को लपेट लेना और जिनवाणी में देख लेना।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।



परिग्रह सुख का बाधक है

नो सङ्गाज्जायते सौख्यं मोक्षसाधनमुत्तमम्।
सङ्गाच्च जायते दुःखं संसारस्य निबन्धनम् ॥304॥

अन्वयार्थ—(सङ्गात्) परिग्रह की मूर्छा से **(उत्तमम्)** उत्तम व **(मोक्षसाधनं सौख्यं न जायते)** मोक्ष का साधनभूत सुख नहीं प्राप्त होता है **(च सङ्गात् संसारस्य निबन्धनं दुःखं जायते)** किन्तु परिग्रह की मूर्छा से संसार का कारण दुःख ही प्राप्त होता है।

भावार्थ—हे भव्यात्मा! परिग्रह की मूर्छा से उत्तम मोक्ष का साधनभूत सुख प्राप्त नहीं होता है, किन्तु परिग्रह की मूर्छा से संसार का कारण दुःख ही प्राप्त होता है।

॥ सद्-देशना ॥

आचार्यप्रवर भगवत् कुलभद्र स्वामी ने ग्रन्थराज सार-समुच्चय जी में दुःख का मुख्य हेतु परिग्रह कहा है। उस दुःख के हेतु की व्याख्या करते हुये समझा रहे हैं—जिसके अर्जन में दुःख है, जिसके रक्षण में दुःख है, जिसके नाश में दुःख है, उस द्रव्य के प्रति जीव की प्रीति क्यों है? जब अध्ययन करता है तो कितना क्लेश होता है? पैसे के राग में शरीर पर भी ध्यान नहीं है, भोजन भी समय पर मिलता है कि नहीं? उन युवाओं से पूछो जो विभिन्न कम्पनियों के काम कर रहे हैं। रात-रात भर सोने को नहीं मिलता, समय पर खाने को नहीं मिलता, तो यह पैसा किस काम के लिये है? जब पैसा कमाने के राग में शरीर को नष्ट कर बैठा। धन अर्जित किया, उससे शरीर नष्ट किया। जब शरीर नष्ट हो गया, फिर डाक्टरों के घर में धन भेज दिया। दोनों तरफ से गया। धन के लिये शरीर नष्ट किया, फिर शरीर के राग में धन नष्ट किया। उन दोनों के बीच में जिसे नष्ट किया है, वह तेरा पुण्य और धर्म था। उस पर दृष्टि नहीं गयी। जब-जब पैसे की दृष्टि बनती है, तब-तब ऐसा ही होता है।

जगत् से सारे सम्बन्धों को खोखला कराने वाला कोई द्रव्य है तो वह पैसा है। सम्पूर्ण मधुर सम्बन्धों का विनाश करानेवाला कोई है तो उसका नाम पैसा है। स्मरण करो, जिस भाई के साथ एक कटोरे में तुमने खीर खाई हो, जिस आँगन में एकसाथ खेले हो, उस आँगन में दीवार खड़ी हो जाती है और भाई के बीच में द्वन्द्व खड़ा हो जाता है। जिस माँ ने, पिता ने तुम्हारा पालन-पोषण किया है, उस माता-पिता से झगड़ने के लिये भी तैयार हो जाते हो। ये कौन-सी वस्तु है? पैसा है। कुछ क्षण के लिये

मीठा लगता है, लेकिन जिस दिन पूरा परिवार नाश को खड़ा हो जाता है, तब कौरव-पाण्डवों की याद अवश्य आती होगी। जब स्वयं के ही घर में स्वयं का घात किया जाये, तब नेपाल नरेश की भी याद आती होगी। शायद कोई नहीं बचा था। किसने नाश किया था? और किसके राग में नाश किया था? ये धन है। विश्वास रखना, लाभ-अन्तराय कर्म का क्षयोपशम होगा तो मिट्टी में भी हाथ लगायेगा तो सोना होगा और लाभान्तराय कर्म का क्षयोपशम नहीं होगा तो सोना में हाथ लगायेगा तो मिट्टी होगा। इसलिये ज्यादा परेशान होने की आवश्यकता नहीं है। जब आनन्द का जीवन जी ही रहा है, तो हाय-हाय करने की आवश्यकता क्या है? सत्य बताना, भैया! तेरे कमाने से घर में पैसा बढ़ गया क्या? क्या रिक्शा वाले कम मेहनत कर रहे हैं? बेचारों की मेहनत तो देखो, आपके हाथों में फोले नहीं हैं, उनके हाथों में फोले हैं। **पुरुषार्थ तो करोगे, लेकिन फलित तभी होगा जब पुण्य होगा। पूर्व का क्षयोपशम, पूर्व का पुण्य तुम्हारी सत्ता में है तो आपके घर में धन बरसेगा, जरा-सा निमित्त मिलने पर आपको सब सहज प्राप्त हो जायेगा** और पुण्य नहीं है तो कितना ही हाय-हाय करते रहना।

वर्तमान की श्री कार्य, भूत की श्रीजी की भक्ति कारण है। ये श्री-सम्पन्नता वर्तमान का पुरुषार्थ नहीं है ये भूत का पुरुषार्थ है कि देहात में जन्मे हो और आकर शहर में रहने लगे हो। नियोग देखो, जीव के पास पुण्य होता है इसलिये आपको धनपति लोग मिले हैं। उनका सम्मान भी आप देखते हो। उस व्यक्ति से कहना है जिसका सम्मान हो रहा है मित्र! मैं तेरे धन का सम्मान नहीं कर रहा हूँ, तेरे वर्तमान की श्री का सम्मान नहीं कर रहा हूँ।

पण्डित दरवारीलाल कोठिया जी के पास विभिन्न दर्शनों के लोग दार्शनिक पक्षों का सत्य लेने आते थे। वे 'न्याय दीपिका' पढ़ाते समय सुनाते थे—मैं उस घर का बेटा हूँ जिस घर में माँ को सोचना पड़ता था कि शाम को बेटे को क्या खिलायेंगे? यथार्थ मानना, सम्पन्नता का जीवन जीने वाला व्यक्ति कभी धीमान् नहीं हो सकता। जो श्री के साथ जीवन जियेगा, वह धीमान् नहीं हो पायेगा। कारण क्या है? सुख-सुविधाओं का और विद्या का परस्पर में समझौता नहीं है। भोगाकांक्षी, जो शरीर के अनुकूल अपना जीवन जीना चाहता है, वह सुखिया तो हो जायेगा, परन्तु विद्या को प्राप्त नहीं कर सकेगा। श्री मिल जाये, ये पूर्व पुण्य का नियोग है। इन छात्रों से पूछो, जब तुम्हारा

पूरा परिवार मधुर नींद से सोया करता है उस समय तुमको जगना पड़ता है। जैसे तैयारी परीक्षा की घड़ियों में तुम करते हो, वैसी साल भर करो तो अलग से तैयारी न करना पड़े।

जगत् की मिट्टियों पर भोगवृत्ति तो है, परन्तु योगवृत्ति नहीं है। विद्या की गूढ़ता तो भारत की मिट्टी में है। आप यूँ मत कहना कि मिट्टी में भी प्रभाव होता है क्या? आप डेरा पहाड़ी के ऊपर नारियल के वृक्ष उगाओ, लग जायेंगे, लेकिन फल नहीं लगेंगे। एक बार लग भी गये, लेकिन वे फल वैसे नहीं होंगे जैसे कर्नाटक की भूमि में होते हैं। जब वनस्पति के लिये मिट्टी प्रभावित करती है, **जयपुर में अचेतन प्रतिमाओं की रचना होती है और आपके बुंदेलखण्ड में चैतन्य प्रतिमाओं की रचना होती है।** देश में किसी भी संघ में चले जाना, लेकिन सर्वाधिक त्यागी बुंदेलखण्ड के मिलेंगे। हर विषय के लिये भूमि चाहिये।

वैदिक विद्वानों की खोज करोगे तो बनारस में मिलेंगे। जैन विद्वान् बुंदेलखण्ड की ओर मिलेंगे। भारत में किसी भी क्षेत्र में विद्वानों ने वर्तमान में काम किया है वे सब बुंदेलखण्ड के हैं। थोड़े से भूत में चले जाओ तो आगरा में उच्च श्रेणी के विद्वान् हुये हैं, चाहे दौलतराम हों चाहे बनारसी दास हों। क्षेत्र का प्रभाव देखो, वनस्पति में भी प्रत्येक वनस्पति सर्वत्र उत्पन्न नहीं होती। ऐसे-ही वातावरण का प्रभाव पड़ता है। सम्पत्तिशाली विलासिता में चला जायेगा। विलासिता और विद्या में सौतेला व्यवहार है। इतना सौतेलापन है कि एक-दूसरे को देखना पसन्द नहीं करते हैं।

जिन छात्रों को अपनी बुद्धियाँ बढ़ाना हो तो मेरी बात मान लेना, अपनी रक्षा कषायों से करना। जितनी तीव्र कषाय होगी, उतना मंद ज्ञान होगा। कितने ही तेज मस्तिष्क वाला क्यों न हो, जैसे-ही क्रोधकषाय भड़की, ज्ञान मंद हो जायेगा। इसलिये कषाय मत मानो। पच्चीस कषाय को कषाय मानो। क्रोध इसी में निहित है। चिन्ता भी कषाय है। बिना कषाय के चिन्ता का जन्म हो ही नहीं सकता। या लोभ के कारण चिंता है या मान के कारण चिन्ता है या माया अथवा क्रोध के कारण चिन्ता है। चिन्ता का कोई न कोई हेतु होता है।

भिक्षु बनकर विद्या प्राप्त करो, सुख-सुविधा-भोगी बनकर नहीं।

कौये जैसी चेष्टा हो, बगुले जैसा ध्यान हो, श्वान जैसी निद्रा हो, अल्प आहारी, गृह त्यागी - ये विद्यार्थी के पाँच लक्षण हैं। जो मस्त भोजन करेगा और चौबीस घण्टे

सोयेगा, वह ज्ञानी बनेगा क्या? जब सारे लोग सोते हैं, तब विद्यार्थी जागता है। **विद्या एक तपस्या है।** परन्तु ध्यान रखना, 'भगवती आराधना' में शिवकोटि महाराज ने लिखा है, 'मूलाचार' जी में वट्टकेर स्वामी ने लिखा है, 'धवला' टीका में आ. वीरसेन स्वामी ने लिखा है। ये तीनों उच्च कोटि के आचार्य हुए। इन्होंने स्पष्ट लिखा है कि '**सर्वाधिक निर्जरा करानेवाली तपस्या स्वाध्याय है।**' शिवकोटि स्वामी कह रहे हैं, जैसे आम का टपका। टपके आम को लोग बनाते नहीं है, चूसते हैं। उसमें से मधुर रस आता है। जैसे **फलों का राजा आम है, ऐसे-ही तपस्या का सम्राट् स्वाध्याय है।** जैसे आम को चूसता है, बड़ा मधुर रस आता है। कुछ ऐसे फल होते हैं जो बच्चों को ही पसन्द आते हैं। जिन विद्यालयों में छोटे-छोटे बच्चे पढ़ते हैं, वहाँ आपको अलग से सामग्री मिल जायेगी।

आम ऐसा फल है जिसे बालक भी स्वीकारता है, वृद्ध भी स्वीकारता है। जिसे असाधु भी सेवन करते हैं, साधु भी सेवन करते हैं। जैसे आम के फल में से रस टपकता है, ऐसे-ही स्वाध्याय करते समय रस टपकता है। आप मन बना लो, मात्र पाँच मिनट स्वाध्याय करना। ये आम का टपका है, इसको मात्र एक बार मुख से चूस लो, बाकी रख देना। 'महाराज! एक बार चूस लूँ फिर रख दूँ, तो अपने आप पूरा चूसने का मन करता है।' ऐसे-ही जो माँ बच्चे के मुख में अपना आँचल दे देती है, तो वह पकड़ते ही छोड़ता है क्या? जब संसार को जन्म देने वाली माँ का आँचल इतना मधुर है, तो भगवती माँ जिनवाणी जिसमें प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग इन चार आँचलों से पावन क्षीर टपकता है, जिसका पान करने से जन्म-मरण का नाश हो जाता है, कौन छोड़ेगा? कोई नहीं छोड़ेगा। कोई नहीं छोड़ सकता जिसको एक बार मात्र जिनवाणी का स्वाद लग जाये। उन बालकों से पूछना, सिटी से डेरा पहाड़ी भूखे दौड़ते आते हैं। उनसे पूछना, क्यों आ रहे हो? महाराज को आहार देने जा रहे हैं। सुबह से जिनके मुख चार बार जूठे होते हों, वे बच्चे बेचारे एक बजे घर पहुँचते होंगे, तब भी मुस्करा कर आ रहे हैं। 'क्या मिला तुमको?' तुम क्या जानो क्या मिला है? दुनियाँ के बच्चे जन्मदिन पर कहते हैं कि कोई नयी गिफ्ट दिलाओ, लेकिन वह बच्चा कह रहा है मुझे कुछ नहीं चाहिये, मुझे महाराज जी के पास ले चलो।

बहुत अन्दर जाकर प्रवेश करना। ये विषय इसलिये बोल रहा हूँ। जो धनिकों के प्रति आपकी ईर्ष्या उत्पन्न हो रही है, उसको ठीक करना है। स्वाध्याय करेगा, सुख

छोड़ेगा, तो त्याग अपने आप करेगा। पानी भरना चाहोगे तो बर्तन खाली चाहिये कि नहीं? पहले से ही तुम उसमें कुछ भरकर बैठे हो, तो उसमें पानी कहाँ भरा जायेगा? जिन्होंने अपने मस्तिष्क में दुर्गन्ध भर ली है, अब क्या भरेगा? भरना है तो पहले खाली कीजिये। **कर्तृत्व बुद्धि और हीन दृष्टि, ये दोनों विशुद्धि के लिये व्याघ्री हैं।** जैसे व्याघ्री के सामने कोई जीव दिख जाये तो वह बचेगा क्या? नहीं। जैसे सिंह के सामने रखा मृग अपने को सुरक्षित न समझे, ऐसे-ही जिस जीव के अन्तस् में विषय बैठ चुका है कि सबका कर्ता मैं हूँ और जिसके मन में बैठा है कि मैं कुछ भी नहीं हूँ। दो में ही सबकुछ हो रहा है। एक तो वे हैं 'जो कुछ हूँ सो मैं हूँ।' वे मैं में भूल रहे हैं। कुछ वे हैं कि मैं तो कुछ भी नहीं हूँ। वे चौबीस घण्टे हीन भावना में झुलस रहे हैं। इन दोनों के विशुद्धि का अंश मात्र भी नहीं आ सकता। **रुई के ढेर को क्या अग्नि के अंगारे पर सुरक्षित रख सकते हो? नहीं। ऐसे-ही वासनाओं/कषायों के अंगारे पर और हीनभावना के अंगारे पर विशुद्धि की रुई को सुरक्षित नहीं रख सकते हो। कर्तृत्व दृष्टि और हीन भावना, जीवन के दो शत्रु हैं।** सब कुछ नहीं रहा हो या छोड़ देना, लेकिन धर्म का भी विषय बने, दान-पुण्य का भी विषय बने। यदि किसी ने एक करोड़ का भी दान दिया हो, तब भी तुम अपनी शक्ति से ही दान करना। उस देने वाले की अनुमोदना तो कर लेना, परन्तु हीनभावना में मत चले जाना। नहीं-तो जीव अवसाद (डिप्रेशन) में चला जायेगा। एक का सिक्का देने की सामर्थ्य हो तो एक का ही सिक्का देना, परन्तु भक्तिपूर्वक।

शक्ति है तो छुपाना मत। क्योंकि हीनभावना में गया पुरुष वर्तमान की पर्याय के आनन्द को पुनः प्राप्त कर पाये, यह बड़ा कठिन है। जो ऐसा कहे कि मैं ऐसा दिमाग का तेज था, उसका वर्तमान का दिमाग भूत में चला गया, उसका दिमाग ही भूत हो गया। जो ऐसा कहे कि मेरा शरीर इतना सुन्दर चमकता था, उसका शरीर भूत हो गया। जो ऐसा कहे कि महाराज जी! मेरा मन धर्म में लगता था, इसका मतलब है कि तेरा धर्म भी भूत हो गया। अब मर कर कौन-सा भूत बनेगा? तू तो पहले से ही भूत बन चुका है। कम-से-कम जीते-जी तो भूत-बुद्धि को मत बनाओ। जिसकी जीते जी विशुद्धि भूत बन गई, अब क्या? जिन्दा ही भूत है।

युवाओ! आज से तनाव-मुक्त हो जाओ। बहुत सारे पढ़े-लिखे युवा मात्र इसलिये रो रहे हैं कि नौकरी नहीं मिल रही। तुम भी अच्छे पागल बने घूम रहे हो, नौकर बनने

के चक्कर में चिन्ता कर रहे हो। नौकर बनना अच्छी बात है क्या? दूसरे की सेवा करोगे क्या? अरे! **ऐसे काम करो जिससे दुनियाँ तेरी सेवा करे।** जिन-जिन को नौकरी न मिल रही हो, मेरे से नौकर बनने का आशीर्वाद लेने मत आना। मैं तुमको महाराज बनाने के चक्कर में हूँ, जबकि तू नौकर बन रहा है।

ये क्यों नहीं सोचते हो कि मेरा पिता अरबपति है। जिसके घर में पचास नौकर लगे हैं, तू नौकरी करने की सोच रहा है। भाग्य लेकर आया था, सो अरबपति/खरबपति पिता मिल गया। अब उसकी सम्पत्ति का क्या होगा? इसलिये तनावमुक्त जीवन जियो। अपने आपको प्रमादी मत बनाना। हीनभावना से निकल कर आओ। जब व्यक्ति के पास बहुत धन हो, ऐसा परिग्रही पुरुष आपको सम्मानित होते दिख जाये, तब भी आप हीनभावना में मत आना।

बहुत आरम्भ करने वाला तो नरक-आयु का बन्ध करता है, तो क्या मैं उसके नरक-आयु की अनुमोदना कर रहा हूँ? मेरे मित्र! सुना 'अनेकान्ताश्च'। जिनागम जो है, सारी गुत्थियों को सुलझाना हो तो अनेकान्त लगाना पड़ेगा। उसका सम्मान करते हुये एक शब्द बोलना—मेरे मित्र! आज मुझे इस बात का गौरव है कि धनपति समाज में आप धनपतियों-में-धनपति बने हो। आपके धन के माध्यम से सात क्षेत्र चमक रहे हैं। देव-शास्त्र-गुरु की भक्ति-आराधना चल रही है। आप जिनमंदिर बना रहे हो, जिनबिम्ब विराजमान कर रहे हो, आपके पुण्य के लिये मैं सम्मान दे रहा हूँ। जिसने अपने द्रव्य को यहाँ लगाया है, वह नरक क्यों जायेगा? नरक वो जायेगा जो धन को प्राप्त करके अधर्म में लगायेगा। धन नरक का हेतु है क्या? यदि धन नरक का हेतु हो गया तो जितने चक्रवर्ती हुये हैं सब नरक में जायेंगे। उनमें शान्ति, कुन्थु, अरह तीन तीर्थंकर भी हैं। चक्रवर्ती थे, कामदेव थे, तीर्थंकर थे। ये पद नरक नहीं ले जाता, ये धन नरक नहीं ले जाता। इस **धन और पद का राग नरक ले जाता है।** 'मूर्छा परिग्रहः। जिसने प्राप्त करके भी कोटि अठारह घोड़े, चौरासी लाख हाथी, इत्यादि सम्पत्ति जीर्ण तृण के समान छोड़ दी, ऐसे जीव नरक जाने लग गये तो स्वर्ग कौन जायेगा? फिर धीरे-से कहना—जब ज्ञानी किसी श्रीपति का सम्मान करने जायें, उससे कहना—तू श्रीपति है इसलिये तेरा सम्मान नहीं है। मैं अनुमान ज्ञान लगा रहा हूँ, साधन से साध्य को जान रहा हूँ कि ये श्रीपति क्यों बन गया? ये इसलिये बना है क्योंकि पूर्व में श्रीजी इसके पति थे। इसलिये यह आज श्रीपति बन गया। ये श्रीजी का भक्त था, उसके पुण्य से इसको श्री मिली।

'भक्तेः सुन्दर रूपं, स्तवनकीर्तिस्तपोनिधिषु।' लोक में कीर्ति का मिलना, स्त्री का मिलना, सुन्दर रूप का होना, ये पंचपरमेष्ठी की भक्ति का प्रभाव है। विश्वास रखना, ऐसे भी लोग हैं जो न साबुन लगाते हैं न सोड़ा लगाते हैं न क्रीम-पाउडर लगाते हैं तब भी उनके चेहरे में कहो तुम्हारा चेहरा दिख जाये। एक वे अभागे हैं जो शृंगारदानियों को खाली कर दिये, लेकिन तब भी 'कोयला होय न ऊजरो सौ मन साबुन लगाय।' सौ मन साबुन लगाने से भी कोयला ऊजरा होगा क्या? क्या आपको अवगत नहीं है कि तीर्थंकर बालक जब जन्म को प्राप्त होते हैं और सुमेरू पर्वत पर सौधर्म इन्द्र अभिषेक करने ले जाता है, अभिषेक होने के उपरान्त इन्द्राणी प्रभु के वदन को पौंछती हैं। पौंछते समय पूरे शरीर का पानी पौंछ लिया, लेकिन भगवान के गाल को बार-बार घिस रही थी। सौधर्म इन्द्र खड़ा-खड़ा देख रहा था। भले देवी रहे, लेकिन है तो स्त्री। बोला—देवी! क्या कर रही हो? भगवान का पूरा गाल ही निकाल दोगी क्या? बोली-स्वामी! क्या करूँ, पूरे बदन का पानी तो मैंने पोंछ लिया, लेकिन प्रभु के गाल पर पानी की एक बूँद छूट नहीं रही है। सौधर्म कहता है—देवी! जरा अच्छे से देख। हे प्रभु! आपका सुन्दर रूप इतना-इतना महान् होता है कि दो आँखें वाला इन्द्र हजार नेत्र बना कर देखता है, तब भी तृप्त नहीं होता है। वे प्रभु इतने सुन्दर होते हैं। हे देवी! यह पानी की बूँद नहीं है। प्रभु के शरीर की इतनी सुन्दरता है कि तेरे मुकुट की मणि की छाया प्रभु के गाल पर मोती-सी चमक रही है। एक वे जीव हैं जिनके चेहरे पर मोती चमकता है, एक वे जीव हैं जो मोतियों के चूर्ण को घिस-घिस कर लगा रहे तब भी कलूटे-के-कलूटे हैं। बुरी तो नहीं लग रही? बुरी लग जाये तो क्षमा करना, साँची कह रहा हूँ। जो है, सो है। बुरी लगे तो छोड़ दो पाउडर क्रीम लेपन।

जब श्रीपति के पास जाओ तो उसका सम्मान करके क्या बोलोगे? हे जीव! हमने समन्तभद्र स्वामी के न्यायशास्त्र को पढ़ा है, अकलंक स्वामी की तर्क विद्या को जाना है, विद्यानन्द स्वामी की अष्टसहस्री, अष्टशती को जाना है। हम लोगों की बुद्धि स्वच्छ स्वस्थ है। देखिये **शरीर को स्वस्थ रखना है तो आयुर्वेद के अनुसार चलना पड़ता है। चारित्र को स्वस्थ रखना है तो श्रावकाचार और मूलाचार के अनुसार चलना पड़ता है। और धी को स्वच्छ रखना है तो न्यायशास्त्र के अनुसार चलना पड़ता है।** देखो जितने धनपति हैं, सबको पता है कि जितने श्रीहीन लोग होते हैं वे अकेले में मुझे गाली देते हैं। अधिकारियों को सामने भले ही लोग साहब-साहब बोलते हों, लेकिन पीछे से पक्के में साँप ही बोलते हैं। पक्का पता है? हाँ। मुझे तो बहुत सारी

बातें मालूम हैं, इसलिये मैं बिना तनाव के जीवन जीता हूँ। मुझे मालूम है कि जिनके साथ तुम रहोगे और जिनके बीच में तुम रहोगे और आपका प्रभाव पड़ेगा तो सामने सब झुकेंगे, लेकिन पीछे सब झुक लें, कोई नियम नहीं है। जब आपको मालूम है कि साहब-साहब कहनेवाले भी साँप भी कहते हैं, तो क्या करना? अब पूर्व पुण्य से मिली विभूति, उसे तुम फेंकना भी चाहोगे तो तुमको छोड़ेगी नहीं। आपको विश्वास न हो तो तीर्थंकर से पूछ लो। पुण्य को तुम फेंकना भी चाहोगे तो वह छोड़ेगा नहीं। पाप को तुम फेंकना चाहो तो वह भी नहीं छोड़ेगा। दोनों का फल आपके सामने है, इसके लिये विश्व का उत्कृष्ट उदाहरण तीर्थंकर है। बहुत अच्छा हुआ कि हमारी चौबीसी में एक भी बनिया नहीं है, एक भी ब्राह्मण नहीं है, एक भी शूद्र नहीं है। होते ही नहीं हैं। सब क्षत्रिय लोग हैं। चौबीस तीर्थंकर क्षत्रिय हैं। सामान्य कुलों में तीर्थंकर का जन्म नहीं होता, नियम है। शासन क्षत्रित्व का चलता है। नियम से, तीर्थंकर का जन्म राजा-महाराजाओं के घर में होता है। प्रमुख चाहिये। **प्रभुत्व शक्ति काम करती है। जिसके रक्त में कमी होगी, जिसके कुल या वंश में कमी होगी, वह उतना स्वच्छ होकरके सिंहनाद नहीं कर सकता। जिसके अन्दर स्वयं कमी बैठी होगी, वह कभी सिंहनाद नहीं कर सकता।**

ऐसा चिन्तन करने वाले भी लोक में लोग हैं जिनके मुख से आप सुन सकते हो—'साधु तो वो बनते हैं जिनके घर में व्यवस्था न हो।' परन्तु वे इस बात को भूल चुके थे कि भिखारी वे बनते हैं जिनके भीतर विकार भरे होते हैं। नहीं-तो भिखारियों से कहो कि तुमको वैसे ही नहीं मिल रहा, अतः तुम साधु बन जाओ।

शान्ति, कुन्थु, अरह ये तीन तीर्थंकर चक्रवर्ती भी थे। चक्रवर्ती से बड़ा वैभव किसी का होता नहीं। यदि किसी के मुख में भोजन भर जाये तो सींक भी काम आ जाती है, लेकिन मुमुक्षु जीव, जो परिग्रह का परित्याग करता है, वह सींक के समान नहीं करता, क्योंकि सींक तो काम में आ रही है। सड़ा तिनका, जो किसी काम में आनेवाला नहीं है, जैसे उसे छोड़ दिया जाता है, ऐसे-ही मुमुक्षु वैभव का त्याग कर देता है।

वैरागी वैभव को सड़े हुए तिनके समान छोड़कर भाग गये। क्या-क्या छोड़ा?

सम्पूर्ण भोग, छः खण्ड के साम्राज्य को सड़े तिनके के समान छोड़कर चले गये।

अब तुम कहो कि शांतिनाथ कुन्थुनाथ ने इसलिये दीक्षा ले ली कि कुछ था नहीं? छियाणवे हजार रानियों के स्वामी थे। अट्ठारह करोड़ घोड़े थे, चौरासी लाख हाथी थे, सबको छोड़कर गये। वैराग्य हो, तो राग कहाँ? राग है, तो वैराग्य कहाँ?

श्रीपति से क्या बोलना? मैंने समन्तभद्र के प्रमाण प्रमेय को जाना है। मैं तेरा सम्मान इसलिए कर रहा हूँ, कि मैं अपनी भूत की पर्याय को देख रहा हूँ। इन मुनिराजों की भूत की पर्याय तो मैं देख ही रहा हूँ कि धन्य है इन युवाओं को जो जींस-शर्ट के युग में दिगम्बर बनकर बैठे गये हैं। इनकी पूर्व की तपस्या कितनी रही होगी कि इस खोटे काल में मुनि बनकर बैठ गये। जितने लोग अपने आप हीन-भावना में जीवन व्यतीत कर रहे हैं, वे सब आज ठीक हो जाओ। किसी भी धनपति के प्रति अशुभ भाव नहीं लाना। आपको पता होना चाहिए देवों के यहाँ—'**गतिशरीर-परिग्रहाभिमानतो हीनाः।**' जो उत्तम-उत्तम जाति के देव होते हैं, वह गति में, परिग्रह में, अभिमान में, शरीर में हीन होते हैं। वृद्धिमान कहाँ होते हैं? आयु, द्युति, कांति इन सब में वृद्धिमान होते हैं।

"स्थिति-प्रभाव-सुख-द्युति-लेश्या-विशुद्धींद्रियावधिविषयतोऽधिकाः।"

उपरिम जाति के देवों, सौधर्म इन्द्र को देखकर सामान्य जाति के जो देव होते हैं वे सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लेते हैं।

आप कहते हो कि भगवान् के जिनबिम्ब के दर्शन करने से सम्यग्दर्शन होगा, इस सूत्र को ठीक कर लेना। अहो आश्चर्य! धन-वैभव/श्री को देखकर देवों में सम्यग्दर्शन उत्पन्न हो जाता है। अब कैसे होगा वैभव दर्शन? इसको मुमुक्षुओं को सीखना चाहिए। कभी-कभी किसी बच्चे को देखकर मन करता है कि इसे मैं गोद में उठा लूँ। जब उसके माता-पिता धर्मात्मा हों, धोती-दुपट्टा पहनाकर मंदिर में खड़े किये हों, ऐसे चमकता है जैसे सौधर्म इन्द्र ये ही खड़ा हो।

वह वैभव को देखकर कैसे सम्यक्त्व प्राप्त कर रहा है? हीन जाति का देव क्या सोचता है? साधना तो मैंने भी की थी, परन्तु मिथ्यात्व की सत्ता में, इसलिये देव भी बना हूँ तो अनुचर बनकर बैठा हूँ। सौधर्म इन्द्र आदेश करता है कि जाओ, हाथी बनकर आओ, तो ऐरावत हाथी बने खड़े हैं देव। इस जीव ने जिनदीक्षा को प्राप्त करके निर्दोषपूर्वक तप किये थे, उसके फल से सौधर्म इन्द्र बना है। इसका वैभव सम्यक्त्व

का कारण बन रहा है। अब मैं ऐसा ही करूँगा, मिथ्यात्व की उपासना ना करके सम्यक्त्व की उपासना करूँगा। ऐसा चिन्तन करके दूसरे के वैभव को देखकर उसको सम्यक्त्व प्रकट हो गया, श्रद्धा उत्पन्न हो गई। ऐसे-ही ज्ञानियो! जब तुम्हारे सामने धर्मात्मा श्रीपति लोग दिखें, तो तुम केवल इसलिये सम्मान कर रहे हो कि तुम्हारा भूत मुझे दिखाई दे रहा है कि आप लोगों ने कितना दान दिया होगा, कितनी निर्ग्रन्थों की सेवा की होगी, अर्हन्तों की आराधना की होगी कि श्री भी तुम्हारे पास है, बुद्धि भी तुम्हारे पास है, यश भी तुम्हारे पास है। सारे पुण्यद्रव्य तुम्हारे पास मिल गये हैं। तुम्हारी पूर्व की तपस्या को मैं प्रणाम करता हूँ। इसलिए तुम्हारा सम्मान है।

श्रीपतियो! जब तुम्हारा सम्मान होने लग जाये तो तुरन्त सिर नीचे कर लेना और कहना हे भगवान्! यह मेरी पर्याय का सम्मान नहीं है, यह उन परिणामों का सम्मान है, जिन परिणामों ने यह पर्याय मुझे प्रदान की है। वे परिणाम क्या हैं? रत्नत्रय धर्म है। मुस्कुराना मत। यही मानकर चलना कि पूर्व में तपस्या की थी, उसका फल है। **महापुरुषों के मुख से किसी का नाम निकलता हो तो यह भी पूर्व तपस्या का ही फल है।** बगल में आदमी बैठ रहा है, कोई बात ही नहीं करना चाह रहा है आपसे। भवन सूने पड़े हैं, यहाँ एक बच्चा नहीं खेल रहा है। बच्चे का रोना भी पापियों के घर में नहीं होता। बच्चों के रोने की तो दूर की बात है, पापियों के घर कौआ भी नहीं बैठता है। क्या सोच रहे हैं? जिसके घर में स्वयं खाने के लिए दाने नहीं हैं, जूठन कहाँ फेंकेगा? जूठन जहाँ होगा नहीं, तो कौआ आयेंगे क्या? जूठन तब निकलेगा जब भरपूर घर होगा, बच्चे जहाँ रोयेंगे। जिसने जीवों की रक्षा की होगी, हरे-भरे वृक्षों को नहीं कटवाया होगा, फल-फूलों को नहीं तुड़वाया होगा। जिन्होंने पिंजरे रखकर चूहों को पकड़-पकड़कर बाहर फेंका है, ऐसे पापियों के घर में बच्चे रो पायेंगे क्या? नपुंसक होंगे, बाँझ होंगे। सब बातें अच्छी तरह सुनो। विद्वानों को तो यह विषय बोलने में शर्म आती है, लेकिन इस विषय को भी जानना आवश्यक है। आज वासनाओं के पीछे संतानों को जन्म नहीं दे रहे हो, तो कल विलख जाओगे, कि संतान कैसी होती है? बहुत सारे युवा पिता नहीं कहला पाये, क्योंकि पहले भोग की लिप्सा करते रहे कि और रुको और रुको, पहले पाप करते रहे और हिंसा करते रहे। गोलियाँ खिलाते रहे अथवा अनेक प्रकार के प्रयोग किये जिससे संतान जन्म ना ले पाये। आज बिलख रहे हैं, कोई स्वप्न आता है कि मुझे पिताजी बोल रहा है क्या? जो पाप का पिता बन

चुका है, वह किसी बेटे का पिता नहीं बनता। **यदि संसार का सुख भी चाहिए तब भी धर्म का ही सहारा लेना पड़ेगा। आत्मा का सुख चाहिए तो संसार के सुख का बुद्धिपूर्वक त्याग करना पड़ेगा।** इसलिए यहाँ कह रहे हैं कि जो परिग्रह है, वह मोक्ष के सुख का साधन नहीं है।

परिग्रह से रहित होकर, जिनदीक्षा लेकर ही मोक्ष के सुख को प्राप्त कर सकते हो। कोई दूसरा मार्ग है ही नहीं।

जिनको मोक्ष-सुख चाहिए, वे परिग्रह का संग छोड़ दें। जिनको नरक चाहिए, वे परिग्रह के साथ चौबीस घण्टे रहा करें। ज्ञानी! परिग्रह से रहित को कहाँ अवसर मिलेगा नरक जाने का? यह सौभाग्य तो उन्हीं के हाथ में जाता है जो परिग्रह से लदे होते हैं। उन्हीं को तो मिलेगी रत्नप्रभा, शर्करा प्रभा, बालुका प्रभा, पंक प्रभा, तम प्रभा, धूम प्रभा, महातमप्रभा भूमियाँ। इन मुनियों को कहाँ लिखी है? यह तो अकिंचन हैं। यह इन भूमियों को प्राप्त नहीं कर सकते। यह तो शोभा उन लोगों को प्राप्त है जो चौबीस घण्टे लात जाओ, धरत जाओ, मरत जाओ। ऐसे लोगों को मिलेगी। इन अकिंचन को तो मात्र ईशत्व भूमि (अष्टम वसुधा) ही मिलेगी। तो क्या विचार है? ईशत्ववान भूमि में जाना, अष्टम वसुधा में जाना है, कि सात भूमियों में जाना है? ईशत्व भूमि में जाना है तो यह परिग्रह छोड़ो। यही लिखा है यहाँ—'**सङ्गाच्च जायते दुखं**' परिग्रह से दुःख उत्पन्न होता है। '**संसारस्य निबन्धनम्।**' इससे संसार आदि का निबन्धन होता है। इसलिए जाओ, पर्याय रही तो पुनः चर्चा कर लेंगे, लेकिन आज मन बनाना कि किसी के प्रति अशुभभाव नहीं लाना। धनवान दिखें तो देखना कि इसका पूर्व का पुण्य है। आप धनहीन हो तो तेरे पूर्व का पाप है। तुम भी ऐसा पुण्य करो कि तुम भी शीलवान रहो। तुम चाहो कि श्रीपति को देखें तो तीर्थंकर को देखो। छोड़ कर भागा तब किसी ने नहीं छोड़ा। जब यहाँ घर छोड़कर गये, सब छोड़कर गये, वहाँ समवसरण लग गया, तब भी भगवान् अधर में चले गये, श्री छू नहीं पायी।

'**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्।**' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।



दुःख में शोच वृथा है

पूर्वकर्मविपाकेन बाधायां यच्च शोचनम्।
तदिदं तु स्वदंष्ट्रस्य जरच्चेडाहिताडनम् ॥305॥
अज्ञे हि बाधते दुःखं मानसं न विचक्षणे।
पवनैर्नीयते तूलं मेरोः शृंगं न जातुचित्॥306॥

अन्वयार्थ—(पूर्वकर्मविपाकेन बाधायां यत् च शोचनम्) पूर्व कर्मों के उदय से प्रतिकूलता उत्पन्न होने पर शोच करना **(तत इदं तु)** सो ऐसा ही है जैसे कोई **(स्वदंष्ट्रस्य)** स्वयं अपने आपको काट ले और **(जरत् चेडाहिताडनम्)** वृद्ध नौकरों को प्रताड़ित करे। **(मानसं दुःखं)** मानसिक दुःख **(विचक्षणे न हि अज्ञे बाधते)** बुद्धिमानों को कष्ट नहीं देता, अपितु मूर्खों को ही सताता है **(पवनैः तूले नीयते मेरोः शृंगं जातुचित् न)** पवन के वेगों से रुई उड़ जाती है, किन्तु सुमेरु पर्वत का शिखर कभी नहीं उड़ता है।

भावार्थ—हे जीव! पूर्व कर्मोदय से दुःख होने पर घबराना अच्छा नहीं है, यह तेरे ही किये कर्मों का फल है। मानसिक दुःख बुद्धिमानों को नहीं होता है।

॥ सद-देशना ॥

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज सारसमुच्चय जी में वस्तुतत्त्व की व्याख्या करते हुये समझा रहे हैं एक पाषाण-खण्ड को बाबड़ी की सीढ़ियों में लगाते हैं तो उन पर चलने वाला नीचे ही पहुँचता है। एक पत्थर को जिनालय की सीढ़ियों में लगाता है तो जिनबिम्ब के पास पहुँचता है। प्रत्येक वस्तु अपने वस्तुत्व गुण से युक्त है। वह कभी अपने वस्तुत्व गुण का नाश नहीं करती। पुरुष की दृष्टि कैसी है? एक वे श्रीपति हैं जो नरकपति होने जा रहे हैं, उनकी श्री उनको नरक तक ले जायेगी। एक वे श्रीपति हैं जो सिद्धत्व की ओर जा रहे हैं। पंचेन्द्रिय अवस्था वह है, अन्तर इतना है कि एक कुए में लगा रहा है, दूसरा मंदिर में लगा रहा है। जिनवाणी के रहस्य को समझो। जिसके कुल में संतान साधु बन रही हो, उन जीवों के परिणामों से पूछना। **जिन जीवों ने कामपुरुषार्थ के काल में भी महामंत्र का स्मरण किया, उनके घर में साधु बननेवाली संतान जन्म लेती है। जिनने कामपुरुषार्थ के काल में भी काम पर ही दृष्टि रखी**

है, उस घर में कंस और रावण जैसे जीव पैदा होते हैं। अर्थ पुरुषार्थ के काल में भी जिस जीव के अन्तस् में तत्त्वदृष्टि थी, श्री का संयोग होने पर भी उनको श्री जी के चरणों में आस्था बनी होगी। वही धनपति बनता है।

यह मत सोचना कि यहाँ जिनमंदिर की स्थापना हो रही है। यह जिनमंदिर की स्थापना नहीं है, यह जिनशासन की स्थापना है। जब-तक ये प्रतिमा विराजमान रहेगी, तब तक इस भूमि पर अरहन्त के शासन का नाम लेने वाले लोग रहेंगे। मंदिर एक टीले का रूप ले चुका हो और सोचने वाले क्या सोचते हैं? आस्थायें और श्रद्धायें कभी नष्ट भी नहीं दिखती हों, तब भी लोगों की आस्थायें टिकी हों, तो टीले पर जाकर सिर टेकते हो। पण्डित जी पहुँचे टीले को देखने के लिये, कि जंगल में टीला है, वहाँ लोग पहुँचते क्यों हैं? टीले के पास जाकर देखा, एक संध दिख रही थी, तो थोड़ा-सा पत्थर खिसकाया, उसमें विशाल प्रतिमा दिखाई देने लग गई। **सबके दिन एक-से नहीं होते।** भगवान् पारसनाथ स्वामी को किसने स्थापित किया होगा यहाँ? समय कहता है कि समय दे दो, सारे चक्र समाप्त हो जायेंगे। कालचक्र के आगे कोई चक्र नहीं चलता। उजड़ा हुआ तीर्थ पुनः विकास को प्राप्त हो गया। यदि अरहनाथ स्वामी की वह प्रतिमा न होती तो आज वहाँ इतनी श्रद्धा कैसे होती? जिस पहाड़ी पर आप बैठे हो, यहाँ तो स्कूल खुल चुका था, फौज रह चुकी थी, किसी के डेरे डल चुके थे; लेकिन जहाँ जिनदेव का डेरा एक बार डल चुका हो, वह डेरा कभी मिट नहीं सकता है।

भगवान् के चेहरे इतने सुन्दर होने चाहिए कि जितने ये क्रीम पाउडर लगाने वाले लोग हैं सब भूल जायें कि मैं सुन्दर हूँ कि भगवान् सुन्दर हैं? एक ज्ञानी मनुष्य की खोज में निकला। मनुष्य की खोज करते-करते बेचारे को कहीं मनुष्य मिला ही नहीं। जब मनुष्य नहीं मिला, तो एक पहाड़ी पर चढ़ गया। वहाँ सोचता है कि अब तो मैं थक चुका हूँ, कहीं मनुष्य नजर नहीं आ रहे, मानवता तो दिखाई ही नहीं दे रही है। जैसे-ही पहाड़ी पर पहुँचा, सुन्दर शिखर-बन्द जिनालय दिखाई दिये। चौबीस शिखर।

मंदिर कितना ही सुन्दर बन जाये, मंदिर का शिखर लाल पीला नहीं होना चाहिये, मात्र सफेद ही होना चाहिये। सुधा यानि चूना, सफेद स्वच्छ ही। शुक्ल लेश्या का प्रतीक। **सिद्धशिला का प्रतीक शिखर होता है।** शिखर एकदम तिलक जैसे बनाना।

टीका नहीं, तिलक। टीका महिलायें लगाती हैं। शिखर की भाँति तिलक है, बिन्दी होती है टीका। जिनने प्रतिमायें विराजमान की हैं, वे तो महाभाग्यवान हैं ही; लेकिन प्रतिमायें कहाँ हैं, यह तो अन्दर जाकर पता चलेगा। **द्रष्टं जिनेन्द्र भवनं भव-ताप-हारी।** जिनेन्द्र भगवान् का भवन भी दिख जाये तो पाप का हरण हो जाता है। सफेद शिखर और चमकते स्वर्णकलशों को जब निहारते हैं। शिखर इसलिये बनाना चाहिये कदाचित किसी जीव की मरणासन्न अवस्था हो, कदाचित् मंदिर का कलश भी देख लिया तो उसके पाप कट जायेंगे।

जैसे-ही उस जीव ने कलश देखा, धार्मिक भी था, सोचा कि कोई मंदिर होना चाहिये। मनुष्य तो नहीं मिले, नीचे देखता हूँ कि क्या है? वहाँ एक बन्दर आया, उसने झाँककर देखा, सोचा कि मनुष्य कितना स्वार्थी है। परमात्मा भी बने तो मनुष्य आकार में बने, हमारा कोई भगवान् नहीं है। फिर-भी सोचता है कि चलो भाई अन्दर तो देखूँ। आदिनाथ स्वामी को ऊपर से नीचे देखता है। नीचे बैल बना था। उस बन्दर ने सोचा कि मेरे-जैसे न सही, मेरी जाति के तो हैं। धीरे-से आगे बढ़ गया। हाथी भी मिल गया, घोड़ा भी मिल गया। घोड़ा के बाद जैसे ही बन्दर अभिनन्दन नाथ के पास पहुँचा, उसको अपने भगवान् दिख गये। अब तो वह बड़े अच्छे से बैठ गया कि मेरे भी भगवान् हैं। सम्मेदशिखर में किसी टोंक पर बन्दर मिले या न मिले, अभिनन्दन नाथ की टोंक पर जरूर मिलते हैं। धीरे-धीरे बन्दर ने सोचा कि और-आगे देखूँ। भगवान् महावीर स्वामी तक पहुँच गया। और जंगल में दौड़कर जाता है, सबसे कहता है कि केवल मनुष्यों और वृक्ष के भगवान् नहीं होते, अपने भी भगवान् हैं। चलो, अपन भगवान् की आराधना करते हैं। जिन भगवान् के जो चिह्न थे, वे सब अपने-अपने भगवान् के सामने बैठ गये। इसी बीच में एक श्रावक दर्शन करने आया। जैसे-ही उसने देखा, अरे भैया! यहाँ तो बैल से लेकर शेर तक बैठे हैं, सो बेचारा मूर्छा खाकर गिर पड़ा। अब जो मनुष्य की खोज करने गया था, वह धीरे-से उतरता है और देखता है कि एक बुढ़िया पड़ी हुई है। एक बड़े कर्मसिद्धान्तवादी विद्वान् पहुँचते हैं। सामने देखा कि बुढ़िया पड़ी हुई है। उन्होंने कहा— **'कर्म-प्रधान विश्व कर राखा, जो जस करहिं सो तस फल चाखा।'** जिस जीव ने जो कर्म किये हैं, वह उसको भोगने ही पड़ते हैं। ऐसा उपदेश करके वहाँ से भाग आया। न उन्होंने भगवान् के दर्शन किये न बुढ़िया के उठाने के भाव किये। दूसरे विद्वान् आये आध्यात्मवादी। वे कहने लगे कि आत्मा त्रैकालिक है,

उसका विनाश होता नहीं है, यह तो पर्याय का परिणमन हो रहा सो होने दो। बुढ़िया बेचारी मूर्छित पड़ी है, किसी ने नहीं उठाया। इस बात को भूल ही गये। कर्मसिद्धान्त लगाने के पहले कर्मसिद्धान्त को निहारो। अध्यात्म के पहले अध्यात्म को निहारो। ये भूल ही गया कि दया धर्म का मूल है। वह वैज्ञानिक गया, उस बुढ़िया को पानी का छींटा मारा, उसकी मूर्छा दूर हुई, परन्तु उसने मुड़कर भगवान् की ओर नहीं देखा। चावल की डिब्बी उठा करके लौट आये। सोचता है कि मनुष्य कहीं दिखाई नहीं देते हैं। आकार का मनुष्य है बिजूका जो न खाता है न खाने देता है। देश में **ऐसे बहुत सारे लोग होते हैं जो न धर्म करते हैं न करने देते हैं। वे बिजूका हैं।** जैसे-ही कोई अच्छा काम हुआ, सो उसने टाँग अड़ाई।

वैज्ञानिक सोचता है कि कहीं मनुष्य मिलेगा भी कि नहीं मिलेगा? उसने जैसे-ही नजर दौड़ाई, अन्दर बैल हाथी घोड़ा शेर सब बैठे हैं। उसने सोचा कि कुछ भी हो, दर्शन करना चाहिये। सो आदिनाथ की प्रतिमा के नीचे बैल बैठा था। भद्र-परिणामी वृषभ को एक किनारे करके दर्शन कर लेता है। हाथी को भी एक किनारे करके दर्शन कर लेता है। उस वैज्ञानिक ने हाथ का द्रव्य वेदी पर चढ़ाया और जैसे ही नमस्कार किया, तो बन्दर ने धीरे-से सिर पर हाथ रख दिया 'आशीर्वाद'। वह सज्जन बोला—ये क्या कर रहे हो? कुछ नहीं, तुम नमस्कार कर रहे हो, सो मैं आशीर्वाद दे रहा हूँ। वह सज्जन वैज्ञानिक बोला—भाई! मैंने आपको नमस्कार नहीं किया, मैंने तो भगवान् अभिनन्दननाथ स्वामी को नमस्कार किया है। बन्दर धीरे-से कहता है मेरे मित्र! नीचे देख। तुम्हारे भगवान् के पास तो कोई मनुष्य ही नहीं।

अब चर्चा शुरू हो गई बन्दर और वैज्ञानिक की। ये मेरे भगवान् नहीं हैं। ये तो जो चौबीस भगवान् होते हैं, उनकी पहचान कैसे हो, सो आपका चिह्न बना दिया। यदि चिह्न बनाये हैं, तो एकाध का मनुष्य बना देते, मेरा ही क्यों बनाया? हम पशु तिर्यञ्च ही मिले आपको? वह बोला-ऐसा है कि मनुष्यों के चेहरे मिलते-जुलते हो जाते हैं तो पहचान नहीं हो पाती, इसलिये चौबीस भगवान् में से एक भी भगवान् का चिह्न मनुष्य नहीं है। सब तिर्यञ्चों के बना दिये हैं। बन्दर कहता है—ज्ञानी! सुन। अन्दर की बात बोलूँ? क्या सभी मनुष्यों के चेहरे एक-से हैं? इसलिये अपना चिह्न नहीं और हम लोगों के चेहरे अलग-अलग हैं, इसलिये चिह्न बना दिया। यहाँ बैल से शेर तक सब शान्ति से बैठे हैं। चौबीस तीर्थंकर में से एक भी तीर्थंकर का चिह्न मनुष्य नहीं है। इसका

तात्पर्य यह नहीं है कि चेहरे एक-से हैं। गहरी बात समझो। मनुष्य का चिह्न भगवान् का क्यों नहीं है? क्योंकि मनुष्यों के चेहरे तो एक-से दिखते हैं, परन्तु इन सबके मन अलग-अलग होते हैं; जबकि हम सबके चेहरे अलग-अलग हैं, लेकिन मन एक-से हैं, इसलिये हम सब एकसाथ बैठे हुये हैं।

अब वह वैज्ञानिक, जो मनुष्य की खोज में निकला था, डायरी निकालता है— जिनके चेहरे एक-से हैं, वे स्टेच्यू भी हो सकते हैं और बिजूका भी हो सकते हैं, लेकिन जिनके मन एक-से हैं वे मनुष्य हैं, जिनके मन एक-से नहीं हैं वे तिर्यञ्च हैं। जब उस बन्दर ने अपने भगवान् के चिन्ह को देखा सो लगा कि मेरे भी भगवान् होते हैं। ऐसे-ही जिनकी प्रतिमायें रखी जा रही हैं उनके बच्चे कहीं धर्म से विमुख हो गये, यदि कदाचित् डेरा पहाड़ी दर्शन करने आ गये, देखा कि अमुख चन्द की प्रशस्ति लिखी हुई है, तो कहेगा कि मेरे भी भगवान् हैं। प्रशस्ति का उद्देश्य अहं मत समझना। यही समझना कि मेरे वंश की परम्परा है।

कभी-कभी भटका हुआ जीव पहुँचे तो उसे बोध हो जाए। एक हजार पृष्ठ का ग्रन्थ पढ़ने में बहुत समय लगता है, लेकिन एक चित्र के माध्यम से अल्प समय में पूरा इतिहास जान लिया जाता है। प्रतिमाओं को स्थापित करने का उद्देश्य मात्र इतना है कि पता नहीं किस श्री जी को देखकर भाव बदल जाए। चाँदनपुर के महावीर स्वामी, तिजारा जी के चन्द्रप्रभ स्वामी। इन सब प्रतिमाओं को भी किसी ने विराजमान किया होगा। भूमिगत हो गई, पुनः अतिशय के साथ प्रकट हुई।

विराजी प्रतिमायें अभी तक आप जड़ ही मानते रहे हो, क्योंकि यह पढ़ाकर रखा गया है कि जब तक पत्थर खदान में है तब तक जीव है, बाहर निकालो तो अजीव। आपको मालूम होना चाहिये कि जघन्य अवगाहना से युक्त होकर भी जीव होता है। क्या मालूम उस पत्थर में भी जीव रहता हो। 'विश्व तत्त्वप्रकाश' ग्रन्थ में उल्लेख आया है। एक वह भूमि है जहाँ संडास के लिये खुदाई हो रही है और एक वह भूमि है जहाँ मंदिर स्थापना के लिये खनन हो रहा है। उस भूमि में जो जीव हैं, उन जीवों का तीव्र यशःकीर्ति नामकर्म का उदय रहता है, सो वहाँ मंदिर की स्थापना होती है। आज जब महावीर का नाम आये तो चाँदनपुर के महावीर की प्रतिमा सामने आ जाती है और शान्तिनाथ का नाम आये तो खजुराहो या आहार जी के शान्तिनाथ दिखने लगते हैं, बाहुवली का नाम आये तो गोम्मटेश बाहुवली दिखाई देने लगते हैं। कारण क्या है?

उस **जीव की यश:कीर्ति, साथ में द्रव्य-दाता का परिणाम और प्रतिष्ठाचार्य और सूरिमंत्र प्रदाता आचार्य, इन सबके परिणामों की विशुद्धि का संग्रह होता है तो प्रतिमा में अपने आप चमत्कार होता है।** गोम्मटेश की प्रतिमा की इतनी प्रसिद्धि क्यों हुई? वहाँ पर प्रतिमा गढ़ते समय जितना पत्थर निकलता था, शिल्पकार को उतना सोना दिया जाता था। कितनी तन्मयता से शिल्पकार ने प्रतिमा बनाई।

शिल्पकार ने नियम लिया था कि जब तक प्रतिमा नहीं बन जायेगी तब तक नमक खाने का त्याग। एक-दिन उसका मन विचलित होने लग गया। जब प्रतिमा का बहु भाग बन गया, तब पत्थर कम निकलने लगा, तो सोचता है कि अब सोना कम मिलेगा। चामुण्डराय को मालूम चला। उसने कहा कि तुझे उतना ही सोना दिया जायेगा। शिल्पकार की माँ को मालूम चला तो वह बोली—बेटा! तूने मूर्ति तो अनेक बनाई हैं। अब मूर्ति नहीं बना रहा है, तू भगवान् बना रहा है। बेटा! भगवान् का द्रव्य लेगा क्या? जा, वापस करके आ। शिल्पकार की माँ के भी इतने पवित्र परिणाम थे। माँ रोज बिना नमक का भोजन दे रही थी तब बेटे ने एक दिन भी नहीं पूछा कि इसमें नमक क्यों नहीं है। एक दिन बेटा कहता है—माँ! आज आपने भोजन में नमक नहीं डाला क्या? माँ समझ गई—मेरे लाल! क्या प्रतिमा बन गई? बोला—क्यों, माँ! आपने कैसे जाना? मैंने छ:ह महीने से भोजन में नमक नहीं डाला और तू आज पूछ रहा है कि नमक नहीं है, तो मैं समझ गई कि आज तेरा काम पूरा हो चुका है। जब पत्थर के भगवान् बनाने में जीव इतना तन्मय हो जाता है, फिर निज का भगवान् बनाने में नमक की याद कैसे आ सकती है? अपने जीवन में **जब एकाग्रता की वृद्धि होती है, तब जगत् के प्रपंच दिखाई नहीं देते हैं।**

कोई प्रोफेसर का बेटा पोजीसन बनाये तो पीठ ठोकने लायक नहीं है। जिसके घर में खाने को भी न हो, पढ़ाने को कोई विशिष्ट अध्यापक न हो, वह पोजीसन बनाये तो पीठ ठोकने लायक है। आपकी भक्ति आपके भवनाश का हेतु बने। इस चौबीसी की स्थापना कर लो, अगली चौबीसी में आप ही स्थापित हो जाओ।

आचार्यभगवन् बहुत सहज भाषा में समझा रहे हैं कि जो बन्ध किया है, वह उदय में आयेगा। उदय में आये कर्म को देख करके नवीन बन्ध करने का विचार बन्द क्यों नहीं कर रहा है? **पूर्व कर्म का विपाक, वह अभिनव बंध का कारण नहीं है। कर्म के उदय के विपाक के काल में जो अन्तस् में हर्ष-विषाद के परिणाम हैं, वे नवीन**

बन्ध के कारण हैं। आप चाहो तो कर्म-उदय पर कर्म की निर्जरा कर सकते हो। आप चाहो तो बन्ध कर सकते हो। बन्ध भी हमारे हाथ में है, मोक्ष भी हमारे हाथ में है। मैं स्वाधीन हूँ। पूर्ण स्वाधीन दशा है चारों गतियों में भ्रमण की। एक भी स्थान ऐसा नहीं है जो पराधीन हो। बिल्कुल स्वाधीन हो आप। न पैरों में दोष है, न शरीर में दोष है, न आँखों में दोष है। यंत्र में कोई दोष नहीं है। संचालक क्या चाहता है? विमान न आपको विदेश ले जाता है न आपको स्वदेश ले जाता है। वह तो साधन मात्र है। आप जहाँ जाना चाहो वहीं बिठाल देता है। जंगम-अजंगम यंत्र है। यंत्र कुछ नहीं कर रहा है। यंत्र पराधीन है। उससे जैसा काम कराओ वैसा कर देता है। यही शरीर के साथ है। यह शरीर न आपको स्वर्ग ले जायेगा, न नरक ले जायेगा, न सिद्ध बनायेगा, न निगोद ले जायेगा; परंतु इन सभी अवस्थाओं में सहकारी अवश्य बन सकता है। परिणामों में निर्मलता थी, भावों में विशुद्धि थी, तो आप मंदिर में आ गये, उपदेश सुनने के परिणाम हुए। कुछ लोग छुट्टियाँ मनाने के लिए यत्र-तत्र भटकते हैं। कुछ वे लोग होते हैं जो पंचपरमेष्ठियों के चरणों में पहुँचते हैं। ये आना महत्वपूर्ण नहीं है, भावों की दशा महत्वपूर्ण है। यहाँ ही क्यों आये? धर्मज्ञता। **आपकी धर्मज्ञता की पहचान करानेवाला कोई है तो आपकी परिणति है। जैसी परिणति होगी, देह की गति वैसी होगी। देह की गति और भावों की परिणति जैसी होगी, भविष्य की गति वैसी होगी।** एक सहज स्वतन्त्र होकरके बैठना तो सीखो। जब तक भगवान् नहीं बने हो, सिद्ध नहीं बने हो, तब तक मनुष्यपर्याय का इतना तो ज्ञान है, उस ज्ञान का उपयोग तो कर लो।

हर वस्तु को परमात्मा के नाम पर छोड़ करके हम अपने ज्ञान के उपयोग से शून्य हो रहे हैं। श्रद्धेय को श्रद्धा तो देना चाहिए, परन्तु श्रद्धेय को अपना पुरुषार्थ नहीं देना चाहिए। जो श्रद्धेय को पुरुषार्थ देकर बैठ गया, वह अपने आप में बहुत भूल कर गया। पुरुषार्थ देने से तात्पर्य अब तो जो भगवान् करेंगे वह होगा, नहीं होगा तो वह जो हम करेंगे। परन्तु हमारी आस्था तो परमात्मा पर ही है। वह भी हमारा पुरुषार्थ ही है। सम्यग्दर्शन भी पुरुषार्थ ही है, सम्यग्ज्ञान भी पुरुषार्थ ही है और सम्यक्चारित्र भी पुरुषार्थ ही है। **बिना पुरुषार्थ के कोई काम की सिद्धि होती नहीं।** उस पुरुषार्थ में तुम्हारा पुण्य सहकारी बन रहा है। भाग्य सहकारी बन रहा है। भाग्य क्या है? **जो भूत का पुरुषार्थ है, वह वर्तमान का भाग्य है** और वह भाग्य वर्तमान के पुरुषार्थ के लिये सहकारी है। वह कैसे ग्रहण करना? जब शिल्पकार दीवाल बनाता है, एक दिन में

बहुत लम्बी दीवार खड़ी कर दी जा सकती है क्या? यदि खड़ी कर भी दी, तो टिकेगी क्या? इसलिए समय तो लगाना चाहिए। यह पुरुष शीघ्र भवन बनाने के राग में और शिल्पकार अधिक भवन बनाने के राग में बहुत जल्दी में भवन बनाता है तो वह गिर जायेगा। पकने को समय तो चाहिए। जिस दीवार का आधार हिस्सा आज खड़ा किया जा चुका है, उसके ऊपर का हिस्सा कल खड़ा करेगा। लेकिन यह बताओ कि जो दीवार का हिस्सा तीन दिन पहले खड़ा किया था वह हिस्सा यहाँ कार्यकारी है कि नहीं है? पुरुषार्थ और भाग्य को भी विवेकपूर्वक समझो। जो हमने पूर्व में पुरुषार्थ किया था, वह आज के लिये आधी दीवार है, उसी दीवाल पर हमारा आज का पुरुषार्थ चल रहा है। यदि आपने पूर्व में दीवाल खड़ी नहीं की है, तो आपको जमीन से प्रारम्भ करना पड़ेगा। इसी प्रकार जिन जीवों के शीघ्र काम होते दिखते हैं, थोड़ा पुरुषार्थ किया और बहुत फलित हो रहा है। जिसने पहले से दीवाल खड़ी करके रखी है, उसकी दीवाल जल्दी खड़ी हो जायेगी। जिसको नींव से प्रारम्भ करना है, उनको तो बहुत समय लगना ही है। कुछ लोग ऐसे होते हैं कि किसी भी क्षेत्र में जरा-सा भी हाथ डालें तो फलित होता है। यदि ग्राहस्थिक व्यापार में प्रयोग कर रहे हैं, तो उन्हें श्री सम्पन्नता मिल रही है। कोई भी धार्मिक अनुष्ठान कर रहा है, उसमें सफल हो रहा है। कोई जीव चारित्र में बढ़ रहा है, तो उसका संयम सफल हो रहा है। जो ज्ञान में आगे बढ़ रहा है, तो ज्ञान में सफल हो रहा है। ये सब तुम्हारी पूर्व की आधी-आधी दीवालें हैं, उनके ऊपर दीवाल खड़ी कर रहे हो। भूत भी होना आवश्यक है। मित्र! बहुत पुरुषार्थ करने के बाद जिनको बहुत कम दिखाई दे रहा है, आपको नींव से प्रारम्भ करना पड़ रहा है, नींव भरने में बहुत समय लगता है। इसलिए **सुख को देखकर भी फूलो मत और दुःख को देखकर कूल्हो मत। ये दोनों शाश्वत नहीं हैं। पापोदय जब तक है, तब तक दुःख है। पुण्योदय जब तक है, तब तक सुख है।** लेकिन इन दोनों से रहित हो जाओ तो परम सुख है, फिर कभी दुःख नहीं है। परम सुख के पास पहुँचने के लिये दोनों का विसर्जन करना होगा, परन्तु जीव वहाँ तक नहीं पहुँच पा रहा है। ये सुख-दुःख बीच की धारा है। पुण्य-पाप का परिणमन चल रहा है।

शुभ उपयोग से पुण्यास्रव होता है, अशुभोपयोग से पापास्रव होता है। दोनों के निमित्त से जीव संसार में घूम रहा है। पुण्य से तुम यहाँ तक तो आ गए हो। भूत लेकर आया है तुम्हें। भूत को मित्र बनाना चाहिए, भूत बहुत सारे काम करा देता है।

हर व्यक्ति को भूत सिद्ध करना चाहिए। जिसको भूत सिद्ध हो जाय उसका काम सिद्ध हो जाय।

मित्र! श्मशान में जाकर नहीं बैठ जाना। तीन काल हैं। जिस समय काम चल रहा होता है, वह वर्तमान। जिस काल का समय हो चुका होता है, कार्य पूर्ण हो जाता है, वह भूत में चला जाता है। जिस काल को प्रारम्भ ही नहीं किया है, मात्र विचार किया है और जो न पूरा किया है न प्रारम्भ किया है, वह भविष्य में जा रहा है। अतः भूत सिद्ध कर लो। **जिसका भूत सिद्ध है, उनका वर्तमान पवित्र है। जिनका वर्तमान पवित्र है, उनका भविष्य नियम से उज्जवल है। कुछ लोग वर्तमान में कुछ भी सुधार करना नहीं चाहते और भविष्य की बहुत ऊँची-ऊँची उड़ान भर रहे हैं। उनका भविष्य कभी ऊपर नहीं जायेगा, नीचे ही आयेगा। जिनको भविष्य उज्जवल करना है, उनको वर्तमान में बड़े निर्मल भाव से जीना पड़ेगा।** जीवन-पर्यन्त अपने दाँत अच्छे रखना है तो आज से ही गुटका छोड़ना पड़ेगा। इस मुख की चमक बनाये रखना चाहते हो तो इन धूम्रपान आदि गंदी सामग्रियों से मुख को दूर रखना होगा। आप चाहो कि मेरा भविष्य का चेहरा बहुत सुन्दर हो और वर्तमान में गुटका तम्बाकू खा रहा है, उसका भविष्य क्या होगा ?

आ. कुलभद्र स्वामी कह रहे हैं कि महापुरुषों को निहारने के उपरान्त एक क्षण को निज को निहार लेना। जो-जो वर्तमान में तुम्हारे द्वारा पूजे जा रहे हैं। पुराण ग्रन्थों का भी अध्ययन करना चाहिए। पूज्य के भूत को देखो कि जो-जो वर्तमान में पुज रहे हैं, उनके भूत कैसे थे? उनके भूत पवित्र थे, सो वे आज पूज्य हो रहे हैं। जिनके नाम के प्रति जीव अशुभ भाव रखता है, राम का नाम सुनते ही कुपित हो रहा है, उन लोगों के भूत देख लो। बड़ा सहज विषय है। अनुमान ज्ञान, स्मृति ज्ञान, प्रत्यभिज्ञान। तर्क, अनुमान, आगम ये सारे विषय न्याय के हैं। आपको मात्र न्यायशास्त्र नहीं देखना चाहिए, अपने जीवन को भी देखना चाहिए। किसी व्यक्ति के दाँत काले हो चुके हैं, लाल-पीले दिखाई दे रहे हैं, कारण क्या है ? गुटका खाने से हो गए। दाँतों को देख करके उसके क्रियाकलाप को जान लिया, यह इसने अनुमान ज्ञान लगा लिया। जीवन में ऐसा कौनसा विषय बनता है जिसमें न्याय न लगता हो? दाँतों के रंग से वह जान गया कि गुटका खाता है। तुझे देखकर वह समझ गया कि ये ब्रह्मचारी नहीं है। बेटा खड़ा हुआ है,

इसका मतलब है कि कोई इसका पिता होना चाहिए और जो पिता है, वह बालब्रह्मचारी नहीं है। साधन से साध्य का ज्ञान हो ही रहा है।

आचार्य महाराज यहाँ जीवन को आनन्द से जीने की शिक्षा दे रहे हैं। यदि आपने किसी से ऋण लिया और आप सज्जन हो ईमानदार हो तो आपको उसके पैसे देने में दु:ख किस बात का? अपितु सुख होना चाहिए कि चलो, भार उतर गया। **ऋण वे ही लेते हैं, उनके ऊपर ही ऋण चढ़ता है जिनने पूर्व में पवित्र दान नहीं दिए। ऋण-जैसा कष्ट जगत् में कहीं नहीं है।**

दिगम्बर मुनि उस व्यक्ति के यहाँ आहार लेने नहीं जाते जिसने ऋण लेकर आहार बनाया हो।आपने यदि परिवर्तन करके भी आहार बनाया है तो मुनिराज उसे नहीं लेंगे। आपके घर में अच्छे चावल नहीं थे, आप किसी से वासमती चावल लेकर आये हो, बदले में आपने दोगुने चावल दिए हैं और महाराज को मालूम चल जाए कि ऐसा करके इसने चावल बनाया है तो वह चावल नहीं लेंगे। महाराज न आते तो मेरे चावल दस दिन तक चलते। मुझे दो गुना खर्च करना पड़ गया। ये तेरे मन में भावों की अशुद्धि हो गई। ऋण लेकर तुमने द्रव्य बनाया तो जब से तुमने द्रव्य बनाया तभी से देने के भाव होंगे तो मन में विकल्प आयेगा 'क्या करूँ? साधु की सेवा भी करना था।' लेकिन ऋण लेकर की है। मन शुद्धि, वचन शुद्धि, काय शुद्धि, आहार-जल शुद्ध है। तुम्हारी मनशुद्धि तो उसी क्षण समाप्त हो चुकी, अब वह आहार लेने योग्य नहीं है। आगम की दृष्टि में साधु को वह आहार देना चाहिए जो स्वयं के लिए रोज बनाते हो प्रासुक और शुद्ध। आप अलग से बनाओगे तो नियम से विकल्प होंगे। फिर मन कहेगा कि अरे इतने दिन से महाराज नहीं आ रहे, इतना खर्च हो गया। उस जीव की मन की शुद्धि समाप्त हो गई। जबकि तुम्हारा द्रव्य भी खर्च हो चुका है, समय भी खर्च हो चुका है, लेकिन मन की अशुद्धि ने पुण्य को भी नहीं आने दिया। वह तो ऐसा हो गया कि बहुत मेहनत की किसान ने। अच्छे बगीचे लगाये मेहनत भी की और बौर भी आ चुके हैं। तूफान आया, ओले पड़ गए, सब झर गए। ऐसे-ही तुमने पुण्य का बगीचा तो लगा लिया, लेकिन भावों की अशुद्धि के ओले तुमने गिरा लिए, सो तुम्हारे पूरे पुष्प झर गए। बहुत नाजुक समय है। **पुण्य की प्रचुरता होते ही भावों को सँभालने की आवश्यकता है।** माना कि आप दिगम्बर मुनिराज बन गए, अब सँभलने का समय आ चुका है।

जब कभी जयपुर जाना, वहाँ थम करके प्रतिमा गढ़ते देख लेना। जब पाषाण बड़ा होता है, तब शिल्पकार यहाँ-वहाँ देखता रहता है और हथौड़ी मारता रहता है। उसको टेंशन नहीं है, क्योंकि कहीं भी पटकूँगा वह तो हटाना ही है व्यर्थ का पत्थर। जैसे-जैसे प्रतिमा का आकार निकल आता है, जब शिल्पकार पाषाण की प्रतिमा को परमात्मा का रूप देता है, तब मस्तिष्क लगाता है, चेहरा बनाता है। वीतरागता तभी भर पायेगा जब ज्ञान में ज्ञेय आयेगा। एक शिल्पकार को चेहरे पर वीतरागता देने के लिए कितना चिन्तन करना पड़ता होगा कि ऐसे वीतरागता का आकार आना चाहिए। उस समय ज्ञान में सर्वज्ञ का चेहरा दिखाई देगा। पत्थर की मूर्ति में भी वीतरागता टपकाने के लिए शिल्पकार को तटस्थ होकर अपने ज्ञान में उस ज्ञेय को लाना पड़ता है, जो साक्षात् तीर्थंकर का चेहरा होता था। फिर जिसको अपना ही भगवान् अपने में प्रकटाना हो, उस व्यक्ति को अपना लक्ष्य कितना एकाग्र करना होगा और कितना स्थिर हो करके बैठना पड़ेगा। जब परमात्मा के चेहरे को बनाने बैठता है, उस समय कितनी सावधानी बरतता है? यदि दिगम्बर आम्नाय की प्रतिमा शिल्पकार बना रहा हो, जबकि उसमें कुछ भी दिखाई नहीं देता।

जयपुर में अन्य देवी-देवताओं की न्यौछावर यदि एक हजार होगी तो अरहन्त की प्रतिमा की न्यौछावर एक लाख होगी। एक व्यक्ति ने शिल्पकार से प्रश्न किया कि देवी-देवताओं की प्रतिमा बनाने के लिए तो आपको बहुत सारे शृंगार भी करने पड़ते हैं, बहुत सारे सामान भी जुटाने पड़ते हैं, जबकि इसमें तो कुछ भी नहीं करना पड़ता। शिल्पकार कहता है—बाबू जी! आपको इतना ही समझ में आ गया होता तो आप जिन भगवान् होते। रहस्य समझाओ। बेटा! होली खेली? चेहरा काला करने में कितना समय लगा ? और चेहरे के रंग को साफ करने में कितनी देर लगी ? जो कालोंच लगी थी, उसको छुटाने में कितना साबुन-पानी बहाया और कितना समय लगाया? बेलबूटों को छपाने में बहुत देर नहीं लगती, सफाई में बहुत देर लगती है।

कर्म के बंध में समय नहीं लगता, कर्म को छुड़ाने में बहुत समय लगता है। शिल्पकार कह रहा है कि ये तीर्थंकर अरहन्त, बाहुवली स्वामी खड़े हुए हैं। इनका आकार देने में शिल्पकार मात्र हटा रहा था। यदि इस प्रतिमा में किञ्चित् भी नाक की भी कमी हो गई तो जैन प्रतिमा की प्रतिष्ठा नहीं होगी और किसी देवी-देवता की प्रतिमा बन रही है उसमें कहीं प्रतिमा चटक भी जायेगी तो फिर चिपका देगा, उसमें

रंग भर देगा, उसके पूरे पैसे मिलेंगे। जिनेन्द्र की प्रतिमा में किञ्चित् भी कमी आ गई तो गए पूरे पैसे। प्रतिष्ठाचार्य प्रतिमा देखेगा। यदि शास्त्रानुसार है, तो ही स्वीकार की जायेगी, नहीं-तो पत्थर की प्रतिमा है।

बेटा! यदि तेरे भाव मुनि बनने के स्वप्न में भी आ गये तो हाथ पैरों को सँभाल कर रखना, शरीर को सुरक्षित रखना। जैन परम्परा में अन्धे, लूले, लँगड़े को जैनेश्वरी दीक्षा नहीं दी जाती। कपड़ेधारी कैसे भी होंगे अन्धे, लूले, लंगड़े, वे साधु के रूप में घूम सकते हैं। यहाँ तो जब अरहन्त की मूर्ति को निर्दोष होना चाहिए, तो भगवान के भेष में सदोषता कैसे? मेरा भाग्य था, सात-आठ वर्ष की उम्र में मैंने एक शास्त्र में पढ़ लिया था कि जिसके हाथ-पैर टूटे हों, वह मुनि नहीं बन सकता। मैंने तो खेलने जाना बंद कर दिया था, क्योंकि मुझे मालूम था मुझे मुनि महाराज बनना है। यदि हम खेलने गए, हाथ-पैर टूट गए, तो प्रतिमा भंग हो जायेगी और खण्डित प्रतिमा की प्रतिष्ठा कैसी? निर्दोष चाहिए। पाषाण की प्रतिमा बनाते-बनाते जब चेहरा बनाता है तब कितना ध्यान रखना पड़ता है? जरा-सी मेरी छैनी तिरछी हो गई तो ये अरहन्त की प्रतिमा के रूप में प्रतिष्ठित नहीं हो सकेगी।

जब शिल्पकार प्रतिमा गढ़ता है तो पूर्ण एकाग्र हो जाता है। जो प्रतिमा बन चुकी है, थोड़ा-सा काम बचा है, तब पूर्ण एकाग्र हो जाता है, क्योंकि यदि किञ्चित् भी मेरी छैनी आड़ी-टेड़ी हो गई तो मेरी पूरी मेहनत व्यर्थ चली जायेगी। ऐसे-ही गृहस्थों के धर्म रागमय थे, आचरण रागमय थे, कुछ हो भी जाता था तो चीर ओढ़ लेता था, लेकिन यहाँ तो कोई चीर भी नहीं है, तनिक-सा छींटा भी दिखाई देगा। छींट पर छींटे भी नहीं दिखते, सफेदी पर छींटे तुरन्त दिख जायेंगे। ये दिगम्बर मुद्रा है, अब सँभलने का समय है। जैसे शिल्पकार द्वारा चेहरा बिगड़ने पर मेहनत व्यर्थ चली जायेगी, ऐसे-ही जिस जीव ने जिनमुद्रा को प्राप्त किया उस जीव के भगवान् बनने का समय आ गया है। उसी समय कहीं परिणामों की छैनी फिसल गई तो तेरा पूरा पुरुषार्थ पानी में चला गया, निगोद में चला जायेगा। नरक भी नहीं मिलेगा, निगोद चला जायेगा। ये चेहरा बन रहा है। इसलिए परिणामों को सँभालने की आवश्यकता है।

जो हमने पूर्व में कर्म किया है, उस कर्म के फल को तो देखो, लेकिन कर्म के फल में हर्ष-विषाद को मत देखो। अब दुःखी क्या होना, हमने ही तो किया था। ऋण मैंने लिया है तो मुझे देना चाहिए। जितना लिया उतना देना पड़ेगा, ब्याज भी देना पड़ेगा।

इसलिए ये मुस्कराहट ये आनन्द भूत का फल है। उस आनन्द मुस्कराहट को कहीं बदल कर मुस्करा लिया तो..... ?अरे! मुस्कराहट ही लेनी है तो ऐसी जगह लो जो मुस्कराहट 'मुस्कराहट' ही दे। वहाँ मत मुस्कराओ जहाँ मुस्काने के बदले गाल पर चाँटा पड़ जाये। मुस्कराना है तो ऐसी जगह मुस्कराओ जहाँ मुस्कराहट का फल 'माला' मिले। वहाँ मत मुस्कराओ जहाँ मुस्कराने का फल 'फाँसी' लग जाए। आप समझो, क्योंकि आप गृहस्थ हो, मेरे से ज्यादा पढ़े-लिखे हो। आप-सब पापों के प्राचार्य हो। मुस्कराना है तो ऐसी जगह मुस्कराओ जहाँ तुम्हारी पूजा होने लग जाए। इन परमात्माओं को देखकर मुस्करायेगा तो पूज्य हो जायेगा, किसी स्त्री को देखकर मुस्करायेगा तो गाल पर चाँटा पड़ेगा। इसलिए हर जगह मत मुस्कराया करो, नहीं-तो कहो कि महाराज जी ने कहा था कि मुस्कराकर रहा करो। समय देख कर मुस्कराया जाता है। स्थान देखकर मुस्कराना, इतनी बुद्धि तो होना चाहिए।

किसी के इक्कीस वर्ष के युवा बेटे की मृत्यु हो गई, तू अट्टहास करके हँस रहा है, तो तुझे कौन समझदार कहेगा? अब वहाँ तो शान्ति से ही बैठना पड़ता है। समय देखकर काम करना पड़ता है। परन्तु ये मानना पड़ेगा कि रागियों के बीच में असत्यता के जीवन में बहुत असत्य जीवन जीना पड़ता है। उन घरों में भी आपको बैठने जाना पड़ता है जिनके सुख-दुःख में तुम्हें कोई प्रयोजन नहीं होता है, तब भी तुमको उनके द्वार पर चेहरा बना कर बैठना पड़ता है। कितना झूठ का जीवन जीना पड़ रहा है। जिनके सुख से तुझे कोई प्रयोजन नहीं होता है, यदि उनके घर में कोई मांगलिक आयोजन होता है, वहाँ न भी मुस्कराना चाहे तो झूठा मुस्कराना भी पड़ता है। फिर व्यापारियों का जीवन तो झूठा मुस्कराना है ही। आपसे कोई वरिष्ठ आ जाये तो मुस्कराकर सम्मान भी देना पड़ता है। भले ही तेरे दुःख का दिन हो, तब भी उसे देखकर मुस्कराना पड़ता है। इसलिए गृहस्थी में रहना अच्छी बात नहीं है। जहाँ अपना जीवन ही स्वतन्त्र न रह पाए, वहाँ क्यों रहना? तुम्हारा मन भी करे दूसरी जगह रहने का, लेकिन कैसे रह सकता हूँ ? आनन्द का जीवन जीना है तो मेरे जैसे जियो, जिस पुर में रहना हो उस पुर में रह जाओ, नहीं रहना तो न रहो। परम स्वाधीन और सरल तो यही है, परन्तु निज का निज में विश्वास कठिन है। जिस दिन विश्वास हो जायेगा, उस दिन सब सरल हो जायेगा। सरल तो है ही, आनन्द भी है। आपको जरा-सा समय मिलता है तो आप कहते हो कि चलो, महाराज के पास चलें। जीवन में कोई स्थान

अवश्य होना चाहिए जहाँ जाकरके अपने आपमें शान्ति तो महसूस हो सके।

शोकसभायें उन्हीं की मनती हैं जो शौक में जीवन जीते हैं। जो शौक का जीवन छोड़ देते हैं, उनकी शोकसभा नहीं होती, उनकी श्रद्धांजलि सभाएँ लगती हैं। इसलिए योगियों की शोकसभाएँ नहीं होती, श्रद्धांजलि सभा होती है। आप श्रद्धा समर्पित करिए। जिसके 'पाँय' पुजते हैं, उनकी तो शोकसभाएँ ही लगती हैं। जो चरण पुजवाना चाहते हैं, उनकी श्रद्धा सभाएँ होंगी। दूसरे के द्वार पर गये थे, दूसरे की बिटिया ले आये, पाय पुज गये तुम्हारे। बस, पुज गये। लेकिन योगियों के पाय नहीं पुजते, चरण-स्पर्श किए जाते हैं, चरण पूजे जाते हैं। **चरण उनके पुजते हैं जिनके आचरण पूज्य होते हैं।** जिनके आचरण पूज्य नहीं हों, उन बेचारों के पाँय पुज गये, बज गये बाजे एक बार और बज जायेंगे पुण्य रहा तो। जिनके आचरण पूज्य होते हैं, उनके जीवन भर रोज बाजे बजते हैं। उल्टे नहीं, सीधे। **पूज्य होना है, चरण पुजवाना है, तो अपना आचरण पूज्य कर लो।** यहाँ कुलभद्र स्वामी 305 नं. के श्लोक में कह रहे हैं–

कम-से-कम बूढ़ा बैल तो मत बन। बूढ़ा बैल। क्या करूँ, वह दशा तो सबकी होती है। पूर्व में किए गए अशुभ कर्मों के उदय से शारीरिक, मानसिक, आर्थिक पीड़ायें प्रारम्भ हो चुकी हैं। दिन बदलते देर नहीं लगती, देखते-देखते मौसम बदल जाता है। शीत की लहरें समाप्त हो गईं, ग्रीष्म की तपन की ओर जा रहे हो। ये भी नहीं रहेगी, मूसलाधार बारिस भी होगी। **सबके दिन एक-से नहीं होते।** समय बदलता है, मौसम बदलता है, फिर भी आकाश नहीं बदलता। मौसम बदलता है, लेकिन पृथ्वी नहीं बदलती। मौसम का धर्म ही बदलना है। पृथ्वी अथवा आकाश बदल गए तो सब बिगड़ जायेगा। सुख-दु:ख के मौसम बदलें, लेकिन अपनी धैर्य की पृथ्वी को मत बदल देना और क्षमा के आकाश को मत बदल देना। **संकट में ही धैर्य की परीक्षा होती है। धैर्य और मित्र इन दोनों की कसौटी संकट है। विपत्ति का काल मित्र की परीक्षा करा देता है और धैर्य की परीक्षा करा देता है। जब विपत्ति नहीं होती है तो दुनियाँ मेरे साथ होती है। विपत्ति के काल में वे ही रह पाते हैं जो मेरे वास्तविक साथी होते हैं।** विपत्ति के काल में कोई परम मित्र होगा तो 'धम्मं सरणं पव्वज्जामि, केवली. पण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि।'

ज्ञानी! क्षमा मत छोड़ देना, धैर्य मत छोड़ देना। मित्र और धैर्य की परीक्षा विपत्ति के काल में होती है। यदि शादी ही करना हो तो, बेटा! भाई के साथ ही रहना हो

तो, लक्ष्मण-जैसा भाई मिले तो रह लेना और सीता-जैसी पत्नी मिले तो शादी कर लेना। तात्पर्य समझना। जिसने अपने पति को जंगल में भी नहीं छोड़ा हो। वनवास सीता को नहीं था, राम को था। वनवास लक्ष्मण को नहीं था, वनवास राम को था। धन्य हो उस भाई को, धन्य हो उस धर्मपत्नी को, जिसने राज्यसुख को छोड़ करके अपने पति के साथ हो ली। ओ हो! देखो, फिर वे दिन भी सीता के सामने आये जब अशुभ ने डेरा डाल लिया तो राम भी मुकर गये और सीता को जंगल में छुड़वा दिया। अब बोलो—गर्भवती नारी अवला किसकी शरण में? 'धम्मं सरणं पव्वज्जामि।' कोई नहीं है, विश्वास रखना। **मैं भी तुम्हारे साथ तभी तक हूँ जब तक पुण्य का द्रव्य तुम्हारे साथ है। आप भी तब तक मेरे साथ हो जब तक मेरा पुण्य का द्रव्य साथ दे रहा है।** पूर्व का पुण्य और वर्तमान का धर्म साथ दे रहा है। अशुभ कर्म के उदय में कोई किसी का साथ नहीं देता। भूल मत कर लेना। जिस भवन में तुम रहा करते हो, उस भवन में जीव उल्टा टंगा भी मिलता है। एक रस्सी सूखे कण्ठ को पानी देने में सहकारी बनती है, कोई एक रस्सी किसी के प्राणों को नष्ट करने में सहकारी बनती है। रस्सी का कोई दोष नहीं है, पुण्य-पाप की परिणति है। मुझे देख कर भी किसी के अशुभ भाव आते हैं। विश्वास मानना, मैं कभी दु:खी नहीं होता हूँ कि क्लेश को प्राप्त करके ये मेरे से क्यों दु:खी हो रहा है?

जिसकी देखने की दृष्टि पवित्र है, वह मुझमें वो देख लेता है। जिसकी देखने की दृष्टि खोटी है, वह मुझे देखकर दु:खी भी हो लेता है। इसमें मेरा कोई दोष नहीं है। मित्र! कभी विलखना मत। मित्र और धैर्य की परीक्षा करना है, सोने को कसना है, तो कसौटी लाना पड़ेगी। लेकिन अपने मित्र को और धैर्य को कसना है तो स्वयं में कसौटी बनाना पड़ेगी। फिर देखना मेरा भाई सगा है कि नहीं ? जब तुझे सिंहासन मिलेगा तो कहेगा कि वह मेरा भैया है, सगा भैया। यदि कोई कहेगा कि वह ऐसा है वैसा है, तब वह अपरिचित बन जायेगा कि हम तो बहुत दूर रहते हैं। ठीक, समझ में आ गया, बहुत दूर रहते हैं। स्वार्थी दूर ही रहता है। आश्चर्य यह है कि ऐसा होता है ऐसा जानता है, फिर-भी दुनियाँ से क्यों चिपका बैठा है ? जीव को पता नहीं क्या हो जाता है ?

ज्ञानी! कितना ही करो, बेटे भी काम में नहीं आयेंगे। मित्र! जिनको सबकुछ देकर जायेगा, वे आग लगायेंगे और जिनको कुछ भी देकर नहीं जायेगा, उनके काँधों पर

जायेगा। जगत् की लीला तो देखो। इसलिए आज से थोड़ा सीख लो, पड़ोसियों को भी देना शुरू कर दो। ये अरबों की सम्पत्ति इन भोगियों को देकर जायेगा। कुछ नहीं मिलनेवाला। एक काम जीवन में अच्छा किया। ये बाहुबली ही तेरे काम आयेंगे। जितना इन बेटों को बाँट कर रखा है, बेटा! बताओ क्या करेगा इनका ? कुछ नहीं। मैं भरी सभा में ही पुछवाये देता हूँ। बेटा बताओ इस वेचारे ने तुम सबको इतना कमा-कमा कर दिया है, जब इसका हंस चला जायेगा और शरीर छोड़ जायेगा, तो आप इस शरीर को संस्कार करने के लिए मकान का कोई कोना दोगे क्या? 'नहीं दे पायेंगे।' देख लो, ये एक कोना देने को मना कर रहे हैं। कह रहे हैं कि हम घर को मसान थोड़े-ही बनायेंगे। अभी भी यदि वैराग्य नहीं होगा, तो अब महावीर स्वामी समझाने नहीं आ रहे। बच्चे उल्टे ये-और कह देंगे कि आपने अपने पिता जी को दिया था क्या, जो मेरे से पूछ रहे हो? जीव बूढ़ा बैल क्यों बन रहा है? पूर्व में जो बद्ध किया था, उसके विपाक से जो कष्ट हो रहा है, उसमें शोक क्यों कर रहा है ? बूढ़ा बैल को जब खुजली पड़ती है तो अपने ही मुख से इतना खुजा डालता है कि शरीर के अंगों को काट भी लेता है और काटने के बाद जब मक्खियाँ भिनभिनाती हैं तो पूँछ पटकता है। ऐसे-ही उस बैल की भाँति तुमने स्वयं खुजाया, स्वयं घाव किया, अब दु:ख की पूँछ पटक रहे हो। जो तुमने बंध किया है, उसको शान्ति से झेलो। कर्मनिर्जरा करके कर्म से मुक्त हो जाओ। पूर्व में किया है, आज रोओगे तो पुन: कर्म का बंध होगा।

अच्छा-अच्छा देखो, बुरा तो देखना ही नहीं है। तुम बुरा देखोगे तो गुलाब में काँटे होते हैं, अच्छा देखेगा तो काँटों में गुलाब होता है। हम गुलाब के वृक्ष में काँटों में गुलाब देखना चाहते हैं।

जज साहब! जजमेंट देने के बाद इतना तो बोल ही दिया करो—भाई! क्षमा करना मुझे, मेरा कोई दोष नहीं है। जो है, सो है। मैंने बहुत प्रयास किया, लेकिन 'जो है सो है।' सबके दिन एक-से नहीं होते हैं।

आत्मस्वभावं परभाव भिन्नम्। आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।

ज्ञान प्राप्ति का फल

परं ज्ञानफलं वृत्तं न विभूतिर्गरीयसी।
तथा हि वर्धते कर्म सद्वृत्तेन विमुच्यते॥307॥
संवेगः परमं कार्यं श्रुतस्य गदितं बुधैः।
तस्माद्ये धनमिच्छन्ति ते त्विच्छन्त्यमृताद्विषम्॥308॥

अन्वयार्थ—(ज्ञानफलं परं वृत्तं न गरीयसी विभूतिः) शास्त्रज्ञान पाने की सफलता उत्तम चारित्र पालन है, न कि विपुल धन का लाभ **(तथा हि कर्म वर्धते)** विपुल धन के संयोग से तो कर्मों का बंध बढ़ेगा जबकि **(सद्वृत्तेन विमुच्यते)** सम्यक् चारित्र से बंध का नाश होगा। **(श्रुतस्य परमं कार्यं संवेगः बुधैः गदितं)** शास्त्रज्ञान का उत्तम फल वैराग्य है, ऐसा बुद्धिमानों ने कहा है **(तस्मात्)** उस शास्त्रज्ञान से **(ये धनं इच्छन्ति)** जो कोई धन की चाहना करते हैं **(ते तु अमृतात् विषं इच्छंति)** वे तो अमृत पीकर विष की चाह करते हैं।

भावार्थ—हे भव्यात्मा! शास्त्रज्ञान का फल चारित्र धारण करना है। श्रुतधर वैराग्य को प्राप्त करता है। जो श्रुतज्ञान प्राप्त करके धन चाहता है, वह अमृत पीकर विष की इच्छा कर रहा है।

॥ सद्-देशना ॥

आचार्यभगवन् श्री कुलभद्र स्वामी ग्रंथराज सारसमुच्चय में ज्ञान का अलौकिक व्याख्यान कर रहे हैं। श्रमणसंस्कृति में दो परम्पराओं का उल्लेख है। **जब आचरण का विघात होता है, मिथ्यात्व की वृद्धि होती है, कुपंथों का मान वृद्धिमान होता है, तब उस काल में भगवान् जिनेन्द्र का जन्म होता है।** हुण्डावसर्पिणी काल के प्रभाव से कुछ अटपटी घटनायें घटीं। तीर्थंकरपरम्परा चतुर्थ काल में प्रवाहमान होती है, लेकिन इस चौबीसी में तृतीय काल में ही तीर्थंकर परम्परा शुरू हो गई और निर्वाण भी हुआ। तीर्थंकर ऋषभदेव से लेकर, जिनका उल्लेख वेदों-पुराणों में है, श्रमण परम्परा को द्रविण परम्परा भी कहा। भारत में आर्यों के आने से पूर्व यहाँ श्रमण संस्कृति थी, जिसको प्राचीन इतिहास में लोगों ने द्रविण संस्कृति भी कहा। जो श्रमण वातरसायन थे, जिनको उपनिषदों में क्षत्रिय कहा। ओ हो! क्षत्रियों से उस विद्या का अन्वेषण किया

गया कि बिना अस्त्र-शस्त्र के, चिलम अफीम गाँजा द्वारा अपने आप को मलिन किये बिना, इन्द्रियों को वश कैसे कर लेते हो ? इस विद्या को समझने के लिए ऋषि लोग क्षत्रियों के पास गये, वे क्षत्रिय तीर्थंकर श्रमण थे। क्षत्रिय-परम्परा से जो धर्म उन्होंने प्राप्त किया, वह अध्यात्मविद्या थी। जिस अध्यात्मविद्या के बल पर, बिना किसी बाहरी निमित्त के, आत्मा को आत्मा में कैसे वशीकरण किया जाता है? तीर्थंकरपरम्परा भगवान् महावीर स्वामी तक चली इस भारतभूमि पर और काल दोष के प्रभाव से वर्द्धमान के निर्वाण होते ही तीन अनुबद्ध केवली हुये। तीन केवलियों के समय तक कैवल्य-सूर्य जाज्वल्यमान रहा। धीरे-धीरे वह समय आया कि भारतभूमि से वह कैवल्य-दिवाकर अस्त हो गया।

सुधर्माचार्य, जम्बूस्वामी, लोहाचार्य। जो जम्बू स्वामी हैं, इस युग के अंतिम अनुबद्ध केवलियों में इनका नाम आता है। केवलज्ञान के अभाव होते ही श्रुतपरम्परा प्रवाहमान होती है और केवली तीर्थंकर शासन जब विराम ले लेता है तब आचार्यपरम्परा प्रारम्भ होती है। भद्रबाहु स्वामी अंतिम श्रुतकेवली रहे हैं। उन आचार्य भद्रबाहु स्वामी ने जिन-शासन की अपूर्व प्रभावना की। जयवन्त हों वे आचार्य गोवर्धन स्वामी। इनका चित्र देखने को दुनिया में कहीं जाने की आवश्यकता नहीं है, खजुराहो के म्यूजियम में एक ऐसा पट्ट भी है जिसमें गोवर्धनाचार्य एक बालक को गोटियों पर गोटियाँ रखते देखते हैं। गोमटेश्वर में चन्द्रगिरि पर्वत पर एक चित्र पर परिपूर्ण पट्टावली बनी हुई है। उस बालक से पूछते हैं जिसने चौदह गोटियाँ एक के ऊपर एक एकसाथ रख ली हों। आचार्यभगवन्त खड़े होकर निहारने लगे, ये बालक अपूर्व क्षयोपशम का धारी होगा, उन्होंने निमित्तज्ञान से समझ लिया। फिर बालक से कहते हैं कि तेरे माता-पिता कहाँ हैं ? एक चित्र है जिसमें वह बेटा आचार्य भगवन्त की अंगुली पकड़े हुए अपने मकान की ओर ले जा रहा है। वह पिता कितना महान् होगा जो अपने बेटे को दिगम्बर मुनि की अंगुली पकड़े हुए घर की ओर लाते देख रहे थे। उनके पिता भाट्य जाति के ब्राह्मण थे। उनसे पूछा—'इस बेटे को मैं ले जाना चाहता हूँ।' भारतीयों की एक सहज प्रवृत्ति है—वे सीधे मना नहीं कर पाते हैं। जो काम नहीं करना होता है तो पति अपनी पत्नी के ऊपर छोड़ देता है और पत्नी पति के ऊपर छोड़ देती है। पिता से पूछा तो वह कहता है कि उसकी माँ से पूछो, माँ कहती है कि उसके पिता से पूछो। ऐसा नियोग बना कि दोनों एकसाथ सामने आ गये। कहने लगे गोवर्धन स्वामी—'इस बेटे को मुझे सौंप दो।'

जब श्रुत साहित्य और पुरातत्व की रक्षा का भाव आता है तो वैरागियों को भी राग आ जाता है। कैलाश पर्वत पर जब बहत्तर जिनालयों की रक्षा की बात आयी थी, तब कोई श्रावक नहीं पहुँचा, वालि मुनिराज ने अगूँठा दबाया था। एक वो समय था जब जिनालयों की रक्षा के लिए वालि मुनिराज को अँगूठा दबाना पड़ा, आज वो दिन आ गये हैं जब मुनियों से रक्षा करने की बात करनी पड़ रही कि तीर्थों को न बिगाड़ें। कितना समय बदल गया है। बालि मुनिराज ने बहत्तर जिनालयों की रक्षा के लिए अगूँठा दबाया था, कि कहीं ये पर्वत हिल गया तो भरत चक्रवर्ती द्वारा निर्मित जिनालयों का क्या होगा? समाज अरबों खरबों को न देखे। **पुरातत्व और साहित्य की रक्षा कर सकोगे, तो संस्कृति की रक्षा हो जायेगी।** संस्कृति की रक्षा के लिये दो ही सामग्री हैं, एक साहित्य और दूसरा पुरातत्व। इस क्षेत्र में खजुराहो, द्रोणगिरि, नैनागिर, पपोरा, आहार जी बड़े प्राचीन तीर्थ हैं। कितने ही धनपति लोग आ जायें, उनसे कहना कि आपका धन स्वीकार करते हैं, हम नया मंदिर बनायेंगे, प्राचीन मंदिरों को धूलि में नहीं मिलने देंगे। यदि डेरा पहाड़ी पर तीन प्राचीन जिनमंदिर न दिखते, तो डेरा पहाड़ी तीर्थ के नाम से नहीं पुकारा जा सकता है। ज्ञानी! मंदिरों की दरवाजों की दशा को दूर करके अपने भाग्य को मत निहारो, अपने भावों की दशा सुधार लो, तो तेरे सारे भाग्य सुधर जायेंगे। तुम्हारे परिणाम विकृत हैं तो मंदिर का वास्तु घर-घर में लगता है, घर के भावों के वास्तु नहीं लगा रहे।

गोवर्धन स्वामी दम्पत्ति से कहते हैं कि एक दिगम्बर आचार्य आपके द्वार पर है और संस्कृति की रक्षा के लिए मैं आपके बेटे की भीख के लिए देख रहा हूँ, आप मुझे अपना बेटा दे दो। योगी को इस प्रकार कहता देख करके ब्राह्मण-ब्राह्मणी पिघल गए, परन्तु उन्होंने एक शर्त जरूर रख दी। स्वामी! आप मेरे बेटे को क्यों ले जाना चाहते हो ? ये भविष्य का महान् ज्ञाता बननेवाला है, मैं इसको मात्र अध्ययन कराना चाहता हूँ। पिता महान् ज्योतिषी था। भाट्य जी कहते हैं, 'स्वामी! जब मैंने इसकी कुण्डली बनाई थी, तभी इसके नक्षत्र देख लिए थे। महान् दिगम्बराचार्य बनने की इसकी कुण्डली बोल रही है। ये किसी दूसरे पद में जा ही नहीं सकता।' गोवर्धन स्वामी कहते हैं कि जब आपको ज्ञात है, तो विलम्ब क्यों ? फिर भी एक प्रार्थना अवश्य है, आप मेरे बेटे को अध्ययन तो करायें, लेकिन दीक्षा मत देना। जैनाचार्य बड़े प्रज्ञावन्त थे, बोले, 'ठीक, आपकी बात स्वीकार है, लेकिन जब मैं इसको अध्ययन करा दूँगा,

आपके पास भेजूँगा, ये दीक्षा की प्रार्थना भी करेगा तो दीक्षा नहीं दूँगा। पुनः यदि मेरे पास आ जाता है तो फिर मैं आपसे नहीं पूछूँगा, दीक्षा दे दूँगा।

जिसने चर्म शरीर से युक्त माँ के आँचल का पान किया हो, वह अपनी माँ को नहीं भूल पाता। जिसने सोलह वर्ष तक चार आँचलों से युक्त माँ भगवती जिनवाणी के आँचल का पान किया हो, वह कैसे भूल पायेगा? उनको भरोसा था। भद्रबाहु स्वामी ने सोलह वर्ष तक द्वादशांग का अध्ययन किया और जब अध्ययन कर लिया तो भद्रबाहु स्वामी कहते हैं, 'हे स्वामी! मुझे निर्वाण दीक्षा दो।' प्रिय वत्स! ब्रह्माण्ड में विश्वास की कोई मुद्रा है तो वह दिगम्बर मुद्रा है। यदि आप किसी के घर जाओ तो कोई सोच सकता है कि इसने जेब में कुछ रख तो नहीं लिया, परन्तु दिगम्बर मुनि कहीं से भी गुजरेगा, वे रखेंगे तो रखेंगे कहाँ? ये परवस्तु का ही डाका नहीं डालते, ये निज के परिणामों पर भी डाका नहीं डाल पाते। यदि रागी को विकार आये तो वह वस्त्रों में छुपा लेगा। हे वीतरागी तपोधन! तुम्हारे मन में विकार भी आयेगा तो तन निर्ग्रन्थ है, उसको छुपाने कहाँ जाओगे? वत्स! मैंने आपके माता-पिता को वचन दिया था कि दीक्षा के पूर्व आपको घर जाना होगा और तुम्हारे अन्दर वैराग्य होगा तो जगत् में किसी को रोकने की सामर्थ्य भी नहीं है।

जब वह बालक अपने गृहनगर माँ के पास पहुँचता है, वहाँ के राजा को मालूम चलता है कि विद्यार्थी गोवर्धन स्वामी के यहाँ अध्ययन करके आया है। कितना पवित्र युग था कि अध्ययन करके आये युवा कैसे राजसम्मान के साथ नगर में प्रवेश कराया जाये। राजसम्मान के साथ प्रवेश हुआ। दूसरे दिन बेटा माँ से कहता है कि तात्! 'मैंने गुरु-आज्ञा का पालन किया है। आप मेरे इस देह के जनक-जननी हो, मेरी गोद में इसकी भीख डाल दो, आपके द्वारा प्रदत्त शरीर को मैं ग्रहण करके, जिनमार्ग में दीक्षित हो करके, मैं अपनी आत्मा को परमात्मा बनाना चाहता हूँ।' दूसरे दिन बेटा वापस हो गया। **गुरु का प्रसन्न मुख ही शिष्य की उन्नति का बीज है।** गोवर्धन स्वामी ने मुस्कराकरके, चित्त को प्रसन्न करके, शिष्य को दीक्षा दे दी। पुनः उन गूढ़ ग्रन्थों का अध्ययन भी कराया जो कि मात्र आचार्य को ही करने योग्य होता है।

सभी ग्रन्थ तो मुनियों को पढ़ाये जा सकते हैं, लेकिन रहस्य ग्रन्थ (प्रायश्चित्त ग्रंथ) को एकान्त में, मर्यादा के अन्दर, शुभ मुहूर्त में, शुष्क स्थान भी नहीं होना चाहिए, वहीं पढ़ाया जाता है। ये डेरा पहाड़ी दो कार्यों के लिए बड़ा प्रशस्त स्थान है। एक

समाधि के लिए, दूसरा आचार्यत्व के लिए। **जहाँ सूखे वृक्ष हों, कौये काँव-काँव कर रहे हों, खण्डहर पड़े हों, ऐसे स्थान पर कभी क्षपक को सल्लेखना नहीं दी जाती। बड़े दोषों की आलोचना भी नहीं सुनी जाती और प्रायश्चित्त भी नहीं दिया जाता।** जहाँ आम्र वृक्ष हो, अशोक वृक्ष हो, जूही चम्पा चमेली के पुष्प खिले हों, प्रशस्त भवन हो, वहाँ आचार्य महाराज सल्लेखना करने वाले योगी की आलोचना सुने। प्रायश्चित्त शास्त्र वहीं पढ़ाये जाते हैं जहाँ श्रेष्ठ उद्यान, श्रेष्ठ मंदिर और श्रेष्ठ जिनप्रतिमा हो। उस भूमि पर ही रहस्य ग्रन्थों का अध्यापन कराया जाता है।

अपने योग्य शिष्य को रहस्य ग्रन्थों का अध्यापन कराया। 'मूलाचार' जी में लिखा हुआ है कि **आचार्य परमेष्ठी शिक्षा-दीक्षा मात्र से ही अनुग्रह नहीं करते, अपितु आचार्य पद देकर भी शिष्य का अनुग्रह करते हैं।** अपने शिष्य को आचार्य पद दिया और कहा, 'बेटे! जैसे श्रमण संस्कृति की रक्षा, तीर्थंकर महावीर के परम्परा की रक्षा हमने की है, ऐसे-ही आप इस परम्परा की रक्षा करना।' संतान को जन्म देने का उद्देश्य भारत की भूमि का वजन बढ़ाने मात्र का नहीं होना चाहिए। **जो सनातन धर्म को आगे बढ़ाये, उसका नाम सन्तान है। जो बेटा जन्म लेने के बाद सप्त व्यसन में तल्लीन हो जाये और माता-पिता के वंश के नाम को डुबो कर रख दे, वह सन्तान नहीं है, कुसन्तान है।** वे लड़के हो सकते हैं। जो लड़-लड़ कर पिता को घर से भगा दे, वह है लड़का। जो सनातन धर्म को आगे ले चले, उसका नाम सन्तान है। शिष्य का नाम है अन्तेवासिन्। जो गुरु की आज्ञा के अन्त में वास करता है, उसका नाम है—अन्तेवासिन्। जहाँ अपने सोच समाप्त होते हैं, वहाँ से शिष्य का जन्म होता है। जब तक अपनी सोच जीवित है, तब तक शिष्य का जन्म नहीं हुआ।

जो गुरु के अनुशासन में निवास कर सके, उसका नाम शिष्य है। आचार्य गोवर्धन स्वामी से भद्रबाहु स्वामी को आचार्यत्व प्राप्त होता है। यदि गोवर्धन स्वामी भद्रबाहु स्वामी जैसे योग्य शिष्य को न चुनते और आचार्यत्व न देते तो हमारी संस्कृति का क्या होता? आज मुस्कराकरके श्रमण संस्कृति कह रही है कि अन्तिम श्रुतकेवली आचार्य भद्रबाहु स्वामी हुये। आज थोड़ी विषमता आ रही है, लोक व्यवस्था कितनी भंग हो चुकी है। ज्ञानी! वर्तमान की परम्परा में शामिल मत होना, जिनवाणी की परम्परा में शामिल होना। आपकी मृत्यु के बाद समाज पगड़ी बाँधे, ये अच्छी बात न होगी। आगम की परम्परा यह है कि पिता को अपने जीते-जी बेटे को पगड़ी बाँध देना चाहिए

जिससे वह लड़े ना और फिर स्वयं संन्यास ले लेना चाहिए। संन्यास का काल नहीं आता है। बेटा योग्य हो जाता है, फिर आप उसको व्यवस्था देते हो। व्यवस्था पहले से दे दोगे तो वह बेटा तुमसे लड़ने नहीं आयेगा, पर्व के दिनों में तुम्हें निमंत्रण देगा। जो पिता बेटे को लड़ने पर अलग करते हैं, उस पिता को पड़ोसी का बेटा तो बुला सकता है, लेकिन वह बेटा नहीं बुलायेगा। आगम की व्यवस्था है, पिता के अपने देखते-देखते राजाओं ने तिलक अपने हाथ से लगाया है। ऋषभदेव ने भरत का तिलक स्वयं किया था, समाज ने नहीं किया था। ऐसे-ही आचार्यों को अपने जीवित रहते हुए अपने शिष्यों को आचार्यत्व दे देना चाहिए। जिससे कि भविष्य में ये समाज राष्ट्र और कोई संघ आचार्यविहीन न हो जाए।

भगवती आराधना में, मरणकण्डिका ग्रन्थ में परिपूर्ण व्यवस्था का वर्णन है कि सल्लेखना के पूर्व ही आचार्य को बालाचार्य और बालाचार्य के बाद आचार्य पद दे देना चाहिए। ये **जो आचार्य पद है, वह प्रसन्नता या पुरस्कार का पद नहीं है। ये दिगम्बरत्व और जिनशासन की रक्षा व प्रभावना का पद है,** उसके लिए किसी को सम्माननीय पत्र के रूप में नहीं दिया जाता है। जिसके पास स्वयं आचरण ही नहीं है, वह समाज आचार्य क्या बनायेगी? इसलिए आचार्य ही आचार्य बनाते हैं।

इस युग में वर्तमान में हमारे पास ऐसा समय भी आया कि आचार्य परम्परा विच्छिन्न होते दिखी। भद्रबाहु स्वामी और कुन्दकुन्द आचार्य भगवन्तों के बाद दीर्घ समय ऐसा चला जहाँ आचार्य नहीं थे तो आदिसागर, शान्तिसागर (दक्षिण) और शान्तिसागर (छाणी) ये तीन आचार्य हुए, जिनके सामने कोई विशिष्ट आचार्य-गुरु नहीं थे। शान्तिसागर (दक्षिण) इनके पास देवेन्द्रकीर्ति भट्टारक थे। उनसे उन्होंने दीक्षा शान्तिसागर (छाणी) और आदि सागर स्वयं दीक्षित हुए। वर्तमान में जितने दिगम्बर मुनि हैं, ये तीन आचार्यों की ही शिष्यपरम्परा है। विशुद्धसागर को ही मत देखते रहना, नींव की ईंट को भी देखना कि इन आदिसागर व शान्तिसागर जी ने कितना पुरुषार्थ किया है और भारत की भूमि पर पुनः नमोऽस्तु शासन को जयवन्त किया है। आज तुम बने-बनाये मैदान में खेल रहे हो। देखो उन शान्तिसागर महाराज को, दक्षिण से उत्तर आने में कठिन श्रम करना पड़ गया। दिल्ली के लाल किले में खड़े होकर उनको फोटो खिंचवाना पड़ गया, परन्तु अज्ञानी नहीं जानते थे कि मुनि महाराज फोटो क्यों खिंचवा रहे हैं। फोटो खिंचवाने के बाद प्रायश्चित्त में स्वयं पाँच उपवास कर लिए,

फिर उन्होंने मनचले पण्डितों से कहा कि ये फोटो शान्तिसागर ने नहीं खिंचवाया है, वह इसलिए खिंच गया है कि कल कोई यूँ कहे कि भारत की राजधानी दिल्ली में कोई नग्न मुनि नहीं निकल सकता है, तो आचार्य शान्तिसागर लाल किले से निकले थे। ये फोटो तुम दिखवा देना। लोग समझते नहीं हैं। आज आचार्य, उपाध्याय, साधु की प्रतिमायें होना बहुत आवश्यक है, क्योंकि अरहन्त की प्रतिमायें तो दिगम्बर और श्वेताम्बर में एक-सी पुज जाती हैं, लेकिन दिगम्बर मुनि की प्रतिमा श्वेताम्बर नहीं पूजते, इसलिए दिगम्बर तीर्थों में एक दिगम्बर मुनि की प्रतिमा होना बहुत आवश्यक है, जिससे आपको मालूम चलेगा कि ये तीर्थ मयूर पिच्छिका से युक्त दिगम्बर मुनि की प्रतिमा से युक्त है, ये श्वेताम्बर नहीं है, दिगम्बर तीर्थ ही है। लोग रहस्य को नहीं समझते और कह देते हैं कि ये उपाध्याय परमेष्ठी कहाँ से आये? **जहाँ से तुम्हारे सोच पूरे हो जाते हैं, वहाँ से और-आगे योगियों के सोच होते हैं।**

आपको मालूम होगा जब आपके कोई नेता जी मयूरपंख पर कुछ विकल्प खड़े कर रहे थे। जिन जीवों ने अशुभ विचार किए, उनके नाम लेने की जरूरत नहीं होती। ऐसे विकल्प खड़े किए, तब तुम्हारे पास प्रमाण किस बात का था ? तुम्हारे यहाँ दिगम्बर मुनि पिच्छी लेकर चलते हैं। तमिल और कर्नाटक की दिगम्बर मुनि की प्रतिमाओं के चित्रों को निकाल करके दिखाना पड़ गया था कि ये देखो हमारे यहाँ प्राचीन काल से दो हजार वर्ष पूर्व की ये प्रतिमायें हमारे यहाँ दिगम्बर मुनियों की हैं। आज तुम नयी प्रतिमायें स्थापित नहीं करोगे तो भविष्य में तुम क्या दिखा पाओगे? इसलिए ज्ञानी! ऐरे-गेरे नत्थू-खैरै की बातों में नहीं आना पड़ता। वस्तु-स्वरूप को समझना पड़ता है। जिसको दिगम्बरत्व से ही चिड़ है, वह कब कहेगा कि आचार्य, उपाध्याय, साधु की प्रतिमा स्थापित की जाये? उनसे सलाह लेने की आवश्यकता ही नहीं है। खजुराहो प्रमाणपत्र है। ज्ञानी! नया सबकुछ बना लेना, लेकिन इस तीर्थ में एक पत्थर भी इधर से उधर मत करना। भद्रबाहु स्वामी अकाल के काल में दक्षिण चले गये थे। वहाँ पर चन्द्रगिरि पर्वत पर उन्होंने सल्लेखना धारण की और अपने शिष्य विशाखाचार्य को आचार्य पद दिया। विशाखाचार्य स्वामी ने अपने आचार्यत्व का ऐसा निर्वाह किया। उनकी परम्परा चलते -चलते धीरे-धीरे श्रुतपरम्परा में, श्रुतधर आचार्यों में ज्ञान का क्षयोपशम क्षीण होता गया और धरसेन स्वामी तक आते-आते आचारांग का एक अंश मात्र हमारे पास अवशेष बचा।

वीरनन्दी आचार्य महाराज ने आचारसार ग्रन्थ में लिखा है—जो दिगम्बर मुनि भारत की भूमि पर प्रभावनाशून्य जीवन जीता है, वह पृथ्वी पर भारभूत है। आचार्यों ने यहाँ तक लिख दिया है—आचार्य दीक्षा उन्हें ही दें। जैसे बेटे को आप जन्म इसलिए दें कि हमारे वंश की रक्षा करे, सम्पत्ति की रक्षा करे, धर्म की रक्षा करे। ऐसे-ही आचार्य उसे शिष्यत्व प्रदान करें जो हमारे आगम की रक्षा करे। यदि आगम-रक्षा की योग्यता नहीं है, तो ऐसे व्यक्ति को दीक्षा न दें। स्वाध्यायशील को ही दीक्षा दी जाय, ये आगम-वचन है। मुनिदीक्षा जीवनयापन के लिए नहीं है, **मुनिदीक्षा आत्मकल्याण और जिनशासन की प्रभावना के लिए है। इसे जीवनयापन की शैली न बनाया जाय।** इसलिए आचार्यत्व शिष्य को खुश करने की शैली नहीं है, यह संस्कृति को खुश रखने की शैली है। यदि शिष्य को खुश रखने की शैली से आचार्य पद दिया जा रहा है तो आचार्यत्व की गरिमा का अभाव होता है।

जिसकी देश, कुल, जाति शुद्ध है, ऐसे व्यक्ति को ही आचार्यत्व दिया जाता है, सभी को आचार्यत्व नहीं दिया जाता। क्योंकि यदि आप स्वयं में दृढ़ नहीं होंगे, तो आप किसी को भी दीक्षित कर लोगे। जैनत्व से शून्य व्यक्ति को दीक्षित कर दिया तो वह अपने मत का आपके यहाँ सम्मिश्रण कर देगा। इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए आचार्य भगवन्त योग्य शिष्य को आचार्यत्व पर स्थापित करते हैं। वर्तमान में जब कोई आचार्य नहीं थे, तो परम्परा को चलाने के लिए, हमें वह भी स्वीकार है। आचार्यभगवन् नेमिचन्द सिद्धान्तदेव की कारिका है कि **जो पंचाचार का पालन स्वयं कर रहे हैं और शिष्यों से करा रहे हैं, वे आचार्य भगवन्त हैं।** इसलिए आचार्य शान्तिसागर महाराज को समाज ने आचार्य पद दिया। आचार्य आदिसागर महाराज को भी समाज ने आचार्य पद दिया। शान्तिसागर (छाणी) जी को भी समाज ने आचार्य पद दिया। यदि परम्परागत आचार्य देखते हो तो वर्तमान में कोई आचार्य नहीं है, क्योंकि इन सबको समाज ने दिया है, परन्तु हमारे धर्म की रक्षा कैसे हो? वह पद भी हमें स्वीकार है जिस पद से हमारे शासन की रक्षा हो रही है। ज्ञानसागर महाराज को भी समाज ने आचार्य पद दिया। यदि समाज के आचार्यत्व को स्वीकार नहीं करोगे तो कोई आचार्य दिखाई नहीं देता।

समाज के आचार्यत्व को देखते हो तो वर्तमान में तीन परम्परा हैं। शान्तिसागर परम्परा में वर्द्धमान सागर पट्टाचार्य, आचार्य ज्ञानसागर जी से शान्तिसागर छाणी की

परम्परा का आचार्यत्व निर्वाह चल रहा है और सुनीलसागर को आदिसागर की परम्परा का पट्टाचार्य स्वीकार किया है। पट्टाचार्य की दृष्टि से तीन ही आचार्य हैं, कोई अन्य आचार्य नहीं है। लेकिन सामान्य परम्परा से देखोगे तो शान्तिसागर महाराज जी के समय में ही उनके सातों शिष्य आचार्य थे। कोई ये नहीं कह सकता है कि शान्तिसागर जी की परम्परा में अनेक आचार्य नहीं हुए। यदि अनेक आचार्य नहीं मानोगे तो वर्तमान में अभिनन्दन सागर, विद्यासागर महाराज, विद्यानन्द जी ये सब आचार्यत्व से शून्य हो जायेंगे। फिर तो वर्द्धमानसागर मात्र आचार्य रहेंगे। इसलिए बहुत विवेक से चर्चा करने की आवश्यकता है। कहीं ऐसा न हो कि हम स्वयं कांच के महल में बैठे हों और दूसरे के महल में पत्थर फेंके तो कहीं आपका भवन न टूट जाये। इसलिए बहुत अच्छा हो कि वात्सल्य के साथ, धर्मप्रभावना के साथ अपने-अपने आचार्यत्व का निर्वाह करते हुए और भगवान् तीर्थंकर की परम्परा को और-आगे ले चलें, यही जिनशासन के लिए हितकारी है। यही समाज के लिए हितकारी है। यथार्थ बताऊँ, मैंने तो अपने जीवन में स्वप्न में भी नहीं सोचा था। लोग मुझे छोटे महाराज बोलते थे। मैं तो यही जानता था कि अपन तो छोटे हैं। जीवन में छोटे बनकर जी लोगे तो बहुत अच्छा रहेगा। मेरी दृष्टि में आचार्य विरागसागर महाराज दीक्षागुरु, शिक्षागुरु, गणी प्रदाता गुरु, वे भले हों, लेकिन मैं तो यही मानता हूँ कि भारत की भूमि पर जितने दिगम्बर वीतरागी आचार्यभगवन्त हैं, वे सब हमारे श्रेष्ठ हैं और परमपूज्य हैं।

ज्येष्ठों से स्पर्धा करने पर तो नीचे गिर जाओगे। ज्येष्ठों से आशीर्वाद प्राप्त करोगे तो अपने आप ऊपर जाओगे। बस, आचार्य विमलसागर महाराज जी का आशीर्वाद, सुमतिसागर जी का आशीर्वाद और आचार्य विद्यासागर महाराज जी ने तो सत्रह वर्ष की उम्र में ही मेरे सिर पर हाथ रख दिया था और कहा था कि इतने छोटे में तुम कितनी जल्दी दीक्षा ले लिए हो। उन्होंने भोजपुर में तो स्पष्ट बोल दिया था कि विशुद्धसागर जी! जिनशासन की प्रभावना करना है। पंचमकाल में मोक्ष तो होता नहीं है, पर मोक्षमार्ग में अच्छे से चलना। जीवन में श्री और स्त्री से दूर रहना। मैंने कहा—स्वामी! आपके वचन मेरे लिए मंत्रभूत हैं। मैं पहले से ही दूर रहता हूँ। आज आपके चरणों में कायोत्सर्गपूर्वक प्रतिज्ञा करता हूँ। ये विशुद्धसागर न श्री में लिप्त होगा और स्त्रियों से हजारों किमी दूर रहेगा। वही परिणाम है कि **ज्येष्ठों की शिक्षा को स्वीकार करोगे तो तुम अपने आप महान् बनोगे।** संसार में ये विकल्प कभी मत

करना। आम कहने लग जाये कि मुझे पत्थर क्यों खाने पड़ते हैं? अरे! तूने फल लगाये क्यों? जहाँ फल होंगे, वहाँ पत्थर तो लगेंगे-ही-लगेंगे। इसलिए आचार्य विरागसागर जी भी कोटि-कोटि नमोऽतु कर लें, 'स्वामी! आप विकल्प नहीं करो, आपको फल लगाये हैं तो पत्थर तो खाने ही पड़ेंगे। इसलिए मेरे मन में कभी विकल्प नहीं आता कि कौन क्या कहता है ? मुख सबके स्वतन्त्र हैं, चिन्तन सबके स्वतन्त्र हैं, परिणति मेरी स्वतन्त्र है। कौन क्या कहता है, उसका मुख है। तुम्हें क्या करना चाहिए, ये सोच तुम्हारा निजी है। इसलिए ये सूत्र जीवन में मत उतारना—सबकी सुनना, मन की करना। ये गलत है। सबकी सुनना, परन्तु आगम पर चलना, जो आगम में लिखा हुआ है। सर्वज्ञ भगवान् भी पंचमकाल में आ जाएँ तो उनकी भी मत सुनना। वैसे तो पंचमकाल में सर्वज्ञ आयेंगे नहीं। जो आयेंगे, वे सच्चे सर्वज्ञ होंगे नहीं, क्योंकि पंचमकाल में भगवान् आते नहीं। इसलिए **आगम की ही सुनना, आगम की ही करना, आगम पर ही चलना।**

आचार्य पद, ज्योतिष के हिसाब से देखें, ये राजयोग है। जितनी आवश्यकता एक श्रेष्ठ राजनेता को चाहिए, उससे कई गुनी विद्यायें, कलायें, नीतिनिपुणता एक आचार्य के अन्दर होना चाहिए। क्योंकि आप उनके बीच में रह रहे हो जो आप-जैसे हैं, परन्तु मुनिराज आप उनको सँभालने वाले हो जो नाना घरों में पले हुए हैं और आपके साथ रहने वाले हैं। रागियों पर राज्य करना कठिन नहीं है, परन्तु निज पर किसी का राज्य नहीं चलता है। उनको तुम अनुशासन में रखोगे। सारी विद्याओं को सीखना आवश्यक है। जब आचार्यश्री ने प्रायश्चित्त ग्रन्थों का अध्ययन करवा दिया, फिर कहते हैं कि आपको यह पद स्वीकारना होगा। मैंने कहा स्वामी! जिनकी भावना हो उनका विषय अलग है। मैंने तो अपने जीवन में कभी नहीं सोचा। मेरी इतनी बुद्धि ही नहीं चलती थी। आठ दिन में एक श्लोक न याद कर पाये वो क्या आचार्य बनेगा? ज्ञानी! सबके दिन एक-से नहीं होते। 'नहीं, आपसे छोटे लोग आचार्य बन रहे हैं।' **आस्था अमृत है। गुरु-आशीष उस अमृत में महा-अमृत है।** मैंने ये कहा कि जगत की तिकड़मबाजी मेरे से बनती नहीं है। मैं किसी को डाँटना जानता नहीं हूँ, फटकारना जानता नहीं हूँ। मैंने सुन रखा है कि आचार्य को बहुत तेज होना पड़ता है। जब उपहार दे ही रहे थे, तब इतना कहा था, स्वामी! कुछ नहीं कर सकता हूँ, पर इतना है कि जिस आसन पर कुन्दकुन्द जैसे धुरन्धर योगी बैठे हों, शान्तिसागर, आदिसागर, देशभूषण जैसे महायोगी और वर्तमान में विद्यासागर, सुमतिसागर जैसे योगी जिस पद पर सुशोभित

हों, आप-जैसे गणधराचार्य हों, उसमें आप मुझे विठाल रहे हो, परन्तु इतना अवश्य कह सकता हूँ कि आपकी इस परम्परा में कोई कलंक का टीका नहीं लगने पायेगा। इतना मैं आपको वचन देता हूँ।

आपके घर में बिजली नहीं है तो प्रायः करके आप बगल के घर से वायर डाल कर ले सकते हो और अपने घर का इन्वर्टर भी चार्ज कर सकते हो। कुछ चतुर लोग ऐसे भी होते हैं कि अपने घर के मीटर से तो लेते-ही-लेते रहते हैं और पड़ौसी के मीटर से भी अपना तार फँसा लेते हैं। तो ज्ञानी! मेरे पास तो दो-तीन मीटर हैं जिनसे विद्युत आ रही है। एक ओर विद्यासागर जी से, दूसरी ओर विरागसागर, चारों तरफ से अपन खींच-खींच कर विद्याओं को सीख कर आ रहे हैं। जिन बातों को लेकर आचार्यों को बहुत श्रम करना पड़ा है, अपन दूर से ही देख करके उनसे दूर हो गये। यही समझदारी है कि कोई ठोकर खाकर गिरे अपन देख कर ही चलो तो मालूम चलता है।

बस अपने जीवन में एक ही बात है कि जो पद दिया है वह जैनत्व के लिए है, समाधि के लिए नहीं है। वह दिन अवश्य आयेगा कि यह पद भी अपदभूत है। सल्लेखना आसनों और सिंहासनों पर नहीं होगी। सल्लेखना तो स्व चतुष्टय में विराजमान होकर ही होगी। पद अपने स्थान पर है। दुनियाँ को पद दिखे, पर मुझे तो वह पद दिखता है जो सिद्धों के पास है। उस पद पर ही पहुँचना है, इसलिए इन पदों पर लक्ष्य नहीं है। समाधि पर लक्ष्य हो। सिंहासन से उतर करके, किसी योग्य शिष्य को बैठाल करके, मैं सल्लेखना की ओर चलूँ। **आसन और अधिकार इन दोनों में बहुत गर्मी होती है।** समाधि गर्मी में नहीं होती, समाधि ठण्डे में होती है। इसलिए इन दोनों से उतर करके ही सल्लेखना हो सकेगी। भोजन पकता तो अग्नि पर ही है, लेकिन खाने के समय उसे उतार कर ठण्डा करना पड़ता है। इसलिए सल्लेखना के लिए ये पद आवश्यक नहीं है। पर समाधि अंतिम समय नहीं होती है, साधक की समाधि प्रतिक्षण होती है और प्रतिक्षण ही सल्लेखना चल रही है।

इन युवाओं को मैंने समझा रखा है। मेरे कानों तक एक वाक्य सुनने में आने लगा है कि वृद्ध हो जायेंगे तो आचार्यों को अपने मठ बनाकर जीना पड़ेगा, इसलिए उनको पहले से व्यवस्था करनी पड़ेगी, समाज ध्यान नहीं देगी। मेरा कहना है कि चलते-फिरते माता-पिता को दुनियाँ देखने जाती है, परन्तु जब वे थक जायें तब सेवा करके दिखाओ,

तब समझ में आता है। इन श्रमणों को अपने नाम के मठ मंदिर में न ठहरना पड़े, इनको कालिया नाग बनकर ही रहने देना। नाग कभी अपने भवनों में नहीं रहता है। दीमक बनाती है, लेकिन रहता साँप है। ऐसे-ही जैन-श्रमण-परम्परा में दिगम्बर आम्नाय में साधुओं के निश्चत स्थान नहीं होते। समाज के स्थान होते हैं, उनमें साधु रह करके चले जाते हैं। इस पावन तीर्थ को भगवान् से ही जोड़कर रखना। न विशुद्धसागर से जोड़ना, न विरागसागर से जोड़ना, न विद्यासागर से जोड़कर रखना। सभी सागरों के लिये स्थान है, कोई विशेष सागर के लिए स्थान नहीं है। यदि ऐसा होगा तो सभी सागर की निर्मल समाधि का साधन बनेगी तुम्हारी तीर्थभूमि निर्मल समाधि स्थान बने। यदि आपने व्यक्तिगत नाम रख दिया तो किसी के मन में आ सकता है कि मैं वहाँ कैसे जाऊँ? ये तो श्रमण-संस्कृति परिषद् है, श्रमण-संस्कृति भवन है। सभी श्रमणों के लिए है, तीर्थंकरों के लिए है। ये भवन बना रहे थे, उसको विशुद्धसागर नाम लिखना चाह रहे थे, मैंने कहा कि ईंट-चूने से भागकर तो यहाँ आया हूँ, अब तुम मुझे उसमें क्यों चिपका रहे हो? करुणा करो, दया करो, इस जीव को ऐसे-ही रहने दो। आपको नाम लिखना ही है तो अरहनाथ स्वामी का लिख दो जो चक्रवर्ती थे।

अन्त में यही कहना है कि आचार्यत्व का निर्वाह हो। हम ऐसा क्यों कहते हैं कि आचार्यत्व अहंकार का पद है? ऐसा क्यों नहीं कहते कि अट्ठाइस मूलगुणों का पालन करने वाले को अब छत्तीस मूलगुणों का पालन करने का अवसर मिला है तो अपनी तपस्या बढ़ायें साधना बढ़ायें। आचार्य का ज्येष्ठत्व गुण होता है। साधु की अपेक्षा से साधना विशिष्ट होना चाहिए। **मात्र आसन ही ऊँचा न हो, साधना भी ऊँची हो। साधना ऊँची होगी तो आसन अपने आप ऊँचे हो जायेंगे।** तुम्हारी साधना और ज्ञान तुच्छ है तो आसन ऊँचा होने पर भी फीका ही है, क्योंकि अ के ऊपर अनुस्वार होता है। वह सिर पर बैठा होता है, लेकिन पहले अ का ही नाम लिया जाता है अनुस्वार का नहीं लिया जाता। इसलिए 'अ' पर अनुस्वार बनकर बैठने की आवश्यकता नहीं है। ओंकार पर बिन्दु बनकर बैठने की जरूरत है।

ओंकार बिन्दु-संयुक्त है, वह सिद्धों का प्रतीक है। इसलिए अपने जीवन में अ का अनुस्वार तो बनना, लेकिन अ पर अनुस्वार नहीं बनाना।

आपने जितनी प्रशंसा की है, ये सब विशुद्धसागर में नहीं है। प्रशंसनीय वास्तव में वे हैं जिनने विशुद्धसागर बनाये। गुरु नहीं होते हो अपन यहाँ तक कैसे होते? अट्ठारह

भाषाओं के ज्ञाता महावीरकीर्ति महाराज हुए हैं। विमलसागर महाराज तो ऐसे निमित्तज्ञानी थे, हम तो उनके पास बिना श्रद्धा के गए थे। मेरी उनके प्रति कोई आस्था नहीं थी। सुबह पहुँचते ही दूर से देखकर कहने लगे कि तू भिण्ड से आया है, दीक्षा लेना चाहता है। मैंने सोचा अरे! मैंने तो कुछ बोला ही नहीं। 'जाओ बेटा! तुम जहाँ जाओगे वहाँ जयकार होगी।' लगता है कि इस योगी के वचन अपने आप में मंत्र हैं। श्रद्धा से सिर झुक गया। जाकर देखा तो पाया कि दूसरे का जितना उपकार करते थे, अपनी साधना भी उतनी ही गंभीर करते थे। यथार्थ मानना, साधु की संख्या बढ़ाना बहुत आवश्यक नहीं है। साधुओं में समता बढ़ाना बहुत आवश्यक है। यदि साधुओं में समता बढ़ जाती है तो श्रमणसंस्कृति आज भी वैसे ही जीवित है जैसे भूत में रही है और साढ़े अट्ठारह हजार वर्ष तक जिनशासन ऐसे-ही जयवन्त रहेगा। जब से अग्नि है, जब से अवनि और अम्बर है, तब से दिगम्बर है और जब तक अवनि व अम्बर रहेगा, तब तक दिगम्बर रहेगा। अवनि व अम्बर अनादि काल से हैं और अनन्त काल तक रहेंगे। आचार्यश्री के चरणों में भक्तिपूर्वक नमोऽस्तु करते हुए आशीष चाहता हूँ कि स्वामी! जिस पद को आपने सौंपा है, उसका निर्वाह ठीक तरह करता रहूँ।

आचार्य वर्द्धमानसागर महाराज जी द्रोणगिरि में कह रहे थे—'विशुद्धसागर ने तो दिग्विजय की ठान ली है। दिग्विजय कर रहे हो। मैंने आपको 2006 में गोम्मटेश में एक मुनि के रूप में देखा। आज तुम विशाल संघ के नायक बनकर आये हो। मुझे खुशी है कि तुम जैनत्व की प्रभावना कर रहे हो।' तब सिर श्रद्धा से अपने आप झुक जाता है। यथार्थ है कि झुकाने की आवश्यकता नहीं है। तुम इतना कह दो, वह अपने आप झुक जाता है।

सम्मान चाहते हो तो सम्मान देना सीख लो, सम्मान मिलेगा। अपमान चाहते हो तो अपमान करना सीख लो, अपमान जरूर मिल जायेगा। जाओ भारत की भूमि पर तीन कम नव कोटि मुनीश्वर को नमोऽस्तु करते हुए—

भगवन्! अंतिम श्वास सिंहासन पर न निकले, अंतिम श्वास समाधि के संस्तर पर निकले।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।



भोगों में लिप्त धनी भी निर्धन

श्रुतं वृत्तं शमो येषां धनं परमदुर्लभम्।
ते नराः धनिनः प्रोक्ताः शेषा निर्धनिनः सदा॥309॥
को वा तृप्ति समायातो भोगैर्दुरितबन्धनैः।
देवो वा देवराजो वा चक्रांको वा नराधिपः॥310॥

अन्वयार्थ— (येषां परमदुर्लभं धनं श्रुतं वृत्तं शमः) जिनके पास बड़ी कठिनता से प्राप्त करने योग्य धन-शास्त्रज्ञान, चारित्र एवं शमभाव हैं **(ते नराः धनिनः प्रोक्ताः)** वे ही मानव धनवान् कहे गये हैं **(शेषाः सदा निर्धनिनः)** बाकी मानव धनवान् होकर भी निर्धनी हैं। **(दुरितबन्धनैः भोगैः)** पाप को बाँधने वाले भोगों से **(को वा तृप्ति समायातः)** कौन ऐसा है जिसको तृप्ति हो सकती हो ? **(देवः वा देवराजः वा चक्रांकः वा नराधिपः)** चाहे वह देव हो या इन्द्र हो या चक्रवर्ती हो या राजा हो।

भावार्थ— हे भव्य ! जिनके पास दुर्लभता से प्राप्त ज्ञानधन, चारित्र एवं समता है, वही धनवान् है। जो धनवान् होकर भोगों में लिप्त हैं, वे निर्धन ही हैं, चाहे वे चक्रवर्ती ही हों।

॥ सद्-देशना ॥

बन्धुओ! अन्तिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेश की पीयूष देशना, जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवन्त हो। जयवन्त हो वीतराग श्रमणसंस्कृति।

एक वह क्षण था जब जीव निगोद में था और निगोद से पुरुषार्थ करते-करते, एकेन्द्रिय से दो इन्द्रियादि पर्याय को प्राप्त किया है और पन्चेन्द्रिय संज्ञी पर्याय को प्राप्त किया है। कर्म व कर्मफल चेतना को भोगनेवाले उन जीवों से पूछना। युवाओ! तुमको सर्दी लगती है तो तुरन्त व्यवस्था कर लेते हो, गर्मी लगती है तो तुरन्त व्यवस्था कर लेते हो। एकेन्द्रिय जीव वनस्पति वृक्ष खड़ा हुआ है। चाहे कोई अस्त्र से छिन्न-भिन्न करे, चाहे शीत की बाधा हो, चाहे गर्मी की बाधा हो, कभी हिल भी नहीं सकता, डुल भी नहीं सकता, स्थानान्तरित नहीं हो सकता। उसको कर्म का फल भोगना ही है। ऐसी पर्यायों से निकलकरके ये जीव पंचेन्द्रिय अवस्था को प्राप्त हुआ है और पंचेन्द्रिय पर्याय में भी सर्वश्रेष्ठ उच्च पर्याय है वह मनुष्यपर्याय है। उस मनुष्यपर्याय

को प्राप्त करने के बाद भी, उच्च स्थान पर विराजमान होने पर भी उच्च परिणाम होना बहुत कठिन है। ऊँचा स्थान जो तुमको मिला है, ये पूर्व के उच्च परिणामों का फल है। जो वर्तमान में उच्च स्थान मिला हुआ है, यह आपके अतीत के उच्च परिणामों का फल है। प्रत्येक जीव अपने तीन भव जानता है और आपको अपने तीन भव जानने के लिए कोई तीर्थंकर केवली के समवसरण में जाने की आवश्यकता नहीं है, अवधिज्ञानी के पास जाने की आवश्यकता नहीं। मुझे आपके तीन भव का ज्ञान है और मुझे अपने भी तीन भव का ज्ञान है। अन्तर इतना है कि ये परोक्ष ज्ञान है, परार्थ ज्ञान है, पर वो भी प्रभाव है। ऐसा कौन-सा मनुष्य होगा जिसको अपने तीन भव का ज्ञान न हो? आज हम इस श्रेष्ठ कुल में जन्मे हैं, श्रेष्ठ पर्याय मिली है, वीतराग धर्म मिला है, तो ये श्रेष्ठ मान कर चलिये कि भूत हमारा परम इष्ट था। अल्प आरम्भ-परिग्रह का संचय किया था, उसका फल मनुष्यपर्याय मिली है। **वर्तमान जब दिखाई दे रहा है, तो भविष्य मेरा क्या होगा ये भविष्य के हाथ में नहीं है, ये वर्तमान के हाथ में है। वर्तमान तुम्हारा जितना पवित्र होगा, भविष्य उतना ही पवित्र होगा।** कार्यलिङ्ग हि कारणम्। कार्य कारण का लिंग है, कार्य कारण का चिह्न है। जितने वर्तमान में पवित्र साधन हैं, विशुद्ध परिणाम हैं, निर्मल दृष्टि है, लघुत्व भाव है, विश्वास रखना कि भूत के बड़े पवित्र जीव हैं।

मुमुक्षु! श्री का मिलना इतना कठिन नहीं है जितना श्री जी की प्रतिमा के प्रति श्रद्धा का मिलना कठिन है। श्री तो बहुत सारे पापियों को मिल जाती है, पर श्री जी का मिलना बहुत कठिन है और श्री जी मिल जाये फिर श्री जी के प्रति आस्था का होना अत्यन्त दुर्लभ है। धन्य इन युवाओं को, धन्य इन बच्चों को जो आज खोटे काल में भी प्रातः से जागकरके प्रभु के चरणों में बैठे हुये हैं। बेटा! तुम्हारी ही पर्याय की सफलता है। जो बालक दिन के बारह बजे जागते हों, वे सुबह साढ़े पाँच बजे महाराज के पास पहुँच जायें कि चलो महाराज। धन्य है। वे मातायें भी मुस्कराती होंगी कि वे अभागी संतान अभागी पुत्र-पुत्रियाँ जो सुबह से कोई दूसरे स्थान पर घूमते हों और हमारे बेटे निर्ग्रन्थ गुरु के चरणों में घूमते हैं। ये ही तुम्हारे संतान को जन्म देने का फल है। ओ हो! कितने ही ऐसे अभागे जीव होंगे जो प्रातः से ही अपने हाथों से कितने जीवों को ऊपर भेज चुके होंगे। वे भी मनुष्य हैं।

अहो श्रमणो! यही तेरा पुण्य है कि प्रातः से उठते ही तुम्हारा ध्यान जिनवाणी पर जाता है। और कई ऐसे भी होंगे जो सुबह से जागकर कप-प्लेट की ओर देखते

होंगे। कुछ ऐसे भी अभागे जीव होंगे जो सुबह से उठकर गोबर उठा रहे होंगे भैसों का। ऐसा भी क्या कर्म किया था कि गाय भैंस का गोबर उठाने जाना पड़ रहा है? और एक वे जीव हैं जो सबसे पहले उठकर जिनदेव, जिनवाणी, जिनगुरु को नमस्कार करके हाथ जोड़ रहा है। हर व्यक्ति दोनों हाथ जोड़ने की सामर्थ्य नहीं रखता। उन बेचारे किसानों से पूछो, सानी करके सोते हैं और जागते ही सानी बनाकर गोबर उठाते हैं। धन्य हो वह श्रमण दशा।

मेरे मित्र! मचले बेटे को तो तुम आज मना रहे हो दोनों हाथों पर रखकरके, ऐसे-ही मचले मन को मना लेता तो आज ये मनाने को नहीं मिलते, तू निर्ग्रन्थ मुनि बनकर बैठा मिलता। जिनने मचले मन नहीं मनाये, वे बहुतों को मनाते फिरते हैं और जो अपने मन को मना लेता है वह भगवन्त बनकर बैठता है।

ये वो दर्शन नहीं है जो परमात्मा को परमात्मा मानता है, भक्त को मात्र भक्त ही मानता है। दास संस्कृति नहीं है ये। ज्ञानियो! उत्तीर्ण होने वाली संस्कृति है, अवतीर्ण होने वाली संस्कृति नहीं है। यहाँ उतार के बाद चढ़ा जाता है, यहाँ उतरा नहीं जाता है। आत्म-नदी में उतरना है। यदि स्नान भी आपको करना होते हैं तो उतरना है तो नदी में उतरने के पहले उतारना पड़ता है। **जब जड़ नदी के जड़ नीर में उतरने के पहले उतारना पड़ता है, तो चेतन नदी में उतरने के लिए भी पहले उतारना पड़ेगा।** बिना उतारे उतरने वाले नहीं हो। इन वासनाओं को उतारो, फिर उतरो। धन्य हैं वे जीव जिन्होंने मनुष्यपर्याय को प्राप्त किया है। बहिरात्मा ही अन्तरात्मा और अन्तरात्मा ही परमात्मा बनता है। यही आत्मा का क्रमिक विकास है। ये सब आपको नजर आता है, प्रेक्टीकल में दिखता है।

गन्ने का रस देखा कभी? रंग कैसा होता है? जब प्रथमावस्था में होता है तब कैसा होता है? हरा। और रखा रहे तो काला, कढ़ाई पर चढ़ा दो तो पीला, वही शक्कर के कारखाने में चला जाये तो सफेद। रस तो वही था पहले वाला। कठोर मिश्री भी बनते देखा जाता है हरा रस। काला रस सफेद मिश्री भी बनते देखा जाता है। परिणमन किसमें हुआ? जब तरल ठोस हो सकता है, तो ज्ञानी भगवानात्मा भगवान् कैसे नहीं हो सकती है? ज्ञानी! वस्तु का परिणमन जो है, ये रासायनिक क्रिया है। जब तरल रस को आप कठोर मिश्री बना सकते हो, तो ध्यान रखना, अपने आप को पापी ही मत मान कर बैठ जाना कि मैं तो पापी ही रहूँगा। नहीं। कच्चा द्रव्य ही पक्का होता है, असिद्ध ही सिद्ध होता है, सिद्ध सिद्ध नहीं होता है। ज्ञानी संसारी

ही भगवान् बनता है। भगवान् कभी भगवान् नहीं होता है। इसलिए तुम चिन्ता मत करना। जितने यहाँ विराजते हैं, ये पूर्व के ऐसे ही नियोग हैं। इतने ही क्यों बैठे हैं यहाँ? **जिनकी भवितव्यता पवित्र है, वे ही भगवान् के पास आ पायेंगे और जिनकी भवितव्यता पवित्र नहीं है, वे भगवान् के पास नहीं आ पायेंगे।** धन्य हो जीव की परिणति को। जैसे-जैसे तापमान मिलता है, गन्ने का रस वैसे-वैसे बदलता है। जैसे-जैसे तापमान मिलता है तो सोना चमकता है। जैसे-जैसे तापमान मिलता है तो दुग्ध का परिणमन बदल जाता है। जैसे-जैसे तापमान जड़ में होता है तो जड़ में परिवर्तन होता है। तो जैसे-जैसे तापमान ध्यान-तपस्या का मिलता है तो आत्मा में परिणमन होकर परमात्मा बना जाता है। इसलिए ताप चाहिए। बिना अग्नि के काम नहीं होने वाला है। ये अग्नि नहीं होती तो तुमको भोजन नहीं मिलता और भोजन मिल भी गया लेकिन अग्नि नहीं होती पेट में, तो भोजन नहीं पचता। चूल्हे की अग्नि भोजन पका रही है बाहर और पेट की जठराग्नि भोजन पचा रही है भीतर।

ध्यानाग्नि न होती तो कर्म का ईंधन नहीं जलता और कर्म का ईंधन नहीं जलता तो कर्मकालिमा नष्ट नहीं होती और कर्मकालिमा नष्ट न होती तो आत्मा परमात्मा नहीं हो सकती। इस जीव ने निगोद से पुरुषार्थ किया है और पुरुषार्थ करते-करते ये जीव जब मनुष्य पर्याय को प्राप्त हुआ, अब ध्यानस्थ बैठ जाओ कि कैसे-कैसे परिणमन होता है आत्मा का। ये गुणस्थानों की जो दशा है प्रथम गुणस्थान से लेकरके चौदहवें गुणस्थान तक। मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र, अविरत सम्यग्दृष्टि, देशव्रती, प्रमत्त, अप्रमत्त, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्म साम्पराय, उपशांत मोह, क्षीण मोह—इन बारह गुणस्थान तक जीव पहुँचा ध्यान के तेज से। भैया! जब तेरी शादी होने की बातें तेरे घर में चलीं तो मेरे कान में जैसे-ही शब्द पड़ा और जैसे-ही मण्डप के सामने पहुँचता है फिर जीव को कैसे बैचेनी बढ़ती है अपने आप में कि कब दिखे देवी। ज्ञानी! दिख भी गई देवी, लेकिन तब भी अभी बिटिया दूसरे की है। अब उसके मन में लगता है कि कब पड़ें फेरे। वो क्षण तेरे मन में कैसा होता होगा, उस जीव से पूछना अन्तर्मुहूर्त में कैवल्य दिवाकर से जिसका मिलन होने वाला है, बारहवें गुणस्थान में बैठा है जीव, अन्तर्मुहूर्त में केवली भगवान् बननेवाला है, उस समय उस जीव के परिणामों की विशुद्धि क्या होगी? एक अन्तर्मुहूर्त में ऐसा विकास किया जीव ने कि ये सप्तधातुमयी सड़ा-गला शरीर परमौदारिक हो गया और वीतरागी जिनदेव समवसरण में विराजमान हो गए।

कौन किसका शरण होगा जिस काल ने सुरेन्द्र को भी निगल लिया, नरेन्द्र को भी निगल लिया? हरि, हर, ब्रह्मा, तीर्थंकर, आदि जीवों को यमराज के साथ जाना पड़ा। ये पर्यायदृष्टि है। **पर्यायदृष्टि से विश्व में कोई शाश्वत नहीं है।** जब चलती बिरिया आयेगी, तब जगत् के माता-पिता, जनक-जननी, देवी-देवता, नरेन्द्र-सुरेन्द्र सब खड़े रह जायेंगे। राजवैद्य देख ही पायेगा, जा नहीं पायेगा, रोक नहीं पायेगा। मिल लो भैया! जब तक मिल रहे हो शान्ति से। इस देह से धुआँ निकले, उससे पहले कषाय का धुआँ निकाल देना। देह का धुआँ निकलना पर-सापेक्ष है, पंच जाकर निकाल देंगे, लेकिन कषाय का धुआँ निकालना स्वसापेक्ष है, तू ही निकाल सकेगा। बोल भैया! ठीक है न? तेरी देह का धुआँ तू चाहे तेरे गाँव के लोग निकाल लें, वे देह का धुआँ तो निकाल सकते हैं, पर कषाय का धुआँ तो तुझे ही निकालना होगा। आज घर जाना, बैठ जाना और तब तक बैठे रहना जब तक कषाय का धुआँ न निकल जाये। माताओ! जिनसे किंचित् भी तू-तू मैं-मैं हो गई हो, क्या आपको मालूम है किसका विमान कब निकल जायेगा? यदि नहीं है मालूम, तो माँ! आप लोग पार्श्वनाथ तो नहीं हो। यदि कमठ बनाकर नहीं जाना चाहते हो तो किसी से कषाय बाँधकर मत जाना। भैया! जीव क्षमा से कभी छोटा नहीं होता और जिसकी मानकषाय मंद नहीं होगी, वह क्षमा माँग नहीं सकता। जिनका निर्वाणकल्याणक हम मना रहे हैं, तुम तो भगवान् की पर्याय को निहारने आये। उनके परिणामों को निहारो कि इस पर्याय तक कौन-से परिणाम लेकर पहुँच गए?

विद्वानो! विश्वास रखना, '**कार्यलिङ्गं हि कारणम्।**' आपकी विद्वत्ता जो है, ये वर्तमान के पुण्य की नहीं है। ये उच्च कुल मिला, इतना उच्च शरीर मिला है, प्रज्ञा मिली है, मेरे मित्र! पूर्व में किसी निर्ग्रन्थ के हाथ में जिनवाणी सौंपी होगी। सभी विद्वानों से श्रोताओं से मेरा कहना है कि मेहनत का कोई दे तो ले लेना, लेकिन मेरे मित्र! जब जगत् में जन्म देनेवाली माँ को नहीं बेचा जाता है, तो जिसने प्रज्ञा को जन्म दिया हो उस जिनवाणी माँ को कभी मत बेचना। खाने को न मिले तो णमोकार पढ़कर सल्लेखना ले लेना, लेकिन पण्डित जी! कोई आप से कहे कि कितना लोगे, तो उससे कहना कि भाई मेरे जेब का होगा तो तू लिफाफा डाल देगा, लेकिन मुझसे अपनी माँ को बेचने की बात मत करना। स्पष्ट बोलना और इतना ध्यान रखना जीवन में निर्माल्य का द्रव्य नहीं लेना।

भैया! एक दिन एक मुमुक्षु अपनी माँ की तस्वीर बाजार में फ्रेम कराने के लिए ले गया। जब फ्रेम कराने ले गया तो जो शिल्पकार था फ्रेमिंग करता था, उसके पास फ्रेम छोटा था, वह धीरे-से कहता है कि भैया! ऐसा करें कि ये फ्रेम छोटा है, इसलिए मैं चारों ओर से तस्वीर को छाँट दूँ? तो वह भैया जोर से चिल्लाता है, चीखता है, कि भाई! सुन, अगर तेरे पास फ्रेम बड़ा हो तो जड़ दे, परन्तु मेरी माँ के फोटो को काँटो-छाँटो मत। मेरे मित्रो! इन विद्वानों से कह देना कि अपने मस्तिष्क के फ्रेम को बढ़ा लो, लेकिन माँ जिनवाणी को काँटो-छाँटो मत। अपने फ्रेम को बढ़ाओ, अपनी सोच को बढ़ाओ, अपनी प्रज्ञा को बढ़ाओ, पर अपनी लघु सोच से विशाल माँ जिनवाणी की कटाई-छटाई मत करो। विशाल सोच की आवश्यकता है।

भैया! सिद्धचक्र विधान तो आप कराते ही हो, मेरे मित्र! उसमें आपने पच्चीस तत्त्वों को भी अर्घ्य चढ़ाया है, सोलह तत्त्वों को भी अर्घ्य चढ़ाया है। भैया! गहरे तत्त्व में ले जाने की आवश्यकता है। बहिर्प्रमेय की अपेक्षा से सम्यक् या मिथ्यात्व होता है। भावप्रमेय की अपेक्षा से कोई मिथ्यात्व होता नहीं। ये विषय सबकी समझ में नहीं आयेगा।

जिससे तत्त्व का बोध हो, चित्त की विशुद्धि हो, इन्द्रियों का निरोध हो, आत्मा का शोध हो, वही जिनशासन में 'ज्ञान' है। अब भावप्रमेय, बहिर्प्रमेय से तात्पर्य समझना। भैया! ये तो पूजन की पद्धति है। पूज्य की पद्धति क्या है? तुम पूजन की पद्धति में लिप्त होकर कहीं विसंवाद में डूब गये, कहीं ऐसा करो वैसा करो में लग गये, तो ज्ञानी! तेरे परिणामों की पद्धति खण्डित हो जायेगी, तो परमात्मा बनने की पद्धति नहीं सीख पाओगे। इसलिए देवसेन स्वामी ने 'आलाप पद्धति' नामक ग्रन्थ में लिखा है कि पहले बोलने की शैली को सीखो। जब ये पच्चीस तत्त्व पर अर्घ्य चढ़ा रहे होंगे, मेरे मित्र! ये पच्चीस तत्त्व जैनदर्शन के हैं क्या? बताओ कहाँ लिखे हैं? ये पच्चीस अजैन-दर्शन के हैं। अब भैया! तू फँस गया है, अच्छे से फँस गया है। भगवान् की वाणी में सबकुछ आया है, तो तू उत्तर दक्षिण का भेद क्यों करता फिरता है? भैया! मैं आपको उलझाकर ही सुलझाना चाहता हूँ।

ज्ञानी! सुनो। जो पच्चीस तत्त्व हैं, ये सांख्य दर्शन के हैं, आपके तो नहीं हैं, पर आपने अर्घ्य चढ़ाया है तो तुमको मिथ्यात्व का दोष लगेगा कि नहीं लगेगा? सुनो ज्ञानी! कितना गहरा जिनागम है। पच्चीस तत्त्वों को अर्घ्य चढ़ा रहे हैं तो पच्चीस तत्त्वों को अर्घ्य चढ़ाते समय प्रश्न किया कि ये तो सांख्या दर्शन है, फिर अर्घ्य क्यों?

भो ज्ञानी! शुद्ध संग्रह नय की दृष्टि से विश्व में ऐसा कौन-सा द्रव्य है जो जिनदेव के कैवल्य में नहीं झलका? किसी ने भात खाया किसी ने ओदन खाई, किसी ने चावल खाया, पर खाया क्या? ये भाषा का भेद है, वस्तु का भेद नहीं है। ऐसे ही ज्ञानियो! भेद तुमने किए हैं। हमने वस्तु को नहीं देखा। जो संबंध को देखेगा, उसमें भेद होंगे और जो वस्तु को देखेगा, उसमें स्वभाव होगा। इसलिए जहाँ पच्चीस तत्त्वों को अर्घ्य चढ़ाया है वहाँ हमारे तीर्थंकर भगवन्तों की देशना में सात तत्त्वों में ही विश्व के सम्पूर्ण तत्त्वों को समाविष्ट किया है। सोलह तत्त्वों को भी अर्घ्य चढ़ाया है, वे वैशेषिक के हैं।

विद्वानों को चाहिए कि वे न्याय ग्रन्थ पढ़ें। यदि न्याय के ग्रन्थ नहीं पढ़ेंगे तो नियम से अन्याय करेंगे धर्म के साथ। जो है, सो है। बराबर है न भैया?

भाव प्रमेय की अपेक्षा से वस्तु जो है सो है। बहिर्प्रमेय की दृष्टि से ये अनाद्यतभूत है। किसी ने कुदेव पर समर्पित किया तो अब ये ज्ञानी कहता है कि मैं इसको खाना चाहता हूँ। नारियल को देव के मंदिर में फोड़ता है तो बलि का दोष है और घर में भी तो फोड़ता है खाने के लिए, तब उसमें कोई दोष नहीं है। किसी देव के यहाँ चढ़ाकर खाता है तो निर्माल्य है। गरी मात्र देखेगा, नारियल मात्र देखेगा, भेला मात्र देखेगा तो दोष नहीं, क्योंकि खाद्य-सामग्री है। ऐसे-ही जिसने आकृतियाँ बनाकर रखी हैं, कुदेवादि संज्ञा में चला गया, देव संज्ञा में चला गया और जिसने पत्थर को मात्र देखा है, वह मात्र पत्थर को देख रहा है। एक स्त्री को देखता है, एक माँ को देखता है, एक पुत्री को देखता है, एक भगिनी को देखता है, एक पत्नी को देखता है और एक मात्र जीवद्रव्य को देखता है, उसे किसी से कोई सम्बन्ध नहीं है। वह तो मात्र जीवद्रव्य को देख रहा है। बहिर्प्रमेय में नानात्वपना है, भावप्रमेय में एकत्वपना है। इसलिए वस्तुस्वभाव में जब भी दृष्टि जाती है, तब समझ में आता है कि वस्तु क्या है।

धन्य हैं वे जीव, बारहवें गुणस्थान में पहुँचकरके अंतर्मुहूर्त में कैवल्य को प्रकट किया। सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति शुक्लध्यान में लीन हुए भगवान्, तब पापप्रकृतियों को नहीं, पुण्यप्रकृतियों को क्षय करने जा रहे हैं। भैया! लोग कलम को तुरन्त चला देते हैं। पाप-पुण्य जो लिखा, वह पाप-पुण्य ही लिखा रहने दो, पुण्य मत करो। अपनी बुद्धि को ठीक करो, प्राचीन ग्रन्थों में परिवर्तन मत करो। निर्वाण जो है, वह पाप-पुञ्ज के नाश करने मात्र से नहीं मिलेगा। पाप पुञ्ज का नाश हो जायेगा तो तू अर्हन्त

बन जायेगा, पर पाप-पुण्य का नाश करेगा तभी तू सिद्ध बन पायेगा। समझो ध्यान से। 'पाप-पुण्य मिल पायन बेड़ी।' **पुण्य होगा तो स्वर्ग भेजेगा, पाप होगा तो नरक भेजेगा और ज्ञानी! मोक्ष जाना है तो दोनों का अभाव करना होगा।** दोनों प्रकृतियों का क्षय करके। अपनी योग्यता के अनुसार, अपनी क्षमता के अनुसार होगा, पर दृष्टि में चतुर्थ गुणस्थान से रखकर चलना पड़ेगा।

रस्सी से पानी तो खींचा जाता है। रस्सी को ही खींचा जाता है, पर रस्सी खींचने के लिए कोई रस्सी नहीं खींचता। रस्सी खींचने के लिए जो रस्सी खींचे, वह पागल पुरुष है। रस्सी क्यों खींच रहा है? रस्सी खींचता दिख रहा है, पर खींच किसे रहा है? बाल्टी को। पकड़ते समय बाल्टी दिख रही है, पर पकड़ किसे रहा है? पानी को। ऐसे-ही मुमुक्षु ये पिच्छी पकड़ रहे हैं, कमण्डल पकड़ रहे हैं, कपड़े उतार दिए हैं, ये सबकुछ धर्म नहीं है। ये तो बाल्टी और रस्सी का काम हो रहा है। पर जो है, सो है। वह क्या है? वह पानी-जैसा पुरुषार्थ है। ऐसा **निज शुद्धात्मा की प्राप्ति के लिये जो लक्ष्य है, उसका नाम धर्म है।** भैया! तुझे लाल पगड़ी बांध दें तो क्या तू पण्डित बन जायेगा? भैया! तुझको डॉक्टर के आले-माले टांग दें गले में, तो क्या तू डॉक्टर बन जायेगा? ऐसे-ही पिच्छी-कमण्डल पकड़ा कर खड़ा कर दो कपड़े उतार कर, तो मुनि नहीं बन जाता है। विद्या भी चाहिए, तदनुरूप बोध भी चाहिए। जब तक आत्मा की अनुभूति का अनुभव नहीं हो रहा है, तब तक कोई दिगम्बर मुनि नहीं है और जब तक तद्रूप दिगम्बर मुनि नहीं है, तो तब क्या भगवान् बन सकता है? नहीं। आँखों के महाराजों को तुम 'मूलाचार' में देख सकते हो, लेकिन समयसार के महाराजों को आँखों से नहीं देखा जा सकता है। मूलाचार के मुनि बनकर स्वर्ग तो जा सकते हैं, लेकिन भगवान् तभी बनोगे जब 'समयसार' के मुनि बनोगे। बस ज्ञानी! वह क्षण आया। धन्य है योगी की दशा, धन्य है मुनि की दशा। शब्दों में बांध देने से काम नहीं चलेगा। भैया! सामने मुनि दिख जाये तो सिर नहीं टेकेगा ये जीव और बाहर से कहता है 'धन्य है ये मुनि दशा'। जब भीतर में मुनि दशा के लिए धन्य उठेगा, तो पानी-पानी हो जायेगा जीव।

आचार्य-भगवन्तों से प्रार्थना है, स्वामी! हमारे यहाँ एक चपरासी की भी सर्विस लगती है तो उसका मेडीकल चेकअप होता है। तनिक-सी पुलिस की भी भर्ती होती है तो उसका पूरा मेडीकल होता है और उसकी पूरी जानकारी ली जाती है कि क्या है क्या नहीं है, तब कहीं जाकर सेना में भर्ती होता है। हे भगवन्! जो तीर्थंकर की

सेना में सैनिक बनने जा रहा हो, उसका बिना मेडीकल किए आपने मुनि कैसे बना दिया? पूरे जिनशासन में यदि एक सैनिक परास्त होता है तो पूरा देश नीचे गिरता है। एक दिगम्बर मुनि इस झण्डे (पीछी) को लेकर चलता है तीर्थंकर का और एक भी गड़बड़ी करे तो पूरा जिनशासन बदनाम होता है। ये भीड़ का शासन नहीं है, ज्ञानी! ये यथार्थ का शासन है। आपको मालूम होना चाहिए। स्वाध्याय नहीं किया तो मैं आपको एक शब्द दिये देता हूँ। लिख लो, नोट कर लो अपनी-अपनी डायरियों में। कल्याण अङ्ग, ये जिनागम का शब्द है। कुन्दकुन्द स्वामी ने 'प्रवचनसार' में लिखा है। कल्याणअङ्ग का अर्थ होता है निरोग शरीर। **जिस दीक्षार्थी के शारीरिक व मानसिक विकृतियाँ और कुल विकृति, जाति विकृति, पन्थ विकृति न हो, ऐसे व्यक्ति को ही मुनिदीक्षा देना, किसी भी व्यक्ति को मुनिदीक्षा नहीं दे देना।** योग्यता है तो रखो, अन्यथा भाई! अब घर पर साधना करो। यदि घर भेज दें तो ये मत समझना कि भगा क्यों दिया है? भाई! दौड़ाते हैं, चलाते हैं सैनिक के लिए और नहीं दौड़ पाये तो क्या सेना में भर्ती करेंगे? ऐसे-ही आचार्यों को शिष्यों को ब्रह्मचारी अवस्था में दौड़ा लेना चाहिए। योग्यता दिखे तो रखना, नहीं-तो बेटा! घर जाओ, शान्ति से साधना करो। शिष्य बनाना, शत्रु नहीं बनाना।

आपके साथ बहुत प्रतिष्ठाचार्य आते हैं। ये पगड़ी सबको नहीं बांधी जाती है। अब मैं रहस्य की बात बता देता हूँ। पगड़ी का उद्देश्य पण्डित जी! कोई दिखावा नहीं है। मित्र मेरे! सबकुछ छोड़ने के बाद भी ये सिंहासन लगा दिया जाता है, क्या आवश्यकता है इसकी? बोले, महाराज! ये इसलिए लगा है कि अधिकृत आचार्य हैं आप, आप संघ का संचालन कर रहे हो। पण्डित जी! आप लोगों को इसलिए पगड़ी बांध दी गई है कि ये प्रतिष्ठित प्रतिष्ठाचार्य है। प्रतिमाओं पर आपने केशर से अङ्कन्यास किया है। इतना अधिक आपने लेपन किया है लोगों को दिखे कि उस पर प्रशस्ति लिखी है। इसका उद्देश्य क्या है? और इतनी भीड़ की क्या आवश्यकता है, एक कमरे में भी कर सकते हैं? लोग जान लें कि प्रतिष्ठा को प्राप्त होकर प्रतिष्ठित हो गए हैं। लोकसम्बन्धी भी प्रतिष्ठा है। अरिहन्त सिद्ध उपाध्याय साधक सम्पूर्ण साक्षी चाहिए।

बेटे की शादी होती है तब बारात की क्या जरूरत? सर्वसाक्षकम्। ये राक्षसी शादी नहीं है, ये गन्धर्व शादी नहीं है, ये दैव शादी है। बहुत सारे विषय विद्वानों को बोलना चाहिए जो मैं बोल रहा हूँ। पर क्या करूँ? युवाओ! सुनो। जो स्वयं हरण करके

लाया, उसका नाम है राक्षसी शादी और कोई कन्या सो रही थी तो उसे उठा ले आया, सो पिशाचकी शादी और जिसने बिना माता-पिता की स्वीकृति के विवाह कर लिया है, उसका नाम है गान्धर्व विवाह। सच्ची शादी वह है कि न बेटी को अपना पति तलाशना चाहिए और न बेटा को अपनी पत्नि तलाशना चाहिए। जहाँ माता-पिता करें, वह शादी दैव शादी है। उसे ही ब्रह्मविवाह कहा है।

शब्दानां अनेकार्था। पानी, नीर, जल, वारि अनेकार्था। पानी का एक नाम विष भी है, पर हर समय पानी को विष मत बना देना। जब पानी को दौड़-दौड़के पीये, तो पानी विष है और भरपेट भोजन कर ले, फिर पानी पीये, तो पानी विष है और भोजन करने के पहले भरपेट पानी पीये, तो विष है। परन्तु ज्ञानी कुछ ग्रास खाये, फिर पानी पीये, तो पानी अमृत है। देखो मेरे से कोई पूछने आना मत। न मंत्र पूछना, न तंत्र पूछना, न कोई दवाइयाँ पूछना। पर ये पक्का बता देता हूँ कि जैसा हमारे आयुर्वेद में लिखा है वैसे आप चलने लग जाओ तो आपको कभी वैद्य के घर में जाना ही नहीं पड़ेगा। हमारा 'मूलाचार' आयुर्वेदशास्त्र है, उसमें लिखा हुआ है कि पेट के चार हिस्से करो। इसका मतलब कहीं छुरी लेकर न बैठ जाना आप। नहीं-तो आप कहो कि चार भाग करो, महाराज ने कहा था। यदि गर्मी का मौसम है तो एक भाग में ठोस भोजन, दो भाग में पेय और एक भाग खाली छोड़ दो वायु संचार के लिए। सर्दी का मौसम है तो दो भाग में ठोस, एक भाग में पेय, एक भाग फिर भी खाली छोड़ दो। आप बिल्कुल खाली छोड़ते ही नहीं हैं, फिर तो वो होना ही है जो होता है। पर क्या करें भैया! भोजन दूसरे का हो सकता है, लेकिन पेट तो तुम्हारा स्वयं का ही होगा कि नहीं होगा?

भैया! किसी गरीब के यहाँ आहार करने गये तो तुम्हारा पेट कैसे भरे फिर? इसलिए कभी-कभी अनशन कर लिया करो, ऊनोदर कर लिया करो। जितना पुण्यात्मा जीव होगा, उसका भोजन उतना कम होगा और जितना पापी जीव होगा, उतना ढेर सारा खायेगा, इसमें शंका नहीं करना। **श्रेष्ठ पुरुष कम खाता है और पापी पुरुष ढेर-सारा खाता है।** अब भैया! तुम किसी को खाते देखना मत।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।



आत्मा ही तीर्थ है

आत्मा वै सुमहत्तीर्थं यदासौ प्रशमे स्थितः।
यदासौ प्रशमो नास्ति ततस्तीर्थं निरर्थकम्॥311॥

अन्वयार्थ—(यदा आत्मा प्रशमे स्थितः असौ सुमहत् तीर्थं) जिस समय आत्मा शांतभाव में स्थिर हो जाता है उस समय वही महान् तीर्थ है **(यदा असौ प्रशमे नास्ति)** और जब यह आत्मा शान्तभाव में नहीं है **(ततः तीर्थं निरर्थकम्)** तब तीर्थयात्रा निरर्थक है।

भावार्थ—हे भव्य! शांतभाव सहित आत्मा ही तीर्थस्वरूप है और आत्मा शान्तभाव में नहीं है तब तीर्थयात्रा निरर्थक है।

॥ सद्-देशना ॥

आचार्यप्रवर भगवन् कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज सारसमुच्चय जी में कह रहे हैं कि ये ध्रुवधाम चैतन्य तीर्थ है जिसके बाहर जाने पर कोई तीर्थ नहीं है। **बाह्य जगत् के तीर्थों का आलम्बन लेने का उद्देश्य तो मात्र चैतन्य तीर्थ में निमग्न होना है। चैतन्य तीर्थ को खो करके यदि बाहरी तीर्थ में प्रवेश है, तो लड्डू को फेंक करके प्लेट को चाटने जैसी बुद्धि है। हे जीव! आत्मधर्म ही चैतन्य तीर्थ है। शांत भाव जिसका लक्ष्य है उस शांत भाव का विसर्जन करके बाहरी तीर्थ में काषायिक भाव से लिप्त हो रहा है तो तेरी वही दशा है।** स्वतन्त्रता की अनुभूति तो लेना सीखो। आप घर छोड़कर जिनालय में आये हो तो शान्ति का अनुभव करने आये हो, गृह कार्यों से भिन्न होकर आये हो। यहीं आकर काम करने लग गया, तो अपने शरीर का स्थान तो बदला है परन्तु मन का स्थान कहाँ बदला? भावों को विश्राम नहीं दे सके, कषायों को विश्राम नहीं दे सके। सत्यता यह है कि आराम देना ही धर्म है। शायद आपको ऐसा महसूस हो रहा होगा कि इस नये शब्द का प्रयोग कैसा? ज्ञानी! दिगम्बर जैन आम्नाय में 'षट्खण्डागम' ग्रन्थ सर्वोपरि ग्रन्थ है, जिसकी 'धवला' टीका सारे विश्व में विख्यात है और टीकाकर्ता वीरसेन स्वामी को 'कलिकालसर्वज्ञ' की उपाधि से अलंकृत किया गया है।

आज के वक्ता कहते हैं कि मेरा ये सोच है। तुम्हारा क्या है? तुम्हारे आचार्यों ने शुचिता से सोच कर रख दिया, तुम क्या सोचोगे ? विश्राम ही धर्म है। यह जीव जब कषाय से भरा होता है, मिथ्यात्व, अज्ञान, अविद्या में भ्रम से पीड़ित होता है। पुरुष जब दौड़ते-दौड़ते थक जाता है, तब यदि आम्र की मधुर छाया मिल जाय तो आनंद और शांति का वेदन करता है और कोई आपसे कहे 'मित्र! मैं आपसे चर्चा करना चाहता हूँ' तो वह कहता है 'मित्र! थोड़ा ठहरिये।' वह कहता है कि क्यों समय बर्बाद करते हो? इतने में तो बात ही हो जाती। वह कहता है कि बात करने के लिए भी शक्ति चाहिए, धैर्य चाहिए, स्थिरता चाहिए। जो धैर्य के अभाव में, स्थिरता के अभाव में, शक्ति के अभाव में बात कर लेते हैं, उनकी बात बिगड़ जाती है। बात करने के लिए आपको तैयार होना चाहिए कि अब मैं चर्चा करना चाहता हूँ। विश्राम करो, मार्ग में जो श्वास खिंच रही थी उसको हल्का करो।

वीरसेन स्वामी कह रहे हैं कि मिथ्यात्व के मार्ग में, मिथ्यात्व के गलियारों में दौड़ा-दौड़ा चैतन्य चला आ रहा था। जब सम्यक्त्व के सम्मुख होता है तो थोड़ा विश्राम लेता है। विश्राम लेने के उपरान्त विशुद्ध होता है। अब मैं स्वस्थ हूँ, अब आगे का काम करता हूँ। सोचता है, विशुद्ध होता है, फिर विशुद्ध होकरके आगे कर्मों की क्षपणा करता है। विश्राम धर्म है, आराम धर्म है। विश्राम नहीं है तो क्या जीवन है ? विश्राम नहीं लिया तो विशुद्ध कैसे होंगे? वाहन-चालक भी वाहन को खड़ा कर देता है, इसके इंजन को ठण्डा होने दीजिए।

मिथ्यात्व की गलियों में, कषाय के मार्गों पर जो तेरा चित्त दौड़ रहा था, उसको आपने विश्राम ही नहीं दिया। विश्राम दे दो, धर्म प्रारम्भ हो जायेगा। तन को तो चारपाई में डाल देते हो, परन्तु मन को अनन्तचतुष्टय में क्यों नहीं भेजते? आठ काठ की खाट पर तन-पिंजड़े को तो छोड़ दिया, परन्तु आठ कर्मों के मध्य में बैठी भगवान्-आत्मा को तूने विश्राम क्यों नहीं दिया? हे मुमुक्षु! आठ कर्मों के मध्य में विभाव भावों की रस्सिसों से बने हुए, तू पड़ा हुआ है इस आठ काठ की बनी गंदी खाट पर। धन्य हैं वे परिणाम, वे आठ काठ की खाट पर नहीं, आठ कर्मों में नहीं, वे आठ गुणों की चारपाई पर विश्राम कर रहे हैं। अष्ट गुणों से युक्त, अष्टम वसुध ाा पर अनन्त काल तक विश्राम करेंगे, अब वे कभी नहीं लौटेंगे।

विश्राम ही धर्म है। आराम करो। जीव ने आराम करना नहीं सीखा तो संसार में रुलता ही रहेगा। विश्राम करना सीख लो, विशुद्ध होना सीख लो। तन तो डाल दिया चारपाई पर, परन्तु मन तब भी काम कर रहा है। जितना सोने में समय नहीं जाता, उतना सोचने में समय जाता है। सोचते-सोचते प्रातः की बेला में फिर खड़ा होना पड़ता है, नहीं-तो पागल हो जाता। **जितना सोने में समय नहीं निकाला, उतना सोचने में समय निकाला है। सोचने से काम बनता है क्या ? मस्तिष्क को गरम करके स्वयं का घात किया है।** हे ज्ञानी! योजना बना कर्मातीत होने की। तत्त्वज्ञानीजीव योजना कम बनाता है। योजना गरजने वाले बना रहे हैं। बरसने वाले नहीं। जीवन में जितनी अधिक योजना बनाकर जी रहे होंगे, वे वर्तमान के जीवन को नहीं जी पाये। **भविष्य अजन्मा है, भूत मर चुका है, वर्तमान में जी नहीं पा रहे हो, तीनों अवस्थायें दुःखदायी।** मेरे से कोई यह बोल जाए कि महाराज! आज शाम को आप इस शरीर से छूट जाओगे, विदा हो जाओगे; तो पहले मैं उसको आशीर्वाद दूँगा। हे जीव! तुझे शुभाशीष है। इसी प्रकार से अपने लिए तू अवगत कराते रहना। फिर उससे यह कहूँगा कि बहुत अच्छी बात है, शाम को जाऊँगा, अभी दस बजने में दस कम है। शाम के पाँच बजे का कहा है कि आप चले जाओगे। मध्य का जितने घण्टे का समय मेरे पास है, जितने घण्टे अवशेष हैं, वह समय मेरे अहोभाग्य/सौभाग्य का समय है। जो नहीं कर पाये थे, अब मैं करूँगा। भविष्य को नहीं रोऊँगा, भूत को नहीं रोऊँगा, वर्तमान को आनन्द में जीऊँगा, विश्राम के साथ जिऊँगा, परिपूर्ण विश्राम दूँगा। **हे मन! तू पच्चीस कषायों की दुनियाँ में मत चल, थक जायेगा। दस प्रकार के बाह्य परिग्रह में मत चल, तू थक जायेगा। हे ज्ञानी! तू अंतरङ्ग के चौदह परिग्रह की ओर मत दौड़, तू थक जायेगा। तो क्या करूँ? अब तू चारित्र की शय्या पर विश्राम कर।** कष्ट हो तो जिनागम का पान कर, आँखों से देखने की इच्छा हो रही हो तो जिनदेव का अवलोकन कर, आँखें थक रही हों तो निजदेव का अवलोकन कर। आँख खुले तो निज देव को देखो और आँख बन्द होने लगे तो निज देव को देखो। बस, कुछ नहीं। वैद्य ने कहा कि तुम्हारे दो दिन अवशेष हैं तो तू घबराना नहीं। जाने वाले को कौन रोक पाया है ? जो अजन्मा है अमृतक है उसे कौन मार सकता है? **जब तक अद्वैत दृष्टि, ब्रह्म दृष्टि, स्वरूप दृष्टि पर लक्ष्य नहीं जायेगा, तबतक संसार का जीवन भी सुखमय नहीं जी पायेगा।**

वैदिक दर्शन में, युद्धस्थल पर गीता का उपदेश होने का उद्देश्य क्या था ? नारायण कृष्ण गीता का उपदेश मंदिर में नहीं कर रहे थे, धर्मशाला में नहीं कर रहे थे, वह समरभूमि/युद्धक्षेत्र में उपदेश चल रहा था। **तुम देह को देखते रहोगे तो कुछ नहीं कर सकते हो। रिश्तों को देखोगे तो कुछ नहीं कर सकते हो। ये संसार कर्मभूमि, युद्धभूमि है, इसमें रिश्तों को देखोगे तो कुछ नहीं कर सकते हो। यदि कर्म-शत्रुओं को नष्ट करना चाहते हो, तो सम्बन्ध छोड़िये। बन्ध छोड़िये यदि मुक्त होना चाहते हो तो। स्वदेश को प्राप्त करो, यह आत्मदेश ही मेरा स्वदेश है।** यही मानकर चलना होगा। संसार का प्रत्येक क्षण समयभूमि में है।

जब मेरी मृत्यु ही नहीं है, तो डर किस बात का? मृत्यु के नजदीक बैठा पुरुष दु:खित हो, यह तो एक मामूली घटना है। यह गम्भीर विषय है, लक्ष्यपात करो।

वृद्धत्व से बढ़कर कोई कष्ट नहीं है। कुछ होता है नहीं और मन मानता नहीं है। पुण्य इतना क्षीण हो चुका होता है कि बेटा भी बाप को पसन्द नहीं करता फिर भी समता रखे है। एक रहस्यमयी बात आपको बताऊँ। श्रमणपरम्परा में आचार्य को आचार्यपद त्यागने का कथन है। संन्यासी भी संन्यासी लेता है। संन्यास सत् में न्यास। दीक्षा काल, शिक्षाकाल, गणपोषण काल, आत्म संस्कार काल (आत्म-संस्कार काल में साधक जो संस्कार दे रहा है), संन्यास काल, उत्तमार्थ काल। ये छः काल साधु के समय हैं। इस क्रम से साधु का प्रवेश होता है।

पहला काल। दीक्षा काल जब वैराग्य से ओतप्रोत परिणति होती है, तब गुरु के पादमूल में बैठ करके निवेदन करता है स्वामी! संसार-सागर से उत्तीर्ण होने के लिये आपके श्री पादमूल में जैनेश्वरी दीक्षा लेना चाहता हूँ। परन्तु गुरु दीक्षा नहीं देगा। ये कोई राग नहीं है, तश्करी नहीं है। यह चोरी का मार्ग नहीं है। यह भगोड़ों का मार्ग नहीं है। आप जनक-जननी से अनुमति लेकर आइये। यह न कोई मातम का काल है कि आप यहाँ दीक्षा लो और कुटुम्बी आकर के रोयें। मैं कोई डाकू नहीं हूँ कि लोग यहाँ प्रश्न खड़े करें कि बेटे को दीक्षा क्यों दी जा रही है? वैराग्य है, तो वैराग्य की परीक्षा दो। अपने माता-पिता की अनुमति लेकर आओ और राजपुरुष है तो राजा की अनुमति लेकर आओ। राजकर्मचारी हैं आप, यहाँ दीक्षा लोगे तो राज्य की व्यवस्था भङ्ग होगी। तात्कालिक, तो राजा को रोष भी आ सकता है तो वह श्री संघ पर उपसर्ग

भी कर सकता है। समझो, कितने गूढ़ रहस्य हैं। ऐसा नहीं होता कि बन्द कमरे में सिर मुड़ा कर बिठाल दो। शाम को ये ब्रह्मचारी, सुबह मुनिराज बने बैठे हुए हैं। यह डाका है जो रात्रि में दीक्षा हो रही है। यह पूरा क्षेत्र पुण्यभूमि है, तीर्थंकर पारसनाथ स्वामी की समवसरण स्थली है यह। इस पुण्यभूमि का भारतभूमि का कण-कण तीर्थ है। इस नगरी में तश्करी का काम मत होने देना। कोई दीक्षा भी देना चाहे, तो लेने वाले से पूछ लेना। घर से भगाये गये हो, कि भाग कर आये हो, कि वैरागी होकर आये हो? जब कहीं के लायक नहीं बचते हो, घर में क्लेश होता है, तो घर के लोगों ने भगा दिया कि भागो यहाँ से। तो क्या करें?

मूढ़ मुड़ाये तीन गुण, सिर की मिट गई खाज।
खाने को लड्डू मिले, लोग कहें महाराज॥

चलो, व्यवस्था भी बनेगी और जीवन भी चलेगा। नहीं, यह अर्हत् मार्ग है, यह जिनमार्ग है, यह उन्मार्ग नहीं है। जब भारत की सेना में युवा भर्ती होना चाहता है तो उससे भी बातचीत करके सब पता कर लिया जाता है कि वास्तविक स्थिति क्या है? जब भारतीय सेना में भर्ती होने वाले को, उस नगर के थाने में वायरलेस आ जाता है कि इसकी खोजबीन करिये, यह कैसा है? जिसका सम्राट् आचार्य हो, जिसके तीन रत्नत्रय के खड्ग हों, मोह की सेना को नष्ट करने जा रहा हो, मुख्य सम्राट् तीर्थंकर हो, ऐसे तीर्थंकर जिनेन्द्र के शासन की फौज में भर्ती होने आये हो तो तुम्हारी देश, कुल, जाति की शुद्धि का पता होना चाहिये। जिसके देश का मालूम नहीं है, जिसके वंश का मालूम नहीं है, जिसके कुल का मालूम नहीं है, उसकी जिनदीक्षा कैसे हो? उसकी सेना में भर्ती कैसी? ये रक्त का प्रभाव होता है। भारतीय सेना में आज भी तुम देखकर आओ। '**देश कुल जाइ शुद्धा**' यह कुन्दकुन्द स्वामी की गाथा है। जो देश से, कुल से, जाति से शुद्ध हैं, '**विशुद्ध मानसा**' विशुद्ध मन वाले हैं, वैराग्य से भरे हुये हैं, ऐसे जीव को ही मुनिदीक्षा दी जाये और उसी को आचार्यपद दिया जाये। ऐसे तो कोई भी आ जाये, दीक्षा लेने बैठ जायेगा और जिस कुल के संस्कार होंगे वह यहाँ मिश्रण कर देगा, जिन लिङ्ग की महिमा नष्ट हो जायेगी। यहाँ भी कोई दीक्षा लेता है, कोई आचार्य भगवन्त दीक्षा देते हैं, आप प्रार्थना कर लेना, 'स्वामी! मैं जानना चाहता हूँ दीक्षार्थी का परिचय।' उसी दिन नहीं, चार दिन पहले।

ऐसा ही होता है, इतना कहने से काम नहीं चलता। सेना में भर्ती के पहले भी मेडिकल होता है। एक चपरासी की भर्ती में भी मेडिकल होता है। फिर तीर्थंकर जिनेश्वर की सेना में भर्ती होने वाले का मेडिकल क्यों नहीं ? आज दीक्षा ली और कल छोड़ना पड़ता कि स्वास्थ खराब हो गया। वह कर्म की विचित्रता भिन्न है, लेकिन अपनी नींव पूरी होनी चाहिए।

'महाराज! इसका वर्णन कहाँ है' आप मेरे से कह सकते हो। 'प्रवचनसार' जी में कुन्दकुन्द स्वामी ने एक शब्द का प्रयोग किया '**कल्याण अङ्गं**', इस शब्द का अर्थ होता है निर्दोष निरोग शरीर। शरीर में किसी प्रकार की विकृति न हो और मानसिक विकार भी नहीं होना चाहिए। कुछ माता-पिता भी समाज में होते हैं। अब घर में कोई काम का तो है नहीं, चलो महाराजाओं के साथ भिजा दो। बहुत बड़ी कमी है, ऐसा कभी मत करना। **तुम्हारे बेटा/बेटी कहीं मानसिक रूप से विकलांग हैं, उन्हें धर्म में तो लगाइये, लेकिन उन्हें मुनि/अर्यिका संघ में भेज करके जिनधर्म की हँसी मत कराइये। घर में यदि उन्मत्त रहेगा तो यह आपके घर की परेशानी है। यदि वह दीक्षित हो जाता है तो वह पूरे धर्म की बदनामी है।** आप अपनी परेशानी को टाल करके, अपने घर की विषमता को टाल करके कहाँ भेज रहे हो? ये जो कर्म से युद्ध करने जा रहा है? धर्म के क्षेत्र में जा रहा है। सेना में भर्ती होने के लिये सोने को कौन जाता है? यह निर्णय तो पहले हो जाता है। भले जीवन भर सोने को मिले, लेकिन सोने को नहीं जाया जाता है, जाया तो लड़ने के लिये जाता है। कर्म-शत्रुओं से विजय प्राप्त करना है। जिसको लोटा उठाने का विवेक नहीं है, वह कमण्डलु को क्या उठायेगा? जिसको अपने बैठने की भूमि का बोध नहीं है, वह पिच्छी से मार्जन क्या कर सकता है ?

व्याख्यान उन्मार्ग का नहीं होता, जिनमार्ग का ही होता है। कहीं आप मेरी इस बात को समझ करके ऐसा मत सोचना—कि अभी तो मन करता था, अब नहीं लूँगा दीक्षा। मेरे मित्र! यदि ऐसा विचार आ रहा है, तो तुम्हारा मन झूठा था। इतना कठोर सुनने के बाद मन करे तो कहना सच्चा मन था। दीक्षार्थी से क्या बोलते हो—वत्स! ये मोक्षमार्ग है, इसमें आप अपने जनक-जननी की अनुमति लेकर आयेंगे। जब तक आप अपने जनक-जननी की अनुमति लेकर नहीं आयेंगे, जब तक आपके

परिजन-पुरजन की अनुमति नहीं होगी, तब तक अपकी जिनदीक्षा नहीं होगी। जब अपने माता-पिता के पास जाता है, ये दीक्षाकाल चल रहा है। माता-पिता के पास जाकर निवेदन करता है—हे इस तन के जनक जननी! हे माँ! तेरी रज से मेरा जन्म नहीं हुआ। हे तात्! तेरे वीर्य से मेरा जन्म नहीं हुआ है। मैं तो त्रैकालिक अजन्मा ही हूँ। द्रव्य का जन्म होता ही नहीं है। जो आपसे जन्मा है, वह ये देह है। तन आपका है, चैतन्य आपका नहीं है। आपके द्वारा प्रदत्त इस शरीर के माध्यम से मैं निज की आत्मा का कल्याण करना चाहता हूँ, आप मुझे इस शरीर की भेंट दे दो, मैं भीख माँगता हूँ, झोली फैलाता हूँ, क्योंकि यह शरीर आपका है, मैं आपका नहीं हूँ। 'बेटा! ऐसा क्या हो गया?' कुछ नहीं। मैं आपको छोड़कर नहीं जा रहा हूँ, मैं आपसे छूट कर भी नहीं जा रहा हूँ। मैं निज में लीन होने जा रहा हूँ। छोड़ कर जायेंगे तो आप दु:खी होंगे, छूटकर जाऊँगा तो मैं दु:खी होऊँगा। न मैं आपको दु:खी करके जा रहा हूँ, न मैं आपसे दु:खी होकर जा रहा हूँ। मैं चिदानन्द, चैतन्य, ज्ञानघन भगवान्-आत्मा में लीन होने जा रहा हूँ। **ये पलायन का मार्ग नहीं है, ये रत्नत्रय के पालन का मार्ग है।** पलायन वे करें जिनके खाने की व्यवस्था न हो। पलायन वे करें जिनके रहने, खाने, पहनने की व्यवस्था न हो। सबकुछ होने के बाद भी जो करना है, मात्र कर रहा है, वह कर्मातीत होने जा रहा है, कर्मबन्ध के लिये नहीं जा रहा है।

ये मोक्षमार्ग फोड़े को ठीक होने की शैली समझिए। कभी-कभी फोड़े के ऊपर पपड़ी आ जाती है तो अज्ञानी समझता है कि ठीक हो गया, जबकि भीतर और पस पड़ जाता है, वह गल जाता है। सच्चा वैद्य ऊपर की पपड़ी को हटाता रहता है और अज्ञानी कहता है कि यह कैसा है जब ठीक होने को होता है तो पपड़ी और निकाल देता है? कुछ क्रियाएँ अज्ञानियों को निर्दयी लगती हैं, परन्तु निर्दयता में भी दया है। जब बेटा कड़वी औषधि नहीं खाता है, तो माँ हाथ पकड़ती है पैरों को दबा लेती है और नाक दबा कर धीरे-से चम्मच मुख में डाल देती है। बेटा कहता है 'माँ कैसी निर्दयी है। यह तो बिल्कुल समझती ही नहीं है।' तू अज्ञानी अभी ऐसे ही बोल रहा है। जब तू बड़ा होयेगा, तब तू कहेगा 'माँ! तूने बहुत अच्छा किया।' फोड़े के ऊपर की पर्त स्वस्थकारी नहीं है। जो भीतर से माँस उठता हुआ बाहर आता है, फोड़ा भीतर से भरता है तो परिपूर्ण स्वस्थ होता है। ऐसे-ही जो वस्तु छोड़-छोड़ कर भाग रहे हैं,

वे पागल हैं। जो भीतर से ज्ञान वैराग्य और चारित्र से पूर्ण भरे होकर उभर कर आ रहे हैं, उनका अपने आप छूट जाता है। जो छोड़ने चलते हैं, वे छूट जाते हैं। फिर कभी मुड़कर नहीं देखेंगे कि मैंने क्या छोड़ा? **त्यागने के बाद भी त्यागी वस्तु को देखता है, छोड़ने के बाद भी स्वीकारता है, वह तो श्वान ही होता है।** दीक्षाकाल- जब सबकी अनुमति हो जाती है, फिर पहुँचता है आचार्य के पास। दीक्षा के बाद अब क्या करेंगे? प्रभावना करने में लग जाये क्या? नहीं, तुम क्या प्रभावना करोगे? जब प्रभावित ही नहीं हो, तो प्रभावना किसकी करोगे? पहले स्वयं में प्रभावित होकर तो दिखाओ, गुरुचरणों में बैठकर अच्छी डाँट खाओ, तब तो समझ में आयेगा कि धर्म से प्रभावित है, तो कभी विचलित नहीं होगा। प्रभावित ही नहीं है, तो कहेगा मैं संघ छोड़कर जाता हूँ। आज सिर मुड़ाया, फिर भाग रहे हैं।

दीक्षाकाल के बाद दूसरा काल आता है शिक्षा काल। दीक्षा लेते ही गुरु के पादमूल में आगम-ग्रन्थों का अच्छे से अध्ययन होना चाहिए। जिस परम्परा में साधुओं की शिक्षा की परम्परा नहीं है, उस परम्परा में साधु गलियों में घूमते मिलेंगे, गलियों में भीख माँगते मिलेंगे। चरस, अफीम, माँगते मिलेंगे; क्योंकि दीक्षा तो एक घण्टे में हो जाती है, परन्तु एक घण्टे के लिए नहीं होती। वैज्ञानिक पहले वस्तु बनाता है या नियन्त्रण सामग्री बनाता है? टेलीविजन भी बनाया तो उसका रिमोट कन्ट्रोल है। जो आकाश में विमान उड़ता है, उसका भी रिमोट है जिसका कन्ट्रोल पृथ्वी से होता है। हर जिले में एक कन्ट्रोल रूम रहता है। पूरे जिले में जो कुछ हो रहा है, उसका नियन्त्रण उस कक्ष से हो रहा है। **नियन्त्रण बहुत आवश्यक है। आपने मंत्र सिद्धि भी की है तो मंत्र सिद्ध करने के पहले उस मंत्र को पहले सिद्ध किया जाता है इसकी जो शक्ति प्रकट होगी उसको कैसे वश किया जायेगा।** मंत्रसिद्धि के लिये मंत्र चाहिए और मंत्री बनने के लिये मंत्र चाहिए। दीक्षा तो एक घण्टे में हो जाती है। कपड़े ही तो उतार कर फेंकना है, लेकिन सोच-समझकर ग्रहण करना। एक घण्टे में हो रही है, लेकिन एक घण्टे के लिए नहीं हो रही है। यह आपका जीवन का निर्णय है।

जितने मिथ्यात्व होते हैं जितने कुपंथ चलते हैं वे सब पहले सेटिंग लगाते हैं पहले सच्चे धर्म का आलम्बन लेते हैं उसका आलम्बन लिए बगैर काम बनता ही नहीं है जैसे ही उनकी छत पक्की हुई सेन्टिंग निकाल देते हैं और असत्य की बिल्डिंग खड़ी

रहती है **संसार में जितने एकान्त पंथ आज तक बने हैं, पहले आश्रय सत्य का ही लेते हैं, बाद में सत्य को हटा देते हैं,** अब तो अपन राजा हैं। **साधन से साध्य का ज्ञान होता है।** तुम्हारे यहाँ छतों में जो काली टंकी रखी है, उसका पानी कितने दिन चलेगा? ये काली खोपड़ी के दिमाक कब तक चलेंगे? उस काली टंकी में तो पानी भरा जाता है। जितना भरा, उतना ही निकलता है। ऐसे-ही वे मात्र खोपड़ी से काम करते हैं, भीतर से उनके कुछ भी नहीं होता है। खोखले होते हैं काली टंकी के समान। दूसरे की नकल करके तुम कितने दिन जिओगे? जो पाताल-तोड़ कुआँ होता है, टंकी तो उसी से भरी जाती है। ऐसे-ही पाताल-तोड़ संयम होना चाहिए। पाताल-तोड़ ज्ञान होना चाहिए। ये काली टंकी के ज्ञान कोई काम नहीं आते।

वैराग्य की भरी-भराई अनुभूतियाँ टिकेंगी नहीं। भारत की भूमि पर बिना नींव के भवन खड़े नहीं करते।

दूसरा काल है शिक्षा काल! गुरु पादमूल में बैठ करके, प्रभावना के लिए नहीं, प्रभावित होने बैठ जाओ। जब तुम्हारे भीतर कुछ होगा, तो बाहर कहने की आवश्यकता नहीं है। ये जगत् की लीला ऐसी है, तुम क्या कर सकते हो? मैं अपने शरीर को नहीं रोक पाऊँगा। हाँ, मैं पक्के में जाऊँगा और मुस्कराके जाऊँगा, क्योंकि मुझे मालूम है कि जो-जो मिलता है, वह छूटता ही है और जो होता है, वह कभी नहीं छूटता है। मैं अपने से कभी भिन्न नहीं होऊँगा। जिससे भिन्न होऊँगा, वह भिन्न ही है। मैं अपने से अलग कभी नहीं होऊँगा, परन्तु जिससे मैं अलग होने जाऊँगा, वह मेरा मुझसे अलग शुरू से ही है। जो पहनाई जाती है, वह उतारी ही जाती है। जो तेरी है, वह पहने रहेगा। ये शरीर तो आयुकर्म ने पहनाकर रख दिया, वह तो उतरेगा-ही-उतरेगा। तुम जो भगवान्-आत्मा हो, वह कभी उतरनेवाला नहीं है।

जब शिक्षाकाल पूर्ण हो गया, आगम का अध्ययन कर लिया, फिर आता है गणपोषण काल। अब तुम्हारे अन्दर योग्यता है, अब आचार्यत्व को प्राप्त करके जिनशासन की प्रभावना के लिये दीक्षा दो, क्योंकि दीक्षायें नहीं होंगी तो आगे परम्परायें कैसे चलेंगी? परन्तु देना उसे ही, जो बिल्कुल पक्का हो। कितना ही मटका को बजा कर लिया, कंकड़ निकल ही पड़ा, तो-फिर क्या कर सकते हैं? तनक-सा पानी भरने के लिये मटका लेने जाता है तो उसको भी बजा-बजा कर देखता है, तो फिर जिसमें

जिनवाणी भरी जाय, उसको कितना सँभाल कर दीक्षा देना चाहिए? बिना परीक्षा किए किसी को ज्ञान मत देना। धरसेन स्वामी ने पुष्पदंत भूतबली स्वामी को ज्ञान दिया था, उसके पहले परीक्षा ली थी। पुत्र और शिष्य, इन दोनों को आँखों के नीचे रखना, इनको कभी छाती के पास मत लाना। आज के बेटे पिता की बात क्यों नहीं मानते हैं? वे स्वयं सीने में रखते हैं तो वह मूछों को और पकड़ता है। मुझे याद है, पहले के लोग खिलाते तक नहीं थे। आज के पिता तो लिए घूमते हैं कि हमारा ये है। अब क्या करें? जो है, सो है। बड़े भैया के सामने भी छोटा भाई नीचे निगाह करके बैठेगा। वो थी मर्यादा। ऐसा ही है। राम ऐसे-ही मर्यादा पुरुषोत्तम नहीं हुए कि लक्ष्मण के सामने सीता से बातें कर रहे हों। कभी नहीं। तब कहलाये मर्यादापुरुषोत्तम।

गणपोषण काल में अपने संघ का संचालन कीजिए। लोगों को आगम का ज्ञान है नहीं और हल्ला करने लगते हैं कि कितने आचार्य कितने आचार्य? गणपोषण काल में जो मुख्य आचार्य होता है, वह अपने शिष्य में योग्यता देखते हैं तो उनको पद देते हैं। तुममें नहीं दिखी योग्यता, सो नहीं दिया। यह तुम्हारा टेंसन है, हमारा टेंसन नहीं है। योग्यता भी तो दिखनी चाहिए।

ज्ञानी! आत्मा ही तीर्थ है, यदि रत्नत्रय से भूषित है तो निज आत्मा ही चैतन्य तीर्थ है। मुमुक्षु! जड़ तीर्थ के चक्कर में अपने निज आत्मतीर्थ की वंचना नहीं करना। ''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।



शील से शुचिता

शीलव्रतजले स्नातुं शुद्धिरस्य शरीरिणः।
न तु स्नातस्य तीर्थेषु सर्वेष्वपि महीतले॥312॥
रागादिवर्जितं स्नानं ये कुर्वन्ति दयापराः।
तेषां निर्मलता योगे न च स्नातस्य वारिणा॥313॥

अन्वयार्थ—(शीलव्रतजले स्नातु अस्य शरीरिणः शुद्धिः) शील-रूपी जल के भीतर स्नान करने से इस प्राणी की शुद्धि हो सकती है **(महीतले सर्वेषु तीर्थेषु अपि स्नातस्य न तु)** किन्तु इस पृथ्वी में सर्व ही नदियों में स्नान करने से भी कदापि शुद्धि नहीं हो सकती। **(ये दयापराः)** जो दयावान पुरुष **(रागादिवर्जितं स्नानं कुर्वन्ति)** रागद्वेषादि से रहित आत्मा के स्वरूप में रमण करते हुए उसी में डुबकी लगाते हैं **(तेषां निर्मलता योगे)** उनकी शुद्धि योगाभ्यास में हो जाती है **(न च स्नातस्य वारिणा)** किन्तु जल में स्नान करने वाले की शुद्धि जल से नहीं हो सकती है।

भावार्थ—हे भव्यात्मा! संयमरूपी सलिल ही शुद्धि का साधन है, असंयमी की कभी शुद्धि नहीं होती है। जो आत्मा के स्वरूप में रमण करते हैं, उनकी शुद्धि साध ान से हो जाती है। आत्मशुद्धि जल स्नान से नहीं होती है, अपितु संयम-तप से ही होती है।

॥ सद्-देशना ॥

आचार्यप्रवर भगवन् कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज सारसमुच्चय जी में आत्म-शुचिता की व्याख्या करते हुए समझा रहे हैं। इस जीव ने जड़द्रव्य जड़ शरीर को अनन्त बार धोया, जबकि इस शरीर के संयोग के माध्यम से पवित्र-से-पवित्र द्रव्य भी अपवित्र हो जाता है। सुन्दर-से-सुन्दर भोजन-सामग्री भी अपने इस देह को समर्पित की है। जितनी आस्था से, **जितनी भक्ति से कोई पुरुष किसी देव के चरणों में द्रव्य चढ़ाता होगा, उतनी श्रद्धा से आपने इस देह को रोटी चढ़ाई है, दाल-भात सबकुछ दिया है। शरीर के प्रति इतना गहरा राग होता है कि आपने जीवन के आयुकर्म के निषेकों को सर्वाधिक शरीर को ही समर्पित किया है।** जिस शरीर की अन्त में श्मसान यात्रा चल रही हो, तब भी यह जीव शरीर को सेन्ट क्रीम कन्घी शीशा से दूर करना नहीं चाहता।

नगर का राग छोड़ करके बाहर चले जाना सरल है, परिवार से दूर हो जाना सरल है, गाँव से दूर होकर रहना सरल है; परन्तु शरीर से भिन्न होकर निहारना बहुत कठिन है। **सारा परिग्रह छूट गया, धन-वैभव छूट गया, लेकिन परमाणु-प्रमाण राग भी यदि शरीर के प्रति है, तो वह बंध का ही कारण है, मोक्ष का कारण नहीं है।** आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी जी ने 'प्रवचन-सार' जी में लिखा—हे श्रमण! हे श्रावक! सम्पूर्ण आगमग्रन्थों को कण्ठस्थ करलो, ग्रन्थों के पाठों को कंठित करने की तुम सामर्थ्य रखते हो। श्लोक, सूत्र, गाथा आपके कण्ठ में विराजमान है, लेकिन अभी ये मन मोक्षमार्गी नहीं है। आप लोग कहते हैं काष्ट की अलमारी के अन्दर ग्रन्थ भरे हुए हैं, उन ग्रन्थों के भरे रहने से यदि कल्याण हो जाता होता तो वे अलमारी मोक्ष चली जायेंगी। ऐसे ही मुमुक्षु! आपने ग्रन्थों को रख लिया है अलमारी के समान, ये श्रुत विराजमान हो गया है। वह द्रव्यश्रुत मात्र है। **जब तक भावश्रुत नहीं होगा, तब तक भव का विनाश नहीं होगा।**

आप किसी पुरुष से प्रच्छना करो। जिससे आप सलाह ले रहे हो, दे रहे हो, उसे स्वयं पता नहीं है। बड़े सहज होकर सुनना। जीवन में कभी आलोचना न की हो तो आज ही कर लेना। आलोचना करते हुए नरक चले जाओगे और आलोचना नहीं करोगे तो नरक चले जाओगे।

आलोचना में देर नहीं कर लेना, आलोचना शीघ्र कर लेना। जब तक आलोचना करता रहेगा, तब तक नरक का ही द्वार खुलेगा और जब तक आलोचना नहीं करेगा, तब तक नरक का ही द्वार खुलेगा। **जो परनिन्दा करेगा, वह नरक जायेगा और जो निज-निन्दा करेगा वह स्वर्ग जायेगा। पर आलोचना का विराम और निज आलोचना करो अविराम।** एक पल भी ऐसा मत छोड़ना जो निज के लिए न हो।

विचार करो। तन की सफाई मैंने पानी से की है, चैतन्य की सफाई निज आलोचना से करो। निज आलोचना ही महान् पानी है, महान् साबुन है। जब-जब में दूसरे को देखने जाता हूँ, तब अपने भीतर देख लो कि कहीं मैं तो ऐसा नहीं हूँ? पर के दोष आँखों से दिखते हैं और निज के दोष आत्मा से दिखते हैं। **पर के दोष जो हमें दिखाई दे रहे हैं, वे हो भी सकते हैं नहीं भी हो सकते हैं, परन्तु निज आत्मा में जो दोष दिखाई दे रहे हैं वे नियत हैं।**

ज्ञानी का स्वास्थ ठीक नहीं था, वे मंदिर में कुर्सी में बैठ करके पूजन कर रहे थे। दूसरा देखकर कहने लगा 'देखो, मंदिर में भी कुर्सी में बैठे हैं? भगवान् की भी विनय नहीं कर रहे हैं?' वहाँ उनका शरीर अस्वस्थ था, मन अस्वस्थ नहीं था, विषमतायें कुर्सी पर थी। दूसरा कहे 'क्या मैं भी कुर्सी पर नहीं बैठ सकता?' पहले तुम्हें अपनी कमर दर्द से युक्त करना पड़ेगी, फिर तू बैठ जा। 'प्रवचन-सार' जी में भगवन् कुन्दकुन्द स्वामी ने कहा है 'श्रमण! तू अट्ठाइस साल का युवा है और उन सत्तर-अस्सी साल के मुनि को देखकरके यदि तू वैसी चेष्टा करता है तो तेरा महान् पाप का कारण है। यदि कोई वृद्ध बैठकर पूजा करता है तो उसे कर लेने देना। यदि युवा कहे मैं भी बैठकर करूँगा, तो कहना कि तू पहले बूढ़ा होजा, फिर करना। परन्तु देखना उस युवा के साथ कोई विषमता तो नहीं है।

यदि धर्म की व्याख्या को धर्ममय होकर करेगा तो धर्म ही व्याख्या में आयेगा और धर्ममय होकर व्याख्या नहीं करेगा तो तेरी व्याख्या से समाज में अधर्म फैल जायेगा। यदि धर्मपथ की व्याख्या करेगा तो उस वक्ता के माध्यम से विश्व में धर्म फैलेगा और धर्म की व्याख्या को धर्ममय होकर कथन नहीं करेगा, तो समाज में विश्व में अधर्म फैलेगा। धर्म की व्याख्या से अधर्म कैसा? हमारे यहाँ तो खड़े होकर ही पूजा होती है, जिनको करना हो तो खड़े होकर ही करना पड़ेगी, यहाँ नहीं होती बैठकर पूजा। ऐसा ज्ञानी ने संविधान बना दिया। ज्ञानी! जब संविधान बना रहे थे तब वे युवा थे। नगर में वृद्ध भी थे। वे जैसे-ही लाठी टेकते मंदिर में पहुँचे। मुनीम ने कह दिया 'बाबू जी! ठहरो। आज से सब कुर्सियाँ हटा दी गई हैं, क्योंकि अपने मंदिर में संविधान का नियम है कि जो भी पूजा करेगा खड़े होकर करेगा। अब उस बुजुर्ग के परिणामों से पूछना—हे भगवान्! अब तो इस संविधान ने मेरी पूजन ही छुड़वा दी। जो संविधान बन चुका है उसमें किञ्चित् भी हेरफेर की सम्भावना नहीं है। बस इतना ही हो सकता है मैं अपने द्वार पर ही आँखें बन्दकरके आपको देखता रहूँ। ऐसा संविधान यदि सारे देश का बन गया, तो सारे देश में अधर्म फैला दिया। संविधान में सुधार की आवश्यकता है। जब तुम्हारा शरीर स्वस्थ है, चित्त स्वस्थ है, युवावस्था है, तो आप खड़े होकर ही पूजा करना, अब बैठकर करने की कोई आवश्यकता नहीं और यदि अस्वस्थ हो, तो लेटकर सामायिक हो सकती है, तो बैठकर पूजा क्यों नहीं हो सकती? इसलिए वर्तमान के आचार्य/मुनियों को जिनवाणी के रहस्य उद्घाटित करने चाहिए।

नहीं-तो समाज में ऐसी अकड़ें हो जायेंगी। बेचारे बुजुर्गों की तो हालत ही खराब हो जायेगी। उनके लिए तुम्हारे पास कोई करुणा ही नहीं है। एक चीटीं पर करुणा हो सकती है, परन्तु वृद्धों पर कोई करुणा नहीं। हे ज्ञानी! सबके दिन एकसे नहीं होते। संविध ाान बनानेवाले भी बूढ़े होंगे तब समझ में आयेगा हाय मैंने क्या कर दिया। कितने भी विशाल-विशाल जिनालय स्थापित कर लेना, लेकिन नीचे वेदी जरूर बनवाना। दौड़नेवालों को दुनियाँ की व्यवस्था कर दी। अपन दौड़ेंगे नहीं, झुकेंगे अपनी व्यवस्था खुद समय पर कर लो। जब मेरी सीढ़ी चढ़ने की सामर्थ्य नहीं होगी, तो देहरी से ही कर लूँगा। ये मानस्तम्भ कह रहा है कि तुम सीढ़ी न भी चढ़ पाओ तो तुम दूर से भी कर सकते हो, लेकिन जिनदेव की वन्दना मत छोड़ना। कितने सहज उद्देश्य होते थे। आप सहज होकर प्ररूपणा करो, **मस्तिष्क से बोलकर चले जाते हैं, उनकी बोली समाज में गोली का काम करती है । जो हृदय से बोलते हैं, उनकी वाणी वीणा का काम करती है। इसलिये ऐसा वक्तव्य करना जिससे वाणी वीणा का काम करे। ऐसा भाषण मत करना कि वाणी वाण का काम करे।** शुचिता/पवित्रता कैसे प्रकट होगी? इस समय जीव को जो आनन्द आ रहा है वह मिश्री के घुलने में नहीं है अमृत के कण्ठ में झरने से नहीं है। सब बैठो शान्ति से। जो हो रहा, सो होने दो। जो है, सो है। क्या करें? किञ्चित् भी तन में मल होता है तो मन मलिन हो जाता है। किञ्चित् भी शरीर में कोई दाग लग जाये, यहाँ तक कि तुम्हारे वस्त्र में दाग लग जाये, तो तन मलिन हो जाता है, जिसके मन में ही मल लगा हो उसका मन कितना मलिन होगा?

तन का मल धोने के लिए तो पानी है, परन्तु मन का मल धोने के लिए जगत् में कहीं कोई पानी नहीं है, एकमात्र अर्हन्त वाणी है, एकमात्र जिन प्रवचन। जब जिनालय आयें, द्रव्य-शुद्धि के लिए पानी द्वार पर रखा होता है, द्रव्यशुद्धि का भी ध्यान रखना। नहीं रखते हो तो करकण्डु से पूछना, भक्ति के आवेश में कभी स्वप्न में भी विवेक मत खो देना। जिनालय में प्रवेश करते समय भले ही तुम्हारे पैर स्वच्छ हों, साफ हों, तब भी चलकर आये हो, तो वे शुद्ध नहीं हैं, अतः प्रासुक पानी से उनका प्रक्षालन करो। यदि आप सोले के कपड़े पहने हो और चरणपादुका पहने हो, तो विशुद्धि किसमें थी? वाहन पर बैठकर भी सोला होता है क्या? वाहन का छोड़ो, विमान में चलोगे तो सोला बनेगा क्या? वाहन का कोई सोला नहीं होता। चरणपादुका पहनकर

घर से आया और सीधे अभिषेक करने चला गया। करकण्डु से पूछो। करकण्डु नाम का एक बहुत बड़ा सम्राट् हुआ है जिसकी चर्चा जैन दर्शन, बोद्ध दर्शन, हिन्दू दर्शन तीनों दर्शन में है। एक दिन करकण्डु उपवन में बैठा था। वहीं आकर दिगम्बर तपोधन विराजमान हो गए। वह सम्राट् दर्शन करने पहुँचे। सहज है, जिसकी श्रद्धा (पीड़ा) होती है, उसका मन मचल उठता है गुरु के चरणों में पहुँचने को। जो बातें सारे जगत् से छुपाई जाती हैं, एक ही ऐसा स्थान है जहाँ सारी बातें कह देता है। प्रभुद्वार, गुरुद्वार। जब भीड़ चली गई, तब सम्राट् कहता है—'हे स्वामी। मेरे समझ में नहीं आता है, मैं साम्राज्य-फल को प्राप्त हुआ हूँ, फिर भी मेरे हाथों-पैरों में खाज-खुजली क्यों हो गई है? जब मैं अपने हाथों को देखता हूँ तो हीन भावना से भर जाता हूँ, मनशुद्धि समाप्त हो जाती है। तन अशुद्ध होता है तो जीव की मन शुद्धि भी अशुद्ध हो जाती है। यदि विश्वास न हो तो पूछ लेना—मुख में 32 दाँत होते हैं। जिस दिन एक गिर गया था, उस दिन 31 पर जीभ जा रही थी, खाली पर जीभ जा रही थी। उस दिन जिह्वा को इकत्तीस नहीं दिख रहे थे, लेकिन एक खाली स्थान दिखाई दे रहा था। सत्य है, **जब तक सद्भाव रहता है, तब तक व्यक्ति की कीमत नहीं रहती है और जब अभाव हो जाता है, तब समझ में आता है कि एक चला गया।** जितने बुजुर्ग बैठे हैं, उनका सम्मान रखना। कब हंस उड़ जाए? इतिहास रह जायेगा, लेकिन जीवन की इति हो जायेगी। जाने के पहले अच्छे-से जी लेना।

जिन द्रव्यों के निमित्त से आत्मा पर रागादिक विभावों का मल चढ़ रहा है, वे द्रव्य तो मेरे नहीं रहे। तेरी घड़ी कोई उठा ले जाये, तो घड़ी के राग में भगवान्-आत्मा के प्रति तेरे कितने अशुभ परिणाम हो गए। जब मारीचि महावीर बन सकता है, तो ये ज्ञानी भी भगवान् क्यों नहीं बन सकता है? अभी से पूजो मत, लेकिन पूछ लो, पंचमकाल के लोगों को चाहिए क्या है? पूछ लो और जो करना सो कर लो। हर व्यक्ति चाहता है कि हाँ हमें पूछा है।

ज्ञानी! तेरे नाती की माँ की गोद में कोई दूसरा आकर बैठ जाये तो टाँग खींचता है, उतर-उतर मेरे माँ की गोद है। मनुष्य मान का पुतला है। विरासत में मिली है।

देवों को लोभ, नारकियों को क्रोध तिर्यञ्चों के माया, मनुष्य के मान ये तो मिले ही हैं। ध्यान रखना, जाने के पहले भेज देना। कभी-कभी क्या होता है कि विदाई होने

के पहले कुछ सामग्री पहले से भेज देते हैं। मेरे **मित्र! इस तन से विदा हो उसके पहले कषायों को विदा कर देना तो तेरा कल्याण हो जायेगा।** लगता ऐसा है कि ये मेरा है, परन्तु ध्रुवसत्य यह है कि जब तन भी मेरा नहीं है, तो जगत् मेरा कैसा ? भक्ति में विवेक की आवश्यकता है। अरहन्त की आराधना कुछ देती नहीं, यह सत्य है, लेकिन अरहन्त की भक्ति करने वाले को सबकुछ मिल जाता है। यह परमसत्य है।

कोई कुछ भी माँगे, दे देना। कोई कहे मैं तुम्हें सबकुछ वापस करता हूँ, एक बार अपनी श्रद्धा मुझे दे दो, तो कहना मेरे मित्र! तू सबकुछ लूट ले जाये, लेकिन मेरी श्रद्धा तो मात्र पंचमेष्ठी में जायेगी, और-कहीं स्थान नहीं है। **तन मिटे सो मिटने लायक ही है, धन मिटे सो मिटने लायक ही है, लेकिन मेरे भीतर का धर्म न मिटे। वह अमिट है।**

कभी जीवन में परिणाम ऊपर-नीचे होने लग जायें, तुरन्त कायोत्सर्ग करने बैठ जाना। कहीं उस कायोत्सर्ग में ही काय का उत्सर्ग हो गया तो सल्लेखना मरण हो जायेगा। कायोत्सर्ग नहीं कर सका और कहीं काय का उत्सर्ग हो गया, तो कुमरण हो जायेगा। ये तो जगत् है, जगत् में सब होता रहा होता है, और होता रहेगा। मुझे तो बहुत अच्छे से मालूम है कि ये सिंहासन जो आपने लगा कर रखा है, उससे भी बुद्धिपूर्वक उतरूँगा, कोई उतारेगा नहीं। जिस दिन आचार्य महाराज ने बिठाया था, उसी दिन निर्णय कर लिया था कि ये जगत् की लीला है, प्रपञ्च है। सत्य ये है—**आत्मासन ही मेरा श्रेष्ठ आसन है। इससे मुझे कभी उतरना नहीं पड़ेगा। जिस पर चढ़ना नहीं पड़ता, उससे उतरना भी नहीं पड़ता। जिस पर चढ़ना पड़ता है, उससे उतरना पड़ता है। ध्रुव आत्मा ही मेरा अखण्ड चैतन्य आसन है।** उसमें न चढ़ना पड़ता है न उतरना पड़ता है। इस शुद्ध तत्त्व को समझो।

करकण्डु! आप पूर्व पर्याय में ग्वाला-पुत्र थे, ग्वाला। गाय चराने गया एक दिन, उसने तालाब में सहस्र-दल-कमल देखा, अब उसके अन्दर जितना विवेक था, भक्ति थी, उसने सहस्र-दल-कमल हाथ से चुन लिया और सेठ के पास ले गया, क्योंकि उसके लिये जो रोटी देता वही सबकुछ है। मित्र! अपन को अच्छे से खाना- पीना मिल रहा है सो अपन को पता नहीं है। गलियों में जाकर देखो, कुछ लोग ईंटें ढोते मिल जायेंगे, कुछ लोग हाथ फैलाते मिल जायेंगे- डाल दो। तब देखना में कितना सौभाग्यशाली हूँ।

न किसी के द्वारे पर डाल दो कहना पड़ता है न मेरे हाथ में छुरी है। छुरी वाला तो कोटि-कोटि जीवों का सुबह से घात कर चुका होगा। **धन्य हैं वे जीव जो सुबह से हाथ में द्रव्य की डिब्बी लेकर जिनालय की ओर आते हैं। धिक्कार है उनको, जो सुबह से छुरी हाथ में ले रहे हैं।**

आपकी बुद्धि का प्रकर्ष जितना होगा उतना शीघ्र फलित होगा पुण्य के रूप में। भैया! जितने तीव्र कलुषित परिणाम होंगे, उतना तीव्र पाप फलित होगा शीघ्र। इसलिए ज्यादा कुछ करने की आवश्यकता नहीं है। जिनेन्द्रभक्ति से भरकर के करकण्डु ने पुष्प को चुना और सेठ को दिया। उसको भगवान् नहीं दिख रहे थे, क्यों? गरीब की दशा कौन नहीं जानता है? आज पुण्य का योग चल रहा है सो आप रोटियाँ फेंक देते हैं। उन गरीबों से पूछो, सुबह की रोटियों से शाम को बचाकर रख लेते हैं। अहंकार मत करना। मित्र! जिनवाणी पढ़ने को समय न हो, तो दीवाल पर एक घड़ी, बहुत बड़ी लगा लेना, दिन के बारह बजे देख लेना और शाम को छह बजे देख लेना। जो काँटा बारह पर होता है, वही शाम को छह पर होता है। **'सबके दिन एक-से नहीं होते।' जो सूर्य सुबह पूर्व में उदित हो रहा है, वही शाम को पश्चिम बेला में अस्त हो जाता है। इसलिये कभी पुण्य-पाप पर अहं मत करना, न हीनभावना लाना।** जो मेरी वस्तु नहीं है, उसका तो अस्त होना ही है। जो मेरी वस्तु है, वह न अस्त होती है, न उदित होती है। वह तो होती है। वह है मेरी ध्रुव आत्मा।

सेठ से करकण्डु कहता है 'मैं इसे आपको सौंपना चाहता हूँ' सेठ कहता है 'मेरे से बड़ा तो अपना राजा है, उसको दो आप, तो और-अच्छा होगा। वह बालक सम्राट् के पास पहुँचता है। सम्राट् कहता है 'बेटा! तू सहस्रदल कमल लेकर आ रहा है, मेरे से श्रेष्ठ तो वीतरागी मुनिराज होते हैं, उनके चरणों में समर्पित कर दे।' जैसे-ही मुनिराज के पास पहुँचता है, कहते हैं—'बेटा! हमसे बड़े तो तीर्थंकर अरहन्त देव हैं, उनके चरणों में तू सौंप दे। जैसे-ही भक्ति के आवेश में वह पुष्प को लेकरके अरहन्त के पादमूल में समर्पित करता है, उस जीव ने ऐसा पुण्य का संचय किया—कि उसने सम्राट् पद की विभूति का बंध कर लिया, लेकिन हाथ मिट्टी में सने थे, पैरों में मिट्टी थी, तालाब से लेकर आया था, उसे विवेक नहीं था कि उसे धोऊँ कि न धोऊँ? कर्म कहता है मैं कभी चूक नहीं करता। जो तुमने पुष्प समर्पित किया, उससे तुम सम्राट् हुए हो,

लेकिन जिनालय में बिना हाथ-पैर धोये प्रवेश किये थे, इसलिए करकण्डु हो गए। इसलिए द्रव्यशुद्धि का भी ध्यान रखना। कुछ ऐसे भी लोग हैं—भाव शुद्धि रखना चाहिए, द्रव्य शुद्धि से क्या होता है?

पुत्र जन्म लेगा तो माँ का उदर बढ़ेगा। ऐसे-ही कर्म भीतर पकेगा तो बाहर तो नियम से दिखेगा, चाहे पुण्य हो या पाप। इसलिए यहाँ आचार्यभगवन् कह रहे हैं—जो दया-परिणाम से युक्त होकरके, रागादि से रहित होकरके, शीतल दया रूपी धर्म से अपनी आत्मा का स्नान कराते हैं, उनके ही योगों में निर्मलता है। उनके ही योगों की विशुद्धि है। यह स्थान पानी का स्नान नहीं है, यह दया का स्नान है। चींटी दिख जाये—अरे! देखकर चलो। जिसकी तीन इन्द्रिय जीव पर इतनी करुणा हो सकती है, जिससे तेरी प्रीति न हो, ऐसे पंचेद्रिय माँ भाई तुझे दिखाई नहीं देते। कम-से-कम माँ बहिन का रिस्ता भूल करके एक बार जीव को देख ले, शायद तेरी करुणा जग जाये। सम्बन्ध देखोगे तो करुणा नहीं बनेगी।

मेरे मित्र! कण्डे-डण्डे के साथ अनेक इतिहास बने हैं। एक इतिहास ऐसा बना लो पिच्छी कमण्डल के साथ। मुझे पूर्ण विश्वास है कि जब महावीर स्वामी थे तो शेर और गाय एक घाट में पानी पीते थे। जब वर्तमान में एक सामान्य मुनि/आचार्य के उपदेश सुनने पर परिणामों में इतनी विशुद्धि बनती है तो जब साक्षात् तीर्थंकर बोलते होंगे तो कितना आनन्द आता होगा? एक घाट पर सब बैठते हैं। पानी बरसाओ यानि भगवत् जिनेन्द्र की वाणी बरसाओ।

व्रतों का पालन करने वाला मुनि रत्नत्रय से पवित्र होता है। शीलधर्म ही श्रेष्ठ है।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।



करो ज्ञानस्नान

आत्मानं स्नापयेन्नित्यं ज्ञाननीरेण चारुणा।
येन निर्मलतां याति जीवो जन्मान्तरेष्वपि॥314॥

अन्वयार्थ—(आत्मानं नित्यं चारुणा ज्ञाननीरेण स्नापयेत्) आत्मा को सदा पवित्र ज्ञानरूपी जल से नहलाना चाहिए **(येन जीवः जन्मान्तरेषु अपि निर्मलतां याति)** जिससे यह जीव अन्य भव में भी कर्मरूपी मैल से छूटकर निर्मल हो जाता है।

भावार्थ—हे जीवात्मा! तत्त्वज्ञान में रमण करना ऐसा पवित्र स्नान है, जिससे केवल इसी जन्म में ही शुद्धि नहीं होती है, किन्तु वह भव-भव में आत्मशुद्धि दाता है, उससे आत्मा शुद्ध हो जाता है, यह पवित्र संस्कार परलोक में भी साथ बना रहता है।

॥ सद्-देशना ॥

आचार्यप्रवर भगवन् कुलभद्र स्वामी 'सारसमुच्चय' जी में आत्म-पवित्रता की व्याख्या करते हुए समझा रहे हैं—मुमुक्षुओ! यह तो सहज नियोग है कि जिस जीव के अनन्त पुण्यों का समग्र संज्ञातीत स्थान पर संगृहीत हो जाता है तब मार्ग में बैठकर मार्ग की चर्चा सुनने के परिणाम होते हैं। आचार्यों की चिन्तन-शैली को सुनने का मन में भाव करें। विश्वास करना। **जिसके भीतर भविष्य का भगवान् जाग्रत हो रहा है, उसी के जिनवाणी सुनने के परिणाम होंगे। जिसके भीतर का भगवान् अभी जगने वाला नहीं है, वह समवसरण को छोड़कर भाग जायेगा।** जब तक मारीचि की पर्याय में भवितव्यता पवित्र नहीं थी, भीतर का उपादान निर्मल नहीं था, भीतर का भगवान् जाग्रत नहीं था, तब तक तीर्थंकर ऋषभदेव पर नजर नहीं गई। जब भीतर के परिणाम पवित्र हुये, तो दो मुनिराजों की वाणी सुनकर भी शेर 'श्रावक' बन गया। आप मार्ग में बैठे हो, मार्ग में ही तो बैठना पड़ता है, मार्ग में ही तो चलना पड़ता है। मार्ग में बैठ करके, मार्ग की बात को सुन लिया और मार्ग पर चल दिया, यही तो मोक्षमार्ग है।

तन वे ही सजाते हैं जिनके मन सजे नहीं होते हैं। जिनके मन सजे होते हैं, वे तन नहीं सजाते। जिनके मन के शील भङ्ग होते हैं, वे तन को सजाते हैं। जिनके मन के शील सजे होते हैं, वे शील-आभूषण से युक्त होते हैं, उनको तन सजाने की कोई आवश्यकता ही नहीं है। शरीर को सजाने का उद्देश्य क्या है? स्वयं के जीवन

को जीने के लिए शरीर को सजाने की कोई आवश्यकता नहीं है। यह सत्य है। दूसरे के अखण्डित मन को खण्डित कैसे किया जाय? इसलिए तन को सजाकर आ जाते हैं। यह तन सजाना नहीं है, दूसरे के शील को चुराने के लिए, नष्ट करने के लिए जाल है।

ये दूसरे की आँखें तेरे मुख पर टिक जायें, इसलिए तू तन को सजा रहा है। यदि कोई धनुष-वाण उठाकर तन में मार दे, तो ये तन का नाश है। आपने तन को सजा कर रखा है, ये दूसरे के ऊपर काम का बाण है। **शरीर जर्जर हो रहा है, कायाक्षीण हो रही है, परंतु कामनायें क्षीण नहीं हो रही हैं। शरीर बुझता दिख रहा है, लेकिन वासनायें नहीं बुझ रही हैं।** भारत सरकार को बूँद-बूँद की बात करना पड़ रही है। जितना पानी तुमने पिया नहीं है, उतना तन के ऊपर उड़ेला है। इस शरीर को तुम एक लौटे से भी स्वच्छ कर सकते थे। इतना पानी दूसरे के अधरों और कण्ठों को गीला करता।

यदि किञ्चित् भी मोक्ष से प्रीति है, अंतिम श्वास के काल में भी आत्म-कल्याण की किञ्चित् भी प्रीति है, तो चिंतन करो- यदि कोई पानी में साबुन घोलकर, पाउडर घोलकर तुम्हारी आँखों में झोंके, तब तुम्हारी स्थिति क्या होगी? कास्टिक सोडे का घोल किसी की आँखों में झोंका जाये तो उसकी आँख बचेगी क्या? उस साबुन को शरीर में लगाकरके पानी को ढोल रहा था, वह पानी नाली में जा रहा था, उसमें रहनेवाले भगवान्-आत्मा की क्या अवस्था हो रही थी? उनकी भगवान्-आत्मा भिन्न थी क्या? कहाँ गई तेरी करुणा? कहाँ गई तेरी दया?

ज्ञानी फलों की टोकनी लेकर अस्पताल गया। उसने मरीजों को फल बाँटे और साथ में कैमरे वाले भैया को लेकर गया, भैया! एक-एक फोटो खींच कर देना पेपर में। ज्ञानी! अपने परिणामों को सँभालो। कास्टिक सोड़े के पानी से कोटि-कोटि जीवों की हिंसा होती है। तन को स्वच्छ करने के लिए कितने चेतन्यों का घात कर दिया? जब वे जीव फड़फड़ाते होंगे। जीव कहाँ नहीं है? जहाँ तुम स्नान करते हो, वहाँ तुम देखने नहीं जाते हो। क्या आपने मृतक श्वान को नहीं देखा, मरते तिर्यञ्च को नहीं देखा? जब श्वान की मौत का समय आता है, उसके सिर में कीड़े पड़ जाते हैं, तड़फता हुआ वह रात भर चिल्लाता है, वे कीड़े हैं कौन? जब तुम मस्ती में नल के नीचे बैठ करके शरीर को स्वच्छ कर रहे थे, उस कास्टिक पानी से वे जीव नाली में बिलविला

रहे थे, वे सारे-के-सारे जीव मस्तिष्क में आकर कष्ट दे रहे हैं। भैया! कार्य-कारण लगे हैं। कार्य कभी भी कारण के बिना नहीं होता।

जीवन में कभी भी दु:ख के दिन आयें तो ये मत सोचना मेरे साथ ऐसा क्यों हो रहा है? कार्य कारण को बता रहा है। जिसके नाम के आगे वकील लिखा हुआ है, डाक्टर लिखा हुआ है, वह कारण है कि कार्य है? कार्य है। हे जीव! जब तू वकील लिखाकरके कार्य मानने को तैयार है, इसका तात्पर्य है कि वकील/डॉक्टर तब लिखा गया जब एकान्त कक्ष में उन पोथियों को पढ़ा था, मेहनत की थी, तब आज द्वार पर डॉक्टर/वकील लिखा पा रहा है। ये लिखा हुआ कार्य है। दिखता कार्य ही है, कारण कोई देखता नहीं है। जब तुम डॉक्टर/वकील बनकरके मुस्करा रहे हो कि हमारे कार्य इतना सुन्दर है, लेकिन पहले कारण था कि नहीं? था। लँगड़े लूले अन्धे कुरूप है, ये कार्य है कि कारण है? कार्य है। इसका नियम से कोई कारण होना चाहिये। **जब शौक में तुम दूसरे को शोक में डालते थे, ये तुम्हारा कारण था। आज अन्धे लूले लँगड़े हो रहे हो, यह तुम्हारा कार्य है। जिसने परस्त्रियों को देखा था, जिसने देखा था पर-पुरुषों को, वे अन्धे दिखाई दे रहे हैं। जिन्होंने तीर्थभूमियों में जाकरके तीर्थों के द्रव्य को खाया था, वे लँगड़े दिख रहे हैं और जिन्होंने अपने घर में बैठ करके योगियों को अशुभ भावों से देखा था, वे बेचारे कुबड़े काले-कलूटे दिख रहे हैं। ये सब कार्य है, कारण तुम्हारा हो चुका है।** कोई भगवान् के पास उनको परेशान करने मत जाना 'प्रभो! मेरी भविष्य की पर्याय क्या होगी?' मैं भूत में क्या था? तीन भव तो आपको ही दिखाई देते हैं।

आज तुम जो राज्यसुख भोग रहे हो, सेठ की सम्पति को प्राप्त हुये हो, सम्मान को प्राप्त हुये हो, यह कार्य है। कारण तो **जिन लोगों ने पूर्व में निर्ग्रन्थों को दान दिए थे, अरहंतों के अभिषेक किये थे और जिनवाणी का वाचन किया था, सो आज 'पण्डित' संज्ञा को प्राप्त हो रहे हैं और सेठ साहूकार कहला रहे हैं।** किसी से पूछने की आवश्यकता नहीं है। कोई देवी/देव के पास पूछने की आवश्यकता नहीं है कि मेरा भविष्य क्या होगा? किसी ज्योतिषी से पूछने की आवश्यकता नहीं है कि मेरा भविष्य क्या होगा? दुनियाँ के माला-मोती पहनने की आवश्यकता नहीं है कि तेरा भविष्य क्या होगा? अगूँठियों में भविष्य होता तो पुण्य-पाप की व्याख्या व्यर्थ हो जाती।

ऐसी लूटमार चल रही है कि **कोई कहता है ये मोती पहन लो, गड़ा बंधवा लो, ताबीज बनवा लो तो घर भर जायेगा। यदि इन मोतियों या गड़ा-ताबीजों में धन था, तो जगत् में कोई रिक्सा या आटो नहीं चलाता, सब गड़ा ताबीज पहन लेते, सो धनपति बनकर बैठ जाते।** यदि इनसे धन मिलता होता, तो व्यापार करने की क्या आवश्यकता? शरीर में आभूषण पहनने की दृष्टि अलग है। अँगूठी चैन शरीर के आभूषण हैं, लेकिन इसको पहनने से घर में सम्पत्ति बढ़ जायेगी, ऐसा कहकर कोई पहनाने आ जाये, तो कहना ज्ञानी! पहले तू अपने घर में भर ले, फिर मेरे घर में भरना।

धर्म के नाम पर जितनी विधायें चल रही हैं, आज विश्व में उतनी अन्य किसी नाम पर नहीं चल रही हैं। जिस अध्यात्म में जगत् का कोई आडम्बर नहीं होता है, कोई कथा भी होगी तो उसमें अध्यात्म लिखा मिलेगा, जबकि उसका अध्यात्म से कोई सम्बन्ध नहीं होता।

जब-जब तन मलिन होता है तप से मलिन होता है कि मल से मलिन होता है? ज्ञानी! तू कितने सुन्दर कपड़े पहने है। देखो क्षण मात्र में तू कपड़ों में चला गया। वक्ता आदमी को कहाँ भेज देता है? इसलिए जीवन में इस बात को ध्यान रखना। वैद्य, वक्ता, वकील और अध्यापक इन चार पर नियन्त्रण रखना बहुत आवश्यक है। यदि इन चार को आपने स्वतन्त्र कर दिया तो पूरे विश्व का नाश हो जायेगा। वकील फेल हो सकता है, वैद्य फेल हो सकता है, अध्यापक फेल हो सकता है, इन लोगों के स्थान सीमित होते हैं, कक्ष होते हैं, क्लीनिक होता है। कमरा होता है, लेकिन सबसे विशाल स्थान वक्ता का होता है। ये तीन (वैद्य, वकील, अध्यापक) यदि अहित करें तो सीमित लोगों का करेंगे, लेकिन वक्ता के सामने असीम लोगों का हित निहित होता है। **कभी चारित्रवान से पंथ नहीं चलता, कभी श्रद्धावान् से पंथ नहीं चलता, ज्ञानवान् से पंथ चलता है।** तीर्थंकर महावीर के चारित्र में क्या कमी थी? चारित्र की निर्मलता से केवलज्ञान प्रकट हुआ, केवलज्ञान प्रकट होने के बाद भी जब तक वक्तव्य नहीं दिया तब तक तीर्थंकर महावीर का शासन प्रारम्भ नहीं हुआ। जिस दिन वक्तव्य दिया था, उस दिन से वीर शासन जयन्ती प्रारम्भ हुई। जब तक मौन रहे, तब तक लोग सिर टेकते रहे, नमस्कार करते रहे, परन्तु भीड़ नहीं पहुँची। वक्ता पर नियन्त्रण कैसा? **जिसका संयम पवित्र है, उसका स्व का कल्याण होगा, जिसका**

संयम अपवित्र है, उसका स्व का अहित होगा। दूसरे के श्रेष्ठ संयम/असंयम से पर का कल्याण/अकल्याण नहीं होता। श्रुतज्ञान, विश्व में एक ही ज्ञान होता है जो कि स्वार्थ-परार्थभूत होता है। स्वयं को भी देखता है, पर को भी देखता है। स्वयं को भी जनवाता है। पर को भी जनवाता है। ये मात्र श्रुतज्ञान की महिमा है। **प्रदीपवत्।** अंधेरे में आपको क्या चाहिये? दीपक। दीपक अंधेरे में रखा तो क्या चाहिए? अंधेरे कक्ष में अन्य द्रव्य रखे हों तो दीपक लेकर जाते हो, लेकिन दीपक को उठाने के लिये दूसरे दीपक को ले जाने की जरूरत नहीं होती है, क्योंकि दीपक पर को भी प्रकाशित करता है और स्वयं को भी प्रकाशित करता है। ज्ञान ही स्व-पर प्रकाशी है। वक्ता श्रुत-ज्ञान से बोल रहा है। श्रुत, श्रुत है कि नहीं? श्रुत में कहीं 'कु' उपसर्ग तो नहीं है। गति में सु लगा दें तो सुगति, गति में कु लगा दें तो कुगति। 'सु' सहित श्रुत है, वह सुगति का कारण है और 'कु' सहित श्रुत कुगति का कारण है। वक्ता के सामने हजारों लाखों श्रोता बैठे हुए है, वचनशक्ति के माध्यम से बोलते-बोलते श्रोता को वक्ता कहाँ ले जा सकता है? एक स्थान पर बैठे-बैठे तीनों लोक की यात्रा कराने की क्षमता वक्ता के अन्दर है।

भावों की दशा ऐसी बनती है। जैसी खीर बनती है। अपने शरीर से हंस के निकलने के पहले एक बार खीर बनते देख लेना। माताओ! बनाती जरूर हो खीर, लेकिन एक बार बनते देख लेती तो तुम्हारे परिणामों में वो विशुद्धि होती जो जीवन में कभी न बनती। जब भात बनता है तो नीचे से ऊपर कितनी बार जाता है और ऊपर से नीचे कितनी बार आता है, देखा कभी? जब-जब चावल खीर बनता है, भात बनता है, तो हजारों बार नीचे-ऊपर होता है, तब कहीं खीर बन पाती है। मेरे मित्र! जब तू भगवान् बनेगा, इसके पहले ध्यान की बटलोई में निज आत्मा के चावल पसीजेंगे, कोटि-कोटि बार गुणस्थान की बटलोई में ऊपर जायेगा नीचे आयेगा, तब कहीं भगवान् बन पायेगा। तू चाहता है एक मिनिट में भगवान् बन जाऊँ। खीर बनने से पूर्व चावलों से मिल लेना और भगवान् बनने से पूर्व श्रमणों से मिल लेना। बटलोई तो जैसी है वैसी ही है, ऐसे-ही पात्र तो जैसी है, वैसा ही है। दिगम्बर भेष, श्रावक भेष ये तो बटलोई के समान दिखता रहता है, लेकिन भीतर कुछ होता है। ऐसे दिगम्बर भेष एक-से दिखते हैं, पर भीतर कुछ होता है। जो भीतर होता है, वह कुछ होता है। बटलोई खीर

नहीं बनती, जो भीतर होता है वह खीर बनता है। देह भगवान् नहीं बनती। देह के भीतर जो होता है, वह भगवान् बनता है। परन्तु बनेगा कैसे? अग्नि का उचित ताप चाहिए। पुण्यहीन माँ के हाथ से खीर बनने वाली नहीं है। जल जायेगी या कच्ची रह जायेगी। जिसका पुण्य क्षीण है, उससे अच्छा भोजन नहीं बन सकता है। जिसका पुण्य क्षीण है, भजन अच्छा कैसे बन सकता है। जिससे भोजन नहीं बनता उससे भजन कैसे बन सकता है? नाली के कीड़े को देख लेना, इससे अच्छी सामायिक कहाँ होगी?

बुजुर्गों को मन में लगता है कि मेरे बाद क्या होगा इन श्रमणों की रक्षा कैसे होगी? यहाँ युवाओं को देखकर लगा कि महावीर की वाणी झूठी कैसे हो सकती है। आज एक भैया कह रहा था आजकल की कम्पनियाँ कहती हैं यंग और स्मार्ट युवा चाहिए और सुन्दर चाहिए। आपकी अपनी पूरी कम्पनी युवा और सुन्दर है। मैंने कहा ज्ञानी! तुझे पता नहीं है, भगवान् महावीर की देशना है इस पंचम काल में गाड़ी के रथ को खींचने वाले बछड़े हैं, समाज में देखो तो बछड़े दिख रहे हैं और संघों में देखो तो बछड़े दिख रहे हैं। महावीर की वाणी झूठी कैसे हो सकती है, यह परम सत्य है। युवाओं से मेरा कहना है, इन बुजुर्गों का सम्मान रखना। ये विचारे तो जाने वाले हैं, लेकिन त्रास और कष्ट से जायें ये अच्छी बात नहीं है। इनको कुछ भी नहीं चाहिए, मात्र सम्मान चाहिए। सम्मान से बड़ी कोई वस्तु नहीं है। मान का पेट भरना हो तो माला है। भगवान् बनना हो तो ये माला (जाप) है। **मान का पेट भरना हो तो गले में माला और भगवान् बनना है तो हाथ में माला लो।** ज्ञानियों! अब दुनियाँ की चिन्ता छोड़ो, 'भज् अरहन्तम् भज् अरहन्तम्।' कब हंस उड़ जायेगा, नियत नहीं है। इसलिए उड़ने से पहले कषाय उड़ा दो सम्मान सहित अन्तिम श्वास निकालने के भाव हों तो।

मैंने तो पक्का निर्णय कर लिया है, भले-ही आपसे बहुत छोटा हूँ, सम्मान सहित जीवन जीना हो तो आज से ही कम बोलना प्रारम्भ कर दो, क्योंकि पुण्य हमारा क्षीण हो चुका होता है, अब कोई सुनता है नहीं। सुनाते अधिक हैं और कोई सुनता है नहीं, तो दिमाक खराब होता है।

चिन्तन शरीर की उम्र नहीं देखता, यह बुद्धि की विशालता को देखता है। छोटे-छोटे बच्चों के चिन्तन बढ़ रहे हैं। जैसे-जैसे आयु बढ़ती है, चिन्तन घटता जाता है।

चकरी जब चल रही थी तो कितनी सुन्दर लग रही थी? जब बारूद नष्ट हुआ, सो चकरी शान्त हुई। जब तक पुण्य का बारूद है, तब तक ये चकरी चल रही है।

अब जो है सो है, सबके दिन एक से नहीं होते हैं। जब पूरी चकरी चल जाती है, तो उठाकर नाली में फेंक देते हैं। जब पुण्य क्षीण हो जाता है, तो विश्व के लोग जिसकी तुम पूरी सेवा करते थे वे डण्डा मारकर घर के बाहर कर देते हैं। सबके दिन एक से नहीं होते।

जिनवाणी सुन रहे हो, कोई असर न हो, ऐसा नहीं होता। यह शरीर चाहे गोरा हो चाहे काला हो, होता वही है जो सबका होता है। इस आत्मा का ज्ञान से स्नान कराओ।

जब कपड़े धोने जाते हो, तो मल धोने जाते कि कपड़े धोने जाते?

साबुन लगाने से कपड़ा सफेद होता है क्या? ज्ञानी! साबुन लगाने से कपड़े सफेद नहीं होते। उनमें जो बाहर का कालापन लग गया था, उसे हटाने पर कपड़े साफ होते हैं। कपड़े तो जो होते हैं, सो होते हैं। ऐसे-ही जो भी पानी से धोया जाता है, वह पर को ही धोया जाता है। जैसे कपड़े का मल हटाते हो, ऐसे-ही पर-वस्तुओं को आप पानी से हटा सकते हो; लेकिन निज के भीतर का जो मल है, वह पानी से नहीं हटेगा। वह मात्र जिनवाणी से ही हटेगा। इसलिए नित्य ही आत्मा का स्नान ज्ञानरूपी नीर से कराओ, जिससे आत्मा कर्ममल को प्राप्त नहीं होगी, हर प्रकार के कर्म से छूट जायेगी, निर्मल हो जायेगी। इसलिए आप तो प्रयास करो। पानी का प्रयोग कम करना। विश्व में आज तुम बूँद-बूँद की रक्षा के लिए घूम रहे हो। जिनेन्द्रदेव के शासन में तो अनन्तकाल से बोला गया। जिनशासन में सबसे कहा गया है, हे श्रावको! तेल/घी की भाँति पानी का प्रयोग करो। व्यर्थ में पानी मत फैलाओ। धर्म की दृष्टि से करोगे तो पानी भी सुरक्षित रहेगा और जीवों की रक्षा भी होगी। आज गली-गली में क्यों लिख रहे हैं—'बूँद-बूँद की रक्षा करो?' आज लोगों को जो समझ में आ रहा है, मैं मुस्कराता हूँ, जाओगे कहाँ? भगवान् तीर्थंकरों का शासन तुमको स्वीकार करना ही पड़ेगा। कल मन बनाकर आना, मन मलिन करके मत आना; क्योंकि विश्व में कपड़ों की मलिनता को धोने के लिए बहुत पानी है, परन्तु मन की मलिनता को दूर करने के लिए मात्र अरहन्त की वाणी है।

वह कितना सौभाग्यशाली पुरुष होगा जिसे अंतिम समय ऐसा अवसर मिल जाय कि जिन निर्ग्रन्थ गुरु हो, जिनवाणी हो, जिनदेव हो और ऐसे समय मेरी समाधि हो जाय, तो हमें शान्तिविधान करने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। सारे स्थान मिल सकते हैं।

मित्र! घर से बाहर निकलने के पहले घर के लोगों से क्षमा माँगकर जाना। पंचमकाल है, अच्छा नहीं है। आ गए तो फिर मिलेंगे, नहीं आ पाये तो क्षमा माँगकर जाओ। लेकिन कषाय बाँध करके, कमठ बनाकरके मत जाना।

आयुकर्म नियत नहीं है। कभी बेटे की माँ से भी झगड़ा हो जाये, मन नहीं माने, तो झगड़ लेना, लेकिन जब झगड़ा शान्त हो जाये तो कहना 'हे देवी! तू भी भगवान्-आत्मा, मैं भी भगवान्-आत्मा। पर्याय कब विलीन हो जायेगी, पता नहीं। क्षमा करना।'

ऐसा कर सकते हो क्या? यदि करने की सामर्थ्य नहीं है आपके पास, तो विश्वास रखना, अभी धर्म प्रारम्भ ही नहीं हुआ है।

पत्नी से क्षमा माँग सकते हो क्या ? बेटे से क्षमा माँग सकते हो क्या? माँग लेना, सम्बन्ध वर्तमान का है, परन्तु जीव वर्तमान का नहीं। ज्ञानी! तन राख बने इससे पहले मन को साफ कर लो।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।



अशुचिमय शरीर

सर्वाशुचिमये काये शुक्रशोणित संभवे।
शुचित्वं येऽभिवांच्छंति नष्टास्ते जडचेतसः ॥315॥

औदारिकशरीरेऽस्मिन् सप्तधातुमयेऽशुचौ।
शुचित्वं येऽभिमन्यन्ते पशवस्ते न मानवाः ॥316॥

अन्वयार्थ—(ये शुक्रशोणितसंभवे सर्वाशुचिमये काये) जो कोई वीर्य और रुधिर से उत्पन्न पूर्णरूप से अपवित्र शरीर में **(शुचित्वं अभिवांच्छंति)** पवित्रता की वांछा करते हैं **(ते जडचेतसः नष्टाः)** वे जड़बुद्धि अपना नाश करते हैं। **(ये)** जो कोई **(अस्मिन् सप्तधातुमये अशुचौ औदारिक शरीरे)** इस सात धातुमय अपवित्र औदारिक शरीर में **(शुचित्वं अभिमन्यन्ते)** पवित्रपना मानते हैं **(ते पशवः न मानवाः)** वे पशु हैं, मानव नहीं।

भावार्थ—हे जीव! जो अशुचिमय शरीर को पवित्र करने की वांछा करते हैं, वह जड़बुद्धि अपना नाश करते हैं और जो औदारिक शरीर में पवित्रता मानते हैं, वे मनुष्य होकर भी मनुष्यता से शून्य हैं।

॥ सद्-देशना ॥

आचार्यप्रवर भगवन् कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज सारसमुच्चय जी में शरीर की अशुचिता और परिणामों की शुचिता, इन दोनों की व्याख्या कर रहे हैं।

भारत की भूमि पर ऐसे महान्- महान् योगी हुए हैं जिन्होंने अपने गहरे तत्त्वचिन्तन से इन रहस्यों को उद्घाटित किया है। जिन रहस्यों को लोगों ने अनेक भव लगा दिए लेकिन तब भी प्राप्त नहीं कर सके। जीवन के क्षणों को जिन्होंने व्यय किया है, जिनका विनाश किया है। गहरे में समझने की आवश्यकता है। एक ओर उन तीर्थंकर नेमिनाथ स्वामी को देखना, दूसरी ओर स्वयं की ओर निहारना। देह और इंद्रियाँ, इन दो के मध्य में आत्मा है। देह का दोष नहीं है, इन्द्रियों का दोष नहीं है। भाषा को आज से बदल देना। बहुत सारे लोग शरीर को गाली देते रहते हैं और बहुत सारे लोग तो इन्द्रियों

को गाली देते रहते हैं। ये ज्ञानधारा नहीं है। आप शरीर को अशुभ क्यों कहते हो? इन्द्रियों को अशुभ क्यों कहते हो? आज तक किसी व्यक्ति को इन्द्रियों ने नरक नहीं भेजा। शरीर ने नरक नहीं भेजा। यदि इन्द्रियों से नरक जाया जाता होता, तो योगी आँखों से स्वाध्याय करते हैं, भगवान् की वन्दना करते हैं, ईर्या समिति का पालन होता है, पाँचों इन्द्रियों के माध्यम से संयम का पालन होता है, इसलिए इन्द्रियों को दोष दे करके अशुभ कर्म का बंध मत करो।

वैराग्य की भाषा को समझने की आवश्यकता है। वैराग्य की विधा को समझने की आवश्यकता है। वैराग्य की भाषा को समझने की आवश्यकता है। मुझे राग नहीं है किसी में, तो कहीं किसी में द्वेष तो नहीं है? राग को छोड़ने वाले द्वेष को पकड़कर बैठ गए और द्वेष को छोड़ने वाले राग को पकड़कर बैठ गए। दोनों संसारी हैं। मैं राग नहीं करता हूँ, मेरा किसी से राग नहीं है तो द्वेष है, क्या ? और एक कह रहा है महाराज श्री! मैं तो परम-शान्त-स्वभावी हूँ, मेरा तो जगत् में किसी से द्वेष है ही नहीं। विश्वास रखना, **द्वेष छोड़ना सरल है, राग छोड़ना बहुत कठिन है।** लम्बे समय तक द्वेष में नहीं जी सकते हो, लेकिन लम्बे समय तक राग में जी रहे हो। लोगों ने धर्म किसमें माना है? अपनों के प्रति राग में जीवन जीना, इसका नाम धर्म है। यदि आपका संयम में राग है, असंयम में द्वेष है, तब भी तुम धर्मात्मा नहीं हो। क्यों? ज्ञानी चाहता है मैं मुनिदीक्षा ले लूँ, लेकिन इसके मन में एक भाव आया कि ये शादी क्यों करा ली? मेरी पत्नी न होती तो मैं मुनि बन जाता।

हे ज्ञानी! तू ये क्यों नहीं सोचता है कि मेरा राग न होता तो मैं मुनि बन जाता। पत्नी को दोष क्यों दे रहा है? हर समय जीव ने दूसरों को दोष देना सीख लिया है।

रास्ते में यदि काँच का ग्लास रखा हुआ है और तेरे पैर के धक्के से वह टूट गया, तो क्या कहता है? शर्म नहीं आती, बीच में क्यों रख देते हैं? अरे! तुझे शर्म क्यों नहीं आती? देखकर क्यों नहीं चलता? स्वयं के द्वारा काँच का ग्लास टूटा है, फिर भी दोष दूसरे को दे रहा है। यदि दूसरे का पैर लग गया होता तो यूँ कहता कि ये दो नेत्र क्यों मिले हैं? आप देखकर क्यों नहीं चलते हो? जगत् की लीला ही ऐसी है—यदि परमात्मा भी मिल जायें तो ये ज्ञानी क्या कहेगा? तुमको शर्म नहीं आयी, मुझे

पंचमकाल में क्यों भेज दिया? यहाँ कष्ट-ही-कष्ट है। यदि सुख मिलने लगता तो कहता—मेरा पुण्य है, परमात्मा क्या देता है? संकट के दिन आ जाते हैं तो भगवान् को बुला लेता है और सुख के दिन आते हैं तो भगवान् को भी भूल जाता है। बहुत अच्छा हुआ कि पंचमकाल में भगवान् नहीं हैं। अभाव है तो श्रद्धा है। यदि वे भी हमारे-जैसे होते, तो ज्ञानी लोग उनको भी नहीं छोड़ते। बोलते 'महाराज! भगवान् भी दुभात (पक्षपात) करते हैं, किसी के घर में मालामाल कर दिया और किसी को कंगाल कर दिया है।

मेरे मित्र! इस बात को भूल जाओ कि भगवान् ने मालामाल किया है या भगवान् ने कंगाल किया है। **तेरे भाग्य ने तुझे मालामाल किया है, तेरे दुर्भाग्य ने तुझे कंगाल किया है।** कहीं तू भगवान् को मनाने के लिए तो विराजमान नहीं कर रहा है?

ये परमात्मा पूजन करने वाले पर प्रसन्न नहीं होते हैं और गाली देने वाले पर नाराज नहीं होते हैं। इसलिए मैं उनको पूजता हूँ। जिस दिन वे खुश होने लग गये या नाराज होने लग गये, विश्वास रखो, मैं तो उन भगवान् का नाम नहीं लूँगा। भगवान् न नाराज होते हैं न खुश होते हैं। इसलिए आचार्यभगवन् कह रहे हैं कि वैराग्य हो रहा हो तो पत्नी को दोष मत देना। जाने वाले को रोक कौन सकता है और ठहरने वाले को भगा कौन सकता है? हर व्यक्ति अपनी इच्छा से काम करता है। लगता अवश्य है कि मेरे कहने से महाराज यहाँ आ गए, लेकिन सत्य यह है कि उनको भी लग रहा था कि चलो चलते हैं। अन्दर का विषय समझो, जिस दिन सत्य समझ में आ जायेगा, उस दिन व्यर्थ के आडम्बर छूट जायेंगे। एक वैराग्य होता है, एक वैराग्य का आडम्बर होता है।

ज्ञानी! जब तू ससुराल गया था तो सासू माँ ने हरे-हरे नोट दिखाये थे, तो भीतर क्या हो रहा था और बाहर क्या हो रहा था ? हाथ से नोट पकड़ लिए और मुख से कह रहा था नहीं चाहिए नहीं चाहिए और छोड़ रहा नहीं था । ऐसे ही जीव के भीतर अंतरङ्ग में रोग भरा हुआ है और मुख से कहता है कि मुझे संसार से क्या लेना-देना है ? मैं तो विरक्त हूँ, साधू-सन्त हूँ, संतोषी श्रमण हूँ, योगी हूँ। अरे ज्ञानी! यदि तू है ही, तो कहने की क्या आवश्यकता? मटके में पानी होता है तो अलग दिखता है

कि सोंदा-सोंदा है उसको कहना नहीं पड़ता कि मैं पानी से भरा हूँ। जो बजता है वह भरा नहीं होता, जो भरा होता है वह बजता नहीं है। ऐसे-ही जो बहुत बजते हैं, वे भरे नहीं होते और जो भरे होते हैं, वे बजते नहीं हैं। तुम वैराग्य के राग में पंचेन्द्रिय की हत्या मत कर बैठना कि मैं वैराग्य को प्राप्त हो रहा हूँ, मेरे घर में बूढ़े माता-पिता हैं। ये जल्दी ऊपर चले जायें तो मैं मुनि बन जाऊँ। ये मेरी पत्नी है, ये न होती तो मैं मुनि बन जाता। तो नेमिनाथ से पूछो, बारात गयी थी। न बैसाख में गई थी, न चैत्र में, न आषाढ में। वह सावन के महीने में गई थी। जगत् के लोग इतने ज्ञानी थे कि उन्होंने सावन के महीने में शादी करना बन्द कर दी, बोले—भैया! कहीं हमारा लड़का नेमिनाथ न हो जाय। श्रावण के महीने में बारात गई थी और वह तो एक प्रकार का षड़यन्त्र था। बहुत से पशुओं को बन्द कर दिया था। चीखते-चिल्लाते प्राणियों को देखकरके कुमार नेमिनाथ ने पूछ लिया था कि ये दृश्य क्यों? ये तो लोगों के सत्कार की व्यवस्था है। एक के इन्द्रियसुख के पीछे अनेक प्राणियों के प्राणों का वध हो, यह सुख कैसा?

ज्ञानी! असर तो पड़ता है, आप मानो। झाँसी की गलियों में पानी गिरे और मिट्टी गीली न हो, ऐसा नहीं होता। जिनवाणी बरसे, लोगों के हृदय गीले न हों, ऐसा नहीं होता है।

ज्ञानी ने साबुन लगाने का त्याग कर दिया। हम ऐसा नहीं कह सकते हैं कि पंचमकाल में धर्म नहीं है। **यदि एक उपदेश से एक जीव भी प्रभावित हुआ है, तो उपदेश सार्थक है।**

एक गजरथ महोत्सव हुआ। लाखों करोड़ों का खर्च हुआ। तुम-जैसे लोग यहीं कहेंगे कि कितना खर्च करवा दिया? लेकिन जिनवाणी यह कहेगी कि एक करोड़ के खर्च में यदि एक मिथ्यादृष्टि को जिनेन्द्र के वैभव को देखकर सम्यक्त्व हो गया तो करोड़ों का खर्च सार्थक हो गया।

जब गोम्मटेश बाहुवली की प्रतिमा गढ़ी गई थी, तो चामुण्डराय ने उसको पैसा नहीं दिया। उतना सोना दिया था जितना पत्थर निकलता था। ऐसे भी लोग हुए जिन्होंने कहा कि कैसा उन्मत्त हो रहा है? सोना लुटा रहा है। उसको मालूम था कि सोना तो

सुला ही देगा, मैं तो ऐसे स्वर्ण को स्थापित कर रहा हूँ जो कोटि-कोटि जीवों को सम्यक्त्व उत्पन्न करायेगा। सारे विश्व में दिगम्बरत्व का जयनाद करने वाली कोई प्रतिमा है तो वह गोम्मटेश बाहुवली स्वामी की। कब दाता के परिणाम कैसे हों? कब कैसा नियोग बन जाये? पाषाणखण्ड का भी नियोग देखो, एक पत्थर वो है जो खदान से निकलकर किसी के संडास में लग रहा है और एक पत्थर वह है जो अरहन्त की प्रतिमा बन रहा है। एक युवा वह है जो अपने माता-पिता सेवा में सुबह से नौकरों-जैसे लग गए हैं, एक वे युवा हैं जिनके हाथ में पिच्छी कमण्डल दिखाई दे रहे हैं। कल पाँच युवाओं ने करगुवाँ जी में केशलुंचन किया। अंतरङ्ग की परिणति को निहारो। लोगों से मेरा कहना है कि वैराग्य की परिभाषा को समझ लेना। साधना के इतने लम्बे समय में मैंने अनुभव किया है। **बोधि का बोध नहीं होता है और बोधि की ओर दौड़ जाते हैं, तो वे बोधि और बोध दोनों से शून्य हो जाते हैं।**

ज्ञानी क्या सोच रहा था? मेरे वृद्ध माता-पिता जल्दी ऊपर चले जायें, फिर मैं दीक्षा ले लूँ। माता-पिता जल्दी ऊपर चले जायें तो मेरी व्यवस्था समाप्त हो जाये। मेरे मित्र! जब तुझे वैराग्य हो गया है, तो पंचेन्द्रिय माता-पिता के मरने का भाव मत करो। तुम अपने आप में दीक्षा ले लो। उनका भाग्य होगा तो तुमसे सुन्दर व्यवस्था करने वाला कोई मिल जायेगा और भाग्य नहीं होगा, तो तू भी पानी पिलाने नहीं जायेगा। तुम्हारे मन में **किञ्चित् भी वैराग्य हो तो सँभलकर जीवन जीना।** परिवार के अभाव का चिन्तन मत करना, राग के अभाव का चिन्तन करना। परिवार का नाश करवा देना, यह वैराग्य नहीं है। **राग का अभाव करा देना, इसका नाम वैराग्य है।** राग का अभाव कीजिए। तुम्हें बिलखते लोग दिखे और तुम भी बिलखने लग जाओ तो, ये लोग नहीं बिलखा रहे हैं, ये तुम्हारा राग बिलखा रहा है। बिलखते लोग मिलने पर भी आँख में आँसू तो दूर है, चेहरा भी न सिकुड़े। **कोई किसी को रुलाता नहीं है, कोई किसी को हँसाता नहीं है। राग ही रुलाता है, राग ही हँसाता है।** सत्य ये है कि अपनी इच्छा से ही तुम सब काम करते हो। एक भव में ही सबकुछ समझ में आ जाये, कोई नियत नहीं है। यह तो हमारी दृष्टि है कि दूसरे को दोष देने में ही सन्तुष्टि मिलती है। दूसरे को दोष देने में सन्तुष्टि अवश्य मिलती है कि भगवान् नेमिनाथ स्वामी के साथ ऐसा

छल क्यों कराया गया? सत्य यह है कि होता भी छल ऐसा, फिर भी जिसको नहीं है भीतर का बोध, जिसको नहीं है प्राणियों पर करुणा, वह तो चला ही जाता शादी कराने। क्या आज लोग नहीं जाते? परन्तु ध्रुव सत्य है कि जिस जीव का नियोग जिस निमित्त से निहित है, वह नियोग आपको मिल गया था। यदि ऋषभदेव को नीलांजना का मरण वैराग्य का निमित्त बना है तो आपको पशुओं का बंधन निमित्त बना है। सत्यता यह है कि आपके भीतर वैराग्य न होता तो दुनियाँ के निमित्त क्या कर सकते थे? मेरे आने से आप यहाँ आये हो, व्यवहार से आप कह लो, परन्तु सत्यता यह है कि तुम्हारे आने के परिणाम न होते तो मैं तुम्हारे घर जाकर तुम्हें हाथ पकड़कर नहीं लाता कि चलो, भैया! चलो। मैं तुम्हें प्रवचन सुनाता हूँ। मैं किसी का कर्ता नहीं हूँ। **यदि आनन्दमय जीवन जीना चाहते हो तो कार्य करना, लेकिन कर्ता मत बनना। कार्य करते रहोगे तो आपके भीतर क्षमता रहेगी। पुरुषार्थ करना तुम्हारा धर्म है, लेकिन कर्तापन तुम्हारा धर्म नहीं है। कार्य करना, कर्ता मत बनना। कार्य करने में परेशानी नहीं है, कर्ता बनने में परेशानी है।** किसी के घर में शादी होती है तो जितना काम घरवाले नहीं करते उतना काम मेहमान कर जाते हैं, जबकि जितनी थकान मेहमान को नहीं आती उतनी घरवालों को आती है, क्योंकि कर्ता वे होते हैं। जो-जो कर्ता होते हैं, वे थक ही जाते हैं। जो उत्साह से उमंग से धर्म के लिए कर्तव्य निभा रहा है, वह कभी थकता नहीं है।

जिन्होंने मंच नाम के लिए बनाया है, वे थक गए होंगे। जिनने इसलिए मंच बनाया है कि मेरी मेहनत करने से यदि हजारों लोगों को जिनवाणी सुनने मिलती है तो इससे बड़ा काम क्या हो सकता है, उनको थकान नहीं आयेगी, उनको आनन्द आ रहा है यह सोचकर कि आज मैंने मुनियों के लिए मंच बनाया है, भविष्य में तीर्थंकर का समवसरण बनाऊँगा। थकान कहाँ गई? रास्ते में अपरिचित पुरुष का पुत्र कहीं नाली में गिरते मिल जाये, तो आप लोग प्रीतिपूर्वक उसको उठा करके सुरक्षित कर देते हो तो घर में आकर सोचते हो आज मैंने अच्छा काम किया। कदाचित, भैया का बेटा गिर जाये, उसको उठाकर लाओ, तो चार बार सुनाते हो 'भैया! जन्म तो देना जानते हो, लेकिन रक्षा करना नहीं जानते हो। मैं न होता तो कैसे बचता?' **जहाँ कर्ता-दृष्टि है, वहाँ क्लेश-दृष्टि है।**

ध्यान देना, **मोक्षमार्गी धर्म को कर्तव्यदृष्टि से करता है और अज्ञानी अहंकारी कर्तादृष्टि से करता है। कर्तव्य करते जाओ, कर्ता बनना बन्द करो। जहाँ कर्तापन आया, वहाँ क्लेश प्रारम्भ हो गया।** मैं शरीर का कर्ता हूँ, जबकि कर्म-नोकर्म का पिण्ड आपका शरीर है आप अपने ही कर्ता नहीं हो। स्वयं की आत्मा का कर्ता भले ही नहीं हो। यदि आप अपनी आत्मा के कर्ता हो, तो आप थे नहीं, तो किया किसने? थे, तो किया किसने? मैं अपना कर्ता हूँ क्या?

समयसार के लिए समय नहीं है। मैं अपना कर्ता नहीं हूँ। आप सोच रहे हो कि महाराज मैं मनुष्य कैसे बन गया? मैं देव कैसे बनूँगा, नारकी कैसे बनूँगा, तिर्यञ्च कैसे बनूँगा यदि अपना कर्ता नहीं हूँ तो? मेरे मित्र! तुम ये नहीं हो, ये तेरी पर्याय है। तुम जो हो, उनमें पर्याय प्राप्त करते हो।

घट मिट्टी है, कि मिट्टी का घट है? यदि मिट्टी घट हो गई, तो घट ही रहेगी, उसका आकार नहीं आ सकता। यदि मिट्टी घट हो गई, तो त्रैकालिक उसको घट ही रहना पड़ेगा, फिर मिट्टी कभी घटरूप से मिटकरके कपाल नहीं हो सकती है, अन्य आकार भी नहीं हो सकती है। घट मिट्टी का तो है लेकिन मिट्टी घट नहीं है, परन्तु मिट्टी घटाकार अवश्य है। आत्मा मनुष्य है, कि मनुष्य आत्मा है? यदि आत्मा मनुष्य हो गई, तोफिर तुम मस्त हो जाओगे। न तुम्हें पुण्य से प्रयोजन न पाप से प्रयोजन। जो मन में आये सो सबकुछ करो। आज ऐसे दर्शन सामने खड़े हो गये हैं जो कह रहे हैं कि मनुष्य से मनुष्य ही बनेगा, देव से देव ही बनेगा, नारकी से नारकी ही बनेगा, पशु से पशु बनेगा। जब ऐसा नियत तुम मानते हो, तो जगत् में पुण्य, पाप, ध्यान आदि करने की आवश्यकता क्या है? जब नारकी को नारकी बनना ही है, मनुष्य को मनुष्य बनना ही है, जब नियत हो चुका है, तो फिर पुण्य पाप करने की आवश्यकता क्या है? शब्दजाल में उलझ मत जाना, बड़ी करुणापूर्वक कह रहा हूँ। मेरे से बाहर की चर्चा भी बनती है, लेकिन विश्वास रखना, तुम ताली तो बजवा सकते हो, लेकिन हृदय के मिथ्यात्व का ताला नहीं तुड़वा सकते हो। मैं मनुष्य अवश्य हूँ, परन्तु मैं मनुष्य ही नहीं हूँ। आत्मा मनुष्य के आकार में है, मिट्टी घटाकार में है, वही घट मिट जायेगा तो दूसरा आकार आ जायेगा। ऐसी-ही इस मनुष्य के आकार से आत्मा छूटेगी तो जैसा पुण्य-पाप करेगी वैसे दूसरे शरीर को प्राप्त होगी। इसलिए आप अपने पुण्य-पाप भावों

के कर्ता हो, कर्म के परिणमन के कर्ता हो, लेकिन जैसे मिट्टी के घट बनने में कुम्भकार आकार देने का कर्ता होता है, चक्का उसके आकार में हेतु बनता है, ऐसे-ही आत्मा के परिणाम अनेक गतियों में भिन्न-भिन्न शरीर धारण कराते हैं।

यहाँ कोई भी त्यागी आये तो पदाधिकारी के नाते उनकी सेवा तो करनी ही पड़ेगी। न भी करना चाहे तो भी करनी पड़ेगी। जब करना पड़ेगी, ही तो जरा भक्तिपूर्वक और करेगा तो कर्मों की निर्जरा अपने आप होना शुरू हो जायेगी। एक माँ बेटे को आँचल का पान करा रही है। कराना तो पड़ेगा, क्योंकि जन्म दिया है। गुस्सा करके ठोक-ठोक के दूध पिला रही है तो आँचल भी सूख रहा है और बेटा भी समझ रहा है। भुगत रही है, पिला नहीं रही है। वही माँ मुस्करा कर पिलाये तो बेटा भी मुस्करायेगा और आँचल भी भर जायेगा और भविष्य में, माँ जब तू बढ़ी होगी तो तुमको दूध का गिलास भरकर पिलायेगा। वस्तुव्यवस्था व्यवस्थित है, जरा भाव बदल दो, बस। भाव बदल दो तो भव बदल जायेगा।

अपने जीवन में जैसी विशुद्धि, जैसे परिणाम होंगे वैसे कार्य होंगे। जीवन में सारे के सारे समय निकल जायें, लेकिन भीतर समयसार न निकल पाये।

उद्देश्य यह मत समझना कि हम मात्र एक घण्टा पूरा करने के लिये आए हैं। उद्देश्य यह समझना कि भव-भव में एक बार जिनवाणी सुनने का मौका मिलता है। अंतरङ्ग में जो मिथ्यात्व भरा हुआ है कि 'मैं इसका कर्ता, ये मेरा कर्ता', इसको समझना और निकाल देना। कुम्भकार मिट्टी को निर्मित करता है, कि कुम्भकार घट को निर्मित करता है? कुम्भकार मिट्टी का कर्ता नहीं है, मिट्टी तो है ही, कुम्भकार मिट्टी को आकार देने मात्र का कर्ता है। ऐसे-ही आप आत्मा के कर्ता नहीं हो, निज आत्मा के भी कर्ता नहीं हो। आत्मा को रागादिक भावों से आकार दिलाने के कर्ता हो, लेकिन आत्मद्रव्य के कर्ता नहीं हो। जीव स्वयं के रागादिक भावों का कर्ता-भोक्ता है, नाना पर्यायों का कर्ता-भोक्ता है; लेकिन जीव अपने जीवत्व भाव का कर्ता नहीं है। लगता ऐसा है कि मैं कर्ता हूँ। सत्य के समझने को बहुत धैर्य चाहिए? अधीर व्यक्ति सत्य को नहीं समझ सकता।

दूध पीते-पीते, घी खाते-खाते यह शरीर ढीला कैसे पड़ गया? तुम स्वाद लेने के कर्ता तो हो, शरीर को सजाने के कर्ता तो हो, परन्तु शरीर को रखने के कर्ता नहीं हो।

भैया! इस अस्सी साल के बुढ्ढे को शर्म नहीं आती यहाँ प्रमाणपत्र देने आया है कि मैं कितना शौकीन हूँ। इसके बालों की माँग कह रही है कि कितना शौकीन है। साधन से साध्य का ज्ञान, अनुमान है।

यदि सोनागिर दतिया में पानी बरसता है, तो झाँसी में सोंधी-सोंधी सुगन्ध की अनुभूति होती है। जब सोंधी-सोंधी अनुभूति बिना आँखों से देखे बता रही है कि सोनागिर जी में पानी गिरा है, तो जिसके सिर के बाल इतने सुन्दर दिख रहे हैं जिसके बाहर का राग इतना विराट् है, जब शरीर का शृंगार दिखाई दे रहा है, तो यह प्रमाणित हो रहा है कि इसके भीतर राग कितना सुन्दर है। एक बार मैं कटनी गया जैसे ही प्रवेश किया, तो शरीर में तीव्र दाह और वेदना प्रारम्भ हो चुकी थी। क्यों? ग्रीष्मकाल और कटनी के भट्टे। जब किसी भट्टे के सामने से निकलो और तालाब के सामने से निकलो तो समझ में आता है कि नहीं? आता है। आप लोग कितने ज्ञानी हो, जो मैं कह रहा हूँ आप सब जानते हो, लेकिन मानते नहीं हो। जब तालाब के बगल से निकलते हो तो शीतलता मिलती है और भट्टे के बगल से निकलने पर तपन तीव्र हो जाती है। अलग से समझ में आता है कि कटनी आ गई। बस जिससे स्पर्शित वायु इतनी उष्ण है, उसके भीतर कितनी उष्णता होगी? जिससे स्पर्शित वायु इतनी शीतल है, वह सरोवर कितना शीतल होगा? जिसकी माँग इतनी बढ़िया निकली है, उसके भीतर कितना राग होगा? जिसके बाहर इतनी भक्ति दिख रही है, उसके अन्दर भक्ति का कितना भाव होगा? यह अनुमान ज्ञान है।

बाल सँभाले, बालायें सँभार्लीं, बाल और बालाओं के सँभालने में पूरी जीवन-लीला न्यौछावर कर दी। जैसे बाल सँभाले, बालायें सँभार्लीं, ऐसे भाव सँभाल लेता तो आज सिद्धालय में भगवान बना बैठता।

बालाओं को आकर्षित करने के लिए बाल सँभाले, बाल भी खिंच गए और बालायें भी छोड़कर भाग गईं, अब बता तू करेगा क्या?

ज्ञानी! विश्वास रखना, तुम सँभालने का राग ही कर सकते हो, परन्तु किसी को सँभाल नहीं सकते हो, तो तुम दुनियाँ को क्या बचा पाओगे? अपने सिर के बाल नहीं बचा पाये। तभी लिखा आचार्य कुलभद्र स्वामी ने '**सर्वाशुचिमये काये**

शुक्रशोणितसंभवे' शुक्रशोणित से युक्त। दो-तीन दिन से स्नान और शरीर की व्याख्या चल रही है। तुम किस पर रीझे हो, जिस चमक को तुम देख रहे हो, वह चमक तेरी नहीं, वह शुक्रशोणित से युक्त शरीर की है। **'मलबीजं मलयोनिं'** जिसका बीज ही मल है और निकला मल-योनि से है, ऐसे शुक्र-शोणित से युक्त इस शरीर में पवित्रता की वांछा करते हैं। मैं पवित्र हूँ उत्तम कुलीन हूँ, तुम शूद्र हो। क्या तेरे शरीर से निकला मल पूजा जाता है? चाहे शूद्र भोजन करे, चाहे क्षत्रिय भोजन करे, चाहे वैश्य भोजन करे, चाहे ब्राह्मण भोजन करे, दूसरे दिन भोजन की दशा वही होती है जो सबकी होती है। घर-घर में तुम भेद कर सकते हो, रहने के स्थानों में भेद कर सकते हो, लेकिन चलने के स्थान सभी के एक हैं। मेरा वंश महान्, मेरा कुल महान्, मेरा गोत्र महान्, मेरी जाति महान्, कितने ही भेद कर लो, भेद करके जीवत्व के प्रति द्वेष रख सकते हो, मेरे मित्र! जन्म के भवन अलग-अलग हो सकते हैं, लेकिन चलने का स्थान सभी का एक है। जाना पड़ेगा क्या? मैं नहीं चाहता कि आप जाओ, लेकिन कर भी क्या सकते हैं? प्रकृति का नियम ही ऐसा है, कालचक्र का नियम ऐसा है, वह कह रहा है कि दुनियाँ के बीच में तुम कुछ भी कहकर आ जाना, पर मैं ऐसा अविराम द्रव्य हूँ जिसने राम को भी देखा है जिसने ऋषभदेव को भी देखा है। जिसने ऋषभदेव को आँगन में खेलते देखा और निर्वाण को जाते देखा है। सारे जगत् के लोग किसी को देख सके या नहीं, कालचक्र कह रहा है मेरे सामने सबकी चकरी चल रही है। जाओगे क्या? जरूर जायेंगे। मेरे मित्र! जाने के पहले कुछ ऐसा करके जाओ कि जाने के बाद भी न जा पाओ। ऐसा काम मत करना कि जीते जी चले जाओ। एक वे लोग होते हैं जो जाने के बाद भी जा नहीं पाते हैं। कुछ वे लोग होते हैं जिनको जीते-जीते भी कोई जान नहीं पाते।

हे वर्द्धमान! आप चले जरूर गये हो, आप पर्याय से गये हो, मेरी श्रद्धा से नहीं गये हो। **जो अनाचारी दुराचारी पुरुष होता है, वह पर्याय से भले न जाये, लेकिन श्रद्धा से चला जाता है।** अल्प समय मिला है, ऐसा करके जाना जिससे लोग तुझे लम्बे समय तक भूल न पायें। ऐसा करके मत जाना कि तेरे बेटे की माँ ही तुझे भूलना प्रारम्भ कर दे। इसलिए पर की देह के राग में लिप्त होकरके स्वयं के देह के राग

में लिप्त नहीं होना। पर की देह के राग में लिप्त होकरके निज के ब्रह्म का नाश किया है। स्वयं की देह का राग तो द्रुत गति से बढ़ रहा, तीव्र है, लेकिन तेरे ब्रह्मधर्म का घात जो हुआ है, जो बालब्रह्मचारी शब्द तेरे सामने से निकल चुका है, वह पर की पर्याय के राग में निकला है। **अपनी पर्याय का राग जीव को जितना घातक नहीं है उतना पर की पर्याय का राग घातक है।** लंकेश का घात किसने किया? तुम व्यवहार की भाषा में कितना ही बोलते रहो, परन्तु सत्य यह है कि हे रावण! पर की पर्याय के राग ने तेरा घात किया है। यदि पर की पर्याय का राग तेरे भीतर न होता, तो तेरा घात होता कैसे?

यहाँ कह रहे हैं कि जो इस अशुद्ध शरीर को शुद्ध करना चाहता है, ऐसा जड़बुद्धि अपना नाश करता है। गाथा क्रमांक 315-316 में आचार्यभगवन् उस परमसत्य की व्याख्या कर रहे हैं—यह औदारिक शरीर सप्त धातुमय है। शरीर में अनन्तानन्त जीव भरे हुए हैं, सप्रतिष्ठित हैं। धन्य हैं वे योगी जो धूप से छाँव में जाने पर भी शरीर का मार्जन करते हैं और धिक्कार हैं वे प्राणी जो ऐसा औदारिक शरीर जो सप्तधातुमय अशुचि है, ऐसे अपवित्र शरीर को भी नदियों के पानी से सागरों के पानी से नल और कुयें के पानी से शुद्ध करने की बांछा रखते हैं। वे पशु के समान हैं, मानव नहीं हैं। भैया! इतना कठोर लिखा है। अब जो है, सो है। मैं क्या कर सकता हूँ? जो है, सो है।

पिण्डखजूर कितना चमकता है? छुहारा। युवावस्था में तू कैसा खजूर-जैसा चमकता था। आज छुहारे-जैसे हो रहे हो। सत्य यही है कि सब अंगूरों को किशमिश जैसा हो जाना है। इसलिए उस पर्याय के आने के पहले कुछ ऐसा करके जाओ जिससे मरने के बाद भी जगत् से मर न पाओ।

अनेक गाड़ियों को तूने ध्वजा दिखाई है, अपनी चैतन्य गाड़ी को ध्वजा दिखा दे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।



सम्यक् शुद्धि

सत्येन शुद्ध्यते वाणी मनो ज्ञानेन शुद्ध्यति।
गुरु-शुश्रूषया कायः शुद्धिरेषसनातनः॥317॥

अन्वयार्थ— (वाणी सत्येन शुद्ध्यते) वाणी की शुद्धि सत्य बोलने से है **(मनः ज्ञानेन शुद्ध्यति)** मन की शुद्धि तत्त्वज्ञान से है **(कायः गुरु-शुश्रूषया)** काय की शुद्धि गुरु की सेवा से है **(एषः सनातनः शुद्धिः)** यह अनादिकाल की अर्थात् सनातन शुद्धि है।

भावार्थ— हे भव्यात्मन् ! वचनों की शुद्धि सत्य बोलने से है, मन की शुद्धि सम्यक् ज्ञान से है और शरीर की शुद्धि गुरु की सेवा से है, यही सनातन शुद्धि है।

॥ सद्-देशना ॥

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज 'सारसमुच्चय' जी में वस्तुस्वभाव की व्याख्या कर रहे हैं। वस्तुव्यवस्था को समझना और निज में व्यवस्थित होना, ये दो धारायें हैं। ज्ञान को प्राप्त कर लेना और ज्ञानमय हो जाना, इन दोनों में महान् अन्तर है। **भारतभूमि विचारक-भूमि मात्र नहीं है। प्रचारक भूमि नहीं है, ये आचारक भूमि है। विश्व में विचारक बहुत हुए।** जिसको शरीर की प्रभावना चाहिए, जिसको शरीर का रस चाहिए, वह प्रचार में लीन हो जाता है। जिसको भगवत्ता चाहिए, वह आचरण में लीन हो जाता है। आज प्रचारक की रामनवमी नहीं है, विचारक की रामनवमी नहीं है, यह आचारक की रामनवमी है। भौतिकता के नाम पर सर्वत्र आपको अनेक प्रकार के संसाधन उपलब्ध हो जायेंगे, पर जब आत्मा की सिद्धि की बात प्रारम्भ होगी तो सारे विश्व को भारत की ओर देखना पड़ेगा। चाहे तीर्थंकर हो, चाहे बलभद्र हो, चाहे नारायण हो, रौद्र हो, चक्रवर्ती हो; जितने महापुरुष हुए हैं, उनने भारत की भूमि को ही पवित्र किया है। यह तीर्थभूमि है, मातृभूमि है, ये पितृभूमि है और विश्वास रखना, **अध्यात्म का गुरु कोई है उसका नाम भारतभूमि है।** तत्त्व का बोध, ज्ञान की जो व्यवस्था है, वह बहुत गरीब है। शान्तचित्त हो करके उस परम सत्य को समझना जिस सत्य के आधार पर दशरथ-पुत्र श्रीराम इतनी प्रसिद्धि को प्राप्त हुए हैं। उनके काल में रावण भी तो हुआ था। नाम दोनों के चलते हैं। राम का भी नाम है, रावण का भी नाम है। नाम होना श्रेयस्कर नहीं है। कुछ लोग सोचते हैं कि जैसे बने वैसे

मेरा नाम होना चाहिए। चाहे कंस के रूप में चले, चाहे रावण के रूप में चले, चाहे कमठ के रूप में चले। लेकिन मुमुक्षु ! ऐसे नाम की क्या आवश्कता है ? कमठ, कीचक, रावण जैसा नाम चलाना हो सो आपको यहाँ आने की आवश्यकता नहीं है और राम, महावीर जैसा नाम चलाना हो तो आपको कुछ करने की आवश्यकता है, मात्र जानने की आवश्यकता नहीं है।

हर व्यक्ति के दो रूप होते हैं हाथी के दाँतों की तरह। एक बहिरङ्ग रूप होता है, दूसरा अंतरङ्ग रूप होता है। जो दृष्टिगोचर होता है, वह बहिरङ्ग रूप होता है और जो दृष्टिगोचर नहीं है, वह अंतरङ्ग रूप है। आँखें बहिरङ्ग रूप को देखती हैं, आत्मा अंतरङ्ग रूप को देखती है। राम के बहिरङ्ग रूप को देखनेवाले बहुत सारे लोग हैं, राम के अंतरङ्ग रूप को देखनेवाले बहुत कम, अंगुलियों पर गिनने लायक, लोग हैं। परमात्मा के बहिरङ्ग रूप को जाननेवाले लोग अनन्तानन्त मिल जायेंगे, लेकिन अंतरङ्ग रूप को जाननेवाले बहुत कम लोग मिलेंगे। जगत् में आप पिता बन चुके हो, बेटा तुम्हारे अंतरङ्ग रूप को नहीं जानता, बेटा तुम्हारे बहिरङ्ग रूप को जानता है। मित्र ! तुम जितने ही अपने रूप में श्रेष्ठ या अश्रेष्ठ हो, पुत्र आपको श्रद्धा से प्रणाम करता है। जब बेटा तुमको प्रणाम निवेदित करे, उस समय आपको देखना चाहिए कि सिर किसे दे रहा है ? मदिरा की बाटल लेने वाले पिता को प्रणाम नहीं करता। किसी ढाबा में जाने वाले पिता को प्रणाम नहीं करता। वह अपने पिता को 'पूज्य' शब्द से सम्बोधित कर रहा है। जब वह 'पूज्य' शब्द से सम्बोधित करे, तो उसका मुख पकड़ लेना। मैं कितना पापी हूँ, मैं दुरात्मा हूँ, लेकिन जो शब्द परमपिता परमेश्वर परमात्मा के नाम के आगे लग चुका हो, वह शब्द मुझ पापी के आगे मत लगा। मैं पूज्य नहीं हूँ। मैं अपने आप में अपूज्य हूँ। यदि बेटे के द्वारा 'पूज्य' शब्द स्वीकार करना चाहते हो तो राम बाद में बनाना, पहले दशरथ बन कर दिखा देना। 'पूज्य' शब्द को बदनाम मत होने दो। जो बेटा राम-जैसा हो, महावीर-जैसा हो, ऋषभदेव-जैसा हो, ओहो! जिसका बेटा तीर्थंकर हो, जिसका बेटा नारायण हो, जिसका बेटा बलभद्र हो, जिसका बेटा कामदेव हो।

किसी का पुत्र पिता से कहता है 'प्रणाम', उस पिता को सोचना चाहिए, अहो! ये कौन-सी भक्ति/ तपस्या का फल है, मैं एक सामान्य पुरुष हूँ, उस सामान्य पुरुष के लिए तीर्थंकर कहता है 'हे पिता जी !' और एक बलभद्र/नारायण का जीव 'पूज्य

पिता' बोलता हो, तो सोचना। पिता कितना भी पापी होगा, उसको भी एक बार सोचना पड़ेगा। आगम क्या बोल रहा है—वन्दनीय न होने पर, वन्दनीय से अवन्दनीय अपनी वन्दना करा रहा है, तो बन्ध को प्राप्त हो रहा है। ध्यान दीजिए, वन्दनीय न होने पर अवन्दनीय हृदय वन्दनीय से वन्दना करा रहा है तो पाप के बन्ध को प्राप्त हो रहा है। जिस बेटे ने सिगरेट का चेहरा न देखा हो, बीड़ी को स्पर्श न किया हो, मांस-मदिरा को देखा न हो, ऐसे बेटे से तुम 'पूज्य पिता जी' कहलाते हो तो तुम पाप के बंध को प्राप्त होते हो।

वन्दना तभी स्वीकार करना जब तुम वन्दनीय हो जाओ। जब तक वन्दनीय न हो, तब तक वन्दना मत करा लेना। बहिरङ्ग जीवन और अंतरङ्ग जीवन की व्याख्या समझो। बहिरङ्ग जीवन में लोगों के बीच जो आप उपस्थित होते हो, वे माँ कौशल्या के राम नहीं हैं। जो सबके बीच में उपस्थित होते हैं, वे माँ कौशल्या के राम नहीं हैं, वे नाटक के राम हैं, रामलीला के राम। जो अन्तरङ्ग जीवन में जीते हैं, वे माँ कौशल्या के राम हैं। रामलीला के राम से तात्पर्य समझना। जब रामलीला में कोई पुरुष पाठ करता है तो लक्ष्मण को शक्ति लगने पर फूट-फूट कर रुदन करते हैं और ऐसे लगते हैं कि देखनेवाले के अश्रुपात हो जायें; लेकिन जब पर्दा गिर जाता है तो रावण के साथ बैठकर पान खाते मिलते हैं। वे पर्दे के राम होते हैं। जगत् के बहिरङ्ग राम हैं। जो हृदय से रोते हैं, अपने भाई के शरीर को छह माह तक लिये घूमते रहे हैं, वे कौशल्या के राम हैं। जो बाहर कुछ हैं और भीतर कुछ हैं, वे मात्र पर्दे के राम हैं, कौशल्या के राम नहीं हैं। जीवन में कुछ बनना चाहो तो पर्दे के राम बनने का प्रयास मत करना। बन सको तो माँ कौशल्या के राम बनने का प्रयास करना। किसी ने राम के धनुष को देखा, किसी ने राम के रूप को देखा, किसी ने राम के बाहुबल को देखा, लेकिन राम के अन्तरङ्ग मन को नहीं देख सके। चर्चा करो श्रीराम की जो वाशिष्ट्य युग में राम हैं, चर्चा करो उन राम की जो 'पद्मपुराण' में राम हैं।

राम के होने के पश्चात् कितने लोग और हो चुके होंगे, राम के होने के पूर्व कितने राम हो चुके होंगे और मध्यकाल में कितने लोग हो चुके होंगे। हर महापुरुष के नाम लेने के पूर्व श्रद्धा से नाम लेने वाले लोग बहुत मिल जायेंगे, परन्तु तर्क के नाम लेने वाले बहुत कम मिलेंगे। जो श्रद्धा से नाम ले रहे हैं, वे कभी नाम बन्द नहीं कर

सकते हैं। जो श्रद्धा से नाम ले रहे हैं, वे परमात्मा का नाम लेना बन्द कर सकते हैं। जो तर्क से नाम लेते हैं, वे कभी नाम बन्द नहीं कर सकते। गहरे में जाइये। जिस व्यक्ति ने आपको राम के बारे में कहा कि राम इतने अच्छे महापुरुष थे, उनकी भक्ति करने से सारे काम सफल हो जाते हैं, इस बात से युक्त होकरके जो राम का नाम ले रहा है, वह नियम से अपने जीवन में राम का नाम लेना बन्द कर देगा।

जैनदर्शन कहता है कि जो लोभ से या लाभ से परमात्मा के द्वार पर जाता है, वह भिखारी होता है और जो बिना लोभ के बिना लाभ के परमात्मा के द्वारे आये, वह भक्त होता है। जो लोभ से गया है, लाभ से गया है, वह भक्त नहीं है, वह स्वार्थी है। जिस दिन लोभ पूरा नहीं होगा, लाभ पूरा नहीं होगा, वह उस दिन भगवान् का द्वार छोड़ देगा। एक व्यक्ति भीख माँग रहा है और भीख माँगते-माँगते भगवान् का नाम ले रहा है, नाम लेते-लेते भीख माँगना बन्द नहीं हो पाया। कुछ दिन बाद वह कहता है कि देख लिया भगवान् को, ये सेठ के सेठ बने हुए हैं, मैं दिन भर नाम लेता हूँ, मैं भीख ही माँग रहा हूँ, भगवान् में कोई शक्ति नहीं है। 'गीता' में निष्काम भक्ति की व्याख्या की गई है, जिनागम में निःकांक्षित भक्ति की व्याख्या की गई है। भगवान् को छोड़ने वालों में सबसे अधिक संख्या उनकी है जो भाग्य को नहीं पहचानते और भगवान् से माँगते हैं। वे नियम से भगवान् को छोड़ देते हैं। जो भाग्य को पहचानते हैं, भगवान् से नहीं माँगते हैं, वे भगवान् को कभी नहीं छोड़ते। जो तुमको लाभ हुआ है, वह तुम्हारे पुण्यकर्म से हुआ है। तुलसीदास जी ने 'रामचरितमानस' में एक पंक्ति लिखी है—

कर्मप्रधान विश्व करि राखा, जो जस करहिं सो तस फल चाखा।

भारत के प्रत्येक नागरिक को इस पंक्ति का जीवन जीने की आवश्यकता है और सोच की आवश्यकता है। मैं पुनः पुनः कहूँगा कि भारत जैसा धर्मात्मा देश दूसरा कोई हो नहीं सकता। मैंने उज्जैन में एक बात देखी कि सर्वाधिक भिखारियों की संख्या यदि मिलेगी तो भारत में मिलेगी। कुछ पढ़े-लिखे लोग कह सकते हैं—जब भारत में इतना धर्म होता है, परमात्मा भारत में हुए हैं, महापुरुष भारत में हुये हैं, तो भिखारियों की संख्या अधिक क्यों हो गई ? ज्ञानी! आपको यही तो रहस्य मालूम नहीं है। परमात्मा भारत में हुए हैं, इसलिए भिखारियों की संख्या ज्यादा हो रही है, क्यों ? जगत् में विभिन्न देश इतने स्वार्थी हैं कि भूखे को भोजन नहीं करा सकते हैं। भारत इतना महान् है कि भिखारी भी द्वार पर आ जाये तो उसको भी भोजन

करा देते हैं, इसलिए भिखारियों की संख्या अधिक है। कोई भीख नहीं देता। एक हृष्ट-पुष्ट युवा भीख माँग रहा है, तब भी ज्ञानी कहता है कि दे तो दो। दूसरे देश वाले कहेंगे—भाई ! कुछ नहीं बनता, कम-से-कम पेपर ही बेच लेता, पेट भर लेता? लेकिन अपनी जेब के पैसे उसे नहीं देता। यहाँ की वह भूमि है जहाँ चने बेचने वाला भी अतिथि आ जाये तो उसे भोजन करा देता है। कहीं-न-कहीं मिट्टी में प्रभाव तो है। हर जगह आस्था हो, ये संभव नहीं है। यदि आप चाहो कि ऐसी भावना अन्य देशों में हो जाये, इसलिए नहीं हो सकती है। केशर की खेती मिट्टी में होती है, कि आकाश में होती है ? मिट्टी में होती है तो झाँसी में क्यों नहीं होती है? एक मिट्टी का प्रभाव देखो। केशर के उगने की योग्यता जिस मिट्टी में है, वह मिट्टी झाँसी में नहीं है, वह मिट्टी काश्मीर में ही है। उसके लिए वातावरण चाहिए। भोजन कैसे करना पड़ता है, पेट कैसे भरना पड़ता है, जन्म कैसे लेना पड़ता है और जन्म कैसे देना पड़ता है, यह सारे विश्व के लोग जानते हैं; लेकिन जन्म-मरण से रहित कैसे होना पड़ता है, यह भारत ही जानता है। जन्म लेने वाले तो बहुत सारे लोग हैं, जन्म देने वाले भी बहुत सारे लोग हैं, लेकिन जन्म-मरण से रहित होने के लिए मात्र एक देश है। केशर की खेती सारे जगत् में नहीं होती।

चाहे जैन हो, चाहे बौद्ध हो, चाहे हिन्दू हो, किसी भी दर्शन में चले जाना, राम को बड़े सम्मान के साथ देखा जाता है। इससे ध्वनित होता है कि ब्रह्माण्ड में व्यक्ति की पूजा नहीं है। यदि पूजा है तो गुणों की पूजा है। '**वन्दे तद्गुण लब्धये।**' मिश्री चाहे झाँसी में बने या ग्वालियर में बने, उसे सभी लोग पसन्द करेंगे। **जो मिश्री-जैसा व्यक्तित्व होगा, जिसके अन्दर गुण होंगे, वह सारे विश्व में पूज्य होगा।** जिसके अन्दर गुण नहीं है और पूजा चाहता है, वह ऐसा पिटेगा जैसे नोट के अन्दर चांदी का तार होता है और गवर्नर जनरल के हस्ताक्षर होते हैं। यदि तुम नकली नोट लेकरके बाजार में जाओगे तो सामग्री तो नहीं मिलेगी, परन्तु पकड़े और जाओगे। जैसे बिना तार का नोट पकड़ा जाता है, ऐसे-ही जो बिना गुणों के महापुरुष बनना चाहता है, वह लोक में पिटता है और पकड़ा जाता है। जिसके अन्दर गुण होते हैं, वह जीवन की मुद्रा है।

'**सत्येन शुद्धयते वाणी**' वाणी की शुद्धि सत्य से होती है। वाणी की शुद्धि पान खाने से नहीं होती, वाणी की शुद्धि तम्बाकू चबाने से नहीं होती, वाणी की शुद्धि गुटका खाकरके केंसर करवाने से नहीं होती है। वाणी की शुद्धि यदि होती है तो

'सत्येन शुद्धयते वाणी'। यदि जीवन में सत्य होगा तो उसकी वाणी शुद्ध हो जायेगी। वाणी शुद्ध ही नहीं होगी, वाणी सिद्ध हो जायेगी। **वाणी सिद्ध करना हो तो सत्य बोलना प्रारम्भ कर दो।** आज के युग में सत्य बोलना बहुत कठिन है।

मेरे मित्र ! जब से मोबाइल की डिबिया तुम्हारे हाथ में आयी है, तब से तुम्हारा असत्य चौगुना बढ़ चुका है। झाँसी में अपने कमरे में होता है और किसी ने पूछा भैया! कहाँ पर हो ? मैं ग्वालियर में हूँ। कभी-कभी तो ऐसा भी होता है कि छत पर घूमते दिखता है और कहता है ग्वालियर में हूँ। वह कहता है मित्र! नीचे उतर आओ, मैंने देख लिया है कि तुम छत पर हो।

यदि राम की उपासना करना चाहते हो और राम की अन्तर्जीवनी देखना चाहते हो, तो आज सुनो उन राम की व्याख्या को। 'सत्येन शुद्धयते वाणी।' राम ने लंकेश पर विजय प्राप्त की है, इस बात का मंचन मंच पर आकर अनेक बार किया। नारायण लक्ष्मण ने लंकेश पर विजय प्राप्त की है, उस बात को हमने बार-बार सुना है। परन्तु इस बात को क्यों नहीं कहते हो कि राम ने जो लंकेश पर विजय प्राप्त की है वह बहिरङ्ग राम ने प्राप्त की है और राम ने जो मान पर विजय प्राप्त की है, यह अंतरङ्ग राम ने विजय प्राप्त की है? आज अपने पिता के ज्येष्ठ पुत्र से कहा जाय कि बेटा! तुम्हे जंगल जाना है और राज्य छोटे पुत्र को मिलेगा, तो बोलो, तुम क्या करोगे ? यदि तुम्हारे भीतर किंचित् भी राम विराजमान हो, किञ्चित् भी तुम्हारे अन्दर भगवान् महावीर की आस्था हो, तो सँभलकर सुनना। सगे चार भाई और उनमें आप ज्येष्ठ। यदि ज्येष्ठ पुत्र को जंगल दिया जा रहा हो और लघुपुत्र को राज्य दिया जा रहा हो, तो तुम क्या करोगे ? पिता जी को वकील के घर में ले जाओगे या पिता जी के चरणों में आओगे ? हृदय को टटोल कर देख लें। मैं जानता था कि ये सब मेरे मुख से क्या सुनना चाहते हैं कि राम ने रावण को पराजित कर दिया, जबकि राम ने रावण को पराजित नहीं किया, राम ने सबसे पहले मान को पराजित किया है। मान को पराजित करने से राम पूरे विश्व में छा गये। महाराज ! चार हिस्से बराबर होना चाहिए। नहीं होते हैं तो कहीं मामा के घर में होता है, कहीं बुआ के घर में होता है, रिश्तों में खोजता है, पंचांग निकालता है कि मेरा हिस्सा कहाँ गया ? परन्तु जिसने समझ लिया था कि भूमि छीनी जा सकती है, पत्नी छीनी जा सकती है, परन्तु किसी का भाग्य नहीं छीना जा सकता है।

राम वन गये, सो वे राम बन गये। राम वन को न जाते, तो राम बननेवाले नहीं थे। राम बनना है क्या? कठिन है। अपने राज्य को न-देखनेवाला तो बहुत कठिन है। पड़ौसी का घर मिल रहा हो सो भी छोड़ने वाले नहीं हो, कह रहे हो राम बन जायें। चार लोग हैं–

मेरा सो मेरा, तेरा सो मेरा।
मेरा सो मेरा, तेरा सो तेरा।
मेरा सो तेरा, तेरा सो तेरा।
न मेरा न तेरा, ये झूठा झमेला।

ज्ञानियो ! सर्वाधिक संख्या किसकी है ?

मेरा सो मेरा, तेरा भी मेरा–जिन-जिन की ऐसी आस्था चल रही हो, मेरे से मिलने मत आना, स्वयं सोच लेना। हे कुरुवंशियो ! धन्य हो। मेरा सो मेरा, तेरा भी मेरा। कौरव क्या कहते थे? मेरा राज्य तो मेरा है ही, तुम पाण्डवों का भी मेरा है। आज के युग में सर्वाधिक संख्या कुरुवंशियों की है, पाण्डवों की नहीं है। पाण्डव कहते थे कि तेरा सो तेरा, मेरा सो मेरा। परन्तु राम-जैसे लोग कम मिलेंगे 'भरत ! तेरा सो तेरा, मेरा भी तेरा।' आज आप अपने भैया से जाकर बोल दोगे क्या?

इतनी बात ध्यान रखना, आज यहाँ रामनवमी मनाई जा रही है तो विश्व में ऐतिहासिक रामनवमी जानी जाये कि एक भैया जाकर दूसरे भैया से कह रहा हो, चाहे छोटा हो चाहे बड़ा हो, परन्तु भैया से जाकर इतना बोलना कि हे मेरे अनुज! हे मेरे अग्रज ! ये सम्पत्ति तो मैं आगे कमा सकता हूँ और भाग्य होगा तो विभूति मिल जायेगी, सन्तान भी नष्ट हो गई होगी तो मैं सन्तान को जन्म दे सकता हूँ, परन्तु मेरे भैया ! तुम भैया को जन्म नहीं दे सकते हो। घर में कितना भी झगड़ा हो जाय, लेकिन भैया से बोलना बन्द मत करना। भैया से कहना – भैया ! तुम जितना लेना चाहो, ले जाओ, लेकिन 'भैया' कहना बन्द मत कर देना। यदि भैया का भैयापन देखना है तो श्री राम से मिलो। लक्ष्मण के शरीर को लिये छः महीने घूमते रहे। विश्व में भाई प्रेम यदि कहीं है तो नारायण और बलभद्र का है।

पिता जी ने कहा बेटा! भरत को राज्य देना है। उस समय देखना क्या अवस्था होगी। माताओ ! ध्यान दो, मंथरा बनना है क्या ? ज्ञानी ! नारद बनना है क्या? माताओं में मंथरा और पुरुषों में नारद जी, ये दो तनक शान्ति से बैठ जायें तो सारे

घरों में शान्ति हो जाये। कभी कोई एक होना भी चाहे तो नारद जी वीणा लेकर तेरे घर पहुँच जाते हैं। भज अरहन्तम् भज् अरहन्तम्। मातायें शान्त होना चाहें तो कैकई के पास मंथरा पहुँच जाती है—अरे! ऐसा हो गया।

भैया! मेरा प्रश्न है, घी से अंगुली जलती है क्या ? नहीं जलती। परन्तु घी से अंगुली जलते नहीं देखी गई क्या ? देखी गई। घी से अंगुली जलती है तो घी के टीन को फेंक दोगे क्या ? सत्य बताना, अंगुली घी ने जलाई है, कि अग्नि के संयोग ने जलाई है ? सगा भाई तुमको गाली दे, तो अपने माता के रज और पिता के वीर्य पर विश्वास रखना, यूँ कहना कि हम एक कोख से जन्मे हैं, भाई गाली दे नहीं सकता है। जैसे घी कभी जला नहीं सकता है, वैसे-ही भाई गाली दे नहीं सकता है। यदि अंगुली जली है, तो अग्नि के संयोग से यदि गाली दी गई है, तो किसी दूसरे के सहयोग से। इसलिए कभी भैया को भैया कहना बन्द मत कर देना। घी से अंगुली नहीं जलती यदि अग्नि पर घी न रखा जाये। भैया गाली दे नहीं सकता है यदि धन का राग न हो और मान का राग न हो। यदि तुम भैया-भैया अच्छे से रहना चाहते हो तो राम से सीख लेना। राज्य का, सीट का, कुर्सी का लोभ छोड़ दोगे तो कभी भैया दुश्मन नहीं हो सकता है। यदि तुमको सीट दिखेगी तो भैया से मित्र बनकर रह नहीं सकता।

जितने लोग यहाँ बैठे हैं, यदि एक दो दिन में, छः महीने में, साल भर में कहीं सगे भाई से भी तू-तू मैं-मैं हो गई हो तो आज रामनवमी के दिन क्षमा माँग लेना, कहना, भैया! क्या मालूम मेरा हंस पहले उड़ेगा, कि तेरा हंस पहले उड़ेगा। उड़ने के पहले हम कषाय को उड़ा दें, हम गले से गले मिल लें, तो भरत-राम मिलाप हो जाये।

भैया से कह देना, भैया ! मैं जंगल जाना पसन्द करता हूँ, लेकिन मैं आपको भैया कहना नहीं छोड़ सकता। विश्वास रखना, आज हम यहाँ हैं, कल हम कहीं होंगे। आज तुम्हें भैया शत्रुवत् दिख रहा है। न भैया होगा न आप होंगे, इतिहास लिखा रह जायेगा। जब राम जंगल की ओर चले गये, तो भरत को ज्ञात हुआ। कहाँ गयी तिथियाँ, कहाँ गये मुहूर्त ? वशिष्ट जैसा मुहूर्त निकालने वाला विद्वान् हो, माँ कौशल्या चौक पूर रही हो, दशरथ अपना मुकुट उतार कर रखने वाले हों, अवधपुरी

में मंगलाचरण चल रहा हो कि आज श्री राम का राजतिलक होगा, लेकिन मित्र ! जब तक विधि को नहीं भाता, तब तक तुम कुछ कर नहीं सकते हो। ज्योतिषी के मुहूर्त रखे रह गये। होना था राजतिलक, लेकिन जंगल की ओर चले गये। सबके दिन एक-से नहीं होते। जब कर्म ने, विधि ने, भाग्य ने, दैव ने राम-जैसे महापुरुष को नहीं छोड़ा, तुम कौन-से खेत की मूली हो जो तुम हल्ला करते हो कि मेरे साथ ऐसा हो गया? राम ने कभी नहीं कहा कि मेरे साथ ऐसा हो गया। यदि पुरुषों के लिए राम दिग्दर्शन करा रहे हैं तो नारियों को सीता भी दिग्दर्शन करा रही है। मैं विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि यदि कलयुग में राम होते तो जरूर जेल में होते। यदि कलयुग में राम होते तो ये वकील वकालत करके राम को जेल भिजवा देते। किसकी कृपा से ? कलयुग की सीताओं की कृपा से। आज जरा-सा तुम कुछ भी करके देखो, तुरन्त सूचना पहुँच जायेगी और वर्दी पहनने वाले द्वार पर खड़े दिख जायेंगे आपको। परन्तु देखो, जब राम ने सीता से कहा - कि आप रावण के यहाँ होकर आयी हो, लोकापवाद हो रहा है। जंगल में भिजवा दिया, तब भी सीता ने यह नहीं कहा। सेनापति ने पूछा कि हे जानकी ! आपको श्री राम से कुछ कहना है क्या?

सीता कहती है – सेनापति ! श्री राम से कह देना, मेरे वियोग में तुम बिलखना मत। आपने जैसे लोकापवाद में आकर मुझे छोड़ दिया है, ऐसे वीतराग धर्म को मत छोड़ देना। मेरा तो कर्म का उदय है। कर्म का उदय कह करके एक गर्भवती नारी जंगल में चली गयी। आज कोई होता तो कहता कि ऐसा नहीं होता है, आज कौन-सा कष्ट है, कौन-सी वेदना है? ये रेल की पटरियाँ, ये कुयें, ये जहर की पुड़ियों पर आँख क्यों जा रही है? यदि रामनवमी के दिन कोई प्रतिज्ञा कर सकते हो तो इतना नियम ले लो कि जीवन में कितने ही संकट आ जायें, लेकिन आत्महत्या का विचार भी मन में नहीं लायेंगे। यह है रामनवमी का फल। कितने ही कष्ट आ जायें, चाहे व्यापार में तुम फेल हो जाओ, चाहे जिस क्षेत्र में फेल हो जाओ, चाहे घर में जितने संकट आ जायें, लेकिन मरण किसी शंका का समाधान नहीं है, कर्म के नियोग का टालना नहीं है। **जो अपने आपसे हार चुके होते हैं, वे ही आत्महत्या करते हैं।** जो वीर पुरुष होते हैं, वे राम की भाँति जंगल में चले जाते हैं और जब जीत कर आते हैं तो अवधपुरी में प्रवेश करके पगड़ी बँधवाते हैं।

ज्ञानियो ! राम के अन्तिम जीवन से मिल लेना। मैं नहीं चाहता कि तुम मात्र मूर्ति पर फूल चढ़ाते रहो। यदि राम आज होते तो स्पष्ट कहते—मेरे मित्रो ! मेरे ऊपर सुमन मत चढ़ाओ, तुम सुमन बन जाओ तो मुझ पर सुमन चढ़ाने की आवश्यकता नहीं है। सुमन मन न होते तो सुमन तोड़ते। तुम सुमन नहीं हो, इसलिए सुमन चढ़ा रहे हो। सुमन चढ़ा लो तो सुमन (फूल) की आवश्यकता ही नहीं है।

तुम सुमन बन जाओ तो सारा विश्व राम बन जाये। वृक्षों से फूल तो चुनकर चढ़ा दिए, लेकिन सुमन चढ़ाते तो लगता हाँ तुमने कुछ किया है। हाथ से तोड़े और यूँ छोड़ दिए, ये तुमने क्या किया? ये तो पर वस्तु है। अपने विकारों को छोड़ो। विकार तुम्हारे भीतर की वस्तु है। यदि वह छूट जाता है तो जैसे पत्थर से भगवान् निकाल लेते हो। जैन दर्शन में मिट्टी से मूर्ति बनाकर पूजते नहीं हैं। बड़ा रहस्य है। धन्य है उन तोमरवंशीय राजा-महाराजाओं को, जिन्होंने कई वर्षों तक गोपाचल पर्वत में तीर्थंकर अरहन्तों की प्रतिमाओं को बनवाने में समय निकाल दिया हो। वे पाषाण से प्रतिमायें निकाली गई थीं। जो व्यर्थ का पत्थर था उसको हटा दिया है, उसके भीतर से भगवान् को निकाल लिया है। ऐसे-ही जगत् में किसी तीर्थ में भटकने की आवश्यकता नहीं है। व्यर्थ के खोटे दुर्गुणों से मेरा भगवान् छुपा हुआ है, इसलिए सद्गुणों से मेरे भगवान् को निकाल लो। भगवान् कहीं से बन कर नहीं आये, राम निकल कर आये हैं। जो दुर्गुण थे, उनको भगा दिया और भीतर का राम निकाल लिया।

जटायु की अवस्था का बोध है आपको ? जब सीता का अपहरण हुआ तो जटायु की रावण ने क्या दुर्दशा की? जब जटायु पक्षी को बिलखते राम ने देखा तो उस समय राम ने क्या किया ? तू होता तो कहता कि छू लूँगा तो स्नान करना पड़ेगा। ओहो.....क्या छुआछूत की दृष्टि लिये बैठे हो। ये माँसाहारी पक्षी है, ये छू लूँगा तो स्नान करना पड़ेगा इसलिए मैं नहीं छू सकता हूँ। आप मंदिर जा रहे थे और हाथ में कलश लिए थे। जल लेकर मंदिर की ओर जा रहे थे, रास्ते में एक नाली में सुअर तड़फता हुआ मिल गया, तो क्या करना चाहिए? पहले मंदिर जाना चाहिये, कि सुअर को उठाना चाहिए? जो मंदिर में प्रतिमायें बैठी हुई हैं, जब आप यह कहते हो कि पत्थर-पत्थर में, प्राणी-प्राणी में ईश्वर-अंश है, तो पत्थर के ईश्वर को बाद में पूजना, तड़प रहे ईश्वर को पहले उठा लेना।

मेरे मित्र ! जो मंदिर में प्रतिमा विराजमान है, वो बन चुके भगवान् की प्रतिमा पत्थर की है। जो यहाँ बैठे हुए हैं, वे बननेवाले भगवान् हैं। इनका अनादर मत करना, इनकी रक्षा करना।

जैसे-ही श्री राम ने जटायु को देखा, देखते ही सीता को तो भूल गये, उस जटायु को उठाकर गोद में रख लिया। उससे पृच्छना करते हैं, महामंत्र सुनाते हैं। आप होते तो सोचते कि उसे उठाऊँगा तो मेरा कुर्ता खराब हो जायेगा। इन वस्त्रों के राग में तू उस जीव के ऊपर करुणा नहीं कर पा रहा है। धन्य हो उन राम के लिये, जो बिलखते जटायु को गोद में बिठाये थे। तुम कैसे राम के भक्त हो, कि अपने घर की गायों को कसाई के हाथ में सौंप रहे हो? जिससे दूध पी लिया हो, अब कोई काम की नहीं बची, इसलिये हमने उनको वहाँ भेज दिया। कहीं ऐसा न हो जाये कि, जब तुम कुछ करने लायक नहीं बचो, तो वह तुम्हारा बेटा भी वहाँ भेजने लग जाय। परम्परा तो शुरू हो ही गई, वृद्धाश्रम खुल रहे हैं। ये प्रमाणपत्र है कि जो वृद्धाश्रम में रह रहे हैं उनके घर में संतानें थी ही नहीं, उनके घर में सन्तानों ने जन्म लिया ही नहीं था। सन्तान वह होती है जो सनातन धर्म को आगे ले जाती है, जो माता-पिता की सेवा करती है। तुम्हारे घर में सन्तानें नहीं थीं, तुम्हारे घर में लड़के थे। लड़के, जिनने लड़-लड़कर माता-पिता को बाहर भगा दिया। बताओ घर में सन्तानें कितनी हैं और लड़के कितने हैं? जिन-जिन के बेटे लड़ते हों, वे सब लड़के हैं। सन्तान तो वह होती है जो संत/ साधुपुरुष के समान अपने माता-पिता की सेवा करती है।

हे वर्द्धमान, राम के भक्तो ! गोशालाओं में भूखी गाय तड़प तड़प कर मर रही हैं। सबके दिन एक-से नहीं होते हैं। कम-से-कम तुम्हारे आस-पास में जहाँ-जहाँ गौशालायें हैं, वहाँ एक बार देख कर तो आओ। समाचार मिले हैं कि दस-बारह गायें मात्र भूख के कारण मर गई हैं। हमारे किसान भाई इतने सुकुमाल हो गए। पहले भूसा निकाल लेते थे, अब तो उनके पास भी समय नहीं है, पूरा भूसा खेतों में पड़ा रहता है, क्यों ? स्टेण्डर्ड बढ़ गया है। कुछ नहीं, स्वार्थ बढ़ गया है। स्टेण्डर्ड कुछ नहीं बढ़ा। यदि पूरा धान्य निकालना ही था तो पूरा निकाल लेते, इन बेचारी गायों को खाने तो मिलता।

वैद्य ने जहर का शोधन करके औषधि बना दी। जब तू जहर को औषधि बना सकता है, तो निज की परिणति का शोधन करके निज को भगवान्-आत्मा क्यों नहीं

बना लेता? **जिनकी शरीर पर दृष्टि है, वे वास्तव में बाह्य द्रव्य का ही शोधन कर पा रहे हैं। जिसकी आत्मदृष्टि है, वह पर शोधन की जगह आत्मशोधन में समय लगा रहा है।** आचार्य कुलभद्र स्वामी कह रहे हैं कि आत्मविशुद्धि की आवश्यकता है, परन्तु वह विशुद्धि होगी कैसे ? अन्तस् में बैठकर समझने की आवश्यकता है। सत्य ही बोला, लेकिन सत्य ही नहीं बोल सका। **जिस सत्य से किसी के प्राणों का वियोग हो जाय, वह सत्य 'सत्य' नहीं है। जिस सत्य से सगे भाइयों में विसंवाद हो जाय, वह सत्य 'सत्य' नहीं है। जिस सत्य से किसी का अपयश फैल जाय, वह सत्य 'सत्य' नहीं है।** धर्म की व्याख्याओं को लोगों ने अपने मन्तव्य के अनुसार करना प्रारम्भ कर दिया और यूँ कहना प्रारम्भ कर दिया कि सत्य ही तो बोल रहा हूँ। आपको मालूम होना चाहिए कि सत्य धर्म बाद में है, अहिंसा पहले है। तत्त्व की जितनी व्याख्याएँ हैं, सब अहिंसा के लिए है और आपके सत्य बोलने से किसी के प्राणों का वध हो रहा है तो तुम्हारा सत्य 'सत्य' नहीं है, असत्य ही है।

श्रावक स्थूल झूठ नहीं बोलता और ऐसा सत्य भी नहीं बोलता कि तुम्हारे सत्य बोलने से कोई दूसरा विपत्ति में पड़ जाये। 'महाराज ! झूठ कैसे बोल सकता हूँ ?' आपने शब्द मात्र को ही जाना है, धर्म को नहीं जाना । **आपके झूठ बोलने से यदि किसी के प्राणों की रक्षा हो रही है तो तुम्हारा झूठ 'झूठ' नहीं है।** आपके असत्य बोलने से कसाई गायों की ओर दौड़ रहा है और गायें जिस गली से निकल चुकी हैं, आप श्रावक हो, उत्तर दिशा की ओर गायें गयी हैं और आप दक्षिण बोल दोगे तो भी आपको झूठ का दोष नहीं लगेगा। तुमने झूठ बोलने के लिए झूठ नहीं बोला है, किसी की रक्षा के लिए झूठ बोला है। कितनी बार आपके सत्य बोलने से असत्य काम हो रहा है। जीवन जीने के लिए प्रतिदिन आप असत्य बोलते हो। 'मैं सत्य बोल रहा हूँ, इस व्यक्ति ने चोरी की है' और सम्राट् ने उसे फाँसी पर चढ़वा दिया तो तेरा सत्य बोलना एक जीव के प्राणों का घातक हो गया। माना कि कोई आपको गाली दे रहा था और आपने सुना ही नहीं था, किसी-और ने सुना था, यदि वह धर्मात्मा है तो आपसे कहने नहीं आयेगा कि उसने आपको गाली दी, क्योंकि जिसने गाली दी है उस समय वह आक्रोश में था, गाली देने के बाद गाली देने वाला स्वयं पश्चाताप में डूबा था, ऐसा भी होता है। भावुकता में किसी ने गाली दे भी दी, जिसको दी थी उसने तो सुना ही नहीं था, आपने कुछ-और मिलाकरके कह दिया कि वह आपके लिए ऐसा कह रहे थे।

मेरे मित्र! जहर की पुड़िया खिला देना उतना घातक नहीं है, क्योंकि जहर मुख में दिया जाता है, लेकिन अन्तःकरण की विशुद्धि का नाश करने वाला जहर कान में दिया जाता है। एक व्यक्ति को मारने के लिए मुख में जहर दिया जाता है और कोटि-कोटि जीवों की हत्या करने के लिए कान में जहर दिया जाता है। 'अन्धों के अन्धे ही होते हैं' ये मुख में जहर नहीं दिया था। कितनी सारी मातायें चींटी की भी रक्षा करती हैं और पर्यूषण, रोहणी आदि के व्रत भी कर लेती हैं, लेकिन 'दीदी! उन दीदी ने ऐसी कही थी।' कोई व्रत नहीं बचा, तुमने भूखे रहना मात्र को व्रत मान रखा है। क्या करूँ? जैसे भूखे रह लेते हो, वैसे-ही विषय-कषाय से भूखे रहना सीखो, इसका नाम धर्म है। 'मैं तो सत्य बोलता हूँ।' ज्ञानी! अभी सत्य को समझा नहीं है। 'मेरा सत्य बोलने का नियम है, महाराज! झूठ कैसे बोल सकता हूँ?' **रूढ़ि के धर्मात्माओं ने धर्म का नाश जितना किया है, उतना किसी पापी ने नहीं किया।** पापी तो दुनियाँ की समझ में आता है तो कोई उसपर विश्वास नहीं करता, लेकिन रूढ़ि के धर्मात्मा पर लोग विश्वास करते हैं, लेकिन वह धर्म सम्यक् नहीं होता। 'मेरा नियम है, मैं झूठ नहीं बोलता हूँ, इसलिए मैं बिल्कुल सही बोल रहा हूँ कि उसने गाली दी थी।' हे सत्यवादी! सर्वज्ञ देव ने सत्य की जो परिभाषा दी उसे तू समझ ही नहीं पाया। **जिससे अरति बढ़े, भय बढ़े, अप्रीति बढ़े, चुगली हो, पैशून्यता हो, सावद्य वचन हो, ये सत्य होने पर भी असत्य ही है।**

भाई ने भाई को भी गाली दी हो तो-भी आपका कर्त्तव्य बनता है कि उससे कहो—ज्ञानी! आप-जैसा भैया सारी दुनियाँ को मिले। **वह बहुत श्रेष्ठ है जो खण्डित कार्य को संगठित कर ले। वे हृदय अच्छे नहीं हैं जो जुड़े हृदयों को भी तोड़ देते हैं।** कितने सारे लोग धर्म से दूर हो गये तुम्हारे अज्ञानमयी सत्य के कारण। छोटे भैया से कहना—भैया! तुम्हारे बड़े भैया तो पिता समान हैं, जितना अपने बेटे का ख्याल नहीं रखते उतना भाई का रखते हैं। और बड़े भैया से कहना कि आपके-जैसा छोटा भैया सबको मिले, वह आपको पिता-जैसा मानता है। दोनों भाई शाम को कुछ-और सोच रहे थे, सुबह सोच बदल जायेगा। ध्यान रखना, विश्वास रखना, **भावों को बदलने की सुन्दर व्यवस्था भाषा है। भाषण सुनते ही व्यक्ति के भाव बदल जाते हैं, मुस्कराता व्यक्ति अश्रुपात करने लगता है और अश्रुपात करने वाला व्यक्ति मुस्कराने लगता है।** यह भाषा की गरिमा है। यदि भाषा की गरिमा न होती तो भगवान् की दिव्यदेशना किधर खिरती? सबकुछ छोड़ने के बाद, परम वीतरागी कैवल्य को प्राप्त

करने के उपरान्त भी भगवान् को बोलना पड़ता है। तीर्थंकर बोलेंगे नहीं तो भव्यों का कल्याण नहीं हो सकता, किन्तु भव्यों के कल्याण की दृष्टि से भगवान् की दिव्यदेशना सहज खिरती है। किसी को सँभाल पाओ या मत सँभालो, मधुर रसगुल्ले खिलाने की ताकत न हो तो मत खिलाना, लेकिन मधुर भाषा बोलना तो सीख लेना। पर ऐसी मधुर भाषा मत बोलना जो सपेरे की बीन बन जाये, जो मधुर बीन को बजा करके साँप को पकड़कर पोटली में बन्द कर देता है। ये मायाचारियों की मधुरता है कि बोलेंगे मीठा-मीठा और आपको माया की टोकरी में बन्द कर लेते हैं। कितना मीठा बोला कि तुम मीठे की मिठास में घुल गए और अपनी स्वतन्त्रता ही खो गए।

जीवन जीते हुए मर जाना, ये कोई बहुत बड़ी बात नहीं है। **मुमुक्षु! सुन्दर जीवन जीना ही विज्ञान है। पशु-पक्षियों जैसे जीवन जी कर मर जाना बहुत बड़ी बात नहीं है, स्वयं का जीवन जीना ही विज्ञान है। सबके बीच रहकर सबसे दूर रहना और सबसे दूर होकर सबके साथ रहना, ये जीवन का विज्ञान है।** रोटी अग्नि में सिकती कि नहीं? रोटी अग्नि में फूलती कि नहीं? रोटी अग्नि में रहती है क्या? रोटी तबे पर ही सिकती है, पर अग्नि में पहुँचने पर भी अग्नि में रहती नहीं है, अग्नि में रहते हुए भी अग्नि में स्थिर नहीं होती, घूमती रहती है। घूमेगी नहीं तो जल जायेगी। सबके बीच में रहना, पर सबके साथ चिपक कर मत रहना। चिपक कर रहोगे तो रोटी-जैसे जल जाओगे। रोटी घूमती रहती है तो रोटी जलती नहीं है और चिपक कर रह जाये तो राख हो जाये। घूमती हुई रोटी को उठा लिया, देखो फुल्का। फुल्का भी तभी फूलता है जब घूमता है, ऐसे-ही जीवन को फुल्के-जैसा फुला कर रखना है तो सारे जगत् के अंगारों के पीछे घूमते रहना, पर रुकना मत। रुके, कि आप झुलसे।

परिचितों के बीच भी अपरिचित होकर जीवन जीना सीखो और रहस्यमयी जीवन जीना सीखो। देखो मैं कुछ छिपा नहीं रहा हूँ, सारी विद्या तुमको बता रहा हूँ। जो रहस्यमयी जीवन जीना सीख लेगा, उसको जगत् में कोई पहचान नहीं पायेगा, लेकिन वह जगत् को पहचान लेगा। माँ! बहू की कीमत कब तक ? बहू का चेहरा कब तक देखने जाती हैं मातायें ? जब तक घूँघट पड़ा है, लाज है, तब तक दुनियाँ पैसे देकर देखने जाती है। जैसे वह कोई परमात्मा हो। लेकिन माताओ! तनिक-सी

बात मेरी भी मान लो, आप पैसा खर्च करना बन्द कर दो, थोड़ा रुको, थोड़े दिन बाद दुगना देना, कब ? चार-छह महीने निकल जायें, एक-आत साल निकल जाये, तब भी मगरे (छत) पर द्वार पर सासों से लड़ते न मिले, तो जरूर चेहरा देखकर आना। अभी तुम पैसे बर्बाद कर रहे हो, चार-छह दिन बाद लड़ते मिल जायेगी, सो देख लेना कि कैसी बहू है। क्यों व्यर्थ में पैसे बर्बाद कर रहे हो? बहू की कीमत कब तक? जब तक घूंघट है, रहस्य है। जब तक पर्दा है, तब तक दुनियाँ देखना चाहती है। पर्दा गया, देखना बन्द हो गया। 'सत्येन शुद्ध्यते वाणी' जीवन में निर्वस्त्र होकर भी, बिना पर्दे के भी, महान् कोई पर्दा है तो 'सबको देखो मत, सबसे बोलो मत'। जीवन का महान् पर्दा यही है। रहस्यमयी जीवन जीना सीखो। यदि छात्र गलती कर रहा है, श्रेष्ठ गुरु है, तो जिस समय छात्र गलती कर रहा है उस समय उसके पास खड़े होने मत जाना। यदि सच्चा पिता है, बेटा सिगरेट पी रहा है, तो पिता बेटे के सामने खड़े होने नहीं जायेगा। छुपकर पी रहा है यानि तुम्हारी मर्यादा को रखे हुये है। तुम स्वयं जाकर खड़े हो गये—बेटा! क्या कर रहे हो ? वह कहेगा कि जब तुमने देख ही लिया है, तो देखो मैं सिगरेट पी रहा हूँ। यदि उसको समझाना चाहते हो तो आप स्वयं जाकर मत सिखाइये, उसके मित्रों से या वह जिसकी बात मानता हो उससे इन-डायरेक्ट (परोक्ष में) बोलिये। आप सामने मत जाइये यदि मर्यादा रखना चाहते हो तो।

वह अगली पर्याय में समझेगा। पिता पुत्र में, बहू बेटी में, माँ बेटी में जितने सम्बन्ध हैं, इनमें गूढ़ता नहीं है, रहस्य नहीं है, मात्र पशुवृत्ति है। पशुओं की संज्ञायें होती हैं, वे नहीं देखते हैं कि ये मेरी माँ का जीव है, मेरे पिता का जीव है, कौन है। सबके साथ एक-जैसे प्रवृत्ति होती है। जिस व्यक्ति के सारे रिश्तों के सम्बन्ध ा विलीन हो चुके हैं, सारी संज्ञायें एकसाथ दिखाई दे रही हैं, सब पशुवृत्ति प्रारम्भ हो चुकी है। समझ गये मैं क्या बोल रहा हूँ ? गूढ़ होना सीखो, नहीं-तो आपका कोई सम्मान बचनेवाला नहीं है।

ये जिनालय है, तुम बाजार में नहीं बैठे हो।

यथार्थ मानना, बाजार की भाषा भिन्न होती है। गूढ़ विद्याओं को समझ लो, मुझे विश्वास है कि किसी-न-किसी भव में ये विषय आपके हित का कारण बनेगा, भले ही आज समझ में नहीं आये। यदि जीव नरक में भी नारकी बन कर पहुँच गया,

वहाँ पर भी इसे जातिस्मरण हो गया, तो यही आज का प्रवचन आपके मस्तिष्क में घूमेगा—हाय! श्री जिनालय में सद्गुरु के मुख से कुछ सुना था, परन्तु उस समय समझ नहीं सका, आज समझ में आ रहा है। मित्र! अगली पर्याय तो बहुत दूर है, आपको घर में ही समझ में आ जायेगा।

कम बोलो, कम मिलो, कम खाओ, इसके बाद और-कुछ भी है। गम खाओ। कितनी ही भूख लगे, लेकिन कम खाओ, तो धर्म की भी रक्षा होगी, प्राणों की भी रक्षा होगी और प्रण की भी रक्षा होगी। **जैन कुल में जन्म लेने के बाद भी गम खाना नहीं सीखा, तो कुछ भी नहीं सीखा। तुम जितने धनाड्य भी हुये हो, उसकी मात्र एक ही विद्या तुम्हारे पास है, गम खाना।** क्रोधी व्यक्ति व्यापार नहीं कर सकता। अधीर (शीघ्र उत्तेजित होने वाला पुरुष) पैसा नहीं कमा सकता।

ज्ञानियो ! जब अधीर पुरुष श्री से विहीन हो जाता है, तो अधीर पुरुष श्री जी को कैसे प्राप्त कर सकता है?

पर के आधार को लेकर, पर से पराधीन होकर जो जीवन जीने का निर्णय ले लेते हैं, वे कभी सफलता को प्राप्त होते ही नहीं हैं। स्वयं के विश्वास पर जीवन जीना और स्वयं पर विश्वास करना। दूसरे के साथ विश्वासघात करना नहीं और जगत् के किसी जीव पर विश्वास करना नहीं। जब तू स्वयं किसी के साथ विश्वासघात नहीं करेगा, तो जो तेरे भावों की वर्गणायें हैं, वे दूसरे को प्रभावित करेंगी, उससे तेरा भी अहित नहीं हो सकेगा। भैया! दूसरे पर विश्वास इसलिए नहीं करना कि जब सुबह के परिणाम स्वयं आपके शाम तक नहीं बचते हैं तो फिर तुम जिस पर विश्वास किए हो उसके परिणाम का क्या भरोसा है?

जो दान दे चुके हैं, वो दे दिया, अच्छा किया। एक घण्टे बाद सोचते तो तेरे भाव बदल जाते। जो साधु बन चुके हैं, बहुत अच्छा किया। बन गये सो बन गये। विलम्ब करते तो मालूम नहीं तेरे भावों की दशा कहाँ क्या होती ? आज यहाँ आ गये, बहुत अच्छा किया। पाँच मिनट घर में और ठहर जाते तो जरूर कोई काम आ जाता और तुम आ ही नहीं पाते। इसलिये श्रेष्ठ काम करने में विलम्ब मत करना और अ-श्रेष्ठ काम करने के लिये जितना विलम्ब कर सको उतना कर देना। अशुभ काम करने के भाव आ रहे हों तो थोड़ा समय देकर करना। हो सकता है कि तुम्हारी बुद्धि निर्मल हो जाये तो उस काम से बच जाओगे। यदि श्रेष्ठ काम करने जा रहे

हो तो विलम्ब मत करना, अति शीघ्र कर लेना।

द्रोपदी थोड़ी देर से बोलती, तो सँभलकर बोलती। यदि सामनेवाला गिर ही पड़ा था, तो उसको निकल जाने देती, फिर बोल लेती। किसी व्यक्ति को ज्ञान भरा हो और मान भरा हो और वह प्रसंग सामने आ जाये, फिर उससे मौन रखवा लो, बहुत कठिन तपस्या है। **हाथी को साँकल से बाँधकर रखा जा सकता है, परन्तु तनक-सी जीभ को यह व्यक्ति बाँध कर नहीं रख पाता।** माताओ! तुम्हारे घरों में जो चार चूल्हे रख गये हैं, ये तुम्हारी जीभ की बड़ी कृपा है। ज्ञानी तो ऐसे देख रहा है जैसे सिर्फ उन्हीं का दोष हो। तुम कैसे पागल थे जो अपनी माँ को छोड़ करके पर की बातों में आ गए? जो माँ से अलग हो चुके हैं, जो पिता से अलग हो चुके हैं, उन बेटों को मैं आज चिन्तन दे रहा हूँ। मेरे मित्र ! सत्य बताना माँ तुम्हारा अहित सोचती, पिता तुम्हारा अहित सोचता, तो उसके हाथ में तुम जन्म से हो, वह कभी का तुमको परिवार से दूर करा देता। जिसने तुमको इतना बड़ा किया, पढ़ाया-लिखाया है, सब-कुछ भी दिया है, तब भी तुम उसका चेहरा देखना पसन्द नहीं करते हो, इसका मतलब है कि तुम किसी दूसरे के चेहरे से प्रभावित हो, इसलिये तुम्हें माँ का चेहरा पसन्द नहीं आ रहा है, पिता का चेहरा पसन्द नहीं आ रहा है। अब ऐसे पुरुष से कहा कि वाणी शुद्ध हो जाये, वह कहाँ से शुद्ध होगी? **विश्वास से भरने के लिये विश्वास करना पड़ता है, स्वयं का स्वयं पर। जिसका स्वयं पर स्वयं का विश्वास नहीं है, वे जगत् के विश्वास के पात्र हो नहीं सकते हैं।**

हे मुमुक्षु ! भगवान् तीर्थंकर का जन्म हो तो नरक के नारकी को भी शान्ति की अनुभूति होती है, इन प्राणियों ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है जिनको तुम नाली में मारने जाते हो? यदि तूने साबुन से नहीं नहाया तो बहुत अच्छा काम किया, लेकिन बिना स्नान किए रहना अच्छी बात नहीं है। पानी से स्नान मत करना, साबुन से स्नान मत करना, माँ भगवती जिनवाणी के नीर से स्नान करना। शरीर को ही स्वच्छ मत करना; जो तुम्हारे परिणाम बिगड़ रहे हैं उन परिणामों को साफ कर लेना। दुनियाँ के यहाँ मिलन जब हो तब हो, लेकिन तुम्हारा महामिलन महावीरजयन्ती के दिन हो। शरीर भिन्न-भिन्न रहें, आत्मायें भिन्न-भिन्न रहें, परन्तु परिणाम एक-से रहें। बहुत अच्छा हुआ कि हमारे चौबीस भगवन्तों में दो भगवान् काले थे, नहीं-तो ये ज्ञानी किसी को जीने नहीं देता। मुनिसुव्रतनाथ और नेमिनाथ श्याम वर्ण के थे। नहीं-तो जितने गोरे लोग थे, वे कहते, 'भगो'। अब काले लोग भी कहते हैं कि काले लोग भी भगवान्

हुये हैं। सत्यता यह है कि **न गोरे शरीर से भगवान् होते हैं न काले शरीर से भगवान् होते हैं। जिनके मन गोरे होते हैं, वे ही भगवान् होते हैं। ये वर्ण तो देहाश्रित है। देहाश्रित वर्ण आत्माश्रित नहीं है।** इसलिये आचार्यभगवन् कुलभद्र स्वामी कह रहे हैं कि मिल कर रहो, पर मिलके मत रहो। **जो पर से अधिक मिल जाते हैं, वे निज से दूर हो जाते हैं और जो बिल्कुल ही नहीं मिलते हैं, वे वात्सल्य से दूर हो जाते हैं। मर्म समझो। जो अधिक मिल जाते हैं, वे सत्य से दूर हो जाते हैं।**

भैया! हम कर रहे हैं सो तुम हमारी कोई से न कहियो और तुम कर रहे हो सो हम तुम्हारी कोई से न कह हैं। ऐसे मिल गये, ऐसे मिले कि दोनों सत्य से दूर हो गये और बिल्कुल ही नहीं मिल रहे हैं। ऐसे बिछुड़ गये कि वात्सल्य अंग उनके पास है ही नहीं। इसलिये मिल कर रहो, परन्तु मिलके मत रहो। मिलके मत रहो, मिलके रहो। सोचना पड़ रहा है। यदि सोचना न पड़े तो तत्त्व-उपदेश ही क्या है? आज से नियम कर लो। अंधों के अंधे होते हैं, इतनी-सी बात बोलने से इतना बड़ा जहर फैल गया। भाई-भाई के बीच में महाभारत हो गया। कोई बात नहीं होती है, बात ही होती है। बात बात में इतनी बड़ी बढ़त हो जाती है कि दीवाल खड़ी हो जाती है और बात कोई नहीं होती है। भ्रम से दूरियाँ खड़ी हो गईं, बात कुछ नहीं थी। फिर बात क्या है? बस, बात ही हो गई है। बात की बात है। शब्दों के जाल में उलझ करके निज की भगवान्-आत्मा को मत तड़पाओ। शब्द परवस्तु है। शब्द पुद्गल की पर्याय है। शब्द पर की ही व्याख्या करते हैं। शब्द ने निज की व्याख्या करना सीखा ही नहीं है। **आप पर की व्याख्या में उलझ करके अपने परिणामों को कलुषित कर लेते हो।** शब्दातीत स्वरूपोऽहं। आत्मा अवाच्य है, अवक्तव्य है। वचन मेरी आत्मा का धर्म नहीं है। इतने गहरे में जाने की आवश्यकता है। हम दुनियाँ को क्यों सुनें? हम क्यों दुनियाँ को समझें? मेरे पास इतना है कि मुझे किसी को सुनने-समझने की आवश्यकता ही नहीं है।

अस्त्र-शस्त्र बनाना दुनियाँ जानती है। धन कमाना, धन मिटाना दुनियाँ जानती है, लेकिन निज धर्म में कैसे लीन हुआ जाता है, यह भारत की भूमि में श्रमण संस्कृति जानती है। धन कमाने की विद्या सीखना, स्त्रियों के बीच में रहना, सम्पत्ति के बीच में रहना, परिवार के बीच में रहना, जैनकुल में जन्म लेकर इतना सीखने तुम आये हो तो कोई महानता नहीं है। इन बातों को तो दुनियाँ के लोग जानते हैं। जैनकुल

में जन्मे हो तो यह सीख लो कि जिनेन्द्र कैसे बना जाता है ? **जिनेन्द्र बनना चाहते हो तो सर्वप्रथम जगत् से दूरी बना कर रखना होगा।** दुश्मन बनाकर नहीं रहना। जो जगत् से दूरी बना कर रखता है, वह साधु होता है।

जगत् से दूरी बनाकर रखना, जगत् से द्वेष बना कर नहीं रहना। साधना का मार्ग द्वेष बढ़ाना नहीं है, साधना का मार्ग दूरी बनाना है। यदि वाणी की शुद्धि होती है तो सत्य से होती है। जितना अल्प बोलोगे, उतनी भाषावर्गणा मधुर होगी, लोक आपको सुनना पसन्द करेंगे, लोग आपको समझना पसन्द करेंगे। इतना ही नहीं, वाक् सिद्धि भी हो जाती है। वचनसिद्धि।

सोनागिरि में आचार्य विमलसागर जी विराजते थे। जब किसी से प्रसन्न होकर कुछ बोल दें तो वह हो जाता था, ऐसी उस जीव को वचनसिद्धि थी। कोई मंत्रसिद्धि करने की आवश्यकता नहीं है, वचन सिद्धि करो। मंत्र भी तो वाक्य ही है, अक्षर ही तो हैं। जो श्रुत का विनय करेगा, अशुभ स्थानों पर मौन, **अशुभ कार्यों में मौन और कम-से-कम बोलना। कम बोलना ही नहीं, अपितु बोलने का मन भी नहीं करना। ऐसे व्यक्ति को वचनसिद्धि हो जाती है।** वह जो कुछ भी कहेगा, पूरा क्षेत्र मंत्रित हो जायेगा। कोटि-कोटि व्यक्तियों के बीच में एक पुरुष बोले, सारे श्रोता मंत्रमुग्ध ा हो जायें, तो यह है वचनसिद्धि। उस वचनसिद्धि से युक्त पुरुष के सामने कोटि-कोटि विषमतायें खड़ी हो जायें, वे समता में बदल जायेंगी। **पानी की शीतलता अग्नि की ज्वाला को शान्त कर देगी। मधुरभाषी एवं वचनसिद्धि से युक्त पुरुष की वाणी जगत् के कलुष हृदयों की अग्नि को शान्त कर देगी।** हाय! जितना अशुभ बोल नहीं पाये, उतना अशुभ सोच चुके थे। जितना अशुभ सोच रहे थे, उतना तुम जी नहीं पाये, उसके पहले जीवन नष्ट हो गया और कर्म के पिण्ड को लेकर चला गया। हृदय टटोल कर निहार लो। इच्छाओं की पूर्ति जिस दिन नहीं होती है, उस दिन तुम्हारे मन की मोह दशा क्या होती है? नमक की डली थाली में कम मिली, तो थाली आकाश में घूमती मिलती है। मेरे मित्र! तू क्या जीव है? तेरी कितनी गृद्धतायें हैं कि नमक की डली के पीछे, जिसने दिन भर मेहनत करके थाली सजाकर रखी थी उसके दिल को तूने टूक-टूक कर दिया और वात्सल्य नष्ट कर दिया। भीतर की विशालता दिख गई। नमक की एक डली को भी नहीं छोड़ सका, धिक्कार हो। बड़े-बड़े त्यागी विचलित हो जाते हैं, बड़े-बड़े तपोधन विचलित हो जाते हैं, कि नमक

क्यों नहीं पड़ा था? हे जीव! अनन्त भवों से तू कितने नमक की डली को भोग चुका है। नमक ही बन चुका है, भोगना तो दूर की बात है। मित्र! आपको लगता ऐसा है कि मैं आपको सुना रहा हूँ, पर सत्य यह है कि मैं सुनानेवाले को भी सुना रहा हूँ कि सुनाते-सुनाते जीवन व्यर्थ मत कर बैठना। सुनानेवाले से भी कह देना कि ये जगत् की पूजा तेरे पूज्यता का हेतु नहीं है। पूज्यता तेरी पूजा की हेतु है। जगत् द्वारा हो रही तेरी पूजा, ये तुम्हारी पूज्यता का हेतु नहीं है। जो तेरे भीतर पूज्य बैठा हुआ है, वह पूजा का हेतु है। **हे श्रमण! श्रावकों के द्वारा पूजा हो रही है, इससे तुम अपने आप को पूज्य मत मान लेना। जो तेरे भीतर रत्नत्रय धर्म है, वह पूजा का कारण है,** न-कि विशुद्धसागर का शरीर पूज्य है। इस तीर्थभूमि में बैठकर शरीरों की पूजा मत करना। शरीरों के भीतर रत्नत्रय धर्म है, उस धर्म को पहले देखना। मृदुल चर्या की पुष्टि कभी मत करना। जब ये छोटे-छोटे बच्चे नमोऽस्तु-नमोऽस्तु करते मिलते हैं, तब लगता है कि हर घर में पहुँच जाना चाहिए। भावना तो देखो कि ऐसे खोटे कलिकाल में भी कितना विश्वास है कि हमारे गुरुमहाराज पधारेंगे। ये मात्र गुरु ही नहीं मानते, भगवान् मानते हैं कि हमारे घर भगवान् पधारेंगे।

मन की शुद्धि ज्ञान से होती है। जीवन में अपने आपको कभी अकेला महसूस मत करना। यदि तुम्हारे पास कोई मित्र बैठ गया तो वह तो तुम्हारी जेब टटोलेगा तब तक मित्र रहेगा। ज्ञानी ! संसार में सबके दिन एक-से नहीं होते। महाराज ! शाम तक मैं बैठा रहा फोन पर कि अब कोई फोन करेगा। जब किसी ने फोन नहीं किया, तो मैंने ही अपनी माँ को फोन लगाया माँ ! ठीक तो हो? एक वे दिन थे कि दिन भर लोगों के बीच घिरे रहते थे। सबके दिन एक-से नहीं होते। इसलिए किसी को अपना मान कर मत चलना। ये सब तभी तक हैं जब तक तेरा चेहरा चमक रहा है। ये दुनियाँ तभी तक देख पाती है जब तक कुछ दिखता है और दिखना बन्द हो जाता है तो दुनियाँ का दिखना बन्द हो जाता है। इसलिए कभी यह मत मान बैठना कि मेरे साथ इतने लोग हैं। कभी स्वप्न में भी मत सोचना। कभी-कभी महीनों-महीनों तक मुझे अपना कमण्डल पकड़ने नहीं मिलता और कभी-कभी महीनों-महीनों तक कमण्डल पकड़नेवाला नहीं मिलता। सबके दिन एक-से नहीं होते। इसलिए आनन्द का जीवन जिओ। दुनियाँ को अपना मानो ही क्यों ? जो है, सो है। ये संयोग है। संयोग ही है, स्वभाव नहीं है।

ज्ञानी ! सद्भाव में अभाव को देखो, अभाव में सद्भाव को देखो। कभी-कभी अभाव में सद्भाव को देखो। बड़ा आनन्द आता है । माताओं से पूछो, अभी बेटा आँगन में खेला नहीं है और बहू की पायल-बिछुये की आवाज कानों में सुनाई दे रही है । मुस्करा रही है कि मेरी बहू आयेगी । अभाव में सद्भाव देख रही है । किसान बीज बो देता है, मेढ़ पर बैठकर रोटी खा रहा है और अन्दर देख रहा है कि फसल लहलहा रही है। यदि ये न दिखे, तो धूप में काम करने क्यों जाये ? मेरे मित्र ! इन मुनिराजों से पूछो, अभाव में सद्भाव न दिखे तो क्यों तुम भूख-प्यास सहन कर रहे हो ? तुम्हें मोक्ष नजर आ रहा है। अभाव में सद्भाव देखो तो आनन्द-ही-आनन्द है और सद्भाव में अभाव देखो। मैं नहीं बचूँगा, जो दिख रहे हैं वे भी नहीं बचेंगे। इन सबका अभाव देखो। जो घुटने चलते थे, वे आज दौड़ रहे हैं और जो दौड़ते थे, वे छड़ी लेकर चल रहे हैं, और जो छड़ी लेकर चल रहे थे, वे दिख नहीं रहे हैं। ऐसा नहीं है क्या ? छतरी बनवाने के लिये छतरी लेनी पड़ेगी, पिच्छी लेनी पड़ेगी। सोनागिर की वन्दना करने जाओ तो विवेक से वन्दना करना। भगवान् की प्रतिमाओं की वन्दना खूब करना, परिक्रमा में सभी छतरियों को हाथ मत जोड़ लेना, सिर मत टेक लेना। वहाँ पर्वत में मुनिराजों के साथ-साथ कुछ साहूकार सेठों की छतरियाँ भी बन गई हैं जो अपने जीते-जीते बनवा गये हैं। पहले प्रशस्ति पढ़ लो, फिर सिर टेकना। जीते जी बनवा गये ज्ञानी लोग; बोले, मेरे बाद कोई ने बनाई या नहीं बनाई। इन्दौर में जीवित लोगों की मूर्तियाँ रख गईं। बहुत अच्छा हुआ कि जैनदर्शन में प्रतिष्ठित मूर्तियों की पूजा होती है, नहीं-तो इन वेदियों पर भगवान् की जगह इन ज्ञानियों की मूर्तियाँ मिलतीं। बोलते, भैया! हम ही भगवान् हैं। वर्तमान में कुछ नेता ऐसा कर ही रहे हैं। कितनी जगह हाथी रख गये, घोड़े रख गये। आप समझा करो। वस्तुस्वरूप समझो, जीव को आत्मा से कोई प्रयोजन नहीं है।

मन की शुद्धि ज्ञान से होगी। ज्ञानी! तुमसे ज्यादा पुण्यात्मा तुम्हारा बेटा है। तुम्हें तो मुनिराजों की वन्दना बहुत उम्र के बाद मिली है और आज का जन्मा बेटा ज्यादा पुण्यात्मा होगा। उसके माता-पिता कहेंगे, बेटा! तेरा जन्म तब हुआ था जब बड़े मंदिर में 'सारसमुच्चय' की वाचना हो रही थी। ऐसा इतिहास लिखा जायेगा।

मन की शुद्धि ज्ञान से, वचन की शुद्धि सत्य से, तन की शुद्धि क्या है ? अब समझना ये युवा कितने ज्ञानी हैं। आज के लोगों की सोच देखो, क्या बोलते हैं ?

इनको कोई काम नहीं होगा, सो सब बच्चों को इकट्ठा करके महाराजों की सेवा में लगा है। अरे ज्ञानी! तुझे पता ही नहीं है कि तेरा काम तो नरक ले जायेगा, जबकि ये वो काम कर रहे हैं जो इनको स्वर्ग ले जायेगा।

एक ज्ञानी को, जो कर्नाटक में मेरे साथ विहार कर रहा था, वहाँ के सेठ ने पकड़ लिया, कहा—तेरा चेहरा तो सेठ-जैसा लग रहा है, तू यहाँ महाराज जी के साथ क्यों घूम रहा है? क्या कोई काम नहीं है? तो वह कहता है कि मेरे पिता जी डॉक्टर हैं, लंदन से होकर आये हैं।

अभी तो ये सुना था कि साधु वे बनें जिन्हें खाने को न मिले। अब तुम ये कह रहे कि साधु के पीछे वे लगें जिनको खाने को मिले। बहुत अच्छा हुआ 'कोटि अट्ठारह घोड़े-छोड़े चौरासी लख हाथी'। तुम्हारे घर में तो वह भी नहीं है जो ईंटें ढोता है। बहुत अच्छा हुआ जो कि तीर्थंकरों में चक्रवर्ती, कामदेव पदवीधारी तीर्थंकर हो गये। नहीं-तो ये ज्ञानी यही कहता कि साधु वे बनते हैं जिनके कुछ होता नहीं है। सत्य यही है कि वास्तव में साधु वे ही बनते हैं जिनके पास कुछ होता नहीं है। जिनके पास कुछ होता है, वे साधु बन ही नहीं सकते। जिनके भीतर विषय-वासनायें होती हैं, वे क्या साधु बनेंगे? जिनके विषय-वासनायें नहीं होती हैं, वे ही साधु बनते हैं। पिच्छी-कमण्डलधारी के पीछे हर व्यक्ति नहीं चल सकता है। सुबह से छड़ी लेकरके, साँकल पकड़ करके श्वानराज को घुमाने तो चला जायेगा, लेकिन साधु का कमण्डल उठाकर नहीं ले जायेगा। कौन ? पापी जीव। एक वे लोग हैं जो छड़ी लेकरके श्वान को घुमाने ले जा रहे हैं, एक वे जीव हैं जो सुबह से साधुओं की चर्या के लिये जा रहे हैं। **गुरु की सेवा करने से शरीर की शुद्धि होती है,** यह शुद्धि सनातन है।

सत्य से वचन की शुद्धि, ज्ञान से मन की शुद्धि, गुरुसेवा से तन की शुद्धि होती है। यही शुद्धि सनातन है।

''**आत्मस्वभावं, परभाव भिन्नं**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।



पुरुषार्थ का फल

स्वर्गमोक्षोचितं नृत्वं मूढैर्विषयलालसैः
कृतं स्वल्पसुखस्यार्थं तिर्यङ्नरक-भाजनम्॥318॥

अन्वयार्थ— (विषयलालसैः मूढैः) विषयों के लम्पटी मूर्ख लोगों ने **(स्वर्ग मोक्षोचितं नृत्वं)** इस मनुष्यजन्म को जिससे स्वर्ग तथा मोक्ष की सिद्धि की जा सकती है **(स्वल्पसुखस्यार्थं)** अल्प इन्द्रियसुख के अर्थ खोकर **(तिर्यङ्नरकभाजनम् कृतं)** अपने को तिर्यंचगति एवं नरक गति में जाने के योग्य कर लिया।

भावार्थ— हे जीव ! जिस पुरुषार्थ से स्वर्ग एवं मोक्ष की सिद्धि हो सकती है, उस शक्ति को इन्द्रियभोगों में लिप्त होकर तूने दुःख प्राप्त किया है अर्थात् दुर्गति का बंध किया है।

॥ सद्-देशना ॥

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज 'सारसमुच्चय' जी में परम समरसी भाव की व्याख्या करते हुये समझा रहे हैं, अहो मुमुक्षु ! हम सबकुछ बदलना चाहते हैं, बहुतकुछ बदलना चाहते हैं और पर को बदलने का हमारा परिपूर्ण प्रयास है, परन्तु जो सबकुछ बदलना चाहता है, बहुतकुछ को बदलना चाहता है, यदि तू उसे ही बदल देता है, तो किसी को बदलने की कोई आवश्यकता नहीं है। हम पर में प्रवेश कर रहे हैं, हमारी पर में दृष्टि है, इसलिये पर को बदलने का विचार मन में आ रहा है। परन्तु ध्रुवसत्य यह है कि यदि हम अपने आपको ही अपने में स्थापित कर लेते हैं तो जगत् को बदलने का हमारा मन ही नहीं करेगा। **जो हम दूसरे को बदलने का प्रयास कर रहे हैं, वही हमारे संक्लेश का मुख्य हेतु है।** हम भूल गये हैं, विष खाने से ही मृत्यु नहीं होती है। ध्यान देना, **जिनको बहुत जल्दी बूढ़ा न होना हो और बहुत जल्दी मृत्यु को प्राप्त न करना हो, वे आज से संक्लेशता को करना बन्द कर दें। जो हृदयाघात हो रहे हैं, असमय में मरण हो रहा है, जहर की पुड़िया खाये बिना जीव अकाल में मर रहा है, इसका मुख्य बिन्दु कोई है तो संक्लेश परिणाम।** संक्लेशता से आयु का क्षय होता है, विष के खाने से आयु का क्षय होता है, श्वास के निरोध से आयु का क्षय होता है, भूखे रहने से आयु का क्षय होता है, हिम/ग्रीष्म आदि की वेदना से आयुकर्म का क्षय होता है, लेकिन उनमें मुख्य बिन्दु है संक्लेश परिणाम। **कोटि-कोटि तीर्थों की वन्दना करना देहाश्रित है, संक्लेशता से बचा कर रखना आत्माश्रित है।**

यदि निज के परिणामों को आपने संक्लेशता से बचा लिया तो आप परम अहिंसक हो। जो किसी भी जीव की हत्या न करता हो, अपने पगतले किसी का घात नहीं करता, परन्तु मन-तले किसी की रक्षा भी नहीं करता, घर में जाता तो संक्लेशता, समाज के बीच में होता है तो संक्लेशता, मित्रों के बीच में होता है तो संक्लेशता। जहाँ देखो वहीं संक्लेशता।

देखो जगत् को, रहो जगत् में, परन्तु ध्रुव सत्य यह है कि तुम्हारे रोने से जगत् का परिणमन नहीं होता, तुम्हारे हँसने से जगत् का परिणमन नहीं होता, प्रत्येक द्रव्य का परिणमन स्वतन्त्र ही होता है। यह द्रव्यदृष्टि है। **जब तक द्रव्य, गुण, पर्याय पर दृष्टि नहीं है और द्रव्य, गुण, पर्याय का बोध नहीं है, तब तक संक्लेशता की हानि सम्भव नहीं है।**

द्रव्यदृष्टि पर दृष्टि नहीं है, द्रव्य (पैसा) दृष्टि पर दृष्टि है। आत्मद्रव्य पर दृष्टि नहीं है, द्रव्य (पैसे) पर दृष्टि है। जो द्रव्य व्यापार में लगाता है उसके बारे में तो सोचता है कि अधिक बढ़ जाना चाहिये, लेकिन जो तूने पुण्य का द्रव्य लगा कर रखा है, उस पर चिन्तन ही नहीं जा रहा कि और बढ़ना चाहिये। ये जीव निर्ग्रन्थों के पास भी गया, अरहन्तों के पास भी गया, परन्तु उनके पास जाकर भी धन ही माँगा, मान ही माँगा, परन्तु आत्मद्रव्य का कभी सोच ही नहीं माँगा। इस बात को मैं तो नहीं मानता कि दूसरा तुम्हें कष्ट दे रहा है, दूसरा तुम्हें संक्लेशित कर रहा है। दूसरा तुम पर गुस्सा दिखाने लग जाये, तो वह अपना चेहरा बिगाड़ रहा है कि जिससे तुमको गुस्सा आये। उसका चेहरा स्वतन्त्र है। वह अपना ही तो चेहरा बिगाड़ रहा है, तुम्हारा क्या बिगाड़ रहा है ? आप अपने मान के कारण, आप अपने स्वाभिमान के कारण, आप अपने कषाय के कारण दु:खी हो, कि उसके चेहरे को देखने से दु:खी हो ? लेकिन लगता है कि सत्य का जीवन जीने की चेष्टा करनेवाले भी असत्य का जीवन जी रहे हैं। **मात्र एक स्पर्शन इन्द्रिय का भोग छोड़ देना ही संयम नहीं है। जगत् के द्रव्यों को विपरीत भाव से नहीं देखना, यह भी संयम है।** एक इन्द्रिय का निग्रह ही संयम नहीं है, एक इन्द्रिय के विषय विशेष का त्याग करना ही संयम नहीं है। एक इन्द्रिय के अनेक विषय हैं, उनका भी परित्याग होगा। आँखों से बुरा नहीं देखना चाहते हो, ये तो छोड़ दिया, लेकिन आँखों से नीका (अच्छा) देखना कहाँ छोड़ा ? विषय एक नहीं, दो हैं। मनोज्ञ और अमनोज्ञ। अमनोज्ञ नहीं देखना

चाहता, लेकिन मनोज्ञ देखना चाहता है, तो जो मनोज्ञ देखना चाह रहा है, तद्जन्य विषयसेवन चल रहा है। बुरे आदमी का चेहरा देखना पसन्द नहीं आ रहा है, अच्छे व्यक्ति का चेहरा देखने के तुम्हारे मन में भाव आ रहे हैं, यह भी तो उसके चेहरे का भोग है। कुछ भी नहीं हुआ? कुछ भी तो हुआ होगा? कुछ नहीं हुआ होता तो यहाँ बैठते कैसे ? कुछ नहीं हुआ होता तो पंचमकाल में आये कैसे ? कुछ नहीं हुआ होता, तो ये चेहरे लटकाये क्यों? कुछ तो हुआ है। अब कुछ न हो, ऐसा काम करो। कहाँ आपने दुनियाँ के विकल्पों में जीते हुये जिन्दगी बिताई। तू चाहता है कि जगत् के लोग तेरे हो जायें, मैं चाहता हूँ कि सारा विश्व अकेला हो जाये। **तुम सारे विश्व को अपना करना चाहते हो तो सारे विश्व से एक बार दूर हो जाओ।**

हे वर्द्धमान ! आपका नाम सारा विश्व क्यों ले रहा है ? आपका नाम लेते ही सारे विश्व में रोमाञ्च क्यों हो रहा है ? क्योंकि आपने सारे विश्व से पीठ घुमा ली थी, इसलिए सारा विश्व तुम्हारे पीछे चलने लग गया। जो विश्व के पीछे दौड़ता है, सत्य है कि अपनी छाया के पीछे दौड़ने वाले को छाया मिलेगी नहीं। जो आगे दौड़ जायेगा, उसकी स्वयं की छाया उसके पीछे दौड़ती है। **जितना अधिक व्यक्ति पर से चिपकेगा, पर में लिप्त होगा, उतना असम्मान को प्राप्त होगा।** पिल्ला जानते ? कोई सुहावना लगे या ना लगे, लेकिन पिल्ला सबको सुहाना लगता है। लेकिन भैया! यदि तुम पिल्ला को भी ज्यादा खिलाओगे तो वह सीधा गाल चाटेगा। जिससे तुम जितना ज्यादा चिपकोगे, वह तुम्हारे सिर पर ही जायेगा। इसलिये यदि आप सबके सिर पर बैठना चाहते हो तो सबसे दूर होना सीख लो। जितना दूर होता है, उसको उतना लोग पसन्द करते हैं। जितना ऊँचा होता है, उसे लोग उतना झाँक-झाँक कर देखते हैं। आप ऐसा क्यों नहीं करते हो कि वह ऊँचाई आपको मिले? आसन की ऊँचाई नहीं, गुणों की ऊँचाई बढ़ जायेगी तो सारा विश्व तुम्हें झाँक-झाँक कर देखेगा।

जैनदर्शन की यह विशिष्ट साधना है। जगत् के दर्शन में कुछ कर-करके साधना होती है, यहाँ की **परम साधना है हाथ पर हाथ रख करके बैठ जाओ। कुछ नहीं करना, यही जीवन की चरमोत्कृष्ट साधना है।** नहीं करते तो जीव का मन नहीं मानता। मंदिर की चटाइयाँ किसने तोड़ दीं? ऐसे ज्ञानी लोग होते हैं कि घर में तो कुछ करते ही रहते हैं। मंदिर में कुछ काम नहीं होता है तो हाथ मानते नहीं हैं तो चटाइयाँ ही तोड़ते रहते हैं। ये कर्तृत्व बुद्धि के संस्कार हैं। **एक स्थान पर बैठ**

जाना, हाथ पर हाथ रखकर बैठ जाना, शरीर को स्थिर कर लेना, मन को स्थिर कर लेना और वचन को स्थिर कर लेना, यही तो योग है। इससे युक्त ही योगी है। आज जो पेट पिचकाये, पेट फुलाये, उसे 'योगी' संज्ञा दी जा रही है। तुमने योग को समझा ही नहीं, कि योग है कौन-सी विद्या ? यह तो काययोग की चंचलता है।

जगत् को सुधारने की चेष्टा कब तक करते रहोगे ? जगत् को सुधारने की चेष्टा मत करो, जगत् में सुधरने की चेष्टा करो। जगत् में सुधर जाओगे तो जगत् को सुधारने की जरूरत ही नहीं पड़ेगी। संक्लेशता का यदि कोई कारण बन रहा है तो तुम जगत् में बैठकरके जगत् को सुधारना चाह रहे हो, जबकि तुम स्वयं भी जगत् में हो, तुम ही सुधर गये तो विकल्प ही नहीं होगा किसी को सुधारने का। यथार्थ मानना, व्यक्ति सुखी होना नहीं चाहता। ढोंग के वश कितना ही कह लें महाराज! मैं सुखी होना चाहता हूँ। सुखी होना चाहो तो मैं एक बहुत अच्छी बात बता सकता हूँ, आप सुखी हो जाओगे।

एक ज्ञानी के एक करोड़ रुपये दूसरे ज्ञानी के पास हैं। अब वह ज्ञानी दु:खी है। रोज पैसे माँगने चक्कर काटकर आ जाता है। स्वयं नहीं जा पाता तो किसी को भेज देता है, भैया! तुम्हीं चले जाओ, माँग कर ले आओ, इतने रुपया हैं। क्या होगा, हमारा कोई भरोसा नहीं है। कब चले जायें, रुपया डूब जायेंगे। उस ज्ञानी से ये पूछो-तुझे अपना भरोसा तो नहीं है, स्वयं चला जायेगा, फिर रुपया कहाँ डूबेंगे ? उसकी चिन्ता है कि रुपया डूब जायेंगे, जबकि स्वयं चला जायेगा। क्या पागलपन है ? उन्मत्त चेष्टा तो देखो आप। जाओ उनसे पैसा तो लेकर आओ और नहीं दे तो एकाध नेता को ले जाना, वे ही सिफारिश कर देंगे, जैसे बने वैसे ले आओ। आश्चर्य देखो, बहुत दु:खी है, महाराज! मेरा भरोसा नहीं है, पका पत्ता कब टपक जाये, लेकिन एक विकल्प जरूर है कि सिंघई जी रुपइया नहीं दे रहे। तो आपके उस संताप को तो मैं ठीक कर सकता हूँ। बहुत जल्दी, एक मिनट भी नहीं लगेगा, आप सुखी हो जाओगे, आप अपना निर्विकल्प समाधिमरण कर लेना। बोले, क्या उपाय ? उपाय एक ही है, ज्ञानी ! आखिर में वो दे भी देंगे तो तू क्या करेगा ? 'बेटा को पकड़ा दूँगा।' वो क्या करेगा ? 'घर चलायेगा।' तो सिंघई जी का भी बेटा है, वो उसको पकड़ा देगा, उसका घर चलेगा। ज्ञानी! लेने का विकल्प छोड़ दे आज से, तो संकट समाप्त। मर गये

जोड़-जोड़ के, तुम जिये ही इसलिये थे। जोड़-जोड़ कर मरने के लिये ही तो जोड़ रहे थे। मर गये जोड़-जोड़ के। मतलब समझो। जब-जब जोड़ रहा था, तब-तब मर रहा था। एक-एक पल-पल मर रहा था। तू कह रहा था मैं जोड़ रहा हूँ।

पैसा जोड़ने के लिए आयु नष्ट की और जब आयु नष्ट होने का समय हो गया सो वैद्य के यहाँ पहुँच गया कि जैसे बने वैसे बचा लो। पहले शरीर नष्ट किया पैसे के लिए, अब पैसा नष्ट कर रहा है शरीर के लिए। मर गओ बेचारो जोड़-जोड़ के। इतना ही सीख लेते कम-से-कम कि जो है सो है, तो ऐसो न होतो। अभी भी घर जाओगे क्या ? कितने राजा महाराजा झाँसी में आये और मर गए बेचारे जोड़-जोड़ के। कितना बड़ा किला खड़ा हुआ है, देखनेवाले देखकर चले जाते हैं, पर कोऊ नई देख रओ कि मर गओ बेचारो जोड़-जोड़ के। आज से अपन को रोना नहीं है। मुस्करा लो भैया! यहीं मुस्करा लो, वहाँ तो रोना ही है।

हमारे आगम में कितने गहरे सूत्र हैं। यदि इतना ही समझ में आ गया तो कल्याण हो जायेगा। समयसार की भाषा में इसी शब्द को बोल दो 'मर गओ बेचारो जोड़-जोड़ के।' हे ज्ञानी ! अमृतचन्द स्वामी कहेंगे 'अध्यात्म अमृत कलश' में (समयसार की आत्मख्याति टीका में) तुमने जो सबकुछ किया है, सम्प्रदान शक्ति से पूछ लीजिये—किसके लिए? जो तुम जोड़-जोड़ कर रख रहे हो, किसके लिए? जन्में थे झुपड़िया में, मरने को महल बना रहे हो, किसके लिए?

अब तो देवियाँ भी कह रही हैं 'मर गओ बेचारो जोड़-जोड़ के'। तनक से पानी के हो तो चलो मेरे साथ। मानना पड़ेगा कि अभी भी झाँसी में वीरांगनायें हैं। कह रही हैं, सुन लो, 'मर गओ बेचारो जोड़-जोड़ के'।

सत्य, है जो बेचारे जोड़-जोड़ कर मर रहे हैं, उसका कर्म का फल भोगने कौन जायेंगे? माताओ! सत्य बताना, उन्होंने तुम्हारे लिए ही तो जोड़ा है, तो उसका फल भोगने तुम साथ में जाओगे कि नहीं ? नहीं जायेंगे। लो, 'मर गओ बेचारो जोड़-जोड़ के'। वे तो कह रहीं हैं कि जिसका फल, वही भोगे। चाहे नेता बनो चाहे अभिनेता बनो, कुछ नहीं, जो है सो है।

'मोक्षमार्गस्य नेतारं' जो मोक्षमार्ग का नेता है, वही सच्चा नेता है, बाकी के बेचारे मर गये जोड़-जोड़ के। पूछो ज्ञानी से, 'क्या लेकर जाओगे? कुछ लेकर नहीं जायेंगे।

तो अब ऐसी कहने कि सबकुछ तो देख लिया। जो जोड़-जोड़ कर बैठे हैं, वे अच्छे से ग्रास नहीं खा पा रहे; जबकि जो छोड़कर बैठे हैं, वे दोनों हाथ से खा रहे हैं। जो जोड़-जोड़ कर बैठे हैं, वे साता से रोटी नहीं खा पा रहे और जो छोड़-छोड़के बैठे, वे दोनों हाथों से खा रहे। बाहर बैंड-बाजे बज रहे और भीतर भजन गाये जा रहे, लीला तो देखो छोड़ने की।

भिलाई में एक डॉक्टर साहब थे। धर्मात्मा जीव थे। प्रवचन सुनने आते रहते थे। परन्तु बेचारे को बेटे से और धन से इतना राग था कि बड़ी सुन्दर बिल्डिंग बना कर रखी थी। बेटे से मिलने रायपुर जा रहे थे। बेटे की माँ ने कहा भी कि पहले भोजन कर लो, फिर चले जाना। बोले—आप भी अच्छी हो? इतना समय बचेगा, आप तो टिफिन लगा दो और गाड़ी में रख दो, मैं चलते-चलते खा लूँगा। दो तीन किलोमीटर चले होंगे, एक हाथ में ग्रास और सामने से भिड़न्त हो गई, बेचारा मुख में रखे-रखे खा भी नहीं पाया और चला गया। बड़ा भवन अभी भी खड़ा हुआ है। क्या किया ? मर गया बेचारा जोड़-जोड़के।

जो कुछ तुम कर रहे हो, अन्त में तुम्हें कहने-सुनने को क्या मिलेगा, पता है आपको? 'मर गओ बेचारो जोड़-जोड़के।'

आचार्यभगवन् कह रहे हैं—हे जीव ! तू जगत् में कुछ भी कर ले, लेकिन आत्मशान्ति जो है सो है। **आत्मशान्ति न जोड़ने में है न तोड़ने में है। आत्मशान्ति तो निज में जुड़ने में है। न किसी को जोड़ो, न किसी को तोड़ो। मात्र निज में निज को जोड़ लो, यही मोक्षमार्ग है।** जैनदर्शन में मोक्षमार्ग की कोई दूसरी विद्या ही नहीं है। 'अप्पा अप्पम्मि रओ,' **आत्मा को आत्मा में लगा दो, यही मोक्षमार्ग है।** इसलिए हे जीव! मनुष्यजीवन की कोई सार्थकता है तो यही है।

वस्तुस्वभाव समझो। आचार्यों ने हमारे ऊपर कितनी करुणा की, अनुकम्पा की, इतने गूढ़ रहस्यों को खोलकर रख दिया है।

स्वर्ग या मोक्ष की प्राप्ति का कारण यदि कोई है तो मनुष्यत्व है। देवत्व में देवत्व की प्राप्ति सम्भव नहीं है। देव न तो देवाधिदेव बन सकता है, देव न देव बन सकता है। तिर्यञ्च चाहे मैं देवाधिदेव बन जाऊँ, वह नहीं बन सकता। नारकी, न नारकी बन सकता है न देवाधिदेव बन सकता है। एकमात्र मनुष्यपर्याय ऐसी है जिसमें जो चाहो वह बन सकते हो। देव भी बन सकते हो, नारकी भी बन सकते हो, तिर्यञ्च

भी बन सकते हो और देवाधिदेव भी बन सकते हो। निग्रह करने की सामर्थ्य मनुष्य के पास है और अनुग्रह करने की सामर्थ्य भी मनुष्य के पास है। मात्र एक दिन के लिए निज पर ही करुणा कर लो। जितने प्रकार के पाप होते हैं, उन सब को छोड़कर वीतरागी तपोधन बन जाओ। मुझे विश्वास है कि जो बन गया, सो बन गया। यहाँ मुड़ना नहीं पड़ता है। जगत् पर कितनी करुणा की, इन पर दया उन पर दया, परन्तु तू स्व को भूल गया था। महावीर जयन्ती के दिन तू सबको मिठाइयाँ बाँटेगा, फल बाँटेगा, लेकिन एक फल अपने लिए देगा क्या ?

आपको मालूम होना चाहिए कि जनक ने स्वयंवर रचा दिया कि कौन धनुष तोड़े और बड़े-बड़े क्षत्रिय लोग आ गए, लेकिन कोई धनुष को उठा ही नहीं सका, कोई तोड़ ही नहीं सका। तब जनक की आँखों में से आँसू टपक गए, 'मुझे मालूम नहीं था कि यह पृथ्वी अब क्षत्रिय-विहीन हो गई है।' तब राम ने जनक के आँसू पौंछे थे। मैं यही तो कह रहा हूँ कि यहाँ कोई तो क्षत्रिय होगा। आज एक जीव की रक्षा का नियम ले लो कि जीवन में एक जीव की रक्षा करूँगा। जगत् में परजीवों की रक्षा करने वाले कोटि-कोटि विद्यमान हैं। एक जीव की यानि निज की रक्षा करने की बात करता हूँ। बहुत मुश्किल है। आज ध्वनित हो जाना चाहिए कि समयसार क्यों कठिन है? कठिन नहीं है, बहुत सरल है। लोगों को कठिन क्यों लगता है? तुम्हारी आँखें पर को देखती हैं, प्रत्येक इन्द्रिय पर में जा रही है। तुम्हारा ज्ञान पर में जा रहा है और रक्षा की बात की तो ज्ञानी कहता है कि मैं एक जीव की रक्षा का नियम लेता हूँ, लेकिन स्वयं का नहीं। कोटि-कोटि गायों की रक्षा के भाव हैं, कोटि-कोटि जीवों की रक्षा के भाव हैं, परन्तु मेरे मित्र! जिस दिन तू अपनी आत्मा की पापों से रक्षा कर लेगा, उस दिन कोटि-कोटि की रक्षा अपने आप हो जायेगी और तेरी रक्षा भी हो जायेगी। दूसरे पर दया करना कितना सरल है। मैं पापों से बँध रहा हूँ, मैं पापों में लिप्त हो रहा हूँ, मेरी आत्मा की दुर्गति हो रही है, मैं नरकों में गिरूँगा, ऐसा सोच तेरे भीतर क्यों नहीं आ रहा है? कितना कठिन है। सब हाथ जोड़ रहे हैं, ये तो आश्चर्य हो गया। ज्ञानी! लिख लेना, उपदेश दे देना, दुनियाँ पर दया कर लेना बहुत सरल है, लेकिन निज आत्मा पर करुणा कर पाना कितना कठिन है?

'धम्मो दया-विसुद्धो' जिस दिन तू जैन हो जायेगा, उस दिन तेरे अन्दर एक भाव आयेगा— 'धम्मो दया-विसुद्धो'। मेरे निमित्त से किसी के परिणाम किञ्चित् भी

क्लेशित नहीं होना चाहिए, न स्वयं को क्लेश होना चाहिए। 'धम्मो दया-विसुद्धो।' पिता जी डाँटने लग जायें तो कह देना पिता जी! क्षमा करना। धम्मो दया विसुद्धो। तू क्यों कुपित होकरके अपनी हिंसा कर रहा है और क्यों मेरी हिंसा कर रहा है? ये द्रव्य तो पुनः मिल जायेगा, लेकिन परिणामों की विशुद्धि कोटि द्रव्यों को देने पर भी नहीं मिलेगी। **अरबों-अरबों की सम्पत्ति से कोटि-कोटि मंदिर कोटि-कोटि तीर्थ बन सकते हैं, लेकिन परिणामों की विशुद्धि किसी भी क्षेत्र में पैसे से नहीं खरीदी जाती।** यही कारण है कि जैनदर्शन में आकिञ्चन धर्म है, पैसा धर्म नहीं है। जिस दिन से तुमने पैसे से धर्म देखना प्रारम्भ कर दिया है, उस दिन से समाज के देश के टुकड़े-टुकड़े हो गये, शान्ति भङ्ग हो गई। जब से लोगों ने पैसे को महत्त्व देना प्रारम्भ कर दिया है, अब ज्ञानी जब महाराज को श्रीफल चढ़ाने जाता है तो पहले देख लेता है कि पैसे कौन-से महाराज से इकट्ठे होंगे। बुरा नहीं मानना, जो है सो है। वह यह नहीं देखता कि धर्म तो आकिंचन्य है। वह तो पैसा देखता है। तब मुझे लगता है कि हे वर्द्धमान ! लोग नाम तुम्हारा लेते हैं, काम अपना करते हैं। नाम आपका चलता है, काम पैसों का ही करते हैं।

वर्द्धमान किसी का काम नहीं करते। जैनदर्शन में कर्तृत्व दृष्टि नहीं होती है। 'काम आप करो, नाम हमारा हो जाये, आपकी कृपा से' ये सब मिथ्या भाषण है।

सत्य यह है कि जिस दिन धर्म आ जायेगा, उस दिन श्री से दृष्टि हट जायेगी और श्री जी पर टिक जायेगी। पर क्या करें? महाराज! यहाँ सबकुछ समझ में आता है, जैसे-ही बाहर जाता हूँ तो पता नहीं चलता कि क्या हो जाता है। यहाँ होने पर राग से वैराग्य हो जाता है, घर जाते ही वैराग्य से वैराग्य हो जाता है। ज्ञानियो! वैराग्य से वैराग्य मत प्राप्त करो, राग से वैराग्य प्राप्त करो। मैं यह सुनना पसन्द नहीं करता हूँ कि पंचमकाल में धर्म नहीं है, लोगों के अन्दर भावना नहीं है। धर्म नहीं होता तो ये जीव बेचारे पीछे धूप में खड़े-खड़े जिनवाणी न सुनते। भावनायें सारे जगत् में हैं, दिखानेवाला चाहिये। ये बच्चे गोली-बिस्कुट को नहीं रो रहे, इसलिए रो रहे कि हमारे घर महाराज जी क्यों नहीं आये?

भैया! विशुद्धसागर से भी राग न करियो। इनका राग भी काम में न आये, काम में तो वैराग्य ही आये। **जो मनुष्यपर्याय स्वर्ग या मोक्ष को देनेवाली है, ऐसी महान्**

पर्याय को प्राप्त करके भी मूढ़ विषय-लालसा में जा रहा है। अल्प सुख के पाने से अपने द्वारा अपने ही नरक और तिर्यञ्च का पात्र बन रहा है, कोई किसी को नहीं बनाता।

ध्रुव सत्य है कि **न कोई नरक भेजता है न कोई स्वर्ग भेजता है। न गुरु भेजते हैं न प्रभु भेजते हैं। निज की परिणति ही नरक भेजती है, निज की परिणति ही स्वर्ग भेजती है, निज की परिणति ही सिद्ध बनाती है।** इसलिए कर्तृत्वपने को छोड़ो कि मैं सबका कर्ता हूँ, गुरु कर्ता हैं, प्रभु कर्ता हैं। जिस दिन कर्तृत्व बुद्धि छा गई, उस दिन तुम नाम के जैन होगे, लेकिन सिद्धान्त के जैन से शून्य हो जाओगे। क्योंकि जैनदर्शन का मूल सिद्धान्त ही नहीं, अपितु वस्तुव्यवस्था ही ऐसी है कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य में प्रवेश करता ही नहीं है। यही है द्रव्यदृष्टि, यही है अध्यात्म दृष्टि। निज में पर का नास्तित्व देखो और पर में निज का नास्तित्व देखो। निज में पर का अस्तित्व मत देखो, पर में निज का अस्तित्व मत देखो। संक्लेशता क्यों बढ़ रही है? हम पर में निज का अस्तित्व स्थापित करना चाहते हैं और वह नहीं हो सकता है और तुम शान्ति से जी सकते हो नहीं। **यदि शान्ति से जीना है तो निज का अस्तित्व निज में निहारो।** जो कहीं गया ही नहीं है, उसे देखो। जो कहीं गया ही नहीं है, मेरे पास ही है।

यह सत्य है कि जो आनन्द माँ जिनवाणी के आँगन में है, वह दूध पिलानेवाली माँ के आँगन में भी नहीं है। वह माँ सुलाती है, ये माँ जगाती है। वह माँ तो एक भव की रक्षा करके अनन्त भव में रुलाती है, ये माँ एक भव में ही अनन्त भवों से दूर कर देती है। कौन-से आँगन में रहना चाहते हो ? जिनवाणी माँ के आँगन में रहना चाहते हो तो अब घर जाने की कोई जरूरत नहीं है, मेरे साथ रहो। अब भोजन की चिन्ता मत करना तुम तो अंजुली लगाकर निकल जाना, गली-गली में नमोऽस्तु करनेवाले मिल जायेंगे।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।



उद्यम करने की प्रेरणा

सामग्रीं प्राप्य सम्पूर्णा यो विजेतुं निरुद्यमः।
विषयारिमहासैन्यं तस्य जन्म निरर्थकम्॥319॥

अन्वयार्थ— (सम्पूर्णा सामग्रीं प्राप्य) सब अनुकूल सामग्री को प्राप्त करके **(यः विषयारिमहासैन्यं विजेतुं निरुद्यमः)** जो विषयरूपी शत्रुसेना को जीतने का उद्यम नहीं करता है **(तस्य जन्म निरर्थकम्)** उसका संसार में जन्म व्यर्थ है।

भावार्थ— हे भव्यात्मन् ! सब अनुकूल सामग्री मिलने पर भी यदि विषयों के विष को नष्ट नहीं किया तो उस मनुष्य का जन्म लेना व्यर्थ है।

॥ सद्-देशना ॥

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज 'सारसमुच्चय' जी में कह रहे हैं कि जीव के अन्तस् में विराजा है अनन्तसुख-समूह। अपनी उस निज सुखस्वरूप महिमा का बोध न करता हुआ पर की महिमा की महिमा गा रहा है। यह अन्तस् की कुटिल प्रज्ञा का प्रभाव है। ये तो जीव बहुत सोचता है कि अमुक पुरुष कुटिल है, लेकिन यथार्थता यह है कि निज की प्रज्ञा में भी कुटिलता है जो कि आप दूसरे की कुटिलता को देख पा रहे हो। **जो जिसका ज्ञाता होता है, वह उसी को पहचान पाता है।** पर के परिणामों की कुटिलता की व्याख्या करना तो जीव ने सीख लिया, लेकिन अपने कुटिल भावों की दशा को नहीं समझ पा रहा है।

एक क्षण को ये जीव यदि परमात्मा के पादमूल में होने पर भी अपने आपको ज्ञेय बनाकर देखने लग जाये तो उसको उस स्थल पर भी अपनी वक्रता दृष्टिगोचर हो जायेगी। **जीव जितना सरल सहज होता जायेगा, उतना यह जीव अपने भावों को जानना प्रारम्भ कर देगा।** जितना सरल सहज होता जायेगा, उतना अपने परिणामों की सरलता से सरलता दिखना प्रारम्भ हो जायेगी, अपने भावों की कुटिलता से कुटिलता दिखना प्रारम्भ हो जायेगी। पानी के स्थिर होते ही पानी के अन्दर क्या पड़ा हुआ है, दिखने लगता है। पानी के स्थिर होते ही पानी के भीतर पड़ी एक-एक वस्तु आँखों से दृष्टिगोचर होने लगती है। कुछ भी नहीं करना। मैं तीर्थ में जाने के लिए भी नहीं कह रहा हूँ, पर्वत पर चढ़ने को भी नहीं कह रहा हूँ। जितना समय आप पर्वतारोहण को दोगे, जितना समय आप तीर्थभ्रमण को दोगे, उतना समय आज आप एकान्त स्थान में अपने आप को दे देना। मस्तिष्क को शान्त करके चिन्तन नहीं करना।

चिन्तन मस्तिष्क को गर्म कर देगा। जब चिन्तन मस्तिष्क को गरम कर देगा, तो चिंता कौन ठण्डा करेगी? चिन्ता तो और-गरम कर देगी। न चिंतन करना, न चिंता करना। मात्र शान्ति से बैठ जाना। क्योंकि तुम चिंतन करने का प्रयास करोगे तो चिन्ता ही शुरू कर दोगे। बस इतना पुरुषार्थ कर लेना कि मेरे मस्तिष्क में कोई वस्तु न आ पाये। सहज भाव।

जगत् में अनेक उन्मत्त पुरुषों ने साक्षी भाव की व्याख्यायें कीं, परन्तु वे साक्षी भाव समझ नहीं सके। अनेक स्थलों में तुम नाच चुके हो, अनेक स्थलों में तुम गा चुके हो और हँसकरके/मुस्करा करके लौट चुके हो। साक्षी भाव से गृहस्थी को निहारिये। न मैं कर्ता हूँ, न मैं हर्ता हूँ। न किसी को जिला रहा हूँ, न किसी को खिला रहा हूँ, न पिला रहा हूँ, न किसी के मरण का कारण बन रहा हूँ, न किसी के जीवन का कारण बन रहा हूँ। मैं तो मात्र देख रहा हूँ। जैसे जब दुकान में ग्राहक नहीं आता, तो मात्र देखता रहता है कि ये निकले वे निकले। जैसे मार्ग पर खड़ा पुरुष आने-जाने वाले लोगों को मात्र निहार रहा है, उनको बुला भी नहीं रहा है, भगा भी नहीं रहा है, मात्र निहार रहा है, ऐसे ही **हे जीव! अपने अन्दर उत्पन्न हुए भावों को न बुलाओ न जाने दो। वे आयेंगे और जायेंगे। तू मात्र देखना प्रारम्भ कर दे। उनके साथ जाना बन्द कर दे। यही तेरा निज के द्वारा निज का साक्षी भाव है, ज्ञायक भाव है।** जानो, जाने दो, जाओ मत। किसी व्यक्ति के द्रव्य को हरण करने के तुम्हारे मन में भाव आ रहे हैं, उस द्रव्य को जानने के साथ साथ ये जानो कि मेरे भाव कैसे आ रहे? बिल्कुल शांत बैठ जाओ, रीढ़ की हड्डी को सीधा कर लो, जैसे सामायिक करते हो। इसे मात्र सुनना नहीं, उसे जानना है। **जैनदर्शन में मोक्ष जाने की मूल विद्या है ध्यान।** तुम क्रियाकाण्ड में इतना बह चुके हो कि उस ध्यान विद्या से बहुत दूर चले गए हो। फिर लोगों को कहीं विपश्यना में जाना पड़ता है, कहीं दुनियाँ के क्लबों में नाचने जाना पड़ता है, कहीं पेट फुलाने-पिचकाने जाना पड़ता है। तुम वस्तुस्वरूप को क्यों भूल रहे हो ?

जरा देखो, श्वॉस चल रही है? जैसे तुम अपनी श्वॉस का वेदन कर रहे हो, ऐसे-ही जाते मन का वेदन कीजिये। इस समय मेरे पास मत रहना, भगवान् के पास मत रहना, मात्र आप वहाँ हो जहाँ नाक से श्वास बह रही है। चन्द्र नाड़ी, सूर्य नाड़ी। इन दोनों का वेदन करते हुए अभी श्वास के पास चलो, फिर वेदन करते हैं। कौन

कहता है कि चित्त रुकता नहीं है? कौन कहता है कि चित्त भ्रमित होता है? तुम श्वास देखना नहीं चाहते इसलिए चित्त रुकता नहीं है। अब ये देखो कि श्वास का वेदन कौन कर रहा है, उसे पहचानो। जो श्वास का वेदन कर रहा है, वह कौन है? मन। जिससे श्वास का वेदन कर रहा है, वह ज्ञान है। जो ज्ञान है, वही आत्मा है। जो जान रहा है, जो समझ रहा है, वही आत्मा है। आत्मा नाम की दूसरी वस्तु नहीं है। आप कैसे कहते हो कि मैं आत्मा को नहीं जानता हूँ? जो जान रहा है, जैसे आप भिन्न पदार्थों को ज्ञेय बनाते हो, ऐसे ही अपने भावों को ज्ञेय बना लो तो भगवान् से भी भगवान् बनने के लिये पूछने नहीं जाना पड़ेगा। जैसे परवस्तु को ज्ञेय बनाते हो, ऐसे-ही अपने भावों को ज्ञेय बना लो तो भगवान् से भी पूछने नहीं जाना पड़ेगा कि भगवन् ! मैं भगवान् कैसे बनूँ ? जब ज्ञेय बनाता है, तब ज्ञाता पर में जाता नहीं है। जब ज्ञाता पर में चला जाता है, तो निज को ज्ञेय बना पाता नहीं। मैं चाहता हूँ कि जैनकुल में आकरके, भारत की भूमि में जन्म लेकरके, एक बार उसे भी जान लिया जाय कि जिन बनते कैसे हैं ? लेखनी को आँखों से देख रहे हो, ज्ञान से जान रहे हो, वह ज्ञान भीतर है और जान रहा है बाहर। जो बाहर जान रहा है, उससे कह दो 'भैया ! तनक भीतर भी जान लो।'

भीतर होता है, बाहर भागता है। यह प्रकृति का नियम है। भीतर का बाहर नहीं भागेगा, तो संसार नहीं चलेगा। भीतर का भीतर हो जायेगा, तो नियम से मोक्ष मिलेगा। भीतर का बाहर नहीं होगा तो जो भीतर होता है वह बाहर फिकता है। भीतर का बाहर नहीं फिकेगा तो न संसार की कोई संतानें चलेंगी, न संसार चलेगा। **भीतर का बाहर होता है, तब संसार चलता है। भीतर का भीतर रह जाता है, तो भगवान् बन जाता है।**

होता भीतर है, फिकता बाहर है। होता भीतर है, बहता बाहर है। बाहर बहता है तो संसार दिखता है और भीतर होता है तो संसार से तिर जाता है। पानी कुयें के भीतर है, पाताल में है, लेकिन पाताल का पानी जमीन के खुदते ही बाहर फिंकता है। जो बाहर फिक चुका होता है, वह शीतल धर्म में न्यूनता लाता है। जो भीतर ही होता है, उसका धर्म अलग होता है। बहुत कठिन है भीतर रख पाना । ज्वालामुखी फूट पड़ते हैं। विषय गहरा है, तनक-सी बात कहने के लिए मैं इतना विषय कह रहा हूँ। न जड़ प्रकृति सहन कर पा रही है, न चेतन प्रकृति सहन कर पा रही है

भीतर की वस्तु। जैसे-जैसे जमीन में गैसें बनती हैं, ज्वालामुखी फूट जाते हैं, भीतर के लावे बाहर फेंकती है। प्रकृति नहीं सँभल पाई। भैया! गर्मी बहुत बढ़ती है तो मौसम सहन नहीं कर पाता, तुरन्त बादल हो जाते हैं। प्रकृति में गर्मी अधिक समय तक चल नहीं सकती है, आखिर में ठण्डा होना ही पड़ता है। चाहे 'समयसार' में बैठकर ठण्डे होओ, चाहे 'सारसमुच्चय' में बैठकर ठण्डे होओ, ठण्डा होना ही पड़ेगा। चाहे देश की गर्मी हो, चाहे समाज की गर्मी हो, चाहे मौसम की गर्मी हो, ठण्डा होना ही पड़ता है। समय दे दो। बेटे की माँ ने खीर बनाई, वह गरम है, वह चीखता है, चिल्लता है। चीखने-चिल्लाने से ठण्डी हो जायेगी क्या ? ऐसा अभागा है कि उसने थाली उठाकर फेंक दी, सो भूखे मरेगा और पत्नी का वात्सल्य टूटेगा तो कल से कहेगी कि जाओ, बना लो, खा लो। यदि ये ज्ञानी समय दे देता और कुछ नहीं बनता था तो एक माला लेकर बैठ जाता, एक माला फेर लेता, भगवान् का नाम लेता, तो यहाँ कर्म ठण्डे होते वहाँ खीर ठण्डी हो जाती और फिर अच्छे आराम से खाता। ज्ञानी! यदि समाज में, परिवार में कभी गरमा-गरमी हो भी जाए, कोई विकल्प आ भी जाय, तो तुम ठण्डा करने के लिए पंखा लेकर मत आओ, न मुख से फूको। नहीं-तो अशुद्ध हो जायेगी, अभक्ष्य हो जायेगी। थोड़ा समय दे दो।

ज्ञानी से पूछो कि जिस दिन माँ के गर्भ में आया था, उसी दिन बाहर आ गया था कि समय दिया था ? समय दिया था। नौ माह का समय न देते तो आप यहाँ खड़े मिलते ही क्यों ? गर्भाधान के बाद नौ महीने का समय दिया, तब बेटा घर में आया है। भैया! तुम चाहते हो जो मैंने आज सोचा वही हो जाये, वह कभी होने वाला नहीं है। समय दे दो। कितने युवा इस छोटी-सी उम्र में तनावग्रस्त होने लग गये। इनको बोध होना चाहिए कि हर वस्तु का समय आता है। समय दे दो, चिंता करने की कोई आवश्यकता नहीं है। कुछ लोगों को पैसा का विकल्प है, कुछ लोगों को बुड्ढों का विकल्प है। इन सबके लिए समय चाहिए पड़ता है। यदि साधु भी बनना है तो साधु बनके बैठ ही सकते हो, समय देना पड़ेगा। जब समय होगा, तो तुम मोक्ष चले जाओगे। इसलिए आज से चिन्ता नहीं करना, दो पर विश्वास रखना, भाग्य और भगवान्। उतावली का कोई काम नहीं है, समय दे दो।

वेद, वेदान्त, उपनिषद इत्यादि सब मौन ले लेते हैं, तब महावीर स्वामी का मौन खुलता है। एक गूढ़ विद्या को आपके सामने ला रहा हूँ। ज्ञानी बोले—महाराज जी

! सब धर्म करता हूँ, लेकिन कभी-कभी लगता है कि कुछ-और है और अपनी इस क्रिया से मैं थक जाता हूँ। मैंने कहा—ज्ञानी! यदि तू इस बात तक पहुँच रहा है, तो अब समय दे दो। और समय ऐसा देना पड़ेगा कि फिर जन्म देने वाली माँ और बेटे की माँ, इन दोनों से दूर होकर मेरे पास बैठना पड़ेगा। जिसको यह समझ में आ रहा है कि कुछ-और भी है, इसका मतलब है कि जब पुष्प आता है तो आपको लगता है कि केले फूल झड़ने के बाद लगेंगे। अण्डे के अन्दर तरल द्रव्य होता है, तरल से ठोस का निर्माण होता है। गर्भ के अन्दर तरल द्रव्य होता है, तरल से ठोस का निर्माण होता है। माँ का रज, पिता का वीर्य सात दिन तक कल-कल के रूप में गर्भाशय में रहता है। सप्ताह-सप्ताह बढ़ते-बढ़ते पाँच महीने के अन्दर शरीर की रचना हो जाती है। पाँच महीने का बालक माँ के गर्भ में घूमने लगता है। लेकिन जिस दिन गर्भाधान हुआ था, उस दिन कोई व्यक्ति देखता, इसमें बच्चा कहाँ है ? वहाँ दिखाई नहीं देता, वहाँ तो कल-कल तरल द्रव्य था। अण्डे के अन्दर भी तरल द्रव्य भरा होता है। अज्ञानी पापी यूँ समझता है कि ये जीव नहीं है, लेकिन तरल के अन्दर ही जीव है। वही जब संघटित होता है तो तरल के अन्दर ही शरीर स्फुटित होता है और वृद्धिमान होता है। फिर अण्डे के अन्दर से एक पक्षी निकलता है। जैसे तरल द्रव्य में से एक पक्षी प्रकट हुआ है, ऐसे-ही रज-वीर्य के संयोग से संतान प्रकट हुई है। ऐसे-ही तरल दूध से मक्खन का लौंदा निकाल लेते हैं और मक्खन से घी का लौंदा बना लेते हैं। जैसे तरल से ठोस बना है, ऐसे-ही संसाररूपी तरल आत्मा से भगवान् का पिण्ड प्रकट होगा, बाहर से कोई भगवान् नहीं आयेंगे।

अब सोच बदलने का समय आ गया है। हमने अण्डे को देखा है, परन्तु अण्डे के अन्दर होने वाली प्रक्रिया को नहीं देखा। आपने दिगम्बर मुनि को देखा है, आपने पिच्छी-कमंडलु की सेवा की, बहुत अच्छा किया है और करते ही रहना जब तक अन्तिम श्वास न निकले, छोड़ मत देना। आपने अण्डे को तो देखा है। पक्षी ने अण्डे को नहीं देखा, पक्षी ने अण्डे में बच्चे को देखा है। मादा पक्षी ने अण्डे को जन्म देकरके छोड़ नहीं दिया है, उस पर बैठी है, क्योंकि उसको बोध है कि कठोर के भीतर तरल और तरल के भीतर एक भगवान्-आत्मा है। अण्डे की कठोरता को देखते-देखते बहुत दिन बीत गये। दिगम्बर साधु के रूप को देखते-देखते बहुत दिन बीत गये। मादा पक्षी अण्डे के ऊपर बैठकर ओजाहार दे रही है। ओज दे रही है,

ऊष्मा दे रही है, भीतर कुछ हो रहा है। जब पूरा पानी बाहर निकल जाये, तो क्या बच्चा जन्म लेगा ? बाहर निकल जाये तो नष्ट होगा, भीतर रह जाय तो जब भी निकलता है तो एक बच्चा होता है। जैसे अण्डे के भीतर जो प्रक्रिया चल रही है, ऐसे-ही निर्ग्रन्थ चित्त में भीतर जो प्रक्रिया चल रही, वह भगवत्ता है। तुमने भेष के मुनि अनेक बार देखे हैं, भावों के मुनि भी देखना प्रारम्भ कर दो। कवच को जन्म नहीं दिया, कवच के साथ कुछ-और भी है। ऐसे-ही भेष को भी भगवान् बनने की क्रिया नहीं कहा है। भेष के भीतर कुछ है, उसका नाम है भाव। भाव का पानी निकल गया, भाव का द्रव्य निकल गया, तो मात्र अण्डे का छिलका पड़ा रह जायेगा, उससे कभी बच्चा नहीं निकलेगा।

ऐसे-ही योगी के भावों का तरल द्रव्य निकल गया तो भगवान् रूपी सोनचिड़िया सिद्धालय के लिए उड़नेवाली नहीं है। फिकता बाहर है जो भीतर होता है, वह तिरता है। पानी भूमि के भीतर था तो कुछ-और था। हर वस्तु को बाहर फिकने की उतावली होती है।

जब समाज की मीटिंग हो, उस समय मौन ले लो। कोई प्रसंग आ जाये तो अस्सी साल का बूढ़ा अट्ठाइस साल जैसा उचकता है। ऐसे-ही जब कोई विषय अन्दर भरा हो, फिर भी शान्त बैठ पाना कठिन है। जैसे-ही द्रोपती ने देखा कि गिर गया, उस विषय को भीतर ही रख लेती तो भीतर के खून न बहाने पड़ते। जब तुम भीतर की चीज को बाहर कर देते हो तो भीतर के खून बाहर निकलना प्रारम्भ हो जाते हैं। **विश्व में जितने विकल्प हुए हैं, वे भीतर की बात को भीतर नहीं रख पाये, बाहर फेंक दिए, तो अनर्थ हो गए।** ऐसा नहीं है क्या?

उत्पन्न भीतर होता है। बाहर फेंक दिया तो सन्तान दिख रही है। भीतर ही रख लेता तो भगवान् दिखता। अब समझ में आया क्या ?भीतर जो सप्त धातु थी, अन्तिम धातु को तू भीतर ही रख लेता तो आज महान् योगी बनकरके भगवत्ता की ओर जाता। भीतर की वस्तु को बाहर फेंका तो सन्तान तो दिख रही है, लेकिन साधुपना नहीं दिख रहा है। भीतर ही होता है। भीतर की वस्तु को जो बाहर फेंक देता है, वह संतान को जन्म देता है। भीतर की वस्तु को भीतर ही रख लेता है, तो फिर उसे वाष्पित करके ऊर्ध्वगमन कर लेता है। चाहे तुम नाली में छोड़ो चाहे तुम मोक्ष पधारो।

हर व्यक्ति के अन्दर ताकत है क्या? इस सारे समुदाय को मिल करके, जो हमारे आगम की गूढ़ विद्या है वह विश्वस्तर पर पहुँचाना चाहिए, नहीं-तो लोग यही कहेंगे कि जैनी यानि मंदिर तक, जबकि हम मंदिर तक नहीं हैं। पहले विशाल रूप नहीं होता तो वह मंदिर में स्थापित हो ही नहीं सकता। मंदिर में स्थापित कौन होता है ? हर व्यक्ति में मंदिर में स्थापित होने की योग्यतायें नहीं हैं। जो अन्दर स्थापित हो चुका होता है, वह मन्दिर में स्थापित होता है। जो अन्दर ही स्थापित नहीं हुआ है, उसे श्रद्धा के मंदिर में कौन स्थापित करेगा ?

भीतर की वस्तु को बाहर फेंकने की प्रक्रिया को बन्द कर दो। कुछ नहीं करना पड़ेगा, नियम से भगवान् बनेगा। बटलोई पर ढका ढक्कन स्वयमेव फिक सकता है, मात्र नीचे आग लगी हो। बीच में पानी व दाल है। उबाल आया, ढक्कन फिक गया।

मेरे मित्र ! जब ध्यान की आग लग जायेगी तेरे भीतर, वाष्पीकरण होना प्रारम्भ हो जायेगा, तो तेरी आत्मा की तस्तरी अपने आप सिद्धालय की ओर चली जायेगी। परन्तु बैठना पड़ेगा, समझना पड़ेगा। जैन परम्परा में एक महान् ग्रन्थ है 'पञ्चास्तिकाय'। इस ग्रन्थ में सारी विद्यायें भरी हुई हैं। मैं जो-जो व्याख्यायें कर रहा हूँ, सब 'पञ्चास्तिकाय' से कर रहा हूँ। समझना पड़ेगा। आपको युवाओं को प्रेरित करना चाहिए 'बेटा! स्वाध्याय करो।' ये मत कहो कि बेटा ऐसा मत करो, वैसा मत करो। तुम गलत मार्ग पर भी जा रहे हो तब भी स्वाध्याय करो। समझायेंगे तो पराधीन होंगे, समझ जायेंगे तो स्वाधीन होंगे। समझाने से कर्तृत्व भाव आयेगा, इसलिए किसी को समझाना नहीं। विदुर बन कर जीना। विदुर के भीतर कितनी गहरी सोच थी। जब कौरव व पाण्डव का विकल्प चल रहा था, तब विदुर ने एक दिन अवधिज्ञानी मुनिराज के चरणों में स्तुति करके पृच्छना की 'स्वामी ! ये कुरुवंश कब तक रहेगा ?' विदुर! पाण्डवों के द्वारा कौरवों का विनाश नियत है। तब भी चाचा दोनों भतीजों के राग में आ करके जाता है दुर्योधन के पास—'बेटा दुर्योधन ! ऐसा मत करो। **न्यायनीति ही श्रेयस्कर है।**' दुर्योधन मानता नहीं। तब विदुर एक उपवन में जाते हैं। उनने स्वयं को समय दिया और उत्तर खोज लिया। '**नान्यथा मुनि-भाषणं,**' निर्ग्रन्थ के वचन असत्य नहीं हो सकते। मेरा मुनियों से कहना है - जो विद्या नहीं आती हो, तो मौन रहना; परन्तु मुनि के सत्य व्रत पर दोष मत लगाना। आज तुमको अवधिज्ञान या मन:पर्ययज्ञान नहीं है और विमलसागर महाराज जैसा निमित्तज्ञान भी नहीं है। कोई

तुमसे पूछने आये कि मोड़ा होगा कि मोड़ी ? तो ये बताने मत बैठ जाना, क्योंकि यदि आपने बालक बोला लेकिन हो गई बिटिया, तो देखना तुम्हारी क्या आफत होगी। कहीं बोल दिया कि यहाँ पानी निकल आयेगा और नहीं निकला तो? इसलिए जिस विद्या का ज्ञान नहीं है उस विद्या में मौन रहना। नहीं है तुम्हारे पास प्रत्यक्ष ज्ञान, तो परोक्ष ज्ञान में अपनी साधना करो। ज्यादा उदार बनने की आवश्यकता नहीं है। नहीं-तो नीचे गिर जाओगे। विदुर ने निर्णय किया कि निर्ग्रन्थ योगी के वचन मृषा नहीं हो सकते। जब कौरवों का विनाश नियत है, तो दोनों के बीच में रहकरके मैं अपनी आत्मा का घात क्यों करूँ ? ऐसा निर्णय करके विदुर उपवन से उठ गये, जहाँ मुनिराज विराजमान थे वहाँ पहुँच जाते हैं, कहते हैं 'हे स्वामी ! जिसकी जो होनहार होनी है, अब उसे नहीं टाल पाऊँगा, लेकिन मैं अपने कल्याण को क्यों टालूँ?' विदुर ने जैनेश्वरी दीक्षा ले ली। दोनों पक्षों में समाचार पहुँचे, दोनों निहारते रहे। क्यों ? क्यों क्या है? जो है, सो है।

घर के बेटा-बेटी तुमको अधिक तंग करने लग जायें तो धीरे-से अपने मार्ग पर चलना, उनके मार्ग को बदलने के राग में अपने निज के मार्ग को बिगाड़ कर मत बैठ जाना। आप उनको समझाने की जगह स्वाध्याय की प्रेरणा दे देना। जब आप समझा रहे थे उसे, तो वह समझ कहाँ रहा था? जब स्वयं शास्त्र पढ़ेगा, तो स्वयं की समझ बनायेगा। क्या ऐसा होता नहीं है? मटके में भी कभी पानी भरो और वह ज्यादा भर जाय, तब रिसेगा तो पानी ही निकलेगा। विश्वास रखो, **तुम अपनी संतान को संस्कार नहीं दे पाओ, तो शास्त्र दे दो।** जब पढ़ेगा तो भरेगा और जब रिसेगा तो उसके मुख से जिनवाणी ही निकलेगी, तो अपने आप सुधर जायेगा। जो भरा जाता है, वही निकलता है। जब दूसरे को उपदेश करेगा, तो दूसरा कहेगा कि पहले तू तो अपना कर ले, तो अपने आप सुधरेगा। चलती बिरिया है, अच्छे-से जिनवाणी पढ़ने के लिए जगत् की वाणी छोड़ना। सभी लोग स्वाध्याय करना। जिनवाणी के सपूत जिनवाणी पढ़ने लग गये तो विश्वास रखना जैनदर्शन तो अपने आप ऊपर चला जायेगा।

धर्म की रक्षा स्वाध्याय से ही है। भैया! इतना ध्यान रखना कि कोई भी पत्रिका पढ़करके स्वाध्याय पूरा मत समझ लेना। आगम ही पढ़ना। ऐसा नहीं करना कि जैन गजट पढ़ लिया, कोई पत्रिका पढ़ ली जिसमें एक दूसरे विद्वानों की निन्दा लिखी

हो। उसे नहीं पढ़ना। एकदूसरे अपनी कषाय निकाल रहे हैं, वह नहीं पढ़ना। आज आपके समाज में युद्ध के स्थान पत्रिकायें हैं। दोनों विद्वान् एकसाथ भोजन कर लेंगे और लिखते हैं शत्रु बनकर। यह अच्छी बात नहीं है, शुभ समाचार नहीं है। इतिहास के लिये यह अच्छा करके नहीं जा रहे। आपके अन्दर कोई विचार है तो पास में बैठो और चर्चा करो, लेकिन लिखकरके एक इतिहास देकर मत जाओ कि हम लोग ऐसे लड़ते थे। आप यह मत सोचो कि आपका पेपर आपके लिए है। समझदार लोग तिजोड़ी में रखते हैं कि किस सन् में कौन-सी घटना घटी, रख लो इतिहास बनाकरके। इसलिये ज्ञानियो! ऐसा इतिहास बनाकर जाओ कि लोगों को 'रखना' न पड़े। लोगों को 'लखना' पड़े। इसलिए यहाँ आचार्य कुलभद्र स्वामी कह रहे हैं कि कितना पुण्य का उदय था? **सुन्दर शरीर मिला है, उत्तम कुल मिला है, जिनवाणी सुनने को मिली है, सभी इन्द्रियाँ व्यवस्थित हैं; परन्तु फिर भी जो जीव इन्द्रियविषयों से अपनी इन्द्रियों को विजय प्राप्ति में उद्यम नहीं कर रहा है, वह विषयरूपी महाशत्रु की सेना को जीतने का प्रयत्न नहीं कर रहा है, तो उसका जन्म निरर्थक है।**

आपके राज्य में जब किसी विदेशी ने आक्रमण किया और यहाँ के लोग उसी सेना को खाना-पानी दे रहे थे, तो अच्छा कर रहे थे कि बुरा कर रहे थे ? बुरा कर रहे थे। जब वे देश का विघटन करेंगे तो वह देश के बाहर होगा क्या ? जब वह आक्रमण करेगा तो तेरा घर भी साथ में उजड़ेगा। ये तो ऐसी बात कर रहे कि जंगल में लग गई आग और वह एक वृक्ष पर जाकर बैठ गया और देख रहा है कि ये जल गया वो जल गया। अरे! इतना तो सोच अभागे कि बैठा तो उसी जंगल में है जहाँ आग लगी है। जब सब जलेगा, तो तेरा भी नम्बर आयेगा। जिसने विदेशी सेना को भोजन-पानी दिया, उसने आत्मघात ही तो किया, कि दूसरे का किया ?

ये पाँच-इन्द्रिय सेना है विदेशी साम्राज्य वालों की, उसको तूने भोग्य सामग्री दी, तो यह तूने निज आत्म-किले को नष्ट करने के लिए दी कि नहीं दी ? अब सोच तू ज्ञानी है कि अज्ञानी है ? इसलिए अज्ञानी हो । लेकिन जानकर कह रहे हो कि बिना जानकर कह रहे हो ? 'जानकर।' इसलिए ज्ञानी हो। हे अज्ञानी ज्ञानियो ! ऐसा मत करो कि अपने ही नाश के लिए विदेशी सेना को सामग्री दे रहे हो। और बड़े अच्छे-से बुद्धिपूर्वक दे रहे हो। सुन्दर-से-सुन्दर देते हैं तुम तो आओ, खाओ और मेरे संयम-शील रूपी दुर्ग को नष्ट कर दो।

सबकुछ अनुकूलता मिलने पर भी जो जीव विषयसुख से दूर होने का उद्यम नहीं कर रहा है, उसका जीवन निरर्थक है। अब स्वयं को समय देना सीखो। स्वाध्याय करो। आँखें अक्षरों को देखेंगी, आत्मा अर्थ को देखेगी, तो अनर्थ हो ही नहीं सकता।

जहाँ आँख और मन दोनों स्वतन्त्र हुए, कि अनर्थ हुआ। इन आँखों को आप अक्षरों पर रखो और मन को अर्थ पर रखो, तो तेरी विषयों से रुचि हट जायेगी।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।



सु-वचन सु-भावना

निरवद्यं वदेद्वाक्यं मधुरं हितमर्थवत्।
प्राणिनां चेतसोऽह्लादि मिथ्यावाद-बहिष्कृतम्॥320॥

अन्वयार्थ— (वाक्यं निरवद्यं) वचन ऐसा बोलना चाहिए जो पापगर्भित न हो **(मधुरं)** अच्छा हो **(हितमर्थवत्)** हितकारी हो, अर्थ सहित हो **(प्राणिनां चेतसोऽह्लादि)** प्राणियों के चित्त को प्रसन्न करने वाला हो तथा **(मिथ्यावाद बहिष्कृतम्)** मिथ्यावाद से रहित हो।

भावार्थ— हे भव्यात्मन् ! वचन ऐसा बोलो जो पाप रहित हो, अच्छा हो, हित करने वाला हो, अर्थवान् हो, समस्त जीवों के चित्त को प्रसन्न करनेवाला हो तथा मिथ्यात्व से रहित हो।

॥ सद्-देशना ॥

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रंथराज 'सार समुच्चय' जी में कह रहे हैं कि- वचन हित-मित-प्रिय बोलो। तुम्हारे वचन बाण न बनें वीणा बने।

भैया! कितने ही सम्पत्ति के विकल्प आ जायें, लेकिन माँ के उदर को मत भूल जाना। आँख बन्द करके देख लेना कि हम तीनों/चारों एक ही माँ के उदर में रहे थे वहाँ कभी नहीं सोचा था कि बाहर जाकर लड़ेंगे। यहाँ तो माँ के उदर की बता रहे हो, लेकिन महावीर कह रहे हैं कि तुम अहिंसा माँ के उदर के भैया हो, तुम किससे लड़ रहे हो ? आगम का चिंतन प्रारंभ करो, जामन देना प्रारंभ करो। बहते दुग्ध को जामन की कणिका से ही तुम थक्का बनाना जानते हो, तो बहते विचारों को जिनवाणी का शुद्ध जामन डाल दो, एकता का थक्का बन जायेगा। कुछ मत करो, **चिन्तन बदलो तो चित्त बदल जायेगा और चित्त बदल जायेगा तो चारित्र बदल जायेगा।**

आचार्य भगवान् 320 नं. के श्लोक में कह रहे हैं 'निरवद्यं,' ऐसे शब्दों का प्रयोग करो जिससे किसी का वध न हो जाय। वध न हो जाय, ऐसे शब्दों का तो प्रयोग करो-ही-करो, क्योंकि वध करना तो हिंसा है ही, परन्तु किसी को बदनाम करना भी घोर हिंसा है।

व्यक्ति छोटे चिन्तन से ऊँचा नहीं सोच पाता। बेटा ! तू कोई गलती भी कर देगा और यदि तेरे दादा तुझे पीटने आये, गलती तेरी ही थी, तब भी मैं कहूँगा कि दो

मिनट शान्ति से बैठ जाओ, अभी तुम आवेग में हो, विवेक में नहीं हो। यदि तुम उस अट्ठारह वर्ष के युवा को अशुभ सोच रहे हो, तुम अस्सी साल के होकर जाने वाले हो, वह अस्सी साल और जियेगा और जैनधर्म की ध्वजा फहरायेगा, तुम्हारे वंश का दीप वही जलायेगा, इसलिए थोड़ा धैर्य रखो और खोज करो कि इसने गलत किया तो किया क्यों है ? इससे हो गया है कि किया है और किस विधि से किया है ? भूल को सुधरवाइये, परन्तु भूल करने वाले को संसार से विदा मत कीजिए। उसको जीने दो, तुम जानेवाले हो। लोगों के सोच अभी बहुत छोटे हैं। यदि मैं अस्सी/सौ साल का हूँ और प्रशमसागर आज के मुनिराज हैं, मैं इनको समझाऊँगा भैया! मैं तो जा रहा हूँ, इस दिगम्बरत्व को आपको आगे चलाना है, इसलिए इनकी रक्षा करना। श्रेणिक के पुत्र कुणिक ने अपने पिता श्रेणिक को जेल में डाल दिया। श्रेणिक की सेना से नायक कहता है 'स्वामी! आदेश करो। बेटे में कितनी ताकत है? मैं इसको अभी परास्त कर सकता हूँ।' कुणिक, श्रेणिक को त्रास दे रहा था। बेटा पिता को त्रास दे रहा था। श्रेणिक कहता है 'हे मंत्री ! हे सेनापति ! हे सेनानायक! इस कुणिक को कुछ मत करना।' क्यों ? 'मैं तो जानेवाला हूँ, परन्तु इसकी मृत्यु हो गई तो भविष्य का मगध साम्राज्य सूना हो जायेगा, क्योंकि भविष्य का साम्राज्य इसी के हाथ में होगा, इसलिए इसे कोई मारो मत। स्वयं की पीड़ा सहन करते हुए पिता बोल रहा है कि मगध का साम्राज्य तो इसी का होना है। ये था राजा श्रेणिक।

जो मात्र अपना राज्य अपने जीवन को देखता है, वह राजा नहीं होता, वह विलासी भोगी होता है, मात्र सुख देखता है। जो प्रजा को वर्तमान में भी सुखी देखना चाहता है और भविष्य में भी सुखी देखना चाहता है, उसका नाम है सम्राट्। जो धर्म को वर्तमान में भी देखना चाहे, भविष्य में भी देखना चाहे, उसका नाम है सच्चा आचार्य धर्मात्मा। जो मात्र निज को देखे और निज के प्रभाव को देखे, वह है सम्राट्-जैसा विलासीपना। **मोक्षमार्ग लोक-विलासिता का मार्ग नहीं है। मोक्षमार्ग आत्मविकास, आत्म-उद्धार और जिनशासन की प्रभावना का मार्ग है।** यह विषय प्रत्येक योगी के कानों तक पहुँचना चाहिए, प्रत्येक श्रावक के कानों तक पहुँचना चाहिए।

त्रिशला का बेटा, सिद्धार्थ का लाल महावीर को समझ लिया, पर महावीर को नहीं समझा। त्रिशला के महावीर को देखते हैं तो सात हाथ का शरीर था, चैत्र शुक्ला त्रयोदशी को जन्मे थे, ये सिद्धार्थ के महावीर थे, जिनका अभिषेक सुमेरू पर्वत पर हुआ था, देवों ने पंचकल्याणक मनाये थे, ये त्रिशला के महावीर थे, सिद्धार्थ के महावीर

थे; लेकिन महावीर के महावीर को देखिये। जो महाव्रतों से युक्त थे, वे महावीर के महावीर थे। जो आँगन में खेले थे, ये सिद्धार्थ और त्रिशला के महावीर थे। महावीर के महावीर की खोज करो। कब खोज पाओगे ? जैनदर्शन में एक बहुत बड़ी विद्या है। मुनिराज को न आहार की चिन्ता, न पानी की चिन्ता, न रहने की चिन्ता। सब काम स्वतन्त्र कर दिए हैं, समाज पर छोड़ दिए हैं, इसका उद्देश्य क्या है?

परम तत्त्व के अन्वेषण के लिए, खोज के लिए, गवेषणा के लिये साधु को इतना स्वतंत्र छोड़ दो। न अपनी कहो उनसे, न उनकी सुनो उनसे। कुछ मत करो, बस तत्त्व-उपदेश सुन लो, बाकी पूरे समय खाली छोड़ दो। बस, स्वामी! आप खोजो। हम जितनी बार दर्शन करते हैं उतना पुण्यास्रव होगा। बराबर होगा, बिल्कुल सही कह रहे हो। लेकिन ऐसे दर्शन करो कि तुम्हें उनके दर्शन होते रहें और उनके दर्शन उनको होते रहें। ऐसा मत करो कि तुम देह के दर्शन के राग में, उनको उनके दर्शन न हो पाये। बहुत कठिन नहीं है, बहुत सरल है। जो आनन्द आँगन में आता है, वह कमरों में नहीं आता।

ज्ञानियो ! तुम्हारे बेटे की माँ के तो कमरे होते हैं और तुम्हारी माँ का होता है आँगन, जिसमें सब एकसाथ बैठते हैं। ये भगवती माँ जिनवाणी का आँगन है, सब एकसाथ बैठे हैं, कितना आनन्द आ रहा है। ध्रुवसत्य है कि **जो आनन्द अखण्डता में है, वह आनन्द खण्ड-खण्ड में होता नहीं है।** नगर में कोई भी दिगम्बर मुनि आता है, तुम यह मत सोचना कि कौन-से संघ के और कौन-से मुनिराज हैं, प्रवचन देना जानते हैं कि नहीं जानते? जैसे अभी नमोऽस्तु-नमोऽस्तु कर रहे हो, भीड़ लगी है, सभी साधुओं के साथ ऐसे-ही व्यवहार करना। जैसे अभी तुम्हारा अध्यक्ष जाता है कि भैया बन्द कर दो, चौका बहुत लग रहे हैं। कहीं ऐसा न हो कि भैया! महाराज जी आये हैं, चौका लगा लो, तो वह कहे कि हमारा सिर दर्द कर रहा। नहीं भाई! नगर में साधक आते हैं, लेकिन सामूहिक चौके की परम्परा मत डालना। जिस दिन सामूहिक चौका लगने लग जायेगा, उस दिन हमारी मातायें घर में चौक पूरना बन्द कर देंगी, वे ही बूढ़ी दादी चार छः पहुँच जायेंगी, भोजन करा कर आ जायेंगी।

जब साधु अंजुली लगाकर स्वतन्त्र होकर विचरण करता है, जब गलियों-गलियों में नमोऽस्तु-नमोऽस्तु होता है, तब लगता है कि भगवान् महावीर का शासन जीवन्त है। इसलिए भैया! जैसे भाव आज हैं वैसे भाव बनाकर रखना।

हिंसा रहित वचन मधुर हो, हितवान हो, अर्थवान् हो। व्यर्थ में यहाँ वहाँ की बातें नहीं। अर्थवान हो, जिस शब्द में कोई अर्थ निहित हो। ऐसा नहीं कि माहौल ठीक करने को ये हँसो-हँसाओ, कर्मबन्ध करो। तुम चारित्रमोहनीय का बंध करो, दूसरे से कराओ। आज आनन्द यात्रा चल रही है, ऐसी आनन्द-यात्रा कि हँसो-हँसाओ, स्वयं बंध करो, दूसरे से करवाओ। अरे! आत्मयात्रा करो। हँसने-हँसाने के लिए दुनियाँ में बहुत सारे साधन हैं, टेलीवीजन रखे हुए हैं। नाटक दुनियाँ में बहुत होते हैं। मोक्षमार्गियों के बीच में जगत् की कोई आनन्द-यात्रा नहीं। मात्र एक आत्मयात्रा। वात्सल्य/करुणा जगे, हँसने-हँसाने से कुछ नहीं मिलता। हितकारी वचन हो। 'अरे! धूप आ गई।' सबको दिख रहा है कि धूप आ गई, तो-फिर यह कहने की क्या आवश्यकता है? 'देखो महाराज जी! बादल हो गये।' जहाँ तू खड़ा है, वहीं तो मैं खड़ा हूँ। मेरी भी दो आँखें हैं, मुझे भी तो दिखाई दे रहा है कि बादल हो गए। ये कहने की क्या आवश्यकता है? आज आँखों वाले अंधे ज्यादा हैं। 'देखो महाराज! कितने लोग बैठे।' अब यह कहने की क्या जरूरत है? हमें भी दिख रहे हैं। कुछ ऐसी बात बताओ जो हमें न दिख रही हो। यदि ऐसा चिन्तन बन गया, तो बिना मौन लिए लोग मौन हो जायेंगे। ज्ञानी ! हमसे वही बात करना जो हमें पता न हो और दिख न रही हो। जो दिख ही रही हो, मालूम ही हो, वह बात क्या कहना? देखो महाराज! नीचे से कितनी आवाज आ रही है। अरे! यह तो हमें भी सुनाई दे रही है, बताने की क्या जरूरत है? **जिसमें अर्थ निहित हो,जो प्राणियों के चित्त को (मन को) आह्लादित कर दे, ऐसी भाषा का प्रयोग करना।** किसी प्रकार के मिथ्या वचन न हों, ऐसे वचन बोलना सत्यव्रत है, सत्यधर्म है, सत्य-अणुव्रत है, भाषा समिति है, वचन गुप्ति है, यही धर्म है।

जीव कर्म से महान् होते हैं, ऐसा प्रचार किया जाता है; लेकिन सत्यता यह है कि जो महापुरुष होता है वह जन्म से ही महान् होता है। उनके जो कर्म होते हैं, वे न भी करें तब भी जन्म से महान् हैं। जन्म से महान् बनने के लिए तैयारी आज से करना पड़ेगी। एक शिल्पकार जो पाषाण की प्रतिमाओं को गढ़ता है, उस पाषाणखण्ड से प्रच्छना करो कि आपने अपने जीवन में कितने संकटों को सहन किया है? उस पत्थर की प्रतिमा को गढ़ते समय एक बार की छैनी मारने से कहीं पत्थर नहीं टूटता है, अनेकानेक छैनियों का सामना करता है तब कहीं पत्थर टूटता है। इसी प्रकार

परमात्मा **एक जन्म के कर्म करने से महान् जीव नहीं बनता है। जब अनेक जन्मों के पुण्य का प्रबल संयोग उसे मिलता है, तब कहीं वह जीव परमात्मपद को प्राप्त करता है।**

श्रमणपरम्परा में परमात्मा अवतार नहीं लेते। जो एक बार परमात्मा हो चुका होता है, वह पुनः उतर कर नहीं आता है। आप भगवान् को भगवान् मानते हो, इसलिए भगवान् से दूरियाँ खड़ी होती हैं। भगवान् को पहले भगवान् नहीं मानना चाहिए। अब यदि आपने भगवान् को भगवान् ही मान लिया, तो भगवान् भगवान् रहे आयेंगे और भक्त भक्त रहा आयेगा। हम लोग किसी का अनुचर बन कर जीना पसन्द नहीं करते। यह दास परम्परा नहीं है, यह भक्त परम्परा है। परमात्मा को परमात्मा मानने की दृष्टि को ठीक करना पड़ेगा। भगवान् महावीर स्वामी को भगवान् मानने के पहले इंसान मानने की आवश्यकता है। जब तक इंसान नहीं बन जाता है, तब तक भविष्य में कोई भगवान् नहीं बन सकता है। परमात्मा को परमात्मा मानने से भक्ति का जन्म तो होता है, लेकिन भगवान् बनने का जन्म नहीं होता। परमात्मा को परमात्मा मानने से भक्ति का जन्म तो हो जाता है कि कोई हमसे विशिष्ट है, लेकिन स्वयं के भीतर भगवत्ता प्रकट करने का जन्म नहीं होता। एक ईश्वर एक अधिकार, इसे हम नहीं स्वीकारते। अनेक ईश्वर अनेक को अधिकार हम स्वीकारते हैं। यदि हमने सोच लिया कि एकमात्र एक ही पुरुष देश का सम्राट् बन सकता है, तब आप कभी भी प्रयास नहीं करेंगे कि मैं भी सम्राट् बन सकता हूँ। विश्व को गणतन्त्र परम्परा देने वाला वैशाली का गणतन्त्र है। यह महावीर का साम्राज्य है। जिस गणतन्त्र परम्परा को विश्व ने स्वीकार किया है, यह आज की परम्परा नहीं है। गणतन्त्र राज्य वैशाली का राज्य था, जहाँ योग्यता को सम्राट् स्वीकारा जाता था।

आत्मा के तीन प्रकार किये। वहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा। परमात्म दशा अंतिम दशा है। इसके पूर्व आत्मा की दो अवस्थायें और हैं। वहिरात्मभाव, अन्तरात्मभाव। आत्मा के क्रमिक विकास की अन्तिम अवस्था परमात्मा है। वह परमात्मा कोई निश्चित पुरुष नहीं है। यदि किसी निश्चित पुरुष को आपने परमात्मा स्वीकार लिया है तो आपका सम्पूर्ण पुरुषार्थ व्यर्थ है, फिर साधु बनने का उद्देश्य क्या ? पाप छोड़ने का उद्देश्य क्या ? पुण्य करने का उद्देश्य क्या ? पाप-पुण्य से रहित होने का उद्देश्य क्या ? एक आत्मा का परमात्मा में कैसे विकास होता है ? ध्यान रखना, वर्द्धमान भी

कभी आप जैसे थे। **आत्मा से आत्मा के विकास का जो मार्ग है, उसका नाम तीर्थंकर है।**

जिस दिन तुम वर्द्धमान को वर्द्धमान बनते देख लोगे, उस दिन तुम प्रातः की बेला में नहीं घूम पाओगे। घास के ऊपर, छड़ी हाथ में लेकरके, मस्ती में घूम रहे थे। मार्ग में वनस्पति मिल गई, उसे डण्डा मार दिया, उसके पत्ते-पत्ते नीचे बिखर गये। मेरे मित्र! वर्द्धमान कहेंगे कि मत मारो तुम उस पत्र पर छड़ी, आपको मालूम होना चाहिए कि मैं भी कभी अकौआ की पर्याय में था। किसी को नहीं था मालूम कि अकौआ की पर्याय में महावीर बैठे हुए हैं। हे कुंदकुंद ! आपको वनस्पति में भगवान् दिखता है, लेकिन इन अभागी आँखों में निर्ग्रन्थों में भगवान् न दिखे तो ये आँखें आँखें नहीं, काँच के कंचे हैं। एक पत्ती को भी मत तोड़ना। इस मुख की हड्डियों को साफ करने के राग में तुमने कितने भगवानों को तोड़ दिया है। उन भगवान् से पूछ लेना। जो तुम तोड़ रहे हो, वह भविष्य का भगवान् है। जिसे तुम खा रहे हो, वह पूर्व का पिता का कोई जीव है। अकौआ की पर्याय से, कषाय के मन्द उदय से, जब क्रमिक विकास हुआ, तब शेर की पर्याय तक पहुँच गए।

किसी जीव को आज से हेय मत समझना। किसी जीव को छोटा मत समझो। नाली में जो कीड़ा घूम रहा है, उसे भी हीन मत समझना, उसे गाली देने का मन मत करना, क्योंकि ये भविष्य के भगवान् घूम रहे हैं।

हम एक ईश्वर को नहीं मानते। आत्मा का क्रमिक विकास होता है। महावीर स्वामी के जीव से पूछो - आप ऋषभदेव के समवसरण में मारीचि के रूप में थे, लेकिन हे मान! तेरे से महान् जगत् में कौन होगा ? जब सुन लिया था कि भविष्य का भगवान् मारीचि होगा, तब मन में आ गया था कि जब मैं भी भगवान् हूँ, तो क्यों सुनूँ इनकी वाणी ? तब महावीर बनने वाला जीव समवसरण से बाहर निकल गया था। तब भी उसे गाली मत देना। जब लोई नहीं होगी, तो रोटी कहाँ से बनेगी ? आटा नहीं होगा, तो लोई कहाँ से होगी ? आप कच्चे आटे को नहीं खाते हो, लेकिन कच्चे आटे को फेंका भी नहीं जाता हैं। कच्चा आटा नहीं होगा तो रोटी बनेगी कैसे ? मिथ्यादृष्टि नहीं पूजा जाता, लेकिन मिथ्यादृष्टि की अवहेलना भी मत करना। मिथ्यादृष्टि नहीं होगा तो सम्यग्दृष्टि कौन बनेगा ? और सम्यग्दृष्टि नहीं होगा तो महाव्रती कौन बनेगा ? महाव्रती नहीं होगा तो अरहन्त कौन बनेगा ? अरहन्त नहीं होगा तो सिद्ध कौन बनेगा ? सोच की विशालता की आवश्यकता है।

देश के किसी भी नागरिक के प्रति कलुषित परिणाम मत कर बैठना, क्योंकि क्या मालूम तुम्हारे आगे-पीछे या बगल में बैठा जीव भविष्य का दिगम्बर मुनि हो। वह अंजुली लगाकर तुम्हारे द्वार पर आयेगा तो तुम कहोगे भो 'स्वामी ! आठ दिन हो गये, पड़गाहन करने को नहीं मिला, पधार जाओ स्वामी।' आज आपके मन में आ रहा है कि ये कौन-सा बालक बैठा हुआ है, लेकिन उस दिन आपको समझ में आयेगा कि ये जो बालक था वही भविष्य का भगवान् है। सिंह की पर्याय में कौन जानता था कि ये महावीर है? **जब नियोग आता है तो संयोग सहज मिलता है। संयोग के मिलते ही जो अधम आत्मा होती है, वही उद्यम करके परमात्मा होता है।** जब दो दिगम्बर मुनि आकाशमार्ग से जा रहे थे, उस समय महावीर का जीव क्या कर रहा था ? यह कभी मत कहना कि पापी जीव को उपदेश मत देना। सोच बदल दो कि महाराज! घण्टों के प्रवचन करने से मिलता क्या है? आपको क्या मालूम है कौन-सा चना भाड़ में कब सिक कर उचट जाये ? दस भव पूर्व भगवान् महावीर स्वामी का जीव सिंह की पर्याय में था। सिंह की पर्याय में वह सामायिक नहीं कर रहा था, एक मृग पर पंजा मार रहा था। इसलिए पापी को पापी मत कहना। देखनेवालों की आँखें पाप को देखती रहती हैं और पाप करने वाले की आत्मा पवित्र हो जाती है। यदि किसी से दोष हो गया, अपराध हो गया, आपने देख लिया कि पापी जीव है, लेकिन वह पाप करते ही द्वितीय क्षण में पश्चात्ताप में डूब गया कि हाय! यह मैंने क्या कर डाला ? वह तो पश्चात्ताप करके अपनी सफाई कर चुका था, तुम पाप को देखनेवाले तुम पाप ही देखते रहे और वह पाप करके, पाप का पश्चात्ताप करके परमात्मा हो लिया और पाप देखने वाले उसे पापी कहते हुये नरक में चले गये।

योगियों ने संबोधा—हे भावी भगवान्! अहिंसा का नाद करने वाले ! ये आप क्या कर रहो हो ? शेर, जो हिरण पर पंजा मार रहा था, उसका पंजा हट गया, आँखों में आँसू आ गए। पर्याय में शेर दिख रहा था, परिणामों में श्रावक हो गया था और एक अन्तर्मुहूर्त के अन्दर शेर सम्यग्दृष्टि श्रावक बन गया। भैया! जिसका भोजन मांस हो, वह जीव उपवास करे। मांसाहारी जीव शेर भी योगी की वर्गणाओं को देखकरके श्रावक हो गया। सूखे पत्ते खाने लग गया, झरनों का पानी पीने लग गया, अष्टमी चतुर्दशी के दिन प्रोषध करने लग गया और तपस्या करते-करते सल्लेखनापूर्वक मरण करके वह शेर स्वर्ग में देव हो गया। कहाँ से पुरुषार्थ प्रारम्भ किया ? बहिरात्मा

अन्तरात्मा हुआ और अन्तरात्मा होकरके एक दिन वह आया जब माँ त्रिशला के गर्भ में अंतिम तीर्थंकर के रूप में अवतरित हुए। पुनः पुनः कोई दूसरे तीर्थंकर नहीं आये, वही तीर्थंकर नहीं आये, प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ की आत्मा नहीं थी, वे अजितनाथ की आत्मा नहीं थी। ये भगवान् महावीर का जीव स्वतन्त्र है। पश्चात् वहाँ से च्युत होकरके त्रिशला माँ के गर्भ में आये।

बेटा गर्भ में आये तो एक माँ मिट्टी खाने की इच्छा रखती है, एक माँ मिर्च खाने की इच्छा रखती है। एक बेटा गर्भ में आये तो माँ क्रूर परिणाम रखती है, एक माँ को 'दोहला' होता है। **गर्भवती माँ की जो इच्छायें गर्भ धारण करने पर होती हैं, उसका नाम दोहला है।** जब रावण अपनी माँ के गर्भ में आया तो उस माँ को दोहला हुआ कि नंगी तलवार में चेहरा देखूँ। अब समझ लो कि कैसा जीव होगा। जिस माँ को मिट्टी खाने के परिणाम हो रहे हैं, समझ लो कि इसके गर्भ में कोई अजगर का जीव पल रहा है। धन्य हो उस माँ को जिसको दोहला हो रहा है कि सम्मेद शिखर की वन्दना करूँ, मैं सोनागिर की वन्दना करूँ। एक को दोहला हो रहा है कि कैदखाने के सभी कैदियों को छोड़ दिया जाये। तीर्थंकर की माँ के परिणाम देखो। प्रज्ञा कितनी प्रशस्त हो जाती है।

माँ को गर्भ के समय सोलह स्वप्न आते हैं। स्वप्नों के आने से तीर्थंकर नहीं हुए हैं। **स्वप्न न अच्छा करते हैं, न बुरा करते हैं। अच्छा या बुरा होनेवाला होता है, उसकी सूचना देते हैं।** तीर्थंकर की माँ सोलह स्वप्नों को देख, प्रातः जाग करके, नित्य क्रिया करके, महाराज सिद्धार्थ से पृच्छना करती है। उन्होंने स्वप्न के अर्थ का बोध कराया और कहा, हे देवी ! तेरे गर्भ में ऐसा कोई महापुरुष तीर्थंकर है जिसके माध्यम से विश्व का कल्याण होने वाला है। रावण का जन्म हुआ, कंस का जन्म हुआ तो शत्रुओं के घर में बिना चलाये अस्त्र चलने लग गए, उनके घर में उपद्रव होना प्रारम्भ हो गया। आप भी तो बोलते हो कि हमारी गद्दी गुदगुदा रही है, कुछ है। बायीं आँख फड़क रही है, कुछ है। शत्रुओं के घर में उपद्रव होना प्रारम्भ हो गए। परन्तु जब तीर्थंकर का जन्म होता है तो उस काल में नरक के नारकी को भी एक क्षण को शान्ति मिल जाती है।

पुष्प छोटा-सा होता है, बोंड़ी होती है, तब पता नहीं चलता है कि इसमें कितनी सुगन्ध है। जब बोंड़ी खिल जाती है, तो गलियाँ महकने लगती हैं। जब एक वनस्पति

इतना पराग संचय कर लेती है, पुष्प के अन्दर इतनी सुगन्ध है कि पुष्प के खिलते ही उसकी महक कहाँ-कहाँ तक पहुँचती है। ऐसे-ही जो जीव अनन्त भवों में पुण्य की वर्गणाओं को संचित करता रहता है, तीर्थंकरप्रकृति एक खिला हुआ पुष्प है, जिसके जन्म लेते ही नारकी तक को सुगन्ध महसूस होती है, आनन्द आता है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को कितना प्रभावित करता है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कर्ता तो नहीं होता है, पर एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को कितना प्रभावित करता है। जो यूँ कहते हैं कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य को कुछ भी नहीं करता, यानि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का उपादान कर्ता नहीं होता। यदि एक द्रव्य दूसरे का निमित्तकर्ता भी नहीं होता होता, तो तीर्थंकर के जन्म होते ही साढ़े बारह करोड़ बाजे अपने आप कैसे बजने लगते हैं?

कुछ वे अभागे होते हैं जिनके जन्म के समय थाली भी नहीं बजती और मरते समय कोई रोनेवाला नहीं मिलता। साढ़े बारह करोड़ बाजे बजे और इतने रत्नों की वर्षा हुई कि उसी दिन से ये भूमि रत्नगर्भा हो गई। जब तीर्थंकर बालक का जन्म होता है तो पन्द्रह माह पहले से रत्नों की वर्षा प्रारम्भ हो जाती है। इतने रत्न बरसे कि महाराजा सिद्धार्थ के नगर में क्या पूरे देश में रत्न तो बहुत थे, लेकिन भीख माँगने वाले नहीं थे। एक वे लोग हैं जिनके घर में मोड़ा जन्म लेले तो वह सिर पकड़ता है कि अब इसका खर्च कहाँ से चलाऊँगा ? और उसकी व्यवस्था के लिए पड़ौस में माँगने जाता है। एक वो जीव है जिसके जन्म लेते ही अटूट सम्पत्ति/रत्नों की वर्षा होती है। उन रत्नों को उठाने के लिए भिखारी नहीं मिलते।

तीर्थंकर परमात्मा के जन्म होते ही सौधर्म इन्द्र का सिंहासन डोलने लग गया और अवधिज्ञान से तीर्थंकर का जन्म जान करके पिता के आँगन में आकरके तांडव नृत्य करता है और बालक को सुमेरू पर्वत पर ले जा करके अभिषेक करता है। सौधर्म इन्द्र सोचता है कि इतना छोटा-सा बालक और इतने विशाल घट? यदि इनसे अभिषेक किया, आज के अभिनव बच्चे को नहलाने से कहीं निमोनिया न हो जाय। ये छोटा-सा तीर्थंकर बालक, इतने विशाल घटों से अभिषेक होगा तो यह कहीं बह न जाय। तीर्थंकर परमेश्वर जन्म से ही तीन ज्ञान के धारी होते हैं। उन्होंने अपने अवधिज्ञान से जान लिया और समझ लिया कि सौधर्म इन्द्र मेरे बल पर शंका कर रहा है। वर्द्धमान चरित्र में आया है कि भगवान् महावीर स्वामी की नाक में पानी

की बूंद चली गई, उससे उनको छींक आई, जैसे-ही छींक आयी तो उस आवाज को सुनकरके सौधर्म इन्द्र सिंहासन से गिर पड़े। भैया! यह लोक की रीति है, साइकिल चलाना सीखते समय जब कोई गिरता है तो वह यह नहीं देखता कि मुझे कहाँ लगी, वह तो यह देखता है कि किसी ने उसे देख तो नहीं लिया। उठे और भागे। ये जगत् की लीला है। कोऊ का कैहे? भगवान् से न डरे, परमेश्वर से न डरे, सबसे बड़ा डर है 'कोउ का कैहे?' इतना पापों से डरने लग जाओ तो 'कोउ का कैहे' इससे डरने की जरूरत ही नहीं है। पद्मपुराण में लिखा- भगवान् महावीर स्वामी ने अपने अंगूठे से सुमेरु पर्वत दबाया, वह हिलने लग गया, तब सौधर्म इन्द्र को समझ में आया मैं किसके ऊपर शंका कर रहा हूँ ? ये अनन्त बल के धारी तीर्थंकर परमेश्वर हैं। तब उसने भगवान् का अभिषेक करना प्रारम्भ कर दिया। जैसे-ही भगवान् का अभिषेक हुआ, सागर-जैसे धारायें बह गईं। सामान्य इन्द्र लोग तो होली खेलने लग गए। धन्य हैं वे जीव जो तीर्थंकर के न्हवन जल को अपने मस्तक पर धार रहे थे।

जब परमात्मा का अभिषेक हो गया तो सौधर्म इन्द्र ने मार्जन करने के लिये जिनबालक को इन्द्राणी के हाथों में दे दिया। बेचारे जितने क्रीम लगा रहे हैं, पाउडर लगा रहे हैं, दूसरे के कलेवर को चिपका रहे हैं, चिपका करके अपनी सुन्दरता को बढ़ाना चाहते हैं, धिक्कार हो उन पापियों को। **'भक्तेः सुन्दर रूपं।'** परमात्मा की भक्ति करने से सुन्दर रूप मिलता है, तो फिर पाउडर लगाने की आवश्यकता क्या है?

जब इंद्राणी भगवान् को पोंछ रही थी, तब गाल को बार-बार घिस रही थी। सौधर्म इन्द्र खड़ा-खड़ा देख रहा था। माताओ! बुरा मत मानना, जो है सो है। सौधर्म इन्द्र कहता है 'देवी! तू अविवेकी है। इन्द्र की इन्द्राणी है, लेकिन नारी की बुद्धि है कितनी-सी ? ये क्या कर रही है? क्या प्रभु के गाल को ही निकाल लेगी? 'क्या करूँ स्वामी! मैंने शरीर के पानी को तो पौंछ दिया, लेकिन गाल में लगी यह बूँद छूट ही नहीं रही है। उसने कहा—जरा विवेक से देख। तुझे मालूम होना चाहिए कि ब्रह्माण्ड में जहाँ जगत् के सारे रूप फीके होते हैं, वहाँ तीर्थंकर जिनेन्द्र का रूप इतना पवित्र होता है। यह भगवान् के गाल पर पानी की बूँद नहीं है। यह जो तेरे मुकुट में मोती लगा हुआ है, उस मोती की चमक प्रभु के गाल पर पड़ रही है। हे परमेश्वर! आपका रूप-सौन्दर्य इतना विशाल होता है

तुम लोग कैसे हो कि जैसे ही भगवान् के पास पहुँचे, तुरन्त आँखें बन्द कर लेते हो, जैसे कि तुम बहुत बड़े योगी हो। भाई ! दुनियाँ के चित्रों को आँखें फाड़-फाड़ कर देखते हो, अरे! भगवान् के सामने पाँच मिनट को आये, उसी में आँखें बन्द कर लो? अच्छे-से देखो। ऐसा देखो, ऐसा देखो कि फिर दूसरा कोई दिखे ही ना। इतना ज्यादा देखना चाहिए। तुमको ध्यान करना है तो एकान्त में बैठ जाओ, लेकिन प्रभु को एक बार तो देख लो। नेत्र बन्द करो तो ऐसे करो जैसे ऋषभदेव के पिता नाभिराय ने किया था। सौधर्म इन्द्र जब भगवान् आदिनाथ का जन्मकल्याणक मना रहा था, अभिषेक के बाद प्रभु को लाकर आँगन में सिंहासन पर विराजमान किया। महाराजा नाभिराय को सूचना दी, आपके घर में विश्व के परमपिता परमेश्वर का अवतरण हुआ है, आप निहार लो। तीर्थंकर के पिता नाभिराय बालक के सामने आये और देखते ही उन्होंने अपने नयनकमल बन्द कर लिए, तो सौधर्म इन्द्र से रहा नहीं गया, वह कहता है—तात्! हम सौधर्मसभा से स्वर्ग से जिनबालक को निहारने के लिए आये हैं, जब मेरी दो आँखें तृप्त नहीं हुईं तो मैंने अपनी विक्रिया से हजार नेत्र बनाये और आपने दो आँखों से ही देखना तो दूर है, एक क्षण देखकर ही आँखें बन्द कर ली, आपने ऐसा क्यों किया ? नाभिराय कहते हैं-

हे सौधर्म इन्द्र! बात ऐसी है कि व्यवहार से कह लो मैं इनका पिता हूँ। संसार का सम्बन्ध लगा लो तो मैं इनका पिता हूँ। परन्तु सत्य यह है कि जगत् के पिता तो परमेश्वर हैं। आप ये मत कहना कि ये मुझे अच्छे नहीं लगे, इसलिए आँखें बंद कर ली हैं। इनको देखकरके आँखें इसलिए बंद कर ली हैं कि ये मेरी आँखों में चले गए हैं, इन आँखों में कोई दूसरा प्रवेश न कर जाये, इसलिए मैंने आँखें बन्द कर ली हैं।

जिन आँखों ने परमात्मा को निहार लिया हो वे आँखें कितनी पवित्र हो गईं। उन आँखों से अब तुम किसी की नारी मत देखना, कोई पुरुष मत देखना। जिन आँखों ने भगवान् को देखा है, अब वे कोई पाप न देखें। जिन नयनों ने परमात्मा को निहार लिया है, वे नयन अब परनारी को कैसे निहार सकते हैं? अब तुम्हें पाप ही करना हो तो कोई दूसरी आँख लेकर आओ। जिस लोटे से तुमने अभिषेक किया है, उससे फिर तुम पानी नहीं पीते हो, फिर जिन हाथों ने इतने अच्छे काम किए हैं, उन हाथों से अब तुम उल्टे काम कैसे करोगे ?

अब वर्द्धमान कभी आँखमिचोनी खेलते तो कभी कुछ खेलते। ऐसे खेल खेलते हुए वह दिन भी आ गया कि जब माँ कुछ पकवान बना रही है, बन्दनवार लगे हुए हैं, तब बेटा पूछता है, 'माँ ! यह क्या हो रहा है ?' तो माँ कहती है 'जाओ, अपने पिता जी से पूछो।' बेटा, पिता के पास गया, कहता है, 'पिता जी ! ये क्या हो रहा है ?' बोले, 'बेटा ! तू माँ से पूछ ले ना।' ऐसा नियोग बना कि दोनों एकसाथ मिल गए। वर्द्धमान बोले कि अब तो बताना पड़ेगा बोले, 'बेटे! आज तो आपकी सगाई की तैयारियाँ चल रही हैं।' माँ ! क्षमा करना, शायद आपकी यह इच्छा पूरी नहीं हो सकेगी। 'क्या बोलते हो ?' माँ ! सत्य कह रहा हूँ। आप क्षमा करो। यह इच्छा पूरी नहीं हो सकेगी। क्योंकि यदि मैं शादी के बन्धन में बंध गया तो धर्म के नाम पर कोटि-कोटि जीवों को यज्ञ में जो आहूत किया जा रहा है, उस हिंसा से मैं देश को कैसे मुक्त करा सकूँगा ? आज मैं शादी के बन्धन में बंध करके देश की हिंसा में भागीदार नहीं होना चाहता हूँ। माँ! मैं उस वधू से शादी करूँगा जिसका सम्बन्ध कभी छूटेगा नहीं। वही मुक्तिवधू होगी। मैं आज नियम लेता हूँ।

माँ क्या निहारती है? जब बेटे का जन्म होता है, तब माँ को बेटा नहीं दिखता है, बहू के बिछुये बजते सुनाई पड़ते हैं कि अब तो आँगन में पुत्रवधू आयेगी। माता त्रिशला सोच रही थी कि मेरे घर में पुत्रवधू आयेगी, लेकिन वर्द्धमान कहते हैं माँ! धर्म के नाम पर व्याप्त हिंसा का अभाव घर में रुकने से नहीं होगा, घर से बाहर जाने में होगा। वही दिन था कि वर्द्धमान जनक-जननी को रोते छोड़ करके जंगल की ओर चल दिये। लौकान्तिक देव आ गए और सौधर्म इन्द्र पालकी लेकर पहुँच गया और प्रभु ने जाकर जैनेश्वरी दीक्षा धारण कर ली। महावीर का वैराग्य का जीवन प्रारम्भ हो गया। उग्र-उग्र तपश्चरण किया और जिस दिन से दीक्षा ली थी, उसी दिन से तीर्थंकर महावीर ने मौन ले लिया। तीर्थंकर का नियम होता है कि दीक्षा लेते ही मौन ले लेते हैं। धन्य हैं।

मौन लेने से बहुतकुछ मिलता है। संकटों से बचना हो तो मौन ले लेना। संसार की अनेक समस्याओं का उत्तर मौन है। संसार की अनेक समस्याओं का समाधान समय है। मौन ले लो और समय दे दो, बस, काम बन जायेगा। यदि मौन नहीं लिया और समय नहीं दिया, तो विश्वास रखना, आप फँस जाओगे। कुछ नीति सीखो, ज्ञानी! क्यों परेशान हो जाते हो ? सोच कर बताऊँगा, अभी मेरा मौन है, बात बाद

में करेंगे। दुनियाँ को रोयगा और दुनियाँ को रोते देखेगा तो अपनी मनुष्यपर्याय की अनुभूति कब लेगा? दु:खियों के दु:ख को दूर करने का सिद्धान्त महावीर ने बताया है, दु:खियों के दु:ख को देखकरके सिर पकड़कर बैठ जाना महावीर ने नहीं सिखाया। **वे अज्ञानी लोग हैं जो दु:खियों के दु:ख देख करके स्वयं रोने बैठ जायें।** एक व्यक्ति को काँटा लग गया तो दादा ने अपने सिर से टोपी उतारी और सिर पकड़ कर रोने बैठ गया। हाय-हाय! महावीर स्वामी की करुणा, इस बेचारे के काँटा लग गया, वह बेचारा वहाँ तड़प रहा है, ये रो रहे यहाँ। अरे ज्ञानी ! यह अज्ञानता महावीर ने नहीं सिखाई कि तुम रोने लग जाओ। बड़े अच्छे से जाते और उसका काँटा निकाल कर बाहर कर देते, ये महावीर ने सिखाया है, रोना नहीं सिखाया। दुनियाँ के दु:ख दूर करना सिखाया है।

महाराज को अन्तराय हो गया तो ज्ञानी कह रहा है कि आज मेरा उपवास। क्या पागल आदमी है? उनको तो कर्म से अन्तराय आया, तू जानकर उपवास करके भूखा बैठेगा तो तू स्वयं तड़पेगा। वे बेचारे कर्म से भूखे और तू अपनी विवेकहीनता से भूखा। अच्छा होता कि और-अच्छा भोजन करना चाहिए था, भोजन करके उनकी सेवा करता।

माँ! यदि अपने घर को स्वर्ग बनाकर रखना चाहती हो तो जब तुम्हारा देवता बोले तो तुम मौन ले लो और जब देवी बोले तो आप मौन ले लो, तो-फिर झगड़ा हो ही नहीं सकता। एक कब तक बोलेगा? थोड़ी देर बोलेगा, फिर सोचेगा 'मैं ही पागल हूँ क्या ? ये कुछ बोल ही नहीं रहा है।' पागल हो, तभी तो चिल्ला रहे हो। बटलोई में ढक्कन ढक दो तो दाल भी जल्दी पक जाती है। ऐसे-ही आपने ढक्कन ढक लिया तो जो संसार में रुकने के अनन्त भव लगने वाले थे, वह अल्प समय में मुक्त हो जायेगा। ढक्कन ढकने से वाष्प जल्दी बनती है। इसलिए **जितना मौन रखोगे उतनी जल्दी कल्याण होगा।** मौन रखना, मूक बनकर मत रहना, नहीं-तो पता चला कि ऐसा ढका कि कुकर जैसा फट गया। परमात्मा मुख से नहीं बोलते, उनकी सर्वाङ्ग से दिव्यध्वनि खिरती है।

जैसे-ही प्रभु को केवलज्ञान हुआ, तीर्थंकर भगवन्त ने सर्वाङ्ग से बोलना प्रारम्भ कर दिया। दिव्यध्वनि खिरी। भारत के विभिन्न अंचलों/क्षेत्रों में ऐसा कोई प्रदेश नहीं बचा जहाँ तीर्थंकर भगवान् ने अपना विहार न किया हो। जब बिहार से विहार करते

हुए मध्यभारत की ओर जा रहे थे, अंग बंग कलंग चेदि तमिल तेलुगू देशों में प्रवेश किया तीर्थंकर महावीर स्वामी भी झाँसी से निकले होंगे। तभी तो इतनी वर्गणायें पवित्र हैं। क्षेत्र का प्रभाव है। तीर्थंकर चन्द्रप्रभ स्वामी का समवसरण सोनागिर में सोलह बार आया। जब सोलह बार समवसरण आया होगा, तो क्या आपके नगर में नहीं आया होगा ? अवश्य आया होगा। तभी इतने तीर्थ बन रहे हैं।

मुमुक्षु! आत्मा का विकास चाहिए, आत्मकल्याण चाहिए, तो पहला सूत्र दया, दूसरा सूत्र दम, तीसरा सूत्र त्याग, चौथा सूत्र समाधि। **जो व्यक्ति करुणा से भरा होगा, करुणा से युक्त होगा, जो दयावान होगा, वही दमन करेगा इन्द्रियों का, वही दमन कर सकेगा कषाय का, वही दमन कर सकेगा इच्छाओं का। जिसने इच्छाओं का दमन कर लिया है, वही त्याग कर सकेगा।** जिसका इच्छाओं का दमन नहीं है, वह त्याग करने की भावना रख ही नहीं सकता। जिसने दमन कर लिया है दयापूर्वक और त्याग कर दिया है, वही समाधि में लीन हो सकता है। जिसका त्याग नहीं है, वह समाधि में लीन होने की सम्भावना ही नहीं रखता।

महावीर स्वामी ने ये चार सूत्र प्रदान किए भारत की भूमि पर,जहाँ धर्म के नाम पर जीवों को आहूत किया जाता था। कोई नित्य-एकान्त में लीन था, कोई अनित्य-एकान्त में लीन था, कोई शून्यवाद में डूब रहा था, कोई अनेक विपरीतताओं में लीन था। उस समय महावीर स्वामी ने स्याद्वाद-अनेकान्त का दिव्य संदेश विश्व को दिया।

विश्वास रखना, जगत् में **सम्पूर्ण विकल्पों को शमन करने का उपाय स्याद्वाद-अनेकान्त है।** घर-घर में स्याद्वाद आ जाये। इसकी परिभाषा भले मालूम न हो, लेकिन अनेकान्त के बिना आप एक पग भी नहीं चल पाते हो। कौन कहता है कि जीव स्याद्वाद नहीं जानता? यह कह रहा मैं पिता हूँ, पुत्र भी हूँ, भतीजा भी हूँ, मामा भी हूँ; फिर भी एक हूँ। **एक होने पर भी सम्बन्ध अनेक हैं। सम्बन्ध होने पर भी व्यक्ति एक है। इसी का नाम अनेकान्त है। जो एक में अनेक देखे,अनेक में एक देखे, यही तो स्याद्वाद दृष्टि है।** अपेक्षा। पिता की अपेक्षा पुत्र हूँ, पुत्र की अपेक्षा पिता हूँ, भाई की अपेक्षा से भाई हूँ, चाचा की अपेक्षा से भतीजा हूँ, मामा की अपेक्षा से भाँजा हूँ। आप अनेक भी हो, एक भी हो। अनेकों के बीच में अनेक सम्बन्ध तो देखना, परन्तु अनेक सम्बन्धों के बीच में अपने को एक ही देखना। सम्बन्ध टूट जायेंगे, बिखर जायेंगे, आत्मा अकेली ऊपर जायेगी।

भैया! भूल मत कर लेना। जितनी ये भीड़ दिख रही है, जब तक पुण्य की शक्कर चढ़ी है, तभी तक ये चीटियाँ दिख रही हैं। पुण्य की शक्कर छूटी, तो ये सब छोड़कर भाग जायेंगे। आपको पता होना चाहिए कि मिश्री के अन्दर धागा होता है। उसको लोग चूस लेते हैं। जैसे-ही स्वाद हटा, धागा फिका। दोने को हाथ में तब तक रखता है जब तक उसमें कलाकन्द है। जैसे-ही खाली हुआ, कचड़े में पड़ा। शरीर के अन्दर हंस-आत्मा की मिठाई है जब तक ये रखी है, तब तक तुम्हें दुनियाँ देख रही है। हंस उड़ा, दोना फिका। भैया ! फिकने के पहले सँभल जाओ, समझ जाओ। हाथ में आये दोने से कह देना, मेरे मित्र ! नीचे पड़े दोने को तू देख ले, तनक रुक जा, तेरी हालत वही होगी जो इसकी हुई है। हे दोने ! सुन लो, सबके दिन एक-से नहीं होते। जो है, सो है।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।



मधुर वचन की महिमा

प्रियवाक्य-प्रदानेन सर्वे तुष्यंति जन्तवः।
तस्मात्तदेव वक्तव्यं किं वाक्येऽपि दरिद्रता॥321॥

अन्वयार्थ— (प्रियवाक्य-प्रदानेन) मिष्ट वचन बोलने से **(सर्वे जन्तवः तुष्यंति)** सर्व प्राणी प्रसन्न रहते हैं **(तस्मात् तत् एव वक्तव्यं)** इसलिए ऐसा ही प्रिय वचन बोलना योग्य है **(वाक्येऽपि दरिद्रता किं)** वचनों को मधुरता से कहने में क्यों दरिद्रता होनी चाहिए? अर्थात् नहीं होना चाहिए।

भावार्थ— हे भव्यात्मन् ! मिष्ट-प्रिय वचन बोलने से सर्व-प्राणी प्रसन्न रहते हैं, अतः ऐसा ही प्रिय वचन बोलना इष्ट है, मधुर वचन ही कहना योग्य है।

॥ सद्-देशना ॥

बन्धुओ! अन्तिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेश की पीयूष देशना जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवन्त हो। जयवन्त हो वीतराग श्रमणसंस्कृति। आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज 'सारसमुच्चय' जी में आत्मा को परमात्म दशा की प्राप्ति का जो परम पुरुषार्थ है, उस पुरुषार्थ की व्याख्या करते हुए समझा रहे हैं।

हमने पुण्य भी देखा है तो दूसरे का देखा और पाप भी देखा है तो दूसरे का ही देखा है; परन्तु नहीं देख सके निज के पुण्य को और नहीं देख सके निज के पाप को। भैया! इतने सरल हो जाना, इतने सहज हो जाना कि स्वयं का पुण्य-पाप स्वयं दिखना प्रारम्भ हो जाये। भवनों में छिपकर पाप तो किए जा सकते हैं। मत स्वीकारना कभी अपने आप को बड़ा। यही मान कर चलना कि जब तक पुण्य का संयोग है, तब तक मैं बड़ा हूँ। एक कालेज में, एक स्कूल में हजारों छात्र पढ़ते हैं और पढ़ने के बाद एक के हाथ में झाड़ू आती है, तो एक के हाथ में तराजू आती है, तो एक के हाथ में कलम/लेखनी आती है, तो एक के हाथ में भगवान् का नाम लेने के लिए माला आती है और एक के हाथ में माला भी नहीं, हाथ पर हाथ रखे बैठे हैं। कितना महान् अन्तर है। एक पुरुष कुछ भी नहीं कर रहा है, तब भी सुख से जी रहा है और एक बेचारे को हाथ में फावड़ा लेकर मिट्टी डालनी पड़ रही है, तब भी शान्ति से एक रोटी खाने को नहीं मिल रही है। तीर्थंकर पार्श्वनाथ स्वामी

के इस पञ्चकल्याणक को निहार कर पुण्य-पाप की धारायें देखो, एक माँ के दो बेटे। एक पार्श्वनाथ बन रहा है और एक कमठ बन रहा है। कमठ और मरुभूति सगे भाई। ऐसा क्यों?

सहयोगियों को संयोग ही मानना, सहयोगियों को स्वभाव मान कर मत बैठ जाना। यदि पिता भी अशुभ करने के लिए कह रहा हो तो हाथ जोड़कर कहना हे तात्! मैंने आपको पिता के रूप में देखा है, मैं पिता के रूप में ही आपको मान पाऊँगा। मैं पापियों को स्वीकार नहीं करता हूँ, पिता को ही स्वीकार करता हूँ। बेटो! इतनी ताकत है आपमें कि यदि पिताजी ने कहा कि चोरी करके लाओ, तो पिता की आज्ञा मानोगे क्या? **वह आज्ञा आज्ञा ही नहीं जिसमें अज्ञान भरा हो।** पिता की वो आज्ञा मानना जब पिता कहे कि बेटे! कुये से जल भरकर लाओ और भगवान् का अभिषेक करने चले जाओ। तो तुम तुरन्त पिता की आज्ञा का पालन करना। वही पिता 'पिता' है जो पुत्र को गड्ढे में डालने के भाव न रखता हो। भीतर की भाषा भीतर संदेश दे रही है और बाहर की भाषा बाहर के लोगों को सन्देश दे रही है। मुमुक्षुओ! जो मैं कह रहा हूँ, वह आपको समझ में आ रहा है क्या? यदि यहाँ से बदल नहीं पाये तो, भैया! घर बदल कर क्यों आये? यदि यहाँ से जाकर बदल नहीं सके, तो घर बदल कर आने से क्या प्रयोजन? मुमुक्षु! जब यहाँ से तुम जाओ तो परिवार के लोग आपको पहचान न पायें, तो मेरे समझ में आता है कि तुम यहाँ से कुछ सीख कर गये हो। समझ लेना कि अब धर्मात्मा हो। भैया! जो आप घर में पहुँचते ही लंका बनाते थे, घर में पहुँचते ही आप अँगारे जैसे बरसना प्रारम्भ कर देते थे, वह रूप आपका परिवार के लोग न देख पायें तो समझ लेना कि तू कुछ बदल कर आया है।

भैया! भाषा पर नियन्त्रण करो। यदि अशुभपर्याय से बचना चाहते हो तो नौकर से भी बड़े प्रेम से बोलना और कहना कि भाई! मैं समझता हूँ कि तेरी गरीबी मेरे घर में सेवा करा रही है, पर तू मेरे घर में सेवा नहीं कर रहा है। 'सबके दिन एक-से नहीं होते।' आज तू सेवक के रूप में मेरे घर में है, क्या मालूम कब किसका समय बदल जाये, कल तू स्वामी बन कर बैठ जाये। मुमुक्षु! सेवक भी स्वामी होते देखे गये हैं और स्वामी भी सेवक होते देखे गये हैं। भैया! एक ही भव में, एक ही पर्याय में। आपको विश्वास न हो तो इन माताओं की ओर देख लो। माँ! जब घर में बहू बनकर आयी थी प्रथम दिन, तो सासू का राज चल रहा था, तो कैसे तुम दबकर

चलतीं थीं? जब बेचारी वृद्ध हो गई, आज तेरा मौका आ गया है, तो अब मालूम क्या बोलती है? कि माँ! सुन, सबके दिन एक-से नहीं होते। तूने खूब सताया, आज देख ले क्या हो रहा है। **कबहूँ आप भयो बलहीन, सबलनि करि खायो अतिदीन।'** यह सूत्र शेर और नाहर मात्र में नहीं लगाना, अपने घर में भी लगाना। जब आप बलहीन हो गए, तो सबलों के द्वारा सताये गए।

कुलभद्र स्वामी कह रहे हैं कि मिष्ठ वचन बोलो। जिन वचनों में कोई हिंसक शब्द न हो, ऐसे वचनों का प्रयोग करो। जो वचन मधुर हो, हितकारी हो, अर्थवान हो, ये तीन प्रकार के वचन बोलना चाहिए। कुछ लोग व्यर्थ में बकबकाते रहते हैं, कोई प्रयोजन ही नहीं होता शब्दों का। आश्चर्य तो ये है। भैया! पैसे कमाने में पाप लगता कि नहीं? भैया! पैसे कमाने में आयुकर्म को तूने नष्ट किया कि नहीं किया? मित्र! आयु नष्ट की है और पैसों को पापों में नष्ट कर रहा है। पैसे कमाने में पाप किया, फिर वह मोबाइल लेकरके घण्टों-घण्टों बातें कर रहा है। जब तक ये बात चल रही है, तब तक उसका बिल बढ़ रहा कि नहीं बढ़ रहा? मेरे मित्र! मोबाइल का बिल तो बढ़ रहा है, पर तेरी आयुकर्म का बिल कम हो रहा है कि नहीं हो रहा है? बातें करते-करते तूने अपनी आयु नष्ट कर ली है। कितना उन्मत्त पुरुष था, कितना पागल पुरुष था कि पैसे कमाने में पाप किया, पैसे कमाने में आयु नष्ट की और उस पैसे को नष्ट कहाँ कर रहा है? मात्र बातें करने के लिए। **व्यर्थ के व्यसनों में तूने कितना अर्थ एवं समय नष्ट किया है? यदि मौन ले लेता तो शक्ति का संचय होता।**

पण्डित जी! जब आप यहाँ से जाने लग जाओ तो गुरुदक्षिणा में कुछ मत माँगना, इन लोगों से कह देना कि दिन में 24 घण्टों में से 10 मिनट अपने लिए दे दो। 10 मिनट का मौन रख लेना, पर वो मौन जो है न सोते समय का नहीं चलेगा, नहीं-तो आप कहो हाँ महाराज! मौन, जब विश्राम करूँगा तब। और ऐसे समय में मौन लेना जब अच्छी भीड़ तुम्हारे पास आती हो। फिर देखना क्या अनुभूति होती है। भैया! जितने विषमवाद हुए हैं, ये सब व्यर्थ के वचनालाप से हुए हैं। आपके घर में झगड़े भी होते हैं, तो पहले वचनालाप ही होता है, इसके बाद फिर झगड़ा प्रारम्भ होता है और जब कुटपिट लेते हो, तो-फिर धीरे-से क्या बोलते हो? 'ऐसी न कहते तो ठीक रहता।' ठुकने के पहले ही न कहते तो कैसे अच्छी रहती?

सच बताना माताओ! घर में झगड़े कब होते हैं? एक उन पार्श्वनाथ को देखो,

10 भव तक कमठ सताता रहा और प्रभु मौन लिए रहे। संसार के सम्पूर्ण प्रश्नों का यदि कहीं गहरा उत्तर है तो 2 उत्तर हैं। **जिसने अपने जीवन में 2 उत्तर देना सीख लिया वो संसार में कभी विसंवाद में फँस ही नहीं सकता। जब कोई आपसे विसंवाद की बात पूछने आये तब पहला उत्तर मौन और दूसरा उत्तर समय।** जो समय पर छोड़ देते हैं, वे समयसार हो जाते हैं। यदि समय पर नहीं छोड़ा होता तो यहाँ मुझे एक भी व्यक्ति दिखाई नहीं देता। यदि आपको विश्वास न हो तो अपने पिता से पूछ लेना। भैया! यदि आपने समय न दिया होता, तो ये बेटा कहाँ होता आपके पास? भैया! जिस दिन गर्भाधान होता है, उसी दिन बेटा हाथ में नहीं आ जाता है। 9 माह तक माता-पिता ने समय दिया है। किसान खेत में बीज डालकर फिर समय दे देता है, वह कुछ नहीं करता है और समय आता है तो फसल खड़ी दिखाई देती है, तब निकाल कर ले जाता है।

जीवन में कहीं विसंवाद भी हो जाये तो शीघ्र उसके समझौते का विचार मत करो, उसको समय दे दो। भैया! कषाय कोई पक्का महल नहीं है, कषाय कच्ची मिट्टी का भवन है। यदि किसी पड़ौसी ने आपकी भूमि पर एक झोपड़िया बना भी ली, यदि तू धर्मात्मा है तो क्या कहेगा? भैया! तूने बना ली है झोपड़िया मिट्टी की, कोई बात नहीं, पर तुम ये बताओ कि पक्का भवन तो नहीं बनाओगे? अब कुछ नहीं है, तुम रहो, लेकिन मुझे मालूम है कि झोपड़ियों की आयु है, मिट्टी का भवन बह जायेगा। और ज्ञानी! मिट्टी के भवन में रह कौन रहा है? मिट्टी का पुतला ही तो रह रहा है। आप उत्तरोत्तर ऊपर सोचो कि अगर ये ही समाप्त हो जायेगा तो भवन तो अपने आप समाप्त हो जायेगा। पर ज्ञानियो! जब वह समाप्त होगा, तब आप बचे रहोगे क्या? जब दोनों ही समाप्त हो जाओगे, तब विसंवाद समाप्त हो ही जायेगा। भैया! बहुत धैर्य की आवश्यकता है। एक बिलश्त भूमि के राग में भाई ने भाई को नहीं देखा, लेकिन भूमि देखती रही कि मैं तो जहाँ हूँ वहीं हूँ, पर मेरे राग में भाई-भाई नहीं बचे। किञ्चित् भी आपको समझ में आ रहा हो तो कल भी झगड़ा हुआ हो, परसों हुआ हो, जीवन में कभी भी हुआ हो, तो आज ही घर जाकर भैया से क्षमा माँग लेना और कहना कि भैया! भूमि तो जहाँ है वहीं रहेगी, हम भाई-भाई क्यों न एक रहें? भैया! स्वीकार करो या न करो, पर सत्य ये है कि समय स्वीकार करा देता है।

एक युवा था। जब इसके दादा जी थे, पिता थे, तब वह कहते थे कि भैया झुककर

चल, तो ये कहता कि मेरे से नहीं झुका जाता, मेरी कमर में दर्द हो जायेगा और दादा समझाता कि बेटा चिन्ता मत कर, तू कितना ही अकड़कर चल ले, समय आयेगा, वह सबको झुका देगा। भैया! वृद्धावस्था ऐसी वस्तु है कि कितने ही अकड़कर चलनेवाले हों, वह सबकी कमर टेड़ी करा देती है। बेटा! अब देख लो। नीचे क्या देख रहे हो? क्या खोज रहे हो? बोला, खोज रहा हूँ कि मैं जो अकड़कर चलता था, वह अकड़ कहाँ चली गई? मैं जमीन में देख रहा हूँ कि वह कहाँ है? **सम्पूर्ण शंकाओं का समाधान समय है।**

भैया! लड़ना-झगड़ना अच्छी बात है क्या? अच्छी बात नहीं है तो समय पर छोड़ दो। कितना ही गहरा गड्ढा हो और आपके पास मिट्टी भरवाने के लिये पैसे नहीं हैं और भुजाओं में ताकत भी नहीं है, तो मेरी तनिक-सी बात मान लो, तुम समय दे दो तो गड्ढा भर जायेगा, विश्वास रखो। एक बारिश हो जाने दो और बारिश का पानी भरने दो। बारिश का पानी अकेला नहीं आता, साथ में मिट्टी लेकर आता है। **जब घर के द्वारे का गड्ढा पानी और मिट्टी से भर सकता है, तब कषायों का गड्ढा जिनवाणी से क्यों नहीं भर सकता है? समय दे दो।** अनेक गड्ढे भर चुके हैं। भैया! भरे कि नहीं भरे? गर्मी में जो लू चलती है तो यहाँ की मिट्टी वहाँ हो जाती है और बारिश में जब पानी गिरता है तब यहाँ की मिट्टी वहाँ हो जाती है और सबसे पहले मिट्टी का जो पानी बहेगा, वह कहाँ जायेगा? गड्ढे में ही तो जायेगा। इसलिए समय दे दो।

कुछ लोग ऐसे होते हैं कि जिनको बोलने से सिर दर्द करता है, कुछ ऐसे भी अभागे होते हैं कि अगर वे बोलें न तो उनका सिर और पेट दोनों दर्द करते हैं। भैया! ऐसे भी जीव हैं जब तक वे बोल न लें, चैन नहीं पड़ता उनको। आचार्यभगवन् कह रहे हैं कि यदि बोलने का मन ही करता है, नहीं रख सकते मौन, तो ऐसा बोलो जो सबको प्रिय लगे।

भैया! ऐसी भक्ति करो कि अगले भव में वास्तविक में सौधर्म इन्द्र बनो। लेकिन भाई! ये मत देखना कि मुझे कितने लोग देख रहे हैं। सौधर्म इन्द्र बनने के लिए तुझे बहुत खर्च करना पड़ा, पर मेरे मित्र! विश्वास रखना, तू एक दिन यहाँ मंच पर खड़े होकरके किसी को भी गाली दे देना, फिर देखना तेरी क्या हालत बनती है। यानि कि लाखों की बोली एक मिनट में स्वाहा। जैसे एक टंकी भरके दूध लाये बाजार से और आपके घर में किसी ने उसमें नींबू की एक बूँद निचोड़ दी, भैया!

क्या हुआ? एक टंकी दूध को नींबू की एक बूँद ने पूरा विघटित कर दिया। ऐसे-ही ज्ञानियो! हजारों वर्ष की तपस्या और करोड़ों के दान के लिए एक शब्द जो है वह नींबू की बूँद के समान होता है। वह नींबू की बूँद सारे दूध को फाड़ देती है। एक ऐसा द्रव्य भी आता है जिसकी वास भी दूध में पड़ जाये, पानी में पड़ जाये, तो दूध मीठा हो जाता है। जानते हो क्या होता है? सेक्रीन। यदि एक बूँद भी पड़ गया तो स्वाद बदल देता है।

आपकी वाणी वाण न बने, आपकी वाणी वीणा बने, सारा विश्व तुम्हारा नाम लेगा। कृष्ण की बाँसुरी को सुनने गाय भी चली आती थीं। ज्ञानियो! कालिया नाग भी बीन को सुनने पहुँच जाता है और बाण को देखकरके, लाठी को देखकरके साँप भी भागता है, गाय भी भागती है, यहाँ तक कि पिता और पुत्र भी भाग जाते हैं। वाणी में माधुर्य तो हो, लेकिन वाणी लाठी न बने। **'प्रिय वाक्य प्रदानेन।' जितनी सन्तुष्टि स्वादिष्ट भोजन करने पर नहीं होती है उतनी सन्तुष्टि प्रिय वचन बोलने पर होती है।**

एक सज्जन ने पूछा कि विश्व में सबसे मधुर क्या होता है? किसी ने बोला अमृत, किसी ने बोला मिश्री। अनेक लोगों ने अनेक प्रकार की भाषा बोली, लेकिन एक पुरुष कहता है कि अगर सबसे प्रिय कोई वस्तु है तो उसका नाम है वाणी। अभी कुछ नहीं, आपको तो समय बतायेगा। और मालूम क्या हुआ? जिन्होंने पूछा था कि विश्व में सबसे प्रिय मधुर क्या है, उन्हीं को निमंत्रण दिया उसने कि आपका भोजन मेरे यहाँ है। उसने अनेक प्रकार के मिष्ठान बनवाये, वह अँगुली चाट-चाटकर खाने लगा और जैसे-ही वह भोजन करके उठा तो वह धीरे-से कहता है कि भैया! पानी की बाल्टी उठाओ। वह इतने जोर से बोला कि अरे! वह अभागा यहाँ बैठकर भोजन करके गया है, जमीन धोना है। जैसे-ही शब्द सुना कि अभागा यहाँ भोजन करके गया, जमीन धोना है, ज्ञानी को पता नहीं चला कि उन मिष्ठानों का रस कहाँ चला गया। उन मिष्ठानों के रस सब बेस्वाद हो गए और जाकरके घर में बीमार पड़ गया। घर में देवी ने पूछा कि स्वामी! क्या हो गया? बोला कि कुछ नहीं, अब मैं आज से कहीं नहीं जाऊँगा। वह बोली - क्यों? उन्होंने तो बहुत अच्छा बनाकर खिलाया था? वह बोला - सब खिलाया, लेकिन वो नहीं खिला सका। सबकुछ खिलाने के बाद दो शब्द भी प्रेम से नहीं बोल सका तो उसने क्या खिलाया?

भैया! जो भी आपके यहाँ अतिथि पधार रहे हैं, उनको भोजन तो भोजनशाला

में करा दोगे। पेट भरकर भोजन करा देना बहुत बड़ी बात नहीं है, पर कानों की सन्तुष्टि कराकर भेज पाना बहुत बड़ी बात है। **घरों में जो बीमारी फैल रहीहै वह सब अभक्ष्य भोजन, अभक्ष्य भाषण से।** माँ के मुख से जरा-सा गुस्से में निकल आता कि बेटा! तू मर जाता। माँ! बेटा मरने वाला नहीं है, पर तेरी मातृ भाव की भाषा तो मर गयी। भैया! अपने जीवन से पूछ लेना कि कितने बार तू पिता को मार चुका है, कितने बार माँ को मार चुका है, कितने बार अपने रिश्तेदारों को मार चुका है। कोई अशुभ भावों से युक्त होकरके जो भाषा बोलता है, तुम द्रव्य से मारो या न मारो, लेकिन भावों से और भाषा से तो तुम मार ही चुके हो। भैया! पाप का बन्ध होगा कि नहीं होगा? जब आटे के मुर्गे की बलि चढ़ाने वाला नरक जा सकता है, जब साक्षात् कोई पुरुष अपने पिता के लिए कहता है कि ये बुड्ढा! तू जल्दी क्यों नहीं मर जाता है? हे पापी! तू पैर मत दबाना, भोजन मत कराना, लेकिन पिता को मारने की भाषा तो मत बोलना। क्या आपके कहने से पिता की मृत्यु हो जायेगी? बहुयें ध्यान से सुनना, बूढ़ी सासू माँ को मारने की भाषा मत बोलना। तुम उनकी सेवा नहीं कर सको तो आँखें बन्द कर लेना, लेकिन आँखें खोलकरके, मुख खोलकरके अशुभ भाषा मत बोलना। **जहर की पुड़िया दे देना, वह मात्र एक बार मृत्यु का कारण बनती है; परन्तु बार-बार अशुभ भाषा बोलना बार-बार हिंसा का कारण बनती है।** माताओ! दे मत देना किसी को जहर की पुड़िया, नहीं-तो कहो महाराज! अच्छी बताई आपने। कितनी मातायें-बहनें ऐसी हैं जो आज से अपनी सासू को गाली नहीं देंगी? जहर भी नहीं देंगी? नहीं-तो कहो कि महाराज हम गाली नहीं देंगे, सीधे ही गला घोंट देंगे। कायोत्सर्ग कर लो। पर इसका मतलब ये नहीं कि सासू शेर हो जायें कि अब तो बहुओं ने नियम ले ही लिया है, अब तो हम कुछ भी कर सकते हैं। कितनी सासें ऐसी हैं, चाहे बन चुकी हों या बनने वाली हों, बहुओं को नहीं सतायेंगी?

"प्रियवाक्य प्रदानेन" मधुर वचन बोलने से, **"सर्वे तुष्यन्ति जन्तवः"** संसार के प्राणिमात्र संतुष्ट हो जाते हैं। जितने ये इन्द्र बने हैं, उन सबसे कहना कि आपने पैसा तो खर्च किया ही है और समय भी दे रहे हो, लेकिन अपने भावों और भाषा से कह देना कि अब से तुम अच्छे बन कर रहना जिससे अब हम भगवान् की जिनभक्ति कर सकें। बड़े-बड़े इन्द्र बनने के लिए पैसा खर्च करना पड़ता है, मन्दिर बनवाने के लिए पैसा खर्च करना पड़ता है, लेकिन प्रिय वचन बोलने में क्या पैसा खर्च करना पड़ता है?

'तस्मात् तत् एव वक्तव्यं, वाक्यं, किं दरिद्रता।' अरे भाई! वचन बोलने में कौन-सी दरिद्रता है तुम्हारे पास? कोई घर के द्वार पर भिखारी आये, यदि तुम भीख नहीं दे सकते हो तो कम-से-कम दो अच्छे वचन तो बोल सकते हो। पर ऐसे लोग हजारों मिल जायेंगे जो करोड़ों रुपये का दान देने की ताकत तो रखते हैं, लेकिन दो प्रिय वाक्य बोलने की ताकत नहीं रखते। भाई! प्रिय वचन बोलकरके कोई जहर खिला रहा हो तो वह भी तुम खा लेना, लेकिन अशुभ शब्द बोलकरके कोई तुम्हें मिष्ठान खिला रहा हो तो उसको छोड़ कर चले जाना। भैया! आपकी सासू कहे कि खा-ले खा-ले और जा, तो मालूम ये क्या कहेगा? कि माँ! जा रहा हूँ, पेट भर गया है।

मित्र! सत्य ये है कि कुछ लोग झूठ इसलिए बोलते हैं, कि जैसे राजस्थान में पानी बहुत कम है तो वे गोबर मिलाकरके पशुओं को पानी पिलाते हैं। बोले कि पीये भी और अच्छा नहीं लगेगा सो कम पीयेगा। कुछ समझदार लोग ऐसे होते हैं कि ज्यादा लोग आ जायें और साग कम है, तो मिर्ची ज्यादा भर देते हैं। परोसता तो है, लेकिन वह स्वयं कहता है कि रहने दो भैया! रहने दो। ऐसे-ही कुछ लोग ऐसे होते हैं कि बुला तो लेते हैं सबको, लेकिन भाषा की ऐसी मिर्ची परोसते हैं कि वह स्वयं ही भाग जाये। वह कहता है कि मैंने तो पत्र डालकर बुलाया था। कुछ लोग ऐसा भी पूछते हैं कि भोजन-पानी तो करके आये होंगे? बैठना है कि जाना है? वह कहेगा कि हओ भैया! जा रहे हैं।

ऐसी भाषा बोलो **'माधुर्य गुण प्रीतिः।'** भैया! मिश्री डिब्बे के अन्दर है, लेकिन तब भी चींटी उसके अन्दर पहुँच जाती है। ऐसे-ही **मेरे मित्र! जीवन में किसी को बुलाने की आवश्यकता नहीं है। यदि तेरे जीवन में मधुरता है तो जैसे चीटियाँ मिश्री के पास पहुँच जाती हैं, वैसे-ही सारा विश्व तुम्हारे पास आ जायेगा और मधुरता नहीं है तो नमक के बोरे रोड पर पड़े रहते हैं, लेकिन डाकू भी उन्हें उठाने नहीं आते।** नमक के ढेले-जैसा जिनका स्वभाव होगा, उनके पास कौन बैठने आयेगा? परन्तु जिनका स्वभाव मधुर, प्रिय, मिश्री-जैसा होगा, सारा विश्व उनके पास पहुँचेगा। आज आप ये समझ लेना कि कमठ एक ऐसा नमक का ढेला था जिसे कोई नहीं देखता था और आप ऐसे पारसमणि रूपी मिश्री थे कि आज सारा विश्व आपकी जयकार कर रहा है। यदि मधुरता है, तो प्रीति है। यदि मधुरता नहीं, तो कोई प्रीति नहीं।



सुखी होने का उपाय

व्रतं शीलतपोदानं संयमोऽर्हत्पूजनम्।
दुःखविच्छित्तये सर्वं प्रोक्तमेतन्न संशयः॥322॥

अन्वयार्थ— **(दुःखविच्छित्तये)** संसार के दुःखों का नाश करने के लिए **(व्रतं)** मुनिव्रत या श्रावकव्रत **(शील)** ब्रह्मचर्य **(तपो)** बारह तप **(दानं)** चारप्रकार दान **(संयमः)** संयम तथा **(अर्हत्पूजनम्)** अर्हन्त का पूजन **(एतत् सर्वं प्रोक्तं)** ये सब उपाय कहे गये हैं **(न संशयः)** इसमें संशय नहीं रखना चाहिए।

भावार्थ— हे भव्यात्मन् ! संसार के दुःखों का नाश करने के लिए व्रत, शील, संयम, तप, दान और अर्हन्तपूजन उपाय कहे हैं, ऐसा यथार्थ जानना।

॥ सद्-देशना ॥

बन्धुओ! अन्तिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेश की पीयूष देशना जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवन्त हो। जयवन्त हो वीतराग श्रमणसंस्कृति।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज सारसमुच्चय जी में दुःख के लिए कर्म-क्षय की विधा को यहाँ समझा रहे हैं। **ज्ञानियो! जिस जीव के अन्तस् में आत्मकल्याण की ललक है, वह संसार के सम्पूर्ण द्रव्यों से विमुख हो जाता है।** अन्तस् की भावनाओं को पवित्र करने का कोई स्थान है तो पञ्चपरमेष्ठी का पादमूल है। सर्वज्ञ की देशना परिणामों की विशुद्धि का सर्वोत्कृष्ट उपाय है। **जो तत्त्वोपदेश पर आत्मशान्ति का सूत्रपात होता है, वह आत्मशान्ति अन्यत्र सम्भव नहीं है।** इसलिए वे जीव परम पुण्यात्मा हैं जिन्होंने साक्षात् सर्वज्ञदेव की दिव्यदेशना का पान किया हो। जब-जब श्रुत सुनने के परिणाम होते हैं, तब-तब समझना कि मेरी भवितव्यता पवित्र है और उपदेश के काल में जिनको अन्य की बातें सुनने के परिणाम हो रहे हों, विश्वास रखना, उससे पुण्यक्षीण जगत् में कोई नहीं होगा। **तत्त्वोपदेश के काल में जिसको व्यर्थ की बातों से समय न मिल रहा हो, जो परस्पर में चर्चायें कर रहे हों, तो समझ लेना कि इससे बड़ा क्षीणपुण्य कहीं नहीं होगा।** अमृत की कणिका सामने रखी हो और व्यक्ति चाहे कि प्याले को मुख में रखे, तो मेरे मित्र! इससे अभागा कौन होगा? सर्वज्ञ की देशना का काल हो और वह जीव घर में बैठकर गपशप कर रहा हो, उससे क्षीणपुण्यात्मा जगत् में कोई हो नहीं सकता है। **वे भावी भगवान् हैं जो**

श्रद्धापूर्वक भगवान् की वाणी का पान करते हैं। जिसकी भवावलि अत्यन्त न्यून है, ऐसा जीव रुचिपूर्वक श्रुत का सेवन करता है और जिसकी भवावलि अधिक है, वह जीव कभी जिनवाणी सुनने के परिणाम नहीं कर सकता है। राजा श्रेणिक कितना महान् था कि साक्षात् महावीर के चरणों में बैठकर दिव्यदेशना का पान किया करता था। हम तो कृत्रिम समवसरण लगाते हैं, उसमें ही अनुभूति लेते हैं कि ऐसा तीर्थंकर प्रभु का समवसरण होगा और तू साक्षात् वर्द्धमान की देशना सुनता था। सारे पुण्य अलग कर दो, वाणी सुनने का पुण्य एक विशिष्ट पुण्य था। भैया! अपने हृदय को टटोल कर पूछना कि भेजे गये हो, कि भगाये हो, कि आये हो? भैया! कुछ लोग भेजे जाते हैं कि रिश्तेदारी तो निभानी ही पड़ेगी, जाओ। कुछ भगाये जाते हैं कि चलो चार पाँच दिन का भोजन बचेगा, चले जाओ। पर वे भव्यजीव होते हैं जो भेजे नहीं जाते हैं, भगाये नहीं जाते हैं, जो श्रद्धापूर्वक जिनेन्द्र की वाणी को सुनने आया करते हैं। कितनी ही परिणामों में संक्लेशता हो, बुन्देलखण्डी में कहूँ कि जब तरुआ चटक रहा हो तब एक बूँद पानी की कोई सिर पर ही डाल दे तो शान्ति मिलती है और कण्ठ में चली जाय तो कितनी शान्ति मिलती है। ये पञ्चमकाल की ग्रीष्म ऋतु है, **मुमुक्षु! कर्णों के अन्दर एक बूँद भी जिनवाणी की चली गई तो भव-भव के सन्ताप दूर हो जायेंगे।** जीवन में काम को विराम दे देना, लेकिन जिनदेशना को कभी भी विराम मत देना।

ज्ञानी! बहुत कम समय मिला है और बहुत कम समय के भीतर बहुत बड़ा काम करके चले जाना, ये सयाने लोगों का काम है। इसलिए महावीर स्वामी का शासन समग्र क्यों गूँज रहा है? क्योंकि उन्हें कम समय मिला था। सभी तीर्थंकरों की अपेक्षा वर्द्धमान महावीर स्वामी को सबसे कम समय मिला था। 72 वर्ष की आयु में, यानि की अल्पायु में, इतना बड़ा काम कर गये। जो हिंसा का ताण्डव नृत्य चल रहा था, उसको अहिंसा की पीठ पर स्थापित कर गए। **ये विश्व के इतिहास में सर्वमान्य है कि भारत की भूमि पर अहिंसा को स्थापित करने वाले कोई महायोगी/महाश्रमण हुए हैं, तो तीर्थंकर महावीर स्वामी हुए हैं।** भैया! बाँझ स्त्री को क्या अनुभूति प्रसूति की पीड़ा की? बाँझ स्त्री को क्या आनन्द आता है बेटा जब आँगन में खेल रहा हो? भैया! जब शील भंग होता है, तब नौ कोटि जीवों की हत्या एक क्षण में होती है। धोके से किसी जीव से चींटी का घात हो जाये तो उस जीव का चेहरा बदल

जाता है। ये युवावस्था में इन रागियों के चेहरे फीके क्यों पड़ गये? जो नौ कोटि जीवों की हत्या करके आयेगा, उसका चेहरा मुस्कराये, ये हो ही नहीं सकता। **भैया! एक बार के अब्रह्म सेवन में नौकोटि जीवों की हिंसा होती है।** भैया एक का घात करके घोर अपराधी कहलाता है और फिर जिसने एक बार में नौ कोटि जीवों का घात किया हो, उस अपराधी को कहाँ रखोगे? **शील-भंग से बड़ा विश्व में कोई दोष नहीं है। विशुद्धि को भंग करनेवाला कोई है तो शील-भंग है और आत्मा की पवित्रता का नाश करने वाला कोई है तो शील-भंग है।** इसलिए आचार्य कुलभद्र स्वामी कह रहे हैं—व्रत शील तपो दानं। मुमुक्षु! संयम व्रत को जड़ की क्रिया कहकरके संवर तत्त्व की अवहेलना मत कर देना। भैया! **संयम को आस्रव में डालकरके जो स्वच्छन्दी हो रहे हैं, वे उभय लोक से भ्रष्ट हो रहे हैं।** आचार्य कुन्दकुन्द देव की भाषा में, अमृतचन्द्र स्वामी की भाषा में कहें तो जो करण-चरण से आलसी हैं, ऐसे बालक ही व्रत, संयम, शील को मात्र व्यवहार कहकरके, आस्रव कहकरके छोड़ रहे हैं। यदि व्रत संयम शील संसार का कारण हो गया, तो मेरे मित्र! तेरा असंयम मोक्ष का कारण हो जायेगा। आचार्य कुन्दकुन्द की गाथाओं का अधूरा अर्थ करके जीव भ्रमित हो गया है।

वदणियमाणि धरंता सीलाणि तहा तवं च कुव्वंता।
परमट्ठ वाहिरा जे णिव्वाणं ते ण विंदंति।।153स.सा.।।

पुण्य-पापाधिकार में कुन्दकुन्द स्वामी लिख रहे हैं व्रत संयम तप शील का आचरण करने वाला निर्वाण को प्राप्त नहीं हो सकता, तब अज्ञानी लोग मुस्करा गये कि मैं यही तो मानता हूँ। पर मेरे मित्र! तूने अभी गाथा के अर्थ को किया ही नहीं है और जितने जीव इस गाथा का अर्थ कर रहे हैं वे अधूरा अर्थ करके अपनी आत्मा की विडम्बना कर रहे हैं। **मित्र! जब मक्खन बनता है, मथानी चलती है, तो उसे छोड़ा जाता है कि ढीला किया जाता है? दायें हाथ की रस्सी को जब ढीला करेंगे, तब बायें हाथ की रस्सी को खींचकर रखेंगे। एक को शिथिल किया जाता है, दूसरी को खींचा जाता है, लेकिन छोड़ा दोनों को ही नहीं जाता है।** ऐसे-ही जब निश्चय को प्रधानता दोगे तो व्यवहार को गौण किया जाता है और व्यवहार को प्रधानता दोगे तो निश्चय को गौण करोगे, लेकिन दोनों रस्सी मथानी में लिपटी हुई हैं, छोड़ा एक को भी नहीं जाता। यदि एक को भी छोड़ दिया तो मथानी का चलना बन्द हो जायेगा

और मक्खन का निकलना भी बन्द हो जायेगा। आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी ने समयसार' पर आत्मख्याति टीका लिखी है, परन्तु 'पुरुषार्थ-सिद्धि-उपाय' ग्रन्थ भी लिखा है। उनको मालूम था कि इस टीका को पढ़करके लोग एकाकी हो जायेंगे, इसलिए उन्होंने लिख दिया कि मथानी भी देख लो। मेरे मित्र! आगम की बात को मानने लग जायें तो आज पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक महोत्सव न होकरके हम सब का जन्मोत्सव महोत्सव हो जाये। जन्म होने से महान् नहीं बनते। वे अज्ञानी लोग हैं जो जन्मजयन्तियाँ मना रहे हैं। जन्मजयन्ति मनाने की आवश्यकता नहीं है, जन्म को जीतने की आवश्यकता है। भैया! हम जन्मकल्याणक इसलिए नहीं मना रहे कि प्रभु आज आप जन्म लोगे, आपका ये अन्तिम जन्म है, आप जन्म को जीत लोगे, मरण को जीतनेवाले हो, आप बुढ़ापे को जीतने वाले हो। आप जिन हो, इसलिए जयन्ति है। जो जीत ही नहीं पाये, उन्हें प्रयास करना चाहिए। भैया! कम-से-कम आज तीर्थंकर पार्श्वस्वामी के जन्मकल्याणक में यदि इतना नियम आप लोग ले लेते हैं कि महाराज! कभी भी जीवन में शादी की वर्षगांठ नहीं मनायेंगे, तो जन्मकल्याणक मनाना सार्थक हो जायेगा।

भैया! व्रत का तात्पर्य, व्रत का अर्थ लोगों ने जो मान रखा है, वो नहीं है। **पापों को नहीं करना, ये व्रत नहीं है। बुद्धिपूर्वक प्रतिज्ञापूर्वक पापों को छोड़ देना, इसका नाम व्रत है।** नहीं-तो ये भैया कहीं जेल में कैद हो गया बेचारा, समय पर भोजन भी नहीं मिल रहा पानी भी नहीं मिल रहा, बेटे की माँ भी वहाँ नहीं है, तो व्रती हो गया क्या? ये पराधीन है, बुद्धिपूर्वक सबकुछ छोड़ने पर भी त्याग नहीं है। **घर में सबकुछ होने के बाद भी कुछ पर दृष्टि न जाये, शिव पर दृष्टि जाये, उसका नाम व्रत है।** धन्य है ऐसे योगीश्वरों को। अभी घर में होते तो पचास बार पानी पी लेते और यहाँ जिनवाणी पी रहे हैं। ये भी तुम्हारी तपस्या है। श्रावकों की पूजा भी तपस्या है। इसलिए जो दान नहीं देता, वह हिंसक होता है। जितना घोर हिंसक होगा, वह कभी मन्दिर में द्रव्य लेकर ही नहीं आयेगा। द्रव्य से पूजा भी नहीं करेगा। 'महाराज! अभी तक तो ये सुना था कि द्रव्य चढ़ाने से हिंसा होती है, आप तो कह रहे हैं कि जो द्रव्य नहीं चढ़ाता वह हिंसक है?' बिल्कुल सत्य कह रहा हूँ मैं। अभी आपको स्याद्वाद समझना पड़ेगा। आगम को एक रूप से सुनने से काम नहीं चलेगा। जो द्रव्य नहीं चढ़ाता, दान नहीं देता, उसको हिंसक क्यों कहा है? आपको 'पुरुषार्थ-सिद्ध्युपाय' बहुत अच्छे से समझना चाहिए। 'पुरुषार्थ देशना' पढ़ो। आचार्यभगवन् अमृतचन्द्र स्वामी क्या लिख रहे हैं? कषाय ही हिंसा है।

जो कषाय से युक्त होता है, वह आत्मा की आत्मा से हिंसा करता है। तो लोभकषाय की तीव्रता के कारण द्रव्य नहीं छोड़ पा रहा है, इसलिए जो द्रव्य नहीं छोड़ पा रहा है वह हिंसक है। जो दान नहीं दे पा रहा है, वह हिंसक है। घर में लाखों सड़ जायें, लेकिन द्वार पर कोई एक भिक्षु पधार जाये तो दान देने के परिणाम नहीं होंगे, बस, समझ लो तेरी दुर्गति का बन्ध हो चुका है। भैया! जिस जीव का नरकायु का बन्ध हो चुका है, वह दिगम्बर मुनि के हाथ पर ग्रास रखने के भाव नहीं बना सकता, ये आगम बोल रहा है। जिस जीव के नरकायु का बन्ध हो चुका है, मनुष्यायु का बन्ध हो चुका है, तिर्यञ्चायु का बन्ध हो चुका है, वह कभी देशव्रत भी धारण नहीं कर सकता, महाव्रत तो छोड़िये। प्रतिमा धारण करने के परिणाम नहीं हो सकते उस जीव के। इसलिए **'व्रतं शील तपोदानम्'** व्रत शील तप और दान, संयम। **पाँच इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करना और षट्काय के जीवों की रक्षा के भाव रखना, अशुभ प्रवृत्ति की निर्वृति कर देना, इसका नाम संयम है** और **'अर्हत्पूजनम्'** अर्हन्त की पूजा। भैया! यदि जीवन में मुनि बनने के परिणाम हों तो आज से ही मुनियों को दान देना प्रारम्भ कर देना और अर्हन्त का अभिषेक, पूजन, पाठ भी करना। **जितनी भक्ति तीव्र होगी, उतनी साधना पवित्र होगी।** जो सूखे-सूखे मुनि बन जाते हैं बिना चौका लगाये, बिना पूजा करे, तो आहार करने भी जायेंगे तो उन्हें पता तो नहीं है कि चौके में कितनी मेहनत होती है, तो वे हूँ-हूँ करके भूतिया-से घूमते हैं। फिर संघ में रहनेवाले साधु की प्रवृत्ति और एकलविहारी साधु की प्रवृत्ति में इतना अन्तर होता है कि बाँझ स्त्री और पुत्रवती स्त्री में जितना अन्तर होता है। बन्ध्या के भीतर शुष्कपना रहता है, उसके अन्दर कोई प्रीति भाव नहीं है कि सन्तान के प्रति क्या अनुभूति होना चाहिए। ऐसे-ही समता से शून्य एकल साधु की प्रवृत्ति होती है। भैया! सारे काम छोड़ देना, लेकिन अर्हन्त की पूजा का जैसे ही समय हो मंदिर पहुँच जाना। भैया! वो वाबड़ी का मेढ़क जब पांखुड़ी लेकर चल दिया, तीर्थंकर के समवसरण में पहुँच भी नहीं सका, पर भक्ति की भावना के प्रभाव से श्रेणिक के हाथी के पगतले मृत्यु को प्राप्त हो गया और जाकर स्वर्ग में देव हुआ। श्रेणिक बाद में पहुँच पाया, वह देव अपने मुकुट में मेंढ़क का चिह्न लगाकर समवसरण में पहले ही पहुँच गया।

समन्तभद्र स्वामी ने 'रत्नकरण्डकश्रावकाचार' में लिखा है कि अर्हन्त देव के चरणों की पूजा की भावना मात्र से एक मेंढ़क का जीव स्वर्ग में देव हो गया, ज्ञानी! आप तो श्रावक हो, रत्नमयी कलशों से अभिषेक करो और स्वर्णमयी थालियों में द्रव्य

सजाकर पूजा करो। पर टूटे चावल, फूटे बर्तन और फटे कपड़ों से वे पूजा करें जो भविष्य में दरिद्री बनें। खाने को बासमती और पूजा को सस्ते चावल। भैया! अपने जीवन में इतना ध्यान रखना कि आप यहाँ आये हो और यहाँ के लोग कहें कि भैया भोजन कर लो, तो कर लेना, पर थाली लगी है पूजन की, पूजा और कर लो, तो अपनी जेब की ओर हाथ ले जाना और कहना कि भाई! मैं तुम्हारा भोजन तो फ्री का कर सकता हूँ, पर अर्हन्त की पूजा फ्री की नहीं कर सकता हूँ। श्रावको! जितना द्रव्य चढ़ाओ, उतना द्रव्य मन्दिर में डालना। गुरु को दान, प्रभु की पूजा दूसरे की द्रव्य से नहीं होती है। स्वयं का पेट भरने के लिए आप दूसरे की द्रव्य का उपयोग कर सकते हो, लेकिन परमात्मा की पूजा के लिए दूसरे का द्रव्य? तो पुण्य तुम्हें लगेगा कि उसको लगेगा? व्रत, शील, तप, दान, संयम और अर्हन्त की पूजा—ये सभी काम '**सर्वं दुःखविच्छित्तये**' दुख विच्छित्ति के उपाय हैं, इनसे दुःखों का नाश होता है, '**प्रोक्तमेतन्न संशयः**' इसमें किसी प्रकार का संशय मत करना, परन्तु अन्तरंग का लक्ष्य परमात्म दृष्टि हो। यदि परमात्म शून्य हो, तो पुण्य-बन्ध के कारण तो हो सकते हैं, लेकिन संसार-विच्छेद के कारण नहीं हो सकते हैं। **भैया! जब-जब भगवान् के चरणों में जाओ तो बस एक ही भावना भाना कि दासी का दास बनना स्वीकार है, लेकिन आपके चरणों को छोड़ना स्वीकार नहीं है।** हे नाथ! जब तक मैं इस संसार में रहूँ, तब तक आपकी शरण मिलती रहे और संसारातीत हो जाऊँ तो फिर मैं निज की ही शरण में रमण करूँ।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।



परमपद प्राप्ति का उपाय

तृणतुल्यं परद्रव्यं परं च स्वशरीरवत्।
पररामा समा मातुः पश्यन् याति परं पदम्॥323॥

अन्वयार्थ— **(परद्रव्यं तृणतुल्यं)** दूसरे के धन को तृण के समान **(परं च स्वशरीरवत्)** दूसरे के शरीर को अपने शरीर के समान **(पररामा मातुः समा)** परस्त्री को माता के समान **(पश्यन्)** जो देखता है **(परं पदं याति)** वह परमपद मोक्ष को पाता है।

भावार्थ— हे भव्यात्मन् ! दूसरे के धन को तृण के समान, दूसरे के शरीर को अपने शरीर के समान, परस्त्री को माता के समान जो देखता है, वह निर्वाण को प्राप्त करता है।

॥ सद्-देशना ॥

बन्धुओ! अन्तिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेश की पीयूष देशना जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवन्त हो। जयवन्त हो वीतराग श्रमणसंस्कृति।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज 'सारसमुच्चय' जी में परमपद की प्राप्ति के उपाय की व्याख्या कर रहे हैं। **जिस जीव को निज के प्रति किञ्चित् भी करुणादृष्टि है, वह निज आत्मा की वंचना से बचने का प्रयास करता है। ऐसा प्राणी पर की वंचना से भी दूर रहता है।** आज तक विश्व में मन के समझाने के लिए लोगों ने दूसरों को धोका दिया है, दगा दिया है। मन को सन्तुष्ट करने के लिए हमने दूसरों को दगा देने का प्रयास किया है। पर छला स्वयं को ही है। दो धारायें तुम्हारे बीच में हैं, एक वर्तमान के स्वार्थ की पूर्ति और दूसरी कर्मबन्ध की पूर्ति। मन की सन्तुष्टि के लिए दगा दूसरों को दिया है, पर कर्मबन्ध की दृष्टि से छला स्वयं को है। जितनी नीतियाँ खेली हैं इस जीव ने, उन सब नीतियों में उसने मायाचारी के अलावा और-क्या किया? पुण्य-पाप के द्रव्य को तूने उठाके रख दिया और मात्र अपनी रणनीति में लग गया। पर तुझे विश्वास होना चाहिए कि कितनी ही सुन्दर गाड़ी क्यों न हो, आज ही उठाकर लाये हो, पर मेरे मित्र! उसमें तेल नहीं होगा तो गाड़ी चलने लायक नहीं होगी। कितनी ही छलनीति रणनीति आपको आती हो, कितनी ही जगत् की विद्यायें

साथ में हों, लेकिन पुण्य का तेल नहीं तो कोई भी विद्या कार्यकारी हो नहीं सकती। रावण-जैसे नीतिज्ञ जीव भी असफल हो गए।

मित्रो! घर के आँगन से लेकर जिनमन्दिर के आँगन तक अपनी भावनाओं की विशुद्धि की आवश्यकता है। यदि परिणामों की विशुद्धि का अभाव हो गया, तो न घर का आँगन शोभायमान होगा न मंदिर का आँगन शोभायमान होगा। घर के आँगन को कितना ही साफ किये हो, किञ्चित् भी कचरा तुमको पसन्द नहीं है, पर अंतस् में कितना कचरा आप डाले हो, यह तुमको विवेक ही नहीं है। यदि मान, माया, लोभ, काम, क्रोधादि काषायिक भावों के कचरे अन्तस् के आँगन से नहीं हटते हैं, तो घर के आँगन की स्वच्छता कोई कार्यकारी नहीं है। मन्दिर की स्वच्छता भी कोई कार्यकारी नहीं है यदि अन्दर की स्वच्छता नहीं है तो। मन्दिर साफ होना चाहिए, ये बहुत अच्छी बात है, लेकिन अन्तस् साफ होना अच्छी ही नहीं अपितु महान् अच्छी बात है। भैया सारा जीवन यही देखता है कि जो देखा जाता है उसे साफ कर लो। घर की देहरी को लोग देखते हैं उसे साफ कर लो, मन्दिर की देहरी को लोग देखते हैं इसलिए उसे साफ कर लो और तेरे भीतर की देहरी को दुनियाँ की आँखें देख नहीं पाती हैं, तो उसमें कितना कचरा भरा हुआ है? भैया! भीतर झाँक कर तो देखो, पर पड़ौसी को मत देखना। मित्र को भी नहीं देखना। पिता को, पुत्र को भी मत देखना। देख सको तो उसे ही देख लो जो सबको देख रहा है।

ज्ञानी! आज मंगलवार है क्या? मेरे मित्र! मंगलवार तो हर सप्ताह में आ जाता है, लेकिन वह मंगलवार कब आयेगा जब मेरे हृदय का आँगन साफ होगा? नहीं-तो भैया तू साल में कितने मंगलवार देख चुका है। मंगलवार के दिन तूने अमंगल होते देखा है, मंगलवार के दिन भी तूने अमंगल किया है और ज्ञानी! जब तक मंगल भाव नहीं है, तब तक तेरा मंगलवार नहीं। दिन मंगलवार हो सकता है। लोग कहते हैं कि यमराज भी आये तो मंगलवार को, क्योंकि बाजार बन्द रहता है। ज्ञानी! समय को तो तुम देख लोगे, पर समय (आत्मा) को नहीं देख सकोगे। कितना ही भटक ले, ज्ञानी जब तब समय को समय पर नहीं देख सकेगा, तब तक समयसार को प्राप्त नहीं कर सकेगा। समय मिला है, मित्र! समय को निहार लीजिए। यदि समय को समय पर निहार लिया, तो तू ही समयसार है। कुन्दकुन्द के 'समयसार' को लिखनेवाले करोड़ों लोग मिल जायेंगे, पर स्वयं के समयसार को समझनेवाले ज्ञानी अंगुलियों पर गिनने लायक ही मिलेंगे, क्योंकि कुन्दकुन्द ने जो लिखा है वह 'शब्द' समयसार है,

जबकि मेरे भीतर जो है वह 'शुद्ध' समयसार है। क्या करूँ? भीतर के समयसार को नहीं पहचान सका जीव, शब्द समयसार में इतना लीन हो गया और जीवित समयसारों का अनादर करना प्रारम्भ कर दिया। भैया! यदि तू अपनी माँ को गाली देता है पत्नी के बहकावे में आकरके, तो मैं कहूँगा कि तेरे से बड़ा भोगी जगत् में कौन होगा? यदि तू अपने बेटे के गाल पर चाँटा मारता है तो मैं कहूँगा कि तेरे से बड़ा पापी जगत् में कौन होगा ? तू पुत्र का सम्बन्ध तो देख रहा है , लेकिन उसके भीतर बैठी भगवान् - आत्मा को नहीं देख रहा है । पुत्र का सम्बन्ध त्रैकालिक नहीं है, पर भगवान्-आत्मा का सम्बन्ध उसके अन्दर त्रैकालिक है।

जिसको पड़ौसी में शत्रु दिखे, घर में शत्रु दिखे, समाज में शत्रु दिखे, भैया! विश्वास मानना, वह जैनदर्शन का श्रावक भी नहीं है, साधु तो बहुत ऊँची वस्तु है। जब आप पानी छान कर पीते हो, तो उसका क्या उद्देश्य होता है? इस पानी में विराजे भावी भगवान् का घात न हो जाय मेरे से। द्रव्यदृष्टि से उस सूक्ष्म जीव के अन्दर बैठे भगवान् की तो तुम रक्षा कर रहे हो, लेकिन इतना बड़ा तुम्हारे बगल में पड़ौसी बैठा है उसको क्यों नहीं देख रहे हो कि इसके भीतर भी तो भगवानात्मा है? अभी धर्म पर दृष्टि नहीं है। जिस दिन धर्म पर दृष्टि हो जायेगी, उस दिन ज्ञान-दर्शनस्वरूप भगवान्-आत्मा प्रत्येक जीव में दिखाई देगा। भैया! व्याख्यान का विषय तो तोते के भीतर भी हो सकता है, लेकिन जिसको रात्रि में चरने का वैराग्य नहीं है, जिसको पानी छानकर पीने का विवेक नहीं है और जिसको होटलों और ढावों पर चाट चाटने की लगाम नहीं है, ऐसे व्यक्ति के पास विवेक हो, भेदविज्ञान हो, ये परिपूर्ण असत्य भाषण है। परिपूर्ण असत्य आचरण है। भैया! बिल्कुल सत्य मानना, विवेक कलिका चिद्रूप ज्योति का भान जिसको हो जायेगा, वह अनशन स्वभाव पर दृष्टि डालेगा, कि ढावों की उन कढ़ाहियों को चाँटने जायेगा?

जैनत्व यदि तुम्हारे अन्दर पल रहा है तो भैया! रुमाल है क्या तुम्हारी जेब में? निकालो तो उसको। इसका उपयोग क्या होता है? मेरे मित्र! नाक पोंछने के लिए, पसीना पोंछने के लिए तू इतने बड़े रुमाल का परिग्रह रख सकता है, मल इतना महान् है कि जिसके साफ करने के लिए रुमाल रखता है, पर तेरी दूसरी जेब में छन्ना होना चाहिए था जिससे छान कर तू पानी पी सकता है। कितने ही पोस्टर छपा लो, बैनर लगा लो और कितने ही मंच से प्रवचन कर लो, पर बेटा! तूने रास्ते में चलती

ट्रेन में भी पानी छान कर पी लिया है तो दुनियाँ कहेगी कि ये जैन है। जैनधर्म की प्रभावना हो गई।

ये जितने तीर्थंकर के माता-पिता, सौधर्म इन्द्र, कुबेर, यज्ञनायक आदि बने हैं, ये सब रिश्तेदारों को भेंट चढ़ानेवाले हैं। मेरे मित्र! ध्यान रखना, न किसी को डिब्बी बाँटना न ढक्कन बाँटना। इन ज्ञानियों से कहना कि ये ले जाओ छन्ना, इससे पानी छान कर पीना, ये है जैनी का चिह्न। जिसके बुलऊआ हो, रुमाल नहीं बाँटना। यदि आपको बाँटने का भाव आ रहा है तो छन्ना बाँटना, जिससे पानी छान कर पीयेगा। पण्डित जी को जो कहना चाहिए वह मुझे कहना पड़ रहा है। ये पण्डित लोग आत्मा-परमात्मा की बातें कहके तो चले जाते हैं, पर इतना विवेक तो होना चाहिए कि जब तक आत्मा की रक्षा नहीं करोगे तब तक परमात्मा की रक्षा कहाँ होगी? बन्ध से रक्षा करना सीखो। मेरे मित्र! बन्ध से रक्षा कर लेगा तो नियम से मोक्ष मिलेगा।

मेरा पूरी समाज से कहना है कि तुम्हारी परीक्षा तो पर घर में ही है। निज के घर में तुम पालन करते हो। किसी ने आपको रात्रि के 12 बजे बुलाया भोजन करने के लिए, तुम वहाँ पहुँच गए, अरे! वह क्या सोचेगा? इसलिए ज्ञानी! जब पर घर में पानी पीने जाओ, तो छन्ना निकालना, वो कम-से-कम याद तो रखेगा कि अमुख एक ऐसा श्रावक है जो पानी छान कर पीता है। भाई! पुरुषार्थ से क्या नहीं हो सकता? 'भगवती आराधना' में लिखा हुआ है कि उस क्षेत्र में जाना हमारे लिए उचित नहीं है जिस क्षेत्र में हमारे धर्म का पालन न हो। निर्ग्रन्थों को उसी क्षेत्र में विहार करना चाहिए जहाँ उनकी निर्दोष चर्या का पालन हो। उस क्षेत्र में जाना ही नहीं जिस क्षेत्र में छन्ना लगाने पर लोग हँसी करें। अब समझ में आयेगा कि चर्या का तत्त्व कितना गम्भीर है। यदि नाक पोंछने के लिए तू रुमाल रख सकता है तो अर्हन्त की वाणी की रक्षा करने के लिए छन्ना रख लेता है तो बेटा! तेरे से अच्छा जिनवाणी का सपूत और-कौन होगा? ये जीव को बोध होना चाहिए। अन्तरंग का राग कितना गम्भीर भरा हुआ होता है कि हम निर्णय लेने के लिए कितने मजबूर हो रहे हैं। पानी छानने के लिए छन्ना रखने का इतना संकल्प-विकल्प, तब इन युवा योगियों से पूछो कि आपने घर कैसे छोड़ दिया होगा? अब समझ में आता है कि चर्या कौन-सी वस्तु है और बिना चारित्र का ज्ञान '**हतं ज्ञानं क्रियाहीनं, हतं च अज्ञानिनो क्रिया।**

आज तपकल्याणक है, कम-से-कम इन सबकी इतनी ही दीक्षा हो जाए कि पानी छान कर पिये आज से। मुझे इतना तो मालूम है कि घर में तो पानी छानकर पीते ही हो, पर बाहर भी पानी छानकर पिओ। मित्र! यदि आपको कहीं जाना पड़ जाये, पानी पीना पड़े, तो फिर क्या करोगे? ऐसा करो कि अपना छन्ना रख लो। जब ज्ञानी तू इतना कर ही रहा है, और इतने वर्षों से छान कर पीने का अभ्यास हो ही गया है, तो अब नियम ही कर लो? जो होगा सो देखा जायेगा। भैया! विश्वास रखो, आदमी जो ठान ले वह हो जाता है । कहीं ऐसा न हो जाये कि राजा जनक स्वयंवर की रचना तो कर बैठे, जितने क्षत्री आयें वे सारे-के-सारे धनुष उठायें और वह वहीं गिर जायें, तब जनक को चिन्ता हो गई कि मुझे नहीं था मालूम कि इस धरती पर क्षत्रियों का अभाव हो गया है, पृथ्वी क्षत्रियशून्य हो गई है। यदि मुझे बोध होता, तो मैं ये स्वयंवर क्यों रचता? तब राम खड़े हो गए और जनक की आँखों के आँसूओं को पोंछ दिया। कम-से-कम भैया! तू ही एक राम बन जा और नियम ले-ले कि महाराज! बहुत बढ़िया, एक वर्ष ही सही। तू ऐसा अभागा थोड़े ही होगा कि एक वर्ष बाद फिर से पीने लग जाये। या तो जैनी कहना बन्द कर दे या फिर पानी छान कर पी। भैया! मैंने सताया नहीं है, इनकी रक्षा के साथ-साथ कोटि-कोटि जीवों की रक्षा हुई है। यदि इस जीव को ये बोध हो गया, अपने जीवन में इसने पानी छानकर पीने का नियम ले लिया है, अब इससे नहीं कहना पड़ेगा कि अब आप बाजार की मिठाई मत खाना। भैया! ऐसा नहीं है, पञ्चम काल में बड़े धर्मात्मा जीव हैं।

वस्तुस्वरूप को समझो। **जैसे-जैसे अन्तरंग में स्वसंवित्ति का जागरण होता है, वैसे-वैसे विषयों की अनुभूति से वैराग्य होता है और जैसे-जैसे विषयों की अनुभूति से वैराग्य होता है, वैसे-वैसे स्वसंवित्ति का जागरण होता है।** जिसके भीतर की ज्योति जल चुकी है, वहाँ अन्धकार कहाँ और जहाँ अन्धेरा है, वहाँ जगत् का प्रकाश कार्यकारी कहाँ? ज्ञानी! चिन्ता में डूबे हो कि चिन्तन में चले गए हो?

आचार्य कुलभद्र स्वामी कह रहे हैं कि यथार्थ में तू सत्य को समझना चाहता है तो—

ज्ञानियो! जिसका पिता सम्राट् हो और जिसको विभूति हाथ जोड़े खड़ी हो कि स्वामी! स्वीकार करो सम्पत्ति। लक्ष्मी कह रही है कि स्वामी! मुझे स्वीकार करो।

पर जिसकी अन्तरंग लक्ष्मी पर दृष्टि लगी हो, वह आँख उठाकर भी नहीं देख रहा है, सड़े तिनके के समान। भैया! तिनका स्वच्छ होगा तो उसको उठाकरके तुम दाँत साफ करने में प्रयोग कर सकते हो, लेकिन सड़े तिनके को कोई नहीं उठाता। जिसके भीतर वैराग्य समा जाता है, वह जगत् के सम्पूर्ण द्रव्यों को सड़े तिनके के समान छोड़कर चला जाता है और जब तक राग सताता है, तब तक घर में वस्तु सड़ती रहेगी पर रोड पर खड़ी गाय के मुख में तू रोटी नहीं दे सकता है। भैया! कितने लोग ऐसे होंगे जिनके घर में पेटियों में वस्त्र सड़ रहे होंगे, पर किसी गरीब के हाथ में देने के परिणाम नहीं होते। जिस जीव के नरकायु का बन्ध हो चुका है, वह आरम्भ-परिग्रह को तो बढ़ाने में इच्छा (लालसा) रखेगा, लेकिन अपने हाथ से उठाकर देने के परिणाम नहीं कर सकेगा। माताओ! बड़े पवित्र परिणामों से सुनना, परिणामों की परीक्षा करना। घर में वस्तु सड़ सकती है, फिक सकती है, पर स्वच्छ होने पर दूसरों के हाथ में देने के परिणाम नहीं होते हैं। भैया! तुम देने के भाव भी रखते हो, पर लेनेवाले का तीव्र अशुभ कर्म का उदय चल रहा है तो क्या करोगे? यदि एक नेता आ जाये तो एक लाख की थैली पकड़ा दे और भिखारी द्वार पर आता है तो तू अपने बेटे की माँ से कहता है कि एक चम्मच आटा डाल दो। भैया! समझना वस्तुस्वभाव को। ये दुभात नहीं है। उस जीव का क्षयोपशम ही इतना है कि आपके भाव ही नहीं हुए कि- इसको और-अधिक दिला दूँ।

जिस जीव का अशुभ कर्म का उदय होता है, वह मरणासन्न भी है, बड़े-बड़े पण्डित साधुपुरुष भी बैठे होंगे, तब भी उसको कान में णमोकार सुनाने के भाव ही नहीं आ रहे हैं। और जब उसकी मृत्यु हो गई, तो सोचता है कि हाय! मैंने इसको णमोकार क्यों नहीं सुनाया? पर मेरे मित्र! उसके लाभान्तराय कर्म का क्षयोपशम भी चाहिए था। मेरे मित्र! कम-से-कम इतना तो पुण्य जोड़कर रखना कि अन्तिम श्वास के काल में कोई णमोकार सुनानेवाला मिल जाय। **इतना पुण्य क्षीण मत कर बैठना कि मरण के काल में कोई णमोकार सुनानेवाला भी न मिले।** माताओ! भाइयो! इन कानों में इतने संगीत मत सुनना कि कान ही फूट जायें। इन आँखों से इतने खोटे चित्र मत देखना कि आँखें ही फूट जायें। सल्लेखना के काल में ये आँखें और कान ही काम में आयेंगे। ये एक दिन टार्च लेकर जा रहा था। थोड़ा चला और फिर बन्द कर ली। ऐसा क्यों कर रहा था? ये मैं आप सभी से पूछ रहा हूँ। मेरे मित्र! दस रुपये की बैटरी को तू कितना सुरक्षित रख रहा है कि चार्ज में बनी रहे, व्यर्थ में

समाप्त न हो जाय। मेरे मित्र! तू इन आँखों को क्यों नष्ट कर रहा है? दुनियाँ की आँखों को उतना ही देख जितनी आवश्यकता है। परमात्मा को देखकर आँखें बन्द कर लो, जिनवाणी को देखकर आँखें बन्द कर लो और निर्ग्रन्थ गुरुओं को देखकर आँखें बन्द कर लो, इन व्यर्थ के द्रव्यों को देखकर इन आँखों को क्यों फोड़ रहा है? इसलिए **तत्त्वज्ञानी जीव जो है, वह या तो नासाग्र दृष्टि रखता है या फिर नयन बन्द रखता है कि मैं जिसे देखना चाहता हूँ उसे ही देखूँगा, जगत् के व्यर्थ के चित्रों को देखकरके अपने चारित्र को नष्ट नहीं करूँगा।** बैटरी में इतना विवेक और अपने आयुकर्म के निषेकों पर कोई विवेक नहीं?

ज्ञानी! परमात्मा का राग भी बन्ध का ही कारण है, तो बहिरात्मा का राग तेरे मोक्ष का कारण कैसे हो गया? इसलिए आचार्यभगवन् कह रहे हैं **"तृणतुल्यं परद्रव्यं"**। ये सूत्र जिस दिन याद हो जायेगा, उस दिन तेरा कल्याण हो जायेगा। दुःखी इस बात पर नहीं हूँ कि मेरे आगे मेरी दुकानें चार हैं कि एक भी नहीं है, पर मेरे पड़ौसी की दो क्यों हैं? इस पर दुःखी हूँ। भैया! आप श्रीफल लाये थे और धीरे-से चढ़ाकर चले गए, कर्म की निर्जरा होगी कि नहीं? मेरे मित्र! तू कैसा अभागा है कि खाली हाथ चला आया। अगर चढ़ायेगा तो भी कैसे चढ़ायेगा? जब आपको मंच से बुलाया जायेगा, हजारों लोग देख लें कि इसने श्रीफल चढ़ाया है, तो उससे अधिक कर्मनिर्जरा होगी, ऐसा लगता है। मुझे वह बोला महाराज! जब-तक दुनियाँ नहीं देख लेती, तब-तक कैसे मालूम चलेगा कि श्रीफल चढ़ाया है कि नहीं? भैया! उस श्रीफल में तो राग और द्वेष निहित हो गया, वह बन्ध का कारण हो गया और जो तुम अपने घर का श्रीफल लेकर आये थे, उसे मौन से चढ़ाकर चले गए, ज्ञानी! उससे असंख्यात गुणश्रेणी कर्मनिर्जरा हो गई। लेकिन जब-तक कोई देख लेगा नहीं और हजारों लोगों में से कुछ ही लोगों को बुलाया जायेगा, तो जिनको नहीं बुलाया गया है, जब-तक उनके चेहरे उदास नहीं होंगे, तब-तक मेरे श्रीफल चढ़ाने का आनन्द कैसे आयेगा? भैया! ऐसा ही है। कुछ लोग हाथ में श्रीफल लेते हैं और धीरे-से संचालक से कहते हैं कि भाई मेरा नाम बोल देना। अरे भाई! वे ही तो महाराज हैं और तेरा श्रीफल, तू चढ़ाने वाला, चढ़ा जा, क्यों समय बर्बाद कर रहा है? जितने में तुम सब श्रीफल चढ़ाते हो उतनी आधा घण्टा और तुम्हें जिनवाणी सुनने को मिले। ताली तो बजा लेते हो, पर मन नहीं बजता तुम्हारा। सब काम छूट जाय, पर मान नहीं छूटे। एक बार नाम ले दो तो सेर भर का आदमी तुरन्त सवा सेर का होता है।

ज्ञानी! न भाई की सम्पत्ति हड़पने का भाव, न पड़ौसी की सम्पत्ति हड़पने का भाव रखना। कम-से-कम तुम इतना ही नियम ले लो। मैं आपकी कोई भी वस्तु नहीं छुड़वा रहा हूँ। सगे भाई की सम्पत्ति हड़पने के जो भाव चल रहे हों, आज उनका प्रत्याख्यान कर दो। भाई की सम्पत्ति नहीं हड़पोगे तो पड़ौसी की हड़पोगे।

माताओ! ध्यान दो, ये आपके लिए विशेष कथन है। ये बैर भाव छोड़ दीजिए और भेदभाव छोड़ दीजिए बेटी तुम्हारी घर में आती है स्वयं की और दिन भर खाती है और काम कुछ भी न करे तब भी आप कहने जाते हो पड़ौस में कि मेरी बिटिया तो दिन भर काम करती रहती है, कुछ भी नहीं खाती। माताओ! खाती न होती, तो जी कैसे रही है? बेटी से राग निहित है और जो दूसरों की बेटी तेरे घर में बहू बनकर आयी है, वह दिन भर काम करती है, लेकिन फिर भी तू एक दिन भी प्रशंसा के शब्द नहीं बोल सकती है। कितने पापी जीव हो। **जितनी प्रशंसा तुम बेटी की कर रही हो, उससे आधी से भी आधी प्रशंसा बहू की करने लग जाओ तो तुम्हें दुगना सुख मिलना प्रारम्भ हो जायेगा,** विश्वास रखो। लेकिन वो नहीं हो सकता, क्योंकि पर की है। धिक्कार हो तुम्हारी दृष्टि को। बहुत गर्मी पड़ रही है, सिर दर्द होता है, मेरे से काम नहीं होता है। तो जैसे तुम्हारा सिर दर्द कर रहा है, तुमसे काम नहीं हो रहा है, ऐसे-ही दूसरे के शरीर के बारे में तो सोचो। उसका भी सिरदर्द कर सकता है, क्योंकि वो भी एक जीव है। आपने अपनी तो सुना ली, कभी उसकी भी सुनने गये क्या?

भैया! तेरे घर में गाय बंधी हुई है, समय पर भोजन-पानी देता नहीं है और दूध निकालने पहुँच जाता है, कैसा पापीजीव है? उसको समय पर भोजन और पानी तो देना चाहिए। ऐसे-ही घर के सदस्यों से, घर में नौकर भी क्यों न हो, काम लेना जानते हो और समय पर भोजन-पानी की बात आ जाये तो कुनकुनाना प्रारम्भ कर देते हो। पानी कुनकुना फिर भी अच्छा लगता है, लेकिन घर का कुड़कुड़ाना अच्छी बात नहीं है। क्यों, ऐसा नहीं होता क्या?

भैया! भावों से मिलो, देह से मिलने से कुछ नहीं मिलेगा। कम-से-कम ज्ञानियो! तुम रावण-जैसा ही नियम ले लो और रावण-जैसा नियम नहीं ले सके तो रावण से भी तुम महारावण कहलाओगे। रावण का नियम था, रावण के एक नियम ने ही सीता के शील की रक्षा की है। रावण ने दिगम्बर योगी के चरणों में प्रतिज्ञा ली थी। वो ये सोचता था कि मेरे सुन्दर रूप को देखकरके कौन-सी स्त्री प्रभावित न

होगी। उसने अहंकार से भरकर नियम लिया था। पर उसे पता नहीं था कि शीलवन्ती नारी के लिए पर के सुन्दर रूप कुरूप ही होते हैं। **ज्ञानियो! जो पुरुष शीलवन्त होता है, वह पर नारी के लिए नपुंसक ही होता है।** मन्दिर के धर्म से काम नहीं बनेगा, जब-तक अन्दर धर्म नहीं आयेगा। रावण ने नियम लिया था कि जो स्त्री मुझे नहीं चाहेगी मैं उसके साथ बलात्कार नहीं करूँगा। धन्य हो उसके नियम को, उसने जीवनपर्यन्त उसका निर्वाह किया। हर व्यक्ति के अन्दर गुण भी होते हैं, आप सर्वथा अवगुण ही मत देखो। अवगुण ये था कि उसने परस्त्री का हरण किया था और गुण ये था कि उसने व्रत को भंग नहीं किया। कितने लोग ऐसे हैं जो रावण-जैसा नियम लेने की ताकत रखते हैं? मेरे मित्र! क्या रावण-जैसा भी नियम नहीं ले पाओगे? अब रावण के लिए दशहरा के मैदान में जलाने का मन मत बनाना कभी। उस बेचारे को ही क्यों जलाते हो? अपने मन से पूछो, रावण ने तो एक सीता पर दृष्टि डाली थी तो तुम उसे अभी तक जला रहे हो, अपने मन से पूछो कि कितनी सीताओं पर दृष्टि डाली? अब किसे जलाना चाहिए? गोरे और सुन्दर चेहरा लेकर बैठ जाओगे तो उससे मन सुन्दर हो जायेगा क्या? और जिसका पाप छिपा हुआ है, उसका पाप का बन्ध भी छिपा है क्या? व्रती लोग दोष करें तो पाप का बन्ध होता है, हम तो अविरत सम्यग्दृष्टि हैं। अविरत सम्यग्दृष्टि कहने वाली आत्माओ! इसमें सन्तुष्ट मत होना। पाप का बन्ध चाहे व्रती हो तो होगा, अव्रती हो तो होगा। जिसने व्रत लेकरके छोड़ दिया है, उसके मन में तो टीस रहेगी जीवन भर कि हाय मुझे तो प्रायश्चित्त लेना है। लेकिन जिसने व्रत नहीं लिया और पाप कर रहा है, उसको तो तीव्र पाप का बन्ध होगा। भैया! आगम के बड़े रहस्य हैं। इसलिए सम्यग्दृष्टि श्रावक ये मत सोच बैठे कि मुझे बन्ध नहीं हो रहा है। मात्र मिथ्यात्व सम्बन्धी बन्ध तुम्हें नहीं होगा, लेकिन शेष पूरे बन्ध नियम से होंगे। अविरति-प्रमाद-कषाय-योगजन्य बन्ध होंगे कि नहीं होंगे? बन्ध बन्द नहीं होंगे।

भैया! ये आप लोगों का कर्तव्य है कि जैसे-ही घर से बाहर निकलो और जो सम्यक् प्ररूपणा है आगम की, उसको करो। आप ऐसी प्ररूपणा करो जिससे लोगों को मालूम चले, नहीं-तो सम्बन्ध ही आज विच्छेद हो रहे हैं, किसी के बेटे ने आत्महत्या कर ली और आजकल के चन्द विद्वानों ने कहना प्रारम्भ कर दिया है कि बस उसी के माता-पिता को सूतक लगेगा, बाकी को नहीं लगेगा। अरे भाई! आगम की

व्यवस्थाओं पर ध्यान दो। पूरे कुटुंब को सूतक लगना है छह महीने का। एक घर में ही भेद करा दिए और अशुद्धि में ही पूजा-पाठ करा दिए। वृद्ध लोगों से पूछो, पुराने लोग क्या पालन करते थे। छह महीने का करते थे कि नहीं करते थे? आज के कुछ विद्वानों ने ये सब गड़बड़ कर दिया है।

भैया! इस बात का ध्यान रखना कि इस प्रकार की परम्पराओं को स्वीकार करके मूल धाराओं से दूर मत हो जाना। आप त्रिलोकसार, तिलोयपण्णत्ति, मूलाचार को मानते हो क्या? जो विद्वान् सूतक-पातक को अनागमिक क्रिया बोल रहा है, वह जीव जैन सिद्धान्त की हत्या कर रहा है। आगम में लिखा हुआ है कि **जो सूतकपातक के दिनों में देवपूजा, गुरु-उपासना आदि करते हैं वे कुभोग भूमि और भवनत्रिक में जाकर जन्म लेते हैं।** इसलिए ध्यान रखना, आहार भी देना हो और सोले के कपड़े तुम्हारे नहीं हैं, तो उस पुण्य से दूर रह लेना कि जिस पुण्य के करने से तुम्हें भवनत्रिक में जाना पड़ जाय। बोले कि छुल गये तो पानी के छींटे मार लूँगा, बस, मुझे तो आहार देना है। पुण्य तो मिलेगा, लेकिन कहाँ ले जायेगा? वह पुण्य भूत व्यन्तर ज्योतिषी आदि कुभोग भूमि में ले जायेगा। इसलिए उत्तम पात्र को, उत्तम सोले के साथ, व्यवस्थित आहार देना। कुल शुद्धि, भाव शुद्धि और क्षेत्र शुद्धि इन शुद्धियों का ध्यान रखना।

अतिशय जो होते हैं वे भगवान् को नहीं होते हैं। अतिशय तुम्हारी शुद्धि और विशुद्धि में होते हैं। जितनी पवित्र भक्ति और शुद्धि विशुद्धि होगी, जितने अच्छे से तुम आराधना करोगे, वे ही प्रतिमायें चमत्कार को प्राप्त होंगी, तुम्हारी शुद्धि और भक्ति के प्रभाव से मंत्र की शक्ति प्रभावना करेगी। नेमीचन्द्र स्वामी जैसा निर्दोष चारित्रवान आचार्य, चामुण्डराय जैसा यजमान, पण्डिताचार्य जैसा पण्डित, जिन्होंने परिणामों की निर्मलता से सूरिमंत्र और प्रतिष्ठा की होगी तो आज सारे विश्व में दिगम्बरत्व को फैला रहे हैं गोम्मटेशबाहुवली स्वामी। ज्ञानी! कभी ये भाव मत बनाना कि मैंने इतने सुन्दर भगवान् विराजमान किए हैं। भगवान् की सुन्दरता भगवान् में है, तेरे परिणामों की सुन्दरता तेरे परिणाम में है। चामुण्डराय को मान आ गया एक क्षण का कि मैं अभिषेक करूँगा। तो प्रभु के कण्ठ के नीचे पानी नहीं उतरा और बुढ़िया की लुटिया काम कर गई। ये वास्तव में उनके अहंकार को दूर करने की दृष्टि थी।

ये विश्वास रखना, जिस जीव ने एक प्रतिमा भी यहाँ विराजमान की है, इस भूतल पर जब तक वो जिनबिम्ब रहेगा, उतने काल तक जिनशासन जयवन्त रहेगा। यहाँ के मन्दिर को देखकर ऐसा लगता है कि वे कितने पुण्यात्मा और सुधी श्रावक होंगे जिन्होंने अपनी सम्पत्ति को सम्यक् कार्य में लगाया। वे अभागे लोग हैं जो अपनी सम्पत्ति को मन्दिर में भी जाकरके पंखादि लगवा रहे हैं। हे अभागे! तुझे और-कुछ नहीं दिखा, तीनलोक के नाथ के आगे तुझे स्पर्श इन्द्रिय का ही विषय नजर आया। तुझे तीनलोक के नाथ की वीतरागता नहीं दिखाई दी। कुछ ऐसे अभागे लोग भी हैं जिनके दान के नाम का पटिया लगा होगा सण्डाशय में। बस, जिनके सड़े-सड़े परिणाम होंगे और ऐसा ही खोटा धन होगा, उनका पैसा लगेगा तो सण्डाशय में ही लगेगा। एक पुण्यात्मा वह जीव है जिसका द्रव्य अरिहंत की प्रतिमा में लग रहा है और अरिहन्त की वेदी में लग रहा है। वो सन्मति का द्रव्य है। नियोग देखें। भैया! मानते हैं आप कि जो नियत है उसे कौन टाल सकता है। देखो संसार की विचित्रता वो ऐसा ही होता है कि खड्ग सिद्ध किया है स्वयंभू ने और हाथ लगा लक्ष्मण के। जिस जीव का जैसा नियोग है। भैया! मात्र चेहरे को तो बिगाड़ सकते हो, पर कुछ नहीं सकते हो। चाहे हँस लो चाहे रो लो, वस्तुव्यवस्था तो व्यवस्थित है। भैया! तु कितना महान् है जो कहता है कि मैं अपने में हूँ आप पागल हो जो मुझे देख रहे हो, पर मैं किसी को नहीं देखता हूँ। ऐसे-ही एकान्तता तेरी चारित्र में लग जाये, उसे मात्र जो देखना है वही देख रहा है। बस, ऐसी-ही दृष्टि बन जाये जिसकी वो ही साधु बन सकता है।

जिसको जगत् की स्त्रियाँ माता के समान लग रही हैं, परवस्तु तृण-वत्, पर शरीर स्वशरीरवत्, परस्त्री मातावत्, जो ऐसा देखता है वही परमपद निर्वाण को प्राप्त होता है। इसके अलावा कोई मोक्ष का मार्ग नहीं है। ध्यान रखना, आज तीर्थंकर परमात्मा को वैराग्य होने वाला है। हे रागियो! जितना निहारना है, अभी निहार लो। जब तीर्थंकर वीतरागी मुनिचर्या को प्राप्त हो जायेंगे, फिर तुझे कुछ दूर खड़ा होना पड़ेगा। जिसकी दृष्टि ऐसे वीतराग चारित्र पर लगी हुई है, वे धन्य हैं। विश्वास रखना, जगत् की वल्लभायें वरमाला लिए खड़ी हैं, वे तो संसार में रुलायेंगी। वे जीव धन्य हैं जिनके लिए मुक्तिवल्लभा वरमाला लिए खड़ी है 'स्वामी! जल्दी पधारो, हम आपको अपना वर चुनें।' उसका नाम है सिद्धशिला।

हे मुमुक्षु! रत्नत्रय की आराधना से ही मुक्तिवल्लभा से मिलन सम्भव है, इसलिए निर्मल आराधना करो।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।



ग्रंथकार की भावना

सम्यक्त्वं समतायोगो नैःसङ्गं क्षमता तथा।
कषायविषयासङ्गः कर्मणां निर्जरा परा॥324॥
अयं तु कुलभद्रेण भवविच्छित्तिकारणम्।
दृब्धो बालस्वभावेन ग्रन्थः सारसमुच्चयः॥325॥

अन्वयार्थ— (सम्यक्त्वं) सम्यग्दर्शन **(समता)** साम्यभाव **(योगः)** ध्यान **(नैसङ्गंः)** परिग्रह का त्याग **(क्षमता)** धैर्यपूर्वक क्षमाभाव **(तथा)** और **(कषायविषयासङ्गः)** विषय-कषाय का त्याग **(कर्मणां परा निर्जरा)** ये सब कर्मों की बड़ी निर्जरा करनेवाले हैं। **(बालस्वभावेन)** बालस्वभावधारी **(कुलभद्रेण)** मुझ कुलभद्र ने **(अयं तु)** इस **(सारसमुच्चय ग्रन्थः)** सार समुच्चय ग्रन्थ को **(भवविच्छित्तिकारणम् दृब्धः)** भवभ्रमण समाप्त करने के लिए लिखा है।

भावार्थ— हे भव्यात्मन् ! कर्मों के बन्धन से छूटने के लिए सम्यग्दर्शन सहित वीतरागता का, ध्यान का, अपरिग्रह का, क्षमा का तथा विषय-कषायों के त्याग का अभ्यास मोक्ष का साधन है। मुझ कुलभद्राचार्य ने केवल आत्मकल्याणार्थ ग्रंथ का प्रणयन किया है।

॥ सद्-देशना ॥

बन्धुओ! अन्तिम तीर्थेश वर्द्धमान स्वामी के शासन में हम सभी विराजते हैं। तीर्थंकर जिनेश की पीयूष देशना जिनेन्द्रवाणी मनीषियो! जगत्कल्याणी है। यह सर्वज्ञ शासन, नमोऽस्तु शासन जयवन्त हो। जयवन्त हो वीतराग श्रमणसंस्कृति।

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज 'सारसमुच्चय' जी में अन्तस् के विकारों को बाह्य करते हुए, परम सम्यक् की व्याख्या करते हुए, समझा रहे हैं कि जीवन में समुद्र की दृष्टि हो तो ज्ञानियो! किसी से मिलने मत जाना। आपने बहुत पूजायें कर ली हैं, बहुत विचार कर लिए हैं। रविव्रत के दिन पारसनाथ की पूजा करने से बहुत सुख-सम्पत्ति की व्याख्या आपने की। मेरे मित्र! भगवान् पारसनाथ स्वामी से रविव्रत के दिन सुख-सम्पत्ति की दृष्टि से प्रभावित मत होना। बड़े-बड़े जिनालयों से प्रभावित मत होना। तीर्थंकर पारसनाथ स्वामी से प्रभावित होने की आवश्यकता है तो भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी के चरणों में माथा टेक देना। तुम चिन्तामणि पार्श्वनाथ मत देखते

रहो, कलिकुण्ड पार्श्वनाथ मत देखते रहो। देख सको तो काले कर्मों को भगानेवाले पार्श्वनाथ को देखो कि उन्होंने काले कर्मों को कैसे पछाड़ दिया। एक भवन में कभी-कभी ऐसा लगता है कि कुमार्ग और सुमार्ग युगपत जन्मे हों और दोनों मार्ग एकसाथ ही हुआ करते हैं, तभी बोध होता है कि सत्य कौन है असत्य कौन है। भैया! कभी किसी को दिखाना मत कि तुम इधर चलो। मार्ग तो मार्ग है, देख लो।

महाराजा अरविन्द के मंत्री की दो सन्तानें थीं, कमठ और मरुभूति। दृष्टि देखो। परद्रव्य को जिस दिन तृण-तुल्य झलकने लग गया मंत्री, अपने सम्राट् के पास पहुँचता है और कहता है कि मुझे सारा परद्रव्य तृण-तुल्य अनुभव में आ रहा है, इसलिए इसे छोड़कर अब मैं वहाँ जाना चाहता हूँ कि जिसकी प्राप्ति पर पुनः दुर्गति की सम्भावना ही नहीं। **वैराग्य की झलक अन्तस् में हो तो जो पदार्थ आनन्द देते थे वे क्लेशभूत लगते हैं और जिनमें क्लेश लगता था वहाँ आनन्द प्रारम्भ हो जाता है।** मंत्री दीक्षा ले लेता है। सम्राट् विवेकयुक्त था। उसने ये जाना है कि भारत की भूमि पर ज्येष्ठों की पूजा नहीं की जाती है, श्रेष्ठों की ही पूजा की जाती है। हे ज्येष्ठो! तुम विश्वास रखना, अहंकार में तुम ज्येष्ठ बनकर तो बैठ सकते हो, पर पूज्य तो श्रेष्ठ ही होता है। कमठ ज्येष्ठ भाई था और मरुभूति लघु था, लेकिन श्रेष्ठता मिली थी ज्येष्ठ को नहीं, लघु को। शरीर की अवगाहना मत देख लेना। जीवन में देख सको तो व्यक्ति के व्यक्तित्व/गुण को देखना। उम्र देखकरके, शरीर की अवगाहना देखकरके, बाहरी प्रभुत्व देखकरके जो प्रभावित हो जाते हैं, भैया! विश्वास रखना, उनको रोना पड़ता है उन युवाओं जैसे जो किसी की कन्या के गोरे चेहरे को देखकरके प्रभावित होकरके अपनी पूरी सम्पत्ति लुटा बैठे। जब परिणाम काले दिखाई दिए, तब अब रो रहा है बेचारा। राज्यकाज की अनुभवशीलता देखकरके महाराजा अरविन्द ने मंत्री पद ज्येष्ठ को न देकरके श्रेष्ठ को दे दिया। और होना भी यही चाहिए। ज्येष्ठों को अपनी श्रेष्ठता हासिल करने का प्रयास करना चाहिए और श्रेष्ठों को ज्येष्ठों की विनय रखना चाहिए। यहाँ सीखने की आवश्यकता है। राज्यावस्था पाकर उछलना नहीं। सागर बनकरके जीना सीख लोगे तो विश्वास रखना, तुम विराट् रूप में होगे। **भारत की भूमि ने आज तक कभी भी ज्येष्ठों की पूजा नहीं की, श्रेष्ठों की ही पूजा की।** 'वन्दे तद्गुण लब्धये।' गुण पूज्य हैं, गुण वन्दनीय हैं। **'गुणहीनो न वन्दनीयो'**, गुणहीन न श्रमण पूज्य होता है न श्रावक पूज्य होता है। गुणवन्त श्रमण ही पूज्य है

और गुणवन्त श्रावक ही सम्मानीय है।

मुमुक्षुओ! राज्यव्यवस्था को निहारते हुए सम्राट् ने जैसे-ही मरुभूति को मंत्री पद पर आरोहित किया, ज्येष्ठ भाई कमठ के मन में आग झुलस गई। **मित्र! अज्ञानता, असहष्णुता, असमत्व का बोध तभी होता है जब तुमको कुछ नीचे देखने को मिल जाये।** आज समझ में आ रहा था कि हाय! मैं ज्येष्ठ होने पर भी मंत्रीपद पर आसीन क्यों नहीं हो सका। अन्दर-ही-अन्दर झुलस रहा था। **बोधि समाधि निधानं। बोधत बोधः समीचीनं।**

अन्तिम श्वास के काल में हो सकता है कि समयसार जी की गाथायें स्मरण में न आयें। अन्तिम समय में कर्मप्रकृतियाँ समझ में न आयें, लेकिन इतना तो समझ में आ ही रहा है कि '**तेरे जिय को कौन कष्ट है, मृत्यु-महोत्सव भारी।**' गजकुमार मुनि को देखो, पारसनाथ स्वामी को देखो कि कैसे कमठ का उपसर्ग सहन किया, फिर भी समता को नहीं छोड़ा।

कुछ भी कहो, किसी भी अनुयोग में जाओ, यहाँ तो आनन्द-ही-आनन्द है। ये गाय के चार थन हैं, कोई भी थन से निचोड़ो, निकलेगा तो दूध ही निकलेगा। जिनवाणी के सोलह नाम हैं।

प्रथमं भारती नाम, द्वितीयं च सरस्वती।
तृतीयं शारदा देवी, चतुर्थं हंसगामिनी।।
पंचमं विदुषां माता, षष्ठं वागीश्वरि तथा।
कुमारी सप्तमं प्रोक्तं, अष्टमं ब्रह्मचारिणी।।
नवमं च जगन्माता, दशमं ब्राह्मिणी तथा।
एकादशं तु ब्रह्माणी, द्वादशं वरदा-भवेत्।।
वाणी त्रयोदशं नाम, भाषा चैव चतुर्दशं।
पंचदशं च श्रुतदेवी, षोडशं गौर्निगद्यते।।
एतानि श्रुत नामानि, प्रातरुत्थाय यः पठेत्।
तस्य संतुष्यति माता, शारदा वरदा भवेत्।
सरस्वती नमस्तुभ्यं, वरदे कामरूपिणी।
विद्यारम्भं करिष्यामि, सिद्धिर्भवतु मे सदा।

हे सरस्वती! अर्हन-मुख-कमल पर निवास करने वाली! आपके चारों अनुयोगों में तत्त्व ही है, कुतत्त्व की कोई बात नहीं है। भैया! आगम का बोध आत्मविशुद्धि के लिये है। जिनागम में वही ज्ञान 'ज्ञान' है जिसमें तत्त्व का बोध हो, चित्त का शोध हो, आत्मा की विशुद्धि हो, कषायों का निग्रह हो।

एक दिन मंत्रीपद पर आसीन होकरके, राज्य के कार्यवश, बाहर चला गया मरुभूति। पर क्या कर सकते हैं? **हंस कभी वक्र गमन नहीं करता, मृग कभी वक्र गमन नहीं करता और साँप कभी सीधा चलता नहीं। एक बार वामी में प्रवेश करे तो साँप सीधा हो जाये; परन्तु जिनके परिणाम टेड़े हैं, वे कभी सीधे होनेवाले नहीं हैं। साँप भले ही सीधा हो जाये, पर वक्रपरिणामी कभी सीधा नहीं हो सकता है।**

सर्प तो पर्याय का टेढ़ा है। जो परिणामों के टेढ़े हो जाते हैं, वे ही साँप बन जाते हैं। भैया! रखत जाओ, रखत जाओ। गाड़ कर चले गए और आकरके साँप बन गए। क्या कर सकते हैं? भैया! दुर्जन की दृष्टि तो देखो।

पर की रामा जिसकी दृष्टि में माता है, वही सच्चा श्रावक है। चाहे तिलक लगाओ, चाहे कितने ही भेष बनाकर बैठ जाओ, यदि परनारी पर दृष्टि है, तो तुम-समान पापी इस जगत् में दूसरा नहीं है। परद्रव्य को पर के सामने छोड़ देना, ये समाज-पूज्य नहीं है। कोटि-कोटि शून्य लगा दीजिए आप, मेरे मित्र! कीमत कितनी होगी? कुछ भी नहीं। भैया! तूने भवन तो दे दिया, भावना दी कि नहीं साथ में? मातायें पराठे बनाती हैं, पर जिस पराठे में भावना और मौन नहीं होता तो वह पराठा अच्छा नहीं होता। इसलिए भावना लगाकर देना। दुरुपयोग न हो, सदुपयोग हो, इस भावना के साथ। भैया! कोटि-कोटि शून्य स्थापित कर दिए, पर उसमें एक भी अंक नहीं है, तो उसकी कोई कीमत नहीं। यदि एक का अंक है और उसमें एक शून्य रख दिया, तो कीमत दस गुनी बढ़ गई। ऐसे-ही अनेक शून्य लगा दो तो संख्या अनेक गुनी बढ़ जायेगी। ऐसे-ही मेरे मित्र! कोटि-कोटि साधना, कोटि-कोटि तपस्या, कोटि-कोटि भगवान् की भक्ति शून्य मात्र है और ब्रह्मचर्य अंक है। जिसके ब्रह्मचर्य अंक लगा हुआ है, उसकी सारी साधना सफल है।

अभागा कमठ अपने छोटे भाई की पत्नी को एकान्त में देखकरके काम के भाव में व्यथित हो गया। **भैया! कौआ को रात्रि में नहीं दिखता, उल्लू को दिन में नहीं दिखता, लेकिन कामी पुरुष को न रात में दिखता न दिन में दिखता। न उसको**

वंश का विवेक रहता, न जाति का विवेक रहता है, न पंथ और न धर्म का विवेक रहता है। पर मित्र! विश्वास रखना, वासना की उम्र नियत है। जो युवा-युवतियाँ वासना के राग में उलझ करके दो चार साल के लिए राग में लिप्त हो गए, लेकिन जब धर्म की याद आती है तो अब तुम अभिषेक करने के पात्र नहीं बचे, मुनि को आहार देने के पात्र नहीं बचे। वे समाज में बाहर बैठे मिलते हैं, तब आँखों से आँसू टपकाते हैं कि हाय! ये वासना का कैसा राग था जिसने धर्म में वास न होने दिया। उसी का नाम तो वासना है।

ये ध्रुवसत्य है कि व्यसन तभी तक है जब तक वास ना। मात्र कामवासना ही वासना नहीं है। लज्जा भी है वासना। धूप सर्दी गर्मी सहन नहीं कर पाना, ये भी है वासना। शील के जब अठारह हजार भेद देखोगे, तब समझ में आयेगा। पुराणपुरुषों की कथा कहने में तो कोटि-कोटि भव लग जायें और कर्मों की असंख्यातगुणश्रेणी निर्जरा होगी और फिर जब तीर्थंकर-जैसा पुराणपुरुष हो तो....? कमठ अपने मित्र से कहता है कि हे मित्र! जब तक मुझे अपने भाई की पत्नी नहीं मिल जाती तब तक मेरा जीवन जीवन नहीं है। विश्वास रखना, **सच्चा मित्र वही है, जो सद्मार्ग पर ले जाय।** वो मित्र मित्र नहीं है, कुमित्र है, शत्रु है, जो तुम्हारी इच्छाओं की पूर्ति में लग जाय, तुम्हारे मन की कहे। मुझे क्या लेना-देना?

जी कै राज्य में रहियो, उकै-जैसी कहियो।
ऊँट बिलैया ले गयी, हाँजू हाँजू कहियो।

भैया! मैं तो अपने जीवन में बहुत अच्छी बात सीखा हूँ और जहाँ दीक्षित हुआ हूँ उस गुरु से भी कह दिया था कि स्वामी! मैंने आपको गुरु स्वीकारा है, लेकिन जगत् के आडम्बरों को नहीं स्वीकारा है। मेरी वही स्वीकृति है जो जिनवाणी बोल रही है। ऐसी परम्परा में दीक्षित हो जाते जहाँ अरई/कुश लगाते हैं, बोले कि जैसा मैं कहूँगा वैसा ही बोलना पड़ेगा, तो जिनवाणी कुछ कहती रहेगी और हम कुछ कहते मिलते। बहुत अच्छा हुआ, जीवन में बड़े पुण्य का नियोग था कि जिनवाणी कहने का अवसर मिला। भैया! सब्जीमण्डी में दुकानवाला भी बैठा-बैठा चिल्लाता रहता है कि 10 की एक किलो और वह जीव देखो जो गाड़ियों पर घूम रहे हैं और वे कह रहे झाँसी-रानीपुर झाँसी-रानीपुर। पूरा दिन व्यतीत हो रहा है। वे जीव धन्य हैं जिनके शब्दों का प्रयोग भी अर्हन्त निर्ग्रंथ की वाणी के लिए होता हो, जो ये नहीं

कह रहे हैं मौड़ा-मौड़ी। कुछ नहीं। जिनदेव जिनवाणी ही सर्वस्य है। ऐसा पुण्य जिसको मिल जाय, जिनवाणी कहने का अवसर मिल जाय, तो कभी चूक मत करना।

माताओ! कोटि-कोटि काम छोड़ देना और कोई बुजुर्ग माँ कह दे कि बेटा हमें 'तत्त्वार्थसूत्र' सुना दो, तो आप इतनी अभागी मत हो जाना कि कह दो कि मेरे पास समय नहीं है। तुरन्त सुना देना। एक सूत्र को सुनकर मृग का जीव बालि मुनिराज बन गया हो, जिसने कैलाश पर्वत के मंदिरों की रक्षा की हो। मरते हुए बैल को णमोकार सुनाया हो जिस जीव ने, वह भी देखो श्रीराम बन गए। वह बैल जो था, वह सुग्रीव था। इसलिए रास्ते में तुम जा भी रहे हो, तुम्हारे कपड़े गन्दे हों जायें उनकी टेंशन मत करना, यदि रास्ते में जीव तड़प रहा है, कुछ नहीं कर सकते हो तो कम-से-कम उसके कान में णमोकार मंत्र तो सुना ही देना, भगवान् का नाम सुना देना। यदि इतना भी नहीं कर सकते हो तो मनुष्यपर्याय का मतलब क्या? कोई जीव तड़प रहा हो, अन्तिम श्वासें ले रहा हो, तो उसे सम्बोधन कर देना। प्रभू पार्श्व कुमार ने जलते नाग-नागिन को संबोधन किया कि नहीं किया? ये मत सोचना कि मैं मनुष्य हूँ। पर्याय से मनुष्य हो सकते हो, पर्याय से कोई तिर्यञ्च हो सकता है, लेकिन पर्याय का मनुष्य भी नारकी हो सकता है भावों से और पर्याय का तिर्यञ्च भी श्रावक हो सकता है भावों से।

मित्र ने पहले तो समझाया कि कमठ ऐसा मत करो। छोटे भाई की पत्नी आपकी बेटी के तुल्य है, बहन के तुल्य है।

जिसका चित्त विषयों से अनुरक्त हो चुका है, उसकी न मनुष्यता बचती है न दैवत्व बचता है न सत्यता बचती है। शील विवेक ज्ञान पोथी-पत्र तेरे तभी तक समझ में आते हैं जब तक काम के बाणों से विधा नहीं होता है। उस पल में कहाँ चला जाता है तेरा ज्ञान विवेक, कहाँ पलायन कर जाता है? उस समझ से कहना कि हे समझ! जो तू मेरे पास आज है, उस दिन आ जाना जब मैं रावण-जैसा मन करूँ।

भैया हो तो राम के भरत जैसा हो, जिसने 14 वर्ष तक गद्दी को न देखा हो और भैया की याद करता रहा हो। कहीं आप-जैसा भैया होता तो कहता कि हे राम! तुम कबहूँ न आइयो, हमारा राज्य बराबर चल रहा है। वह भरत जिसने 14 वर्ष तक पैर नहीं रखा गद्दी पर, बल्कि पादुकायें रख दीं और बोले कि राजगद्दी तो उन्हीं

की है, हम तो उनके दास हैं। आप होते तो कहते कि अच्छा चला गया, आपत्ति टली, राज्य मिला। मेरे मित्र! सत्य ये है कि इस राज्य को तो तू छीन सकता है, पर उस भाग्य के राज्य को कौन छीन सकता है?

उस अभागे कमठ ने भाई की पत्नी के शील को भंग कर दिया। जब मरुभूति वापस आया और ये समाचार सुने, तो महाराजा अरविन्द के पास गया। महाराजा अरविन्द ने आदेश कर दिया कि उसको दण्डित किया जाय। फिर भी राग को देखो, राग तो राग ही होता है। मित्र! राग भला नहीं होता। जितने विनश रहे हैं, सब राग में ही विनश रहे हैं।

रत्तो बंधदि कम्मं, मुंचदि जीवो विराग-सम्पत्तो।
एसो जिणोवदेसो, तम्हा कम्मेसु मा रज्ज॥समयसार॥

मेरे मित्र! जो बन्ध का कारण है, वह राग है और यदि छूटेगा तो विराग की सम्पत्ति से छूटेगा। ऐसा भगवान् जिनेन्द्र का उपदेश है।

सम्राट् ने कहा कि इसको सजा दी जाय, तब भाई का राग टपक गया कि नहीं, मेरा बड़ा भैया है। तब सम्राट् कहते हैं कि हे मरुभूति! शिष्य के सामने गुरु को और प्रजा के सामने सम्राट् को नीति और न्याय में निपुणता की आवश्यकता है, राग की आवश्यकता नहीं है। चाहे ज्येष्ठ, वरिष्ठ, कनिष्ठ कुछ भी हो, यदि काला नाग डस देता है तो तुम्हारा कर्तव्य बनता है कि अंगुली निकालके फेंक दो। नहीं-तो प्राण चले जायेंगे । शीघ्रता करो । यदि आपने अंगुली के राग में उसे नहीं निकाल पाया, तो विश्वास रखो, इस शरीर को छोड़कर जाना पड़ेगा । ऐसे-ही सम्राट् और गुरु को चाहिए कि तुरन्त उपचार करो । कमठ को महाराजा अरविन्द ने ईंट धोने वाले गधे के ऊपर विराजमान करा दिया, श्याम मुख किया और नगर के बाहर छुड़वा दिया। अशुभ परिणामों से युक्त होकरके गया और एक पर्वत के ऊपर पत्थर लेकर के तापसी का भेष बनाकर खड़ा हो गया। लोक में प्रसिद्धि छा गई कि बहुत बड़ा तपस्वी है, खडेश्वरी महाराज हैं। वे पत्थर लिए खड़े हुए हैं, काय-क्लेश कर रहा है। पर क्या कर सकते हैं? पुनः राग सताता है और कहता है मरुभूति अपने सम्राट् से कि स्वामी! एक बार तो मुझे अपने भाई की वन्दना कर आने दो। मेरे भाई ने मेरे निमित्त से तपस्या धारण कर ली है। राजा समझाता है, मित्र! **सर्प के कण्ठ में जहर होता है, बिन्छु के डंक में जहर होता है, लेकिन दुर्जन के सर्वांग में जहर**

होता है। कब कहाँ डस ले, कोई पता नहीं। नहीं माना, भाई के राग में चला गया और जैसे ही पहुँचता है मरुभूति, कमठ शिला लिए खड़ा था। भैया प्रणाम करने को सिर झुकाता है तो उस अभागे ने, जो शिला हाथ में लिए था, भाई के ऊपर पटक दी। मृत्यु हो गई और आर्त्तध्यान से मरण करके मरुभूति का जीव हाथी की पर्याय को प्राप्त हुआ और कमठ का जीव कुर्कुट नाम का सर्प हुआ।

संसार की दशा तो देखो, कैसे भवावलि प्रारम्भ होती है। परमात्मा बनने के लिए भी दस-दस भव लग जाते हैं और हम चाहते हैं कि एक दिन में भगवान् बन जायें, तो यह कैसे सम्भव हो? मित्र! पुरुषार्थ तो करना ही पड़ेगा। शारीरिक साधना जगत् की आँखों का विषय है जो चाक्षुष है, लेकिन अन्तरंग की साधना पर के चक्षु का स्थान नहीं है, ये निज की अनुभूति का विषय है। इसलिए मित्र! जितनी तू बाहर की साधना करता है, उतनी भीतर की साधना करो। ये समाज के देश के राष्ट्र के जितने प्रपंच हैं, कोई भी तेरी समाधि का साधन नहीं है। यह सिंहासन यह संघ ये सब भी समाधि के साधन नहीं हैं। भैया! यदि जल्दी मोक्ष जाना है तो राग छोड़ना पड़ेगा। धोके में मत रहना, मित्र! हंस को उड़ते देर नहीं लगती।

वह समय भी आया जब राजा अरविन्द को वैराग्य हो गया और जैनेश्वरी दीक्षा लेने सम्मेद शिखर जी की यात्रा को जा रहे थे। इसी बीच में वो ही हाथी का जीव मिला। ये भी तो सुनो कि ये कथा वैदिक दर्शन में ऐसी-की-ऐसी, क्रिश्चियन में भी यह कथा, विदेशों में यह कथा, बौद्धों के दर्शन में यह कथा। हाथी की कथा। जो उन्मत्त होकरके दौड़ रहा था, वह नत होकर बैठ गया, तो वे धरती के देवता निर्ग्रन्थ तपोधन अपने श्रीमुख से कहने लगे कि हे जीव! तुझे मैंने सम्बोधन दिया था कि दुर्जन पर विश्वास नहीं होता है, लेकिन तब तू नहीं माना, आज तो स्वीकार कर। तब हाथी ने अपनी चेष्टाओं से बारह व्रत को अंगीकार कर लिया, सूखे पत्तों को खाने लग गया, अष्टमी-चतुर्दशी को प्रोषध करने लग गया। छना पानी कहाँ से पीता? जहाँ पर्वतों से टकरा कर झरनों से पानी आता था, उस पानी को पीने लगा। अब जो सम्भव है, वही कर सकता है। अतः उसके लिए वो ही प्रासुक है। पर क्या कर सकते हैं? दुष्ट की दुष्टता तो देखो। जब शरीर को सजाओगे तो आत्मा तो सूखेगी-ही-सूखेगी। दो ही तो बगीचे हैं तेरे पास

यज्जीवस्योपकाराय तद्देहस्यापकारकम्।
यद्देहस्योपकाराय तज्जीवस्यापकारकम्।। इष्टो.।।

हे मुमुक्षु! यदि तू देह का उपकार चाहता है तो जीव का अपकार निहित है और जीव का उपकार चाहता है तो देह तो सूखेगी। तपस्या करोगे तो देह तो सूखेगी ही। उसमें क्या है? जो है, सो है। ये साधना का मार्ग ही ऐसा है कि जब दुनियाँ मधुर नींद सोती है, तब ये मुनिराज ध्यान में लीन होते हैं। **जहाँ रागी सोया करते हैं, वहाँ वैरागी जागते हैं और जहाँ रागी जागते हैं वहाँ वैरागी सोते हैं। जिन विषय-कषायों में ये रागी जागते हैं, वहाँ वीतरागी सोते हैं और जिन आत्मानुभूति में रागी सोता है, वहाँ वीतरागी जागते हैं।** कलयुग में तो भैया! जितनी जल्दी बन जाये उतनी जल्दी दीक्षा ले लो। कलयुग में तो जिसने काल पर टाला, वह काल के गाल में गया। अपनी होनहार को विशिष्ट करो।

ज्ञानी! भूमि का भी नियोग होता है, फिर तुम तो मनुष्य हो। भैया! कभी चिन्तन किया था कि जिस खेत में खेती होती होगी उस खेत में तीर्थंकर जन्मेंगे? अभी तक तो अनाज उगाया। ये भूमि का पुण्य देखो। ये भूल मत कर लेना जीवन में। तत्त्व से समझिए। भूमिप्रदेश में जो जीव विराजता है, एक इन्द्रिय, उस जीव की पुण्यप्रकृति इतनी प्रबल होती है कि एक भू-स्थल पर जिनदेव की वेदिका की स्थापना हो रही है, अर्हन्त की प्रतिमा स्थापित हो रही है, और एक भूमि का वो स्थान जहाँ सण्डाश बन रहा है। मेरे मित्र! सबके दिन एक-से नहीं होते और सबका पुण्य एकसा नहीं होता। एक हाथी वो है जो किसी अभागे दूल्हे को पीठ पर रखकर ले जा रहा है और एक हाथी वो है जो तीनलोक के नाथ को गजरथ में खींच रहा है। हम तो जब जिनवाणी हाथ में लेते हैं तब देखते हैं आप-जैसे पागल लोगों को। जब जिनवाणी हाथ में लेता हूँ, अहा! ये हाथ धन्य हो गये। भैया! आपको पागल क्यों कहा? बेचारा बेटे की नाक को पौंछ रहा है, मल को उठा रहा है। एक वे हाथ हैं जो जिनवाणी सँभाल रहे हैं, जिनदेव की प्रतिमा का मार्जन कर रहे हैं और एक वे अभागे हाथ हैं जो बच्चों के मलमूत्र धो रहे हैं। अब क्या करें, महाराज! आपके दिन चल रहे हैं, कह लो।

हाथी ने पानी पीने के लिए सरोवर में प्रवेश किया तो वह दलदल में फँस गया। तभी उस सर्प ने उसे डस लिया। संन्यास-मरण करके वह हाथी तो स्वर्ग में देव हुआ

और वह कमठ का जीव नरक में प्रवेश कर गया। इस प्रकार स्वर्ग, नरक, चक्रवर्ती आदि की विभूति को प्राप्त करता हुआ मरुभूति का जीव दसवें भव में प्रभु पार्श्वनाथ हुआ और यह कमठ का जीव वही जीव तीर्थंकर स्वामी की माँ का पिता बन रहा है यानि कि नाना बना है। संसार की नियतता को देखो। **भैया! न किसी को मित्र मानना न किसी को शत्रु मानना। शत्रु भी तुझे जन्म दे सकते हैं और मित्र भी तेरा घात कर सकते हैं। माँ भी पत्नी होते देखी गई है और पत्नी माँ होते देखी गई है। ये ही संसार की दशा है।** इसलिए माता! जेठानी के पुत्र के प्रति नाक मत सिकोड़ना और अपने काने बेटे को राजा बेटा कहने के भाव मत लाना। सत्य ये ही है कि सम्बन्ध पर्याय के हो सकते हैं, लेकिन आत्मा का कोई सम्बन्ध नहीं है।

एक दिन वो आ गया जब प्रभु पारसनाथ स्वामी सैर करने को निकले। तापसी को देखकर लकड़ी को विखण्डित किया। देखो, धर्मात्मा की भाषा भी अहिंसक होना चाहिए। हमारे यहाँ भारत की भूमि में आज तक दीपक बुझाया नहीं जाता, बढ़ाया जाता है। बुन्देलखण्ड के जैनी दुकान बंद नहीं करते, दुकान बढ़ाते हैं। भैया! आपकी भाषा का उपयोग इतना विशुद्ध होना चाहिए कि उसमें हिंसक प्रवृत्ति के शब्द नहीं आना चाहिए। सच्ची माँ होगी तो अपने बेटे को डाँटेगी भी तो हिंसक/ क्रूर भावों से नहीं समझायेगी कि भैया! अच्छा हो कि तेरी अशुभ परिणति से मेरे परिणाम अशुभ न हों।

वे तीर्थंकर पार्श्वनाथ स्वामी वैराग्य को प्राप्त हुए और जिनदीक्षा लेकर साधना में लीन हो गए। तीर्थंकर भगवान् अनन्त बल के धारी होते हैं। वे आहार भी न करें तो चलेगा, लेकिन मुनिपरम्परा कैसे चलेगी? इसलिए तीर्थंकर को आहार करना अनिवार्य है। यदि भगवान् ऋषभदेव छह माह के पहिले उठ गये होते, तो चार हजार भ्रष्ट न होते, क्योंकि उनको बोध नहीं था। प्रभु! आप तो अपनी साधना में लीन रहे बिना चर्या के। भैया! ये देह तो अन्न का क्रीड़ा है। असातावेदनीय कर्म की तीव्र उदीरणा होने पर जीव को क्षुधा सताती है। इसलिए तीर्थंकर को आहार को उठना नियत है, क्योंकि आप सामान्य केवली नहीं हो, आप तीर्थंकर केवली हो, तीर्थ को चलानेवाले हो। उनको भी भूख लगती है मुनि-अवस्था में। सुनिये ध्यान से। जब तक मोह है, असाता है, तब-तक क्षुधा अपना काम करेगी। करणानुयोग को लेकर चलिये, भक्ति के आवेश में सिद्धान्त को मत खो बैठना। निर्ग्रन्थों को निर्ग्रन्थ कहो, अरिहन्तों को अरिहन्त कहो और सिद्धों को सिद्ध कहो। भक्ति के आवेश में इन निर्ग्रन्थों

को तुम सिद्ध बना लोगे और फिर आहार ही नहीं कराओगे, तो असमय में ही इनकी समाधि करा दोगे। भावी अरहन्त हो सकते हैं, भावी सिद्ध हो सकते हैं ये निर्ग्रन्थ, लेकिन वर्तमान की पर्याय दृष्टि से एवंभूत नय से जिस समय जिस पर्याय में जो क्रिया है वही करो। इसलिए नय और न्याय का बोध होना अनिवार्य है, आवश्यक है।

जैसे आपने ये पाँच दिन कल्याणक महोत्सव मनाया, ऐसे-ही जिनवाणी का महोत्सव होना चाहिए। पाँच क्या, पन्द्रह दिन तक ऐसे-ही तत्त्व की प्ररूपणा हो जिसमें देश के सभी विद्वान् पधारें, चाहे किसी पक्ष के हों। भैया! ये चेष्टा जब तक नहीं करोगे, दूरियाँ तो दूरियों को बढ़ाती हैं। आदमी ये समझता है कि मैं ही सर्वस्व हूँ। मेरे मित्र! जब-तक सर्वज्ञ नहीं बनेगा, तब-तक सर्वव्यापी नहीं बनेगा। ज्ञानियो! ये तो मानना पड़ेगा कि तत्त्वदृष्टि जिसकी है और जिसको सत्य समझ में आ गया है, वह जानता है कि मुझे पक्षों से मतलब नहीं, सत्य से मतलब है।

तीर्थंकर महामुनिराज पार्श्वस्वामी की चर्या का समय हुआ। **जैसे चन्द्रमा न गरीब को देखता है न अमीर को देखता है, सबके घर में बराबर चाँदनी फैलाता है। ऐसे-ही दिगम्बर मुनि ये नहीं देखते हैं कि करोड़ देगा कि लाख देगा उसी के घर में मैं जाऊँगा। ज्ञानी! ये निर्ग्रन्थों का मार्ग है, ये धनपतियों/श्रीपतियों का मार्ग नहीं है।** इसमें श्री के दर्शन नहीं होते, इसमें भक्ति को देखा जाता है। जहाँ नवधाभक्ति और विधि मिल गई, तो विधि मिल गई। यदि विधि नहीं मिली, तो छह महिने आदिनाथ स्वामी घूमते रहे। ऐसे-ही ये निर्ग्रन्थ तपोधन हैं। जैसे गाय घसियारे को नहीं देखती, घास को देखती है; ऐसे-ही ये योगीश्वर दूसरों के रूप-रंग को न देखकर मात्र प्रासुक आहार को देखकर, आगम निहित 46 दोषों को टाल करके, वे तन बढ़ाने के लिए नहीं, असन लेते हैं साधना के लिए। साधु आहार तन-पुष्टि के लिए नहीं, साधना की पुष्टि के लिए करते हैं। इसका नाम है भ्रामरी वृत्ति, मधुकर वृत्ति और अक्षमक्ष वृत्ति। जैसे गाड़ी में औगन लगा देते हैं। औगन नहीं लगायेंगे तो चलेगी तो, लेकिन चीं-चीं करेगी। ऐसे-ही हे मुनिराज! आप 24 घण्टे में एक बार इसको औगन देकर आओ, नहीं-तो कैसे तुम चल पाओगे? इस रत्नत्रय रथ को मोक्षमहल तक ले जाना है। जैसे गड्ढा हो जाये तो उसे आप भरते हो, ऐसे-ही ये उदर गर्त है, इस गर्त की पूर्ति के लिए मुनीश्वर आहारचर्या को निकलते हैं।

भैया! आजकल मंदिर तो विशाल बन रहे हैं और मुनिसंघ भी बढ़ रहे हैं और श्रावक मुनिसंघों को बुला भी रहे हैं बड़ी भक्तिपूर्वक; पर मेरे मित्र! इतना ध्यान रखना, कि अर्हन्त की पूजा, निर्ग्रन्थ को दान और सन्तान का जन्म कभी नौकरों से नहीं कराया जाता है। मंदिर बना लिया, पुजारी रख दिए, मुनिराज बुला लिए, नौकर खड़े कर दिए और बोले कि आहार दे देना आप, हम तो अपने काम में लगे हैं। कहीं ऐसा मत कर बैठना कि शादी कराके आये और नौकर लगा दिए कि पुत्रों को जन्म दे देना। ऐसा होता नहीं है, मित्र! अपने ही हाथ से ये काम होते हैं। स्व के द्वारा होते हैं, पर के द्वारा नहीं होते। ऐसा आगम-वचन है। इसलिए मंदिर और प्रतिमा बनवाने का जिनको शौक चढ़े, वे पूजा करने का शौक और लाना।

भैया! मंदिर स्थापित किया है, प्रतिमा स्थापित की है, तो खजुराहो के मंदिर की प्रशस्ति पढ़कर आना और इस बात को सीख कर आना कि सेठ पाहिल अपनी प्रशस्ति में क्या लिखवाता है। मैंने आठ बाबड़ियाँ, आठ बगीचे, इतनी भूमि इस मंदिर और जिनपूजा के लिए लगाई। माँ! ध्यान से सुनना, आज तो हमारे हाथ-पैर चल रहे हैं, बेटे हमारी बात मानते हैं; लेकिन कल नहीं माना तो उस प्रतिमा के नाम का इतना दान देना जिससे उसकी पूजा होती रहे। सेठ पाहिल ने नहीं लिखवाये दुनियाँ के नाम। वह क्या लिखवा रहा है? मुझे मालूम है कि सेठ पाहिल नहीं बचेगा। मुझे ज्ञात है कि सेठ पाहिल का वंश भी नहीं बचेगा। भैया! मैं उस व्यक्ति के दास का दास हूँ जो इन मन्दिरों की रक्षा करेगा। इसलिए भैया! मन्दिर के पुरातत्व को नष्ट मत होने देना। जो पुरातत्व का अतिशय है, वह नवीन चूने-सीमेंट में कभी नहीं हो पायेगा। 'ज्ञानार्णव' शास्त्र में वृद्धों की सेवा करने का भी एक अधिकार है। वृद्धों के पास बैठो, उनके अनुभव सीखो। जिनके नरकायु का बन्ध हो चुका है, वे न तो आहार दे सकते हैं और न ही आहार देख सकते हैं। भले ही दूसरे काम में लग जायें, पर साधु के हाथ पर एक ग्रास नहीं रख सकते।

''**आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।



ग्रंथ पारायण का फल

ये भक्त्या भावयिष्यन्ति भवकारणनाशनम्।
तेऽचिरेणैव कालेन सुखं प्राप्स्यंति शाश्वतम्॥326॥
सारसमुच्चयमेतद्ये पठन्ति समाहिताः।
ते स्वल्पेनैव कालेन पदं यास्यन्त्यनामयं॥327॥

अन्वयार्थ— (ये भवकारण-नाशनम् भक्त्या भावयिष्यन्ति) जो कोई संसार के कारण कर्मों को क्षय करने के लिए भक्तिपूर्वक इस ग्रंथ की भावना करेंगे **(ते अचिरेण एव कालेन शाश्वतम् सुखं प्राप्स्यंति)** वे थोड़े ही काल में अविनाशी सुख को प्राप्त होंगे। **(ये समाहिताः एतत् सारसमुच्चयं पठंति)** जो समाधान चित्त होकर इस सारसमुच्च ग्रंथ को पढ़ेंगे **(ते स्वल्पेन एव कालेन अनामयं पदं यास्यन्ति)** वे थोड़े ही काल में सर्व रोग रहित अविनाशी पद को पा सकेंगे।

भावार्थ— हे भव्यात्मन् ! इस श्रुत का पारायण जो करेंगे, वे अल्प समय में ही जन्म, जरा, मृत्यु का नाश करके अविनाशी सुख को प्राप्त करेंगे। इस ग्रंथ का शांति से मनन वैराग्य का कारण है। वैराग्य से ध्यान की सिद्धि होती है और ध्यान से मोक्ष प्राप्त होता है।

॥ सद्-देशना ॥

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज 'सारसमुच्चय' जी के अन्तिम कलशभूत सूत्र श्लोकों में दम्यता का अभाव करते हुए, प्रज्ञा की तीक्ष्णता से युक्त होकरके, इस बात को घोषित कर रहे हैं कि जीव जगत् में संकल्प-विकल्प का कर्ता हो सकता है, लेकिन जिन निमित्तों से संकल्प-विकल्प कर रहा है, उन निमित्तों का कर्ता जीव किञ्चित् भी नहीं हो सकता। आपके अन्तस् में संकल्प-विकल्प का जन्म हो सकता है। **अहमेदं संकल्पं, ममेदं विकल्पं। मैं ऐसा हूँ, ऐसा भाव मन में आना संकल्प है। मेरे ऐसे हैं, ऐसा भाव मन में आना विकल्प है।** इन्हीं संकल्प-विकल्प की कृपा से चतुर्गति भ्रमण है। यदि व्यक्ति के अन्तस् से संकल्प-विकल्प का पलायन हो जाय, तो संसार का पलायन हो जायेगा, सभी सिद्ध हो जायेंगे। ये आपके ऊपर संकल्प-विकल्प की बहुत बड़ी कृपा है कि आपको संसार की गलियाँ घूमने को मिल रही हैं। ये संकल्प-विकल्प की संसार के प्राणियों पर बड़ी अनुकम्पा है कि उनके निमित्त से

कलयुग जैसे युग देखने को मिल रहे हैं। भैया! और गहन संकल्प-विकल्प करोगे तो आपको छटवें काल को देखने का सौभाग्य भी मिलेगा। छटवें काल से यदि आपको किञ्चित् भी उदासता हो, तो संकल्प-विकल्प से उदास हो जाओ। आपके नहीं चाहने से कि छटवें काल देखने न मिले, यह संभव नहीं है। यदि संकल्प-विकल्प नहीं करोगे, तो छटवें काल से बच जाओगे।

आपको मेरे प्रति न प्रीति है न अप्रीति है। **बेटा! कोई किसी का नहीं है। जिससे तेरे राग की पूर्ति हो जाती है, वह तेरे लिए परम मित्र हो जाता है और जिससे तेरी राग की पूर्ति नहीं होती है, वह तेरे लिए शत्रु हो जाता है। जगत् में न कोई शत्रु है, न कोई मित्र है। राग तेरा मित्र है, द्वेष तेरा शत्रु है।** मध्य में आने वाले लोग तो व्यर्थ में पिस जाते हैं। आप किसको जन्म दे सकते हो ? क्या आत्मभूत जन्म हुआ है किसी का, किसी के भीतर? न पुत्र का हुआ है, न पुत्री का हुआ है, न नपुंसक का हुआ है। जनक-जननियो! कान खोल कर सुनना। ज्ञानी ! न तेरे बेटे की माँ ने आत्मभूत होकर बेटे को जन्म दिया, न तूने आत्मभूत होकर बेटे को जन्म दिया। न किसी पुरुषवेदी का आत्मभूत होकर जन्म हुआ, न किसी स्त्रीवेदी का जन्म आत्मभूत होकर हुआ, न किसी नपुंसकवेदी का जन्म आत्मभूत होकर हुआ है। तो जन्म किसका हुआ है? तेरे भीतर ही किसी का जन्म हुआ है तो संकल्प-विकल्प का। जैसे अण्डे के अन्दर नाग विद्यमान होता है, साँप अण्डे में पलता है, ऐसे-ही विश्व की सम्पूर्ण कामनायें/वासनायें संकल्प-विकल्प के अण्डे में पलती हैं।

प्रीति भी दुःख है। श्रीराम की आँखों में आँसू जितने रावण ने नहीं गिराये उतने सीता ने गिराये। सीता की प्रीति ने राम को कितना रुलाया? पर्वत-पर्वत से पूछा, पत्ते-पत्ते से पूछा, जंगल के जानवरों से पूछा 'क्या आपने मेरी सीता को देखा है?' भैया! जब इष्ट वस्तु का वियोग होता है, तो कोने-कोने में दिखाई देती है, लेकिन दिखती नहीं। आज से ही इतनी बात स्वीकार कर लो - **सबके बीच में रहो, परन्तु सबके बन कर मत रहो। जितने इष्ट बनाकर जिओगे, अन्तिम समय उतना ही कष्टमय जीवन निकलेगा। या तेरा या उसका। उसके पूर्व तेरा वियोग हो गया तो उसे रोना पड़ेगा, तेरे पूर्व उसका वियोग हो गया तो तुझे रोना पड़ेगा।** इसलिए बेटे की माँ से भी प्रीति तनक कम करो। बेटे से भी प्रीति कम करो। इसका मतलब यह नहीं समझना कि यह कहा जा रहा है कि तू ही सबकुछ है। **जिसका जिसमें जितना राग होगा, वियोग के काल में उतना ही क्लेश होगा।** इसलिए राग के पूर्व,

संयोग के पूर्व तत्त्वज्ञानी जीव वियोग देख लेता है, तो उसे वियोग के काल में न संयोग दिखाई देता है न वियोग दिखाई देता है । **जिन-जिन का संयोग हुआ है, उनका वियोग भी नियत है।** यदि नियत है, तो वियोग को भी ध्यान में रखना। जैसे स्कूल कालेज में साल भर का कार्यक्रम निश्चित कर लेते हो, उसी नियत समय में सारे कार्यक्रम होते हैं। आज अपने घर में एक कार्यक्रम बना लेना, समयसारिणी तैयार कर लेना कि जीवन की कौन-सी बेला में तुझे क्या करना है?

जिस दिन तू माँ के गर्भ में आता है, लोग कहते हैं कि जन्म ले रहा है। जैसे उसका जन्म निश्चित है, वैसे-ही उसका मरण भी निश्चित है। आपको बोध नहीं है, परन्तु विषय निश्चित है, दिन निश्चित है। ज्ञान नहीं है, इसका मतलब अज्ञात भी नहीं है। आपके ज्ञान में अज्ञात है, परन्तु सर्वज्ञ के ज्ञान में सब ज्ञात है। निश्चित है। जब निश्चित है ही, तो यूँ कहना चाहिए कि मेरा भी निश्चित है, मैं सबके साथ रहता हूँ संसार में, परन्तु सबका होता नहीं हूँ, यह निश्चित है। सबका होकर रहूँगा तो रोना पड़ेगा। रहते हो तो रहने दो। रहना ही तो है। ऐसे-ही तो लोग मुझसे कहते हैं कि इतना विहार क्यों करते हो? मैंने कहा कि तुम्हें पता नहीं है। रहता हूँ, लेकिन रहना नहीं चाहता हूँ। किसको-किसको देखूँ ? इसलिए उसको देखो जो देख रहा सबको। तत्त्वज्ञानी जीव सबके चेहरे को नहीं निहारता। ज्ञानी उसे अवश्य निहारता है जो सबके चेहरों को देखता है। अपन सबको देख रहे हैं, परन्तु जो सबको देख रहा है, वो कौन है? वो परमात्मा नहीं है, वो तू है। जो सबको देख रहा है, उसे ही तू देखने लग जाये, तो विश्वास रखना, शिवत्व तेरी मुट्ठी के अन्दर है। तन्मयभूत होकर किसी को जन्म दिया है माता-पिता ने तो संतान को नहीं दिया, वासना को दिया है। संतान तो पर वस्तु है। तेरे भीतर संतान का जन्म नहीं हुआ था। माँ के उदर में तो सन्तान का जन्म हो सकता है, माँ के उदर में बेटा गर्भ में आ सकता है, परन्तु माँ के मन में बेटे का जन्म तो किञ्चित् भी नहीं होता है। माँ के मन में तो बेटे के संकल्प-विकल्प का जन्म हुआ है। मेरा बेटा और मैं बेटे की माँ हूँ, ये संकल्प-विकल्प है। न तेरा बेटा, न तू बेटे की माँ है, सत्य ये है। तू राग की माँ और राग के सन्तान की माँ है। हे माँ! जिस दिन बेटा बड़ा होकर हिस्सा माँगने लग जाय, फिर कहना। सोचा था कि ये मेरा बेटा तो बड़े शान्ति से मेरा जीवन निकालेगा, मुझे नहीं था भरोसा कि ये भी लड़ेगा। अब पिता क्या कहता है? कि

इससे तो पड़ौसी भला। **बच्चे तभी तक अच्छे लगते हैं जब-तक वे कुछ माँगते नहीं। जिस दिन माँगने लग जायेंगे, उस दिन पड़ौसी भला।** जब ठोकर लगने पर पड़ौसी स्वीकारते हो, तो पड़ौसी को भला आज से ही मान लो।

सत्य ये है कि जिसको तुमने हिस्सा दिया है, वह तो आग लगायेगा और जिसको कुछ नहीं दिया, उसके कांधों पर जायेगा। ज्ञानी! थोड़ा-बहुत पड़ौसी को भी बाँट देना। संसार की दशा तुम्हें मालूम नहीं है क्या ? मालूम है, तो फिर क्यों चिन्ता में पड़े हो? पड़ौसियों को बाँटना शुरू कर दो। **जिनके कांधों पर जायेगा, उसको कुछ नहीं देता और जो आग लगायेगा, उसको सबकुछ दे देता है।** धिक्कार हो उस कर्ताबुद्धि को, धिक्कार हो उस ममत्व बुद्धि को और धिक्कार हो उस संकल्प-विकल्प बुद्धि को।

कुलभद्र स्वामी यही कह रहे हैं। **अहो! जीवन में यही किया है। या तो वचन से अशुभ बोले हो या तो मन से अशुभ सोचे हो या शरीर से अशुभ किये हो। इसके अलावा तुमने कौन-सा बड़ा काम किया है ?** परमात्मा के पादमूल में भी आये, वहाँ भी सोच कर आये थे भगवन्! इतनी भक्ति करूँगा तो इतना पुण्य बढ़ेगा, जिससे मेरी दुकानें चलने लग जायें। वहाँ परमात्मा के साथ भी व्यापार कर लिया। मित्र! भक्ति तो कर ही रहे हो, बक वृत्ति से नहीं करना।

उज्जवल वर्ण गरीब गति, एक टांग-वत् ध्यान।
लगत भगत-वत्, निपट कपट की खान।।

पम्पा सरोवर में एक बगुला बैठा हुआ था। राम, लक्ष्मण, सीता वहाँ से जा रहे थे। लक्ष्मण कहने लगे भैया! अभी तक आपके भक्त बहुत देखे जो दोनों पैरों से खड़े होकर ध्यान किया करते हैं, ये कितना परम भक्त है जो एक टांग से ध्यान कर रहा है। वह भी पानी में खड़े होकर। राम कहने लगे—लक्ष्मण! **सहवास ही सहवासी की चेष्टा को जानता है। बिना किसी के साथ निवास किए जीवन में किसी से प्रभावित मत होना। कब कौन धोखा दे जाय ? आदमी की परीक्षा बसने पर होती है, सोने की परीक्षा कसने से होती है।** तुम बसे हो नहीं, विश्वास कर बैठे, तो थोड़े दिन बाद बास आने लगेगी। ऐसा ही है। बसने से पहले विश्वास कर लिया तो थोड़े दिन बाद बास आने लगेगी। इसलिए जीवन में हर व्यक्ति के ऊपर विश्वास नहीं करना और यदि आपने विश्वास किया है तो विश्वासघात मत करना। **विश्वासघाती**

से बड़ा विश्व में कोई पापी नहीं है। या तो किसी को मित्र बनाना मत और मित्र बनाकर रखा है तो विश्वासघात मत करना। श्रीराम कहने लगे—लक्ष्मण! थोड़ा ठहरो, चंद समय निहारो कि ये मेरा भक्त है कि बक है? वह बगुला था, पम्पा सरोवर पर बैठा हुआ था, जैसे-ही मछली निकली, उसने तुरन्त पकड़ ली। लक्ष्मण! देख लो, यह भक्त है क्या ? आपको लग रहा था कि ईश्वर का भक्त है, परमात्मा का भक्त है, परन्तु उसकी दृष्टि भक्ति में नहीं, मछली में थी। विश्व में ऐसे धर्मात्मा लोग भी मिल जायेंगे जो धर्मक्षेत्रों में आयेंगे। समाज से मेरा कहना है कि कोई भी व्यक्ति आता है तो शीघ्र प्रभावित मत होना। कहीं ऐसा तो नहीं कि हमारे समाज के बच्चे-बच्चियों को देख रहा हो? कहीं हमारे समाज के धन को देख रहा हो? उस व्यक्ति को आते हुए देखकर हमें समझना चाहिए कि धर्मात्मा बनकर धर्म में आया है कि कुछ पाने के लिए धर्मात्मा बनकर आया है? इतिहास साक्षी है, किसी धर्मात्मा ने अपनी कन्या को नहीं दिया तो उसने धर्मात्मा का रूप बना लिया और जब शादी कर ली तब धर्म छोड़ दिया। **संस्कृति की रक्षा करना है, जैनत्व की रक्षा करना है और भारतीय सभ्यता की रक्षा करना है, तो जनक-जननियों से मेरा कहना है कि सन्तान को जन्म मात्र मत दो, सन्तान को संस्कार भी दो।** नहीं तो जितनी ये प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा हो रही है, अचेतन बिम्बों की रक्षा की, यदि चेतन बिम्बों में संस्कार नहीं दिए, बच्चे-बच्चियाँ धर्मात्मा बन कर नहीं रह पायेंगे, तो तुम्हारे मन्दिरों का क्या होगा? आज मन में संकल्प कर लेना कि अपने नगर में दिन में एक बार मन्दिर दर्शन करने अवश्य जायेंगे। ये प्रदर्शनी के लिए प्रतिष्ठा नहीं हो रही है, ये दर्शन के लिए हो रही है। **यदि तुम जिनेन्द्र के दर्शन करते रहोगे, तो कभी निज के दर्शन करने का भी मन करेगा।**

संस्कृति की रक्षा करना है तो संतान की रक्षा करो कुसंस्कारों से। यदि संतान की रक्षा कुसंस्कारों से नहीं कर पाओगे तो संस्कृति की रक्षा संभव नहीं है।

मित्र ! प्रतिष्ठा की आवश्यकता क्या है? यदि प्रतिष्ठा न हो रही होती, तो ये लोग यहाँ प्रतिष्ठित न होते। आपको लग रहा है कि कोई धार्मिक अनुष्ठान चल रहा है, परन्तु सत्य यह है कि यहाँ पाषाण की प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा चल रही है तो यहाँ एक एक क्षण के परिणामों की प्रतिष्ठा चल रही है। **समाज इकट्ठी होती रहेगी तो संगृहीत रहेगी। यदि धार्मिक अनुष्ठान नहीं होंगे, तो बिखर जायेगी। समाज को**

संगृहीत करने का, इकट्ठा करने का एक ही उपाय है, धार्मिक अनुष्ठान। श्रद्धा के स्थानों पर सभी बैठ सकते हैं, परन्तु स्वार्थ के स्थानों पर सभी नहीं आयेंगे। आपने अपने बेटे की शादी के समय कार्ड भेजे होंगे, कितने के प्रति हाथ जोड़ने पड़े होंगे? यहाँ तो सब अपने आप चले आते हैं। स्वार्थ के लिए बुलाना पड़ता है, लेकिन संस्कारों और श्रद्धा के लिए किसी को बुलाना नहीं पड़ता है, लोग चले आते हैं। **हर व्यक्ति के जीवन में एक समय ऐसा आता है जब आत्महित का भाव आता है। कितना ही बिगड़ा हुआ पुरुष होगा, उस जीव को जीवन में एक समय ऐसा आता है जब जीवन को सुधारने का भाव आता है। जब मारीचि-जैसा जीव महावीर बन सकता है, तो-फिर आप तो श्रावक हो।** जब सिंह श्रावक बन सकता है, तो-फिर तुम तो श्रावक ही हो। इसलिए संकल्प-विकल्प से दूर हो जाओ और श्रद्धा को विश्वास को निज में स्थापित कर लो। एक वे संकल्प-विकल्प आते हैं कि मेरे घर में मेरा दामाद आ जाये, मामा आ जायें। रागियों की याद करने वाले बहुत मिल जायेंगे। एक वे जीव हैं जो द्वार पर कलश लिए खड़े हैं कि कोई महात्मा विराज जायें। धन्य हों वे जीव जिनने महाश्रमण तीर्थंकर परमेश्वर जैसे महामुनि के हाथ पर ग्रास रखा हो, उनकी अंजुली में इक्षुरस भरा हो।

एक गर्भिणी माँ गर्भस्थ शिशु के प्रति कितना करुणा भाव रखती है, पैर को कितना सँभाल-सँभाल कर चलती है कि कहीं गर्भस्थ बेटे को कष्ट न हो जाय। स्वयं के भोजन में नियन्त्रण कर लेती है। जैसे माँ गर्भस्थ शिशु का ध्यान रखती है, ऐसे-ही श्रावको! तुम उस गर्भिणी माँ के समान हो, ये मुनिराज तुम्हारे गर्भस्थ शिशु हैं, इनकी साधना में कोई पीड़ा न हो जाय, इस भावना से इनकी सेवा करना। ठीक है, कोई एक-दो विकल्प भी खड़े हो जायें, एक-दो गाड़ी पटरी से उतर भी जायें, लेकिन पटरी उखाड़ कर नहीं फेंकी जाती है। एकाध साधक यदि ऐसे दिख जाये जिससे ऐसा लगे। पंचमकाल कलयुग की अंतिम श्वास तक मोक्षमार्ग की पटरी बराबर चलेगी। इसलिए **'वन्दे तद्गुण लब्धये'** आपकी वन्दना रत्नत्रय धर्म के लिये है। श्रद्धा और प्रीति, ये दोनों युगपद मिल जाये तो। परन्तु ज्ञानियो! प्रीति को हटा देना और श्रद्धा को बचा लेना।

लक्ष्मी की तस्वीर जहाँ भी मिलेगी, खड़ी मिलेगी, सरस्वती बैठी मिलेगी। लक्ष्मी चौबीस घण्टे तैयार रहती है कि तुम गड़बड़ करोगे, मैं भागी। एक भक्त के यहाँ

धर्मराज और लक्ष्मी एक साथ पधार गए। लक्ष्मी कहती है कि देखो, तुम धर्मराज को रोकना चाहते हो तो मैं जाती हूँ। धर्मराज शान्त बैठे हुए थे। (उसने सोचा कि मेरी प्रीति और श्रद्धा दोनों धर्मराज के ऊपर है।) उस भक्त ने कहा—लक्ष्मी जी! तुम्हें जाने सो चली जाओ, लेकिन हम धर्मराज को नहीं छोड़ सकते। लक्ष्मी चलने लग गई, बेचारा दरिद्री हो गया। जैसे-ही दरिद्री हुआ, धर्मराज जी निकलने को तैयार हुए, तो उसने पाय पकड़ लिए, बोला—सुनो स्वामी ! तुम्हारे चक्कर में हमने लक्ष्मी जी को भगा दिया, तुम नहीं जा सकते। जैसे-ही धर्मराज के पैर पकड़े, लक्ष्मी लौट कर आ गई। बोला— तुम कैसे आ गईं? भैया! जब इन्हें ही पकड़ कर रख लओ, तो हम जा कैसे सकते? ऐसे-ही चत्तारि सरणं पव्वज्जामि। अरहन्ते सरणं पव्वज्जामि, सिद्धे सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि, केवलि-पण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि।

केवलीप्रणीत धर्म की शरण में चले जाना, दरिद्री हो करके भिखारी के घर में भीख माँग कर खा लेना, लेकिन परमात्मा के चरणों को छोड़कर मत जाना। परन्तु मुझे विश्वास है कि परमात्मा के चरणों का भक्त कभी भीख माँग नहीं सकता है।

देवाधिदेव-चरणे परिचरणं सर्व-दुःख-निर्हरणम्।
कामदुहि कामदाहिनि परिचिनुयादादृतो नित्यम्॥119/र.श्रा॥

जो देवाधिदेव की शरण को प्राप्त होता है, उसके सम्पूर्ण दुःखों का अभाव हो जाता है। काम को नष्ट करने वाली और कामधेनु गाय के समान सम्पूर्ण सुख को प्रदान करने वाली है देवाधिदेव की भक्ति। इसलिए आज संकल्प कर लेना—मैं भीख माँगना पसन्द कर सकता हूँ, लेकिन प्रभु को छोड़ना पसन्द नहीं कर सकता। **'ते गुरु चरण जहाँ पड़े, जग में तीरथ होय'**। गोम्मटेश बाहुबली स्वामी से प्राचीन तीर्थ श्रेयांसगिरि सीरा पहाड़ है। गोम्मटेश को अभी ग्यारह सौ वर्ष हुए हैं और श्रेयांसगिरि पन्द्रह सौ वर्ष पुराना है। श्रेयांसगिरि में मात्र साधना के लिए जायें, अन्य किसी कार्य के लिए न जायें। जिसने वहाँ पर साधना की विराधना की, समझ लेना वहाँ क्या होता है। वहाँ की विशुद्धि/पवित्रता का ध्यान रखो तो आप सफल रहोगे। **चुम्बक में शक्ति होती है तो वह लोहे को अपनी ओर खींच लेता है। जिसके शक्त्यांश अधिक होते हैं वह अपने रूप परिणत करा लेता है।**

ये टॉवर कहाँ-कहाँ की तरंगों को खींच रहा है? ऐसे टावर बन कर जीवन जिओ। जगत् में जितने तीर्थ हैं, सबकी तरंगें खींच लो। प्रतिष्ठाचार्य जी! नाटक में कमी

आ जाये, उसकी कोई चिन्ता मत करना, लेकिन मंत्र में कमी नहीं आनी चाहिए। ऐसी शक्ति भर देना कि जगत् के लोग खिचे-खिचे चले आयें कि कैसे भगवान् बने। स्वर्णकलश होते हैं, लेकिन तड़ित तो ताँबे की ही होती है। विद्युत का संचार निकास तांबे में ही होता है। स्वर्ण के अन्दर संग्रह और विस्तार दोनों शक्तियाँ हैं। स्वर्णकलश में मंत्रशक्ति को भरने की ताकत होती है। पहले शक्ति को संग्रह करता है, फिर शक्ति को बिखेरता है। इसलिए जिनालयों में स्वर्ण कलश ही होता है। सामर्थ्य नहीं है तो ताम्र कलश हो सकता है, पाषाण कलश भी हो सकता है।

आचार्य कुलभद्र स्वामी जी कह रहे हैं—सुधी श्रोताओ! जो जीव भक्तिपूर्वक जिनश्रुत का पठन-पाठन करेंगे, भावना करेंगे, उनके भव के कारण का नाश होगा, वे शीघ्र ही अमृत-भूत शाश्वत् मोक्षफल को प्राप्त करेंगे।

यदि किसी जीव को अपनी भवितव्यता की पहचान करना हो 'मैं भव्य हूँ कि अभव्य हूँ'? **जिस जीव के जीवन में दिगम्बर मुनि के हाथ में ग्रास रखने के भाव न हों, विश्वास रखना, तुम सम्यग्दृष्टि नहीं हो।** जिस जीव के अन्तस् में भक्तिपूर्वक जिनवाणी सुनने के परिणाम न हों, अरहन्त की वन्दना के परिणाम न हों, वे अपनी भवितव्यता की कहीं खोज करें। सहज ही अन्तरङ्ग में उमंग पैदा हो कि चलो, जिनवाणी सुनूँ, अरहन्त की वन्दना करूँ, गुरु की वन्दना करूँ। बिना किसी के कहे, जीव के स्वतः परिणाम हों। जो भक्तिपूर्वक श्रद्धा से उसका पान करता है, वह भविष्य का भगवान् होता है।

कोटि-कोटि द्रव्य भी दे, तो-भी यह महावीर की दिव्यदेशना के प्रचार के लिए है।

जैसे शीलवन्त पुरुष परनारी के लिए नपुंसक होता है, ऐसे-ही सम्यग्दृष्टि जीव पर के दोष कहने के लिए मौन होता है, मूक होता है। '**दोष-वादे च मौनम्**' दूसरे के दोष कहने में मेरा मौन है। प्रभुभक्ति का मौका आ जाये तो मुखर हो जाना। ''**आत्मस्वभावं,परभाव भिन्नं**'' आत्मा का स्वभाव परभावों से अत्यन्त भिन्न है।

भगवान् महावीर स्वामी की जय।



अन्त्य मंगल भावना

नमः परमसद्ध्यानविघ्ननाशनहेतवे।
महाकल्याण-सम्पत्ति-कारिणेऽरिष्टनेमये॥328॥

अन्वयार्थ— (परमसद्ध्यानविघ्ननाशनहेतवे) परम सुन्दर धर्म्यध्यान एवं शुक्लध्यान में विघ्नों का नाश करने के कारण तथा **(महाकल्याण-सम्पत्ति-कारिणे)** महाकल्याणरूप शिवसम्पदा के कारण **(अरिष्टनेमये)** श्री अरिष्टनेमि बाईसवें तीर्थंकर को **(नमः)** नमस्कार हो।

भावार्थ— अन्त्यमंगल करते हुए भगवत् श्री कुलभद्राचार्य अपने इष्ट परमात्मा भगवान् अरिष्टनेमि तीर्थंकर देव की स्तुति कर रहे हैं।

॥ सद्-देशना ॥

आचार्यप्रवर कुलभद्र स्वामी ग्रन्थराज 'सारसमुच्चय' जी में अन्तिम मंगल भावना के रूप में यहाँ सहज स्वरूप की व्याख्या करते हुए समझा रहे हैं।

संसार की सम्पूर्ण विधायें, सम्पूर्ण विद्यायें जब विराम ले लेती हैं, तब अध्यात्म विद्या का प्रारम्भ होता है। जगत् में जितनी क्रियायें हैं, अनुष्ठान हैं, उन सबका उद्देश्य आत्मकल्याण है, आत्म ध्यान है। आगमन के अभाव में निरागमन बहुत कठिन है। अज्ञानी जीव क्रियाकाण्ड को मात्र क्रियाकाण्ड में लवलीन होने में ही तल्लीन होकरके समय को पूर्ण कर लेते हैं। तत्त्वज्ञानी जीव क्रियाओं के माध्यम से वस्तुस्वभाव की प्राप्ति की ओर कदम बढ़ाता है। **पञ्चपरमेष्ठी भगवान् आलम्वनभूत मात्र हैं, निज की ध्रुव-आत्मा ही साध्यभूत है। जब-तक निज भगवान्-आत्मा की प्राप्ति नहीं हो जाती है, तब-तक आलम्बन लेना अवश्यक है।** आलम्बन साधन है। साधन तो साधन मात्र है, साधन साध्य नहीं होता है। अज्ञानी तो साधन को साध्य मानकर इति मान लेते हैं। कारण तो कारण है, कारण कार्य नहीं है। कार्य की सिद्धि के लिए कारण अनिवार्य है। इसी प्रकार परमात्मा से मिलने के लिए परमात्मा की आराधना नहीं कर रहे हो, परमात्मा में विलीन होने के लिए परमात्मा की आराधना नहीं कर रहे हो, स्वयं के परमात्मा को जाग्रत करने के लिए परमात्मा की आराधना कर रहे हैं। साधन हेतु, साध्य हेतु, कारण हेतु, कार्य हेतु। क्रियायें तो क्रियायें हैं, क्रियायें धर्म नहीं है। परन्तु क्रियाओं के बिना धर्म नहीं है। छिलका रस नहीं है, दल रस नहीं है, बीज रस नहीं है, अनार के दाने रस नहीं है, परन्तु इनके बिना भी रस नहीं

है। फल को खरीदते हो, कि छिलके खरीदते हो, कि दाने को खरीदते हो ? छिलकों को खरीदकर क्यों पैसे बरबाद करते हो? सुबह से किसी के मकान के सामने से निकल जाना, पड़े मिल जायेंगे, उठा लेना। छिलकों को नहीं खरीदना पड़ता है। ध्रुव सत्य है कि हमारा उद्देश्य छिलका खरीदना नहीं है, हमारा अभीष्ट तो रस है, लेकिन जब खरीदने जायेंगे तो पैसे सबके देने पड़ेंगे। जैसे रस की प्राप्ति के लिए हमें फल खरीदना पड़ता है, ऐसे-ही क्रियायें तो माध्यम हैं। धर्म तो मात्र उतना ही है जितनी भावों में विशुद्धि आयी है। यदि पैर थिरकते-थरकते ही किसी के मन में आह्लाद उत्पन्न हो गया था, तो उतना ही धर्म था। ग्रास पूरा मुख में रखना पड़ता है, लेकिन वह स्वाद कितना देता है? तनक-सा। ऐसे-ही कोई विज्ञान ज्ञान सम्पन्न जीव ये कहे कि मैं तो मात्र रस को ही ग्रहण करूँगा, लेकिन ग्रास को मुख में रखे बिना वह रसास्वाद होता नहीं है। इसी प्रकार से व्यवहार क्रिया के अभाव में निश्चय चारित्र की अनुभूति होती नहीं है, परन्तु व्यवहार चारित्र मात्र निश्चय चारित्र होता नहीं है।

आप इतना चलकर आये हैं, इतनी-सी क्रिया कि चलो अपन तो उपदेश सुनेंगे, तत्त्वोपदेश सुनेंगे, श्रीजी की यात्रा देखेंगे। पण्डित जी! व्याख्यान की शैली बदल दो। भव की व्याख्यायें तो लोगों ने अनन्त वार की हैं, भावात्मक भवविनाश की व्याख्यायें लोगों ने बिल्कुल नहीं कीं। जब पंचकल्याणक भावों की विशुद्धि से किया ही है, तो भावों की विशुद्धि क्या? भैया! पैसा लगाये बिना पैसा बढ़ता है क्या? अरे! पुण्य लगाये बिना पुण्य बढ़ता है क्या? जो पूर्व में पुण्य किया था, उस पुण्य को अभी लगाया है। वर्तमान में जो और पुण्य करेगा, उसका भविष्य में और बढ़ेगा। **जिस जीव को भावों की विशुद्धि का आनन्द आता है, वह परमात्मा के चरणों में जाने के परिणाम करता है।** ये विशुद्धि परमात्मा के चरणों में जाने के लिए है, लेकिन उनके पादमूल में पहुँच करके जो विशुद्धि बनती है, वह परमात्मा बनने के लिए है।

तीर्थंकर ऋषभदेव का जीव जब बज्रजंघ की पर्याय में था, तब उसने वीतरागी निर्ग्रन्थ को जंगल में आहार दिए थे और जब अपनी पत्नी श्रीमती के साथ आहार दे रहे थे तो वहाँ पर विभिन्न प्राणी निहार रहे थे। उन्हीं के मध्य सिंह भी था, नेबला भी था, बन्दर भी था। जब बज्रजंघ वीतरागी मुनि के हाथ में ग्रास रख रहे थे, उस समय उन प्राणियों के क्या परिणाम हुए? ओ हो! जगत् के विषयों की अनुभूति करके

अनेक बार आहा किया, एक बार निर्ग्रन्थ योगी के हाथ में ग्रास रखकर आ हा निकल आये, तो सारी आहें निकल जायें। उन जानवरों ने क्या सोचा? मैं दिगम्बर धर्म का अनुयायी श्रावक होता, मैं मनुष्य होता, तो आज मैं भी वीतरागी निर्ग्रन्थ के हाथ में ग्रास रख लेता। मेरी पर्याय की आधीनता, मेरी पर्याय की हीनता। मैं पशु हूँ, तिर्यञ्च हूँ, मैं आहार तो नहीं दे सकता हूँ।

मित्रो! कोई तुमको मंदिर से भगा सकता है, चौके से भगा सकता है, लेकिन मेरी भावना के भगवान् को कौन भगा सकता है ? तुम अभिषेक करने आओ, पूजन करने आओ, कोई कह दे कि तुम भागो यहाँ से, तो उससे झगड़ा मत करना। कहना, मेरे मित्र! तू भगवान् की प्रतिमा से दूर कर सकता है, लेकिन मेरे भीतर बैठे भगवान् को भगाने के लिए तेरे पास कोई शक्ति नहीं है। यह आत्मश्रद्धा है जो प्रदर्शन मात्र नहीं है। मेरे अन्तरङ्ग की आस्था को भगाने में कौन समर्थ है?

वे प्राणी अनुमोदना कर रहे थे, दे नहीं पा रहे थे, परन्तु देखने में कमी नहीं कर रहे थे, लेकिन मन में सोच रहे थे कि इन योगी के निरन्तराय आहार हो जायें।भविष्य में मैं यदि कभी मनुष्य बनूँगा तो मैं ऐसे ही आहार दूँगा। उस एक दिन के पुण्यकर्म की अनुमोदना का प्रभाव देखो, वही शेर का जीव चक्रवर्ती भरत बना जिसने यहाँ किमिच्छित दान दिया। बज्रजंघ तीर्थंकर ऋषभदेव हुए और उनकी जो पटरानी थी वही तो राजा श्रेयांस हुए, जिन्होंने प्रथम तीर्थंकर को प्रथम बार आहार देखा। वे ही जीव वृषभसेन आदि महापुरुष हुए।

जीवन में ध्यान रखना, जब-जब तुम भगवान् की आराधना करने आओ, सच्चे काम करने आओ, अच्छे काम करने आओ, तो जैसे तुम महोत्सव को निहार रहे हो, उस महोत्सव का अवलोकन करते-करते निज का भी अवलोकन करते रहना।

ये जिनागम का गूढ़ रहस्य है। कैमरे वाले ने इन आँखों से मुझे देखा और इन सारे लोगों को निहार रहा है, फिर कैमरे में देख रहा है कि आ रहे हैं कि नहीं ? ऐसे-ही जब तुम परमात्मा के चरणों में पहुँचो, तो इन आँखों से परमात्मा को देखो, फिर भीतर देखो कि आ रहे हैं कि नहीं आ रहे हैं? भीतर नहीं आ पाये तो बाहर के देखने से क्या होता है ? जो आँखों से देख रहे हो, वह बहिर्ज्ञेय है, चाक्षुष है। जो भीतर देख रहे हो, वह अन्तःज्ञेय है। जब-तक भावप्रमेय नहीं बनेगा, तब-तक भव का नाश नहीं होगा। भावप्रमेय, देखने के बाद देखो। किसी द्रव्य को आपने

देखा, अच्छी प्रीति हुई, तो वहाँ से हटने के बाद देखता है, तब बहुत आनन्द आता है। वो जो आनन्द होता है, वही आनन्द है।

आँखों से परमात्मा को देखा, फिर आँखें बन्द करके देखो। सत्य तो यह है कि जितने वैरागी हैं वे देखने के बाद ही देखते हैं। जितने रागी हैं, वे देखने के बाद ही देखते हैं। नारायण कृष्ण ने रुक्मणी के चित्र को देखा, चित्र को देखने के बाद फिर देखा। तुमने जो भी कुछ जीवन में किया है, पहले चित्र ही देखा है। चित्र देखने के बाद फिर देखा। जैसे मुमुक्षु से पूछना आँखों में काली पट्टी और काली कोठरी में तुझे पटक दिया और अमावस्या की काली रात, फिर भी इस जीव को काली कोठरी में अपने बेटे की माँ का चेहरा दिखाई दे रहा है। कितना तन्मय है कि तब भी इसको अपनी प्रियतमा दिख रही है। इसी प्रकार **काले संसार में भी काले कर्मों के बीच में भी परमात्मा दिखने लग जाय, इसका नाम धर्मात्मा है।** आँखें बन्द करने पर भी तुमको प्राणवल्लभा दिखती है, ऐसे-ही निर्ग्रन्थ योगियों को आँख बन्द करने पर भी आत्मवल्लभा दिखने लगती है।

इसका नाम ध्यान है। इसलिए यहाँ कह रहे हैं कि जो मोक्षमार्ग है, वह ध्यान है। सप्तम गुणस्थान ध्यान है। शुद्ध नरक का मार्ग ध्यान है और शुद्ध मोक्ष का मार्ग ध्यान है। जब-तक उत्कृष्ट संहनन, उत्कृष्ट आर्त्त-रौद्र ध्यान नहीं होगा, तब-तक सातवें नरक जाने का अवसर तुझे नहीं मिल सकता है। उत्कृष्ट संहनन होगा और उत्कृष्ट तीव्र रौद्रध्यान करेगा, वही सातवें नरक की यात्रा कर सकेगा। उत्कृष्ट संयम होगा, उत्कृष्ट धर्म्यध्यान और शुक्लध्यान होगा, वह जीव निर्वाण को प्राप्त करेगा।

जिनागम की मूल विद्या ध्यान है। आज विश्व में देखो, ध्यान की कितनी चर्चायें चल रही हैं? विपश्यना चल रहा है, कितने प्रकार से लोग ध्यान कर रहे हैं; जबकि निर्वाण की प्राप्ति उत्तम संहनन से युक्त प्राणी के एकाग्र चित्त का निरोध है, उसका नाम ध्यान है। **ध्यान-साधना ही साक्षात् मोक्ष का कारण (साधन) है।** उस ध्यान की लीनता के लिए बाहरी विकल्पों से बचने के लिये आप परमात्मा की आराधना विभिन्न प्रकार से करते हो। **चाहे संगीत से करो, चाहे गीत से करो, चाहे मौन से करो, ये सारी-की-सारी आराधना साधना जो तुम्हारी चल रही है, वह परमात्मा से मिलने के लिए नहीं चल रही है, परमात्मा बनने के लिए चल रही है।**

कोटि-कोटि पुष्पों से परमात्मा की पूजा कर लेना, उसका फल अत्यन्त न्यून और

णमोकार की एक माला फेर लेना, उसका फल तीव्र है। एक करोड़ मंत्र जाप करो और एक मिनट धर्म्यध्यान कर लो, कर्मों की अधिक निर्जरा ध्यान से होगी।

ज्ञानी ! रोड़ पर मिट्टी फेंकनेवाले को वेतन अधिक मिलता है कि गाड़ी में घूमने वाले अधिकारी को ? अधिकारी को। पसीना तो वह मजदूर बहा रहा है, फिर पैसा अधिकारी को अधिक क्यों मिलता है ?

पसीना बहाने वाले को दु:खी नहीं होना चाहिए और उसको कुर्सी में बैठने वाले के प्रति अशुभ भाव भी नहीं आना चाहिए। मित्र! तू जो मेहनत कर रहा है, वह बुद्धिविहीन होकर शरीर से मेहनत कर रहा है। **मस्तिष्क की जो मेहनत होती है, वह शरीर से कई गुनी अधिक होती है। इसी प्रकार से शारीरिक साधना करने वाला पुरुष जितने पाप का क्षय नहीं कर पाता है, उतना ध्यान करने वाला पुरुष कर्मों का क्षय करता है।** जैसे-जैसे विकास होता जायेगा, वैसे-वैसे क्रियायें कम होती जायेंगी। अन्तिम विकास की दशा में जब परमेश्वर परम औदारिक शरीर में लीन होंगे, जब शुक्लध्यान में लवलीन होते हैं, तब शुक्लध्यान की धीमी तपन से कर्मों का क्षय होने लगता है।

जिस अग्नि से लुहार लोहे तो तपाता है, उस अग्नि से सोने को नहीं तपाया जाता है। सुनार धीमी आँच में सोने को तपाता है, परन्तु ज्वाला तीव्र होती है, वेग तीव्र होता है। ऐसे-ही जब निर्वाण-बेला का काल आता है, उस समय योगी ध्यान में लीन होता है, उस ध्यान में जो प्रकर्षता होती है, उस ध्यान की अग्नि से कर्मकलंक को नष्ट करते हैं। इसलिए साधकों को चाहिए कि यदि एक घण्टे जपमाला करते हैं तो पाँच-दस मिनट छोड़ करके ध्यान करें और ध्यान का अभ्यास नहीं है तो कहीं दीवार से टिके मिलोगे तो कहीं जमीन पर सिर टेकोगे। **ज्ञान से ध्यान की सिद्धि होती है।** जो श्रुतअभ्यास से शून्य हो गए हैं, जो आगम-ज्ञान में प्रमादी हो गये हैं, स्वाध्याय को हेय मान रहे हैं, वे विवेकशून्य लोग हैं। आँख और मन, ये दो भ्रमण कराने के मूल हेतु हैं। आँख और मन दुनियाँ में दौड़ते हैं। **आँख को आगम में लगा दो, आँख को अक्षरों में लगा दो और मन को अर्थ में लगा दो तो तेरा अनर्थ बच जायेगा।** कौन कहता है कि मन वश नहीं होता है और कौन कहता है कि आँखें वश नहीं होती हैं? बस, आप लगा दो। गाड़ी के बैल को खोल कर खड़ा कर दोगे तो वह

भी भाग जायेगा। उसको गाड़ी में जोत दो, अब बोलो वह कहाँ जायेगा? ऐसे-ही 'मन वश करना, मन वश करना' ये अज्ञानियों की भाषा है। मन को आगम-अर्थ में लगा दो और आँख को अक्षरों में लगा दो तो तेरा अनर्थ बच जायेगा। ज्ञान से ध्यान की सिद्धि होती है। जितना गहरा ज्ञान होगा, उतना गहरा ध्यान होगा। जब ज्ञान ही नहीं है, तो ध्यान किसका करोगे? ध्यान के लिए ज्ञान अनिवार्य है, श्रुतज्ञान। ध्यान के लिए कोई बल्ब, प्रकाश, आदि की आवश्यकता नहीं होती है। **ज्ञान में ज्ञान की लीनता ही परम ध्यान है।**

आचार्यभगवन् कुलभद्र स्वामी ने अंतिम मंगल में यहाँ भगवान् को नमस्कार नहीं किया। उस परम ध्यान को मेरा नमस्कार हो जो सारे विघ्नों का नाश करनेवाला है। ऐसा ध्यान जिसके जीवन में उतरता है, उस ध्यान के महान् ध्याता कोई हुए हैं, वे महान् कल्याण सम्पत्ति को देनेवाले अरिष्टनेमि (परमेश्वर) हुए हैं।

मेरे मित्र ! तुम पूजन करते हो स्वाध्याय करते हो, पाँच मिनट और निकाल लिया करो। तुमसे कुछ न भी बने तो जिनकी तुमने पूजन की है उनके चेहरे को ही आँख बन्द करके देखने लगना। आँखें खोलकर देखोगे तो पूजा आराधना कहलायेगी। आँख बन्द करके देखोगे, स्तवन करोगे, तो ध्यान कहलायेगा। जैसे इष्ट के वियोग होने पर वही-वही दिखता है, ऐसे-ही परम इष्ट परमात्मा दिखने लग जाये तो दुनियाँ में किसी का वियोग ही न हो। जितना गहरा तूने अपने इष्ट को देखा है, उतने गहरे परमात्मा को नहीं देखा। यदि देख लेता, तो इष्ट की जगह परमात्मा परमात्मा दिखता। इसलिए भगवन् कुलभद्र स्वामी कह रहे हैं, ज्ञानी! अपने जीवन में सद् देशना को प्राप्त करके मोक्ष मार्ग को हासिल करना है तो जैसे तीर्थंकर नेमिनाथ स्वामी ऊर्जयन्त पर्वत से निर्वाण को प्राप्त हो गये, वैसे ही आप सब भी हो जाओगे। जो श्रुत का पान करता है, वह भावी भगवान् होता है, ऐसा आगम-वचन है।

जिस नगर में सिद्धान्तशास्त्र की वाचना हो चुकी हो, उस नगर के परिणामों की विशुद्धि का और क्षेत्र की प्रशस्तता का वर्णन क्या किया जाय? ध्यान रखना, कोटि-कोटि भव लग जाते हैं।

गुरुमूले यति-निचिते-चैत्यसिद्धांत-वार्धिसद्घोषे।
मम भवतु जन्म जन्मनि, सन्यसन् समन्वितं मरणं॥4/स.भक्ति।।

जहाँ गुरुओं का मूल हो, यतियों का समूह हो, अरहन्त प्रतिमा विराजमान हो और सिद्धान्त का घोष चल रहा हो, इससे अच्छा सुकाल क्या होगा ? ऐसे काल में मेरा मरण हो जाय तो मेरा जीवन सफल हो जाय। मृत्यु हो तो ऐसे स्थान पर हो, ऐसा निदान भी स्वीकार है। प्रशस्त निदान है। कहीं हास्पिटल में न तड़पना पड़े, जंगल में किसी गाड़ी के नीचे न तड़पना पड़े। जिनवाणी चल रही हो। आज से कभी घर में नहीं कहना कि नींद नहीं आ रही। ये तेरा सौभाग्य है कि नींद नहीं आ रही। तो क्या करना? और अच्छे से लेट जाओ, दोनों हाथ ढीले कर लेना, शरीर ढीला कर लेना, चिंतन करना कि मेरी अंतिम श्वास चल रही है, ऐसे समय सब खड़े हुए हैं, कौन मुझे बचा पा रहा है? मेरे प्रभु! ये अभ्यास मैं आज के लिए नहीं कर रहा हूँ, उस दिन के लिए कर रहा हूँ जब जाने लगूँगा। बस ऐसे-ही चैतन्य होकर जाऊँ, अचैतन्य होकर न जाऊँ। रात्रि में नींद न आये तो समाधि की साधना करना। जैसे ही तुम ढीले होगे, ऐसा सोचोगे, तो मस्तिष्क का भार उतर जायेगा, नींद अपने आप आ जायेगी। जिनको पागल होना हो वे नींद की गोली खाने लग जायें। स्वाध्याय करने बैठोगे तो अपने आप नींद आ जायेगी।

यदि ये मेरी बातें मान लें तो वकील और डॉक्टर के घर जाना ही न पड़े। परिग्रह का परिमाण कर लें, कषायों को निम्न कर लें, वासना को शान्त कर लें, तो न वकील के घर जाना पड़ेगा न डॉक्टर के घर जाना पड़ेगा।

गुटका आता है, जिसमें साँप-बिच्छू बना होता है, फिर भी ये ऐसे रागी होते हैं तब भी खाते हैं। ऐसे-ही चार गतियों के साँप दिखाई दे रहे हैं, फिर भी ये मोही जीव घर छोड़ नहीं पाता है। यदि शाश्वत सुख चाहिए तो आचार्य पूज्यपाद स्वामी कह रहे हैं—

शास्त्राभ्यासो जिनपतिनुतिः, सङ्गति सर्वदार्यैः।

हे प्रभु ! शास्त्रों का अभ्यास हो, सत्संगति हो, जिनवाणी का वाचन हो, आर्य जनों के साथ निवास करूँ। अनार्यों के साथ मत रहना एक पल भी। आर्यों की संगति महान् बना देगी। एक पल की भी अनार्यों की संगति नीचे डुबा देगी। जो सारसमुच्चय ग्रन्थ को पढ़ता है, वह अल्प काल में ही अक्षय-अनन्तसुखभूत अविनाशी पद को प्राप्त कर लेता है, जहाँ जन्म-मरण का कोई खेद नहीं, दुःख नहीं।

टीकमगढ़ में प्रारम्भ हुआ था और अक्षय तृतीया को रत्नों की नगरी पन्ना में पूर्ण हुआ है।

नमः परम-सद्ध्यान-विघ्ननाशन-हेतवे।
महाकल्याण-सम्पत्ति कारिणेऽरिष्टनेमये॥328॥

उस परम ध्यान (धर्म्यध्यान-शुक्लध्यान) को नमस्कार हो जो विघ्नों का नाश करने वाले हैं।

बाहुवली स्वामी तो विश्वप्रसिद्ध हैं, लेकिन वहाँ के मूलनायक नेमिनाथ स्वामी हैं। महा कल्याण की सम्पत्ति को देनेवाले अरिष्टनेमि भगवान् को मेरा नमस्कार हो। नेमि यानि धुरी। जैसे धुरी के आधार पर सारे वजन ढोते हैं, ऐसे ही सारे चौबीस तीर्थंकर ही नेमि हैं।

ऐसे तीर्थंकर नेमिनाथ स्वामी की चरण-निश्रा में, उनके पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा के काल में, पारसपुरी पन्ना में, आज अक्षय तृतीया के दिन, अक्षय श्रुतभण्डारभूत अन्तिम मंगल के रूप में यह 'सारसमुच्चय' नाम का ग्रन्थ पूर्णता को प्राप्त हुआ। इस ग्रन्थ वाचन में जो कुछ है, वह सर्वज्ञ की वाणी है, आचार्यों की वाणी है।

आचार्य गुरुदेव ने जो कुछ दिया, ये सब उनका है, विशुद्धसागर का कुछ भी नहीं है।

हे सरस्वती देवी ! आप बोधि समाधि की भंडार हो। मुझसे अक्षर, पद, मात्रा की जो भूल हुई हो, वह मेरी है, परन्तु जिनागम की कोई भूल नहीं है। माँ सरस्वती जयवंत हो, जयवंत हो वीतराग वाणी, श्रीजिन नमोऽस्तु शासन, वीतराग श्रमणसंस्कृति।

द्वादशाङ्ग जिनवाणी माता की जय।
भगवान् महावीर स्वामी की जय।

संदर्भ ग्रंथ सूची

सांकेतिक,	ग्रंथ का नाम	आचार्य
सा.स.	सार समुच्चय	आचार्य भगवन् श्री कुलभद्र स्वामी
अ.पा.	अष्टपाहुड	आचार्य भगवन् श्री कुन्दकुन्द स्वामी
प्र.सा.	प्रवचनसार	आचार्य भगवन् श्री कुन्दकुन्द स्वामी
भा.पा.	भावपाहुड	आचार्य भगवन् श्री कुन्दकुन्द स्वामी
स्.स्तो.	स्वयंभू स्तोत्र	आचार्य भगवन् श्री समन्तभद्र स्वामी
त.सा.	तत्त्वसार	आचार्य भगवन् श्री देवसेन स्वामी
र.श्रा.	रत्नकरण्डक श्रावकाचार	आचार्य भगवन् श्री समन्तभद्र स्वामी
आ.मी.	आप्तमीमांसा	आचार्य भगवन् श्री समन्तभद्र स्वामी
यु.शा.	युक्त्यनुशासन	आचार्य भगवन् श्री समन्तभद्र स्वामी
मूला.	मूलाचार	आचार्य भगवन् श्री वट्टकेर स्वामी
स.भ.	समाधिभक्ति	आचार्य भगवन् श्री पूज्यपाद स्वामी
स्.सं.	स्वरूप संबोधन	आचार्य भगवन् श्री अकलंक स्वामी
प.मु.सू.	परीक्षामुखसूत्र	आचार्य भगवन् श्री माणिक्यनंदी स्वामी
त.सू.	तत्त्वार्थसूत्र	आचार्य भगवन् श्री उमास्वामी
पु.सि.उ.	पुरुषार्थ सिद्धिउपाय	आचार्य भगवन् श्री अमृतचंद्र स्वामी
इ.दे.	इष्टोपदेश	आचार्य भगवन् श्री पूज्यपाद स्वामी
सर्वा.	सर्वार्थसिद्धि	आचार्य भगवन् श्री पूज्यपाद स्वामी

श्रमणसंस्कृति सेवासमिति ट्रस्टीगण एवं सदस्य

शिरोमणि संरक्षक

श्री सुन्दरलालजी जैन (बीड़ीवाले), इंदौर, श्री महावीरजी पाटनी, भिलाई

श्री आजादकुमारजी जैन (बीड़ीवाले), इंदौर, श्री किशोर पहाड़े (माँगीलाल-रमेश कुमार पहाड़े), हैदराबाद

परम संरक्षक

श्री नेमीचंदजी बड़कुल, इंदौर,

श्री राजेशजी जैन, (लॉरेल), इंदौर

श्री कमलकुमारजी अग्रवाल, इंदौर,

श्री संतोषकुमारजी जैन, (पटनावाले), सागर

श्री टी.के. वेद जी, इंदौर

श्री विजयकुमारजी रामनारायण जी, नागपुर

श्री हेमचंद मीना जैन (सिरमोर), इंदौर

संरक्षक

श्री शैलेन्द्रकुमारजी सोनी, इंदौर

डॉ. जैनेन्द्रजी जैन, इंदौर

श्री मानिकचंदजी नायक परिवार, इंदौर,

श्री पी.सी. जैन सा. (बैंकवाले), इंदौर

श्री प्रमोदकुमार जी जैन, (बारदाना) सागर

श्री भागचंदजी कंछेदीलालजी जैन, सागर

श्री संतोषकुमारजी सोनू मोना जैन, सिहोरा

श्री कमलकुमारजी कमलांकुर, भोपाल

श्रीमती कुसुमजी प्रकाशजी, सुखलिया, इदौर

इंजी. श्री पंकजकुमारजी जैन, भोपाल

श्री अरुण मीनुजी जैन, दिल्ली

श्री पवन-अल्काजी, अपूर्व भावीनजी कोठारी, भीलवाड़ा

श्री शशिकान्त धीरजकुमारजी अजमेरा, भीलवाड़ा

श्री प्रदीपजी मनोजजी वेद, भीलवाड़ा

श्री सुगनचंदजी विजयजी झांझरी, भीलवाड़ा

श्री राकेशजी सिंघई (पत्रकार), भोपाल

श्री मनोजजी प्रधान, भोपाल

श्री अजयजी (ज्योतिषी), भोपाल

श्री राजेन्द्रजी आम्रपाली, भोपाल

श्री संदीपजी (हर्ष सेनीटेशन), भोपाल

श्री हरीशकुमार प्रियंकजी अजमेरा, भोपाल

श्री संजीवजी संदीपजी (गेहूँ वाले), भोपाल

श्री जितेन्द्रजी जैन, भोपाल

डॉ. सुभाषजी जैन (जखारिया), भोपाल

श्री प्रमोद नील चौधरी, लालघाटी, भोपाल
श्री शैलेन्द्रजी जैन (शिल्पा), अजीराजपुर
श्री स्वप्निलजी मेघाजी (बड़जात्या मार्बल), इंदौर
श्री वीरेन्द्रकुमारजी जैन (पारस विद्या विहार), सागर
श्री केतनकुमारजी राजेन्द्रकुमारजी जैन, झाँसी
श्री राजकुमारजी स्नेहलताजी चंदौरिया, भिलाई
श्री पी.के. जैन कावाखेड़ा, भीलवाड़ा
श्री राजकुमार बाकलीवाल, भीलवाड़ा
श्री संजय राजू जैन, राजिम, छत्तीसगढ़
श्री किशोर अमित जैन, राजिम, छत्तीसगढ़
श्री वेदप्रकाश भाईजी, मनोरमागंज, सागर
श्री धनकुमार संजय गंगवाल, वैशाली नगर, भिलाई
श्री मनोज, अनिल, जयकुमार जैन, राजिम (छत्तीसगढ़)

ग्रंथ प्रकाशन विशेष सहयोगी

श्री रिषभ जैन शाहगढ़ (भोपाल)
श्री वीरेन्द्र कुमार जी चंदादेवी रावत, इंदौर
श्रीमती राजलताजी धरणेन्द्रजी जैन, भोपाल
श्री नरेन्द्रकुमारजी जैन (बीड़ी वाले), इंदौर
श्री अशोकजी कन्हैयालालजी खासगीवाला, इंदौर
श्री देवेन्द्रकुमारजी जैन (हीरू), इंदौर
श्री स्वतंत्रकुमारजी बाबूलालजी जैन, बालसमुद
श्री विजयकुमारजी, छतरपुर
श्री कैलाशचंदजी जैन (नेताजी), इंदौर
श्रीमती पुष्पाजी निर्मलजीकाला, रायपुर
श्री रतनचंदजी अशोककुमारजी, दुर्ग
श्री अनिलजी कासलीवाल, भिलाई
श्री वीरेन्द्र कुमारजी जैन (पारस विद्या विहार), सागर
श्री रज्जीलाल मोदी (सुपारी वाले), सागर
श्री प्रवीणकुमारजी जैन (वर्द्धमान), दिल्ली
श्री पन्नालाल जी जैन, कलकत्ता
श्री अरुणजी जैन, दिल्ली
श्री शैलेन्द्र कुमारजी जैन, बुंदी
श्री दिनेश-सीमा जैन, कोटा
श्री विशाल-नीतू जैन, मुलतान वाले, जयपुर
मुनि विश्वनाथसागर चातुर्मास समिति, भीलवाड़ा
दिगम्बर जैन समाज, नवापारा राजिम (छत्तीसगढ़)

अखिल भारतीय श्रमण संस्कृति सेवा समिति सदस्य

इन्दौर
श्री सुनीलकुमारजी गोधा
प्रो.श्री शांतिलालजी बड़जात्या
श्री महेशकुमारजी जैन (फूफा)
श्री जयकुमार जी जैन (रिंकू)
श्री विपुलजी बांझल (बंटी)
श्री संतोष गरुजी (परवार ग्रुप)
श्री कोमलचंदजी जैन (दद्दा)
श्री राकेशकुमारजी रसिया
श्री अरूणकुमारजी (मऊरानीपुर)
श्री विजयकुमारजी जैन (हवलदार)
श्री एन.के. जैन (रोडवेज)
श्री प्रकाशकुमारजी तरूणकुमारजी (आरौन वाले)
श्री जयकुमारजी निलेशकुमारजी जैन
श्री नवीनकुमारजी सुनीलकुमारजी जैन
श्री राकेशकुमार राजकुमारजी जैन
श्री संतोषकुमारजी जैन
श्री महावीरप्रसादजी चाँदमलजी गोधा
श्री संजयजी मोदी (अनंतपुरा)
श्रीमती गुणमालाजी ए.के. बड़जात्या, इन्दौर
श्री प्रदीप कुमारजी नेमीचन्दजी जैन, इन्दौर
स्व. श्री महेन्द्र कुमारजी बड़जात्या, इन्दौर

श्री सनत कुमारजी, अरविन्दजी (सतभैया), इन्दौर
श्रीमती इंदिराजी सेठी, इन्दौर
श्री विकासजी राजीवजी जैन, इन्दौर
श्रीमती सीमा एस.सी. जैन, इन्दौर
श्री डॉ. राजेशजी जैन, इन्झौर
श्री अरविन्द जैन, इन्दौर
श्री राकेश कुमार, इन्दौर
श्री संतोष जैन गुरुजी, इन्दौर
श्री जे.के. चौधरी, सुदामा नगर, इन्दौर
श्री संजीव जैन, मेगनम टॉवर, इन्दौर
श्री मनोजजी जैन, तिलकनगर, इन्दौर
श्री प्रसन्नकुमारजी जैन, तिलकनगर, इन्दौर
श्री अरविन्दजी जैन, सुदामानगर, इन्दौर

उज्जैन...
श्री जीवनलालजी जैन
श्री विजेन्द्रकुमारजी मनसुखलालजी जैन
श्री राकेश कुमारजी किशनचंदजी जैन, उज्जैन
श्री विद्युतजी करणमलजी डोसी, उज्जैन
श्री वीरेन्द्रकुमारजी जैन (कुनिया), उज्जैन
श्री कैलाशचंद रवीन्द्रकुमारजी जैन, उज्जैन
श्री शंभूकुमारजी अजयकुमारजी सेठी, उज्जैन
श्री महावीरप्रसादजी जैन, उज्जैन
श्री सुधीरजी नंदाजी जैन, उज्जैन
श्रीमती वीणाजी जैन, उज्जैन
श्री विमल कुमारजी राजमलजी जैन, उज्जैन
श्री सुनीलकुमारजी हीरालालजी सोगानी
श्री मोतीलालजी जैन छाबड़ा
श्री कमलकुमारजी सुरेशचंदजी जैन
श्री देवेन्द्रकुमारजी मनसुखलालजी जैन (तलाटी)
श्री रुपेन्द्रकुमारजी विजेन्द्रकुमारजी जैन
श्रीमती सुधादेवी इंदरचंदजी जैन

ललितपुर...
श्री रामप्रकाशजी जैन
श्री शीलचंदजी नन्हेलालजी जैन
श्री शिखरचंदजी जैन सर्राफ
श्री अखिलेशजी राजमलजी जैन
श्री सिंघई धन्यकुमार जी जैन
श्री सुंदरलालजी मथुराप्रसाद जी जैन
श्री नरेन्द्र कुमारजी राजीवकुमारजी जैन
श्री जयकुमारजी मोतीलालजी जैन
श्री कमलकुमारजी खेमचंदजी जैन

सागर...
श्री सुरेशकुमार हुकुमचंदजी जैन
श्रीमती पुष्पादेवी संतोषकुमारजी जैन
डॉ. सुनीलकुमार राजेशकुमारजी जैन
श्री नेमीचंदजी जैन (सुरखी वाले)
श्री भरतकुमारजी ताराचंदजी पटोदी
श्री ऋषभकुमारजी लखमीचंदजी गोयल
श्री वेदप्रकाशजी ताराचंदजी भाईजी
श्री कन्छेदीलालजी जैन (दाऊ)
श्री कोमलचंदजी ऋषभकुमार जैन (लालू साड़ी)
श्री ज्ञानचंदजी सुरेन्द्रकुमार जैन
श्री वैभवजी बाबुलालजी जैन
श्री ऋषभकुमारजी स्वरूपचंदजी सिंघई
श्री राजेन्द्रकुमारजी गुलाबचंदजी जैन
श्री सिंघई ऋषभकुमारजी मंडावरा वाले
श्री सेठ इंदरचंदजी दीपककुमारजी जैन (सन्मति)
श्री मुकेशकुमारजी भागचंदजी जैन
श्री राजेशकुमारजी जैन (जैन रोड लाईन्स)
श्रीमती सुगंधीजी जैन (निहारिका)
श्री नितिनकुमारजी कोमलचंदजी सर्राफ
श्री सुनीलकुमारजी के.सी. जैन
श्री हेमचंदजी जिनेन्द्रकुमारजी निलेशकुमार जी जैन

छतरपुर...
चौधरी श्री ज्ञानचंदजी जैन (दादा)
श्री ओलियाजी कोमलचंदजी, छतरपुर
श्री राजेन्द्रकुमारजी जैन सेठ
श्री राजकुमारजी जैन
श्री आनंदकुमारजी जैन (लोहेवाले)
श्रीमती श्रीबहनजी
श्री चक्रेशकुमारजी जैन (बड़कुल)
श्री मुकेशजी जैन (ग्रेनाईटइंडिया)
आचार्य श्री तारणतरण लोकन्यास
डॉ. सुरेशचंद बजाज
श्री श्रीपालजी बड़कुल
श्री प्रमोदजी बिजावर

भीलवाड़ा...
श्री सुरेन्द्र कुमारजी वीरोमलजी
श्री पवन अल्काजी, अपूर्व भावीन कोठारी
श्री शशिकान्तजी धीरज कुमारजी (अजमेरा)
श्री प्रदीपजी (वेद परिवार)
श्री सुगनचंदजी विजयकुमारजी झांझरी
श्री सोहनलालजी गंगवाल (पाटीदार)
श्री पी.के. जी जैन (कावाखेड़)

अन्य शहर....
श्री संजयकुमारजी निर्मलकुमारजी जैन (नवापारा राजिम), रायपुर
श्री पन्नालालजी धन्नालालजी जैन, कलकत्ता
श्रीमती अलका अशोककुमारजी जैन, दिल्ली
श्रीमती उर्मिलाजी शीलकुमारजी जैन, हिसार (हरि.)
श्री निर्मल कुमारजी जैन, दिल्ली
श्री अनुरागजी मोदी (मोदी टेडर्स), तेंदूखेड़ा
श्रीमती विमलाजी सिंघई, लालघाटी, भोपाल
श्री पीयूषजी जैन, सोनीपत (हरियाणा)
डॉ. त्रिशलादेवी जैन, कानपुर
श्रीमती सुमनजी जैन (अरोरा), बरेली
श्रीमती सुनीता भरतकुमार जैन, चौक, भोपाल
श्रीमती अर्मलशीलकुमार, हरियाणा
श्री मनोज कुमार, हरियाणा
श्री मनोज जैन, भोपाल
श्री गोतम जैन, इन्दौर
श्री निर्मलकुमार जैन, नोयडा
श्रीमती देवी राजकुमार जैन, दुर्ग
श्री संजय जैन, दिल्ली
श्री बाबूलालजी ईश्वरलालजी पाटोदी, छिन्दवाड़ा
श्री भूपेन्द्रकुमारजी इन्द्रमलजी जैन, गाजियाबाद
श्री सुशील कुमार जी शोभितजी जैन, व्यासपुर
श्रीमती स्नेहलताजी एस.के. जैन, सोनीपत
श्रीमती ममताजी जैन, पानीपत
श्रीमती मालादेवीजी जैन, करोली
श्री जेठालालजी कुबेरदासजी शाह, मुंबई
श्री प्रदीप प्रभाकरजी जैन, मुंबई
श्री विशालजी नीतूजी जैन, जयपुर
श्री कजोडमलजी राजकुमारजी (लुहाडिया) भिलाई
श्री अरुणजी मीनुजी जैन, दिल्ली
श्री रतनलाल जी जैन, अलवर (राज.)
श्री आकाश जैन, शांतिविहार, दिल्ली
श्री सुनीलकुमार दिलीपकुमार जैन, भोपाल
श्री वीरेन्द्र शशि जैन, हिसार
श्री व्ही.एस. जैन द्वारा आर.के. जैन, मुजफ्फर नगर
श्री बाबूलालजी पाटोदी परिवार, छिन्दवाड़ा
श्री संजय कुमार सिंघई, नवापारा राजिम (छत्तीसगढ़)
श्री अनिमेष जैन, नवापारा राजिम (छत्तीसगढ़)
श्री वैभव चौधरी पुत्र श्री सुभाष चौधरी, नवापारा राजिम
श्रीमती कुसुम जैन धर्मपत्नी श्री निर्मल कुमार चौधरी, नवापारा राजिम (छत्तीसगढ़)